ऋग्वेद

-भाषा भाष्य-

५,६,७ मण्डल

~महर्षि दयानन्द सरस्वती

कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

मुमुक्षु भवन वेद वेदाङ्ग पुस्तकालय, वाराणसी।



भाषा भाष्य

आर्यसमाज स्थापना-शताब्दी-प्रकाशन

प्रकाशक
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा
महर्षि दयानन्द भवन, रामलीला मैदान, नई दिल्ली-१

[३]

ऋग्वेद (आर्यभाषा-भाष्य)

(पंचम, षष्ठ, सप्तम मण्डल)

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत

आर्यसंवत् १९७२९४९०७३
विक्रमाब्द २०३०
दयानन्दाब्द १४९

मूल्य १०-रुपये

मुद्रक
सार्वदेशिक प्रेस
पटौदी हाउस, दरियागंज, दिल्ली-६

* ओ३म् *

ऋग्वेद भाषाभाष्यम् ॥

—.०॥:॥:०॥०॥०:—

पञ्चमं मण्डलम् ॥

—:०॥:०:॥:०॥:०—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

अथ द्वादशर्चस्य प्रथमस्य सूक्तस्य बुधगविष्ठिरावात्रेयावृषी । अग्निर्देवता । १ । ३ । ४ । ६ । ११ । १२ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ७ । १० त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ । ८ स्वराट् पङ्क्तिः । ९ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब बारह ऋचा वाले प्रथम सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में उपदेश देने योग्य और उपदेश देने वाले के गुणों को कहते हैं ॥

अबो॑ध्य॒ग्निः स॒मिधा॒ जना॑नां॒ प्रति॑ धे॒नुमि॑वाय॒तीमु॒षास॑म् ।
य॒ह्वा इ॑व॒ प्र व॒यामु॒ज्जिहा॑नाः॒ प्र भा॒नवः॑ सिस्रते॒ नाक॒मच्छ॑ ॥१॥

पदार्थः - हे विद्वन् जैसे (समिधा) इन्धन और घृत आदि से (अग्निः) अग्नि (अबोधि) जाना जाता अर्थात् प्रज्वलित किया जाता है (भानवः) कान्ति (जनानाम्) मनुष्यों की (आयतीम्) आती हुई (धेनुमिव) दुग्ध देने वाली गौ के तुल्य (उषासम्) प्रातर्वेला के (प्रति) प्रति (प्र,सिस्रते) प्राप्त होतीं और (वयाम्) शाखा को (प्र, उज्जिहानाः) अच्छे प्रकार त्यागते हुए (यह्वाइव) बड़े वृक्षों के सदृश (नाकम्) दुःख से रहित अन्तरिक्ष को (अच्छ) उत्तम प्रकार प्राप्त होती हैं वैसे आप हूजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं - जो अग्न्यादि पदार्थों की विद्या को ग्रहण कर कार्य्यों में अच्छे प्रकार युक्त करते हैं वे दुःखरहित हुए वृक्षों के समान बढ़ते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अबो॑धि॒ होता॑ य॒जथा॑य दे॒वानू॒र्ध्वो अ॒ग्निः सु॒मनाः॑ प्रा॒तर॑स्थात् ।
समि॑द्धस्य॒ रुश॑दद॒र्शि॒ पाजो॑ म॒हान् दे॒वस्तम॑सो॒ निर॑मोचि ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (सुमनाः) शुद्धमनवाला (होता) हवनकर्त्ता पुरुष (यजथाय) यज्ञ करने के लिये (ऊर्ध्वः) ऊपर को चलने वाले (अग्निः) अग्नि के सदृश (देवान्) विद्वानों वा श्रेष्ठगुणों को (अबोधि) जानता और (प्रातः) प्रातःकाल में (अस्थात्) स्थित होता है वह (समिद्धस्य) प्रदीप्त अग्नि के (रुशत्) रूप के समान (अदर्शि) देखा जाता है और जो (महान्) बड़ा (देवः) प्रकाशमान सूर्य (पाजः) बल को प्राप्त होकर (तमसः) अन्धकार से (निः) (अमोचि) अत्यन्त छुटाया जाता है उसकी आप लोग सेवा करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य उत्तम आचरण से अग्नि के सदृश ऊपर को जाने वाले होते हैं वे अविद्या से निवृत्त होकर यशस्वी होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यदीं॑ ग॒णस्य॑ रश॒नामजी॑गः॒ शुचि॑रङ्क्ते॒ शुचि॑भि॒र्गोभि॑र॒ग्निः ।
आद्दक्षि॑णा युज्यते वाज॒यन्त्यु॑त्ता॒नामू॒र्ध्वो अ॑धयज्जु॒हूभिः॑ ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (शुचिभिः) पवित्र (गोभिः) किरणों से (अग्निः) अग्नि के सदृश (गणस्य) समूह की (रशनाम्) डोरी को (अजीगः) अत्यन्त निगलता अर्थात् ग्रहण करता (आत्) और (शुचिः) पवित्र होता हुआ (ऊर्ध्वः) ऊपर को उठा (अङ्क्ते) प्रसिद्ध होता है वह (दक्षिणा) दक्षिणदिशा में (युज्यते) युक्त किया जाता है जो विद्यायुक्त स्त्री (वाजयन्ती) प्राप्ति कराती हुई (उत्तानाम्) ऊपर जाने वाली सामग्री को निरन्तर ग्रहण करती है वह (ईम्) प्राप्त हुए (जुहूभिः) पान करने के साधनों से पीने योग्य पदार्थ को (अधयत्) पान करती है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो समुदाय के संतोष को उत्पन्न करते हैं वे किरणों से सूर्य जैसे वैसे सर्वत्र यश से प्रकाशित होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जैसे (अह्नाम्) दिनों के (अग्रे) अग्रभाग में (विरूपे) विरुद्धस्वरूप (उषसा) रात्रि और दिन (ईम्) प्राप्त हुई क्रिया को (सुवाते) उत्पन्न कराते हैं और उन में (श्वेतः) श्वेतवर्ण (वाजी) जनाने वाला अर्थात् कार्य्यों की सुचना दिलाने वाला दिवस (जायते) उत्पन्न होता है वैसे (अग्निम) अग्नि की (देवयताम्) कामना करते हुए जनों के बीच (सूर्य्ये) सूर्य्य में (चक्षूंषीव) नेत्रों के सदृश परमात्मा में (मनांसि) अन्तःकरण (अच्छा) उत्तम प्रकार (सम्, चरन्ति) प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे दिन वैसे विद्वान् जन और जैसे रात्रि वैसे अविद्वान् हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो (अह्नाम्) दिनों के (अग्रे) अग्रभाग में (हितेषु) सुख के कारणों में (हितः) हित करने वाला (वनेषु) वनों में (अरुषः) मर्मस्थलों में न व्यापी (दमेदमे) गृह गृह में (सप्त) सात किरणों और (रत्ना) धनों को (दधानः) धारण करता हुआ (जेन्यः) जीतने वाला (अग्निः) अग्नि के सदृश (होता) संगत क्रियाओं का कर्त्ता (जनिष्ट) उत्पन्न होता है और श्रेष्ठ कर्मों में (नि,ससाद) प्रवृत्त होवे (हि) वही (यजीयान्) अत्यन्त यज्ञ करने वाला होता है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे दिन के आरम्भ में प्रभातसमय सब का हितकारी होता है वैसे ही श्रेष्ठ कर्म का करने वाला यजमान सब का हितैषी होता है ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उ लोके ।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्त्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (मध्ये) मध्य में (इद्धः) प्रदीप्त (अग्निः) बिजुली

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं - जो अग्न्यादि पदार्थों की विद्या को ग्रहण कर कार्य्यों में अच्छे प्रकार युक्त करते हैं वे दुःखरहित हुए वृक्षों के समान बढ़ते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अबो॑धि॒ होता॑ य॒जथा॑य दे॒वानू॒र्ध्वो अ॒ग्निः सु॒मनाः॑ प्रा॒तर॑स्थात् ।

समि॑द्धस्य॒ रुश॑दद॒र्शि॒ पाजो॑ म॒हान् दे॒वस्तम॑सो॒ निर॑मोचि ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (सुमनाः) शुद्धमनवाला (होता) हवनकर्त्ता पुरुष (यजथाय) यज्ञ करने के लिये (ऊर्द्ध्वः) ऊपर को चलने वाले (अग्निः) अग्नि के सदृश (देवान्) विद्वानों वा श्रेष्ठगुणों को (अबोधि) जानता और (प्रातः) प्रातःकाल में (अस्थात्) स्थित होता है वह (समिद्धस्य) प्रदीप्त अग्नि के (रुशत्) रूप के समान (अदर्शि) देखा जाता है और जो (महान्) बड़ा (देवः) प्रकाशमान सूर्य (पाजः) बल को प्राप्त होकर (तमसः) अन्धकार से (निः) (अमोचि) अत्यन्त छुटाया जाता है उसकी आप लोग सेवा करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य उत्तम आचरण से अग्नि के सदृश ऊपर को जाने वाले होते हैं वे अविद्या से निवृत्त होकर यशस्वी होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यदीं॑ ग॒णस्य॑ रश॒नामजी॑गः॒ शुचि॑रङ्क्ते॒ शुचि॑भि॒र्गोभि॑र॒ग्निः ।

आद्दक्षि॑णा युज्यते वाज॒यन्त्यु॑त्ता॒नामू॒र्ध्वो अ॑धयज्जु॒हूभिः॑ ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (शुचिभिः) पवित्र (गोभिः) किरणों से (अग्निः) अग्नि के सदृश (गणस्य) समूह की (रशनाम्) डोरी को (अजीगः) अत्यन्त निगलता अर्थात् ग्रहण करता (आत्) और (शुचिः) पवित्र होता हुआ (ऊर्द्ध्वः) ऊपर को उठा (अङ्क्ते) प्रसिद्ध होता है वह (दक्षिणा) दक्षिणदिशा में (युज्यते) युक्त किया जाता है जो विद्यायुक्त स्त्री (वाजयन्ती) प्राप्ति कराती हुई (उत्तानाम्) ऊपर जाने वाली सामग्री को निरन्तर ग्रहण करती है वह (ईम्) प्राप्त हुए (जुहूभिः) पान करने के साधनों से पीने योग्य पदार्थ को (अधयत्) पान करती है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो समुदाय के संतोष को उत्पन्न करते हैं वे किरणों से सूर्य जैसे वैसे सर्वत्र यश से प्रकाशित होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अग्निमच्छा देवयतां मनांसि चक्षूंषीव सूर्ये सं चरन्ति ।
यदीं सुवाते उषसा विरूपे श्वेतो वाजी जायते अग्रे अह्नाम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जैसे (अह्नाम्) दिनों के (अग्रे) अग्रभाग में (विरूपे) विरुद्धस्वरूप (उषसा) रात्रि और दिन (ईम्) प्राप्त हुई क्रिया को (सुवाते) उत्पन्न कराते हैं और उन में (श्वेतः) श्वेतवर्ण (वाजी) जनाने वाला अर्थात् कार्य्यों की सूचना दिलाने वाला दिवस (जायते) उत्पन्न होता है वैसे (अग्निम) अग्नि की (देवयताम्) कामना करते हुए जनों के बीच (सूर्य्ये) सूर्य्य में (चक्षूंषीव) नेत्रों के सदृश परमात्मा में (मनांसि) अन्तःकरण (अच्छा) उत्तम प्रकार (सम्, चरन्ति) प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे दिन वैसे विद्वान् जन और जैसे रात्रि वैसे अविद्वान् हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

जनिष्ट हि जेन्यो अग्रे अह्नां हितो हितेष्वरुषो वनेषु ।
दमेदमे सप्त रत्ना दधानोऽग्निर्होता नि षसादा यजीयान् ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो (अह्नाम्) दिनों के (अग्रे) अग्रभाग में (हितेषु) सुख के कारणों में (हितः) हित करने वाला (वनेषु) वनों में (अरुषः) मर्मस्थलों में न व्यापी (दमेदमे) गृह गृह में (सप्त) सात किरणों और (रत्ना) धनों को (दधानः) धारण करता हुआ (जेन्यः) जीतने वाला (अग्निः) अग्नि के सदृश (होता) संगत क्रियाओं का कर्ता (जनिष्ट) उत्पन्न होता है और श्रेष्ठ कर्मों में (नि,ससाद) प्रवृत्त होवे (हि) वही (यजीयान्) अत्यन्त यज्ञ करने वाला होता है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जैसे दिन के आरम्भ में प्रभातसमय सब का हितकारी होता है वैसे ही श्रेष्ठ कर्म का करने वाला यजमान सब का हितैषी होता है ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अग्निर्होता न्यसीदद्यजीयानुपस्थे मातुः सुरभा उं लोके ।
युवा कविः पुरुनिःष्ठ ऋतावा धर्ता कृष्टीनामुत मध्य इद्धः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (मध्ये) मध्य में (इद्धः) प्रदीप्त (अग्निः) बिजुली

के सदृश (यजीयान्) अत्यन्त यज्ञकर्त्ता (युवा) बलवान् (कविः) उत्तम बुद्धिवाला विद्वान् (पुरुनिःष्ठः) अनेक प्रकार की श्रद्धा वा बहुत स्थानों वाला (ऋतावा) सत्य-का विभाग (धर्त्ता) और धारण करनेवाला (होता) यज्ञकर्त्ता (सुरभौ) सुगन्धित (मातुः) माता के (उपस्थे) समीप में (लोके) लोक में (नि,असीदत्) निरन्तर स्थित होवे (उ) वही (कृष्टीनाम्) मनुष्यों का (उत) और पशु आदिकों का रक्षक होवे ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा०—जैसे अग्नि मातारूप वायु में विराजता हुआ बिजुलीरूप से सबको सुख देता है वैसे ही धार्मिक विद्वान् सबको आनन्द दिलाने को योग्य है ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

प्र णु त्यं विप्रमध्वरेषु साधुमग्निं होतारमीळते नमोभिः ।
आ यस्ततान रोदसी ऋतेन नित्यं मृजन्ति वाजिनं घृतेन ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो अग्नि (नमोभिः) अन्न आदिकों से (ऋतेन) सत्य से (घृतेन) और जल से (वाजिनम्) गतिवाले पदार्थ को (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (आ, ततान) विस्तृत करता अर्थात् अन्तरिक्ष और पृथिवी पर पहुँचाता है उसकी विद्या से जो (नित्यम्) नित्य (मृजन्ति) शुद्ध करते और (त्यम्) उस (अग्निम्) अग्नि के सदृश (होतारम्) यज्ञ करने वाले (साधुम्) श्रेष्ठ (विप्रम्) बुद्धिमान् की (अध्वरेषु) नहीं हिंसा करने योग्य व्यवहारों में (नु) शीघ्र (प्र, ईलते) अच्छे प्रकार स्तुति करते हैं वे सुखी होते हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे विद्वान् जन अग्नि को कार्य्यों में संप्रयुक्त अर्थात् काम में लाकर धन और धान्य से युक्त होते हैं वैसे ही इसकी विद्या को कार्य्यों में संयुक्त करके प्रत्यक्ष विद्यायुक्त होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

मार्जाल्यो मृज्यते स्वे दमूनाः कविप्रशस्तो अतिथिः शिवो नः ।
सहस्रशृङ्गो वृषभस्तदोजा विश्वाँ अग्ने सहसा प्रास्यन्यान् ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्तमान (दमूनाः) इन्द्रियों को वश में रखने वाले (कविप्रशस्तः) विद्वानों से प्रशंसा करने योग्य अथवा विद्वानों में प्रशंसा को प्राप्त (शिवः) मङ्गलस्वरूप वा मङ्गल करनेवाले (अतिथिः) जिनकी आने की

कोई तिथि नियत विद्यमान न हो (सहस्रशृङ्गः) जो हजारों शृङ्गों के तुल्य तेजों से युक्त (वृषभः) वलिष्ठ और वृष्टि करने वाले (तदोजाः) जिनका वही पराक्रम (मार्जाल्यः) जो अत्यन्त शुद्ध करनेवाले अग्नि के सदृश आप (स्वे) अपने में (प्र, मृज्यते) शुद्ध किये जाते हैं वह (सहसा) बल से (विश्वान्) सम्पूर्ण (नः) हम लोगों की तथा (अन्यान्) अन्यों की रक्षा करते हुए (असि) विद्यमान हो उन की हम लोग सेवा करें ॥८॥

भावार्थः— वे ही अतिथि होवें जो इन्द्रियों के दमन करने और मङ्गलाचरण करने वाले धर्म्मिष्ठ विद्वान् जितेन्द्रिय और सब के प्रिय साधन में प्रीति करने वाले होवें और जैसे अग्नि सबका शुद्ध करनेवाला है वैसे ही सम्पूर्ण जगत् के पवित्र करने वाले अतिथि जन हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

प्र स॒द्यो अ॑ग्ने॒ अत्ये॑ष्य॒न्याना॒विर्यस्मै॒ चारु॑तमो ब॒भूथ॑ ।
ई॒ळे॒न्यो॑ वपु॒ष्यो॑ वि॒भावा॑ प्रि॒यो वि॒शामति॑थि॒र्मानु॑षीणाम् ॥९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (यस्मै) जिस के लिये आप (आविः) प्रकट (बभूथ) होते हो वह (ईलेन्यः) प्रशंसा करने योग्य धर्म्मयुक्त कर्म्म करने वाला (वपुष्यः) सुन्दर रूप में प्रसिद्ध (विभावा) विशेष करके कान्तियुक्त (चारुतमः) अत्यन्त सुशील और सुन्दर और (मानुषीणाम्) मनुष्यादिरूप (विशाम्) प्रजाओं की (प्रियः) कामना वा सेवा करने योग्य (अतिथिः) सर्वत्र घूमने वाला (प्र) समर्थ होता है जिस कारण आप (अन्यान्) प्रथम उपदेश दिये हुओं को (सद्यः) तुल्य दिन में (अति, एषि) उल्लङ्घन करके प्राप्त होते हो वह आप हम लोगों से सत्कार करने योग्य हो ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य नित्य भ्रमण करते और प्राप्त हुए जनों को उपदेश कर और नहीं प्राप्त हुओं को उपदेश के लिये जाते तथा सब के हितैषी वड़े विद्वान् और यथार्थवादी हैं वेही अतिथि होने के योग्य हैं ॥९॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तुभ्यं॑ भरन्ति क्षि॒तयो॑ यविष्ठ ब॒लिम॑ग्ने॒ अन्ति॑त॒ ओत दू॒रात् ।
आ भन्दि॑ष्ठस्य सुम॒तिं चि॑किद्धि बृ॒हत्ते॑ अग्ने॒ महि॒ शर्म॑ भ॒द्रम् ॥१०॥

पदार्थः- हे (यविष्ठ) अतिशय युवा (अग्ने) बिजुली के सदृश विद्या में व्याप्त जिस से आप (अन्तितः) समीप से (उत) और (दूरात्) दूर से आकर सब

को सत्य का उपदेश करते हो इस से (क्षितयः) गृहस्थ मनुष्य (तुभ्यम्) आप के लिये (बलिम्) खाने और पीने योग्यादि पदार्थों के समूह को (आ, भरन्ति) धारण करते हैं और हे (अग्ने) पवित्र कार्य्य करने वाले आप (भन्दिष्ठस्य) अत्यन्त श्रेष्ठ आचरण करने वाले की (सुमतिम्) श्रेष्ठ बुद्धि को (आ, चिकिद्धि) विशेष करके जानिये और यह (ते) आप का (महि) सत्कार करने योग्य (बृहत्) बड़ा (भद्रम्) सेवन करने योग्य सुख का देने वाला (शर्म्म) गृह वा सुख हो ॥१०॥

भावार्थः—जिस से अतिथि जन सब मनुष्यों के सत्य उपदेश से परम उपकार को करते हैं इस से वे अन्न पान स्थान प्रिय वचन और धन आदि से सत्कार करने योग्य होते हैं ॥१०॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आद्य रथं भानुमो भानुमन्तमग्ने तिष्ठ यजतेभिः समन्तम् ।
विद्वान्पथीनामुर्व१न्तरिक्षमेह देवान्हविरद्याय वक्षि ॥११॥

पदार्थः— हे (भानुमः) कान्तिवाले (अग्ने) विद्वन् आप (इह) यहां (अद्य) इस समय (यजतेभिः) प्राप्त हुए घोड़े आदिकों से संयुक्त (समन्तम्) सब प्रकार दृढ़ अवयवों वाले (भानुमन्तम्) कान्तियुक्त (रथम्) सुन्दर वाहन पर (आ) अच्छे प्रकार (तिष्ठ) विराजिये इससे (विद्वान्) विद्यायुक्त आप (पथीनाम्) मार्गों के (उरु) व्यापक (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को और (हविरद्याय) खाने योग्य अन्न आदि के लिये (देवान्) विद्वान् अतिथियों को जिससे (आ, वक्षि) अच्छे प्रकार पहुंचाते हो इससे हम लोगों से सत्कार करने योग्य हो ॥११॥

भावार्थः—गृहस्थों को चाहिये कि दूर स्थित भी उत्तम अतिथियों को उत्तम वाहनों पर बैठाकर उपदेश के लिये लावें और अन्न आदि से उनका सत्कार करें ॥११॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे ।
गविष्ठिरो नमसा स्तोममग्नौ दिवीव रुक्ममुरुव्यञ्चमश्रेत् ॥१२॥

पदार्थः—हे राजा आदि मनुष्यो अतिथि हमलोग जो (गविष्ठिरः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी में स्थित (नमसा) सत्कार वा अन्न आदि से (दिवीव) जैसे सूर्य्य में वैसे (अग्नौ) अग्नि में (रुक्मम्) प्रीतिकारक और प्रकाशयुक्त (उरुव्यञ्चम्) बहुत व्यापक और (स्तोमम्) प्रशंसा करने योग्य का (अश्रेत्) आश्रय करे उस

(वृष्णे) सत्य उपदेश की वृष्टि करने वाले (वृषभाय) बलिष्ठ (मेध्याय) पवित्र (कवये) विद्वान् जन के लिये (वन्दारु) प्रशंसा करने योग्य धर्म्मसम्बन्धी (वचः) वचन का (अवोचाम) उपदेश करें ॥१२॥

भावार्थः—उन पुरुषों को ही विद्वान् अतिथि जन विशेष उपदेश देवें कि जो पविश्रात्मा विद्या में प्रीति करने और उत्तम क्रियाओं के जानने की इच्छा करने वाले होवें और जो इन बातों से विपरीत अर्थात् रहित हों उन को अधिकार की योग्यता अर्थात् विशेष उपदेश के समझने का सामर्थ्य साधारण उपदेश के द्वारा प्राप्त करा के अधिकारी करें॥१२॥

इस सूक्त में उपदेश सुनने और उपदेश के सुनाने वाले का गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में प्रथम सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्य द्वितीयस्य सूक्तस्य १ । ३—८ । १० - १२ कुमार आत्रेयो वृशो वा जार उभौ वा । २ । ९ वृशो जार ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ३ । ७ । ८ त्रिष्टुप् । ४ । ५ । ६ । १० निचृत्त्रिष्टुप् । ११ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ स्वराट् पङ्क्तिः । ९ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १२ निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब बारह ऋचावाले द्वितीय सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में युवावस्था में विवाह करने के विषय को कहते हैं ॥

कुमारं माता युवतिः समुब्धं गुहा बिभर्ति न ददाति पित्रे ।
अनीकमस्य न मिनज्जनासः पुरः पश्यन्ति निहितमरतौ ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (युवतिः) पूर्ण अवस्था अर्थात् विवाह करने योग्य अवस्थावाली होकर जिस स्त्री ने विवाह किया ऐसी (माता) माता (समुब्धम्) तुल्यता से ढपे हुए (कुमारम्) कुमार को गुहा) गर्भाशय में (बिभर्ति) धारण करती और (पित्रे) उस पुत्र के पिता के लिये (न) नहीं (ददाति) देती है (अस्य) इस पिता के (अनीकम्) समुदायबल को अर्थात् (न) जो नहीं (मिनत्) नाश करनेवाला होता हुआ (अरतौ) रमणसमय से अन्यसमय में (निहितम्) स्थित उस को (जनासः) विद्वान् जन (पुरः) पहिले (पश्यन्ति) देखते हैं वैसाही आप लोग आचरण करो ॥१॥

भावार्थः—यदि कुमार और कुमारी ब्रह्मचर्य्य से विद्या पढ़के और

सन्तान के उत्पन्न करने की रीति को जान के पूर्ण युवा अवस्था अर्थात् विवाह करने के योग्य अवस्था होनेपर स्वयम्वर नामक विवाह को करके सन्तान की उत्पत्ति करते हैं तो वे सदा आनन्दित होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

कमेतं त्वं युवते कुमारं पेषी बिभर्षि महिषी जजान ।
पूर्वीर्हि गर्भः शरदो ववर्धापश्यं जातं यदसूत माता ॥२॥

पदार्थः—हे (युवते) ब्रह्मचर्य्य से पढ़ी विद्या जिस ने ऐसी पूर्ण अवस्था वाली (पेषी) पेष्याकार अर्थात् डिब्बी के आकार के गर्भाशय में वीर्य्य को स्थित करने वाली (महिषी) महान् रूप बल और उत्तम स्वभाव आदि के योग से आदर करने योग्य (त्वम्) तू (कम्) किस (एतम्) किया है ब्रह्मचर्य्य जिस ने ऐसे इस (कुमारम्) बालक का (बिभर्षि) पालन करती है और (माता) माता (यत्) जिस को (असूत) उत्पन्न करती तथा (जातम्) उत्पन्न हुए को मैं (अपश्यम्) देखता हूं वह (गर्भः) गर्भाशय में प्राप्त (पूर्वीः) प्राचीन (शरदः) शरद् ऋतुओं तक निरन्तर (हि) जिस से (ववर्ध) बढ़ता है उस से (जजान) उत्पन्न होता है ॥२॥

भावार्थः - हे कन्याओ ! तुम बाल्यावस्था में सोलह वर्ष के प्रथम और पचीस वर्ष के प्रथम कुमार जनो विवाह को न करो जो इस प्रकार से ब्रह्मचर्य्य के करने के अनन्तर विवाह को करें उन के सन्तान उत्तम रूप और गुणों से युक्त बहुत कालपर्य्यन्त जीवने वाले और शिष्ट जनों से उत्तम प्रकार मान पाने वाले होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

हिरण्यदन्तं शुचिवर्णमारात् क्षेत्रादपश्यमायुधा मिमानम् ।
ददानो अस्मा अमृतं विपृक्वत्किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो मैं किया ब्रह्मचर्य्य जिन्हों ने ऐसे स्त्री पुरुषों में से (क्षेत्रात्) संस्कार की हुई भार्या स्त्रीसे उत्पन्न हुए (हिरण्यदन्तम्) सुवर्ण वा तेज के तुल्य दांत वाले (शुचिवर्णम्) पवित्रस्वरूपयुक्त वा अतिसुन्दर और (आयुधा) शस्त्र और अस्त्रों को (मिमानम्) धारण करने वाले को (आरात्) समीप से (अपश्यम्) देखूं और (अस्मै) इसके लिए (विपृक्वत्) विशेष करके सम्बद्ध (अमृतम्) मोक्षसुख को (ददानः) देता हुआ मैं हूं उस (माम्) मुझ को (अनिन्द्राः) ऐश्वर्य से रहित (अनुक्थाः) अविद्वान् जन (किम्) क्या (कृणवन्) करें ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! पूर्ण ब्रह्मचर्य शिक्षा विद्या युवावस्था और परस्परप्रीति के विना सन्तानों का विवाह न करें इस प्रकार करते हुए सब जन अति उत्तम सन्तानों को प्राप्त होकर अति ही आनन्द को प्राप्त होते हैं जो इस प्रकार प्रसिद्ध होते हैं उन के समीप दारिद्र्य मूर्खता वा दरिद्री और अविद्वान् जन कुछ भी विघ्न नहीं कर सकते हैं ॥३॥

फिर विवाहसम्बन्धी-संतान विषय को कहते हैं ॥

क्षेत्रादपश्यं सनुतश्चरन्तं सुमद्यूथं न पुरु शोभमानम् ।
न ता अंगृभ्रन्नजनिष्ट हि षः पलिक्नीरिद्युवतयो भवन्ति ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो मैं जिस (क्षेत्रात्) संस्कार की हुई स्त्री से उत्पन्न (चरन्तम्) व्यवहार करते हुए (सुमत्) आपही (पुरु) बहुत (शोभमानम्) शोभायुक्त (न) समान वा (यूथम्) सेनासमूह के (न) समान बलिष्ठ को (सनुतः) सनातन से (अपश्यम्) देखता हूं (सः) वह सुखी (अजनिष्ट) होता है और जो ब्रह्मचारिणी कन्यायें उत्तम नियमों वाली हुई युवावस्था के प्रथम पतियों को (अगृभ्रन्) ग्रहण करती हैं (ताः) वे (हि) ही (युवतयः) युवती हुई पुत्रपौत्रों के अतिसुख से युक्त (इत्) और (पलिक्नीः) श्वेत केशोंवाली अर्थात् वृद्धावस्थायुक्त (भवन्ति) होती हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! यदि आप लोग अपने सन्तानों को अतिकालपर्यन्त ब्रह्मचर्य्य करावें तो वे धर्मिष्ठ बुद्धियुक्त और चिरञ्जीवी हुए आप लोगों के लिये अतीव सुख देवें ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

के मे मर्यकं वि यवन्त गोभिर्न येषां गोपा अरणश्चिदास ।
य ईं जगृभुरव ते सृजन्त्वाजाति पश्व उप नश्चिकित्वान् ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वानो (के) कौन (गोपाः) गौओं के पालन करने वाले (गोभिः) गौओं के (न) सदृश (मे) मेरे (मर्य्यकम्) अल्प मनुष्य को (वि, यवन्त) दूर करें और (येषाम्) जिनका वह (चित्) निश्चित (अरणः) मिलने वाला (आस) होता है और (ये) जो (पश्वः) पशुओं को (जगृभुः) ग्रहण करें (ते) वे (आ, अजाति) अच्छे प्रकार सन्तानों की उत्पत्ति जिस कुल में उस को (उप सृजन्तु) उत्पन्न करें और जो (ईम्) विद्या ग्रहण करें वे दुःख को (अव) दूर करें और

जो (चिकित्वान्) बुद्धिमान् उत्पन्न करता है वह (नः) हम लोगों का हितैषी है यह समझाओ ॥५॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमालं०—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के प्रति यह पूछें कौन हम लोगों के थोड़े ज्ञानवाले सन्तानों को उत्तम बुद्धिवाले कर सकते हैं वे विद्वान् यह उत्तर देवें कि जो यथार्थवादी हों वे ही उक्त काम को कर सकते हैं अन्य जन नहीं ॥५॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वसां राजानं वसतिं जनानामरातयो नि दधुर्मर्त्येषु ।
ब्रह्माण्यत्रेरव तं सृजन्तु निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु ॥६॥

पदार्थः—जो (वसाम्) वसते हुए प्राणियों और (जनानाम्) सज्जन पुरुषों के (राजानम्) न्याय करने वाले को और (वसतिम्) निवास को प्रकट करे (तम्) उस को विद्वान् जन (अव सृजन्तु) न निकाल दें और जो (निन्दितारः) गुणों में दोषों और दोषों में गुणों का स्थापन करने वाले (निन्द्यासः) अधर्म के आचरण से निन्दा करने योग्य और (अरातयः) अन्याय से ग्रहण करने वाले शत्रुजन (मर्त्येषु) मरणधर्म्मा मनुष्यों में (ब्रह्माणि) बड़े धनों की (नि, दधुः) स्थापना करें वे (अत्रेः) तीन प्रकार के दुःख से रहित के भी दूर स्थित (भवन्तु) हों ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो निकृष्ट कर्म्म करने और दूसरे के द्रव्य के हरने वाले द्वेषकर्त्ता हों उनको दण्ड देकर निर्जन देश में बांधो और जो स्तुति करने वाले धर्म्मिष्ठ होवें उन को समीप में निवास देकर सदा सत्कार करो ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

शुनश्चिच्छेपं निदितं सहस्राद्यूपादमुञ्चो अशमिष्ट हि षः ।
एवास्मदग्ने वि मुमुग्धि पाशान्होतश्चिकित्व इह तू निषद्य ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् आप (सहस्रात्) असंख्य (यूपात्) मिले वा न मिले हुए बन्धन से (निदितम्) निन्दित (शुनःशेपम्) सुख के प्राप्त कराने और इन्द्रियाराम अर्थात् इन्द्रियों में रमण रखने वाले को (चित्) भी (अमुञ्चः) त्याग करो (हि) जिस से (सः) वह (अशमिष्ट) शान्त होता (एव) ही है । हे (होतः) हवन करने वाले (चिकित्वः) बुद्धिमान् (इह) यहां युक्तधर्म सम्बन्धी व्यवहार में

(निषद्य) प्रवृत्त होकर (अस्मत्) हम लोगों से (पाशान्) संसाररूप बन्धनों को (तू) फिर (वि, मुमुग्धि) काटिये ॥७॥

भावार्थः—विद्वानों का यही आवश्यक कर्म्म है जो सब मनुष्यों को अविद्या और अधर्म्माचरण से अलग कर विद्वान् धार्मिक बना उनका दुःख-बन्धन छुड़ाना निरन्तर करना चाहिये ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

हृणीयमा॑नो॒ अप॒ हि मदैये॑ः॒ प्र मे॑ दे॒वानां॑ व्रत॒पा उ॑वाच ।

इन्द्रो॑ वि॒द्वाँ अनु॒ हि त्वा॑ च॒चक्ष॒ तेना॒हम॑ग्ने॒ अनु॑शिष्ट॒ आगा॑म् ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) तीन दोषों के नाश करने वाले (हृणीयमानः) क्रोध करते हुए आप (हि) ही (मत्) मेरे समीप से (अप, ऐयेः) जाइये और जो (हि) निश्चय (इन्द्रः) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त (विद्वान्) विद्वान् (त्वा) आप को (अनु, चचक्ष) अनुकूल कहें और जो (मे) मेरे लिये (देवानाम्) विद्वानों के बीच (व्रतपाः) सत्य की रक्षा करने वाला हुआ सत्य को (प्र, उवाच) कहे (तेन) इस से (अनुशिष्टः) शिक्षा को प्राप्त (अहम्) मैं सत्यबोध को (आ, अगाम्) प्राप्त होऊं ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य दुष्ट गुण कर्म स्वभाव वाले हों वे दूर रखने योग्य हैं और जो धर्मिष्ठ सत्य का उपदेश करें उनके संग से शिष्ट अर्थात् श्रेष्ठ होके सुख को प्राप्त होवें ॥८॥

फिर उसी विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

वि ज्योति॑षा बृह॒ता भा॑त्य॒ग्निरा॒विर्विश्वा॑नि कृणुते महि॒त्वा ।

प्रादे॑वीर्मा॒याः स॑हते दु॒रेवाः॒ शिशी॑ते॒ शृङ्गे॒ रक्ष॑से वि॒निक्षे॑ ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वानो जैसे (अग्निः) सूर्य्य आदि रूप से अग्नि (बृहता) बड़े (ज्योतिषा) प्रकाश से (महित्वा) बड़प्पन से (विश्वानि) सम्पूर्ण वस्तुओं को (आविः) प्रकट (कृणुते) करता है (वि) विशेष करके (भाति) प्रकाशित होता है और (प्र) अत्यन्त (सहते) सहन करता है (शृङ्गे) शृङ्ग के निमित्त (रक्षसे) दुष्टों के विनाश के लिये (विनिक्षे) वा अन्य विनाश के लिये (शिशीते) प्रताप-युक्त होता है वैसे (दुरेवाः) दुष्ट प्राप्त कराने रूप कर्म वाली (अदेवीः) अशुद्ध (मायाः) छल आदि से युक्त बुद्धियों को सब प्रकार से वारण कीजिये ॥९॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०— जैसे सूर्य अन्धकार का वारण कर और प्रकाश को उत्पन्न कर के भयका निवारण करता है वैसे ही विद्वान्

जन घोर अज्ञान का निवारण करके विद्यारूप सूर्य को उत्पन्न करके सब के आत्माओं को प्रकाशित करें ॥९॥

अब धनुर्वेद के दृष्टान्त से अविद्या निवारण को कहते हैं ॥

उत स्वानासो दिवि षन्त्वग्नेस्तिग्मायुधा रक्षसे हन्तवा उं ।
मदे चिदस्य प्र रुजन्ति भामा न वरन्ते परिबाधो अदेवीः ॥१०॥

पदार्थः—हे विद्वानो (अग्नेः) अग्नि से (तिग्मायुधाः) तीक्ष्ण आयुध युक्त (स्वानासः) उपदेश करने वाले (दिवि) विद्या के प्रकाश में वर्त्तमान (रक्षसे) दुष्टों के विनाश करने के लिये (हन्तवै) हनने को समर्थ (सन्तु) हूजिये और (उत) भी (मदे) आनन्द के लिये प्रवृत्त हूजिये (चित्, उ) और भी (अस्य) इसके (भामाः) क्रोधों के (न) तुल्य (परिबाधः) सब ओर से बाधनों को (अदेवीः) प्रमाद रहित क्रियायें (प्र, रुजन्ति) सब प्रकार भङ्ग करती और (वरन्ते) स्वीकार करती हैं उनका निवारण करो ॥१०॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग जैसे धनुर्वेद को पढ़े हुए शस्त्र और अस्त्रों के प्रक्षेप अर्थात् चलाने रूप युद्ध में चतुर जन अग्निसम्बन्धी अस्त्रादिकों से शत्रुओं का निवारण कर के विजय को प्रकाशित करते हैं वैसे ही अत्यन्त विद्या के पढ़ाने और उपदेश करने से अविद्याकृत प्रमादों का निवारण कर के विद्याकृत श्रेष्ठ गुणों का प्रकाश करो ॥१०॥

फिर विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

एतं ते स्तोमं तुविजात विप्रो रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ।
यदीदग्ने प्रति त्वं देव हर्याः स्वर्वतीरप एना जयेम ॥११॥

पदार्थः—हे (तुविजात) बहुत विद्वानों में प्रसिद्ध (अग्ने) विद्वन् जैसे मैं (ते) आप का (स्वपाः) उत्तम कर्म्म करने वाला (धीरः) क्षमा आदि गुणों से युक्त और ध्यान करने वाला (विप्रः) बुद्धिमान् जन के (न) सदृश (एतम्, इस श्रेष्ठ गुणों के प्रकाशक (रथम्) सुन्दर वाहन को (अतक्षम्) बनाता हूं वैसे (त्वम्) आप आचरण कीजिये और हे (देव) सम्पूर्ण विद्या के देने वाले (यदि) जो आप वाहन को रचिये तो (इत्) ही (स्तोमम्) प्रशंसित व्यवहार जिसमें ऐसे सुख को प्राप्त हूजिये और जैसे हम लोग (एना) इस से (हर्याः) कामना करने योग्य अर्थात् सुन्दर (स्वर्वतीः) अच्छे सुखों से युक्त (अपः) प्राणों से युक्त (प्रति, जयेम) प्रति जीतें वैसे आप इन को जीतिये ॥११॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमालङ्कार—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन धर्म्मयुक्त कामनाओं को करके विजयी होते हैं वैसे ही आप लोग भी आचरण करो ॥११॥

फिर विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

तुविग्रीवो वृषभो वावृधानोऽशत्र्व१र्यः समजाति वेदः । इतीममग्निममृता अवोचन्बर्हिष्मते मनवे शर्म यंसद्धविष्मते मनवे शर्म यंसत् ॥१२॥

पदार्थः—हे विद्वानो जैसे (तुविग्रीवः) बहुत बल वा सुन्दरी ग्रीवायुक्त (वावृधानः) अत्यन्त बढ़ता हुआ (वृषभः) अतीव बलवान् (अर्य्यः) स्वामी (अशत्रु) शत्रुओं से रहित (वेदः) धन को (सम्, अजाति) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे और (बर्हिष्मते) ज्ञान की वृद्धि से युक्त (मनवे) मनुष्य के लिये (शर्म्म) सुख वा गृह को (यंसत्) देवे और (हविष्मते) बहुत उत्तम पदार्थों से युक्त (मनवे) विचारशील पुरुष के लिये (शर्म्म) सुख को (यंसत्) देवे (इति) इस प्रकार से (इमम्) इस (अग्निम्) बिजुली को (अमृताः) आत्मज्ञान जिन को प्राप्त वे (अवोचन्) कहें ॥१२॥

भावार्थः—सब विद्वान् जन ही सब विद्यार्थियों के लिये उत्तम शिक्षा देकर शत्रुता को छुड़ा के सब प्रकार से सुख को प्राप्त होवें ॥१२॥

इस सूक्त में युवावस्था में विवाह और विद्वान् के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में द्वितीय सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्य तृतीयस्य सूक्तस्य वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ निचृत्पङ्क्तिः । ११ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ३ । ५ । ६ । १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ । १० त्रिष्टुप् । ६ स्वराट् त्रिष्टुप् । ७ । ८ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब बारह ऋचा वाले तीसरे सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में राजा के कर्त्तव्य को कहते हैं ॥

त्वमग्ने वरुणो जायसे यत्त्वं मित्रो भवसि यत्समिद्धः ।
त्वे विश्वे सहसस्पुत्र देवास्त्वमिन्द्रो दाशुषे मर्त्याय ॥१॥

पदार्थः—हे (सहसः) बल के (पुत्र) पालन करने वाले (अग्ने) विद्या का अभ्यास किये हुए विद्वान् (यत्) जिस के (त्वम्) आप (मित्रः) सखा और (यत्) जिस से (समिद्धः) प्रकाशयुक्त (भवसि) होते हो और जो (त्वम्) आप (वरुणः) दुष्टों के बन्ध करने वाले श्रेष्ठ (जायसे) होते हो और जो (त्वम्) आप (इन्द्रः) ऐश्वर्य के दाता (दाशुषे) देने योग्य (मर्त्याय) मनुष्य के लिये धन देते हो उन (त्वे) आप में (विश्वे) संपूर्ण (देवाः) विद्वान् जन प्रसन्न होते हैं ॥१॥

भावार्थः—हे राजन् ! जिस के आप मित्र वा जिस से आप विरुद्ध और उदासीन होते हैं वह आप के साथ सदैव मित्रता रक्खे और आप भी उसके साथ रक्खें ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्वम॑र्य॒मा भ॑वसि॒ यत्क॒नीनां॒ नाम॑ स्वधाव॒न् गुह्यं॑ बिभर्षि ।
अ॒ञ्जन्ति॑ मि॒त्रं सुधि॑तं॒ न गोभि॒र्यद्दम्प॑ती॒ सम॑नसा कृ॒णोषि॑ ॥२॥

पदार्थः—हे (स्वधावन्) अच्छे अन्न से युक्त राजन् (यत्) जिससे (त्वम्) आप (कनीनाम्) कामना करने वालों के (अर्य्यमा) न्यायाधीश (भवसि) होते हो और (गुह्यम्) गुप्त (नाम) नाम को (बिभर्षि) धारण करते हो और (यत्) जो (दम्पती) विवाहित स्त्री पुरुषों को (समनसा) तुल्य मन और दृढ़ प्रीतियुक्त (कृणोषि) करते हो उन आप को सम्पूर्ण विद्वान् जन (गोभिः) वाणी आदि पदार्थों से (सुधितम्) सुन्दर प्रसन्न (मित्रम्) मित्र के (न) सदृश (अञ्जन्ति) प्रकट करते हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—वही राजा श्रेष्ठ है जो प्रजाओं का यथार्थ न्याय करता है और जैसे मित्र मित्र को प्रसन्न करता है वैसे ही राजा प्रजाओं को प्रसन्न करे ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तव॑ श्रि॒ये म॒रुतो॑ मर्जयन्त॒ रुद्र॒ यत्ते॒ जनि॑म॒ चारु॑ चि॒त्रम् ।
प॒दं यद्विष्णो॑रुप॒मं नि॒धायि॒ तेन॑ पासि॒ गुह्यं॒ नाम॒ गोना॑म् ॥३॥

पदार्थः—हे (रुद्र) दुष्टों के रुलाने वाले जो (मरुतः) मनुष्य (तव) आप की (श्रिये) लक्ष्मी के लिये (मर्ज्जयन्त) शुद्ध करें (ते) आप का (यत्) जो (चारु) सुन्दर (चित्रम्) अद्भुत (पदम्) प्राप्त होने योग्य (जनिम) जन्म उस को शुद्ध करें और (यत्) जो आप (विष्णोः) व्यापक ईश्वर का (उपमम्) उपमायुक्त और (गोनाम्) इन्द्रियों वा किरणों का (गुह्यम्) गुप्त (नाम) नाम (निधायि) धारण

करें (तेन) इसी हेतु से उन का आप (पासि) पालन करते हो इस से सत्कार करने योग्य हो ॥३॥

भावार्थः—हे राजन् ! इसी से आप के जन्म का साफल्य होवे जिस से आप ईश्वर के सदृश पक्षपात का त्याग कर के प्रजाओं का पालन करो ॥३॥

अथ प्रजाकृत्य को कहते हैं ॥

तवं श्रिया सुदृशों देव देवाः पुरू दधाना अमृतं सपन्त ।
होतारमग्निं मनुषो नि षेदुर्दशस्यन्तं उशिजः शंसमायोः ॥४॥

पदार्थः—हे (देव) दानशील राजन् (तव) आपकी (श्रिया) लक्ष्मी वा शोभा से (सुदृशः) उत्तम प्रकार देखने और (पुरू) बहुत (अमृतम्) मृत्युरहित अर्थात् अविनाशी पदवी को (दधानाः) धारण करते और (उशिजः) कामना करते हुए (आयोः) जीवन के (शंसम्) कहाने और (होतारम्) ग्रहण करने वाले (अग्निम्) अग्नि को (दशस्यन्तः) विस्तारते हुए (देवाः) विद्वान् (मनुषः) मनुष्य (सपन्त) आक्रोशित रहे अर्थात् चिल्ला चिल्ला उसका उपदेश दे रहे हैं वे मृत्युरहित पदवी को (नि, षेदुः) प्राप्त होवें ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप यथार्थवक्ता विद्वानों के सङ्ग से विद्याओं को ग्रहण कर लक्ष्मीवान् हो और इस संसार में सुख भोगकर अन्त अर्थात् मरण में मुक्ति को भी प्राप्त होओ ॥४॥

फिर राजधर्म को कहते हैं ॥

न त्वद्धोता पूर्वो अग्ने यजीयान्न काव्यैः परो अस्ति स्वधावः ।
विशश्च यस्या अतिथिर्भवासि स यज्ञेन वनवद्देव मर्त्तान् ॥५॥

पदार्थः—हे (स्वधावः) बहुत धन और धान्य से युक्त (देव) सुख के देने वाले (अग्ने) विद्वान् वा राजन् आप (यज्ञेन) प्रजापालनरूप व्यवहार से (मर्त्तान्) मनुष्यों का (वनवत्) सेवन करते हो (न) न (त्वत्) आप के समीप से (पूर्वः) प्राचीन (होता) दाता (यजीयान्) अत्यन्त यज्ञ करने वाला (अस्ति) है और (न) न (काव्यैः) कवियों के बनाये हुओं से (परः) श्रेष्ठ है (यस्याः) जिस (विशः) प्रजा के (च) भी (अतिथिः) आदर करने योग्य जो आप (भवासि) होवें (सः) वह आप उस प्रजा के सत्कार करने योग्य हैं ॥५॥

भावार्थः—जो राजा धर्मयुक्त व्यवहार से प्रजाओं का पालन करे वही राज्य करने के योग्य होता है ॥५॥

फिर प्रजाविषय को कहते हैं ॥

वयमंग्ने वनुयाम त्वोतां वसूयवों हविषा बुध्यमानाः ।

वयं संमर्ये विदथेष्वह्नां वयं राया संहसस्पुत्र मर्त्तान् ॥६॥

पदार्थः—हे (सहसस्पुत्र) बल की पालना करने वाले (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी राजन् (त्वोताः) आप से रक्षा किये गये (वसूयवः) अपने धनकी इच्छा करने वाले (हविषा) दान से (बुध्यमानाः) बोध को प्राप्त होते हुए (वयम्) हम लोग आप से रक्षा की (वनुयाम) याचना करें और (वयम्) हम लोग (अह्नाम्) दिनों के (विदथेषु) विशेष ज्ञान संबन्धी व्यवहारों में (समर्य्ये) सग्राम के बीच प्रवृत्त होवें और (वयम्) हम लोग (राया) धन से (मर्त्तान्) मनुष्यों को याचें अर्थात् मनुष्यों से मांगें ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! विद्वानों से श्रेष्ठ गुणों की आप लोग प्रार्थना करें तो स्वयं प्रजायें धनवती होवें ॥६॥

फिर चोरी आदि अपराधनिवारण प्रजापालन राजधर्म को कहा है ॥

यो न आगों अभ्येनो भरात्यधीदघमघशंसे दधात ।

जही चिंकित्वो अभिशंस्तिमेतामग्ने यो नों मर्चयंति द्वयेनं ॥७॥

पदार्थः—हे (चिकित्वः) विज्ञानवान् (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रतापी पृथिवी के पालनेवाले (यः) जो (नः) हम लोगों के (आगः) अपराध और (एनः) पाप को (अभि,भराति) सम्मुख धारण करता है ;उस (अघशंसे) चोरीरूप कर्म्म में जो (अघम्) पाप (इत्) ही को (अधि, दधात) अधिस्थापन करे और (यः) जो (द्वयेन) पाप और अपराध से (नः) हम लोगों को (मर्चयति) बांधता है और (एताम्) इस (अभिशस्तिम्) सब ओर से हिंसा को करता है उस का आप (जही) त्याग कीजिये ॥७॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो प्रजा को दोष देने वाले होवें उन को सदा ही दण्ड दीजिये और जो श्रेष्ठ आचरण करने वाले होवें उनको मानो अर्थात् सत्कार करो ॥७॥

फिर राजधर्म को कहते हैं ॥

त्वामस्या व्युषि देव पूर्वे दूतं कृण्वाना अंयजन्त हव्यैः ।

संस्थे यदंग्न ईयंसे रयीणां देवो मर्त्तैर्वसुंभिरिध्यमानः ॥८॥

पदार्थः— हे (देव) श्रेष्ठ गुणों से युक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (देवः) विद्वान् होते हुए आप (यत्) जिस से (अस्याः) इस प्रजा के मध्य में (संस्थे) उत्तम प्रकार स्थित होते हैं जिस में उस में (रयीणाम्) धनों के बीच (वसुभिः) धन आदि पदार्थों से युक्त (मर्तैः) मरणधर्मवाले मनुष्यों से (इध्यमानः) प्रकाशित किये गये (ईयसे) प्राप्त होते वा जाते हो और पालन का (वधुषि) सेवन करते हो उन (त्वाम्) आप को (हव्यैः) प्रशंसा करने योग्य पदार्थों से (वृतम्) शत्रुओं के नाश करने वाले (कृण्वानाः) करते हुए (पूर्वे) पालन करने वाले विद्वान् जन (अयजन्त) मिलें ॥८॥

भावार्थः हे राजन् ! जो आप विद्या और विनय से न्यायपूर्वक प्रजाओं का निरन्तर पालन करें तो आप को यश, धन, राज्य की उन्नति और उत्तम पुरुष प्राप्त होवें ॥८॥

फिर सन्तान शिक्षा विषयक प्रजाधर्म को अगले मन्त्र में कहा है ॥

अवं स्पृधि पितरं योधिं विद्वान् पुत्रो यस्तें सहसः सून ऊहे ।
कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नोऽग्ने कदा ऋतचिद्यातयासे ॥९॥

पदार्थः—हे (सहसः) ब्रह्मचर्य्यबल से युक्त पुरुष के (सूनो) पुत्र (चिकित्वः) बुद्धियुक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्विन् (ते) तेरे लिये मैं (ऊहे) विशेष तर्क करता हूं (यः) जो तू (विद्वान्) विद्यावान् (पुत्रः) दुःख से रक्षा करने वाला है सो (पितरम्) पिता अर्थात् अपने पालने वाले की (अव,स्पृधि) अभिकांक्षा कर और दुःख को (योधि) दूरकर तथा (ऋतचित्) सत्य का संचय करने वाले तुम (नः) हम लोगों को (कदा) कब (अभि, चक्षसे) उपदेश दोगे और (कदा) कब अच्छे कामों में (यातयासे) प्रेरणा करोगे ॥९॥

भावार्थः— जो कन्या और बालकों को माता पिता ब्रह्मचर्य्य से विद्या प्राप्त करावें और पूर्ण युवावस्था में विवाह करावें तो वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होवें ॥९॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

भूरि नाम वन्दंमानो दधाति पिता वसो यदि तज्जोषयांसे ।
कुविद्देवस्य सहंसा चकानः सुम्नमग्निर्वनते वावृधानः ॥१०॥

पदार्थः— हे (वसो) निवास कराने वाले जो आप की (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ (देवस्य) विद्वान् के (सहसा) बल से (सुम्नम्) सुख की (चकानः) कामना करता और (अग्निः) अग्नि के सदृश (वावृधानः) निरन्तर बढ़ता हुआ

(पिता) उत्पन्न करने वाला (यदि) यदि (भूरि) बहुत (कुवित्) बड़े जिस (नाम) नाम को (दधाति) धारण करता और (वनते) सेवन करता है (तत्) उस का तो आप (जोषयासे) सेवन करें ॥१०॥

भावार्थः—हे सन्तानो ! जो आप लोगों के माता पिता दूसरे विद्या-रूप जन्मनामक द्विज ऐसा नाम विधान करते हैं उन का सेवन निरन्तर तुम लोग करो ॥१०॥

अब चोरी आदि दोष निवारण सन्तान शिक्षाकरण प्रजाधर्म विषय को कहते हैं ॥

त्वमङ्ग जरितारं यविष्ठ विश्वान्यग्ने दुरिताति पर्षि ।

स्तेना अदृश्रन्रिपवो जनासोऽज्ञातकेता वृजिना अभूवन् ॥११॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अतिशय करके युवा (अङ्ग) मित्र (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान जिस से (त्वम्) आप (जरितारम्) विद्या और गुण की स्तुति करने वाले पिता की (अति, पर्षि) अत्यन्त पालना करते हो (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरिता) दुःख के प्राप्त कराने वाले कर्म्म वा फलों का त्याग करते हो और जो (अज्ञातकेताः) नहीं जानी बुद्धि जिन्हों ने वे मूर्ख (वृजिनाः) पापाचरणयुक्त वर्जने योग्य (स्तेनाः) चोर (रिपवः) शत्रु (अभूवन्) होते हैं और जिन को (जनासः) विद्वान् जन (अदृश्रन्) देखते हैं उन का आप परित्याग करो ॥११॥

भावार्थः—हे उत्तम सन्तानो ! आप लोग दुष्ट आचरणों का त्याग, माता पितादि का सत्कार और चौरी कर्म्म आदि का निवारण करके पुण्ययश वाले हूजिये ॥११॥

फिर प्रजा धर्म विषय को कहते हैं ॥

इमे यामासस्त्वद्रिगभूवन्वसवे वा तदिदागो अवाचि ।

नाहायमग्निरभिशस्तये नो न रीषते वावृधानः परा दात् ॥१२॥

पदार्थः—हे श्रेष्ठ सन्तान जो (अयम्) यह (अग्निः) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (नः) हम लोगों को (अभिशस्तये) सब प्रकार से हिंसा करने के लिये (न) नहीं (अह) निश्चय (परा, दात्) दूर पहुंचावे और (वावृधानः) निरन्तर बढ़ता हुआ (न) नहीं (रीषते) हिंसा करता और (त्वद्रिक्) आप के प्रति यत्न कराता (वसवे) धन के लिये (अवाचि) कहा गया (वा) वा (तत्) वह (आगः) अपराध (इत्) ही कहा गया उसको (इमे) ये (यामासः) यम और नियमों से युक्त जन पढ़ाने और उपदेश से पवित्र करें और वे आनन्दित (अभूवन्) होते हैं ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन किसी को भी विना अपराध के नहीं दोष देते हैं उनको अपने समीप से दूर मत निकालो ।।१२।।

इस सूक्त में राजा और प्रजा को चोरी और अन्य अपराध आदि निवारण आदि के कहने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ।।

यह पंचम मण्डल में तीसरा सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथैकादशर्चस्य चतुर्थस्य सूक्तस्य वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । १० । ११ भुरिक् पङ्क्तिः । ४ । ७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ३ । ६ । ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

अब ग्यारह ऋचा वाले चतुर्थ सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में राजविषय को कहते हैं ।।

त्वाम॑ग्ने॒ वसु॑पतिं॒ वसू॑नाम॒भि प्र म॑न्दे अध्व॒रेषु॑ राजन् ।
त्वया॒ वाजं॑ वाज॒यन्तो॑ जये॒माभि ष्या॑म पृत्सु॒तीर्मर्त्या॑नाम् ।।१।।

पदार्थः—हे (अग्ने) विजुली के सदृश विद्या से व्याप्त (राजन्) उत्तम गुणों से प्रकाशमान राजन् (अध्वरेषु) नहीं हिंसा करने योग्य प्रजापालन और न्याय व्यवहारों में (वसूनाम्) धनों के (वसुपतिम्) धनस्वामी (त्वाम्) आप को मैं (अभि, प्र, मन्दे) सब ओर से आनन्द देऊं वा आनन्द देता हूं और (त्वया) अधिष्ठातारूप आप के साथ (वाजम्) सङ्ग्राम को (वाजयन्तः) करते वा कराते हुए हम लोग (मर्त्यानाम्) मरणधर्म वाले शत्रुओं की (पृत्सुतीः) सेनाओं को (अभि, जयेम) सब ओर से जीतें इस से धन और यश से युक्त (स्याम) होवें ।।१।।

भावार्थः—जिन के अधिष्ठाता मुखिया धार्मिक और विद्वान् जन होवें उनका सदा ही विजय, राज्य की वृद्धि और अतुल लक्ष्मी होती है ।।१।।

फिर उसी विषय को कहते हैं ।।

हव्यवाळग्निरजरः पिता नो विभुर्विभावा सुदृशीको अस्मे ।
सुगार्हपत्याः समिषो दिदीह्यस्मद्र्य१क्सं मिमीहि श्रवांसि ॥२॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे (हव्यवाट्) द्रव्यों को एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुंचाने वा (सुदृशीकः) उत्तम प्रकार देखने योग्य वा दिखाने वाला (अग्निः) शुद्धस्वरूप अग्नि जैसे (विभुः) व्यापक परमेश्वर के सदृश सब का पालन करता और प्रकाशित होता है वैसे (विभावा) अनेक प्रकार के प्रकाश वा ज्ञान से युक्त (अजरः) वृद्धावस्था रहित (नः) हम लोगों के (पिता) पालन करने वाले होते हुए (अस्मे) हम लोगों के लिये (सुगार्हपत्याः) सुन्दर अग्नि आदि पदार्थसमुदाय वाले (इषः) अन्नों को (सम्, दिदीहि) अच्छे प्रकार दीजिये और (अस्मद्र्यक्) हम लोगों का आदर करने जानने वा जनानेवाले होते हुए (श्रवांसि) पढ़ने और पढ़ाने आदि कर्म्मों का (सम्, मिमीहि) विधान करिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! जैसे बिजुली और भूमि में प्रसिद्ध हुए रूप से अग्नि सब का उपकार करता है और जैसे परमेश्वर असंख्यात पदार्थों के उत्पन्न करने से पितरों के सदृश सबका पालन करता है वैसे ही आप हूजिये ॥२॥

अब प्रजाविषय को कहते हैं ॥

विशां कविं विश्पतिं मानुषीणां शुचिं पावकं घृतपृष्ठमग्निम् ।
नि होतारं विश्वविदं दधिध्वे स देवेषु वनते वार्य्याणि ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आप लोग (घृतपृष्ठम्) जल और घृत आधार में जिस के उस (पावकम्) पवित्र करने वाले (अग्निम्) अग्नि और (विश्वविदम्) संसार को जानने वाले के सदृश (मानुषीणाम्) मनुष्य सम्बन्धिनी (विशाम्) प्रजाओं के (विश्पतिम्) प्रजापालक (शुचिम्) पवित्र और (होतारम्) देने वाले (कविम्) मेधावी जिस राजा को आप लोग (नि, दधिध्वे) अच्छे स्वीकार करें (सः) वह (देवेषु) विद्वानों वा श्रेष्ठ पदार्थों में (वार्य्याणि) स्वीकार करने योग्यों का (वनते) सेवन करता है ॥३॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलु०—जो अग्नि के सदृश प्रतापी जगदीश्वर के सदृश न्यायकारी विद्वान् और उत्तम लक्षणों वाला राजा होता है वही चक्रवर्त्ती राजा होने योग्य है ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

जुषस्वाग्न इळया सजोषा यतमानो रश्मिभिः सूर्यस्य ।
जुषस्वं नः समिधं जातवेद आ च देवान्हविरद्याय वक्षि ॥४॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) ज्ञान की उत्पत्ति से विशिष्ट (अग्ने) दुष्टों के नाश करने वाले (यतमानः) प्रयत्न करते हुए (सजोषाः) तुल्य प्रीति सेवने वाले आप (सूर्यस्य) सूर्य्य की (रश्मिभिः) किरणों के सदृश (इळया) प्रशंसित वाणी से (नः) हम लोगों के (समिधम्) काष्ठ के तुल्य शत्रु की (जुषस्व) सेवा करो और (हविरद्याय) खाने योग्य पदार्थ के लिये (देवान्) विद्वानों को (आ, वक्षि) प्राप्त कराते अर्थात् पहुंचाते हो उनकी (च) और (जुषस्व) सेवा करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य के प्रकाश से सब जीवों के करने योग्य कर्म्म सिद्ध होते हैं वैसे ही यथार्थ-वक्ता पुरुषों से राजा के सर्व न्याययुक्त प्रजापालन आदि कर्म्म होते हैं ॥४॥

फिर राजविषय को कहते हैं ॥

जुष्टो दमूना अतिथिर्दुरोण इमं नो यज्ञमुप याहि विद्वान् ।
विश्वा अग्ने अभियुजो विहत्या शत्रूयतामा भरा भोजनानि ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) बिजुली के सदृश श्रेष्ठ गुणों से सम्पन्न राजन् (जुष्टः) सेवित वा प्रसन्न किये गए (दमूनाः) शम, दम आदि से युक्त (अतिथिः) अकस्मात् आये (दुरोणे) गृह में प्राप्त हुए से (विद्वान्) विद्वान् आप (नः) हम लोगों के (इमम्) इस प्रत्यक्ष (यज्ञम्) अन्न आदि उत्तम पदार्थों के दान को (उप, याहि) प्राप्त हूजिये और (शत्रूयताम्) शत्रुओं के सदृश आचरण करते हुओं की (विश्वाः) सम्पूर्ण (अभियुजः) सम्मुख प्राप्त हुई शत्रु सेनाओं का (विहत्या) अनेक प्रकार के वधों से नाश करके (भोजनानि) प्रजापालन वा खाने योग्य अन्नों को (आ, भरा) धारण कीजिये ॥५॥

भावार्थः—जो राजा दुष्टों का नाश करके न्याय से प्रजाओं का पालन करता है वह बहुत ही प्रजा का प्रिय होता है ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व वयः कृण्वानस्तन्वे३ स्वायै ।
पिपर्षि यत्सहसस्पुत्र देवान्त्सो अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् ॥६॥

पदार्थः—हे (सहसः पुत्र) बलवान् के पुत्र (नृतम) अतिशय मुख्य (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रतापी राजन् (यत्) जो आप (स्वायै) अपने (तन्वे) शरीर के लिये (वयः) जीवन को (कृण्वानः) करते हुए (वधेन) वध से (दस्युम्) साहस कर्मकारी चोर का (प्र, घातयस्व) अत्यन्त नाश करो वा नाश कराओ। तथा प्रजाओं को (हि) ही (पिपर्षि) प्रसन्न करते हो (सः) वह आप (वाजे) सङ्ग्रामों में (अस्मान्) हम लोगों (देवान्) विद्वानों की (पाहि) रक्षा कीजिये ॥६॥

भावार्थः—हे राजन्! आप सदा चोर डाकुओं का नाश कर धार्म्मिकों का पालन करें और शत्रुओं को जीतें ॥६॥

अब राजप्रजा विषय को कहते हैं ॥

वयं ते अग्न उक्थैर्विधेम वयं हव्यैः पावक भद्रशोचे।

अस्मे रयिं विश्ववारं समिन्वास्मे विश्वानि द्रविणानि धेहि ॥७॥

पदार्थः—हे (पावक) पवित्र (भद्रशोचे) कल्याण के प्रकाश करने वाले (अग्ने) बिजुली के सदृश वर्त्तमान विद्वान् राजा जैसे (वयम्) हम लोग जिन (ते) आप के (उक्थैः) प्रशंसित वचनों से (विश्वानि) सम्पूर्ण (द्रविणानि) यशों को (विधेम) सिद्ध करें वैसे (अस्मे) हम लोगों के लिये इन को (सम्, धेहि) अत्यन्त धारण कीजिये और जैसे (वयम्) हम लोग (हव्यैः) देने और लेने योग्यों से आपकी (विश्ववारम्) विश्वपर्यन्त अर्थात् अति उत्तम पदार्थ पर्य्यन्त पदार्थों से युक्त (रयिम्) लक्ष्मी को प्राप्त करावें वैसे आप (अस्मे) हम लोगों के लिये इस को (इन्व) व्याप्त कीजिये ॥७॥

भावार्थः- इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे प्रजा और मन्त्रीजन राजलक्ष्मी को बढ़ावें वैसे ही राजा इन लोगों के लिये धन बढ़ावे इस प्रकार न्याय से पिता और पुत्र के सदृश वर्त्ताव करके यशस्वी होवें ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व सहसः सूनो त्रिषधस्थ हव्यम्।

वयं देवेषु सुकृतः स्याम शर्मणा नस्त्रिवरूथेन पाहि ॥८॥

पदार्थः- हे (सहसः, सूनो) बलवान् और अतिकाल पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य को धारण किए हुए जन के पुत्र और (त्रिषधस्थ) तीन अर्थात् प्रजा भृत्य और अपने कुटुम्ब के जनों के साथ पक्षपात छोड़ के रहने वाले (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी वर्त्तमान राजन् आप (अस्माकम्) हम लोगों के (हव्यम्) देने योग्य सुख और (अध्वरम्) पालनरूप व्यवहार का (जुषस्व) सेवन करो और (त्रिवरूथेन) वर्षा

शीत और ग्रीष्मकाल में श्रेष्ठ (शर्म्मणा) गृह के साथ (नः) हम लोगों का निरन्तर (पाहि) पालन करो जिस से (वयम्) हम लोग (देवेषु) विद्वानों में (सुकृतः) धर्म्म सम्बन्धी कर्म्म करने वाले (स्याम) होवें ॥८॥

भावार्थः—सब जन राजा के प्रति यह कहें कि हे राजन्! आप हम लोगों का पालन यथावत् करिये आप से रक्षित हम लोग निरन्तर धर्माचरणयुक्त होकर आप की उन्नति को जैसे करें ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

विश्वा॑नि नो दु॒र्गहा॑ जातवेदः॒ सिन्धुं॒ न ना॒वा दु॑रि॒ताति॑ पर्षि ।
अग्ने॑ अत्रि॒वन्नम॑सा गृणा॒नो॒३॒॑ऽस्माकं॑ बोध्यवि॒ता त॒नूना॑म् ॥९॥

पदार्थः—हे (अत्रिवत्) निरन्तर चलने वालों से युक्त (जातवेदः) विद्याओं से संपन्न (अग्ने) धर्म्मिष्ठ राजन् जिस से आप (नावा) नौका से (सिन्धुम्) नदी वा समुद्र को (न) जैसे वैसे (नः) हम लोगों के (विश्वानि) समस्त (दुर्गहा) दु:ख से पार जाने को योग्य और (दुरिता) दुःख से प्राप्त होने योग्यों के भी (अति, पर्षि) पार जाते हो और (नमसा) सत्कार वा अन्न आदि से (गृणानः) स्तुति करते हुए (अस्माकम्) हम लोगों के (तनूनाम्) शरीरों के (अविता) रक्षक होते हुए (बोधि) जानते हो इससे निरन्तर सेवा करने योग्य हो ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो राजा अध्यापक और उपदेशक जन सब लोगों को दुःख से पार पहुंचाते वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं ॥९॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यस्त्वा॑ हृ॒दा की॒रिणा॒ मन्य॑मा॒नोऽम॑र्त्यं॒ मर्त्यो॒ जोह॑वीमि ।
जात॑वेदो॒ यशो॑ अ॒स्मासु॑ धेहि प्र॒जाभि॑रग्ने अमृत॒त्वम॑श्याम् ॥१०॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) विज्ञान से युक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान राजन् (यः) जो (मन्यमानः) जानता हुआ (मर्त्यः) मनुष्य मैं (हृदा) अन्तःकरण और (कीरिणा) स्तुति करने वाले से (अमर्त्यम्) मरणधर्म्म से रहित (त्वा) आप की (जोहवीमि) अत्यन्त स्पर्द्धा करूं और जैसे (प्रजाभिः) पालन करने योग्य प्रजाओं के साथ (अमृतत्वम्) मोक्षभाव को (अश्याम्) प्राप्त होऊं वैसे (अस्मासु) हम लोगों में (यशः) कीर्ति को (धेहि) धरिये स्थापन कीजिये ॥१०॥

भावार्थः—जैसे प्रजायें राजा के हित को सिद्ध करती हैं वैसे ही राजा

प्रजा के सुख की इच्छा करें। इस प्रकार परस्पर प्रीति से अतुल सुख को प्राप्त होवें ॥१०॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यस्मै त्वं सुकृते जातवेद उ लोकमग्ने कृणवः स्योनम् ।
अश्विनं स पुत्रिणं वीरवन्तं गोमन्तं रयिं नशते स्वस्ति ॥११॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) बुद्धि से युक्त (अग्ने) विद्वन् (त्वम्) आप (यस्मै) जिस (सुकृते) धर्मात्मा के लिये (स्योनम्) सुख का कारण (लोकम्) देखने योग्य (कृणवः) करते हो (सः, उ) वही (अश्विनम्) अच्छे घोड़े आदि पदार्थों (पुत्रिणम्) अच्छे पुत्रों (वीरवन्तम्) बहुत वीरों तथा (गोमन्तम्) बहुत गौ आदिकों के सहित (स्वस्ति) सुखस्वरूप (रयिम्) धन को (नशते) प्राप्त होता है ॥११॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो आप विद्या और विनय से प्रजाओं को पुत्र आदि ऐश्वर्यों से युक्त करें तो ये प्रजायें आपका अति सत्कार करें ॥११॥

इस सूक्त में राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में चौथा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकादशर्चस्य पञ्चमस्य सूक्तस्य वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः । आप्रं देवता । १ । ५ । ६ । ७ । ९ । १० गायत्री । ३ । ८ निचृद्गायत्री । ११ विराड्गायत्री । ४ पिपीलिकामध्या । गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । २ आर्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचा वाले पञ्चम सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन । अग्नये जातवेदसे ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आप लोग (जातवेदसे) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (सुसमिद्धाय) उत्तम प्रकार प्रदीप्त और (शोचिषे) पवित्र करने वाले (अग्नये) अग्नि के लिये (तीव्रम्) उत्तम प्रकार शुद्ध अर्थात् साफ किये (घृतम्) घृत का (जुहोतन) होम करो ॥१॥

भावार्थः—जो अध्यापक जन पवित्र अन्तःकरण वालों में विद्या का संस्कार डालते हैं वे सूर्य्य के सदृश प्रताप से युक्त होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

नराशंसः सुषूदतीमं यज्ञमदाभ्यः । कविर्हि मधुहस्त्यः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अदाभ्यः) निष्कपट (मधुहस्त्यः) मधुर हस्त वालों में श्रेष्ठ (नराशंसः, मनुष्यों से प्रशंसा किया गया (कविः) बुद्धिमान् जन (हि) जिस कारण (इमम्) इस (यज्ञम्) विद्या के प्रचार नामक व्यवहार को (सुषूदति) अमृत के सदृश टपकाता है इस कारण वह पूर्ण सुखयुक्त होता है ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वान् ! जैसे गौ सबके सुख के लिये दुग्ध देती है वैसे सबके सुख के लिये सत्यविद्या के उपदेशों को निरन्तर वर्षाइये ॥२॥

अब राज विषय को कहते हैं ॥

ईळितो अग्न आ वहेन्द्रं चित्रमिह प्रियम् । सुखै रथेभिरूतये ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) आत्मप्रकाशस्वरूप (ईळितः) प्रशंसा किये गये आप (इह) इस संसार में (सुखैः) सुखकारक (रथेभिः) वाहनों से (ऊतये) रक्षण आदि के लिये (चित्रम्) अद्भुत (प्रियम्) मनोहर (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य को (आ, वह) सब प्रकार से प्राप्त कीजिये ॥३॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त हो के प्रजा के रक्षण के लिये सर्वत्र भ्रमण कीजिये ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ऊर्णम्रदा वि प्रथस्वाभ्य१र्का अनूषत । भवा नः शुभ्र सातये ॥४॥

पदार्थः - हे (शुभ्र) शुद्ध आचरण करने वाले राजन् आप (सातये) दायविभाग के लिये (वि, प्रथस्व) प्रसिद्ध कीजिये और हम लोगों के लिये सुखकारी (भवा) हूजिये । हे (ऊर्णम्रदाः) रक्षकों के सहित मर्दन करने और (अर्काः) मन्त्र और अर्थ के जानने वाले आप लोगो (नः) हम लोगों को सम्पूर्ण विद्याओं से सम्पन्न (अभि, अनूषत) कीजिये ॥४॥

भावार्थः—राजा और राजपुरुष विभाग करके अपने अपने अंश अर्थात् हिस्से को ग्रहण करें और प्रजाओं के भाग प्रजाओं के लिये देवें ॥४॥

अब गृहाश्रम विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

देवीर्द्वारो वि श्रयध्वं सुप्रायणा न ऊतये । प्रप्र यज्ञं पृणीतन ॥५॥

पदार्थः हे पुरुषो तुम (सुप्रायणाः) उत्तम प्रकार गृहों में प्रवेश हो जिन से ऐसी (देवीः) श्रेष्ठ और शुद्ध (द्वारः) द्वारों के सदृश सुख की कारणभूत उत्तम

स्त्रियों का (वि, श्रयध्वम्) विशेष करके सेवन करो और (नः) हम लोगों के (ऊतये) रक्षण आदि के लिये (यज्ञम्) गृहाश्रमव्यवहार को (प्रप्र, पृणीतन) पुष्ट करो ॥५॥

भावार्थः – यदि तुल्य गुण कर्म स्वभाव वाले स्त्री पुरुष विवाह कर के गृहाश्रम का आरम्भ करें तो पूर्ण सुख पावें ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

सुप्रतीके वयोवृधा यह्वी ऋतस्य मातरा । दोषामुषासमीमहे ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (सुप्रतीके) उत्तम विश्वास करने (वयोवृधा) सुन्दर जीवन को बढ़ाने और (यह्वी) बड़े (ऋतस्य) सत्य के (मातरा) आदर देने वाले (दोषाम्) रात्रि और (उषासम्) दिन की (ईमहे) याचना करते हैं वैसे इनकी आप लोग भी याचना करो ॥६॥

भावार्थः – जैसे रात्रि और दिन एक साथ ही वर्त्तमान हैं वैसे ही जिन्होंने विवाह किया ऐसे स्त्री पुरुष वर्त्ताव करें ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वातस्य पत्मन्नीळिता दैव्या होतारा मनुषः ।

इमं नो यज्ञमा गतम् ॥७॥

पदार्थः—हे (ईळिता) प्रशंसित (दैव्याः) श्रेष्ठ गुणों में उत्पन्न (होतारा) दाता जनो आप दोनों (वातस्य) वायु के (पत्मन्) गिरते हैं जिस में उस मार्ग में (नः) हम लोगों के (इमम्) इस (यज्ञम्) मिलने योग्य व्यवहार को (मनुषः) और मनुष्यों को (आ, गतम्) प्राप्त होवें ॥७॥

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों धर्म्मसम्बन्धी कर्म्म के आचरण से प्रशंसित होकर इस गृहाश्रमव्यवहार को सिद्ध करो ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः । बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अस्रिधः) नहीं नाश करने वाली (इळा) प्रशंसित विद्या (सरस्वती) वाणी (मही) भूमि (मयोभुवः) सुख को कराने वाली (तिस्रः) तीन (देवीः) श्रेष्ठ गुणवती (बर्हिः) उत्तम गृहाश्रम को (सीदन्तु) प्राप्त हों वैसे ही आप लोग भी प्राप्त होओ ॥८॥

भावार्थः—हे स्त्री और पुरुषो ! आप लोग विद्या, उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी और भूमि के राज्य को सुख के लिये प्राप्त हूजिये ॥८॥

अब राजप्रजा विषय को कहते हैं ॥

शिवस्त्वंष्टरि॒हा गंहि वि॒भुः पोषं उ॒त त्मना॑ । य॒ज्ञेयंज्ञे न॒ उद॑व ॥९॥

पदार्थः—हे (त्वष्टः) सब दुःखों के नाश करने वाले राजन् (इह) इस स्थल में कि (पोषे) जिस में पुष्ट हों (विभुः) व्यापक परमेश्वर के सदृश (शिवः) मङ्गलकारी होते हुए (त्मना) आत्मा से (यज्ञेयज्ञे) मेल करने मेल करने योग्य व्यवहार में (आ, गहि) प्राप्त होओ (उत) और (नः) हम लोगों की (उत्, अव) उत्तम प्रकार रक्षा करो ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०– हे मनुष्यो ! आप लोग परमेश्वर के सदृश वर्त्ताव करके सब के कल्याण को करो ॥९॥

अब विद्या ग्रहण विषय को कहते हैं ॥

यत्र॒ वेत्थ॑ वनस्पते दे॒वानां॒ गुह्या॒ नामा॑नि ।
तत्र॑ ह॒व्यानि॑ गामय ॥१०॥

पदार्थः— हे (वनस्पते) वन के पालन करने वाले आप (यत्र) जिसमें (देवानाम्) विद्वानों के (गुह्या) गुप्त (नामानि) नाम (वेत्थ) जानते हैं (तत्र) वहां (हव्यानि) देने और लेने योग्य वस्तुओं को (गामय) पहुंचाइये ॥१०॥

भावार्थः—जो विद्वानों के हृदयों में स्थित और विद्या के प्रभाव से उत्पन्न हुए नामों को जानते हैं वे बहुत सुख मनुष्यों को प्राप्त कराते हैं ॥१०॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स्वाहा॒ऽग्नये॒ वरु॑णाय॒ स्वाहेन्द्रा॑य म॒रुद्भ्यः॑ ।
स्वाहा॑ दे॒वेभ्यो॑ ह॒विः ॥११॥

पदार्थः— हे मनुष्यो आप लोगों को चाहिये कि (वरुणाय) श्रेष्ठ के और (अग्नये) विजुली आदि की विद्या के लिये (स्वाहा) सत्य वाणी (इन्द्राय) ऐश्वर्य और (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये (स्वाहा) सत्य क्रिया तथा (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (हविः) देने योग्य वस्तु और (स्वाहा) श्रेष्ठ कर्म्म का प्रयोग करो ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य विद्या और श्रेष्ठ कर्म्म से अग्नि की विद्या को ग्रहण कर विद्वानों का सत्कार करके मनुष्यों के हित को निरन्तर करें ॥११॥

इस सूक्त में विद्वान्, राजा, गृहाश्रम, राजविषय और विद्याग्रहण का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में पांचवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य षष्ठस्य सूक्तस्य वसुश्रुत आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ८ । ९ निचृत्पङ्क्तिः । २ । ५ पङ्क्तिः । ७ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ । ४ स्वराड्बृहती । ६ । १० भुरिग्बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब दश ऋचावाले छठे सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्निविषय को कहते हैं ॥

अग्निं तं मन्ये यो वसुरस्तं यं यन्ति धेनवः । अस्तमर्वन्त आशवोऽस्तं नित्यासो वाजिन इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१॥

पदार्थः – हे विद्वन् (यः) जो (वसुः) सब स्थानों में रहने वाला (यम्) जिस (अस्तम्) फेंके अर्थात् काम में लाये गए (अग्निम्) अग्नि को और (धेनवः) गौयें जिस (अस्तम्। प्रेरणा किये गए को तथा (अर्वन्तः) जाते हुए और (आशवः) शीघ्र चलने वाले पदार्थ और (नित्यासः) नहीं नाश होने वाले (वाजिनः) वेग से युक्त पदार्थ जिस (अस्तम्) प्रेरणा किये गए को (यन्ति) प्राप्त होते हैं (तम्) उस को मैं (मन्ये) मानता हूं उस की विद्या से आप (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिये (इषम्) अन्न को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! यदि आप बिजुली आदि रूपवान् और सब कहीं अभिव्याप्त अग्नि को युक्ति से चलावें तो यह स्वयं वेगवान् हो कर औरों को भी शीघ्र चलाता है ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

सो अग्निर्यो वसुर्गृणे सं यमायन्ति धेनवः । समर्वन्तो रघुद्रुवः सं सुजातासः सूरय इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वन् (यः) जो (वसुः) धनरूप (यम्) जिस को (धेनवः) वाणियां (सम्, आयन्ति) अच्छे प्रकार प्राप्त होती हैं और जिस को (रघुद्रुवः) थोड़ा दौड़ने वाले (अर्वन्तः) वेगवान् पदार्थ (सम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होते हैं और जिस को (सुजातासः) उत्तम प्रकार प्रसिद्ध (सूरयः) विद्वान् जन (सम्) अच्छे प्रकार प्राप्त

होते हैं और जिस की मैं (गृणे) प्रशंसा करता हूं (सः) वह (अग्निः) अग्नि है उसके प्रयोग से (स्तोतृभ्यः) अध्यापकों के लिये (इषम्) अन्न को (आ, भर) सब प्रकार धारण कीजिये ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग अग्नि आदि पदार्थ के विज्ञान से चतुर होकर अध्यापकों के लिये ऐश्वर्य की प्राप्ति कराइये ॥२॥

फिर अग्निविषय को कहते हैं ॥

अग्निर्हि वाजिनं विशे ददाति विश्वचर्षणिः ।
अग्नी राये स्वाभुवं स प्रीतो याति वार्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥३॥

पदार्थः- हे विद्वन् ! जो (विश्वचर्षणिः) संसार का प्रकाश करने वाला (अग्निः) अग्नि (हि) जिस से (विशे) प्रजा के लिये (वाजिनम्) बहुत वेग वाले को (ददाति) देता है और जो (अग्निः) अग्नि (राये) धन के लिये (स्वाभुवम्) स्वयं उत्पन्न होने वाले को (याति) प्राप्त होता है उस विद्या से (सः) वह आप (प्रीतः) कामना किये गए (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिये (वार्य्यम्) स्वीकार करने योग्य (इषम्) अन्न आदि का (आ, भर) धारण कीजिये ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! अग्नि ही उत्तम प्रकार साधित किया गया सुख देने वाला होता है जिस से आप लोग ऐश्वर्य की वृद्धि करो ॥३॥

अब अग्निविद्या के जानने वाले विद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

आ ते अग्न इधीमहि द्युमन्तं देवाजरम् ।
यद्ध स्या ते पनीयसी समिद्दीदयति द्यवीषं स्तोतृभ्य आ भर ॥४॥

पदार्थः—हे (देव) सुख के देने वाले (अग्ने) विद्वन् आप (द्युमन्तम्) प्रकाशित (अजरम्) जरावस्था से रहित अग्नि को प्रज्वलित करते हो और (यत्) जो (ते) आप की (पनीयसी) अतीव प्रशंसा करने योग्य (समित्) समिध् है (स्या) वह (ते) आप के (द्यवि) प्रकाश में (दीदयति) प्रज्वलित की जाती है और जिस से (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिये (इषम्) अन्न आदि को (ह) निश्चय से हम लोग (आ, इधीमहि) प्रकाशित करें उस से स्तुति करने वालों के लिये अन्न आदि को आप (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥४॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! जिस अग्नि आदि की विद्या को आप जानते हैं और जिस विद्या से आप की प्रशंसा होती है उस का हम लोगों को बोध दीजिये ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य शोचिषस्पते ।

सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यं हूयत इषं स्तोतृभ्य आ भर ॥५॥

पदार्थः—हे (शोचिषः पते) प्रकाश के स्वामिन् (सुश्चन्द्र) अच्छे सुवर्ण से युक्त (दस्म) दुःख के नाश करने वाले (विश्पते) प्रजाओं के पालक (अग्ने) विद्वान् राजन् (शुक्रस्य) शुद्ध (ते) आप की (ऋचा) प्रशंसा से (हविः) देने योग्य पदार्थ (आ) सब प्रकार से (हूयते) दिया जाता है और हे (हव्यवाट्) देने योग्य वस्तु के देने वाले (तुभ्यम्) आप के लिये सुख दिया जाता है वह आप (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिये (इषम्) अन्न को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥५॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग अग्नि आदिकों से कार्य्यों को सिद्ध करते हैं उनके काम सिद्ध होते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

प्रो त्ये अग्नयोऽग्निषु विश्वं पुष्यन्ति वार्य्यम् ।

ते हिन्विरे त इन्विरे त इषण्यन्त्यानुषगिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अग्नयः) अग्नि (अग्निषु) अग्नि आदि पदार्थों में वर्तमान हैं (त्ये) वे (वार्य्यम्) स्वीकार करने योग्य (विश्वम्) सब जगत् को (प्रो, पुष्यन्ति) पुष्ट करते हैं (ते) वे स्वीकार करने योग्य पदार्थ की (हिन्विरे) वृद्धि कराते हैं (ते) वे (इन्विरे) व्याप्त होते हैं और (ते) वे कार्य्यों के सिद्ध करने वाले हैं उन को जान के जो (आनुषक्) अनुकूलता से (इषण्यन्ति) अन्न आदि की इच्छा करते हैं उन की विद्या से (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिये आप (इषम्) विज्ञान को (आ, भर) धारण कीजिये ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो पृथिवी आदि में अग्नि आदि पदार्थ हैं उन को जान के फिर ईश्वर को जानो ॥६॥

फिर अग्निविद्या के उपदेश को कहते हैं ॥

तव त्ये अग्ने अर्चयो महि व्राधन्त वाजिनः ।

ये पत्वभिः शफानां व्रजा भुरन्त गोनामिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (ये) जो (गोनाम्) गौओं के (शफानाम्) खुरों के (पत्वभिः) गमनों से (व्रजा) वेगों को (भुरन्त) धारण करते हैं और जो (महि)

बड़े (अर्चयः) तेज (वाजिनः) वेग वाले (व्राधन्त) बढ़ते हैं (त्ये) वे (तव) आप के कार्य्य सिद्ध करने वाले हैं उनके विज्ञान से (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिये (इषम्) अन्न को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥७॥

भावार्थः—जैसे घोड़े और गौयें पैरों से दौड़ती हैं वैसे ही अग्नि के तेज शीघ्र चलते हैं और जो अग्न्यादिकों के संप्रयोग करने को जानते हैं उन की सब प्रकार वृद्धि होती है ॥७॥

अब राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नवा॑ नो अग्न॒ आ भ॑र स्तो॒तृभ्यः॑ सुक्षि॒तीरिषः॑ ।

ते स्या॑म॒ य आ॑नृचुस्त्वादू॑तासो॒ दमे॑दम॒ इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) राजन् (ये) जो (त्वादूतासः) त्वादूतास अर्थात् आप दूत जिन के ऐसे हम लोग आप का (आनृचुः) सत्कार करते हैं उन (नः) हम (स्तोतृभ्यः) धार्मिक विद्वानों के लिये आप (सुक्षितीः) सुन्दर पृथिवी वा मनुष्य विद्यमान जिनमें ऐसे (नवाः) नवीन (इषः) अन्न आदि को (आ, भर) धारण कीजिये जिससे (ते) वे हम लोग उत्साहित (स्याम) होवें और आप (स्तोतृभ्यः) सुपात्र अर्थात् सज्जन विद्वानों के लिये (दमेदमे) घर घर में (इषम्) उत्तम इच्छा को (आ, भर) धारण कीजिये ॥८॥

भावार्थः—वही राजा प्रशंसनीय होता है जो उत्तम भृत्य और अतुल ऐश्वर्य को सब के सुख के लिये धारण करता है और दूत और चारों अर्थात् गुप्त संदेश देने वालों से सब राज्य का सब समाचार जान के यथायोग्य प्रबन्ध करता है ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उ॒भे सु॑श्चन्द्र स॒र्पिषो॒ दर्वी॑ श्रीणीष आ॒सनि॑ ।

उ॒तो न॒ उत्पु॑पूर्या उ॒क्थेषु॑ शवसस्पत॒ इषं॑ स्तो॒तृभ्य॒ आ भ॑र ॥९॥

पदार्थः—हे (सुश्चन्द्र) उत्तम सुवर्ण आदि ऐश्वर्य से युक्त (शवसः, पते) सेना के स्वामी जो आप (उभे) दोनों (दर्वी) पाक करने के साधनों अर्थात् चम्मचों को इकट्ठे करके (आसनि) मुख में अर्थात् अग्निमुख में (सर्पिषः) घृत आदि का (श्रीणीषे) पाक करते हो (उतो) और उस से (नः) हम लोगों को (उत्, पुपूर्याः) उत्तमता से शोभित करें वा पालें वह आप (उक्थेषु) प्रशंसित धर्म्मसम्बन्धी कर्म्मों में

(स्तोतृभ्यः) पढ़ाने और पढ़ने वालों के लिये (इषम्) अन्न का (आ, भर) धारण करें ॥९॥

भावार्थः—जो राजा सेना के भोजन के उत्तम प्रबन्ध को और आरोग्य के लिये वैद्यों को रखता है वही प्रशंसित होकर राज्य बढ़ाता है ॥९॥

फिर राजविषय को कहते हैं ॥

एवाँ अग्निमजुर्यमुर्गीर्भिर्यज्ञेभिरानुषक् ।
दधदस्मे सुवीर्यमुत त्यदाश्वश्व्यमिषं स्तोतृभ्य आ भर ॥१०॥

पदार्थः—हे (शवसस्पते !) सेना के स्वामिन् जो (गीर्भिः) वाणियों और (यज्ञेभिः) संगत कर्म्मों से (आश्वश्व्यम्) घोड़ों के सदृश वेग आदि गुणों से युक्त (सुवीर्यम्) उत्तम पराक्रम वाले (अग्निम्) अग्नि को (आनुषक्) अनुकूलता से (अजुर्यमुः) प्रेरणा दें और नियमयुक्त करें (तेषु एव) उन्हीं में (अस्मे) हम लोगों के निमित्त आप उत्तम पराक्रमयुक्त व्यवहार को (दधत्) धारण करते हैं (उत) और भी (त्यत्) उस (इषम्) इष्ट व्यवहार को (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिये (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥१०॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो अग्नि आदि की विद्या को जान के अनेक विमान आदि वाहनों को बनाते हैं उनके लिये अन्न आदि देकर निरन्तर सत्कार कीजिये ॥१०॥

इस सूक्त में अग्नि विद्वान् और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में छठा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य सप्तमस्य सूक्तस्येष आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ विराडनुष्टुप् । २ अनुष्टुप् । ३ भुरिगनुष्टुप् । ४ । ५ । ८ । ९ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ६ । ७ स्वराडुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । १० निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब दश ऋचा वाले सातवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मित्रता को कहते हैं ॥

सखायः सं वः सम्यञ्चमिषं स्तोमं चाग्नये ।
वर्षिष्ठाय क्षितीनामूर्जो नप्त्रे सहस्वते ॥१॥

पदार्थः—हे (सखायः) मित्र हुए आप लोग जो (क्षितीनाम्) मनुष्यों के बीच (वः) आप लोगों के लिये (वर्षिष्ठाय) अत्यन्त वृष्टि करने वाले के लिये और (ऊर्जः) पराक्रम युक्त के (नप्त्रे) नाती के सदृश वर्त्तमान (सहस्वते) बलयुक्त (अग्नये) अग्नि के लिये (सम्यञ्चम्) श्रेष्ठ (स्तोमम्) प्रशंसा और (इषम्) अन्न आदि को (च) भी (सम्) अच्छे प्रकार धारण करते हैं उनका सदा सत्कार करो ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! इस संसार में आप लोग मित्रभाव से वर्त्ताव करके मनुष्य आदि प्रजा के हित के लिये अग्नि आदि की विद्या को प्राप्त होके अन्य जनों के लिये शिक्षा दीजिये ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

कुत्रा॑ चि॒द्यस्य॒ समृ॑तौ र॒ण्वा नरो॑ नृ॒षद॑ने ।
अर्ह॑न्तश्चि॒द्यमि॑न्ध॒ते सं॑ज॒नय॑न्ति ज॒न्तव॑: ॥२॥

पदार्थः—हे (नरः) नायक अर्थात् कार्य्यों में अग्रगामी मुख्यजनो ! जो (जन्तवः) जीव (यस्य) जिस की (समृतौ) अच्छे प्रकार यथार्थ बोध से युक्त बुद्धि में (रण्वाः) रमण करते और (नृषदने) मनुष्यों के स्थान में (चित्) भी (अर्हन्तः) सत्कार करते हुए (यम्) जिस को (इन्धते) प्रकाशित कराते और (सञ्जनयन्ति) उत्तम प्रकार उत्पन्न करते हैं वे (चित्) भी (कुत्रा) किसी में अनादर को नहीं प्राप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो जीव सब मनुष्यों के हित में वर्त्तमान हुए यथाशक्ति परोपकार करते हैं वे योग्य हैं ॥२॥

अब विद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

सं यदि॒षो वना॑महे॒ सं ह॒व्या मानु॑षाणाम् ।
उ॒त द्यु॒म्नस्य॒ शव॑स ऋ॒तस्य॑ र॒श्मिमा द॑दे ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (मानुषाणाम्) मनुष्यों के बीच (द्युम्नस्य) धन वा यश तथा (ऋतस्य) सत्य का (शवसा) सेना से (यत्) जैसे (हव्या) देने और लेने योग्य (इषः) अन्न आदि सामग्रियों का हम लोग (सम्, वनामहे) अच्छे प्रकार सेवन करें (उत) वा (रश्मिम्) प्रकाश को मैं (सम्, आ, ददे) ग्रहण करता हूं वैसे आप लोग भी करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा०—जो विद्वान् जन पक्षपात को छोड़ के यथायोग्य व्यवहार कर मनुष्यों के आत्माओं में विद्याप्रकाश को धारण करें तो सब योग्य होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

सः स्मां कृणोति केतुमा नक्तं चिद्दूर आ सते ।

पावको यद्वनस्पतीन् प्र स्मां मिनात्यजरः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (अजरः) नाश से रहित (पावकः) पवित्र करने वाला (वनस्पतीन्) वनों के पालने वालों का (स्मा) ही (आ, कृणोति) अनुकरण करता (नक्तम्) रात्रि में (चित्) भी (दूरे) दूर देश में (सते) सत्पुरुष के लिये (केतुम्) बुद्धि देता और दूर स्थान में वर्त्तमान हुआ (स्मा) ही दुष्ट और दोषों का (प्र,आ, मिनाति) अच्छे प्रकार नाश करता है (सः) वह सर्वत्र सत्कृत होता है ॥४॥

भावार्थः- हे मनुष्यो ! जो विद्वान् दूर भी वर्त्तमान हुए रात्रि दिन अग्नि वा वनस्पतियों के सदृश परोपकारी होते हैं वे ही संसार के भूषण अलंकार होते हैं ॥४॥

फिर विद्वानों के विषय को कहते हैं ॥

अव स्म यस्य वेषणे स्वेदं पथिषु जुह्वति ।

अभीमह स्वजेन्यं भूमा पृष्ठेव रुरुहुः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यस्य) जिस के (वेषणे) व्याप्त व्यवहार के निमित्त (पथिषु) मार्गों में वीर (स्वेदम्) जल को (स्म) ही (अव, जुह्वति) बहाते और (भूमा) पृथिवी के (अह) निश्चित (स्वजेन्यम्) अपने से जीतने योग्य स्थान को (पृष्ठेव) पृष्ठ के सदृश (अभि, रुरुहुः) अभिवर्द्धन करते अर्थात् उस पर चढ़ते हैं उस का खोज, (ईम्) वैसे ही आप लोग भी करो ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य मार्गों में व्याप्त व्यवहारों को जान कर कार्यों को सिद्ध करते हैं वे सुखों को प्राप्त होते हैं ॥५॥

फिर विद्वानों के विषय को कहते हैं ॥

यं मर्त्यः पुरुस्पृहं विदद्विश्वस्य धायसे ।

प्र स्वादनं पितूनामस्ततातिं चिदायवे ॥६॥

पदार्थः - (मर्त्यः) मनुष्य (आयवे) मनुष्य के लिये और (विश्वस्य) संसार के (धायसे) धारण के लिये (यम्) जिस (पुरुस्पृहम्) बहुतों से प्रशंसा करने योग्य (पितूनाम्) अन्नों के (स्वादनम्) स्वाद और (अस्ततातिम्) गृहस्थ को (चित्) भी (प्र, विदत्) प्राप्त होवे उसको परोपकार के लिये धारण करे ॥६॥

भावार्थः- मनुष्य को जिस जिस उत्तम वस्तु और ज्ञान की प्राप्ति होवे उस उस को सब के सुख के लिये धारण करे ॥६॥

अब राज विषय को कहते हैं ॥

स हि ष्मा धन्वाक्षितं दाता न दात्या पशुः ।

हिरिश्मश्रुः शुचिदन्नृभुरनिभृष्टतविषिः ॥७॥

पदार्थः—जो (हिरिश्मश्रुः) सुवर्ण के तुल्य डाढी और (शुचिदन्) पवित्र दांतों से युक्त (अनिभृष्टतविषिः) नहीं जली सेना जिस की ऐसा (ऋभुः) मेधावी (दाता) दाता (पशुः) पशु (न) जैसे (धन्व) अन्तरिक्ष जो (आक्षितम्) सब ओर से अविनाशी उस को वैसे दुष्टों को (आ, दाति) ग्रहण करता है (सः, हि, स्मा) वही निश्चित सुखपूर्वक बढ़ता है ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—जैसे नहीं देने वाला धान्य को कटवा कर भूसे को अलग कर के अन्न का ग्रहण करता है और जैसे पशु खुरों से धान्य आदि को तोड़ता है वैसे ही राजा साहस करने वाले दुष्ट मनुष्यों का निरन्तर ताड़न करे ॥७॥

अब राजशिक्षा देने के विषय को कहते हैं ॥

शुचिः ष्म यस्मा अत्रिवत्प्र स्वधितीव रीयते ।

सुषूरसूत माता क्राणा यदानशे भगम् ॥८॥

पदार्थः—(यत्) जो (शुचिः) पवित्र (क्राणा) करती हुई (माता) माता (यस्मै) जिस के लिये (स्वधितीव) वज्र के धारण करने वाले के सदृश और (अत्रिवत्) अविद्यमान तीन वाले के सदृश (सुषूः) उत्तम प्रकार उत्पन्न करने वाली (असूत) उत्पन्न करती और (प्र, रीयते) मिलती है (स्म) वही (भगम्) ऐश्वर्य को (आनशे) प्राप्त होती है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो माता पिता ब्रह्मचर्य्य किये हुए विधि पूर्वक सन्तानों को उत्पन्न करें तो सुख और ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥८॥

अब अग्नि शब्दार्थ विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ यस्ते सर्पिरासुतेऽग्ने शमस्ति धायसे ।

ऐषु द्युम्नमुत श्रव आ चित्तं मर्त्येषु धाः ॥९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (यः) जो (धायसे) धारण करने वाले के लिये (ते) आप का (सर्पिरासुते) घृतों से सब प्रकार उत्पन्न किये गये में (शम्) सुख (अस्ति) है उसको ग्रहण करता (एषु) इन (मर्त्येषु) मनुष्यों में (द्युम्नम्) यश वा धन को (आ, धाः) धारण करता (श्रवः) अन्न को (आ) धारण करता (उत) और (चित्तम्) संज्ञान को (आ) धारण करता है उस के लिये आप ऐश्वर्य्य दीजिये ॥९॥

भावार्थः—जो कोई किसी के लिये विद्या, धन और विज्ञान को धारण करता है तो उस के लिये उपकार किया भी पुरुष प्रत्युपकार के लिये वैसे ही सत्कार को करे ॥९॥

अब अग्निशब्दार्थ राजविषय को कहते हैं ॥

इति॑ चि॒न्मन्यु॑म॒ध्रिज॒स्त्वादा॑त॒मा प॒शुं द॑दे ।

आद॑ग्ने॒ अपृ॑ण॒तोऽत्रिः॑ सासह्या॒द्दस्यू॑नि॒षः सा॑सह्या॒न्नॄन् ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! (अध्रिजः) धारण करने वालों में उत्पन्न आप (मन्युम्) क्रोध को (सासह्यात्) निरन्तर सहें (अत्रिः) निरन्तर पुरुषार्थी आप (अपृणतः) नहीं पालन करते हुए (दस्यून्) दुष्ट साहस करने वाले चोरों को (सासह्यात्) निरन्तर सहें और (आत्) सब ओर से (इषः) इच्छाओं और (नॄन्) नीति से युक्त मनुष्यों को निरन्तर सहें (इति) इस प्रकार वर्त्तमान (चित्) भी आप से (त्वादातम्) आप से देने योग्य (पशुम्) पशु को मैं (आ, ददे) ग्रहण करता हूं ॥१०॥

भावार्थः—जो राजजन क्रोधादि और दुष्ट व्यसनों का निवारण कर के चोर डाकुओं को जीत कर श्रेष्ठ पुरुषों से किये गये अपमान को सहें वे अखण्डित राज्ययुक्त होते हैं ॥१०॥

इस सूक्त में मित्रत्व विद्वान् राजा और अग्नि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये

यह पंचम मण्डल में सप्तम सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्याष्टमस्य सूक्तस्येष आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ५ स्वराट्त्रिष्टुप् । २ भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । ४ । ७ निचृज्जगती । ६ विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले आठवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्निशब्दार्थ गृहाश्रमी के विषय को कहते हैं ॥

त्वामग्न ऋतायवः समीधिरे प्रत्नं प्रत्नास ऊतये सहस्कृत ।
पुरुश्चन्द्रं यजतं विश्वधायसं दमूनसं गृहपतिं वरेण्यम् ॥१॥

पदार्थः— हे (सहस्कृत) बल किये (अग्ने) और ब्रह्मचर्य्य किये हुए गृहाश्रमी (प्रत्नासः) प्राचीन विद्वान् जन (ऋतायवः) सत्य की इच्छा करने वाले (ऊतये) रक्षण आदि के लिये जिस (प्रत्नम्) प्राचीन (पुरुश्चन्द्रम्) बहुत सुवर्ण आदि से युक्त (यजतम्) आदर करने योग्य (विश्वधायसम्) सब व्यवहार और धन के धारण तथा (दमूनसम्) इन्द्रिय और अन्तःकरण के दमन करने वाले (वरेण्यम्) अतीव स्वीकार करने योग्य और श्रेष्ठ (गृहपतिम्) गृहस्थ व्यवहार के पालन करने वाले (त्वाम्) आप को (सम्, ईधिरे) उत्तम प्रकार प्रकाशित करावें। वह आप इन का सत्कार करो ॥१॥

भावार्थः— हे मनुष्यो ! जो आप लोगों की विद्या और दान आदिकों से वृद्धि करते हैं उन का आप लोग निरन्तर सत्कार करो ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्वामग्ने अतिथिं पूर्व्यं विशः शोचिष्केशं गृहपतिं नि षेदिरे ।
बृहत्केतुं पुरुरूपं धनस्पृतं सुशर्म्माणं स्ववसं जरद्विषम् ॥२॥

पदार्थः— हे (अग्ने) गृहस्थ ! जो (विशः) प्रजायें (अतिथिम्) सदा उपदेश देने के लिये घूमते हुए के सदृश वर्त्तमान (पूर्व्यम्) प्राचीनों से किये गये विद्वान् और (शोचिष्केशम्) केशों के सदृश न्यायव्यवहार के प्रकाशों से युक्त (बृहत्केतुम्) बड़ी बुद्धिवाले (पुरुरूपम्) बहुत रूपों से युक्त सुन्दर आकृतिमान् (धनस्पृतम्, धन की इच्छा से युक्त (सुशर्माणम्) प्रशंसित गृह वाले (स्ववसम्) श्रेष्ठ रक्षण आदि जिन के (जरद्विषम्) वा निवृत्त हुआ शत्रुरूपी विष जिन का ऐसे (गृहपतिम्) गृह-व्यवहार के पालन करने वाले (त्वाम्) आप को (नि, षेदिरे) स्थित करती हैं उन का आप निरन्तर सत्कार करें ॥२॥

भावार्थः— गृहस्थ जन सदा ही प्रजा का पालन, अतिथि की सेवा, उत्तम गृह तथा विद्या का प्रचार, बुद्धि की वृद्धि, सब प्रकार से रक्षा, तथा राग और द्वेष का त्याग निरन्तर करें ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्वामग्ने मानुषीरीळते विशो होत्राविदं विविचिं रत्नधातमम् ।
गुहा सन्तं सुभग विश्वदर्शतं तुविष्वणसं सुयजं घृतश्रियम् ॥३॥

पदार्थः—हे (सुभग) सुन्दर ऐश्वर्य्य से युक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (मानुषीः) मनुष्य सम्बन्धिनी (विशः) प्रजायें जिस (होत्राविदम्) हवनों के गुणों को जानने वाले (विविचिम्) विवेचक विभाग करने (रत्नधातमम्) रत्नों के अतीव धारण करने (विश्वदर्शतम्) संसार के प्रकाश करने और (तुविष्वणसम्) बहुतों की सेवा करने वाले (सुयजम्) उत्तम प्रकार यज्ञ करते जिस से उस (घृतश्रियम्) घृत का आश्रय करते वा घृत से शोभते हुए (गुहा) अन्तःकरण में (सन्तम्) अभिव्याप्त होकर स्थित (त्वाम्) आप को (ईळते) गुणों से प्रकाशित करती हैं उनको हम लोग भी जानें ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जिस विजुलीरूप अग्नि से जीवन और चेतनता होती है तद्वत् राजा को जान के सुख बढ़ाओ ॥३॥

अब अग्नि शब्दार्थ विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

त्वामग्ने धर्णसिं विश्वधा वयं गीर्भिर्गृणन्तो नमसोप सेदिम । स नो जुषस्व समिधानो अङ्गिरो देवो मर्त्तस्य यशसा सुदीतिभिः ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! आप जैसे हम लोग (गीर्भिः) वाणियों से (गृणन्तः) स्तुति करते हुए(विश्वधा) संसार के धारण करने वा (धर्णसिम्) अन्य को धारण करने वाले (त्वाम्) आप के (नमसा) सत्कार से (उप, सेदिम) समीप प्राप्त होवें और हे (अङ्गिरः) अङ्गों में रमते हुए (सः) वह (देवः) दाता (समिधानः) प्रकाशमान आप (मर्त्तस्य) मनुष्य के (सुदीतिभिः) उत्तम दानों से (यशसा) जल, अन्न वा धन से (नः) हम लोगों का (जुषस्व) सेवन करें वैसे (वयम्) हम लोग आप के समीप स्थित होवें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—सब प्रकार से यह सब का स्वभाव है जो जिस भाव से जिसको प्राप्त होवे और सेवन करें वैसा ही भाव और सेवन उसका होता है ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्वमग्ने पुरुरूपो विशेविशे वयो दधासि प्रत्नथा पुरुष्टुत । पुरूण्यन्ना सहसा वि राजसि त्विषिः सा ते तित्विषाणस्य नाधृषे ॥५॥

पदार्थः—हे (पुरुष्टुत) बहुतों से प्रशंसित (अग्ने) राजन् ! जिस से आप (वि, राजसि) विशेष प्रकाशमान हैं (सा) वह (तित्विषाणस्य) अग्नि ज्वाला के समान विद्या से प्रकाशमान (ते) आपकी (त्विषिः) दीप्ति है और वह (आधृषे) सब प्रकार से धृष्ट के लिये (न) जैसे वैसे (विशेविशे) प्रजाप्रजा के लिये (पुरूणि) बहुत (अन्ना) अन्नों को धारण करती है तथा जिससे (त्वम्) आप प्रजाप्रजा के लिये (पुरुरूपः) बहुत रूपवाले आप (प्रत्नथा) प्राचीन के सदृश (सहसा) बल से (वयः) जीवन को (दधासि) धारण करते हो उसको विशेषता से जानिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे अग्नि सब जगत् को धारण करता है वैसे सब मनुष्यों को विद्या के प्रकाश में धारण करो ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्वाम॑ग्ने स॒मिधा॑नं यविष्ठ्य दे॒वा दू॒तं च॑क्रिरे हव्य॒वाह॑नम् ।
उ॒रु॒ज्रय॑सं घृ॒तयो॑निमाहु॑तं त्वे॒षं चक्षु॑र्दधिरे चोद॒यन्म॑ति ॥६॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त युवाजनों में श्रेष्ठ (अग्ने) विद्वन् जैसे (देवाः) विद्वान् जन (हव्यवाहनम्) ग्रहण करने योग्य वाहनों को शीघ्र प्राप्त करने वाले (उरुज्रयसम्) बहुत वेगयुक्त (घृतयोनिम्) जल वा प्रदीप्त अथवा कारण है गृह जिसका (आहुतम्) जो सब ओर से शब्दायित (त्वेषम्) प्रदीप्त तथा (चोदयन्मति) बुद्धि को प्रेरणा करने और (चक्षुः) पदार्थों को दिखाने वाले (समिधानम्) प्रकाशमान अग्नि को (दधिरे) धारण करते और (दूतम्) सब ओर से व्यवहार साधक (चक्रिरे) करते हैं वैसे (त्वाम्) आप को हम लोग धारण करें ॥६॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्य विद्वानों के संग के विना अग्नियों के गुण और अग्नि आदि के संयोगों के गुणों को जानने योग्य नहीं होते हैं ॥६॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

त्वाम॑ग्ने प्र॒दिव॒ आहु॑तं घृ॒तैः सु॑म्न॒ायवः॑ सुष॒मिधा॒ समी॑धिरे ।
स वा॑वृधा॒न ओष॑धीभिरुक्षि॒तो॒३॒॑ऽभि ज्रया॑ंसि॒ पार्थि॑वा॒ वि ति॑ष्ठसे ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! जैसे (सुम्नायवः) अपने सुख की इच्छा करने वाले जन (घृतैः) प्रकाशित करने वाले साधनों और (सुषमिधा) उत्तम प्रकार प्रकाश करने वाले इन्धन के साथ (प्रदिवः) अत्यन्त प्रकाश से (आहुतम्) ग्रहण

किये गए जिनको (सम्, ईथिरे) उत्तम प्रकार प्रकाशित करते हैं (सः) वह (वावृधानः) निरन्तर बढ़ने वाले (उक्षितः) उत्तम प्रकार सींचे गये आप (ओषधीभिः) सोमलता और यवादिकों से (पार्थिवा) पृथिवी में विदित (अभि) सब ओर से (वयांसि) वेगयुक्त कर्मों को (वि, तिष्ठसे) विशेष करके स्थित करते हो वैसे (त्वाम्) आप को निरन्तर हम लोग सुख देवें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन सब पदार्थों से बिजुली की विद्या को उत्पन्न करते हैं वैसे विद्वान् जन सब से गुणों को ग्रहण करते हैं ॥७॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

पञ्चम मण्डल में अष्टम सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्थाष्टकारम्भः ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

अथ सप्तर्चस्य नवमस्य सूक्तस्य गय आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ स्वराडुष्णिक् । ३ । ४ भुरिगुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । २ निचृदनुष्टुप् । ६ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ स्वराड् बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ७ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब चतुर्थ अष्टक में सात ऋचा वाले नवम सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्न्यादि पदार्थों के गुणों को कहते हैं ॥

त्वाम॑ग्ने ह॒विष्म॑न्तो दे॒वं मर्ता॑स ईळते ।

मन्ये॑ त्वा जा॒तवे॑दसं॒ स ह॒व्या व॑क्ष्यानु॒षक् ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान जैसे (हविष्मन्तः) अच्छे दान आदि से युक्त (मर्त्तासः) मनुष्य (जातवेदसम्) उत्पन्न हुए पदार्थों को जानने वाले (देवम्) प्रकाशमान अग्नि की प्रशंसा करते हैं वैसे (त्वाम्) विद्वान् आप की

(ईळते) स्तुति करते हैं मैं जिन (त्वा) आप को (मन्ये) मानता हूं (सः) वह आप (हव्या) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (आनुषक्) अनुकूलता से (वक्षि) धारण करते हो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो अग्नि आदि के गुणों को ढूंढ़ते हैं वे ही विद्या के अनुकूल व्यवहारों को उत्पन्न करते हैं ॥१॥

अब विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

अग्निर्होता दास्वतः क्षयस्य वृक्तबर्हिषः ।
सं यज्ञासश्चरन्ति यं सं वाजासः श्रवस्यवः ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (होता) दाता (अग्निः) अग्नि के सदृश पुरुष (दास्वतः) देने वाले के स्वभाव से युक्त (वृक्तबर्हिषः) जल से रहित (क्षयस्य) स्थान के मध्य में वसता है वैसे (यम्) जिसको (श्रवस्यवः) अपने धन की इच्छा करने वाले (वाजासः) वेग से युक्त (यज्ञासः) मिलने योग्य जन (सम् चरन्ति) उत्तम प्रकार संचार करते हैं वह (सम्) उत्तम प्रकार जनाने वाला होता है ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य बड़े अवकाश वाले गृहों को रच के पुरुषार्थ से पदार्थविद्या को प्राप्त हों ॥२॥

फिर अग्निविषय को कहते हैं ॥

उत स्म यं शिशुं यथा नवं जनिष्टारणी ।
धर्त्तारं मानुषीणां विशामग्निं स्वध्वरम् ॥३॥

पदार्थः –(यथा) जैसे माता और पिता (नवम्) नवीन (शिशुम्) बालक को (जनिष्ट) उत्पन्न करते हैं वैसे (स्म, ही (यम्) जिसको (अरणी) काष्ठविशेषों के सदृश (मानुषीणाम्) मनुष्य आदि (विशाम्) प्रजाओं के (धर्त्तारम्) धारण करने वाले (उत) भी (स्वध्वरम्) उत्तम प्रकार अहिंसारूप धर्म को प्राप्त (अग्निम्) अग्नि को विद्वान् जन उत्पन्न करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे माता पिता श्रेष्ठ सन्तान को उत्पन्न करके सुख को प्राप्त होते हैं वैसे विद्वान् जन बिजुलीरूप अग्नि को उत्पन्न करके ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

उत स्म दुर्गृभीयसे पुत्रो न ह्वार्याणाम् ।
पुरू यो दग्धासि वनाग्ने पशुर्न यवसे ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वन् ! (ह्वार्याणाम्) कुटिलों के (पुत्रः) पुत्र के (न) सदृश (पुरु) बहुत को (दुर्गृभीयसे) दुःख से ग्रहण करते (स्म) ही हो (यः) जो अग्नि (वना) वनों को (वग्धा) जलाने वाले के सदृश (उत) भी (यवसे) खाने योग्य घास के लिये (पशुः) पशु के (न) सदृश है उस से पदार्थों को जानने वाले (असि) हो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो पदार्थविद्या के ग्रहण के लिये पुत्र और गौ के सदृश वर्त्तमान है वही अग्नि आदि की विद्या को जान सकता है ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अध स्म यस्यार्चयः सम्यक्संयन्ति धूमिनः । यदीमह त्रितो दिव्युप ध्मातेव धमति शिशीते ध्मातरी यथा ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिस अग्नि के (अर्चयः) तेज (धूमिनः) बहुत धूम से युक्त (संयन्ति) उत्तम प्रकार प्राप्त होते हैं (अध) इसके अनन्तर (यत्) जो (ईम्) सब ओर से (अह) निश्चय ग्रहण करने में (त्रितः) अच्छे प्रकार ले जाने वाला हुआ (दिवि) अन्तरिक्ष में (ध्मातेव) शब्द करने वाले के सदृश (उप, धमति) शब्द करता है और (यथा) जैसे (ध्मातरी) चलने वाले में (सम्यक्) उत्तम प्रकार (शिशीते) सूक्ष्म करता है उससे वैसे (स्म) ही कार्य्यों को सिद्ध करो ॥५॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! सब पदार्थविद्याओं से पहिले अग्निविद्या जाननी चाहिये ॥५॥

फिर मित्रभाव से उक्त विषय को कहते हैं ॥

तवाहमग्न ऊतिभिर्मित्रस्य च प्रशस्तिभिः ।
द्वेषोयुतो न दुरिता तुर्याम मर्त्यानाम् ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! (अहम्) मैं (मित्रस्य) मित्र (तव) आप की (ऊतिभिः) रक्षा आदिकों से और (प्रशस्तिभिः) प्रशंसाओं से (च) भी प्रशंसित होऊं वैसे आप हूजिये और सब हम लोग मिल कर (द्वेषोयुतः) द्वेषयुक्तों के (न) सदृश (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के (दुरिता) दुःख से प्राप्त हुए दोषों की (तुर्याम) हिंसा करें ॥६॥

भावार्थः – इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जैसे मित्र मित्र की प्रशंसा करता है और शत्रुजन हित का नाश करते हैं वैसेही मित्रता करके मनुष्यों के दुःखों का हम नाश करें ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तं नो॑ अग्ने अ॒भी नरो॑ र॒यिं स॑हस्व॒ आ भ॑र ।
स क्षे॑पय॒त्स पो॑षय॒द्भुव॒द्वाज॑स्य सा॒तय॑ उ॒तैधि॑ पृत्सु नो॑ वृ॒धे ॥७॥

पदार्थः—हे (सहस्वः) बहुत सहन आदि गुणों से युक्त (अग्ने) विद्वन् ! जो आप (नः) हम लोगों के (नरः) नायक अर्थात् कार्य्यों में अग्रगामियों और (रयिम्) धन को (अभी) सन्मुख (आ, भर) सब प्रकार धारण करें (तम्) उन का हम लोग सत्कार करें (सः) वह आप हम लोगों की (क्षेपयत्) प्रेरणा करें और (पोषयत्) पोषण पालन करें (सः) वह (वाजस्य) अन्न आदि के (सातये) संविभाग के लिये (भुवत्) होवें (उत) और (पृत्सु) संग्रामों में (नः) हम लोगों की (वृधे) वृद्धि के लिये (एधि) हूजिये ॥७॥

भावार्थः—सुकर्म्मों के जानने की इच्छा करने वालों को चाहिये कि विद्वानों के प्रति यह प्रार्थना करें कि आप लोग हम लोगों को श्रेष्ठ गुणों में प्रेरित करो और ब्रह्मचर्य्य आदि से पुष्ट करो और सत्य और असत्य के विभाग करने वाले और युद्धविद्या में चतुर जन हम लोगों की निरन्तर रक्षा करें ॥७॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में नवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य दशमस्य सूक्तस्य गय आत्रेय ऋषिः : अग्निर्देवता । १ । ६ निचृदनुष्टुप् । ५ अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः २ । ३ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ७ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले दशवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्निशब्दार्थविद्वद्विषय को कहते हैं ॥

अग्न॒ ओजि॑ष्ठ॒मा भ॑र द्यु॒म्नम॒स्मभ्य॑मध्रिगो ।
प्र नो॑ रा॒या परी॑णसा॒ रत्सि॒ वाजा॑य॒ पन्था॑म् ॥१॥

पदार्थः—हे (अध्रिगो) धारण करने वालों को प्राप्त होने वाले (अग्ने) विद्वन् ! आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (ओजिष्ठम्) अत्यन्त पराक्रमयुक्त

(द्यु॒म्नम्) यश वा धन को (आ, भर) चारों ओर से धारण कीजिये और (नः) हम लोगों को (परीणसा) बहुत (राया) धन से (वाजाय) विज्ञान के लिये (पन्थाम्) मार्ग को (प्र) प्राप्त होकर (रत्सि) रमते हो इस से सत्कार करने योग्य हो ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य अन्य जनों के श्रेष्ठ उपदेश से पुण्यकीर्त्ति को बढ़ाते वे धर्म्मसम्बन्धी यश वाले होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्वं नो॑ अग्ने अद्भुत॒ क्रत्वा॒ दक्ष॑स्य मं॒हना॑ ।

त्वे अ॑सु॒र्य१॒॑ मारु॑हत्क्रा॒णा मि॒त्रो न य॒ज्ञियः॑ ॥२॥

पदार्थः—हे (अद्भु॒त) आश्चर्ययुक्त उत्तम गुण कर्म्म और स्वभाव वाले (अग्ने) अध्यापक और उपदेशक (त्वम्). आप (क्रत्वा) बुद्धि से (दक्षस्य) चतुर विद्या और बलसे युक्त पुरुष के (मंहना) महत्त्व से जैसे (त्वे) आप में (असुर्य्यम्) असुरसंबन्धी कर्म (क्राणा) करता हुआ (मित्रः) मित्र (यज्ञियः) यज्ञ करने योग्य के (न) सदृश (आ, अरुहत्) बढ़ता है वैसे (नः) हम लोगों को बढ़ाइये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—वही उत्तम विद्वान् होता है जो सब के सत्कार के लिये विद्या का उपदेश देता है ॥२॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

त्वं नो॑ अग्न ए॒षां गयं॒ पुष्टिं॑ च॒ वर्धय ।

ये स्तोमे॑भि॒ः प्र सू॒रयो॒ नरो॑ म॒घान्या॑न॒शुः ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (ये) जो (नरः) नायक (सूरयः) विद्वान् जन (स्तोमेभिः) वेद में वर्त्तमान स्तुति के प्रकरणों से (मघानि) धनों को (प्र, आनशुः) प्राप्त होवें उनके साथ (त्वम्) आप (नः) हम लोगों और (एषाम्) इन के (गयम्) सन्तान तथा गृह वा धन (च) और (पुष्टिम्) पुष्टि की (वर्द्धय) वृद्धि कीजिये ॥३॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि यथार्थवक्ताओं के सहित सब मनुष्यों के सुख और बल को बढ़ावें ॥३॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

ये अ॑ग्ने चन्द्र ते॒ गिरः॑ शु॒म्भन्त्यश्व॑राधसः । शुष्मे॑भिः

शु॒ष्मिणो॒ नरो॑ दि॒वश्चि॒द्येषां॑ बृ॒हत्सु॑की॒र्तिर्बोध॑ति॒ त्मना॑ ॥४॥

पदार्थः—हे (चन्द्र) आनन्द देने वाले (अग्ने) विद्वन् ! (ते) आप की

(अश्वराधसः) बिजुली आदि पदार्थों की सिद्धि करने वाली (गिरः) धर्मसंबधिनी वाणियों को (ये) जो (शुष्मेभिः) बलों के साथ (शुष्मिणः) बली (विवः) कामना करते हुए (चित्) भी (नरः) मुख्य नायक जन (शुम्भन्ति) विराजते हैं और (येषाम्) जिन की इन वाणियों को (बृहत्, सुकीर्त्तिः) बड़ी उत्तम प्रशंसायुक्त आप (त्मना) आत्मा से (बोधति) जानते हैं वे मित्र हों ॥४॥

भावार्थः—जो विद्वान् सदृश गुणकर्म और स्वभाव वाले मित्र होकर अग्नि आदि पदार्थों की विद्याओं को परस्पर जनाते हैं वे सिद्ध मनोरथ वाले होते हैं ॥४॥

अब शिल्पविद्या विषयक विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

तव॒ त्ये अ॑ग्ने अ॒र्चयो॒ भ्राज॑न्तो यन्ति धृष्णु॒या ।

परि॑ज्मानो॒ न वि॒द्युतः॑ स्वा॒नो रथो॒ न वा॑ज॒युः ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! (तव) आपके संग से जो (अर्चयः) विद्या और विनय से प्रकाशित करते हुए (भ्राजन्तः) परस्पर एक दूसरे को प्रकाशित करते हुए (धृष्णुया) न्यायपूर्वक बोलने में ढीठ विद्वान् जन (परिज्मानः) सब ओर से भूमि के राज्य से युक्त (विद्युतः) बिजुलियों के (न) सदृश (वाजयुः) अपने वेग की इच्छा करने वाले के सदृश और (स्वानः) शब्द करते हुए (रथः) विमान आदि वाहनसमूह के (न) सदृश शिल्पविद्या को (यन्ति) प्राप्त होते हैं (त्ये) वे शीघ्र धनवान् होते हैं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो जन यथार्थ शिल्पविद्या को जानते हैं वे सर्वत्र व्याप्त बिजुली के समान विमान आदि वाहनों के सदृश शीघ्रगामी हो और सब प्रकार से धन को प्राप्त हो कर बहुत सुख को प्राप्त होते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

नू नो॑ अग्न ऊ॒तये॑ स॒बाध॑सश्च रा॒तये॑ ।

अ॒स्माका॑सश्च सू॒रयो॒ विश्वा॒ आशा॑स्तरी॒षणि॑ ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् राजन् ! जो (सबाधसः) बाध के सहित वर्त्तमान (च) और (अस्माकासः) हम लोगों के सम्बन्धी (सूरयः) विद्वान् जन (नः) हम लोगों की (ऊतये) रक्षा आदि के लिये और (रातये) दान के लिये (च) भी (विश्वाः) सम्पूर्ण (आशाः) दिशाओं को (तरीषणि) तरण में हम लोगों को (नू) शीघ्र पहुंचावें वे परोपकारी होते हैं ॥६॥

भावार्थः—वे ही चतुर विद्वान् हैं जो विमान आदि वाहनों को रच के भूगोल में चारों ओर घुमाते हैं वे प्रशंसितदान वाले होते हैं ॥६॥

अब विद्यार्थि विषय को कहते हैं ॥

त्वं नो॑ अग्ने अङ्गिरः स्तुतः स्तवा॑न आ भ॑र । होत॑र्विभ्वासहं॑ र॒यिं स्तो॒तृभ्यः॒ स्तव॑से च न उ॒तैधि॑ पृ॒त्सु नो॑ वृ॒धे ॥७॥

पदार्थः—हे (होतः) दाता और (अङ्गिरः) प्राण के सदृश प्रिय (अग्ने) विद्वन् ! (स्तुतः) प्रशंसित (स्तवानः) प्रशंसा करते हुए (त्वम्) आप (नः) हम लोगों के लिये (विभ्वासहम्) व्यापकों के अच्छे प्रकार सहने वाले (रयिम्) धन को (आ, भर) धारण कीजिये तथा (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों और (स्तवसे) स्तुति करने वाले के लिये (च) भी (नः) हम लोगों को धारण कीजिये (उत) और (पृत्सु) सङ्ग्रामों में (नः) हम लोगों को (वृधे) वृद्धि के लिये (एधि) प्राप्त हूजिये ॥७॥

भावार्थः—विद्यार्थियों को चाहिये कि विद्वानों की इस प्रकार प्रार्थना करें कि हे भगवानो अर्थात् विद्यारूप ऐश्वर्ययुक्त महाशयो ! आप लोग हम लोगों को ब्रह्मचर्य्य करा और उत्तम शिक्षा तथा विद्या देके और संग्रामों को जीत कर हम लोगों की निरन्तर वृद्धि करिये ॥७॥

इस सूक्त में अग्नि शब्दार्थ विद्वान् और विद्यार्थी के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में दशवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्टचस्यैकादशस्य सूक्तस्य सुतम्भर आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ३ । ५ निचृज्जगती । २ जगती । ४ । ६ विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले ग्यारहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के गुणों का उपदेश करते हैं ॥

जन॑स्य गो॒पा अ॑जनिष्ट॒ जागृ॑विर॒ग्निः सु॒दक्षः॑ सुवि॒ताय॒ नव्य॑से । घृ॒तप्र॑तीको बृह॒ता दि॑वि॒स्पृशा॑ द्यु॒मद्वि भा॑ति भर॒तेभ्यः॒ शुचिः॑ ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (जनस्य) मनुष्य की (गोपाः) रक्षा करने और (जागृविः) जागने वाला (सुदक्षः) अच्छे प्रकार बल जिससे (घृतप्रतीकः) और घृत वा जल प्रतीतिकर जिसका ऐसा (शुचिः) पवित्र (अग्निः) अग्नि (बृहता) बड़े

(दिविस्पृशा) प्रकाश में स्पर्श करने वाले से (नव्यसे) अत्यन्त नवीन (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये (अजनिष्ट) उत्पन्न होता तथा (भरतेभ्यः) धारण और पोषण करने वाले मनुष्यों के लिये (द्युमत्) प्रकाश के सदृश (वि) विशेष कर के (भाति) प्रकाशित होता है उसको यथावत् जानिये ॥१॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि अग्नि आदि पदार्थों के गुण अवश्य जानें ॥१॥

अब विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

यज्ञस्य॑ के॒तुं प्र॑थ॒मं पु॒रोहि॑तम॒ग्निं नर॑स्त्रिषध॒स्थे समी॑धिरे ।
इन्द्रे॑ण दे॒वैः स॒रथं॒ स ब॒र्हिषि॒ सीद॒न्नि होता॑ य॒जथा॑य सु॒क्रतुः॑ ॥२॥

पदार्थः—हे (नरः) श्रेष्ठ कार्य्यों में अग्रणी विद्वान् लोगो ! जैसे आप लोग (त्रिषधस्थे) तीन पदार्थों के सहित स्थान में (यजथाय) मिलने के लिये (यज्ञस्य) उत्तम ज्ञान की (केतुम्) बुद्धि को तथा (प्रथमम्) प्रथम वर्त्तमान (पुरोहितम्) प्रथम इस को धारण करें ऐसे (अग्निम्) अग्नि के समान प्रकाशमान को (सम्, ईधिरे) उत्तम प्रकार प्रकाशित करें वैसे (सः) वह (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धि वा उत्तम कर्म्म वाले (होता) दाता आप (इन्द्रेण) बिजुली और (देवैः) पृथिवी आदिकों के साथ (बर्हिषि) अन्तरिक्ष में (सरथम्) वाहनों के समूह के सहित (नि, सीदत्) स्थित हूजिये ॥२॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन विद्या, धर्म और पुरुषार्थ में स्वयं वर्त्ताव करके अन्यों का उस के अनुसार वर्त्ताव कराते हैं वे ही सब को बोध देने वाले होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं

अस॑म्मृष्टो जायसे मा॒त्रोः शुचि॑र्म॒न्द्रः क॒विरुद॑तिष्ठो वि॒वस्व॑तः ।
घृ॒तेन॑ त्वावर्धयन्नग्न आहुत धू॒मस्ते॑ के॒तुर॑भवद्दि॒वि श्रि॒तः ॥३॥

पदार्थः—हे (आहुत) सत्कार से निमन्त्रित (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान विद्यार्थी जो विद्वान् जन (विवस्वतः) सूर्य्य से (घृतेन) विद्या के प्रकाश से (त्वा) आप की (अवर्धयन्) वृद्धि करें और जिन (ते) आप की अग्नि के (धूमः) धूम के सदृश (दिवि) प्रकाशमान मनोहर और सत्कार करने योग्य परमेश्वर में (केतुः) जनाने वाले के सदृश बुद्धि (श्रितः) सेवन की हुई (अभवत्) होती है तथा (मात्रोः) माता के सदृश आदर करने वाले विद्या और आचार्य्य की शिक्षा को प्राप्त होकर (असंमृष्टः) अच्छे प्रकार अशुद्ध आप (मन्द्रः) प्रशंसित और आनन्दित (शुचिः) पवित्र (जायसे)

होते हो और (कविः) विद्वान् (उत्, अतिष्ठः) उठते हो उन आप का हम लोग सत्कार करें ॥३॥

भावार्थः—जो बालक वा कन्या विद्वानों वा पढ़ी हुई स्त्रियों से ब्रह्मचर्य्यपूर्वक विद्या को प्राप्त होकर पवित्र होते वे संसार को शोभित करने वाले होते हैं ॥३॥

फिर अग्न्यादिकों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अ॒ग्निर्नो॑ य॒ज्ञमुप॑ वेतु साधु॒याग्निं नरो॒ वि भ॑रन्ते गृ॒हेगृ॑हे ।
अ॒ग्निर्दू॒तो अ॑भवद्धव्य॒वाह॒नोऽग्निं वृ॑णा॒ना वृ॑णते क॒विक्र॑तुम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अग्निः) अग्नि (नः) हम लोगों के (यज्ञम्) मिलने योग्य व्यवहार को (उप, वेतु) व्याप्त हो और जैसे (साधुया) श्रेष्ठ (नरः) अग्रणी मनुष्य (गृहेगृहे) गृहगृह में (अग्निम्) अग्नि के सदृश (वि, भरन्ते) धारण करते हैं और जैसे (हव्यवाहनः) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को एक देश से दूसरे देशों में पहुंचाने वाला (अग्निः) अग्नि (दूतः) दूत के सदृश कार्य्यों का सिद्धकर्त्ता (अभवत्) होता है और जैसे (अग्निम्) अग्नि को (वृणानाः) स्वीकार करते हुए जन (कविक्रतुम्) बुद्धिमान् की बुद्धि का (वृणते) स्वीकार करते हैं वैसे ही आप लोग आचरण करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो अग्नि के सदृश तेजस्वी, सज्जनों के सदृश उपकार करने और प्रत्येक जन के लिये मंगल देने वाले हैं वे सर्वदा सत्कार करने योग्य हैं ॥४॥

फिर विद्वानों के विषय को कहते हैं ॥

तुभ्ये॒दम॑ग्ने॒ मधु॑मत्तमं॒ वच॒स्तुभ्यं॑ मनी॒षा इ॒यम॑स्तु॒ शं हृ॒दे ।
त्वां गिरः॒ सिन्धु॑मिवा॒वनी॑र्म॒हीरा पृ॑ण॒न्ति॒ शव॑सा व॒र्धय॑न्ति च ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश पवित्र अन्तःकरण वाले विद्यार्थी (तुभ्यः) आप के लिये (इदम्) यह (मधुमत्तमम्) अतिशय मधुर आदि गुण से युक्त (वचः) वचन और (तुभ्यम्) आप के लिये (इयम्) यह (मनीषा) बुद्धि (हृदे) हृदय के लिये (शम्) सुखकारक (अस्तु) हो और जो (सिन्धुमिव) समुद्र को जैसे वैसे (अवनीः) रक्षा करने वाली (महीः) श्रेष्ठ भूमियों के सदृश आदर करने योग्य (गिरः) वाणियां (शवसा) बल वा सेवा से (त्वाम्) आप का (आ, पृणन्ति) अच्छे प्रकार पालन करती वा विद्याओं को पूर्ण करती (वर्धयन्ति, च) और वृद्धि करती हैं उन का आप ग्रहण कीजिये ॥५॥

भावार्थः – इस मन्त्र में उपमालं०—हे विद्यार्थिजनो ! जैसे नदियां समुद्र को शोभित करती हैं वैसे ही विद्या और नम्रता से युक्त वाणियां आप लोगों को शोभित करें जिन के प्रताप से आप लोगों के मुखों से सत्य और सब का हितकारक वचन सर्वदा ही निकले ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्वाम॑ग्ने॒ अङ्गि॑रसो॒ गुहा॑ हि॒तमन्व॑विन्दञ्छिश्रिया॒णं वने॑वने ।

स जा॑यसे॒ मथ्यमा॑नः॒ सहो॑ म॒हत्त्वामा॑हु॒ः सह॑सस्पु॒त्रम॑ङ्गिरः ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्या की इच्छा करने वाले जैसे (अङ्गिरसः) प्राणों के सदृश विद्याओं में व्याप्त जन (वनेवने) जंगल जंगल में अग्नि के सदृश जीव जीव में (शिश्रियाणम्) व्याप्त (गुहा) बुद्धि में (हितम्) स्थित परमात्मा को (अनु, अविन्दन्) प्राप्त होते हैं और जिन (त्वाम्) आप को प्राप्त कराते हैं वैसे (सः) वह आप (मथ्यमानः) मथे गए विद्वान् (जायसे) होते हो और जिससे (सहसः) विद्या और शरीर के बल से युक्त के (पुत्रम्) पुत्र और (सहः) बल (महत्) बड़े को प्राप्त (त्वाम्) आप को (अङ्गिरः) प्राण के सदृश प्रिय विद्वान् जन (आहुः) कहें ॥६॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो योगी जन संयम अर्थात् इन्द्रियों को अन्य विषयों से रोकने से परमात्मा को प्राप्त होकर नित्य आनन्दित होते हैं वैसे इस को प्राप्त होकर आप लोग आनन्दित हूजिये ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में ग्यारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्य द्वादशस्य सूक्तस्य सुतम्भर आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ । ४ । ५ त्रिष्टुप् । ६ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले बारहवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्निविषय को कहते हैं ॥

प्राग्नये॑ बृह॒ते य॒ज्ञिया॑य ऋ॒तस्य॒ वृष्णे॒ असु॑राय॒ मन्म॑ ।

घृ॒तं न य॒ज्ञ आ॒स्ये॒३॒॑ सुपू॑तं॒ गिरं॑ भरे वृष॒भाय॑ प्रती॒चीम् ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (आस्ये) मुख में और (यज्ञे) मिलने योग्य व्यवहार में (सुपूतम्) उत्तम प्रकार पवित्र (घृतम्) घृत के (न) सदृश पदार्थ को तथा (बृहते) बड़े (यज्ञियाय) यज्ञ के योग्य और (ऋतस्य) जल के (वृष्णे) वर्षाने और (असुराय) प्राणों में रमने वाले (वृषभाय) बलिष्ठ (अग्नये) अग्नि के लिये (मन्म) ज्ञान के उत्पन्न कराने वाले कारण को (प्रतीचीम्) पिछली क्रिया और (गिरम्) वाणी को (प्र, भरे) अच्छे प्रकार धारण करता हूं वैसे इस के लिये इस को आप लोग भी धारण करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों से जैसे अग्नि विद्या के ज्ञान के लिये प्रयत्न किया जाता है उन को चाहिये कि वैसे ही पृथिवी आदि पदार्थों की विद्या के ज्ञान के लिये प्रयत्न करें ॥१॥

अब विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

ऋतं चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्ध्यृतस्य धारा अनु तृन्धि पूर्वीः ।
नाहं यातुं सहसा न द्वयेन ऋतं सपाम्यरुषस्य वृष्णः ॥२॥

पदार्थः—हे (ऋतम्) सत्य कारण को (चिकित्वः) जानने योग्य आप (ऋतम्) सत्य ब्रह्म को (इत्) निश्चय से (चिकिद्धि) जानिये और (ऋतस्य) सत्य के जनाने वाली (पूर्वीः) प्राचीन (धाराः) वाणियों को जानिये और अविद्या का (अनु, तृन्धि) नाश करिये (अहम्) मैं (सहसा) बल से (यातुम्) जाने की (न) नहीं इच्छा करता हूं और (द्वयेन) कार्य्य कारणस्वरूप बल से (अरुषस्य) नहीं हिंसा करने वाले (वृष्णः) बलिष्ठ के (ऋतम्) जल के (न) सदृश पदार्थ को (सपामि) गम्भीर शब्द से क्रोशता हूं ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन असत्य का खंडन करके सत्य को धारण करते हैं और अविद्या का त्याग करके विद्या को धारण करते हैं वैसे ही आप लोग भी करो ॥२॥

फिर अग्निपदवाच्य विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

कया नो अग्न ऋतयन्नृतेन भुवो नवेदा उचथस्य नव्यः ।
वेदा मे देव ऋतुपा ऋतूनां नाहं पतिं सनितुरस्य रायः ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् आप (कया) किस विद्या वा युक्ति से (नः) हम लोगों को जनावें (ऋतेन) सत्य से (ऋतयन्) सत्य का आचरण करता हुआ (भुवः) पृथिवी का (नवेदाः) नहीं प्राप्त होने वाला (उचथस्य) उचित का सम्बन्धी (नव्यः) नवीनों में श्रेष्ठ (ऋतुपाः) ऋतुओं का पालन करने वाला पृथ्वी सम्बन्धी (देवः)

विद्वान् (अहम्) मैं (ऋतूनाम्) वसन्त आदि ऋतुओं और (अस्य) इस (सनितुः) विभाग करने वाले (रायः) धन के (पतिम्) स्वामी का (न) नहीं नाश करता हूं वैसे आप (मे) मुझ को (वेदा) जानिये और मुझ को नष्ट मत करिये ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! सत्य के आचरण से ही पृथ्वी का राज्य प्राप्त होता है और पृथ्वी के राज्य और लक्ष्मी से सब को सुख होता है ॥३॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

के ते अग्ने रिपवे बन्धनासः के पायवः सनिषन्त द्युमन्तः ।
के धासिमग्ने अनृतस्य पान्ति क आसतो वचसः सन्ति गोपाः ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) राजन् (ते) आप के (रिपवे) शत्रु के लिये (के) कौन (बन्धनासः) बन्धक और (के) कौन आप के राज्य के (पायवः) पालन करने वाले (के) कौन (द्युमन्तः) कामना करने वाले वा प्रकाशयुक्त (सनिषन्त) विभाग करते हैं और हे (अग्ने) विद्या और विनय के प्रकाशक कौन (धासिम्) अन्न की (पान्ति) रक्षा करते हैं (के) कौन (अनृतस्य) असत्य व्यवहार के (आसतः) निन्द्य (वचसः) वचन से (गोपाः) रक्षा करने वाले (सन्ति) हैं ॥४॥

भावार्थः—हे विद्वन् राजन् ! आप को चाहिये कि इस प्रकार का कर्म्म करें जिस से शत्रुओं का नाश प्रजा का पालन होवे यह इस का उत्तर है ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

सखायस्ते विषुणा अग्न एते शिवासः सन्तो अशिवा अभूवन् ।
अधूर्षत स्वयमेते वचोभिर्ऋजूयते वृजिनानि ब्रुवन्तः ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जो (एते) ये (ते) आप के (विषुणाः) विद्या को व्याप्त (सखायः) मित्र हुए (शिवासः) मङ्गल अर्थात् अच्छे आचरण करते (सन्तः) हुए (अशिवाः) अमंगल आचरण करने वाले (अभूवन्) होवें उनका आप के नौकर और आप (अधूर्षत) नाश करो और हे राजा के नौकरो जो (एते) ये (स्वयम्) अपने ही (वचोभिः) वचनों से (वृजिनानि) धनों और बलों का (ब्रुवन्तः) उपदेश देते हुए (ऋजूयते) सरल होते हैं उन का निरन्तर पालन करो ॥५॥

भावार्थः मनुष्यों की यह योग्यता है कि जो मित्रजन शत्रु होवें वे निरादर करने योग्य हैं और जो मित्र होवें वे सत्कार करने योग्य हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यस्ते अग्ने नमसा यज्ञमीट्ट ऋतं स पात्यरुषस्य वृष्णः ।
तस्य क्षयः पृथुरा साधुरेतु प्रसर्स्राणस्य नहुषस्य शेषः ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) राजन् (अरुषस्य) नहीं हिंसा करने और (वृष्णः) सुख के वर्षाने वाले (तस्य) उन (ते) आप का (यः) जो (पृथुः) विस्तार युक्त (प्रसर्स्राणस्य) अत्यन्त धर्म को प्राप्त हुए (नहुषस्य) मनुष्य के (शेषः) बाकी रहे के सदृश (साधुः) श्रेष्ठ (क्षयः) निवास (नमसा) अन्न आदि से (यज्ञम्) यज्ञ को (ईट्टे) ऐश्वर्ययुक्त करता है (सः) वह (ऋतम्) सत्यन्याय की (पाति) रक्षा करता है वह हम लोगों को (आ, एतु) सब प्रकार प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो विद्वानों की सेवा और धर्म की रक्षा करता है उसके रक्षण को आप लोग करके शेष सुखको प्राप्त हूजिये ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में बारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य त्रयोदशस्य सूक्तस्य सुतम्भर आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ४ । ५ निचृद्गायत्री । २ । ६ गायत्री । ३ विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले तेरहवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्निपदवाच्य विद्वान् के गुणों को कहते हैं ॥

अर्चन्तस्त्वा हवामहेऽर्चन्तः समिधीमहि । अग्ने अर्चन्त ऊतये ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् हम लोग (ऊतये) रक्षण आदि के लिये (त्वा) आप का (अर्चन्तः) सत्कार करते हुए (हवामहे) स्वीकार करते हैं और आप का (अर्चन्तः) सत्कार करते हुए (सम्, इधीमहि) प्रकाश करें और आप का (अर्चन्तः) सत्कार करते हुए विद्वान् होवें ॥१॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! हम लोग आप लोगों के सत्कार से उत्तम शिक्षा और विद्या को प्राप्त होकर आनन्दित होवें ॥१॥

अब अग्निगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अग्नेः स्तोमं मनामहे सिध्रमद्य दिविस्पृशः । देवस्य द्रविणस्यवः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (द्रविणस्यवः) अपने धन की इच्छा करने वाले हम लोग (अद्य) आज (दिविस्पृशः) परमात्मा में सुख को स्पर्श करने वाले (देवस्य) प्रकाशमान (अग्नेः) अग्नि के (सिध्रम्) साधक (स्तोमम्) गुण कर्म और स्वभाव की प्रशंसा को (मनामहे) मानते हैं वैसे इस को आप लोग भी जानो ॥२॥

भावार्थः—जिन की धन की इच्छा होवें वे अग्नि आदि पदार्थों के विज्ञान को ग्रहण करें ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अग्निर्जुषत नो गिरो होता यो मानुषेष्वा । स यक्षद्दैव्यं जनम् ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वन् (यः) जो (होता) दाता (अग्निः) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् (नः) हम लोगों की (गिरः) वाणियों का (जुषत) सेवन करता है और जैसे (सः) वह (मानुषेषु) मनुष्यों में (दैव्यम्) श्रेष्ठ गुणों में उत्पन्न (जनम्) विद्वान् जन को (आ,यक्षत्) प्राप्त हो वा सत्कार करे वैसे आप करिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो अग्नि न हो तो कोई भी जीव जिह्वा न चला सके ॥३॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

त्वमग्ने सप्रथा असि जुष्टो होता वरेण्यः । त्वया यज्ञं वि तन्वते ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जिस से विद्वान् जन (त्वया) आप के साथ (यज्ञम्) यज्ञ का (वि, तन्वते) विस्तार करते हैं उन के साथ (होता) दाता वा ग्रहण करने वाले (वरेण्यः) अतिश्रेष्ठ और (सप्रथाः) प्रसिद्ध यश वाले (जुष्टः) सेवन किये गये (त्वम्) आप (असि) हो इस से सत्कार करने योग्य हो ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य लोग यथार्थवक्ता विद्वानों के संग से धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि करने वाले यज्ञ का विस्तार करें ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्वामग्ने वाजसातमं विप्रा वर्धन्ति सुष्टुतम् ।

स नो रास्व सुवीर्यम् ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) महाविद्वन् ! (विप्राः) बुद्धिमान् जन जिन (वाजसातमम्) विज्ञान और वेगों के विभाग करने वाले (सुष्टुतम्) उत्तम यश वाले और (सुवीर्य्यम्) उत्तम पराक्रम युक्त (त्वाम्) आप की (वर्धन्ति) वृद्धि करते हैं (सः) वह आप (नः) हम लोगों के लिये उत्तम पराक्रम को (रास्व) दीजिये ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो आप लोगों की यथार्थ वक्ता विद्वान् जन सब प्रकार से वृद्धि करें तो आप लोगों का अतुल प्रताप बढ़े ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अग्ने नेमिरराँइव देवांस्त्वं परिभूरसि। आ राधश्चित्रमृञ्जसे ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (त्वम्) आप जैसे (नेमिः) रथाङ्ग (अरानिव) चक्रों के अङ्गों को वैसे (देवान्) श्रेष्ठ गुणों वा विद्वानों को (परिभूः) सब प्रकार से हुवाने वाले (असि) हो और (चित्रम्) विचित्र (राधः) धन को (आ, ऋञ्जसे) सिद्ध करते हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं० – जैसे अरादिकों से चक्र उत्तम प्रकार शोभित होता है वैसे ही विद्वानों और उत्तम गुणों से मनुष्य शोभित होते हैं ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में तेरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य चतुर्दशस्य सूक्तस्य सुतम्भर आत्रेय ऋषिः। अग्निर्देवता। १। ४। ५। ६ निचृद्गायत्री। २ विराड्गायत्री। ३ गायत्रीछन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब छः ऋचा वाले चौदहवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि गुणों को कहते हैं ॥

अग्निं स्तोमेन बोधय समिधानो अमर्त्यम्।
हव्या देवेषु नो दधत् ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो (समिधानः) उत्तम प्रकार स्वयं प्रकाशमान अग्नि (देवेषु) विद्वानों वा श्रेष्ठ गुणों वाले पदार्थों में (नः) हम लोगों के लिये (हव्या) देने और ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को (दधत्) धारण करता है उस (अमर्त्यम्) मरणधर्म से रहित (अग्निम्) अग्नि को (स्तोमेन) गुणों की प्रशंसा से (बोधय) प्रकाशित कीजिये ॥१॥

भावार्थः – हे मनुष्यो ! प्रयत्न से अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को प्राप्त होओ ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तमध्वरेष्वीळते देवं मर्ता अमर्त्यम् । यजिष्ठं मानुषे जने ॥२॥

पदार्थः – जो (मर्त्ताः) मनुष्य (अध्वरेषु) नहीं नाश करने योग्य धर्मयुक्त व्यवहारों में (मानुषे) विचारशील (जने) जन में (तम्) उस (अमर्त्यम्) स्वरूप से नित्य (यजिष्ठम्) अतिशय मेल करने वाले (देवम्) श्रेष्ठ गुण वाले अग्नि के सदृश स्वयं प्रकाशित परमात्मा की (ईडते) स्तुति करते हैं वे ही बहुत सुख का भोग करते हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थ के सदृश पदार्थ विद्या का ग्रहण करते हैं वे सब प्रकार सुखी होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तं हि शश्वन्त ईळते स्रुचा देवं घृतश्चुता ।

अग्निं हव्याय वोळ्हवे ॥३॥

पदार्थः—(शश्वन्तः) अनादि से वर्त्तमान जीव जैसे यज्ञ करने वाला और यजमान (घृतश्चुता) जो घृत वा जल चुआती जो (स्रुचा) यज्ञ सिद्ध कराने वाली स्रुच् उस से (हव्याय) देने और लेने के योग्य के लिये (वोळ्हवे) धारण करने को (अग्निम्) अग्नि की (ईडते) प्रशंसा करते हैं वैसे (हि) ही योगाभ्यास से (तम्) उस परमात्मा (देवम्) देव अर्थात् निरन्तर प्रकाशमान की स्तुति करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे शिल्पीजन अग्नि आदि तत्त्वों की विद्या को प्राप्त होकर और अनेक कार्य्यों को सिद्ध करके प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं वैसे मनुष्य परमात्मा को यथावत् जान के अपनी इच्छाओं को सिद्ध करें ॥३॥

फिर अग्निविषय को कहते हैं ॥

अग्निर्जातो अरोचत घ्नन्दस्यूञ्ज्योतिषा तमः ।

अविन्दद्गा अपः स्वः ॥४॥

पदार्थः – हे मनुष्यो ! राजा जैसे (जातः) प्रकट हुआ (अग्निः) अग्नि (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमः) अन्धकाररूप रात्रि का (घ्नन्) नाश करता हुआ (अरोचत) प्रकाशित होता और (गाः) किरणों (अपः) अन्तरिक्ष और (स्वः) सूर्य्य को (अविन्दत) प्राप्त होता है वैसे प्राप्त हुए विद्या विनय जिस को वह (दस्यून्)

दुष्ट चोरों का नाश करते हुए और न्याय से अन्याय का निवारण करके विजय और यश को प्राप्त हों ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अग्नि अन्धकार का निवारण कर के प्रकाशित होता है वैसे राजा दुष्ट चोरों का निवारण कर के विशेष शोभित होवे ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्य्यत । वेतु मे शृणवद्धवम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे विद्वान् (मे) मेरे (हवम्) देने लेने योग्य व्यवहार को (वेतु) व्याप्त हो और (शृणवत्) सुने वैसे (ईळेन्यम्) प्रशंसा करने योग्य (कविम्) प्रतापयुक्त दर्शन वाले (घृतपृष्ठम्) प्रकाश घृत वा जल है पृष्ठ में जिस के उस (अग्निम्) अग्नि का (सपर्यत) सेवन करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों की विद्या का अभ्यास करें तो वे निरन्तर सुख को सेवें ॥५॥

फिर अग्निविषय को कहते हैं ॥

अग्निं घृतेनं वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् ।
स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥६॥

पदार्थः—जो (स्तोमेभिः) प्रशंसित कर्मों और (घृतेन) घृत से (विश्वचर्षणिम्) संसार के प्रकाश करने वाले (अग्निम्) अग्नि की (वावृधुः) वृद्धि करावें उन (वचस्युभिः) अपने वचन की इच्छा करने वाले (स्वाधीभिः) उत्तम प्रकार ध्यान से युक्त जनों के साथ सब मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को ग्रहण करें ॥६॥

भावार्थः—जैसे ईंधन आदि से अग्नि बढ़ता है वैसे ही सत्संग से विज्ञान बढ़ता है ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में चतुर्दश सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चदशस्य सूक्तस्य धरुण आङ्गिरस ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ५ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ४ त्रिष्टुप् । ३ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले पन्द्रहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् और अग्निगुणविषय को कहते हैं ॥

प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः ॥१॥

पदार्थः हे विद्वानो ! जैसे मुझ से (घृतप्रसत्तः) जल में प्रसक्त होने (असुरः) और प्राणों में सुख देने वाला तथा (सुशेवः) सुन्दर सुख जिस से ऐसे (रायः) धन का (धर्त्ता) धारण करने और (वस्वः) पृथिवी आदि का (धरुणः) धारण करने वाला (अग्निः) अग्नि धारण किया जाता है उसके बोध के लिये (कवये) विद्वान् और (वेद्याय) जानने योग्य के लिये और (यशसे) प्रशंसित (पूर्व्याय) प्राचीनों में प्राप्त विद्या वाले (वेधसे) बुद्धिमान् के लिये (गिरम्) वाणी को (प्र, भरे) धारण करता हूं वैसे आप लोग भी इस को इसलिये धारण करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वानो ! जो अग्नि आदि पदार्थों की विद्या असाधारण अर्थात् विलक्षण है उस को उत्तम लक्षण वाले बुद्धिमान् विद्यार्थियों के लिये ग्रहण कराइये ॥१॥

अब विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नॄञ्जातैरजाताँ अभि ये ननक्षुः ॥२॥

पदार्थः—(ये) जो (ऋतेन) सत्य वा परमात्मा से (ऋतम्) सत्य कारणादिक (धरुणम्) सब के धारण करने वाले को (यज्ञस्य) सम्पूर्ण व्यवहार के (शाके) सामर्थ्य के निमित्त (परमे) उत्तम (व्योमन्) व्यापक (दिवः) सूर्य्य आदि से (धर्मन्) धर्म (धरुणे) और धारण करने वाले में (जातैः) उत्पन्न हुए पदार्थों से (अजातान्) न उत्पन्न हुए (सेदुषः) ज्ञानवान् (नॄन्) मनुष्यों को (अभि,ननक्षुः) प्राप्त होते हैं वे सत्यविद्या को (धारयन्त) धारण करें ॥२॥

भावार्थः—वे ही मनुष्य विद्वान् हैं जो पूर्व और आगे वर्त्तमान विद्वानों को मिलकर परमेश्वर प्रकृति और जीव के कार्य्य की विद्या को जानते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद्दुष्टरं पूर्व्याय ।
स संवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिंहं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिसके संबन्ध में (अंहोयुवः) जो अपराध को दूर करते वे (तन्वः) शरीर के मध्य में (तन्वते) विस्तार को प्राप्त होते और (महत्) बड़े (दुष्टरम्) दुःख से पार होने योग्य (वयः) जीवन को (वि) विशेष करके विस्तृत करते और सुख के (परि) सब ओर (स्थुः) स्थित होते हैं (स.) वह उन का सङ्गी (संवतः) उत्तम प्रकार सेवन किया गया (नवजातः) नवीन अभ्यास से उत्पन्न हुई विद्या जिस की ऐसा पुरुष (पूर्व्याय) पूर्वज के लिये (क्रुद्धम्) क्रोधयुक्त (सिंहम्) सिंह के (न) सदृश अन्य को (अभितः) सब प्रकार से (तुतुर्य्यात्) नाश करे ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य पाप को दूर कर के धर्म का आचरण करते हैं वे शरीर और आत्मा के सुख और जीवन की वृद्धि कराते हैं। और जैसे क्रुद्ध सिंह प्राप्त हुए प्राणियों का नाश करता है वैसे प्राप्त हुए दुर्गुणों का सब जन नाश करें ॥३॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनंजनं धायसे चक्षसे च ।
वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वन् (यत्) जिस कारण (पप्रथानः) प्रसिद्ध विद्यायुक्त आप (मातेव) माता के सदृश (धायसे) धारण करने और (चक्षसे) कहाने को (च) भी (जनञ्जनम्) मनुष्य मनुष्य का (भरसे) पोषण करते हो और (त्मना) आत्मा से (यत्) जिस कारण (दधानः) धारण करते हुए (वयोवय.) सुन्दर जीवन जीवन की (जरसे, स्तुति करते हो और (विषुरूपः) विद्या जिन को प्राप्त ऐसे हुए सम्पूर्ण पदार्थों को (परि) सब प्रकार से (जिगासि) प्रशंसा करते हो इस से विद्वान् होते हो ॥४॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन माता के सदृश विद्यार्थियों की रक्षा करने, सब की उन्नति करने की इच्छा करते और ब्रह्मचर्य तथा अवस्था के बढ़ने में कारणरूप कार्य्यों का उपदेश करते हैं वे संसार के आदर करने योग्य होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः ।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ॥५॥

पदार्थः—हे (देव) विद्वन् (ते) आप का (वाजः) वेग (शवसः) बल के (उरुम्) बहुत (अन्तम्) अन्त की (दोघम्) तथा उत्तम पूर्ण करने वाले और (रायः) धन के (धरुणम्) धारण करने वाले की (नु) शीघ्र (पातु) रक्षा करे और (तायुः) चोर (पदम्) पैरों के चिह्न को (न) जैसे वैसे (महः) बड़े (राये) धन के लिये (गुहा) बुद्धि में सत्य को (दधानः) धारण करने और (अत्रिम्) पालन करने वाले को (चितयन्) जनाते हुए आप सब को (अस्पः) प्रसन्न कीजिये ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे चोर चोर के पाद के चिह्न को ढूंढ के ग्रहण करता है वैसे ही आत्माओं में सत्य को धारण कर और कामना की पूर्त्ति करके सब को प्रसन्न करें ॥५॥

इस सूक्त में विद्वान् और अग्नि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

पंचम मण्डल में पन्द्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य षोडशस्य सूक्तस्य पुरुरात्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ । ३ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ भुरिगुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ५ बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले सोलहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में बिजुली के विषय को कहते हैं ॥

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्त्तासो दधिरे पुरः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् (मर्त्तासः) मनुष्य (प्रशस्तिभिः) प्रशंसाओं से (यम्) जिस को (मित्रम्) मित्र के (न) समान (पुरः) प्रथम से (दधिरे) धारण करते हैं उसको (भानवे) प्रकाश के लिये और (देवाय) श्रेष्ठ गुण वाले (अग्नये) बिजुली आदि के लिये (बृहत्) बड़ा (वयः) प्रदीप्त करने वाला तेज जैसे हो वैसे (हि) ही (अर्चा) पूजिये आदर करिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे मित्र मित्रको धारण करके सुख की वृद्धि को प्राप्त होता हैं वैसे ही अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को प्राप्त होकर विद्वान् जन आनन्द से वृद्धि को प्राप्त होते हैं ।।१।।

फिर उसी विषय को कहते हैं ।।

स हि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।
वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति ।।२।।

पदार्थः—जो (जनानाम्) मनुष्यों की (बाह्वोः) भुजाओं के (दक्षस्य) बल का (होता) देने वाला (अग्निः) अग्नि (भगः) सूर्य्य के (न) सदृश (आनुषक्) अनुकूलता से (वारम्) स्वीकार करने और (हव्यम्) देने योग्य पदार्थ को (वि, ऋण्वति) विशेष सिद्ध करता है (सः, हि) वही (द्युभिः) धर्मयुक्त कामों से बलवान् होता है ।।२।।

भावार्थः—जो विद्वान् जन अपने आत्मा के सदृश सब मनुष्यों को जान और विद्या को प्राप्त करा के उन्नति करने की इच्छा करते हैं वे ही भाग्यशाली वर्त्तमान हैं ।।२।।

अब संग्राम विजय विषय को कहते हैं ।।

अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः । ३ ।

पदार्थः—जो मनुष्य (अस्य) इस (वृद्धशोचिषः) वृद्ध अर्थात् बढ़ी हुई कान्ति जिस की ऐसे (मघोनः) बहुत धन से युक्त पुरुष की (स्तोमे) प्रशंसा में और (सख्ये) मित्रपन वा मित्र के कार्य्य के लिये (यस्मिन्) जिस (तुविष्वणि) बल सेवन तथा (सम, अर्य्ये) अच्छे प्रकार स्वामी वा वैश्य में (शुष्मम्) बल को (आदधुः) सब प्रकार धारण करें वे (विश्वा) सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त होवें ।।३।।

भावार्थः—जो मित्र होकर शरीर और आत्मा के बल को धारण करके प्रयत्न करते हैं वे संग्रामादिकों में विजय को प्राप्त होकर प्रशंसित लक्ष्मीवान् होते हैं ।।३।।

अब राज्य और ऐश्वर्यवृद्धि को कहते हैं ।।

अधा ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ।।४।।

पदार्थः - हे (अग्ने) राजन् (एषाम्) इन वीरों और (सुवीर्यस्य) उत्तम पराक्रम वाले के (मंहना) बड़प्पन से जो (तम्) उस को (इव) ही (यह्वम्) बड़े सूर्य्य (अधा) इसके अनन्तर (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी के (न) सदृश (अवः) अन्न जैसे हो वैसे (परि) सब ओर से (बभूवतुः) होते है वे (हि) ही विजय को प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जो बड़ी उत्तम प्रकार शिक्षित सेना को प्राप्त होते हैं उनके ही राज्य का ऐश्वर्य्य बढ़ता है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

नू न एहि वार्य्यमग्ने गृणान आ भर ।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (ये) जो (सूरयः) विद्वान् (ये, च) और जो (वयम्) हम लोग (स्वस्ति) सुख को (धामहे) धारण करते हैं उन से (सचा) संबद्ध आप (वार्यम्) स्वीकार करने योग्य की (नू) शीघ्र और (गृणानः) विद्वानों के गुणों की स्तुति करते हुए (नः) हम लोगों को (आ, इहि) सब प्रकार से प्राप्त हूजिये (उत) और सुख की (आ, भर) सब प्रकार पुष्टि कीजिये तथा (पृत्सु) संग्रामों में (नः) हम लोगों की (वृधे) वृद्धि के लिये (एधि) प्राप्त हूजिये ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्यों के लिये निरन्तर सुख देते हैं उनके साथ मनुष्य सदा उन्नति करें ॥५॥

इस सूक्त में बिजुली का विषय संग्राम विजय और राज्यैश्वर्य्य के वर्धन का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

पंचम मण्डल में सोलहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य सप्तदशस्य सूक्तस्य पुरुरात्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । २ अनुष्टुप् । ३ निचृदनुष्टुप् । ४ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले सत्रहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्न्यादि विद्या विषय को कहते हैं ॥

आ यज्ञैर्देव मर्त्यं इत्था तव्यांसमूतये ।
अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे ॥१ ।

पदार्थः—हे (देव) विद्वन् जैसे (पूरुः) मननशील (मर्त्यः) मनुष्य (कृते) किये हुए (स्वध्वरे) शोभन अहिंसामय यज्ञ में (यज्ञैः) विद्वानों के सत्कारादिक व्यवहारों से (अवसे) विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों में प्रवेश होने के लिये (तव्यांसम्) अत्यन्त वृद्ध बड़े तेजयुक्त (अग्निम्) अग्नि की (ईळीत) प्रशंसा करता है (इत्था) इस कारण से (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (आ) प्रयोग अर्थात् विशेष उद्योग करो ॥१॥

भावार्थः—जो विद्वानों के सङ्ग में प्रीति करने वाले मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को प्राप्त होकर श्रेष्ठ कर्म को करते हैं वे सब प्रकार से रक्षित होते हैं ॥१॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्य हि स्वयंशस्तर आसा विधर्मन्मन्यसे ।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥२॥

पदार्थः—हे (विधर्मन्) विशेष धर्म के अनुगामी जो (हि) निश्चय (अस्य) इसके सम्बन्ध में (स्वयशस्तरः) अत्यन्त अपना यश जिस का ऐसा पुरुष (आसा) मुख वा आसन से वर्त्तमान है और (परः) श्रेष्ठ हुए (मनीषया) बुद्धि से (तम्) उस (मन्द्रम्) आनन्द देनेवाले और (चित्रशोचिषम्) अद्भुत प्रकाशयुक्त (नाकम्) दुःख से रहित को आप (मन्यसे) जानते हो उसका मैं आदर करता हूं ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! आप सदा ही धर्म्मयुक्त यश को बढ़ाने वाले कर्म्म को करें जिस से अत्यन्त सुख को प्राप्त होवें ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अस्य वासा उं अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वन् (यः) जो (असौ) वह (अस्य) इसकी (वै) निश्चय से (अर्चिषा) विद्या की दीप्ति और (गिरा) वाणी से (आयुक्त) युक्त होता (उ) और (यस्य) जिस के (रेतसा) पराक्रम से (दिवः) जैसे मनोहर प्रयोजन के (न)

वैसे (अर्चयः) उत्तम सत्कार (बृहत्) बड़े (शोचन्ति) शोभित होते हैं वह आप दुःखों की (तुजा) हिंसा करो ॥३॥

भावार्थः -इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जिन विद्वानों के सूर्य्य के प्रकाश के सदृश विद्या यशः और कीर्त्ति विलास को प्राप्त होते हैं वे ही बड़े विज्ञान को उत्पन्न करते हैं ॥३॥

अब अग्निदृष्टान्त से विद्याविषय को कहते हैं ॥

अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वन् जिस की (विश्वासु) सम्पूर्ण (विक्षु) प्रजाओं में (हव्यः) ग्रहण करने योग्य (अग्निः) अग्नि (प्र, शस्यते) प्रशंसा को प्राप्त होता है (अधा) इसके अनन्तर (अस्य) इस की (क्रत्वा) बुद्धि तथा (विचेतसः) जनाने और (दस्मस्य) दुःख के नाश करने वाले की बुद्धि से (रथे) सुन्दर वाहन में (वसु) द्रव्य (आ प्र, शस्यते) प्रशंसित होता है ॥४॥

भावार्थः जैसे प्रजा में अग्नि विराजता है वैसे ही विद्या और विनय से युक्त बुद्धिमान् पुरुष शोभित होते हैं ॥४॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः । ऊर्जो
नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (सूरयः) विद्वान् जन (आसा) उपवेशन अर्थात् स्थिति से (नः) हम लोगों को और (वार्यम्) श्रेष्ठ पदार्थों में उत्पन्न बिजुलीरूप अग्नि को (सचन्त) संबद्ध करते हैं वैसे (नपात्) नहीं गिरने वाले आप (नः) हम लोगों के (अभिष्टये) अपेक्षित सुख के लिये (ऊर्जः) पराक्रमों की (पाहि) रक्षा कीजिये और (पृत्सु) संग्रामों में हम लोगों की (वृधे) वृद्धि के लिये (हि) जिस से (शग्धि) समर्थ हूजिये और (स्वस्तये) सुख के लिये (नू) शीघ्र (इत्) ही (उत) निश्चय से (एधि) प्राप्त हूजिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य विद्वानों के अनुकरण को करें तो उत्तम गुणों की प्राप्ति बल की वृद्धि और सुखपूर्वक विजय को करते हैं ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में सत्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्याष्टादशस्यसूक्तस्यद्वितोमृक्तवाहाआत्रेयऋषिः अग्निर्देवता । १ । ४ विराडनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ३ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ५ भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले अठारहवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के सदृश अतिथि के विषय को कहते हैं ॥

प्रातर॒ग्निः पु॑रुप्रि॒यो वि॒शः स्त॑वे॒ताति॑थिः ।
विश्वा॑नि॒ यो अम॑र्त्यो ह॒व्या मर्ते॑षु॒ रण्य॑ति ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (अग्निः) अग्नि के सदृश पवित्र (पुरुप्रियः) बहुतों से कामना किया वा सेवन किया गया (मर्त्तेषु) नाश होने वाले कार्य्यों में (अमर्त्यः) स्वभाव से मरणधर्म्मरहित (रण्यति, रमता है (विश्वानि) सम्पूर्ण (हव्या) देने योग्यों की (स्तवेत) प्रशंसा करें और जो (प्रातः) प्रातःकाल के आरम्भ से (विशः) प्रजाओं को उपदेश देवें वह (अतिथिः) आदर करने योग्य यथार्थवक्ता विद्वान् सत्कार करने योग्य होता है ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अतिथि आत्मा का जानने वालों, सत्य का उपदेशक, विद्वान्, विद्वानों का प्रिय, परमात्मा के सदृश सब के हित को चाहने वाला नित्य क्रीड़ा करता है वह ही सत्कार करने योग्य है ॥१॥

फिर अतिथि विषय को कहते हैं ॥

द्वि॒ताय॑ मृ॒क्तवा॑हसे॒ स्वस्य॑ द॒क्षस्य॑ मं॒हना॑ ।
इन्दुं॒ स ध॑त्त आनु॒षक् स्तो॒ता चि॑त्ते अमर्त्य ॥२॥

पदार्थः—हे (अमर्त्य) अपने स्वरूप से नित्य जो (स्तोता) सत्यविद्या की प्रशंसा करने वाला (आनुषक्) अनुकूलता से (इन्दुम्) ऐश्वर्य्य को (चित्) ही (ते) तेरे लिये (धत्ते) धारण करता है (सः) वह (द्विताय) दो जन्मों से विद्या को प्राप्त (मृक्तवाहसे) शुद्ध विज्ञान को प्राप्त कराने वाले (स्वस्य) और अपने (दक्षस्य) बल के (मंहना) बड़प्पन के साथ वर्त्तमान अतिथि के लिये सुख देवें ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य यथार्थवक्ता अतिथियों का सत्कार करते हैं वे सत्य विज्ञान को प्राप्त हो कर सर्वदा आनन्दित होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते है ॥

तं वो॑ दी॒र्घायु॑शोचिषं गि॒रा हु॑वे म॒घोना॑म् ।

अरि॑ष्टो॒ येषां॒ रथो॒ व्य॑श्वदाव॒न्नीय॑ते ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (येषाम्) जिन अतिथियों और (मघोनाम्) बहुत धन से युक्त (वः) आप लोगों का (अरिष्टः) नहीं हिंसा करने योग्य (रथः) वाहन (वि, ईयते) विशेषता से चलता है उनका मैं (हुवे) आह्वान करता हूं और हे (अश्वदावन्) व्याप्ति करने वाले विज्ञान आदि गुणों के दाता गृहस्थ आप के कल्याण के लिये (तम्) उस (दीर्घायुशोचिषम्) दीर्घ अर्थात् अधिक अवस्था पवित्र करने वाली जिस की ऐसे अतिथि विद्वान् का मैं (गिरा) वाणी से आह्वान करता हूं ॥३॥

भावार्थः—जो अहिंसादि धर्म से युक्त मनुष्य अतिकालपर्य्यन्त जीवने वाले धार्मिक अतिथियों की सेवा करते हैं वे भी दीर्घायु और लक्ष्मीवान् होकर आनन्दित होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

चि॒त्रा वा॒ येषु॒ दीधि॑तिरा॒सन्नु॒क्था पान्ति॒ ये ।

स्ती॒र्णं ब॒र्हिः स्व॑र्णरे॒ श्रवां॑सि दधि॒रे परि॑ ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (येषु) जिन अतिथियों में (चित्रा) विचित्र (दीधितिः) प्रकाशमान विद्या है और (आसन्) आसन वा मुख में (उक्था) प्रशंसा करने योग्य कर्म हैं और (ये, वा) अथवा जो (स्तीर्णम्) आच्छादित अर्थात् अन्तःकरण में व्याप्त (बर्हिः) अन्तरिक्ष के सदृश विज्ञान की (स्वर्णरे) सुख से युक्त मनुष्य में (पान्ति) रक्षा करते हैं और (श्रवांसि) अन्नादिकों को (परि) सब ओर से (दधिरे) धारण करें वे ही श्रेष्ठ अतिथि होते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो विद्या के उत्तम गुणों से पूर्ण, सब के हित चाहने वाले, पुरुषार्थी अर्थात् उत्साही और पक्षपात से रहित अतिथिजन उपदेश से सब की रक्षा करते हैं वे संसार के कल्याण करने वाले होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ये मे॑ प॒ञ्चाश॒तं द॒दुरश्वा॑नां स॒धस्तु॑ति । द्यु॒मद॑ग्ने॒

महि॒ श्रवो॑ बृ॒हत्कृ॑धि म॒घोनां॑ नृ॒वद॑मृत नृ॒णाम् ॥५॥

पदार्थः—(ये) जो अतिथि जन (मे) मेरे लिये (अश्वानाम्) वेग से युक्त अग्नि आदि पदार्थों के (सधस्तुति) साथ प्रशंसित (द्युमत्) यथार्थ ज्ञान के प्रकाश से युक्त (पञ्चाशतम्) पञ्चाशतसंख्यायुक्त विज्ञान को (ददुः) देने वाले हों उन के साथ हे (अग्ने) विद्वन् आप एक साथ प्रशंसित और यथार्थ ज्ञान के प्रकाश से युक्त (महि) बड़े (बृहत्) बहुत (श्रवः) अन्न वा श्रवण को (कृधि) करिये और हे (अमृत) मरणधर्म्म से रहित उन (मघोनाम्) बहुत धनवान् (नृणाम्) मनुष्यों के (नृवत्) मनुष्यों के तुल्य उन्नति का विधान करो ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अतिथिजन पदार्थविद्या को देवें उनका सत्कार यथायोग्य करो ॥५॥

इस सूक्त में अग्निवत् अतिथि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में अठारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकोनविंशतितमस्य सूक्तस्य वव्रिरात्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ गायत्री । २ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ३ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ४ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ५ । निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले उन्नीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों को सिद्ध करने योग्य उपदेश विषय को कहते हैं ॥

अ॒भ्यव॑स्थाः॒ प्र जा॑यन्ते॒ प्र व॒व्रेर्व॒व्रिश्चि॑केत । उ॒पस्थे॑ मा॒तुर्वि च॑ष्टे ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् (वव्रेः) स्वीकार करने वाले की जो (अवस्थाः) विरुद्ध वर्त्ताव को प्राप्त होते हैं जिन में ऐसी वर्त्तमान दशायें (प्र, जायन्ते) उत्पन्न होती हैं उनका (वव्रिः) स्वीकार करने वाला (अभि) सन्मुख (प्र, चिकेत) विशेष कर के जाने और (मातुः) माता के (उपस्थे) समीप में (वि चष्टे) प्रसिद्ध होता है उन को आप भी जानिये ॥१॥

भावार्थः—ऐसा नहीं कोई भी प्राणी है कि जिसकी उत्तम मध्यम और अधम दशायें न होवें और जो माता पिता और आचार्य से शिक्षित है वही अपनी दशाओं को सुधार सकता है ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति ।
आ दृह्ळां पुरं विविशुः ॥२॥

पदार्थः—जो (अनिमिषम्) दिन रात्रि (चितयन्तः) बोध कराते हुए (वि) विरुद्ध (जुहुरे) कुटिलता करते और (नृम्णम्) धन की (पान्ति) रक्षा करते हैं वे (दृह्लाम्) दृढ़ (पुरम्) नगर को (आ, विविशुः) सब प्रकार प्राप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो सरल स्वभाव वाले और सत्य के बोधक प्रतिक्षण पुरुषार्थ करते हैं वे राज्य और ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टयः ।
निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वानो जिस (श्वैत्रेयस्य) अन्तरिक्ष में स्थित दिशाओं में उत्पन्न जल के मध्य में (जन्तवः) जीव और (कृष्टयः) मनुष्य (वर्धन्त) वृद्धि को प्राप्त होते हैं (एना) इस (मध्वा) मधुर जल से (वाजयुः) अन्न की कामना करते हुए के (न) सदृश (बृहदुक्थः) अत्यन्त प्रशसित (निष्कग्रीवः) एक निष्क का जिस में चार सुवर्ण प्रमाण से युक्त आभूषण जिस की ग्रीवा में ऐसा पुरुष (द्युमत्) प्रकाश से युक्त सुख को (आ) प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! इस संसार में जितने पदार्थ हैं वे सब जल ही से होते हैं अर्थात् सब का बीज जल ही है ऐसा जानकर सब सुखों को प्राप्त होओ ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा ।
घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः ॥४॥

पदार्थः—(वाजजठरः) क्षुधा का वेग उदर में जिस से हो (अदब्धः) जो नहीं हिंसा करने योग्य (शश्वतः) निरन्तर व्याप्त (दभः) और जिस से नाश करता है उस (घर्म्मः) प्रताप के (न) सदृश वा (प्रियम्) प्रिय (दुग्धम्) दुग्ध के (न) सदृश (सचा) सम्बन्ध से (जाम्योः) खाने योग्य अन्न को देने वाले प्रकाश और पृथिवी के (काम्यम्) कामना करने योग्य पदार्थ को (अजामि) प्राप्त होता हूं इस से मेरे साथ आप लोग भी इस को करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो सूर्य्य के प्रकाश के सदृश विद्या से व्याप्त दुग्ध के सदृश प्रिय वचन वाले और धर्म्म की कामना करते हुए जन हैं वे पृथ्वी के सदृश सब के रक्षक होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

क्रीळन्नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।

ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥५॥

पदार्थः—हे (रश्मे) किरणों के सदृश वर्त्तमान विद्वन् जैसे बिजुलीरूप अग्नि (भस्मना) भस्म और (वायुना) पवन से (वेविदानः) जनाता अर्थात् अपने को प्रकट करता हुआ (ताः) उन (अस्य) इस की (धृषजः) धृष्टता से उत्पन्न हुओं के (न) सदृश (तिग्माः) तीव्र (सुसंशिताः) उत्तम प्रकार प्रशंसित (वक्ष्यः) ले चलने वाली और (वक्षणेस्थाः) वाहन में स्थिर ऐसी लपटों को धारण करता (सन्) हुआ सुख की (सम्) संभावना कराता है वैसे (क्रीड़न्) क्रीड़ा करते हुए आप (नः) हम लोगों के सुखकारी (आ, भुवः) हूजिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—हे विद्वानो ! जैसे सूर्य की किरणें सर्वत्र फैली हुई सब को सुख देती हैं वैसे ही सब स्थानों में भ्रमण तथा उपदेश करते हुए आप सब को आनन्द दीजिये ॥५॥

इस सूक्त में विद्वानों के सिद्ध करने योग्य उपदेशविषय का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में उन्नीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य प्रयस्वन्त आत्रेया ऋषयः । अग्निर्देवता । १ । ३ विराडनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ४ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब चार ऋचा वाले बीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्निपदवाच्य विद्वान् के गुणों का वर्णन करते हैं ॥

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।

तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥१॥

पदार्थः—हे (वाजसातम) अतिशय विज्ञान आदि पदार्थों के विभाजक (अग्ने)

विद्वन् (त्वम्) आप (गीर्भिः) उत्तम प्रकार उपदेशरूप हुई वाणियों से (यम्) जिस (देवत्रा) विद्वानों में (श्रवाय्यम्) सुनने योग्य (युजम्) योग करने वाले (रयिम्) धन का अपने लिये (मन्यसे) स्वीकार करते हो (तम्) उस को (चित्) भी (नः) हम लोगों को (पनया) व्यवहार से प्राप्त कराइये ॥१॥

भावार्थः– यही धर्मयुक्त व्यवहार है कि जैसी इच्छा अपने लिये होती है वैसी ही दूसरे के लिये करे और जैसे प्राणी अपने लिये दुःख की नहीं इच्छा करते हैं और सुख की प्रार्थना करते हैं वैसे ही अन्य के लिये भी उनको वर्त्ताव करना चाहिये ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (ये) जो (वृद्धाः) विद्या और अवस्था से वृद्ध जन (ते) आप के (उग्रस्य) उत्तम (शवसः) बल के संबन्ध में (सश्चिरे) गमन करने वाले हैं और (द्वेषः) द्वेष करने वाले (अप) दूर जाते हैं (अन्यव्रतस्य) धर्म से विरुद्ध आचरण वाले के संबन्ध में (ह्वरः) कुटिल आचरण वाले (अप) अलग जाते हैं वे दुःख की (न) नहीं (ईरयन्ति) प्रेरणा करते हैं ॥२॥

भावार्थः—वे ही वृद्धि हैं जो सत्य बोलते और सब का उपकार करके अपने सदृश सुख देते और कभी धर्म्म से विरुद्ध आचरण नहीं करते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

होतारं त्वा वृणीमहेऽग्ने दक्षस्य साधनम् ।
यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जैसे (प्रयस्वन्तः) प्रयत्न करते हुए हम लोग (गिरा) वाणी से (यज्ञेषु) यज्ञों में (दक्षस्य) बल के (पूर्व्यम्) प्राचीन यथार्थ-वक्ता पुरुषों से किये गये (साधनम्) साधन को (हवामहे) देते और (होतारम्) दाता अग्नि का (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं वैसे (त्वा) आप का स्वीकार करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे मनुष्य परोपकारी का प्रीति से बहुत आदर करते हैं वैसे ही विद्वान् जनों से सब उत्तम कर्म्म किये जाते हैं ॥३॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

इत्था यथा त ऊतये सहसावन्दिवेदिवे । राय ऋताय
सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम सधमादः ॥४॥

पदार्थः—हे (सहसावन्) बल से तुल्य (सुक्रतो) उत्तम बुद्धि से युक्त (यथा) जैसे (ते) आप के (ऊतये) रक्षण आदि के लिये (दिवे-दिवे) प्रतिदिन (ऋताय) धर्मयुक्त व्यवहार से प्राप्त (राये) धन के लिये हम लोग (गोभिः) वाणियों से (सधमादः) साथ स्थान वाले (स्याम) होवें तथा (वीरैः) शूर वीरों के साथ (सधमादः) साथ स्थान वाले (स्याम) होवें (इत्था) इस कारण से आप हूजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो साहस से पुरुषार्थ करते हुए वीर जनों की सेना को ग्रहण करके ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये प्रयत्न करते हैं वे ही सुखी होते हैं ॥४॥

इस सूक्त में अग्नि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्यैकाधिकविंशतितमस्य सूक्तस्य सस आत्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ भुरिगुष्णिक् । ३ स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब चार ऋचा वाले इक्कीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि-विषय को कहते हैं ॥

मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत्समिधीमहि ।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥१॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरः) प्राणों के सदृश प्रिय (अग्ने) विद्वन् जैसे हम लोग कार्य्य की सिद्धि के लिये अग्नि को (मनुष्वत्) मनुष्य को जैसे वैसे (नि, धीमहि) निरन्तर धारणवाले होवें और (देवयते) श्रेष्ठ गुणों की कामना करते हुए के लिये (देवान्) श्रेष्ठ विद्यायुक्त विद्वानों को (मनुष्वत्) मनुष्यों के समान (सम्, इधीमहि) प्रकाशित करें वैसे (त्वा) आप को उत्तम कर्म्म में स्थित करें और आप (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य (यज) मिलिये अर्थात् कार्यों को प्राप्त हूजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य विचारशील होकर श्रेष्ठ गुणों की कामना करते हैं वे अग्नि आदि पदार्थों की विद्या को जानें ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्वं हि मानुषे जनेऽग्ने सुप्रीत इध्यसे ।
स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक्सुजात सर्पिरासुते ॥२॥

पदार्थः—हे (सुजात) उत्तम प्रकार उत्पन्न (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रताप से वर्त्तमान जैसे अग्नि (सर्पिरासुते) घृत से सब ओर से प्रकाशित हुए में प्रकाशित किया जाता है वैसे (हि) ही (त्वम्) आप (मानुषे, जने) प्रसिद्ध मनुष्य में (सुप्रीतः) उत्तम प्रकार प्रसन्न हुए (इध्यसे) प्रकाशित होते हो और जैसे (त्वा) आप को (स्रुचः) यज्ञ के साधन पात्र (आनुषक्) अनुकूलता से (यन्ति) प्राप्त होते हैं वैसे ही आप सब के प्रति अनुकूल हूजिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे अग्नि इन्धन और घृत आदिकों को प्राप्त होकर वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे ही विद्या और उत्तम गुणों को प्राप्त होकर निरन्तर वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥२॥

अब शिल्पविद्यावेत्ता विद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ॥३॥

पदार्थः—हे (कवे) विद्वन् जैसे (विश्वे) सम्पूर्ण (सजोषसः) तुल्य प्रीति के सेवन करने वाले (देवासः) विद्वान् जन (देवम्) श्रेष्ठ गुण वाले (दूतम्) दूत के सदृश वर्त्तमान अग्नि को (अक्रत) करते हैं और (सपर्यन्तः) सेवा करते हुए जन (यज्ञेषु) सत्सङ्गों में श्रेष्ठ गुण वाले विद्वान् की (ईळते) स्तुति करते हैं वैसे (त्वाम्) आप की हम लोग सेवा करें और (त्वा) आप का सत्कार करें ॥३॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलु०—जो जन अग्नि से दूतकर्म अर्थात् नौकर के सदृश काम कराते हैं वे सब स्थानों में प्रशंसित ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥३॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

देवं वो देवयज्ययाग्निमीळीत मर्त्यः । समिद्धः शुक्र दीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वानो (वः) आप लोगों के (देवयज्यया) विद्वानों के मेल से (मर्त्यः) मनुष्य (देवम्) प्रकाशित (अग्निम्) अग्नि की (ईळीत) प्रशंसा करे। हे (शुक्र) सामर्थ्य वाले (समिद्धः) उत्तम गुणों से प्रकाशित आप (दीदिहि) प्रकाश कराओ और (ऋतस्य) सत्य परमाणु आदि के (योनिम्) कारण को (आ, असदः) सब प्रकार जानिये और (ससस्य) कार्य्य के (योनिम्) कारण को (आ, असदः) सब प्रकार जानिये ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों के संग से कार्य्य और कारणस्वरूप सृष्टि अर्थात् सत्त्व रज और तमोगुण को साम्यावस्थारूप प्रधान को जान के कार्य को सिद्ध करते हैं वे सृष्टि के क्रम को जान के दुःख को कभी नहीं प्राप्त होते हैं ॥४॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में इक्कीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य द्वाविंशतितमस्य सूक्तस्य विश्वसामात्रेय ऋषिः । अग्निर्देवता । १ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ । ३ स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले बाईसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्निविषय को कहते हैं ॥

प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे । यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥१॥

पदार्थः—हे (विश्वसामन्) सम्पूर्ण सामों वाले (यः) जो (अध्वरेषु) यज्ञों में (ईड्यः) प्रशंसा करने योग्य (होता) दाता (विशि) प्रजा में (मन्द्रतमः) अतिशय आनन्द युक्त होवें उस (पावकशोचिषे) अग्नि के प्रकाश के सदृश प्रकाश वाले पुरुष के लिये (अत्रिवत्) व्यापक विद्यावाले के सदृश (प्र, अर्चा) सत्कार कीजिये ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि धार्मिक जनों का ही सत्कार करें अन्य जनों का नहीं ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

न्य१ग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् ।
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वानो जो (देवव्यचस्तमः) पृथिव्यादिकों का धारण करने और अति तोड़ने वाला (यज्ञः) मिलने योग्य (आनुषक्) अनुकूलता से (अद्या) आज हम लोगों को (एतु) प्राप्त हो उस (ऋत्विजम्) ऋतुओं में यज्ञ करने वाले के सदृश (जातवेदसम्) उत्पन्न हुओं में विद्यमान् (देवम्) श्रेष्ठ गुण कर्म्म और स्वभाव वाले (अग्निम्) अग्नि को (प्र, नि, दधाता) उत्तमता से निरन्तर धारण करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे यज्ञ करने वाले यज्ञ को पूर्ण करते हैं वैसे ही अग्नि शिल्पविद्या के कृत्य की सिद्धि को पूर्ण करता है ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

चिकित्विन्मनसन्त्वा देवं मर्त्तास ऊतये ।
वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वन् (वरेण्यस्य) स्वीकार करने और (अवसः) कामना करने योग्य (ते) आप के सङ्ग से (इयानासः) प्राप्त होते हुए (मर्त्तासः) मनुष्य हम लोग (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (चिकित्विन्मनसम्) विज्ञानयुक्त पुरुषों के मन के सदृश मन से युक्त (देवम्) विद्वान् (त्वा) आप को अग्नि के सदृश (अमन्महि) विशेष करके जानें ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदा ही विद्वानों के संग से पदार्थ-विद्या का खोज करें ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अग्ने चिकिद्ध्य१स्य न इदं वचः सहस्य । तं त्वा
सुशिप्र दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥४॥

पदार्थः—हे (सहस्य) बल में श्रेष्ठ (सुशिप्र) सुन्दर ठुड्डी और नासिका वाले (दम्पते) स्त्री और पुरुष (अग्ने) विद्वन् आप जैसे (अत्रयः) तीन प्रकार के

दुःखों से रहित जन (स्तोमैः) प्रशंसित व्यवहारों से (वर्धन्ति) वृद्धि को प्राप्त होते हैं और जैसे (अत्रय) काम, क्रोध, और लोभ इन तीन दोषों से रहित जन (गीर्भिः) वाणियों से (शुम्भन्ति) पवित्र करते हैं वैसे (नः) हम लोगों के (इदम्) इस (वचः) वचन को और (अस्य) इसके वचन को (चिकिद्धि) जानिये (तम्) उन (त्वा) आप का हम लोग सत्कार करें ॥४॥

भावार्थः— जैसे पुरुषार्थी मनुष्य सब की वृद्धि करते हैं और उपदेशक जन सब जनों को पवित्र करते हैं वैसे ही सब मनुष्य आचरण करें ॥४॥

इस सूक्त में अग्नि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में बाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य द्युम्नो विश्वचर्षणिर्ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ निचृदनुष्टुप्छन्दः । ३ विराडनुष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले तेईसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्निपदवाच्य वीर के गुणों का उपदेश करते हैं ॥

अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम् ।
विश्वा यश्चर्षणीरभ्या३सा वाजेषु सासहत् ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) वीरपुरुष (यः) जो (विश्वाः) सम्पूर्ण (प्रासहा) अत्यन्त शत्रुओं के बलों को सहने वाली (चर्षणीः) पराक्रम से प्रकाशमान मनुष्यों की सेनाओं को (वाजेषु) संग्रामों में (सासहत्) अत्यन्त सहे और (आसा) मुख से (अभि) सब प्रकार से उपदेश देवे उस शत्रुओं के बल को (सहन्तम्) सहते हुए (द्युम्नस्य) धन वा यश के सम्बन्ध में (रयिम्) धन को आप (आ, भर) सब प्रकार धारण करो ॥१॥

भावार्थः जिस की विजय की इच्छा होवे वह शूरवीरों की सेना उत्तम प्रकार शिक्षा की गई रक्खे और वीररस के उपदेश से उत्साह दिला कर शत्रुओं के साथ लड़ावे ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तमग्ने पृतनाषहं रयिं संहस्व आ भर।
त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः ॥२॥

पदार्थः—हे (सहस्वः) बहुत बल से युक्त (अग्ने) राजन् जो (हि) निश्चय से (सत्यः) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ (अद्भुतः) आश्चर्ययुक्त गुण, कर्म और स्वभाववाला जन (गोमतः) बहुत धेनु और पृथिव्यादिकों से युक्त (वाजस्य) सुख और धन आदि का (दाता) देने वाला होवे (तम्) उस (पृतनाषहम्) सेना सहने वाले को और (रयिम्) धन को (त्वम्) आप (आ, भर) सब ओर से धारण कीजिये ॥२॥

भावार्थः जो राजा सत्यवादी विद्वानों और विचित्र विद्यायुक्त, दृढ़ और उदार अर्थात् उत्तम आशययुक्त शूरवीरों का धारण पोषण करे वही विजय और लक्ष्मी को प्राप्त होवे ॥२॥

फिर वीर गुणों को कहते हैं॥

विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः।
होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥३॥

पदार्थः—हे राजन् जो (विश्वे) सम्पूर्ण (सजोषसः) तुल्य प्रीति के सेवने वाले (जनासः) प्रसिद्ध उत्तम आचरणों से युक्त (वृक्तबर्हिषः) अग्निहोत्र करने वाले और यज्ञ करने वाले के सदृश सम्पूर्ण विद्याओं में कुशल जन (हि) ही (सद्मसु) राजगृहों अर्थात् राजदरबारों में (होतारम्) दाता और (प्रियम्) सुन्दर (त्वा) आप का आश्रय करते हैं वे (पुरु) बहुत (वार्या) स्वीकार करने योग्य धन आदिकों को (व्यन्ति) प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन्! जो राज्य की उन्नति में प्रीति करने वाले और धर्मिष्ठ भृत्य आप को प्राप्त होवें उन सबका सत्कार करके निरंतर रक्षा करो ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं॥

स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥४॥

पदार्थः—हे (शुक्र) सामर्थ्ययुक्त (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान जो (विश्वचर्षणि) संपूर्ण विद्याओं का प्रकाश (एषु) इन (क्षयेषु) निवासस्थानों में (अभिमातिः) अभिमान जिस से हो उस (सहः) बल को (दधे) धारण करता

(सः, हि) वही (स्मा) निश्चय से जीतने वाला होता है इस से आप (नः) हम लोगों के लिये (रेवत्) प्रशस्त धन से युक्त पदार्थ को (दीदिहि) दीजिये और हे (पावक) पवित्र, पवित्राचरण से हम लोगों के लिये (द्युमत्) प्रकाशयुक्त का (आ, दीदिहि) प्रकाश कीजिये ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य पूर्ण शरीर और आत्मा के बल को धारण करते वे सब के लिये सुख दे सकते हैं ॥४॥

इस सूक्त में अग्नि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में तेईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य चतुर्विंशतितमस्य सूक्तस्य बन्धुः सुबन्धुः श्रुतबन्धुर्विप्रबन्धुश्च गोपायना लोपायना वा ऋषयः। अग्निर्देवता। १। २ पूर्वार्द्धस्य साम्नी बृहत्युत्तरार्द्धस्य भुरिग्बृहती। ३। ४ पूर्वार्द्धस्योत्तरार्द्धस्य भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः॥

अब चार ऋचा वाले चौबीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्निपदवाच्य राजविषय को कहते हैं॥

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ॥१॥
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) राजन् (त्वम्) आप (नः) हम लोगों के हम लोगों को वा हम लोगों के लिये (अन्तमः) समीप में वर्त्तमान (शिवः) मंगलकारी (वरूथ्यः) उत्तम गृहों में उत्पन्न (वसुः) वसाने वाले (वसुश्रवाः) धन और धान्य से युक्त (अग्नि) अग्नि के सदृश मंगलकारी (उत) और (त्राता) रक्षक (भवा) हूजिये और जिस (द्युमत्तमम्) अत्यन्त प्रकाशयुक्त (रयिम्) धन को आप (अच्छा) उत्तम प्रकार (नक्षि) व्याप्त हूजिये और उसको हम लोगों के लिये (दाः) दीजिये ॥१॥२॥

भावार्थः—हे राजन्! जैसे परमात्मा सब में अभिव्याप्त सबका रक्षक और सब के लिये मंगलदाता, सब पदार्थों का दाता और सुखकारी है वैसे ही राजा को होना चाहिये ॥१॥२॥

अब अग्निपदवाच्यविद्वान् के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

स नों बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णों अघायतः समस्मात् ॥३॥

तं त्वां शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥४॥

पदार्थः—हे (शोचिष्ठ) अत्यन्त शुद्ध करने और (दीदिवः) सत्य के जनाने वाले अग्नि के सदृश तेजस्विजन (सः) वह आप (नः) हम लोगों को (बोधि) बोध दीजिये और (नः) हम लोगों के (हवम्) पढ़े हुए विषय को (श्रुधी) सुनिये (समस्मात्) सब (अघायतः) आत्मा से पाप के आचरण करते हुए से हम लोगों की (उरुष्या) रक्षा कीजिये (तम्) उन (त्वा) आप को (सखिभ्यः) मित्रों से (सुम्नाय) सुख के लिये हम लोग (नूनम्) निश्चित (ईमहे) याचना करते हैं ॥३॥४॥

भावार्थः—सब प्रजा और राजजनों को चाहिये कि राजा के प्रति यह कहें कि आप सब अपराधों से स्वयं पृथक् होके और हम लोगों की रक्षा करके विद्या का प्रचार और धार्मिक मित्रों के लिये सुख की वृद्धि करके दुष्टों को निरन्तर दण्ड दीजिये ॥३॥४॥

इस सूक्त में अग्निपदवाच्य ईश्वर अर्थात् राजा और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में चौबीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य वसूयव आत्रेया ऋषयः । अग्निर्देवता । १ । ८ निचृदनुष्टुप् । २ । ५ । ६ । ९ अनुष्टुप् । ३ । ७ विराडनुष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले पच्चीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि विषय को कहते हैं ॥

अच्छां वो अग्निमवसे देवं गांसि स नो वसुः ।

रासत्पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विषः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप जिस (देवम्) प्रकाशमान (अग्निम्) अग्निकी (वः) आप लोगों के (अवसे) रक्षण आदि के लिये (अच्छा) उत्तम प्रकार (गासि) प्रशंसा करते हो (सः) वह (वसुः) द्रव्यदाता (ऋषूणाम्) वेदमन्त्रार्थं जानने वालों के (ऋतावा) सत्य का विभाग करने वाला (पुत्रः) सन्तानरूप (द्विषः) शत्रुओं के

(पर्षति) पार जाता है अर्थात् उनको जीतता है वैसे ही (नः) हम लोगों के लिये (रासत्) देता है अर्थात् विजय दिलाता है ॥१॥

भावार्थः—जैसे विद्वानों का श्रेष्ठ पुत्र विद्वान् होकर तथा लोभ आदि दोषों का त्याग करके पितृ आदिकों को सुख देता है वैसे ही अग्नि उत्तम प्रकार सिद्ध किया गया सब को सुख देता है ॥१॥

अब अग्निदृष्टान्त से राज विषय को कहते हैं ॥

स हि सत्यो यं पूर्वे चिद्देवासश्चिद्यमीधिरे ।
होतारं मन्द्रजिह्वमित्सुदीतिभिर्विभावसुम् ॥२॥

पदार्थः—(पूर्वे) प्राचीन (देवासः) विद्वान् जन (यम्) जिस (होतारम्) देने वाले (मन्द्रजिह्वम्) प्रशंसनीय जिह्वा से युक्त (सुदीतिभिः) उत्तम प्रकाशों के सहित वर्त्तमान को (चित्) और (विभावसुम्) प्रकाशित धन से युक्त अग्नि के सदृश वर्त्तमान (यम्) जिस राजा को (चित्) निश्चय से (इत्) ही (ईधिरे) प्रकाशित करते हैं (सः, हि) वही (सत्यः) सज्जनों में श्रेष्ठ पुरुष राज्य करने को योग्य है ॥२॥

भावार्थः—जिस राजा का यथार्थवक्ता जन सत्कार करें वही निरन्तर राज्य की रक्षा और वृद्धि करने को योग्य हो ॥२॥

अब अग्निसादृश्य से विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।
अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ॥३॥

पदार्थः—हे (वरेण्य) स्वीकार करने योग्य (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (सः) वह आप (धीती) धारणावाली (वरिष्ठया) अत्यन्त स्वीकार करने योग्य (श्रेष्ठया) अति उत्तम (सुमत्या) सुन्दर बुद्धि से (नः) हम लोगों के लिये (रायः) धनों को (दिदीहि) दीजिये (सुवृक्तिभिः) उत्तम वर्जनवाली क्रियाओं से (च) भी (नः) हम लोगों की निरन्तर वृद्धि कीजिये ॥३॥

भावार्थः—जो उत्तम बुद्धि की इच्छा करते वा उत्तम बुद्धि को अन्य जनों के लिये देते हैं वे ही सब लोगों से सत्कार करने योग्य हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्त्तेष्वाविशन् ।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अग्निः) अग्नि के सदृश वर्त्तमान तेजस्वी विद्वान् (देवेषु) विद्वानों वा पृथिवी आदिकों में और जो (अग्निः) बिजुलीरूप अग्नि (मर्त्तेषु) मरणधर्म्म वाले मनुष्य आदिकों में और जो (हव्यवाहनः) हवन करने योग्य पदार्थों को धारण करने वाला (अग्निः) सूर्य्यादिरूप अग्नि (नः) हम लोगों में (आविशन्) प्रविष्ट हुआ (राजति) प्रकाशित होता है उस (अग्निम्) अग्नि को (धीभिः) बुद्धियों से आप लोग (सपर्य्यत) सेवो अर्थात् कार्य्य में लाओ ॥४॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जो अनेक प्रकार का अग्नि आप लोगों से जाना जाय अर्थात् अनेक प्रकार के अग्नि का आप लोगों को परिज्ञान हो तो क्या क्या सुख न पाया जाय ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।
अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥५॥

पदार्थः—जो (अग्निः) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वान् (दाशुषे) दानशील जन के लिये (तुविश्रवस्तमम्) अत्यन्त बहुत अन्न और श्रवण से युक्त और (तुविब्रह्माणम्) चार वेद के जानने वाले बहुत विद्वानों से युक्त (उत्तमम्) अत्यन्त श्रेष्ठ (अतूर्त्तम्) नहीं हिंसित और (श्रावयत्पतिम्) सुनाते हुए पालन करने वाले से युक्त (पुत्रम्) सन्तान को (ददाति) देता है वही अत्यन्त आदर करने योग्य होता है ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! उन लोगों का ही आप लोग सत्कार करो जो सब को विद्वान् और धार्मिक करते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो वह (अग्निः) परमेश्वर वा विद्वान् (सत्पतिम्) श्रेष्ठों के पालन करने वाले को (ददाति) देता है (यः) जो (अग्निः) अग्नि (युधा) युद्ध करती हुई सेना और (नृभिः) नायक अर्थात् अग्रणी मनुष्यों से (रघुष्यदम्) लघुगमनवान् (जेतारम्) जीतने और (अपराजितम्) नहीं हारने वाले राजा को (अत्यम्) मार्ग को व्याप्त होते घोड़े को जैसे वैसे (सासाह) सहता है ॥६॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जैसे ईश्वर धर्मिष्ठ जनों के लिये धर्म्मात्मा राजा को देता है और जैसे उत्तम सेना विद्वान् शूरवीर और धर्म्मात्मा

सेनाध्यक्ष को प्राप्त होकर शत्रुओं को जीतती है वैसे ही वह सब लोगों को आदर करने योग्य है ॥६॥

अब अग्निपदवाच्य राजदृष्टान्त से विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।

महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥७॥

पदार्थः—हे (विभावसो) स्वयं प्रकाशित (यत्) जिस (वाहिष्ठम्) अतिशय प्राप्त करने वाले का (अग्नये) राजा के लिये (बृहत्) बड़ा (अर्च) सत्कार करो (तत्) उस की (महिषीव) बड़ी अर्थात् पटरानी के सदृश सेवा करो और जो (त्वत्) आप से (रयिः) धन और (त्वत्) आप से (वाजाः) अन्न आदि (उत्, ईरते) उत्तमता से उत्पन्न होते हैं उन को हम लोग प्राप्त होवें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे पतिव्रता रानी अपने पति का निरन्तर सत्कार करती और उससे उत्पन्न हुए अत्यन्त सुख को प्राप्त होती है वैसे ही मनुष्य विद्वानों का आदर करके उनसे उत्पन्न हुई अर्थात् उन के सम्बन्ध से प्रकट हुई वृद्धि को प्राप्त होकर निरन्तर सुखी हों ॥७॥

अब मेघ दृष्टान्त से विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

तवं द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।

उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त्त त्मना दिवः ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वन् (तव) आप के (द्युमन्तः) बहुत प्रकाश वाली (अर्चयः) किरणें हैं उन से जो (ग्रावेव) मेघ के सदृश (बृहत्) बहुत सत्य (उच्यते) कहा जाता (उतो) और (ते) आप का (यथा) जैसे (तन्यतुः) बिजुली वैसे (स्वानः) शब्द वर्त्तमान है इस कारण (त्मना) आत्मा से (दिवः) प्रकाशयुक्त पदार्थों को तुम सब (अर्त्त) प्राप्त होओ ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मेघ के सदृश गम्भीर शब्द से गूढ़ अर्थों के उपदेश देते और बिजुली के सदृश पुरुषार्थ करते हैं वे सम्पूर्ण सुखों को प्राप्त होते हैं ॥८॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।

स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वन् (वसूयवः) अपने धन की इच्छा करते हुए हम लोग (अग्निम्) बिजुली के सदृश तेजस्वी विद्वान् और (सहसानम्) सब को सहने वाले आप की (ववन्दिम) प्रशंसा करें (सः, एवा) वही (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धि वा उत्तम कर्म्मों से युक्त आप (नावेव) जैसे नौका से समुद्र के वैसे (नः) हम लोगों की (विश्वाः) सम्पूर्ण (द्विषः) द्वेषयुक्त क्रियाओं के (अति, पर्षत्) पार करें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०–जैसे बड़ी नौका से समुद्र आदि के पार सुखपूर्वक जाते हैं वैसे ही विद्वानों के सङ्ग से सब दोषों से साधारणपन से दूर को प्राप्त होते हैं ॥९॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में पच्चीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य षड्विंशतितमस्य सूक्तस्य वसूयव आत्रेया ऋषयः । अग्निर्देवता । १ । ९ । गायत्री । २ । ३ । ४ । ५ । ६ । ८ निचृद्गायत्री । ७ विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले छब्बीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्निपदवाच्य विद्वान् के गुणों को कहते हैं ॥

अग्ने॑ पावक रो॒चिषा॑ म॒न्द्रया॑ देव जि॒ह्वया॑ ।

आ दे॒वान् व॑क्षि॒ यक्षि॑ च ॥१॥

पदार्थः—हे (पावक) पवित्र और शुद्धि करने तथा (देव) विद्या के देने वाले (अग्ने) विद्वन् जिस से आप (रोचिषा) अति प्रीति से युक्त (मन्द्रया) विज्ञान और आनन्द देने वाली (जिह्वया) वाणी से इस संसार में (देवान्) विद्वानों और श्रेष्ठ गुणों वा पदार्थों को (आ, वक्षि) सब ओर से प्राप्त होते वा प्राप्त कराते हो तथा (यक्षि) सत्कार करते और मिलते (च) भी हो इस से सत्कार करने योग्य हो ॥१॥

भावार्थः जो प्रीति से सत्य उपदेशों को कर और विद्वान् तथा श्रेष्ठ गुणों को प्राप्त होकर अन्यों को प्राप्त कराते हैं वे ही आदर करने योग्य होते हैं ॥१॥

अब अग्निगुणों को कहते हैं ॥

तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम् । देवाँ आ वीतये वह ॥२॥

पदार्थः—हे (घृतस्नो) घृत को शुद्ध करने वाले (चित्रभानो) अद्भुतप्रकाश-युक्त विद्वान् जैसे घृत को स्वच्छ करने वाला और अद्भुतप्रकाश से युक्त अग्नि (वीयते) प्राप्ति के लिये (स्वर्दृशम्) जो सूर्य्य से देखे गये उन (त्वा) आप को धारण करता है (तम्) उस को हम लोग (ईमहे) याचते हैं वैसे आप (देवान्) दिव्य गुण का विद्वानों को (आ, वह) सब ओर से प्राप्त कीजिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो बहुत उत्तम गुणयुक्त अग्नि को मनुष्य विशेष कर के जानें तो बहुत सुख को प्राप्त हों ॥२॥

फिर अग्नि के सादृश्य से विद्वान् के गुणों को कहते हैं ॥

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि । अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥३॥

पदार्थः हे (कवे) विद्वन् (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान ! हम लोग (अध्वरे) अहिंसारूप यज्ञ में (वीतिहोत्रम्) व्याप्ति का ग्रहण जिस से उस (द्युमन्तम्) प्रकाश वाले अग्नि के सदृश जिन (बृहन्तम्) महान् (त्वा) आप को (सम्, इधीमहि) उत्तम प्रकार प्रकाशित करें वह आप हम लोगों को शुद्ध विद्या से प्रकाशित करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० -मनुष्यों को चाहिये कि शिल्प-विद्या की सिद्धि के लिये अग्नि का सम्प्रयोग अवश्य करें ॥३॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये । होतारं त्वा वृणीमहे ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जिन (होतारम्) देने वाले (त्वा) आप का हम लोग (वृणीमहे) स्वीकार करते हैं वह आप (हव्यदातये) देने योग्य दान के लिये (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (देवेभिः) विद्वानों के साथ (आ, गहि) प्राप्त हूजिये ॥४॥

भावार्थः -मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों का सत्कार कर उन्हें बुलावें और विद्वान् जन भी विद्वानों के साथ प्राप्त हो कर निरन्तर सत्य का उपदेश करें ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह । देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् आप (देवैः) विद्वानों के साथ (बर्हिषि) अति

उत्तम (सत्सि) सभा में (सुन्वते) यज्ञ करते हुए (यजमानाय) दाता जन के लिये (सुवीर्य्यम्) उत्तम पराक्रम को (आ, वह) प्राप्त हूजिये और यज्ञ को (आ) अच्छे प्रकार करिये ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! पालन करने वाले जन के लिये आप लोग सुख सदा ही दीजिये और सब की सभा से सब व्यवहारों का निश्चय कीजिये ॥५॥

फिर अग्निसादृश्य से विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

समिधानः संहस्रजिदग्ने धर्म्माणि पुष्यसि ।
देवानां दूत उक्थ्यः ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश दुष्टों के जलाने वाले जैसे (समिधानः) निरन्तर प्रकाशित हुआ अग्नि (देवानाम्) विद्वानों के (दूतः) समाचार को दूर व्यवहरता वा दूर पहुँचाता और ले आता है वैसे (सहस्रजित्) असङ्ख्यों के जीतने वाले (उक्थ्यः) प्रशंसा करने योग्य विद्वानों का निरन्तर प्रकाश करने, समाचार को दूर व्यवहरने वा दूर पहुंचाने और लाने वाले होते हुए जिस से (धर्म्माणि) धर्म्म-सम्बन्धी कर्म्मों को (पुष्यसि) पुष्ट करते हो इस से सत्कार करने योग्य हो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० - मनुष्य विद्या से अग्नि के गुणों को जान के कार्य्य की सिद्धि के लिये जिस अग्नि का सम्प्रयोग करते हैं वह अग्नि मनुष्य के तुल्य कार्य्य की सिद्धि को करता है ॥६॥

अब अग्निधारणविषय को कहते हैं ॥

न्य१ग्निं जातवेदसं होत्रवाहं यविष्ठ्यम् । दधाता देवमृत्विजम् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आप लोग (यविष्ठ्यम्) अतिशयित युवा जनों में प्रसिद्ध हुए (ऋत्विजम्) यज्ञसाधक और (देवम्) दिव्यवाले के सदृश (जातवेदसम्) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (होत्रवाहम्) हवन की हुई वस्तुओं को धारण करने वाले (अग्निम्) अग्नि को (नि, दधाता) निरन्तर धारण करो ॥७॥

भावार्थः—जैसे शिल्पविद्या के जानने वाले जन अपने कार्य्य को सिद्ध करते हैं वैसे ही अग्नि आदि भी कार्य की सिद्धि करते हैं ॥७॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः । स्तृणीत बर्हिरासदे ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वानो जो (देवव्यचस्तमः) उत्तम पदार्थों में अतिशय करके

व्याप्त (यज्ञः) सत्य और संगत व्यवहार (अद्या) आज (आसदे) सब प्रकार से ठहरने वा जाने के अर्थ (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (नुषक्) अनुकूलता से (एतु) प्राप्त हो उस को आप लोग (प्र स्तृणीत) अच्छे प्रकार आच्छादित करो अर्थात् सुरक्षित रक्खो ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य श्रेष्ठों की सङ्गति कर के शिल्प विद्या की उन्नति करते हैं वे सब के हितैषी होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

एदं मरुतो अश्विना मित्रः सीदन्तु वरुणः ।

देवासः सर्वया विशा ॥९॥

पदार्थः—(मरुतः) मनुष्य (मित्रः) मित्र (वरुणः) सब में उत्तम (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक तथा (देवासः) विद्वान् जन (सर्वया) सम्पूर्ण (विशा) प्रजा से (इदम्) इस आसन पर (आ,सीदन्तु) विराजें ॥९॥

भावार्थः—राजा और श्रेष्ठ जन न्यायासन पर विराज के अन्याय और पक्षपात का त्याग और न्याय कर के प्रजाओं के प्रिय होवें ॥९॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में छब्बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य त्र्यरुणस्त्रैवृष्णस्त्रसदस्युश्च पौरुकुत्स्य अश्वमेधस्य भारतोऽत्रिर्वा ऋषयः । १—५ अग्निः । ६ इन्द्राग्नी देवते । १ । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ५ । ६ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ।

अब छः ऋचा वाले सत्ताईसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अग्निसादृश्य से विद्वान् के गुणों को कहते हैं ॥

अनस्वन्ता सत्पतिर्मामहे मे गावा चेतिष्ठो असुरो मघोनः ।

त्रैवृष्णो अग्ने दशभिः सहस्रैर्वैश्वानर त्र्यरुणश्चिकेत ॥१॥

पदार्थः हे (वैश्वानर) सब में प्रकाशमान (अग्ने) अग्नि के सदृश (सत्पतिः) श्रेष्ठ जनों के पालने वाले (दशभिः) दश (सहस्रैः) सहस्रों के साथ

(अनस्वन्ता, उत्तम शकट आदि वाहनों से युक्त (गावा) गौ अर्थात् वाणी के साथ (चेतिष्ठः) अत्यन्तता से बोध देने वाले (असुरः) प्राणों में रमते हुए (त्रैवृष्णः) जो तीनों में वर्त्तते वही (त्र्यरुणः) तीन गुणों से युक्त हुए आप (मे) मेरे (मघोनः) अत्यन्त धनयुक्त पुरुषों को (चिकेत) जानें उन का मैं (मामहे) सत्कार करूं ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष शकट आदि वाहनों के चलाने में चतुर और अनेक सहस्रों पुरुषों के साथ मेल करते हैं वे धन धान्य और पशुओं से युक्त होते हैं ॥१॥

फिर विद्वान् के गुणों को कहते हैं ॥

यो मे॑ श॒ता च॑ विंश॒तिं च॒ गोनां॒ हरी॑ च यु॒क्ता सु॒धुरा॒ ददा॑ति ।
वैश्वा॑नर सुष्टु॒तो वा॑वृधा॒नोऽग्ने॒ यच्छ॒ त्र्य॑रुणाय॒ शर्म॑ ॥२॥

पदार्थः - हे (वैश्वानर) सब में प्रकाशमान (अग्ने) विद्वन् (यः) जो (सुष्टुतः) उत्तम प्रकार प्रशंसा किया गया (वावृधानः) अत्यन्त बढ़ता अर्थात् वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (मे) मेरे (गोनाम्) गौओं के (शता) सैकड़ों (च) और (विंशतिम्) वीशों संख्या वाले समूह को (च) और (युक्ता) युक्त (सुधुरा, उत्तम धुरा जिन में उन (हरी, ले चलने वाले घोड़ों को (च) भी (ददाति, देता है उस (त्र्यरुणाय) तीन गुणों वाले पुरुष के लिये आप (शर्म्म) गृह वा सुख को (यच्छ दीजिये ॥२॥

भावार्थः- हे मनुष्यो ! जो गौ घोड़ा और हस्ति आदि पशुओं के पालन करने वाले होवें उन के लिये यथायोग्य मासिक दीजिये ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ए॒वा ते॑ अग्ने सुम॒तिं च॑का॒नो नवि॑ष्ठाय नव॒मं त्र॒सद॑स्युः ।
यो मे॒ गिर॑स्तुविजा॒तस्य॑ पू॒र्वीर्यु॒क्तेना॒भि त्र्य॑रुणो गृ॒णाति॑ ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वन् (यः) जो (ते) आप की (सुमतिम्) सुन्दर बुद्धि को और (तुविजातस्य) बहुतों में प्रकट हुए (मे) मेरी (गिरः) वाणियों की (चकानः) कामना करता तथा (नविष्ठाय) अतिशय नवीन जन के लिये (नवमम्) नव के पूर्ण करने वाले की कामना करता हुआ (त्रसदस्युः) त्रसदस्यु अर्थात् जिस से चोर डरते ऐसा (युक्तेन, क्रिया योगाभ्यास जिस से ऐसे मन से (त्र्यरुणः) तीन मन शरीर और आत्मा के सुखों को प्राप्त होता हुआ जन (पूर्वीः) अनादि काल से सिद्ध वाणियों को (अभि, गृणाति) सब ओर से कहता है (एवा) उसी का आप और हम निरन्तर सत्कार करें ॥३॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! आप और मैं जो हमारे समीप से गुणों के ग्रहण करने की इच्छा करता है उस को हम दोनों विद्याग्रहण करावें ॥३॥

अब उपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये ।
दद्दृचा सनिं यते दद्न्मेधामृतायते ॥४॥

पदार्थः—(यः) जो (अश्वमेधाय) शीघ्र पवित्र (सूरये) विद्वान् (मे) मेरे लिये (ऋचा) ऋग्वेदादि से (सनिम्) सेवन करने योग्य तथा सत्य और असत्य की विभाग करने वाली वाणी को (ददत्) देवे और (ऋतायते) सत्य की कामना करते हुए (यते) यत्न करने वाले मेरे लिये (मेधाम्) बुद्धि को (ददत्) देवे उस का सत्कार आप करो (इति) इस प्रकार से मेरे प्रति जो (प्रवोचति) उपदेश देता है उसका उपकार मैं मानता हूं ॥४॥

भावार्थः—उपदेशक जन जब अन्य जनों के प्रति उपदेश देवें तब इस प्रकार, वेद और शास्त्रों में कहे और यथार्थवक्ताओं से आचरण किये गये इस विषय का हम आप लोगों के लिये उपदेश देवें इस प्रकार प्रत्युपदेश कहें ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः ।
अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः ॥५॥

पदार्थः—(यस्य) जिस (अश्वमेधस्य) चक्रवर्त्ति राज्यपालन की विद्या की (शतम्) असङ्ख्य (परुषाः) कठोर (उक्षणः) मधुर उपदेशों से सींचती और (सोमाइव) सोमलतादिकों के सदृश (दानाः) देती हुई (त्र्याशिरः) जीव अग्नि और पवनों से भोगी गईं (मा) मुझको (उद्धर्षयन्ति) उत्साहित करती हैं वे वाणियां मुझ से सहने योग्य हैं ॥५॥

भावार्थः—जो विद्या की इच्छा करें वे सबकी मर्म्म भेदने वाली वाणियों को सहें और चन्द्रमा के सदृश शान्त होके विद्या और विनय को ग्रहण करें ॥५॥

अब उपदेश विषय में राज्योपदेश विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्य्यम् ।
क्षत्रं धारयतं बृहद्दिवि सूर्य्यमिवाजरम् ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली के सदृश अध्यापक और उपदेशक जनो (शतदाव्नि) असङ्ख्य पदार्थों को देने वाले (अश्वमेधे) राज्य पालन व्यवहार और (दिवि) प्रकाशयुक्त अन्तरिक्ष में (सूर्य्यमिव) सूर्य्य के सदृश (सुवीर्य्यम्) उत्तम पराक्रम तथा बलयुक्त और (अजरम्) नाश से रहित (बृहत्) बड़े (क्षत्रम्) क्षत्रियों के कुल वा राज्यदेश को (धारयतम्) धारण करो अर्थात् यथायोग्य उपदेश दीजिये ॥६॥

भावार्थः—हे राजा आदि जनो ! प्रयत्न से आप लोग यथार्थवक्ता बहुत अध्यापक और उपदेशकों का अपने और दूसरे के राज्य में प्रचार कराइये जिस से आप लोगों का राज्य नाशरहित होवें ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि विद्वान् और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में सत्ताईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्याष्टविंशतितमस्य सूक्तस्य विश्ववारात्रेयी ऋषिः । अग्निर्देवता । १ त्रिष्टुप् । २ । ४ । ५ । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले अट्ठाईसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि के गुणों को कहते हैं ॥

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (समिद्धः) प्रज्वलित किया गया (अग्निः) अग्नि (दिवि) प्रकाश में (शोचिः) बिजुलीरूप प्रकाश का (अश्रेत्) आश्रय करता है और (उर्विया) अनेक रूप वाले प्रकाश से (उषसम्) प्रभातकाल के (प्रत्यङ्) प्रति चलने वाला (वि, भाति) विशेष करके शोभित होता है और (विश्ववारा, संसार को प्रकट करने वाली (देवान्) श्रेष्ठ गुणों को (ईळाना) प्रशंसित करती हुई (घृताची) रात्रि और (प्राची) पूर्व दिशा (हविषा) दान और (नमोभिः) अन्नादि पदार्थों के साथ (एति) प्राप्त होती है उस अग्नि को और उस विश्ववारा को आप लोग विशेष करके जानो ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो यह सूर्य्य देख पड़ता है वह अनेक तत्त्वों के द्वारा ईश्वर से बनाया गया और बिजुली के आश्रित है और जिस के

प्रभाव से पूर्व आदि दिशायें विभक्त की जाती हैं और रात्रियां होती हैं उस अग्निरूप सूर्य को जान के संपूर्ण कृत्य सिद्ध करो ॥१॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृण्वन्तं सचसे स्वस्तये ।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत्पुरः ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जिससे (समिध्यमानः) उत्तम प्रकार निरन्तर प्रकाशमान आप (अमृतस्य) कारण वा जल के मध्य में (राजसि) प्रकाशित होते हो और (स्वस्तये) सुख के लिये (हविः) खाने योग्य वस्तु को (कृण्वन्तम्) करते हुए का (सचसे) सम्बन्ध करते हो और आप (विश्वम्) सम्पूर्ण (द्रविणम्) धन वा यश का (धत्ते) धारण करते हो तथा (यम्) जिन को (आतिथ्यम्) अतिथि सत्कार (इन्वसि) व्याप्त होता है और (पुरः) पहिले (च) भी आप (नि, धत्ते) निरन्तर धारण करते हो इस से (सः, इत्) वही आप सत्कार करने योग्य हो ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वान् जनो ! आप लोग विद्या और विनय से प्रकाशमान अतिथियों की दशा को धारण किये हुए सब स्थानों में भ्रमण करके संपूर्ण जनों के लिये सत्य का उपदेश देते हुए यश को निरन्तर पसारिये ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥३॥

पदार्थः—हे (शर्ध) प्रशंसित बल से युक्त (अग्ने) विद्वन् (तव) आप के (महते) बड़े (सौभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य्य के लिये (उत्तमानि) श्रेष्ठ (द्युम्नानि, यश वा धन (सन्तु) हों और तुम (सुयमम्) सुन्दर सत्य आचरणों का ग्रहण जिसमें ऐसे (जास्पत्यम्) स्त्री के पतिपने को (आ, कृणुष्व) अच्छे प्रकार करिये और (शत्रूयताम्) शत्रु के सदृश आचरण करते हुओं की (महांसि) बड़ी सेनाओं के (सम्, अभि, तिष्ठा) सम्मुख स्थित हूजिये ॥३॥

भावार्थः—हे धर्म्मिष्ठो ! हम लोग आप के लिये बड़े ऐश्वर्य्य की इच्छा करें और आप दोनों स्त्री और पुरुष जितेन्द्रिय धर्म्मात्मा बलवान् और पुरुषार्थी होकर सम्पूर्ण दुष्टों की सेना को जीतिये ॥३॥

अब विद्वद्विषय में राज्य प्रकार को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।

वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) राजन् जो तुम (वृषभः) बलिष्ठ वा उत्तम और (द्युम्नवान्) यशस्वी (असि) हो और (अध्वरेषु) राज्य के पालन आदि व्यवहारों में (सम्, इध्यसे) प्रकाशित किये जाते हो उन (समिद्धस्य) प्रकाशमान और (प्रमहसः) प्रकृष्ट बड़े (तव) आप के (श्रियम्) धन की मैं (वन्दे) प्रशंसा वा सत्कार करता हूं ॥४॥

भावार्थः—जो राजा अग्नि आदि के गुणों से युक्त हुआ अच्छे न्याय को यथावत् करता है वह यज्ञों में अग्नि के सदृश सर्वत्र प्रकट यश वाला होता है ॥४॥

फिर अग्नि दृष्टान्त से पूर्वोक्त विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

समिद्धो अग्न आहुत देवान्यक्षि स्वध्वर । त्वं हि हव्यवाळसि ॥५॥

पदार्थः—हे (स्वध्वर) उत्तम प्रकार अहिंसा से युक्त (आहुत) सत्कृत (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान जिस प्रकार से (समिद्धः) प्रज्वलित किया गया (हि) जिस कारण (हव्यवाट्) पृथिव्यादिकों की प्राप्ति करने वाला अग्नि है वैसे (त्वम्) आप (देवान्) श्रेष्ठ गुणों वा विद्वानों का (यक्षि) सत्कार करते हो और पालन करने वाले (असि) हो इस से श्रेष्ठ हो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य आदि रूप से अग्नि सब की रक्षा करता है वैसा ही राजा होता है ॥५॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥६॥

पदार्थः हे विद्वानो आप लोग (प्रयति) प्रयत्न से साध्य (अध्वरे) शिल्पादि व्यवहार में (हव्यवाहनम्) उत्तम पदार्थों को प्राप्त कराने वाले (अग्निम्) अग्नि का (दुवस्यत) परिचरण करो अर्थात् युक्ति से उसको कार्य्य में लगाओ और (वृणीध्वम्) स्वीकार करो तथा अन्य जनों के लिये (आ, जुहोता) आदान करो अर्थात् ग्रहण करो ॥६॥

भावार्थः—विद्यार्थिजन जैसे विद्वान् जन शिल्पविद्या का स्वीकार करते हैं वैसे स्वयं भी स्वीकार करें ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में अट्ठाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चदशर्चस्यैकोनत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—१५ गौरिवीतिः शाक्त्य ऋषिः । १—८ । ९१—१५ । इन्द्रः । ९२ इन्द्र उशना वा देवता । १ भुरिक् पङ्क्तिः । ८ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ४ । ७ त्रिष्टुप् । ३ । ५ । ६ । ९ । १० । ११ निचृत्त्रिष्टुप् । १२ । १३ । १४ । १५ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले उनतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजगुणों को कहते हैं ॥

त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त ।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त करने वाले राजन् जो (मनुषः) मनुष्य (देवताता) विद्वानों से करने योग्य व्यवहार में (दिव्या) श्रेष्ठ (त्री) तीन (रोचना) प्रकाशकों को (धारयन्त) धारण करते हैं (अर्यमा) व्यवस्थापक अर्थात् किसी कार्य्य को रीति से संयुक्त करने वाला (त्री) तीन सुखों को धारण करता है और जो (पूतदक्षाः) पवित्र बल वाले (मरुतः) मनुष्य (त्वा) आप का (अर्चन्ति) सत्कार करते हैं (एषाम्) इनके (त्वम्) आप (ऋषिः) मन्त्र और अर्थों के जानने वाले (धीरः) धीर (असि) हो ॥१॥

भावार्थः—जो तीन कर्म्म, उपासना और ज्ञान को धारण करके पवित्र होते हैं वे ही बलवान् होकर सत्कृत होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अनु यदीं मरुतो मन्दसानमार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्य ।
आदत्त वज्रमभि यदहिं हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ ॥२॥

पदार्थः—हे राजन् (यत्) जो (मरुतः) मनुष्य (मन्दसानम्) स्तुति किये गए (सुतस्य) प्राप्त राज्य की (पपिवांसम्) रक्षा करने वाले (यत्) जिन (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त आप का (आर्चन्) सत्कार करें उनका वह आप (अनु, आ, अदत्त) अनुकूलता से ग्रहण करते हैं और जैसे सूर्य (वज्रम्) वज्ररूप किरण का

(अभि) सम्मुख ताड़न करके (अहिम्) मेघ का (हन्) नाश करता है तथा (सर्त्तवै) जाने के लिये (यह्वीः) बड़ी नदियों को और (अपः) जलों को (असृजत्) उत्पन्न करता है वैसे (ईम्) सब ओर से (उ) तर्कवितर्कपूर्वक तुम न्याय करो ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य राजा का सत्कार करते हैं उनका राजा भी सत्कार करे और जैसे सूर्य मेघ का नाश कर और जल का प्रवाह कर के सर्व जगत् की रक्षा करता है वैसे राजा दुष्टों का नाश करके श्रेष्ठों की रक्षा करे ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ॥३॥

पदार्थः—जिस प्रकार (इन्द्रः) सूर्य्य रस को पीता है वैसे हे राजन् (इन्द्र) प्रकाशमान आप (मे) मेरे (अस्य) और इस के भी (तत्, हि) उसी (सुषुतस्य) अच्छे प्रकार श्रेष्ठ बनाये (सोमस्य) ऐश्वर्य्यकारक पदार्थ के (हव्यम्) खाने योग्य भाग को (पेयाः) पीजिये जिस से (मनुषे) मनुष्यमात्र के लिये आप (गाः) गौ वा उत्तम वाणियों को (अविन्दत्) प्राप्त हों और जैसे (पपिवान्) भूमिस्थजलादि को पान करने वाला सूर्य्य (अहिम्) मेघ का (अहन्) नाश करता है वैसे आप (अस्य) इस राज्य के पालन को करिये (उत) इसी प्रकार हे (ब्रह्माणः) चार वेदों के जानने वाले (मरुतः) मनुष्यो तुम लोग भी आचरण करो ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब वेदों को पढ़कर नहीं खाने और नहीं पीने योग्य वस्तु का वर्ज्जन करके न्यायाधीश के सदृश न्याय और सूर्य्य के सदृश सत्य और असत्य का प्रकाश करते हैं वे महाशय होते हैं ॥३॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आद्रोदसी वितरं वि ष्कभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः ।
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन् ॥४॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (वितरम्) विशेष उलांघना जैसे हो वैसे (वि, स्कभायत्) विशेष करके आकर्षित करता है (आत्) और (संविव्यानः) उत्तम प्रकार व्याप्त होता हुआ (भियसे) भय के लिये (चित्) भी (मृगम्) हरिण को (कः) करता तथा (जिगर्तिम्) प्रशंसा वा निगलने को (अपजर्गुराणः) आच्छादन से अलग करता हुआ (दानवम्) दुष्टप्रकृति

मनुष्य को (अव, हन्) हनन करे वैसे (प्रति, श्वसन्तम्) श्वास लेते हुए प्राणी का निरन्तर प्रतिपालन करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा सूर्य्य के सदृश राज्य का धारण करते हैं वे जैसे सिंह मृग को व्याकुल करता है वैसे दुष्टों को व्याकुल करते हैं वैसा ही वर्त्ताव करके यश को प्रकट करें ॥४॥

अब विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम् ।
यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः ॥५॥

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुत धन से युक्त (यत्) जो (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (पतन्तीः) चलती हुईं (पुरः) पालने वालीं वा आगे से (सतीः) विद्यमान (उपराः) समीप में रमती हुईं (हरितः) हरिद्वर्ण किरणों को (एतशे) घोड़े पर घोड़े के चढ़ने वाले के सदृश (कः) करता है उस की विद्या से (तुभ्यम्) आप के लिये जो (विश्वे) सम्पूर्ण (देवाः) विद्वान् जन (सोमपेयम्) सोम ओषधि के पान करने योग्य रस को (अनु, अददुः) अनुकूल देते हैं वे (अध) इस के अनन्तर (क्रत्वा) बुद्धि से विशेष ज्ञानी होते हैं ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! सूर्य्यमण्डल में अनेक तत्त्वों के विद्यमान होने से अनेक रूप देख पड़ते हैं यह जानना चाहिये ॥५॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नव यदस्य नवतिं च भोगान्त्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत् ।
अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा बाधत द्याम् ॥६॥

पदार्थः—हे राजन् (मघवा) बहुत धन से युक्त आप जैसे सूर्य्य (वज्रेण) वज्र के (साकम्) साथ (अस्य) इस सूर्य्य और जगत् के मध्य में (यत्) जिन (नव) नव और (नवतिम्) नव्वे (भोगान्) भोगों को उत्पन्न करता और अन्धकार आदि का (विवृश्चत्) नाश करता है तथा जैसे (मरुतः) मनुष्य (सधस्थे) समान स्थान में (त्रैष्टुभेन) तीन प्रकार स्तुति किये गए (वचसा) वचन से (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य वाले का (अर्चन्ति) सत्कार करते हैं और (द्याम्) कामना की (च) भी (बाधत) बाधा करते हैं वैसे ही दुःख और दारिद्रय का नाश करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! आप काम की आसक्ति का त्याग करके और न्याय से सबका सत्कार करके असंख्य भोगों को प्रजाओं के लिये धारण कीजिये ॥६॥

फिर सूर्य्यदृष्टान्त से राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि ।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद् वृत्रहत्याय सोमम् ॥७॥

पदार्थः - जैसे (अग्निः) अग्नि और (इन्द्रः) सूर्य्य (तूयम्) शीघ्र (अस्य) इस जगत् के मध्य में (त्री) तीन भुवनों को प्रकाशित करता हुआ (सरांसि) तड़ागों का (पिबत्) पान करता है और (वृत्रहत्याय, मेघ के नाश करने के लिये (सुतम्) वर्षाये गए (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (अपचत्) पचाता है वैसे (सखा) मित्र (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म्म से (सख्ये) मित्र के लिये (साकम्) सहित (मनुषः) मनुष्य के (महिषा) बड़े पशुओं के (त्री) तीन (शतानि) सैकड़ों की रक्षा करें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य ऊपर नीचे और मध्य-भाग में वर्त्तमान स्थूल पदार्थों का प्रकाश करता है वैसे उत्तम मध्यम और अधम व्यवहारों को राजा प्रकट करे और सब के साथ मित्र के सदृश वर्त्ताव करे ॥७॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्री यच्छता महिषाणामघो मास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः ।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवा भरमिन्द्राय यदहिं जघान ॥८॥

पदार्थः—हे राजन् (यत्) जो आप (अघः) नहीं मारने योग्य होते हुए (महिषाणाम्) बड़े पदार्थों के (त्री) तीन (शता) सैकड़ों को (माः) रचिये और हे (सोम्या) चन्द्रमा के गुणों से सम्पन्न (मघवा) बहुत धनवान् होते हुए (त्री) तीन (सरांसि) मेघमण्डल भूमि और अन्तरिक्ष में स्थित पदार्थों को सूर्य के सदृश प्रजाओं का (अपाः) पालन कीजिये और सूर्य्य (यत्) जैसे (अहिम्) मेघ का (जघान) नाश करता है और जैसे (विश्वे) सम्पूर्ण (देवाः) विद्वान् जन (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (कारम्) कर्त्ता के (न) सदृश (भरम्) पालन को (अह्वन्त) कहते हैं वैसे ऐश्वर्य्य के लिये प्रयत्न कीजिये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जैसे पुरुषार्थी जन को सब स्वीकार करते हैं वैसे ही सूर्य ईश्वरीय नियमों से नियत जलरस का ग्रहण करता है जैसे जन बड़े पदार्थों की उत्तेजना से सैकड़ों काम सिद्ध करते हैं वैसे ही राजा प्रजाजनों से बड़े राजकार्य्य को सिद्ध करे ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उशना यत्सहस्त्यै३रयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम् ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् आप और (उशना) कामना करता हुआ जन तुम दोनों (सहस्त्यैः) बलों में उत्पन्न हुए पदार्थों के साथ (जूजुवानेभिः) वेगवाले (अश्वैः) घोड़ों वा अग्नि आदिकों से चलाये गये वाहन पर स्थित हो के (यत्) जिस (गृहम्) गृह को (अयातम्) प्राप्त हूजिये और (अत्र) इस जगत् में (ह) निश्चय से (वन्वानः) याचना करते हुए आप (कुत्सेन) वज्र के सदृश दृढ़ कर्म्म से (देवैः) विद्वानों से (शुष्णम्) बल की (अवनोः) रक्षा करिये और हे मनुष्यो आप लोग इन दोनों के साथ (सरथम्) रथ के साथ वर्त्तमान जैसे हो वैसे निश्चय से (ययाथ) प्राप्त होओ ॥९॥

भावार्थः—जो राजा आदि मनुष्य उत्तम प्रकार श्रेष्ठ होवें वे विमान आदि वाहनों को बना सकें और दुष्ट जनों के मारने को समर्थ होवें ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेऽकः ।
अनासो दस्यूँरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचः ॥१०॥

पदार्थः—हे राजन् आप (सूर्यस्य) सूर्य के सदृश (अन्यत्) अन्य (चक्रम्) चक्र की (प्र, अवृहः) उत्तम वृद्धि करिये और (कुत्साय) वज्र के लिये (अन्यत्) अन्य (वरिवः) सेवन को (यातवे) प्राप्त होने को (अकः) करिये तथा (अनासः) मुख रहित (दस्यून्) दुष्ट चोरों का (वधेन) वध से (अमृणः) नाश करिये और (दुर्योणे) गृह के प्राप्त होने में (मृध्रवाचः) कुत्सित वाणियों वाले जनों को (नि, आवृणक्) निरन्तर वर्जिये ॥१०॥

भावार्थः—हे राजन् ! जैसे सूर्य्य अपने चक्र का आकर्षण से वर्त्ताव करता है वैसे ही विमान आदि वाहनों से राज्य का अनुवर्त्तन करो और चोर तथा दुष्टवाणी वालों का नाश करके राज्य में नहीं चोरी करने वाले और श्रेष्ठ वचनों वाले जनों का सम्पादन कीजिये ॥१०॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन् पक्तीरपिबः सोममस्य ॥११॥

पदार्थः—हे राजन् (गौरिवीतेः) वाणी को विशेष प्राप्त अर्थात् जानने वाले आप के संग से (स्तोमासः) प्रशंसित (अवर्धन्) वृद्धि को प्राप्त हों उन के साथ (वैदथिनाय) संग्राम करने वाले से बनाये गये के लिये शत्रुओं का (अरन्धयः) नाश करो और जो (ऋजिश्वा) सरल कुत्ते के सदृश ही मनुष्य (पिप्रुम्) व्यापक (त्वा) आप को (सख्याय) मित्रपने के लिये (आ चक्रे) अच्छे प्रकार कर चुका उस के साथ (अस्य) इस जगत् के मध्य में (पक्तीः) पाकों का (पचन्) पाक करते हुए आप (सोमम्) ऐश्वर्य्य वा ओषधि के रस का (अपिबः) पान करिये और जो (त्वाम्) आप की रक्षा करें उन सब का आप सत्कार करिये ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! जो उत्तम गुणों से आप की वृद्धि करते और आप को मित्र जानते हैं उन को मित्र कर के आप ऐश्वर्य की वृद्धि करो ॥११॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नवंग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशंग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
गव्यं चिदूर्वमंपिधानंवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अपं व्रन् ॥१२॥

पदार्थः—हे विद्वन् (सुतसोमासः) संपादन कीं ऐश्वर्य और ओषधियां जिन्हों ने (नवग्वासः) जो नवीन गतिवाले (दशग्वासः) जिन्हों ने दशों इन्द्रियों को जीता ऐसे (शशमानाः) अविद्याओं का उलंघन करते हुए (नरः) नायक जन जिस (गव्यम्) गोसम्बन्धी (चित्) निश्चित (ऊर्वम्) अविद्या के नाश करने वाले (अपिधानवन्तम्) आच्छादन से युक्त गुप्त (इन्द्रम्) विद्या और ऐश्वर्यवान् का (अर्कैः) मन्त्र वा विचारों से (अभि) सब प्रकार (अर्चन्ति) सत्कार करते और उसकी अविद्या का (अप, व्रन्) अस्वीकार करते हैं (तम्) उस को (चित्) भी आप शिक्षा दीजिये ॥१२॥

भावार्थः—जो नवीन विद्या का ग्रहण करना चाहते और ऐश्वर्य्य की इच्छा करने और इन्द्रियों के जीतने वाले विद्वान् जन अज्ञानी जनों को बोध देकर विद्वान् करते हैं वे ही सत्कार करने योग्य होते हैं ॥१२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

कथो नु ते परि चराणि विद्वान् वीर्या मघवन्या चकर्थ ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम ॥१३॥

पदार्थः—हे (मघवन्) श्रेष्ठ धन से युक्त (या) जो (ते) आप की (परि)

सब ओर से (चराणि) चलने वाली और प्राप्त होने योग्य (वीर्य्या) पराक्रम युक्त सेनाओं को (कथो) किसी प्रकार (नु) निश्चय से (चकर्थ) करते हो तथा (विद्वान्) विद्वान् आप (या) जिन को (चो) और (नव्या) नवीनों में उत्पन्नों को (नु) निश्चय से (कृणवः) सिद्ध करते हो । हे (शविष्ठ) अतिशय करके बलिष्ठ (ते) आप के जिन को (विदथेषु) सङ्ग्रामों में हम लोग (प्र,ब्रवाम) उपदेश करें (ता) उन को (इत्) निश्चय से (उ) भी आप ग्रहण करो ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदाही नवीन नवीन विद्या और नवीन २ कार्य्य को सिद्ध कर के ऐश्वर्य को प्राप्त होवें इसी प्रकार अन्यों के प्रति उपदेश करें ॥१३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्य्यपरीतो जनुषा वीर्य्येण । या चिन्नु वंज्रिन्कृणवो दधृष्वान्न ते वर्त्ता तविष्या अस्ति तस्याः ॥१४॥

पदार्थः—हे (वज्रिन्) उत्तम शस्त्र और अस्त्रों से और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् (अपरीतः) नहीं वर्जित आप (जनुषा) दूसरे जन्म से और (वीर्य्येण) पराक्रम से (चित्) भी (एता) इन (विश्वा) सब को (चकृवान्) किये हुए हो और (या) जिन (भूरि) बहुत बलों को (कृणवः) करिये । हे राजन् (ते) आप की निश्चित (तस्याः) उस (तविष्याः) बलयुक्त सेना का (दधृष्वान्) धृष्ट अर्थात् धर्षित किया हुआ (नु) शीघ्र (वर्त्ता) स्वीकार करने वाला कोई भी (न) नहीं (अस्ति) है ॥१४॥

भावार्थः—जो राजा आदि जन हैं वे ब्रह्मचर्य्य से विद्याओं को प्राप्त होकर चवालीस वर्ष की अवस्था से युक्त हुए समावर्त्तन करके अर्थात् गृहस्थाश्रम को विधिपूर्वक ग्रहण कर स्वयंवर विवाह कर और सेना की वृद्धि करके प्रजा की सब प्रकार से रक्षा करें ॥१४॥

अब विद्वद्विषय में पुरुषार्थरक्षणविषय को कहते हैं ॥

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म्म । वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥१५॥

पदार्थः—हे (शविष्ठ) अतिशय करके बल से और (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त जिन (ते) आप के (नव्याः) नवीन धनों को हम लोग (अकर्म्म) करें और (या) जिन (क्रियमाणा) वर्त्तमान पुरुषार्थ से सिद्ध हुए (ब्रह्म) अन्न वा

धनों का आप (जुषस्व) सेवन करो उन (भद्रा) कल्याणकारक (सुकृता) धर्म्म से उत्पन्न किये हुओं को (वस्त्रेव) जैसे वस्त्र प्राप्त होते वैसे तथा (स्वपाः) सत्यभाषण आदि कर्म्म करने वाला (धीरः) ध्यानवान् योगी और (वसूयुः) अपने को धन की इच्छा करने वाला (रथम्) उत्तम वाहन को (न) जैसे वैसे कल्याणकारक और धर्म्म से उत्पन्न किये गयों को मैं (अतक्षम्) प्राप्त होऊं ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा लं०—हे मनुष्यो ! वंश और धन की आशा से आप लोग आलस्य से पुरुषार्थ का न त्याग करो किन्तु नित्य पुरुषार्थ की वृद्धि से ऐश्वर्य की वृद्धि करके वस्त्र और रथ से जैसे वैसे सुख का भोग करके नवीन यश प्रकट करो ॥१५॥

इस सूक्त में इन्द्र और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में उनतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चदशर्चस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य बभ्रुरात्रेय ऋषिः । इन्द्र ऋणंचयश्च देवता । १ । २ । ३ । ४ । ५ । ८ । ९ निचृत्त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप् । ७ । ११ । १२ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ । १३ पङ्क्तिः । १४ स्वराट्पङ्क्तिः । १५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले तीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में इन्द्र के विषय को कहते हैं ॥

क्व१॒ स्य वी॒रः को अ॑पश्य॒दिन्द्रं॑ सु॒खर॑थ॒मीय॑मानं॒ हरि॑भ्याम् ।
यो रा॒या व॒ज्री सु॒तसो॑मम्इ॒च्छन्तदोको॒ गन्ता॑ पुरुहू॒त ऊ॒ती ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् (कः) कौन (वीरः) शूर (इन्द्रम्) बिजुली को (अपश्यत्) देखता है (क्व) किस में (हरिभ्याम्) वेग और आकर्षण से (सुखरथम्) सुख के अर्थ (ईयमानम्) चलते हुए रथ को देखता है (यः) जो (वज्री) शस्त्र और अस्त्रों से युक्त (गन्ता) जाने वाला (पुरुहूतः) बहुतों से स्तुति किया गया (सुतसोमम्) इकट्ठा किया ऐश्वर्य जिस में (तत्) उस (ओकः) गृह की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ (ऊती) रक्षण आदि के लिये (राया) धन से बिजुली को देखता है (स्यः) वह सुख के लिये रथ को प्राप्त हो ॥१॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! कौन बिजुली आदि की विद्या के प्राप्त होने को अधिकारी हैं इस प्रकार पूछता हूँ । जो विद्वानों के संग से यथार्थवक्ता

जनों की रीति से विद्या और हस्तक्रिया को ग्रहण करके नित्य प्रयत्न करें यह उत्तर है ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अवाचचक्षं पदमस्य सस्वरुग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।

अपृच्छमन्याँ उत ते म आहुरिन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम ॥२॥

पदार्थः—शिल्पविद्या की (इच्छन्) इच्छा करता हुआ मैं जिन (अन्यान्) अन्य विद्वानों को (अपृच्छम्) पूछूं (ते) वे (बुबुधानाः) संबोधयुक्त (नरः) नायक जन विद्वान् (मे) मेरे लिये (इन्द्रम्) बिजुली को (आहुः) कहें उस को (अस्य) इस शिल्पविद्या के (निधातुः) धारण करने वाले के (सस्वः) गुप्त (उग्रम्; उग्रगुण, कर्म्म और स्वभाव वाले (पदम्) प्राप्त होने योग्य विज्ञान को (अनु, आयम्) अनुकूल प्राप्त होऊं और अन्यों के प्रति (अव, अचचक्षम्) निश्शेष कहूं इस प्रकार (उत) भी मित्र के सदृश वर्त्तमान हम लोग अंग और उपाङ्गों के सहित शिल्पविद्याओं को (अशेम) प्राप्त होवें ॥२॥

भावार्थः जब शिल्प आदि विद्या के जानने की इच्छा करने वाले जन विद्वानों के प्रति पूछें तब उन के प्रति यथार्थ उत्तर देवें। इस प्रकार परस्पर मित्र हुए बिजुली आदि की विद्या की उन्नति करें ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

प्र नु वयं सुते या ते कृतानीन्द्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः ।

वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान्वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्वन्! (या) जिन (ते) आप के (सुते) उत्पन्न हुए संसार में (कृतानि) किये हुए कार्य्यों वा (नः) हम लोगों के (यानि) जिन कार्य्यों को (जुजोषः) आप सेवते हो उनको (वयम्) हम लोग (नु) शीघ्र (प्र, ब्रवाम) उपदेश देवें और जब (अयम्) यह (मघवा) बहुत धन वाला और (सर्वसेनः) सम्पूर्ण सेनाओं से युक्त (विद्वान्) विद्वान् जन विद्या को (वहते) प्राप्त होता वा प्राप्त कराता है तब यह (अविद्वान्) विद्या से रहित जन (शृणवत्) श्रवण करे और (वेदत्) विशेष करके जाने (च) भी ॥३॥

भावार्थः दो उपाय विद्या की प्राप्ति के लिये जानने चाहियें उन में प्रथम उपाय यह है कि विद्या का अध्यापक यथार्थवक्ता होवे तथा सुनने और पढ़ने वाला पवित्र कपटरहित और पुरुषार्थी होवें। दूसरा उपाय यह है कि

श्रेष्ठ विद्वानों का कर्म्म देखकर आप भी वैसा ही कर्म्म करे। ऐसा करने पर सब को विद्या का लाभ होवे ॥३॥

अब वीरों के कर्म्म को कहते हैं ॥

स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित् ।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) योगजन्य ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले जन जिस प्रकार (एकः) एक सूर्य्य (युधये) युद्ध के लिये (शवसा) बल से (अश्मानम्) मेघ को और (भूयसः) बहुत (चित्) भी मेघों को तथा (गवाम्) चलने वाले (उस्रियाणाम्) किरणों के (ऊर्वम्) नाश करने वाले को (चकृषे) करता और दोनों (चित्) निश्चित (वि, दिद्युतः) प्रकाश करते हैं वैसे आप विजय को (विदः) जनाइये एक (जातः) प्रकट हुए आप जिस से (मनः) अन्तःकरण को (स्थिरम्) निश्चल करते हो (इत्) इसी से राज्य को (वेषि) प्राप्त होते हो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य और मेघ परस्पर युद्ध करते हैं वैसे राजा शत्रु के साथ संग्राम करे और जैसे सूर्य्य किरणों से सब कार्य्य को सिद्ध करता है वैसे राजा सेना और मन्त्रीजनों से सम्पूर्ण राज-कृत्य सिद्ध करे ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत् ।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वन् (यत्) जो (त्वम्) आप (परः) उत्तम (परमः) अत्यन्त श्रेष्ठ (श्रुत्यम्) श्रवण में उत्पन्न (नाम) संज्ञा को (बिभ्रत्) धारण करते हुए (आजनिष्ठाः) सब प्रकार से प्रकट होते हो वह जैसे (परावति) दूर देश में स्थित सूर्य्य (विश्वाः) संपूर्ण (दासपत्नीः) जल का देने वाला मेघ जिन का पालन कर्त्ता ऐसे (अपः) जलों को (अजयत्) जीतता है और जैसे (देवाः) विद्वान् जन (इन्द्रात्) बिजुली से (अभयन्त) नहीं डरते हैं वैसे वर्त्तमान होने पर (अतः) इससे (चित्) भी सुख की वृद्धि करिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे दूरस्थित भी सूर्य्य अपने प्रकाश से प्रसिद्ध होता है वैसे ही दूर वर्त्तमान भी यथार्थवक्ता जन प्रकाशित यशवाले होते हैं ॥५॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः ।

अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (इन्द्रः) बिजुली (मायाभिः) बुद्धियों से (आशयानम्) चारों ओर शयन करते हुए (मायिनम्) निकृष्ट बुद्धि वाले और (ओहानम्) त्याग करते हुए (अहिम्) मेघ को (सक्षत्) प्राप्त होता है और ताड़न करके (अपः) जलों को भूमि में गिराता है और जैसे (एते) ये (तुभ्य) आप के लिये (सुशेवाः) उत्तम सुख वाले (मरुतः) ऋत्विक् मनुष्य (अर्कम्) सत्कार करने योग्य का (अर्च्चन्ति) सत्कार करते हैं और (अन्धः) अन्न को (सुन्वन्ति) उत्पन्न करते हैं वैसे (इत्) ही आप के लिये सम्पूर्ण विद्वान् जन सुख (प्र) देवें ॥६॥

भावार्थः—वे ही विद्वान् जन जगत् के सुख करने वाले होते हैं जो सूर्य और मेघ के समान जगत् के सुख करने वाले हैं तथा अपने समान दूसरों के सुख करने वाले होते हैं ॥६॥

अब वीरविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्त्सञ्चकानः ।

अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥७॥

पदार्थः—हे (मघवन्) धन और ऐश्वर्य से युक्त राजन् आप (जनुषा) जन्म से (दानम्) दान को (इन्वन्) प्राप्त होते हुए जैसे सूर्य्य (गवा) किरण से मेघ का (अहन्) नाश करता है वैसे (मृधः) संग्रामों को जीतिये और (सञ्चकानः) उत्तम प्रकार कामना करते हुए जैसे (अत्रा) इस व्यवहार में सूर्य (नमुचेः) अपने स्वरूप को नहीं त्यागने वाले (दासस्य) सेवक के सदृश वर्त्तमान मेघ के (शिरः) उत्तम अंग का (वि) विशेषकर के नाश करता है वैसे आप (मनवे) विचारशील धार्मिक मनुष्य के लिये (यत्) जिस (गातुम्) भूमि वा वाणी की (इच्छन्) इच्छा करते हुए हो उस के लिये शत्रु के शिर को (सु) उत्तम प्रकार (अवर्त्तयः) नाश करिये ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजजनो ! जैसे सूर्य मेघ को जीत कर जगत् को सुख देता है वैसे दुष्ट शत्रुओं को जीत कर प्रजाओं को सुख दीजिये ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मानं चित्स्वर्यं१ वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् जैसे सूर्य्य (नमुचेः) प्रवाहरूप से नहीं नाश होने और (दासस्य) जल देने वाले मेघ के (शिरः) शिर के सदृश वर्त्तमान कठिन अंग का (मथायन्) मन्थन करता हुआ (चित्) भी (स्वर्य्यम्) शब्दों में श्रेष्ठ (वर्त्तमानम्) वर्त्तमान (अश्मानम्) व्याप्त होते हुए मेघ को पृथिवी के साथ युक्त करता और (चक्रियेव) जैसे चक्र वैसे (मरुद्भ्यः) पवनों से (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को घुमाता है वैसे (आत्) अनन्तर (इत्) ही (माम्) मुझ को (हि) ही (युजम्) युक्त (प्र, अकृथाः) अच्छे प्रकार करिये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० हे राज जनो ! आप लोग जैसे सूर्य्य मेघ को वर्षाय जगत् के सुख को और पवन से भूगोलों को घुमा के दिन रात्रि करता है वैसे ही विद्या और विनय की राज्य में वृष्टि कर अपने अपने कर्म में सब को चलाय के सुख और विजय को उत्पन्न करो ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः ॥९॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे (दासः) सेवक के सदृश मेघ (स्त्रियः) स्त्रियों को (आयुधानि) तलवार आदि शस्त्रों के सदृश (चक्रे) करता है (अस्य) इस की (अबलाः) बल से रहित (सेनाः) सेनायें हैं (इन्द्रः) सूर्य्य के सदृश राजा (हि) ही (मा) मुझ को (किम्) क्या (करन्) करे और जो (अन्तः) अन्तःकरण में (अख्यत्) प्रकट करता है और (यस्य) जिस (अस्य) इस मेघ की (उभे) दोनों अर्थात् मन्द और तीव्र (धेने) वाणी वर्त्तमान हैं (अथ) अनन्तर जिस को सूर्य्य (युधये) संग्राम के लिये (उप, प्र, ऐत्) समीप प्राप्त होता है उस के सदृश वर्त्तमान (हि) निश्चित (दस्युम्) दुष्ट डाकू को राजा वश में करे ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—वे ही जन दास हैं कि जिन की स्त्रियां ही शत्रु के सदृश विजय को देने वाली वर्त्तमान होवें और जैसे सूर्य्य और मेघ का संग्राम है वैसे ही दुष्टजनों के साथ राजा का सङ्ग्राम हो ॥९॥

अब विद्वानों के उपदेश विषय को कहते हैं ॥

समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन् ।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (इहेह) इस जगत् में (गावः) किरणें (वत्सैः) बछड़ों से (वियुताः) वियुक्त (अभितः) चारों ओर से (आसन्) होती हैं (ताः) उनकी आप लोग (अनवन्त) स्तुति प्रशंसा करें और जिनको (अस्य) इस मेघ के (शाकैः) सामर्थ्यों से (अत्र) इस संसार में (इन्द्रः) सूर्य्य (सम्) अच्छे प्रकार (असृजत्) उत्पन्न करता है वा (ईम्) सब ओर से (सुषुताः) उत्तम प्रकार उत्पन्न (सोमासः) पदार्थ वा ऐश्वर्य्य वाले जीव (यत्) जो (अमन्दन्) आनन्दित होते हैं उनको सूर्य्य (सम्) एक साथ उत्पन्न करता है ॥१०॥

भावार्थः—जैसे बछड़ों से वियुक्त गौयें नहीं शोभित होती हैं वैसे ही सन्तानों के सदृश वर्त्तमान सघन अवयवों से रहित मेघ नहीं शोभित होता है ॥१०॥

अब वीरराज विषय को कहते हैं ॥

यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद्वृषभः सादनेषु ।
पुरन्दरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम् ॥११॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे (इन्द्रः) सूर्य (अस्य) इस मेघ के (सादनेषु) स्थानों में (पपिवान्) पीवने और (पुरन्दरः) पुरों को नाश करने वाला (उस्रियाणाम्) किरणों और (गवाम्) गौओं के तेज को (पुनः) फिर (अददात्) देता है (वृषभः) वृष्टि करने वाला हुआ (अरोरवीत्) अत्यन्त शब्द करता है (यत्) जिस से (बभ्रुधूताः) विद्या को धारण किये हुओं से पवित्र किये गये (सोमाः) सोम ओषधि के सदृश वर्त्तमान पदार्थ (ईम्) सब ओर से उत्पन्न होते हैं जिस से प्राणी (अमन्दन्) आनन्दित होते हैं वैसे आप प्रजाओं में वर्त्ताव कीजिये ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा सूर्य्य मेघ के स्वभाव के सदृश स्वभाव वाला हुआ धर्म्मशास्त्र में कहे हुए अष्ट मास तक प्रजाओं से कर लेता है और चार मास यथेष्ट पदार्थों को देता है इस प्रकार सब प्रजाओं को प्रसन्न करता है वही सब प्रकार से ऐश्वर्य्यवान् होता है ॥११॥

अब अग्नि दृष्टान्त से राजविषय को कहते हैं ॥

भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्गवां चत्वारि ददतः सहस्रा ।

ऋणञ्चयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥१२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी राजन् जिस से (ऋणञ्चयस्य) ऋणञ्चय अर्थात् जिस से ऋण बटोरता है उसके और (गवाम्) किरणों के (चत्वारि) चार (सहस्रा) हजार को (ददतः) देते हुए सूर्य के (इदम्) इस (भद्रम्) कल्याण को (रुशमाः) हिंसा करने वालों के फेंकने वाले (अक्रन्) करते हैं उनके सदृश वर्त्तमान उस (नृणाम्) मनुष्यों के (नृतमस्य) नृतम अर्थात् अत्यन्त मनुष्यपन-युक्त श्रेष्ठ आप के (मघानि) धनों को हम लोग (प्रयता) प्रयत्न से (प्रति, अग्र-भीष्म) प्रतीति से ग्रहण करें ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य सहस्रों किरणों को देकर संपूर्ण जगत् को आनन्दित करता है वैसे ही राजा असङ्ख्य उत्तम गुणों को देकर प्रजाओं को निरन्तर प्रसन्न करे ॥१२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने ।

तीव्रा इन्द्रममन्दुः सुतासोऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ॥१३॥

पदार्थः—(अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान राजन् जो (गवाम्) किरणों के (सहस्रैः) सहस्रों समूहों से (रुशमासः) हिंसकों के नाश करने वाले (तीव्राः) तीक्ष्ण स्वभावयुक्त जो (सुतासः) विद्या आदि उत्तम गुणों से उत्पन्न हुए (परितक्म्यायाः) सब प्रकार हंसते हैं जिन कर्मों से उनमें हुई (अक्तोः) रात्रि की (व्युष्टौ) प्रभात वेला में (सुपेशसम्) अत्यन्त सुन्दर रूपवाले (मा) मुझ को (अस्तम्) गृह के सदृश (अव, सृजन्ति) उत्पन्न करते हैं और (इन्द्रम्) सूर्य्य के सदृश तेजस्वी राजा को (अममन्दुः) आनन्दित करें उनको आप जान के यथावत् सेवा करो ॥१३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो बिजुली और सूर्यरूप अग्नि युक्तिपूर्वक आप लोगों से सेवन किया जाय तो दिन और रात्रि सुखपूर्वक व्यतीत होवे ॥१३॥

अब विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

औच्छत्सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणञ्चये राजनि रुशमानाम् ।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (या) जो (रुशमानाम्) हिंसा करने वाले मन्त्रियों के (ऋणञ्चये) ऋण को इकट्ठा करता है जिसे से उस (राजनि) राजा में (रघुः) छोटा (अज्यमानः) चलाया गया (बभ्रुः) धारण वा पोषण करने वाले और (अत्यः) मार्ग को व्याप्त होने वाले (वाजी) वेग युक्त के (न) सदृश (चत्वारि) चार (सहस्रा) सहस्रों का (असनत्) विभाग करती है (सा) वह (परितक्म्या) आनन्द देने वाली (रात्री) रात्रि संपूर्णों को (औच्छत्) निवास देती है यह जानो ॥१४॥

भावार्थः – इस मन्त्र में उपमालं०—हे विद्वानो ! आप लोग रात्रि और दिन के कृत्यों को जान कर और स्वयं कर के उत्तम प्रकार परीक्षा कर के राजा आदिकों के लिये उन कृत्यों का उपदेश दीजिये जिस से ये सब सुखी हों और जैसे शीघ्र चलने वाला घोड़ा दौड़ता है वैसे ही दिन और रात्रि व्यतीत होता है यह जानना चाहिये ॥१४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

चतुःसहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यंग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने ।
घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे य आसींदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥१५॥

पदार्थः—(अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान राजन् (यः) जो (अयस्मयः) सुवर्ण के सदृश तेजःस्वरूप (तप्तः) तापयुक्त (घर्मः) प्रताप (प्रवृजे) अच्छे प्रकार त्याग करते हैं जिसमें उसमें और (रुशमेषु) हिंसक मन्त्रियों में (आसीत्) वर्त्तमान है (तम्) उस (चतुः सहस्रम्) चार हजार संख्यायुक्त को (गव्यस्य) किरणों के विकार और (पश्वः) पशु के सम्बन्ध में जैसे हम लोग (प्रति, अग्रभीष्म) ग्रहण करें वैसे आप ग्रहण करो और हे (विप्राः) बुद्धिमान् जनो आप लोगों के लिये उस (उ) ही को हम लोग (आदाम) सब प्रकार से देवें उस को हम लोगों के लिये आप लोग (चित्) भी दीजिये ॥१५॥

भावार्थः – इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य शीत और उष्ण का सेवन युक्ति से करने को जानते हैं और इस की विद्या को परस्पर देते हैं वे सर्वदा रोगरहित होते हैं ॥१५॥

इस सूक्त में राजा, वीर, अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्रयोदशर्चस्यैकाधिकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य अवस्युरात्रेय ऋषिः ।१—८[१] । १०—१३ इन्द्रः । ८[२] इन्द्रः कुत्सो वा । ८[४] इन्द्र उशना वा । ९ इन्द्रः कुत्सश्च देवताः । १ । २ । ५ । ७ । ९ । ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ । ४ । ६ । १० त्रिष्टुप् । १३ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ८ । १२ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब तेरह ऋचावाले इकतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रगुणों का कहते हैं ॥

इन्द्रो रथा॑य प्र॒वत॑ कृणोति॒ यम॒ध्यस्था॒न्मघवा॑ वाज॒यन्त॑म् ।
यू॒थेव॑ प॒श्वो व्यु॑नोति गो॒पा अरि॑ष्टो याति प्रथ॒मः सिषा॑सन् ॥१॥

पदार्थः - हे मनुष्यो जैसे (अरिष्टः) नहीं मारा गया (प्रथमः) प्रथम (सिषासन्) इच्छा करता हुआ (मघवा) अत्यन्त श्रेष्ठ धनरूप कारणयुक्त (इन्द्रः) सूर्य्य के सदृश सेना का ईश (गोपाः) गौओं का पालन करने वाला (पश्वः) पशुओं के (यूथेव) समूहों के सदृश लोकों की (वि) विशेष करके (उनोति) प्रेरणा करता और (वाजयन्तम्) भूगोलों को चलाते हुए को (याति) जाता है और (यम्) जिस लोक का (अध्यस्थात्) अधिष्ठित होता उस से (रथाय) वाहन के लिये (प्रवतम्) नीचे स्थल को (कृणोति) करता है वैसे आप आचरण करिये ॥१॥

भावार्थः-- इस मन्त्र में वाचकलु० - जो राजा रथ आदि के चलने के लिये मार्गों को सुडौल बनाय के उन मार्गों से रथ आदि वाहनों पर चढ़ के तथा जाय और आय के पशुओं का पालन करने वाला पशुओं को जैसे वैसे शत्रुओं को रोक के प्रजाओं का निरन्तर पालन करता है वही सब प्रकार वृद्धि को प्राप्त होता है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ प्र द्र॑व हरिवो॒ मा वि वे॑नः॒ पिश॑ङ्गराते अ॒भि नः॑ सचस्व ।
न॒हि त्वदि॑न्द्र॒ वस्यो॑ अ॒न्यदस्त्य॑मे॒नांश्चि॒ज्जनि॑वतश्चकर्थ ॥२॥

पदार्थः—हे (हरिवः) श्रेष्ठ घोड़ों से युक्त (पिशङ्गराते) सुवर्ण आदि के

और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले राजन् आप (मा, वि, वेनः) कामना मत करें अर्थात् कामी न हों और (अमेनान्) नहीं विद्यमान हैं प्रक्षेप करने वाली स्त्रियां जिन की उन को (चित्) उन्हीं (जनिवतः) जन्मवाले (चकर्थ) करें और (नः) हम लोगों का (अभि सचस्व) सब ओर से संबन्ध करें और शत्रु के विजय के लिये (प्र, आ, व्रज) अच्छे प्रकार दौड़ें जिस से (त्वत्) आप से (वस्यः) अत्यन्त वसने वाला (अन्यत्) दूसरा (नहि) नहीं (अस्ति) है वह आप हम लोगों को सुख से सम्बन्ध कीजिये ॥२॥

भावार्थः—जो अतिकालपर्य्यन्त जीवने, बलबढ़ाने, राज्य करने और वृद्धि करने के लिये यत्न करता है वही कृतकृत्य होता है ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उद्यत्सहः सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा ।
प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अन्तर्वि ज्योतिषा संववृत्वत्तमोऽवः ॥३॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे (इन्द्रः) योगरूप ऐश्वर्य्य से युक्त सूर्य्य (सहसः) बल से (यत्) जिस (सहः) बल को (उत्, आ, अजनिष्ट) उत्पन्न करता (विश्वा) सम्पूर्ण (इन्द्रियाणि) श्रोत्र आदि इन्द्रियों वा धनों का (देदिष्टे) उपदेश देता और (प्र, अचोदयत्) प्रेरणा करता और (सुदुघाः) उत्तम प्रकार कामनाओं को पूर्ण करने वाली क्रियाओं का (वव्रे) स्वीकार करता है वैसे (अन्तः) मध्य में (ज्योतिषा) प्रकाश से (संववृत्वत्) घेरने वाली (तमः) रात्रि की (वि) विशेष करके (अवः) रक्षा करो ॥३॥

भावार्थः—जो राजा बल से बल और धन से धन को उत्पन्न करके न्याय के प्रकाश से अन्यायरूप अन्धकार का निवारण कर पूर्ण मनोरथों से युक्त प्रजाओं को करके विद्या आदि उत्तम गुणों के ग्रहण के लिये प्रेरणा करता है वही अखण्ड ऐश्वर्य्यवाला सदा होता है ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम् ।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥४॥

पदार्थः—हे (पुरुहूत) बहुतों से स्तुति किये गये राजन्! जो (अनवः) मनुष्य (ते) आप के (अश्वाय) शीघ्र गमन के लिये (रथम्) वाहन को (तक्षन्) रचें और (त्वष्टा) सब प्रकार से विद्या से प्रदीप्तजन (द्युमन्तम्) प्रकाशयुक्त (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्रों के समूह को गिराता है और (महयन्तः) प्रशंसा करते हुए (ब्रह्माणः)

चारों वेदों के जानने वाले विद्वान् (अर्कैः) सत्कार के अत्यन्त सिद्ध करने वाले विचारों वचनों वा कर्मों से आप (इन्द्रम्) अखण्ड ऐश्वर्य्ययुक्त राजा की (अवर्धयन्) वृद्धि करते हैं और (अहये) मेघ के लिये (हन्तवै) नाश करने को वृद्धि करते हैं उनका (उ) तर्कपूर्वक आप निरन्तर सत्कार करिये ॥४॥

भावार्थः—राजाओं की योग्यता है कि जो अन्तःकरण से राज्य की उन्नति करने की इच्छा करें वे सदा ही सत्कार करने योग्य हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः ।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुष्टदलों के नाश करने वाले राजन् (यत्) जिन (वृष्णे) वृष्टि करने वाले (ते) आप के लिये (अर्कम्) सत्कार करने योग्य का प्रजाजन (अर्चान्) सत्कार करें वह जैसे (वृषणः) वर्षा के निमित्त (ग्रावाणः) मेघ और (सजोषाः) समान प्रीति का सेवन करने वाला और (अदितिः) अन्तरिक्ष वर्त्तमान हैं वैसे हूजिये । और (ये) जो (अरथाः) वाहनों से (अनश्वासः) घोड़ों से रहित (इन्द्रेषिताः) स्वामी से प्रेरणा किये गये (पवयः) चक्र (दस्यून्) दुष्ट चोरों के (अभि) सन्मुख (अवर्त्तन्त) वर्त्तमान हैं उन का आप निरन्तर सत्कार कीजिये ॥५॥

भावार्थः—जो राजाजन मेघ के सदृश सुख वर्षाने और आकाश के सदृश नहीं हिलने वाले अग्नि आदिकों के वाहनों को रच के इधर उधर भ्रमण करके दुष्ट चोरों का नाश करके प्रजाओं को प्रसन्न करें वे भाग्यशाली होते हैं ॥५॥

अब विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥६॥

पदार्थः—हे (शक्तीवः) बहुत प्रकार सामर्थ्य से युक्त (मघवन्) श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य वाले राजन् बुद्धिमान् जन (यत्) जैसे (या) जिन (पूर्वाणि) प्राचीन (करणानि) साधनों और जिन (नूतना) नवीनों को (प्र) सिद्ध करते हैं उन साधनों का मैं (ते) आप के लिए वैसे (प्र, वोचम्) उपदेश करूं और जो (विभराः) विशेष कर के पोषण करने और (दानुचित्राः) अद्भुतदान वाले विद्वान् जन (मनवे) मनुष्य के लिये (उभे) दोनों (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को जनाते हैं उन के साथ

आप मनुष्य के लिये (अपः) सूर्य्य जैसे जनों को वैसे शत्रुओं के प्राणों को (जयन्) जीतते हुए उन के सुख के लिये सत्कार को (चकर्थ) करते हो ॥६॥

भावार्थः—हे राजा आदि जनो ! जो विद्वान् जन आप लोगों के लिये अनादि काल से सिद्ध राजनीति और विजय के उपायों की शिक्षा करें उन का अपने आत्मा के सदृश आप लोग सत्कार करें ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद्घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।
शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः ॥७॥

पदार्थः—हे (दस्म) उपेक्षा करने वाले (विप्र) बुद्धिमान् आप सूर्य्य (अहिम्) जैसे मेघ को वैसे दोषों का नाश करते हैं (अत्र) वा इस जगत् में (ओजः, यत्) जल के सदृश जो बल को गिराते हैं (तत्) वह (करणम्) साधन जैसे हो वैसे शत्रु के बल का (घ्नन्) नाश करते हुए इस जगत् में तुम (शुष्णस्य) बल की वृद्धि का (अमिमीथाः) निर्म्माण करो (चित्) और (मायाः) बुद्धियों का (परि, अगृभ्णाः) सब ओर से ग्रहण करो और (प्रपित्वम्) प्राप्ति को (यन्) प्राप्त होते हुए (दस्यून्) दुष्टों का (अप, असेधः) निवारण करें उन (ते) आप के लिए (नु) तर्क वितर्क के साथ (इत्) ही सुख प्राप्त होवे ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वन् ! जैसे ईश्वर ने सूर्य्य और मेघ का संबन्ध रचा वैसे ही अन्य भी बहुत संबन्ध रचे यह जानना चाहिये ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद्वामुशनारन्त देवाः ॥८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्यदाता (पारः) पार लगाने वाले होते हुए (त्वम्) आप (तुर्वशाय) शीघ्र वश करने में समर्थ (यदवे) मनुष्य के लिए (सुदुघाः) उत्तम प्रकार पूर्ण करने योग्य (अपः) जलों के सदृश कर्म्मों को (अरमयः) रमावें और (उग्रम्) बड़े कष्ट से जिस को जीत सकें उस (अयातम्) न आये हुए (कुत्सम्) कुत्सित को (ह) निश्चय (सम्, अवहः) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें तथा (यत्) जिस में (उशना) कामना करते हुए (देवाः) विद्वान् जन (अरन्त) रमें उस में (ह) निश्चय (वाम्) आप दोनों अर्थात् आप को और पूर्वोक्त मनुष्य को रमावें ॥८॥

भावार्थः– ऐश्वर्यवाला मनुष्य अन्य जनों के लिये धन और धान्य आदिक देवे और जहां विद्वान् रमें वहां ही सम्पूर्ण जन क्रीड़ा करें ॥८॥

अब यन्त्रकलाविषय शिल्पकर्म को कहते हैं ॥

इन्द्रा॑कुत्सा॒ वह॑माना॒ रथे॒ना वा॒मत्या॒ अपि॒ कर्णे॒ वह॑न्तु ।
निः षी॑म॒द्भ्यो धम॑थो॒ निः ष॒धस्था॑न्म॒घोनो॑ हृ॒दो व॑रथ॒स्तमां॑सि ॥९॥

पदार्थः—हे अध्यापको और उपदेशको जैसे (इन्द्राकुत्सा) बिजुली और बिजुली का आघात (रथेन) वाहन से (वहमाना) प्राप्त कराते हुए वर्त्तमान हैं वा विद्वान्‌जन (कर्णे) करते हैं जिस से उस में (वाम्) आप दोनों को (आ, वहन्तु) पहुंचावें वैसे (अत्याः) निरन्तर चलने वाले घोड़े (अपि) भी सब को प्राप्त कराने को समर्थ होते हैं और जो बिजुली और अग्नि (अद्भ्यः) जलों से (निः, धमथः) शब्द करते हैं तो वे दोनों (सधस्थात्) तुल्य स्थान से (सीम्) सब प्रकार प्राप्त कराते और जो (हृदः) हृदयों के सदृश प्रिय (मघोनः) धनाढ्य पुरुषों का (निः) अत्यन्त (वरथः) स्वीकार करते हैं तो सुख से (तमांसि) अन्धकारों को हटाने को समर्थ होओ ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो अग्नि और जल का सयोग कर शब्द कर और भाफ से यन्त्र कलाओं को ताड़ित कर के वाहनादिकों को चलावें तो आप अपने को और मित्रों को धन से युक्त कर के दुःखों के पार जावें और अन्यों को भी पार करें ॥९॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वात॑स्य यु॒क्तान्त्सु॒युज॑श्चि॒दश्वा॑न्क॒विश्चि॑दे॒षो अ॑जगन्नव॒स्युः ।
विश्वे॑ ते॒ अत्र॑ म॒रुतः॒ सखा॑य॒ इन्द्र॒ ब्रह्मा॑णि॒ तवि॑षीमवर्धन् ॥१०॥

पदार्थः हे (इन्द्र) विद्वन् जो (ते) आपके (अत्र) इस शिल्पविद्या के जानने-रूप कार्य्य में (सखायः) मित्र (विश्वे) सम्पूर्ण (मरुतः) ऋतु-ऋतु में यज्ञ करने वाले विद्वान् जन (ब्रह्माणि) धनों वा अन्नों की और (तविषीम्) सेना की (अवर्धन्) वृद्धि करते हैं और (वातस्य) वायु के वेग से (युक्तान्) युक्त हुए (सुयुजः) उत्तम प्रकार पदार्थों के मेल करने वाले (चित्) निश्चित (अश्वान्) शीघ्रगामी अर्थात् तीव्र वेगयुक्त अग्नि आदि पदार्थों को (अजगन्) चलावें उनको (एषः) यह वर्त्तमान (अवस्युः) अपने को रक्षण की इच्छा रखने वाले (कविः, चित्) निश्चित बुद्धिमान् आप निरन्तर सत्कार करें ॥१०॥

भावार्थः हे ऐश्वर्य्य की इच्छा रखने वाले पुरुष ! जो जन अग्नि आदि पदार्थों की विद्या से विचित्र आश्चर्य्यजनक वाहन आदि कार्य्यों की सिद्धि कर सकते हैं उन के साथ मित्रता कर के और उनसे विद्या को प्राप्त हो अभीष्ट कार्य्यों की सिद्धि करते हुए आप अत्यन्त ऐश्वर्य्य को प्राप्त होवें ॥१०॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम् ।
भरच्चक्रमेतशः सं रिणाति पुरो दधत्सनिष्यति क्रतुं नः ॥११॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो (सूरः) सूर्य्य के (चित्) सदृश (परितक्म्यायाम्) सर्व ओर से हर्ष होते हैं जिस रात्रि में उसमें (पूर्वम्) प्रथम (रथम्) सुन्दर वाहन को (उपरम्) मेघ के सदृश (करत्) करे और (जूजुवांसम्) अत्यन्त वेग से युक्त (चक्रम्) कलाओं के चलाने वाले चक्र को (एतशः) जैसे घोड़ा घोड़ेवाले को वैसे सब प्रकार (भरत्) धारण करे (पुरः) पहिले चक्र को (सम्, रिणाति) प्राप्त होता वाहन को (दधत्) धारण करता और (नः) हम लोगों की (क्रतुम्) बुद्धि वा कर्म्मों का (सनिष्यति) सेवन करे उस का आप सब प्रकार सत्कार करें ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा वाचकलु०—जो मनुष्य कलाकौशल से वाहनों के यन्त्रों को रच के जल और अग्नि के अत्यन्त योग से चक्रों को उत्तम प्रकार चलाय कार्य्यों को सिद्ध करें तो जैसे सूर्य्य और पवन मेघ को वैसे बहुत भारयुक्त वाहन को अन्तरिक्ष जल और स्थल में पहुंचाने को समर्थ होवें ॥११॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन् ।
वदन्ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥१२॥

पदार्थः—हे (जनाः) प्रसिद्ध विद्वान् जनो जो (अयम्) यह (इन्द्रः) ऐश्वर्य वाला (अभिचक्षे) सब ओर से प्रसिद्ध होने को (सुतसोमम्) संपन्न की पदार्थ विद्या जिसने ऐसे (सखायम्) मित्र की (इच्छन्) इच्छा करता और (ग्रावा) गर्जना से युक्त मेघ के सदृश (वदन्) उपदेश देता हुआ जन (वेदिम्) अग्नि के स्थान को (अव, आ, जगाम) प्राप्त होवे (यस्य) जिस के (जीरम्) वेग को (अध्वर्यवः) विद्या रूप यज्ञ के सम्पादक अर्थात् उक्त यज्ञ को प्रसिद्ध करने वाले जन (चरन्ति)

प्राप्त होते हैं और जो दो शिल्पविद्या को (भ्रियाते) धारण करें उन दोनों का सदा ही आप लोग सत्कार करें ॥१२॥

भावार्थः—जो जन विद्या की प्राप्ति तथा विद्या देने के लिये सम्पूर्ण जनों के साथ मित्रता करके मिलें वे सम्पूण विद्या के प्राप्त होने को समर्थ होवें ॥१२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्त्ता अमृत मो ते अंह आरन् ।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम ॥१३॥

पदार्थः—हे (अमृत) आत्मस्वरूप से मरण धर्म्मरहित विद्वान् (ये) जो विद्या विनय और सत्य आचरणों की (चाकनन्त) कामना करते हैं तथा अन्यों के लिये भी (चाकनन्त) कामना करते हैं (ते) वे (मर्त्ताः) मनुष्य सत्य की (नू) शीघ्र कामना करते हैं और (ते) वे (अंहः) अपराध को (मो) नहीं (आ, अरन्) सब प्रकार से प्राप्त हों और वे (उत) ही (यज्यून्) सत्यभाषण आदि यज्ञ के अनुष्ठान करने वाले जनों को (वावन्धि) बन्धन युक्त करते हैं तथा (येषु) जिन (जनेषु) सत्य आचरण करने वाले मनुष्यों में हम लोग (ते) आपके मित्र (स्याम) होवें (तेषु) उन हम लोगों में आप (ओजः) पराक्रम को (धेहि) धारण कीजिये ॥१३॥

भावार्थः—हे विद्वान् जनो ! जो जन विद्या सत्य आचरण तथा परोपकार की और अधर्म्म आचरण के त्याग की कामना करके सब के उपकार की इच्छा करें वे धन्यवाद युक्त होवें और हम लोग भी ऐसे होवें ऐसी इच्छा करें ॥१३॥

इस सूक्त मे इन्द्र, विद्वान्, और शिल्पविद्या के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में इकतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्य द्वात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य गातुरात्रेय ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ७ । ९ । ११ त्रिष्टुप् । २ । ३ । ४ । १० । १२ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ । ८ स्वराट् पङ्क्तिः । ६ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब बारह ऋचा वाले बत्तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्रपद वाच्य राजगुणों को कहते हैं ॥

अदर्द॒रुत्समसृ॑जो॒ वि खानि॒ त्वम॑र्ण॒वान्ब॑द्बधा॒नाँ अ॑रम्णाः ।
म॒हान्त॑मिन्द्र॒ पर्व॑तं॒ वि यद्वः॑ सृ॒जो वि धारा॒ अव॑ दान॒वं ह॑न् ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाश करने वाले राजन् जिस प्रकार सूर्य्य (उत्सम्) कूप के समान (महान्तम्) बड़े (पर्वतम्) पर्वताकार मेघ को नाश करके (बद्बधानान्) अत्यन्त बंधे हुओं का (अदर्दः) नाश करता है और (अर्णवान्) नदियों वा समुद्रों का (सृजः) त्याग करता है वैसे (त्वम्) आप (खानि) इन्द्रियों का (वि) विशेष करके त्याग कीजिये और हम लोगों को (वि, अरम्णाः) विशेष रमण कराइये और (यत्) जो सूर्य (धाराः) जल के प्रवाहों के सदृश वाणियों का और (दानवम्) दुष्ट जन का (अव, हन्) नाश करता है (वः) आप लोगों के लिये (वि) विशेष (वि, असृजः) विशेषकर त्यागता अर्थात् जलादि का त्याग करता है उसका सत्कार प्रशंसा उत्तम क्रिया कीजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—राजा जैसे सूर्य्य गिराये हुए मेघ से नदी और समुद्र आदिकों को पूर्ण करता और तटों को तोड़ता है वैसे ही अन्याय को गिरा और न्याय से प्रजा का पालन कर के दुष्टों का नाश करे ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्वमुत्साँ॑ ऋ॒तुभि॑र्बद्बधा॒नाँ अरं॑ह॒ ऊधः॒ पर्व॑तस्य वज्रिन् ।
अहिं॑ चिदुग्र॒ प्रयु॑तं॒ शया॑नं जघ॒न्वाँ इ॑न्द्र॒ तवि॑षीमधत्थाः ॥२॥

पदार्थः—हे (वज्रिन्) अच्छे वज्र वाले और (उग्र) तेजस्वी (इन्द्र) सूर्य के सदृश वर्त्तमान राजन् (त्वम्) आप जैसे खेती करने वाले जन (ऋतुभिः) वसन्त आदि ऋतुओं से (बद्बधानान्) अत्यन्त बद्ध हुओं को (उत्सान्) कूपों के सदृश (अरंहः) चलाता है और जैसे सूर्य (पर्वतस्य) मेघ के (ऊधः) जलाधार घनसमूह को (चित्) और (प्रयुतम्) बहुत प्रकार (शयानम्) शयन करते हुए के सदृश आचरण करते हुए (अहिम्) मेघ का (जघन्वान्) नाश करता है वैसे आप (तविषीम्) बलयुक्त सेना का (अधत्थाः) धारण करिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे खेती करने वाले जन कूपों से जल को क्षेत्रों के प्रति प्राप्त कर अन्न उत्पन्न कर के सब ऋतुओं में सुख और ऐश्वर्य्य की वृद्धि करते हैं वैसे ही आप प्रजाओं की उन्नति कीजिये ॥२॥

अब इन्द्रपदवाच्य धनुर्वेदवित् राजगुणों को कहते हैं ॥

त्यस्य॑ चिन्म॒हतो॒ निर्मृ॒गस्य॒ वध॑र्जघान॒ तवि॑षीभि॒रिन्द्रः॑ ।
य एक॒ इद॑प्र॒तिर्मन्य॑मान॒ आद॑स्मादन्यो अ॑जनिष्ट॒ तव्या॑न् ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वन् (यः) जो (एकः) एक (अप्रतिः) नहीं है विश्वास जिस के वह (मन्यमानः) आदर किये गए आप (तविषीभिः) सेना आदि बलों से जैसे (इन्द्रः) सेना का स्वामी (त्यस्य) उस (महतः) बड़े (मृगस्य) शीघ्र चलने वाले मेघ का (वधः) नाश करते हैं जिस में तदनुकूल (जघान) नाश करता है वैसे हम लोगों को (चित्) भी प्रकट कीजिये (आत्) अनन्तर (अस्मात्) इस से जैसे (अन्य) भिन्न और जन (निः) अत्यन्त (अजनिष्ट) उत्पन्न करता है वैसे (इत्) ही आप (तव्यान्) बलों में उत्पन्न हम लोगों को ही उत्पन्न कीजिये अर्थात् प्रकट कीजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य मेघ को जीतकर अपने प्रताप को प्रकट करके सब प्राणियों का पालन करता है वैसे ही धनुर्वेद की विद्या को जानने वाला एक भी अनेकों को जीतकर प्रजाओं का पालन करे ॥३॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्यं चि॑दे॒षां स्व॒धया॒ मद॑न्तं मि॒हो नपा॑तं सु॒वृधं॑ तमो॒गाम् ।
वृष॑प्रभर्मा दान॒वस्य॒ भामं॒ वज्रे॑ण व॒ज्री नि ज॑घान॒ शुष्ण॑म् ॥४॥

पदार्थः—हे सेना के ईश वीर पुरुष आप (एषाम्) इन वीरों के मध्य में (स्वधया) अन्न आदि से (मदन्तम्) प्रसन्न होता हुआ जो जीव (त्यम्) उस के (चित्) समान जैसे (वृषप्रभर्मा) वर्षने वाले मेघ को धारण करने वाला सूर्य्य (मिहः) वृष्टि के (नपातम्) नहीं गिरने वाले (सुवृधम्) सुन्दर बढ़ते हुए (तमोगाम्) अन्धकार को प्राप्त अर्थात् सघन घन मेघ को (जघान) नाश करे वैसे (वज्री) उत्तम शस्त्र और अस्त्रों से युक्त होते हुए (वज्रेण) तीव्र शस्त्र से (दानवस्य) दुष्टजन के (शुष्णम्) सुखाने वाले बलवान् (भामम्) क्रोध को (नि) निरन्तर नाश करियें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन्! जैसे सूर्य्य अति-विस्तारयुक्त मेघ का नाश कर भूमि में गिरा के जगत् की रक्षा करता है वैसे ही अतिप्रबल भी शत्रुओं का नाश कर नीचे गिरा के न्याय से प्रजाओं का पालन कीजिये ॥४॥

अब शिल्पविद्या के जानने वाले विद्वान् के गुणों को कहते हैं ॥

त्यं चिदस्य क्रतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म ।
यदीं सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥५॥

पदार्थः—हे (सुक्षत्र) श्रेष्ठ क्षत्रियकुल वा धन से युक्त राजन् आप (अस्य) इस (अमर्मणः) मर्म की बातों से रहित शत्रु की (क्रतुभिः) बुद्धि वा कर्मों से (निषत्तम्) स्थित (त्यम्) उसको (चित्) तथा (अस्य) इस मेघ के और (मदस्य) आनन्द के (प्रभृता) अत्यन्त धारण करने वा पोषण करने में (यत्) जिस (मर्म) गुप्त अवयव को (इत्) ही (विदन्) प्राप्त होवे उसको (ईम्) सब प्रकार प्राप्त हुए (युयुत्सन्तम्) युद्ध करने की इच्छा करते हुए को (तमसि) रात्रि में (हर्म्ये) प्रासाद के ऊपर आप (धाः) धारण कीजिये ॥५॥

भावार्थः—जो पदार्थों के गुप्त स्वरूपों को जान के बुद्धि से शिल्पविद्या की वृद्धि करते हैं वे उत्तम राज्य और ऐश्वर्ययुक्त होते हैं ॥५॥

फिर राजविषय को कहते हैं ॥

त्यं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (इन्द्रः) सेना का ईश (उच्चैः) उच्चता के साथ (अपगूर्या) उद्यम कर (सुतस्य) उत्पन्न हुए पदार्थ का (मन्दानः) आनन्द करता हुआ (वृषभः) श्रेष्ठ पुरुष (तम्) उसको (चित्) भी (कत्पयम्, कितने को तथा (असूर्ये) जिस में सूर्य्य विद्यमान नहीं उस (तमसि) रात्री में (शयानम्) शयन करते और (वावृधानम्) निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होते हुए को (चित्) वा मेघ को (जघान) नाश करता है (इत्था) इस प्रकार से (त्यम्) उस शत्रु का भी नाश करे ॥६॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे सूर्य्य मेघ का नाश करता है अन्धकार का वारण कर के, वैसे ही राजा को चाहिये कि दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों का पालन करे ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उद्यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम् ।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वन् (यत्) जो (इन्द्रः) राजा (महते) बड़े (दानवाय) दान

करने वाले के लिये (वधः) वध को (उत् यमिष्ट) उत्तम नियम करे और (यत्) जिस (अप्रतीतम्) अधर्मिजनों से नहीं प्राप्त हुए (सहः) बलको (ईम्) सब ओर से (वज्रस्य) शस्त्रप्रहार के (प्रभृतौ) उत्तम प्रकार धारण करने में (ददाभ) नाश करता और (विश्वस्य) सम्पूर्ण (जन्तोः) जीवमात्र के मध्य में (अधमम्) नीचा (चकार) करता अर्थात् जो सब पर अपना आक्रमण करता है उसको जान के उत्तम प्रकार प्रयोग करो अर्थात् उस से प्रयोजन सिद्ध करो ॥७॥

भावार्थः—हे राजा आदि जनो ! आप लोग सूर्य्य के सदृश वर्त्ताव कर के राज्य की अधमदशा का निवारण करें ॥७॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्याददुग्रः ।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्य्योण आवृणङ् मृध्रवाचम् ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (उग्रः) तेजस्वी सूर्य्य (महता) बड़े (वधेन) वध से (दुर्य्योणे) गृह में (त्यम्) उस (चित्) निश्चित (अर्णम्) जल का (मधुपम्) मधुर पदार्थों की रक्षा करने वाले का (शयानम्) और सोते हुए के सदृश वर्त्तमान (असिन्वम्) नहीं बद्ध (वव्रम्) स्वीकार करने योग्य (अपादम्) पादों से रहित और (अत्रम्) सर्वत्र व्याप्त होने वाले (मृध्रवाचम्) हिंसित वाणी से युक्त मेघ का (महि) अतीव (आदत्) ग्रहण करे वा (नि) अत्यन्त (आवृणक्) स्वीकार करता है वैसे आप वर्त्ताव कीजिये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे बिजुली मेघ को भूमि में गिराती है वैसे आप दुष्टों को नीच दशा को प्राप्त करिये ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको धना भरते अप्रतीतः ।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो (कः) कौन (अस्य) इस के (शुष्मम्) बलको और (तविषीम्) सेना को धारण करे और (इमे) ये (देवी) प्रकाशमान दो अग्नि (इन्द्रस्य) बिजुली के (ओजसः) बल के (भियसा) धारण से (नु) शीघ्र (जिहाते) चलते हैं इन दोनों के मध्य में (एकः) एक तो (धना) धनों को (भरते) धारण करता है और दूसरा (अप्रतीतः) नहीं प्रत्यक्ष हुआ (अस्य) इस (चित्) भी (ज्रयसः) वेगवान् का धारण करने वाला वर्त्तमान है वे ये दोनों सब को (वराते) स्वीकार को प्राप्त होवें क्योंकि ये सब पदार्थ उन दोनों से धारण किये गए हैं ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो दो प्रकार का अग्नि—एक तो प्रसिद्ध सूर्य्य पृथ्वी में प्रसिद्ध रूप और दूसरा गुप्त विजुली रूप ये ही दोनों सब जगत् को धारण करके चलाते हैं ॥९॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

न्य१स्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे ।

सं यदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥१०॥

पदार्थः—हे (युवते) युवावस्था को प्राप्त हुई (स्वधितिः) वज्र के सदृश (देवी) विदुषी तुम (अस्मै) इस (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये यह दो स्त्रियां (गातुः) भूमि और (उशतीव) कामना करती हुई स्त्री के समान (यत्) जैसे (ओजः) वीर्य को उत्तम प्रकार ग्रहण करके (सम्, नि, येमे) अच्छे प्रकार नियम में रखती और (आभिः) इन क्रियाओं से (स्वधाव्ने) धन को धारण करने वाले के लिये (विश्वम्) समस्त व्यवहार को (अनु, जिहीते) अनुकूल चलाती हैं तथा जैसे (क्षितयः) मनुष्य (नमन्त) नम्र होते हैं वैसे आप होइये ॥१०॥

भावार्थः—जैसे ब्रह्मचर्य्य को धारण की हुई ब्रह्मचारिणी कन्या पूर्ण चौबीस वर्ष की अवस्था से युक्त हुई पति की कामना करती हुई, गुण, कर्म्म और स्वभाव के सदृश और प्रिय स्वामी का ग्रहण करती है वैसे ही बिजुली आदि रूप अग्नि संपूर्ण संसार का धारण करता है और जैसे गुणवान् जनों को मनुष्य नमते हैं वैसे ही उत्तम लक्षणों से युक्त स्त्रीपुरुषों को संपूर्ण जन नमते हैं ॥१०॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु ।

तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥११॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! किया है अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य जिन ने ऐसे (एकम्) द्वितीय सहाय से रहित (सत्पतिम्) श्रेष्ठों के पालन करने वाले (पाञ्चजन्यम्) प्राण आदि पांच पवन बलवान् जिस के उस के पुत्र और (जनेषु) मनुष्यों में (जातम्) प्रसिद्ध और (यशसम्) यशस्वी (त्वा) आप को (शृणोमि) सुनती हूं (तम्) उन (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त (नविष्ठम्) अत्यन्त नवीन (मे) मेरे स्वामीको (हवमानासः) ग्रहण करने की इच्छा करते और (आशसः) मनोरथ की इच्छा करते हुए जन (दोषा) रात्रियों और (वस्तोः) दिन का (नु) शीघ्र (जगृभ्रे) ग्रहण करें ॥११॥

भावार्थः– ब्रह्मचर्य्य को वेदोक्त समयानुसार धारण किए हुई कन्या प्रसिद्ध जिस का यश ऐसे श्रेष्ठ पुरुष उत्तम स्वभाव वाले और उत्तम गुण और रूप से युक्त प्रीति करने वाले स्वामी के अर्थात् पति के ग्रहण करने की इच्छा करे वैसे ही ब्रह्मचारी भी अपने सदृश ही जो ब्रह्मचारिणी स्त्री उसका ग्रहण करे ॥११॥

फिर विद्वद्विषयको अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि ।
किन्ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र ॥१२॥

पदार्थः– हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्य युक्त विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त पति की कामना करती हुई मैं (हि) निश्चय से (विप्रेभ्यः) बुद्धिमान् जनों के लिये (मघा) धनों को (ददतम्) देते और (ऋतुथा) ऋतु ऋतु के मध्य में (यातयन्तम्) सन्तान के लिए प्रयत्न करते हुए (त्वाम्) आप को (एवा) ही (शृणोमि) सुनती हूं और (ते) आप के (ये) जो (ब्रह्माणः) चार वेद के जानने वाले (सखायः) मित्र वे (त्वाया) आप में (किम्) क्या (गृहते) ग्रहण करते और किस (कामम्) मनोरथ को (निदधुः) धारण करते हैं ॥१२॥

भावार्थः—स्त्री ऋतु२ के मध्य में—जाने की कामना वाला है वीर्य्य जिस का ऐसे ऊर्ध्वरेत अर्थात् वीर्य को वृथा न छोड़ने वाले ब्रह्मचर्य्य को धारण किये हुए उत्तम स्वभाव वाले और विद्यायुक्त उत्तम यश वाले जन को पतिपने के लिये स्वीकार करे उस के साथ यथावत् वर्त्ताव कर के पूर्ण मनोरथ वाली और सौभाग्य से युक्त होवे ॥१२॥

इस सूक्त में इन्द्र और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह पञ्चम मण्डल में बत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

इस अध्याय में अग्नि विद्वान् और इन्द्रादिको के गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय में कहे हुए अर्थों का पहिले अध्यायों में कहे हुए अर्थों के साथ संगति है ऐसा जानना चाहिए ॥

अथ द्वितीयाऽध्यायारम्भः ॥

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

अथ दशर्चस्य त्रयस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य संवरणः प्राजापत्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १। २। ७ पङ्क्तिः। ३ निचृत्पङ्क्तिः। ४। १० भुरिक्पङ्क्तिः। ५। ६ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ८ त्रिष्टुप्। ९ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब दूसरे अध्याय का आरम्भ है। तथा दश ऋचा वाले तेतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में इन्द्र के गुणों को कहते हैं ॥

महिं म॒हे त॒वसे॑ दीध्ये॒ नॄनिन्द्रा॑येत्था त॒वसे॒ अत॑व्यान् ।

यो अ॑स्मै सुम॒तिं वाज॑सातौ स्तु॒तो जने॑ सम॒र्य॑श्चिके॒त ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (अतव्यान्) प्रयत्न करता हुआ (स्तुतः) स्तुति किया गया (जने) मनुष्यों के समूह में (समर्य्यः) संग्राम की इच्छा करता हुआ (वाजसातौ) सङ्ग्राम में (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को (महे) बड़े (तवसे) बल के लिए (चिकेत) जाने (अस्मै) इस (तवसे) बली (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त के लिये (इत्था) इस प्रकार (महि) बड़े (नॄन्) मनुष्यों का मैं (दीध्ये) प्रकाश करता हूं ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य जिस मनुष्य के लिये सुख विषयक उपकार करे वह उस के लिये प्रत्युपकार निरन्तर करे ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स त्वं न॑ इन्द्र धियसा॒नो अ॒र्कैर्हरी॑णां वृषन्योक्त्र॑मश्रेः ।

या इ॒त्था म॑घव॒न्ननु॒ जोषं॒ वक्षो॑ अ॒भि प्रार्यः स॑क्षि॒ जना॑न् ॥२॥

पदार्थः—हे (वृषन्) सुख की वृष्टि करते हुए (मघवन्) अत्युत्तम धन से युक्त और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले (सः) वह (धियसानः) ध्यान करता हुआ (अर्य्यः) स्वामी राजा (त्वम्) आप (अर्कैः) विचारों से (नः) हम लोगों के वा हम लोगों को (हरीणाम्) मनुष्यों के संबन्ध में (योक्त्रम्) एकत्र करने का (अश्रेः) सेवन कीजिए और (याः) जो उत्तम नीतियां हैं उन की (जोषम्) प्रीति को (अनु, वक्षः)

अनुकूल प्राप्त हूजिए (इत्था) इस प्रकार से (जनान्) मनुष्यों को (अभि, प्र, सक्षि) अच्छे प्रकार संबन्धित करते हो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—वही उत्तम विद्वान् है जो मनुष्यों को बुद्धि तथा योगाभ्यास आदि से बढ़ावे और सब काल में नीति के अनुसार कर्म्म करके प्रजाओं को प्रसन्न करे ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

न ते तं इन्द्राभ्य१स्मदृष्वायुक्तासो अब्रह्मता यदसन् ।
तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्ता रश्मिं देव यमसे स्वश्वः ॥३॥

पदार्थः—हे (वज्रहस्त) शस्त्र और अस्त्रों को बाहुओं में धारण करने वाले (ऋष्व) महापुरुष (देव) दानशील (इन्द्र) राजन् जो (ते) आप की (अब्रह्मता) निर्धनता (अयुक्तासः) और योग से रहित पुरुष (न) नहीं (अभि) सम्मुख (असन्) होते हैं (यत्) जब (ते) वे (अस्मत्) हम लोगों से दूर बसते हैं तब (स्वश्वः) उत्तम घोड़ों से युक्त आप (रश्मिम्) किरण के सदृश (तम्) उस (रथम्) सुन्दर वाहन को (आ, यमसे) विस्तृत करते हो इस से इस के (अधि) ऊपर (तिष्ठा) स्थित हूजिए ॥३॥

भावार्थः—हे ऐश्वर्य्य से युक्त ! जो अयोग्य व्यवहार वाले होवें वे हम लोगों के और आप के दूर बसें और आप वाहनों के चलाने की विद्या को विशेष कर के जानें तो युद्ध में भी सामर्थ्य को प्राप्त होवें ॥३॥

फिर इन्द्र के गुणों को कहते हैं ॥

पुरु यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन् ।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त (वृषा) बलिष्ठ होते हुए आप (ते) आप के (यत्) जो (पुरु) बहुत (उक्था) प्रशंसित कर्म्म (गवे) गौ आदि पशुओं के हित के लिए (सन्ति) हैं उन को (उर्वरासु) भूमियों में और (समत्सु) सङ्ग्रामों में (युध्यन्) युद्ध करते हुए (चकर्थ) करें और शत्रुओं को (ततक्षे) सूक्ष्म अर्थात् निर्बल करते हो और (सूर्य्याय) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान के लिए (चित्) भी (स्वे) अपने (ओकसि) गृह में (दासस्य) दास के (चित्) निश्चित (नाम) नाम को प्रकट कीजिए ॥४॥

भावार्थः—हे राजन् ! जितनी उत्तम सामग्रियां होवें उन को सेना में

युद्ध के लिये स्थापित कीजिये और जो गृह के लिए वस्तु होवें उनको गृह में स्थापित कीजिए ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वयं ते त इन्द्र ये च नरः शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः ।
आस्माञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः ॥५॥

पदार्थः—हे (अहिशुष्म) मेघ को सुखाने वाले सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान (इन्द्र) राजन् (ये) जो (ते) आपके (शर्धः) बल और (जज्ञानाः) उत्पन्न तथा (याताः) प्राप्त हुए (नरः) नायक (रथाः, च) और वाहन आदि हैं (ते) वे (अस्मान्) हम लोगों को प्राप्त होवें और जो (भगः) ऐश्वर्य्य के योग के (न) सदृश (प्रभृथेषु) अत्यन्त धारण करने योग्यों में (हव्यः) ग्रहण करने योग्य (चारुः) सुन्दर (सत्वा) स्थिर होने वाले आप हम लोगों को (आ, जगम्यात्) यथावत् प्राप्त होवें उन आप को (वयम्) हमलोग (च) भी प्राप्त होवें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे राजन् ! जब हम लोग आप के और आप हम लोगों के मित्र होवें तभी हम लोगों का ऐश्वर्य्य बढ़े और जैसे ऐश्वर्य्य सब का प्रिय है वैसे ही धर्म्म प्रिय है और सदा रक्षा करने योग्य है ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः ।
स न एनीं वसवानो रयिं दाः प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्वन् जो (नृतमानः) नृत्य करता हुआ (अमर्त्तः) आत्मभाव से मरणधर्म्म रहित जन (त्वे) आप में (पपृक्षेण्यम्) पूंछने योग्य (ओजः) पराक्रम (नृम्णानि, च) और मनुष्यों से रमने योग्य धनों को धारण करें (सः) वह (एनीम्) प्राप्त होने योग्य को (वसवानः) वसाता हुआ (रयिम्) धन को (दाः) दीजिये (हि) जिस से (तुविमघस्य) बहुत धन के (अर्य्यः) स्वामी होते हुए (दानम्) दान की (प्र, स्तुषे) प्रशंसा करते हो (सः) वह आप (नः) हम लोगों के लिये सुख दीजिये ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग विद्वानों के प्रति पूछने योग्य प्रश्नों को कर, बल को बढ़ाय और ऐश्वर्य्य की वृद्धिकर के उत्तम मार्ग में दान देकर प्रशंसित विद्या और आचरण युक्त होवें ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

एवा नं इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून् ।
उत त्वचं ददंतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुंतस्य चारोः ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् आप (ऊतिभिः) अन्वेक्षण आदि रक्षा आदिकों से (एवा) ही (गृणतः) उपदेशक (कारून्) शिल्पी (नः) हम लोगों की (अव) रक्षा कीजिये और हे (शूर) भय से रहित (वाजसातौ) सङ्ग्राम में (त्वचम्) त्वचा को आच्छादन करने और रक्षा करने वाले कवच को (ददतः) देते हुए (सुषुतस्य) उत्तम प्रकार संस्कार किये गये (मध्वः) मधुर और (चारोः) उत्तम जन के ऐश्वर्य्य का (पाहि) पालन कीजिये और (उत) भी (पिप्रीहि) प्राप्त हूजिये ॥७॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप शूरवीर विद्वान् शिल्पीजनों की रक्षा कर प्रजाओं का निरन्तर पालन कर के सङ्ग्राम में शत्रुओं को जीतकर प्राप्त हूजिये ॥७॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदंस्योर्हिरणिनो रराणाः ।
वहंन्तु मा दश श्येतांसो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुंभिर्नु संश्चे ॥८॥

पदार्थः—(पौरुकुत्स्यस्य) बहुत वज्र आदि शस्त्र और अस्त्रों को जानने वाले के सन्तान (त्रसदस्योः) जिस से डाकू चोर आदि डरते हैं ऐसे (हिरणिनः) सुवर्ण धन आदि से युक्त (अस्य) इस (गैरिक्षितस्य) पर्वत में रहने वाले (सूरेः) बुद्धिमान् जन की (क्रतुभिः) बुद्धि और कर्म्मों के साथ (रराणाः) रमते वा देते हुए (मा) मुझ को (वहन्तु) प्राप्त हों (उत) और भी (त्ये) वे (दश) दश संख्या परिमित (श्येतासः) श्वेत वर्ण वाले घोड़े के सदृश (मा) मुझ को प्राप्त हों उनका मैं (नु) शीघ्र (सश्चे) संबन्ध करता हूं ॥८॥

भावार्थः—जो सत्य धारण करने वाले और सत्पुरुष जिन के मित्र ऐसे जन बुद्धि को बढ़ाते हुए दुष्टों का निवारण करते हैं उनके साथ मैं मेल करता हूँ ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वांमघासो विदथंस्य रातौ ।
सहस्रा मे च्यवंतानो ददान आनूकमर्य्यो वपुंषे नार्चत् ॥९॥

पदार्थः—जो (क्रत्वामघासः) बुद्धि वा कर्म ही हैं धन जिनका वे (शोणाः) रक्त गुण से विशिष्टजन और (मारुताश्वस्य) पवनों के सदृश घोड़ों के सम्बन्धी (विदथस्य) प्राप्त होने योग्य (मे) मेरे वा मेरे लिये (रातौ) दान में (सहस्रा) हजारों को (च्यवतानः) प्राप्त होता हुआ जन (उत) भी सुख देने को समर्थ हों (त्ये, वे और जो (ददानः) देता हुआ (वपुषे) सुन्दर शरीर के लिये (मा) मुझको (आनूकम्) अनुकूलतापूर्वक (आर्चत) आदरयुक्त करे वह (अर्य्यः) स्वामी भी सब प्रकार से तिरस्कृत नहीं होता है ॥९॥

भावार्थः - हे मनुष्यो ! जो हम लोगों के अभीष्ट की सिद्धि करते हैं उनके अभीष्ट की हम लोग भी सिद्धि करें इस प्रकार स्वामी और सेवक भी वर्त्ताव करें ॥९॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः ।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् ॥१०॥

पदार्थः—जो (ध्वन्यस्य) ध्वनियों में कुशल और (संवरणस्य) स्वीकार किये हुए (रायः) धन के (मह्ना) महत्त्व से (उत) और (लक्ष्मण्यस्य) श्रेष्ठ लक्षणों में उत्पन्न (ऋषेः) मन्त्रों के अर्थ जानने वाले के संबन्ध में (प्रयताः) प्रयत्न करते हुए जन हैं (त्ये) वे (गावः) गौवें (व्रजम्) गोष्ठ को (न) जैसे (अपि) निश्चित (ग्मन्) जाती हैं वैसे महत्त्व से (मा) मुझ को भी प्राप्त होते हैं और जो (यतानाः) यत्न करती हुई (सुरुचः) उत्तम प्रीति वाली मुझको (जुष्टाः) प्रसन्नता पूर्वक प्राप्त हैं उनको सब प्राप्त होवें ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य प्रयत्न से नहीं प्राप्त हुए की प्राप्ति और प्राप्त हुए की रक्षा करते हैं वे जैसे बछड़ों को गौवें धन को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

इस सूक्त में इन्द्र और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में तेंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य चतुस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य संवरणप्राजापत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६ । ९ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ४ । ५ निचृज्जगती । ३ । ७ जगती । ८ विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले चौंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्र गुणयुक्त स्त्री पुरुष का वर्णन करते हैं ॥

अजातशत्रुमजरा स्वर्वत्यनु स्वधामिता दस्ममीयते ।
सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (स्वर्वती) सुखवाली (अमिता) अतुल उत्तम गुणों से युक्त (स्वधा) धन को धारण करने वाली (अजरा) वृद्धावस्था से रहित युवती स्त्री जिस (अजातशत्रुम्) शत्रुओं से रहित (दस्मम्) दुष्टों के नाश करने वाले जन को (अनु, ईयते) अनुकूलता से प्राप्त होती है उस (पुरुष्टुताय) बहुतों से प्रशंसा किये गए (ब्रह्मवाहसे) धन प्राप्त कराने वाले के लिये (प्रतरम्) अच्छे प्रकार पार होते हैं दुःख के जिस से उसको (सुनोतन) उत्पन्न करो और उत्तम अन्न का (पचत) पाक करो और धन आदि को (दधातन) धारण करो ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो वैररहित अत्यन्त उत्तम गुणों से युक्त और सब का हितकारी पुरुष अथवा इस प्रकार की स्त्री हो उन दोनों का निरन्तर सत्कार करना योग्य है ॥१॥

अब विद्वद्विषय में पाक के गुणों को कहते हैं ॥

आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत मघवा मध्वो अन्धसः ।
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (उशना) कामना करता हुआ (मघवा) बहुत धन से युक्त जन (सोमेन) सोमलता से उत्पन्न रस से (जठरम्) उदर की अग्नि को (आ, अपिप्रत) अच्छे प्रकार पूर्ण करे और (मध्वः) मधुर आदि गुणों से युक्त (अन्धसः) अन्न आदि का भोगकर के (अमन्दत) आनन्द करे और (यत्) जो (महावधः) अत्यन्त नाश करने वाला (मृगाय) हरिण को (हन्तवे) मारने के लिये (सहस्रभृष्टिम्) हजारों दहन जिस से उस (वधम्) वध को (ईम्) सब प्रकार से (यमत्) देवे वह सब सुख को प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य वैद्यकशास्त्र की रीति से सोमलता आदि ओषधियों के रस के साथ संस्कारयुक्त किये गए अन्नों का भोग करते हैं वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह ।
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (अस्मै) इसके लिये (घ्रंसे) दिन में (उत) भी (वा) अथवा (ऊधनि) प्रभात समय में (सोमम्) जल का (सुनोति) पान करता और (अह) विशेष करके ग्रहण करने में (द्युमान्) बहुत विद्या प्रकाश वाला (भवति) होता तथा (यः) जो (शक्रः) शक्तिमान् (ततनुष्टिम्) विस्तार की (ऊहति) तर्कणा करता और (यः) जो (कवासखः) विद्वान् जन मित्र जिसके ऐसा (मघवा) प्रशंसित धनयुक्त पुरुष (तनूशुभ्रम्) शुद्ध शरीर वाले की तर्कणा करता है वह निरन्तर दुःख को (अपाप) दूर करने की तर्कणा करता है ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य दिन और रात्रि पुरुषार्थ करते हैं वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥३॥

अब प्रजाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यस्यावधीत्पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते ।
वेतीद्वस्य प्रयता यतङ्करो न किल्बिषादीषते वस्व आकरः ॥४॥

पदार्थः—(शक्रः) सामर्थ्यवान् जन (यस्य) जिसके (पितरम्) पिता का (यस्य) जिसकी (मातरम्) माता का और (यस्य) जिसके (भ्रातरम्) भ्राता का (न) नहीं (अवधीत्) नाश करे (अतः) इस से इसका (न) नहीं (ईषते) नाश करता और (अस्य) इसके (यतङ्करः) प्रयत्न करने वाले के (न) सदृश (प्रयता) अत्यन्त दिये हुओं की (वेति) कामना करता है (उ) और (वस्वः) धन का (आकरः) समूह (किल्बिषात्) पाप से पृथक् (इत्) ही (ईषते) प्राप्त होता है ॥४॥

भावार्थः—जो पिता माता और भ्रातृ आदि पालन करें उनके पुत्र आदि को चाहिये कि निरन्तर सत्कार करें और जो पापाचरण का त्याग करके धर्म्म का आचरण करते हैं वे सब काल में सुखी होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन ।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥५॥

पदार्थः—जो (असुन्वता) नहीं पुरुषार्थ करने वाले से (पञ्चभिः) पाँच इन्द्रियों और (दशभिः) दशप्राणों से (आरभम्) आरम्भ करने की (न) नहीं

(वष्टि) कामना करता वह (पुष्यता) पुष्टि को करने वाले से (न), नहीं (सचते) संबन्धित होता (जिनाति, चन) और अपमान को प्राप्त होता है (वा) वा (अनुया) इस से (हन्ति) नाश करता है (वा) वा जो (धुनिः) कंपने वाला (गोमति) बहुत गौवें विद्यमान जिस में उस (व्रजे) गौवों के ठहरने के स्थान में (देवयुम्) विद्वानों की कामना करने वाले का (आ) सब प्रकार से (भजति) आदर करता और वह सब (इत्) ही सुख का भोग करता है ॥५॥

भावार्थः—जो आलस्ययुक्त जन पुरुषार्थ को नहीं करते हैं वे अभीष्ट सिद्धि को नहीं प्राप्त होते हैं ॥५॥

अब इन्द्र के सादृश्य से राजगुणों को कहते हैं ॥

वित्वक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः ।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्य्यः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (वृधः) बढ़ाने वाला (इन्द्रः) बिजुली के सदृश राजा (विश्वस्य) सम्पूर्ण जगत् का (दमिता) दमन करने और (विभीषणः) भय देने वाला है वैसे (वित्वक्षणः) विशेष कर के दुःख का नाश करने वाला (समृतौ) संग्राम में (चक्रमासजः) कालरूपचक्र के महीनों से उत्पन्न हुआ जन (विषुणः) विद्या में व्याप्त और (सुन्वतः) यज्ञ करने और (असुन्वतः) नहीं यज्ञ करने वाले का दमन करने वाला होता हुआ (आर्य्यः) ब्राह्मण क्षत्रिय वा वैश्य वर्ण आर्य्य राजा (यथावशम्) यथाशक्ति (दासम्) सेवक शूद्र को (नयति) प्राप्त करता है ॥६॥

भावार्थः - इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य आर्यों तथा उत्तम गुण कर्म्म और स्वभाव वालों का शूद्र सेवक होता है वैसे ही उत्तम गुण कर्म्म से युक्त राजा की प्रजा सेवन करने वाली होती है ॥६॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु ।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ॥७॥

पदार्थः—हे राजन् जो (पणेः) स्तुति किये गए के (भोजनम्) पालन वा अन्न आदि को (अजति) प्राप्त होता और (मुषे) चोर के लिये दण्ड को और (दाशुषे) दानशील के लिये दान (चन) भी (सम्) उत्तम प्रकार (वि, भजति) बांटता है तथा (यः) जो (अस्य) इस शत्रुजन की (तविषीम्) सेना को (अचुक्रुधत्)

अत्यन्त क्रुद्धित करता है वह (ईम्) सब प्रकार से (विश्वः) सम्पूर्ण (जनः) मनुष्य (दुर्गे) दुःख से प्राप्त होने योग्य व्यवहार वा उत्तम कोट में (पुरु) बहुत (सूनरम्) उत्तम मनुष्य जिस में उस (वसु) धन का (आ) सेवन करता है और राजा से (ध्रियते) धारण किया जाता है ॥७॥

भावार्थः—जो राजा चोर डाकू आदि जनों के लिये कठिन दण्ड और श्रेष्ठ जनों के लिये प्रतिष्ठा देता है उस का राज्य धन आदि से युक्त हुआ वृद्धि को प्राप्त होता है और उस का इस संसार में यश और परलोक में सुख होता है ॥७॥

फिर पूर्वोक्त विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसाववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।
युजं ह्य१न्यमकृत प्रवेपन्युदीं गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (धुनिः) कंपने वाला (मघवा) अत्यन्त श्रेष्ठ बहुत धन से युक्त (इन्द्रः) राजा और (यत्) जो (सुधनौ) धर्म्म से उत्पन्न श्रेष्ठ धन से तथा (विश्वशर्धसौ) संपूर्ण बल से युक्त (जनौ) दो जनों को (सम्, अवेत्) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे और (शुभ्रिषु) उत्तम गुण वाले (गोषु) धेनु और पृथिवी आदिकों में (हि) जिस से (युजम्) युक्त (अन्यम्) अन्य को (अकृत) करता है और (प्रवेपनी) चलती हुई (गव्यम्) गौओं के लिये हितकारक (ईम्) जल को (सत्वभिः) पदार्थों से (उत्, सृजते) उत्पन्न करता है वह सुख करने वाला होता है ॥८॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि अपने राज्य में उत्तम धनी विद्वान् तथा अध्यापक और उपदेशकों की उत्तम प्रकार रक्षा कर के उन से व्यवहार धन और विद्या की उन्नति करें ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमां केतुमर्यः ।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन्क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु ॥९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी राजन् (अर्य्यः) स्वामी आप (सहस्रसाम्) असंख्य पदार्थों के विभाग करने (आग्निवेशिम्) अग्नि को प्रवेश कराने और (शत्रिम्) दुःख के नाश करने वाले (उपमाम्) दृष्टांत और (केतुम्) बुद्धि की (गृणीषे) स्तुति करते हो (तस्मै) उन आप के लिये (आपः) जलों के सदृश प्रजायें (संयतः) इन्द्रियों के निग्रह से युक्त हुईं (पीपयन्त) तृप्ति करती हैं (तस्मिन्) उन

आप राजा में (अमवत्) गृह के तुल्य (त्वेषम्) प्रकाश से युक्त (क्षत्रम्) धन वा राज्य (अस्तु) होवें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०- जो राजा होने की इच्छा करे तो सर्व शास्त्रों में प्रविष्ट हुई स्वच्छ और उत्तम गुणों से युक्त बुद्धि को प्राप्त होकर जैसे पितृजन पुत्रों का पालन करते वैसे प्रजाओं का पालन करे ऐसा करने पर श्रेष्ठ राज्य बढ़े ॥६॥

इस सूक्त में इन्द्र विद्वान् और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में चौंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य पञ्चत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य प्रभूवसुराङ्गिरसो ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ निचृदनुष्टुप्। ३ भुरिगनुष्टुप्। ७ अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः। २ भुरिगुष्णिक्। ४। ५। ६ स्वराडुष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः। ८ भुरिग्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले पैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मंत्र में इन्द्रपदवाच्य राजगुणों का वर्णन करते हैं ॥

यस्ते साधिष्ठोऽवंस इन्द्र क्रतुष्टमा भर।
अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम् ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश न्याय से प्रकाशित राजन् (यः) जो (ते) आप की (अवसे) रक्षा आदि के लिये (साधिष्ठः) अत्यन्त श्रेष्ठ (क्रतुः) बुद्धि है (तम्) उस (चर्षणीसहम्) मनुष्यों को सहने वाले (सस्निम्) ब्रह्मचर्य्यव्रत और विद्या के ग्रहण से पवित्र (वाजेषु) और संग्रामों में (दुष्टरम्) दुःख से उल्लंघन करने योग्य को (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (आ, भर) सब प्रकार धारण करिये ॥१॥

भावार्थः—वही राजा उत्तम होवे जो दीर्घ ब्रह्मचर्य्य से यथार्थवक्ता जनों से विद्या और विनय को ग्रहण करके न्याय से राज्य की शिक्षा देवे ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः।
यद्वा पञ्चं क्षितीनामवस्तत्सु न आ भर ॥२॥

पदार्थः—हे (शूर) वीर (इन्द्र) राजन् (यत्) जो (ते) आप की (चतस्रः) चार साम दाम दण्ड और भेद नामक वृत्ति और (यत्) जो (तिस्रः) तीन उत्तम प्रकार शिक्षित सभा सेना और प्रजा और (पञ्च) पृथिवी अप् तेज वायु आकाश पांच तत्त्व (सन्ति) हैं (वा) वा (यत्) जो (क्षितीनाम्) मनुष्यों का (अवः) रक्षण आदि है (तत्) उसको (नः) हम लोगों के लिए (सु) उत्तमता से (आ, भर) सब प्रकार धारण करो वा पुष्ट करो ॥२॥

भावार्थः—वही राज्य बढ़ाने को समर्थ होवे कि जो राज्य के अङ्ग सब पूर्ण उत्तम प्रकार ग्रहण करे ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे ।
वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् (हि) जिस से (वृषजूतिः) वृष के वेग के सदृश वेग से युक्त (तुर्वणिः) शीघ्रकारी और श्रेष्ठ गुणों से युक्त मंत्रियों की याचना करने वाले आप (आभूभिः) जो विद्या और विनय में सब ओर से प्रकट होते हैं उन के साथ (जज्ञिषे) प्रकट होते हो उन (वृषन्तमस्य) अत्यन्त बलिष्ठ (ते) आप के (वरेण्यम्) अतीव उत्तम (अवः) रक्षण आदि कर्म्म का हम लोग (आ, हूमहे) उत्तम प्रकार से स्वीकार करते हैं ॥३॥

भावार्थः—हे राजन् ! जिस से आप उत्तम गुण, कर्म्म और स्वभाव-वाले हो और पितृजन जैसे सन्तानों को वैसे हम लोगों का पालन करते हो इस से आप को राजा हम लोग मानते हैं ॥३॥

अब प्रजा विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः ।
स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) बलवान् पुरुष ! (हि) जिससे आप (वृषा) बलिष्ठ वा सुख के वर्षाने वाले (असि) हैं और (राधसे) धनरूप ऐश्वर्य्य के लिये (जज्ञिषे) प्रकट होते हो जिन (ते) आप का (वृष्णि) सुख वर्षाने वाले (शवः) बल और (स्वक्षत्रम्) अपना राज्य वा अपना क्षत्रियकुल जिन (ते) आप का (धृषत्) प्रगल्भ अर्थात् धृष्ट (मनः) चित्त जिन आप का (सत्राहम्) सत्य धर्म्म के आचरण का प्रकट करने वाला दिन और (पौंस्यम्) पुरुषों के लिये हितकारक बल है उन आप को हम लोग राजा मानते हैं ॥४॥

भावार्थः—प्रजाओं को चाहिये कि जो बलवान् पूर्ण विद्या विनय और बल से युक्त, शूरता आदि गुणों से धृष्ट, सदा न्याय और धर्म्माचरण-युक्त हो उसी को राजा मानें ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयन्तमद्रिवः ।
सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥५॥

पदार्थः—(शवसः) बल अर्थात् सेना के (पते) पालक सेना के स्वामिन् (शतक्रतो) अमित बुद्धि वाले (अद्रिवः) मेघयुक्त सूर्य्य के सदृश राजमान (इन्द्र) ऐश्वर्य्य की इच्छा करने वाले प्रजाजन (सर्वरथा) संपूर्ण वाहनों से युक्त (त्वम्) आप (तम्) उस (अमित्रयन्तम्) शत्रु के सदृश आचरण करते हुए (मर्त्यम्) मनुष्य-शरीरधारी को विजय करने के लिये (नि) अत्यन्त (याहि) प्राप्त हूजिये ॥५॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो अन्याय से आप का शत्रु होवे उस के शासन के लिए बल के सहित आप नित्य प्राप्त हूजिए ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः ।
उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥६॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्तम) अतिशय कर के धन को प्राप्त होने वाले राजन् (वृक्तबर्हिषः) विदीर्ण किया है हवन किये हुए पदार्थों से अन्तरिक्ष को जिन्होंने ऐसे ऋत्विक् (जनासः) प्रसिद्ध पुण्यात्मा जन (वाजसातये) संग्राम वा अन्न आदि के विभाग के लिए (उग्रम्) दुष्टों में कठिन स्वभाव वाले और (पूर्वीषु) प्राचीन प्रजाओं में (पूर्व्यम्) पूर्व राजाओं से किया गया सत्कार जिनका ऐसे (त्वाम्) आप की (हवन्ते) स्तुति करते वा ग्रहण करते हैं वह आप उन की सर्वदा (इत्) ही उत्तम प्रकार रक्षा कीजिए ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो प्रतिष्ठित क्षत्रियों के कुल में उत्पन्न हुआ विद्या और विनय आदि से युक्त और प्रजा के पालन में तत्पर इच्छा जिस की ऐसा होवे उस को राजा मानो ॥६॥

फिर प्रजाविषय को कहते हैं ॥

अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु ।
सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् आप (अस्माकम्) हम लोगों के (दुष्टरम्) शत्रुओं से दुःख से पार होने योग्य (पुरोयावानम्) नगर को चलते हुए (आजिषु) संग्रामों में (धनेधने) धन धन में (सयावानम्) सेना आदि के साथ चलते हुए (वाजयन्तम्) किया अन्वेक्षण जिस का ऐसे (रथम्) सुन्दर वाहन की (अवा) रक्षा करो ॥७॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो आप हम लोगों के नगर और राज्य की यथावत् रक्षा करने को समर्थ होवें तो हम लोगों के राजा होवें ॥७॥

अब राजद्वारा विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरन्ध्या । वयं शविष्ठ वार्य्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥८॥

पदार्थः—हे (शविष्ठ) अत्यन्त बल से युक्त (इन्द्र) राजन् आप (पुरन्ध्या) बहुत विद्या को धारण करने वाली बुद्धि से (अस्माकम्) हम लोगों के (रथम्) बहुत प्रकार के वाहन को (आ, इहि) प्राप्त हूजिए और (नः) हम लोगों का निरन्तर (अवा) पालन कीजिये जिस से (वयम्) हम लोग (दिवि) मनोहर राज्य में (वार्य्यम्) स्वीकार करने योग्य (श्रवः) श्रवण वा अन्न को (दधीमहि) धारण करें और (दिवि) प्रशंसा करने योग्य राज्य में (स्तोमम्) सम्पूर्ण शास्त्र के पढ़ने और पढ़ाने को (मनामहे) जानें ॥८॥

भावार्थः—वही प्रजा का प्रिय होता है जो राजा न्याय से प्रजाओं का उत्तम प्रकार पालन करके विद्या और उत्तम शिक्षा की प्रजाओं में प्रवृत्ति करे ॥८॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा प्रजा और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में पैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य षट्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य प्रभूवसुराङ्गिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ४ । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ६ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले छत्तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में इन्द्रपदवाच्य राजविषय को कहते हैं ॥

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥१॥

पदार्थः – हे मनुष्यो (यः) जो (इन्द्रः) दाता (वसूनाम्) द्रव्यों के (दातुम्) देने को (चिकेतत्) जानता और (रयिणाम्) धनों की (दामनः) देनेवालियों को जानता है (सः) वह (तृषाणः) पिपासा से व्याकुल के सदृश और (धन्वचरः) अन्तरिक्ष में चलने वाले के (न, सदृश (वंसगः) सत्य और असत्य के विभाग करने वालों को प्राप्त होने वाला और (चकमानः) कामना करता हुआ हम लोगों को (आ) सब प्रकार से (गमत्) प्राप्त होवे और (अंशुम्) प्राणों के देने वाले (दुग्धम्) दुग्ध का (पिबतु) पान करे ॥१॥

भावार्थः – इस मन्त्र में उपमालं०—मनुष्यों को चाहिये कि जो धन देने, विचार करने, सत्य की कामना करने और मर्य्यादा को चाहने वाला होवे उसी को राजा मानें ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत्सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन् गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥२॥

पदार्थः—हे (हरिवः) अच्छे मनुष्यों से युक्त (शूर) शत्रुओं के नाश करने वाले (पुरुहूत) बहुतों से सत्कार किये गये (राजन्) राजन् जिन (ते) आप का (शिप्रे) उत्तम प्रकार शोभित (हनू) मुख और नासिका (गीर्भिः) सत्य से उज्ज्वल वाणियों से (हिन्वन्) चलवाता हुआ (अर्वतः) घोड़ों के (न) सदृश और (पर्वतस्य) पर्वत के (पृष्ठे) ऊपर (सोमः) सोमलता के (न) सदृश व्यवहार (आ, रुहत्) प्रकट होता है उन (त्वा) आप को (विश्वे) सब हम लोग (अनु, मदेम) आनन्दित करें तथा आप हम लोगों को आनन्दित करिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं० – जो राजा सत्सङ्ग करता है वह पर्वत में सोमलता के सदृश सब ओर से वृद्धि को प्राप्त होता है ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन् पुरूवसुः ॥३॥

पदार्थः—हे (अद्रिवः) मेघयुक्त सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान (पुरुहूत) बहुतों में

सत्कार पाये हुए (मघवन्) बहुत धनों से युक्त (सदावृध) सदावृद्धि करने वाले राजन् जिस कारण (अमतेः, मे) मुझ निर्बुद्धि का (इव) ही (मनः) चित्त (रथात्) वाहन से (वृत्तम्) वर्त्ते हुए (चक्रम्) चक्र के (न) सदृश (भिया) भय से (वेपते) कंपता है उस कारण का आप निवारण कीजिये और जो (कुवित्) महान् (पुरूवसुः) असंख्य धन से युक्त (जरिता) स्तुति करने वाला (त्वा) आप की (नु) निश्चय (अधि, स्तोषत्) स्तुति करे उसका आप सत्कार करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो राजा चोर और साहस करने वाले जनों का प्रयत्न से न निवारण करे और श्रेष्ठ जनों का न सत्कार करे तो भय के उद्भव से प्रजायें व्याकुल होवें ॥३॥

अथ विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः ।
प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ॥४॥

पदार्थः—हे (हरिवः) उत्तम मनुष्यों से और (मघवन्) धन से युक्त (इन्द्र) शत्रुओं के नाश करने वाले राजन् जो (ते) आप का (एषः) यह (जरिता) सम्पूर्ण विद्याओं की प्रशंसा करने वाला (ग्रावेव) मेघ के सदृश (वाचम्) उत्तम शिक्षा युक्त वाणी को (इयर्ति) प्राप्त होता है वह (बृहत्) बड़े को (आशुषाणः) व्याप्त होता हुआ (सव्येन) वाम ओर से (प्र, दक्षिणित्) उत्तम प्रकार दहिने भाग से चलने वाला (रायः) धन के (प्र, यंसि) उत्तम प्रकार प्राप्त होने वा नियम करने वाले हो वह आप (वि) विशेष कर के (वेनः) कामना करने वाले (मा) न हूजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जो बड़े विद्वान् जन वाणी को ग्रहण कर वा ग्रहण कराय के इन्द्रियों के निग्रह करने वाले होते हैं वे निष्फल मनोरथ वाले नहीं होते हैं किन्तु सत्यकाम और असत्य के द्वेषी निरन्तर वर्त्तमान हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौर्वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम् ।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन्भरे धाः ॥५॥

पदार्थः—हे (सुशिप्र) उत्तम कमल के समान मुखवाले (वृषक्रतो) बलवानों की बुद्धि और कर्म्मों के सदृश बुद्धि और कर्म्म जिस के वह (वज्रिन्) शस्त्र

और अस्त्र के ज्ञान से युक्त राजन् जो (वृषा) सुख वर्षाने वाला (वृषणम्) बलिष्ठ (त्वा) आप को (वर्धंतु) बढ़ावे और जो (वृषा) वृष के समान बलवान् आप (द्योः) सत्य कामना वाले के सदृश (वृषभ्याम्) बल से युक्त (हरिभ्याम्) हरणशील हस्तों से (वहसे) प्राप्त होते वा प्राप्त कराते हो (सः) वह (वृषा) दुष्टों की शक्ति रोकने वाला और आप (वृषरथः) बलिष्ठ बैल रथ में जिनके ऐसे (वृषा) विद्या के वर्षाने वाले (नः) हम लोगों को (भरे) संग्राम में (धाः) धरिये धारण कीजिये ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् तुम लोगों को सर्वदा बढ़ाते हैं उनको आप संग्राम में विजय के लिये प्रेरणा दीजिये ॥५॥

अब शिल्पिकार्य्य विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनीवान्त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।

यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां श्रुतरथाय मरुतो दुवोया ॥६॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो (यः) जो (वाजिनीवान्) वेग की क्रिया का जानने वाला (त्रिभिः) तीन (शतैः) सैकड़ों से (अस्मै) इस (यूने) युवा पुरुष के लिये (सचमानौ) मिले हुए (दुवोया) जो परिचरण को प्राप्त होते हैं उन (वाजिनौ) बड़े वेगवाले (रोहितौ) बिजुली और प्रसिद्ध अग्नि का (अदिष्ट) उपदेश देवे उस (श्रुतरथाय) सुने गए वाहन जिस के उसके लिये (क्षितयः) मनुष्य (सम्, नमन्ताम्) अच्छे प्रकार नम्र होवें ॥६॥

भावार्थः—जो विमान आदि वाहन के कार्य्यों में अग्नि आदि पदार्थों का संप्रयोग करते हैं वे जितने तीन सौ घोड़ों से वाहन को शीघ्र पहुंचाते हैं उतना बल उस कला में होता है और जो इस प्रकार शिल्पविद्या के कृत्यों में प्रसिद्ध होते हैं उनका सत्कार सब करते हैं ॥६॥

इस सूक्त में इन्द्र विद्वान् और शिल्पी के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में छत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य सप्तत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य अत्रिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ विराट्त्रिष्टुप् । ३ । ४ । ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले सैंतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्र विषय को कहते है ॥

सं भानुना यतते सूर्य्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः ।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (आजुह्वानः) आह्वान किया गया (घृतपृष्ठः) जल जिसके पीठ पर ऐसा (स्वञ्चाः) उत्तम प्रकार चलने वाला अग्नि (सूर्य्यस्य) सूर्य्य की (भानुना) किरण से (सम्) उत्तम प्रकार (यतते) प्रयत्न करता और जो (अमृध्राः) नहीं हिंसा करने वाली (उषसः) प्रभात वेलाओं को (वि, उच्छान्) वसावे और जो इस विद्या को जानता है (तस्मै) उस (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य युक्त जन के लिये जो (आह) उपदेश देता है (इति) इस प्रकार हम लोग उसको (सुनवाम) उत्पन्न करें ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो विजुली सूर्य्य के प्रकाश के साथ वर्त्तमान है उसको आदि मे लेकर विद्या का जो उपदेश देवे वह हमलोगों की उन्नति करने वाला होता है यह हमलोग जानें ॥१॥

अब शिल्पी विद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

समिद्धाग्निर्वनवत्स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते ।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वान् जो (स्तीर्णबर्हिः) स्तीर्णबर्हि अर्थात् आच्छादित किया अन्तरिक्ष जिसने ऐसा और (युक्तग्रावा) युक्त मेघ जिस से (सुतसोमः) तथा प्रकट हुआ चन्द्रमा जिस से (समिद्धाग्निः) वह प्रदीप्त हुआ अग्नि संपूर्ण पदार्थों का (वनवत्) सम्भोग करता है (यस्य) जिसके (इषिरम्) गमन को (ग्रावाणः) मेघ (वदन्ति) शब्द से सूचित करते हैं जिसको (अध्वर्युः शिल्पविद्या की कामना करता हुआ जन (हविषा) अग्नि में छोड़ने योग्य सामग्री से (सिन्धुम्) समुद्र को (अव, अयत्) प्राप्त होता और (जराते) स्तुति करता है उस अग्नि का कार्य्यों में संप्रयोग करो ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जो अग्नि सम्पूर्ण पदार्थों में व्याप्त और बहुत उत्तम गुण और क्रियावान् है उसको जानकर कार्यों को सिद्ध करो ॥२॥

अब युवावस्थाविवाह विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम् ।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्त्तयाते ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वानो जैसे (इयम्) यह (पतिम्) पति की (इच्छन्ती) इच्छा करती हुई (वधूः) स्त्री प्रिय स्वामी को (एति) प्राप्त होती है और (यः) जो स्त्री को प्राप्त होने वाला प्रिय (इषिराम्) प्राप्त होती हुई (महिषीम्) बहुत श्रेष्ठ गुण वाली स्त्री को प्राप्त होता है और जैसे वे दोनों सम्पूर्ण गृहकृत्य को (वहाते) चलावें वैसे (ईम्) जल वा सम्पूर्ण पदार्थों को अग्नि से चलाया गया (रथः) वाहन चलाता है वह (अस्य) इसके (आ, श्रवस्यात्) आत्मा के श्रवण की इच्छा करने वाले से (घोषात्, च) और शब्द द्वारा (पुरू) बहुतों और (सहस्रा) हजारों के (परि) सब ओर (आ, वर्त्तयाते) अच्छे प्रकार वर्त्तमान है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे किया ब्रह्मचर्य्य जिन्होंने ऐसे स्त्री और पुरुष परस्पर पति और स्त्रीभाव की इच्छा करते हैं तथा परस्पर प्रसन्न प्रिय होकर संयुक्त हुए गृहाश्रम के व्यवहार को उत्तम रीति से पूर्ण करते हैं वैसे ही जल और अग्नि संप्रयुक्त किये गए सम्पूर्ण व्यवहार को सिद्ध करते हैं और बहुत कोसों से भी मुहूर्त्त मात्र में वाहन आदि को शीघ्र पहुंचाते हैं यह सबको जानना चाहिये ॥३॥

अब शीघ्रयानचालनविषय को कहते हैं ॥

न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम् ।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥४॥

पदार्थः—(यस्मिन्) जिस राजा में (इन्द्रः) बिजुली (गोसखायम्) भूगोल है मित्र जिसका उस (तीव्रम्) तीव्र (सोमम्) जल का (पिबति) पान करती (सत्वनैः) और रथ आदि द्रव्यों से (आ, अजति) आती और (वृत्रम्) मेघ का (हन्ति) नाश करती है (सः) वह (राजा) राजा (सुभगः) सुन्दर ऐश्वर्य्य जिस से उस (नाम) प्रसिद्ध को (पुष्यन्) पुष्ट करता हुआ (क्षितीः) मनुष्यों को (क्षेति) बसाता है वा ऐश्वर्य्य करता और (न, न (व्यथते) भय व पीड़ा को प्राप्त होता है ॥४॥

भावार्थः जिस राजा के वश में भूमि, जल अग्नि और पवन हैं उस राजा को किसी शत्रु आदि से भय कभी नहीं होता और वह राजा यशस्वी और प्रसिद्ध इस जगत् में होता है ॥४॥

अब विद्वद्विद्वाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पुष्यात्क्षेमे अभि योगे भवात्युभे वृतौ संयती सं जयाति ।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत् ॥५॥

पदार्थः—(यः) जो (सूर्य्ये) सूर्य में (प्रियः) कामना करने वाला (अग्ना) अग्नि में (प्रियः) कामना करता हुआ (भवाति) प्रसिद्ध होवे तथा (क्षेमे) रक्षण में और (योगे) अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के लक्षण में (अभि) सन्मुख (पुष्यात्) पुष्टि करे तथा (वृतौ) आच्छादन करने में (उभे) दोनों (संयती) मिली हुइयों को जानकर (भवाति) प्रसिद्ध होवे और (सुतसोमः) एकत्र किया ऐश्वर्य्य जिस ने ऐसा जन (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य की वृद्धि के लिये (ददाशत्) देवे वह जन शत्रुओं को (सम्, जयाति) अच्छे प्रकार जीते ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि आदि की विद्या की कामना करते हुए योग क्षेम के साधन में चतुर, दाता और न्याय में प्रीति करने वाले होवें वे ही दुष्टों को जीतने को समर्थ होवें ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, शिल्पी, विद्वान् और युवावस्था में विवाह का वर्णन, शीघ्र वाहन का चलाना और विजुली की विद्या का वर्णन किया । इससे इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में सैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्याष्टात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य अत्रिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ अनुष्टुप् । २ । ३ । ४ निचृदनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

अब पांच ऋचा वाले अड़तीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में इन्द्र के गुणों को कहते हैं ॥

उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय ॥१॥

पदार्थः—हे (विश्वचर्षणे) सम्पूर्ण देखने योग्य पदार्थों के देखने वाले (शतक्रतो) अनन्त बुद्धि से युक्त और (सुक्षत्र) सुन्दर क्षत्र वा द्रव्य वाले (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त जिन (ते) आप के (उरोः) बहुत (राधसः) धन का (विभ्वी) व्याप्त होने वाला (रातिः) दान है (अधा) इस के अनन्तर न्याय से प्रजाओं का पालन हो वह आप (नः) हम लोगों को (द्युम्ना) यशु वा धन से (मंहय) बड़े करिये ॥१॥

भावार्थः—जो पूर्णविद्या से युक्त असंख्य धन देने और संपूर्ण व्यवहारों

को जानने वाला अत्यन्त ऐश्वर्य युक्त उत्तम स्वभाव और नम्रता से युक्त होवे वह राजा प्रजाओं के पालन करने को समर्थ होवे ॥१॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यदीमिन्द्र श्रवाय्यमिषं शविष्ठ दधिषे ।
पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥२॥

पदार्थः—हे (शविष्ठ) अतिबलयुक्त और (हिरण्यवर्ण) सुवर्ण को स्वीकार करने वाले (इन्द्र) दुःख के नाश करने वाले (यत्) जो (श्रवाय्यम्) सुनने के योग्य और (दुष्टरम्) दुःख से तरने योग्य (इषम्) अन्न आदि को (पप्रथे) प्रकट करता है उस (ईम्) प्राप्त होने योग्य और दुःख से तरने योग्य (दीर्घश्रुत्तमम्) अतिकाल से अधिकतम सुनने वाले को आप (दधिषे) धारण करते हो ॥२॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो पूर्णविद्या से युक्त धन धान्य पशु प्रजाओं का बढ़ाने और ब्रह्मचर्य्य से बड़ा पराक्रम वाला है उसी को राजकर्म्मचारी कीजिये ॥२॥

अब राजप्रजाधर्मविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः ।
उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥३॥

पदार्थः—हे (अद्रिवः) मेघों के सदृश पर्वत हैं जिस के राज्य में ऐसे राजन् जैसे (उभा) दोनों, सूर्य और चन्द्रमा (देवौ) उत्तम गुण कर्म्म और स्वभाव वाले (दिवः) अन्तरिक्ष (च) और (ग्मः) पृथिवी के (च) भी मध्य में प्रकाशित हैं (ये) जो (शुष्मासः) अधिक बलयुक्त (केतसापः) बुद्धि से सम्बन्ध रखने वाले जन (ते) वे (अभिष्टये) इष्टसिद्धि के लिये (मेहना) वर्षण से प्रजाओं में हैं वह प्रजा और आप निरन्तर (राजथः) प्रकाशित होते हैं ॥३॥

भावार्थः—जैसे सूर्य और चन्द्रमा सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करते हैं वैसे ही राजा और प्रजा मिल के सम्पूर्ण राजधर्म्म को प्रकाशित करें ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उतो नो अस्य कस्य चिद्दक्षस्य तव वृत्रहन् ।
अस्मभ्यं नृम्णमा भरास्मभ्यं नृमणस्यसे ॥४॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) जैसे सूर्य्य मेघ का नाश करता है उसके सदृश वर्त्तमान

(तव) आप का और (नः) हम लोगों के (उतो) भी (अस्य) इस के (कस्य) किस के (चित्) भी (दक्षस्य) बलसम्बन्धी (नूमणस्यसे) अपने धन की इच्छा करते हो वह आप (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये, (नृम्णम्) मनुष्य रमते हैं जिसमें उस धन का (आ, भर) धारण कीजिये और (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये अभय दीजिये ॥४॥

भावार्थः—वही श्रेष्ठ मनुष्यों में मुख्य हो जो राज्य के रक्षण में तत्पर होकर वर्त्ताव करे ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

नू तं आभिरभिष्टिभिस्तव शर्मञ्छतक्रतो ।
इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥५ ।

पदार्थः- हे (शतक्रतो) अत्यन्त बुद्धि वाले (इन्द्र) राजन् (ते) आप (आभिः) इन वर्त्तमान (अभिष्टिभिः) इष्ट पदार्थों की इच्छाओं से (तव) आप के (शर्म्मन्) गृह में हम लोग (सुगोपाः) उत्तम प्रकार रक्षा करने वाले (स्याम) होवें। और हे (शूर) भय से रहित राजन् आप के राज्य वा संग्राम में हम लोग (सुगोपाः) यथावत् प्रजा के पालन करने वाले (नू) निश्चय (स्याम) होवें ॥५॥

भावार्थः— हे राजन् ! हम लोग सत्य प्रतिज्ञा और प्रीति से आप के गृह, शरीर, राज्य, और सेना के सदा ही रक्षक होके कृतकृत्य होवें ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र विद्वान् राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में अड़तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकोनचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्याऽत्रिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ विराडनुष्टुप् । २ । ३ । निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ४ स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ५ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले उनचालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में इन्द्र के गुणों को कहते हैं ॥

यदिन्द्र चित्र मेहनास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥१॥

पदार्थः हे (अद्रिवः) सूर्य के सदृश विद्या के प्रकाश करने वाले (विद्वद्वसो) धन को प्राप्त हुए (चित्र) अद्भुत गुण कर्म्म और स्वभाव वाले (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त (यत्) जो (स्वादातम्) आप से शुद्ध किया (राधः) द्रव्य (मेहना) वृष्टि के सदृश (अस्ति) है (तत्, उभयाहस्ति) उस उभयाहस्ति अर्थात् दो प्रकार के हाथ प्रवृत्त होते हैं जिस में ऐसे को (नः) हम लोगों के लिये (आ, भर) सब प्रकार धारण कीजिये ॥१॥

भावार्थः वही राजा धन से युक्त वा कुशली होवे जो वृष्टि के सदृश अन्यों के मनोरथों को वर्षावे ॥१॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर।

विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त आप (यत्) जिस (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (द्युक्षम्) धर्म्म और विद्या के प्रकाश से युक्त को (मन्यसे) मानते हो (तत्) उस को हम लोगों के लिये (आ, भर) धारण कीजिये जिस से (अकूपारस्य) श्रेष्ठ है पार जिनका (तस्य) उन (ते) आप के (दावने) दाता के लिये (वयम्) हम लोग प्रयत्न को (विद्याम) जानें ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वन्! आप जिस २ उत्तम विषय को जानते हैं उस का हम लोगों के प्रति उपदेश कीजिये जिस से हम लोग आप के राजकार्य्य को पूर्णरूप से करने को समर्थ होवें ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यत्ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत्।

तेन दृळ्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥३॥

पदार्थः—हे (अद्रिवः) उत्तम प्रकार शोभित पर्वत से युक्त विद्वन् (ते) आप का (यत्) जो (दित्सु) देने की इच्छा करने वाला (प्रराध्यम्) अत्यन्त साधने योग्य (श्रुतम्) श्रवण और (बृहत्) बड़ा (मनः) चित्त (अस्ति) है (तेन) इस से (चित्) भी आप (दृळ्हा) दृढ़ वस्तुओं की रक्षा करते हो और (सातये) धर्म और अधर्म के विभाग के लिये (वाजम्) संग्राम का (आ, दर्षि) भङ्ग करते हो ॥३॥

भावार्थः—जिस से मनुष्य ब्रह्मचर्य्य विद्या योगाभ्यास और सत्य भाषण आदि के आचरण से सम्पूर्ण विद्याओं से युक्त मन को सिद्ध

कर धर्म से सम्पूर्ण जनों के हित के लिये दुष्टों को दण्ड देता है इस से वह अति उत्तम है ॥३॥

अब राजप्रजाविषय को कहते हैं ॥

मंहिष्ठं वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम् ।
इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस (वः) आप लोगों और (मघोनाम्) बहुत ऐश्वर्यों से युक्त (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (मंहिष्ठम्) अत्यन्त बड़े और (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले (राजानम्) राजा को (प्रशस्तये) प्रशंसा के लिये (पूर्वीभिः) प्राचीन प्रजाओं के साथ (गिरः) वाणियों को (उप, जुजुषे) समीप से सेवते वा प्रसन्नता से स्वीकृत करते हो वे और वह सर्वत्र सुखी होते हैं ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो राजा और जो प्रजाजन परस्पर अनुकूलता अर्थात् प्रीति पूर्वक वर्त्ताव रखते हैं वे सदा आनन्दित होते हैं ॥४॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

अस्मा इत्काव्यं वचं उक्थमिन्द्राय शंस्यम् ।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के लिये (काव्यम्) कवियों विद्वानों से कामना करने योग्य (उक्थम्) प्रशंसित (शंस्यम्) स्तुति करने योग्य (वचः) वचन का प्रयोग करता है (अस्मै) इस के लिये (इत्) और (तस्मै) उस (ब्रह्मवाहसे) धनों को प्राप्त होने वाले जन के लिये (अत्रयः) नहीं हैं तीन प्रकार के दुःख जिन में वे (गिरः) वाणियां (वर्धन्ति) बढ़ती हैं (उ) और (अत्रयः) नहीं हैं तीन प्रकार के गुणों के दोष जिन में वे (गिरः) वाणियां (शुम्भन्ति) उत्तम आचरण कराती हैं ॥५॥

भावार्थः हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन वाणियों को विद्याभ्यास से शुद्ध करते हैं वे कवित्व और ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र राजा प्रजा और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह पंचम मण्डल में उनचालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्याऽत्रिर्ऋषिः । १—४ इन्द्रः । ५ सूर्य्यः । ६—९ अत्रिर्देवता । १ निचृदुष्णिक् । २ । ३ उष्णिक् । ९ स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ त्रिष्टुप् । ५ । ६ । ८ । निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ७ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले चालीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में इन्द्र के गुणों को कहते हैं ॥

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब ।

वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥१॥

पदार्थः—हे (सोमपते) ऐश्वर्य्य के स्वामिन् (वृषन्) बैल के सदृश आचरण करते हुए (वृत्रहन्तम) अत्यन्त धन को प्राप्त होने और (इन्द्र) ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले जन (वृषभिः) बलिष्ठों के साथ आप (अद्रिभिः) मेघों स (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) सोमलता आदि ओषधियों के रस को (पिब) पान करिए और सङ्ग्राम को (आ, याहि) प्राप्त हूजिए ॥१॥

भावार्थः—जो ऐश्वर्य्य की इच्छा करें वे अवश्य बल और बुद्धि की वृद्धि करें ॥१॥

अब मेघविषय को कहते हैं ॥

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।

वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥२॥

पदार्थः (वृषन्) बल की इच्छा करते हुए (वृत्रहन्तम) अतिशय करके शत्रुओं के और (इन्द्र) दुःखों के नाश करने वाले जन जो (अयम्) यह (वृषा) आनन्द को उत्पन्न करने और (वृषा) वृष्टि करने वाला (ग्रावा) मेघ और (मदः) आनन्द तथा (वृषा) सुख का वर्षाने वाला (सोमः) ओषधियों का समूह (सुतः) उत्पन्न किया गया है उन (वृषभिः) मेघादिकों से काय्यों को सिद्ध कीजिये ॥२॥

भावार्थः—जो मेघ आदि पदार्थ हैं उन से मनुष्य बहुत काय्यों को सिद्ध कर सकते हैं ॥२॥

फिर इन्द्रपदवाच्य राजा के गुणों को कहते हैं ॥

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।

वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥३॥

पदार्थः—हे (वृषन्) सुख करने वाले (वज्रिन्) बहुत शस्त्र और अस्त्रों से युक्त (वृत्रहन्तम) अत्यन्त दुष्टों के नाश करनेवाले (इन्द्र) ऐश्वर्य्य की इच्छा करने वाले (वृषा) वृष्टि करने वाला मैं (चित्राभिः) अद्भुत (ऊतिभिः) रक्षादि क्रियाओं और (वृषभिः) दुष्टों के सामर्थ्य को बांधने वालों के साथ वर्त्तमान (वृषणम्) बलिष्ठ (त्वा) आप को (हुवे) बुलाता हूं ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान और सब प्रकार गुणों से सम्पन्न, बलिष्ठ, न्यायकारी राजा का स्वीकार करें जिस से सब प्रकार से रक्षा होवे ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट् छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ् माध्यंन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (ऋजीषी) सरल आदि से युक्त (वज्री) शस्त्र और अस्त्रों का धारण करने वाला (वृषभः) बलिष्ठ (शुष्मी) बलिष्ठ सेना से युक्त (तुराषाट्) हिंसा करने वाले शत्रुओं को सहने (सोमपावा) श्रेष्ठ ओषधियों के रस का पीने (वृत्रहा) दुष्ट शत्रुओं के नाश करने और (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य का करने वाला (राजा) विद्या और विनय से प्रकाशमान (हरिभ्याम्) घोड़ों से वाहन को (युक्त्वा) युक्त करके (अर्वाङ्) पीछे (उप, यासत्) समीप प्राप्त होवे और (माध्यन्दिने) मध्याह्न में (सवने) भोजन के समय (मत्सत्) आनन्दित होवे उसी को अधिष्ठाता करो ॥४॥

भावार्थः—वही राजा प्रशंसित होवे जो राज्य के अङ्गों और विद्याओं को ग्रहण करके प्रजापालन के लिये प्रयत्न करे ॥४॥

अब सूर्य्य विषय को कहते हैं ॥

यत्त्वा सूर्य्य स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ॥५॥

पदार्थः—हे (सूर्य्य) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान (यथा) जैसे (अक्षेत्रवित्) क्षेत्र अर्थात् रेखागणित को नहीं जानने वाला (मुग्धः) मूर्ख कुछ भी नहीं कर सकता है वैसे (यत्) जो (स्वर्भानुः) सूर्य्य से प्रकाशित होने वाला बिजुलीरूप (आसुरः) जिसका प्रकट रूप नहीं वह (तमसा) रात्रि के अन्धकार से (अविध्यत्) युक्त होता है जिस सूर्य्य से (भुवनानि) लोक (अदीधयुः) देखे जाते हैं उसके जानने वाले (त्वा) आप का हमलोग आश्रयण करें ॥५॥

भावार्थः - इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जैसे बिजुली गुप्त हुई अन्धकार में नहीं प्रकाशित होती है वैसे ही विद्यारहित मूर्खजन का आत्मा नहीं प्रकाशित होता है और जैसे सूर्य्य के प्रकाश से संपूर्ण लोक प्रकाशित होते हैं वैसे ही विद्वान् का आत्मा सपूर्ण सत्य और असत्य व्यवहारों को प्रकाशित करता है ॥५॥

फिर सूर्य्यविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्तमाना अवाहन् ।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्वान् (यत्) जो (स्वर्भानोः) सूर्य्य के प्रकाशक के संबन्ध में (दिवः) प्रकाशमान (वर्त्तमानाः) स्थित (मायाः) बुद्धियां (अपव्रतेन) अन्यथा वर्त्तमान (तमसा) अन्धकार से और (तुरीयेण) चौथे (ब्रह्मणा) धन से (गूह्ळम्) गुप्त बिजुली नामक (सूर्यम्) सूर्य के उत्पन्न करने वाले को (अवः) नीचे (अवाहन्) प्राप्त करती हैं (अध) इसके अनन्तर (अत्रिः) निरंतर चलने वाला (अविन्दत्) प्राप्त होता है उनको आप जानिये ॥६॥

भावार्थः—जैसे गुप्त बिजुली के प्रकाश बड़े कार्य को सिद्ध करते हैं वैसे ही विद्वानों की बुद्धियां सम्पूर्ण विज्ञान कार्य्यों को सिद्ध करती हैं ॥६॥

अब उक्त विषय में राजविषय को कहते हैं ॥

मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत् ।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥७॥

पदार्थः—हे (अत्रे) तीन प्रकार के दुःखों से रहित (इरस्या) अन्न की इच्छा से तथा (भियसा) भय से (द्रुग्धः) द्रोह को प्राप्त (इमम्, इस को और (तव) आप के आश्रित (सन्तम्) हुए (माम्) मुझ को (मा) नहीं (नि, गारीत्) निगलिये और जो (त्वम्) आप (मित्रः) मित्र (सत्यराधाः) सत्य आचरण से वा सत्यधन जिनका ऐसे (असि) हो वह आप (राजा) सब के अधिष्ठाता और (वरुणः) श्रेष्ठ सेना का ईश (च) भी (तौ) वे दोनों (इह) इस संसार में (मा) मेरी (अवतम्) रक्षा करो ॥७॥

भावार्थः—हे धर्मिष्ठ राजा और सेना के स्वामी ! अन्याय से किसी के भी पदार्थ को भी न ग्रहण करें भय और न्याय के अच्छे प्रकार चलाने

से राजधर्म्म से पृथक् न होवें और सदा ही सत्य धर्म्म में प्रिय हुए मित्र के सदृश प्रजाओं का पालन करें ॥७॥

अब विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन् कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन् ।
अत्रिः सूर्य्यस्य दिवि चक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (ब्रह्मा) चारों वेदों का जानने वाला (कीरिणा) सम्पूर्ण विद्याओं की स्तुति करने वाले से (युयुजानः) मिलता हुआ (नमसा) सत्कार वा अन्न आदि से (देवान्) विद्वानों की (सपर्यन्) सेवा करता और विद्यार्थियों को (उपशिक्षन्) समीप प्राप्त विद्या को ग्रहण कराता हुआ (अत्रिः) सम्पूर्ण विद्याओं में व्यापक (स्वर्भानोः) सूर्य्य की कांति के सदृश कान्ति जिसकी उसके (ग्राव्णः) मेघ से (सूर्यस्य, सूर्य के (दिवि, प्रकाश में (चक्षुः) नेत्र का (आ, अधात्) स्थापन करे वह (मायाः) बुद्धियों को प्राप्त होवे और अविद्याओं को (अप, अघुक्षत्) अपशब्दित करे ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो विद्वानों की सेवा करने वाला, योगी, विद्या के प्रचार में प्रिय, विद्वान् होवे वह जैसे बिजुली सूर्य और मेघ के संबन्ध से सृष्टि की पालना और दुःख का निवारण होता है वैसे ही अध्यापक और अध्येता के संबन्ध से विद्या की रक्षा और अविद्या का निवारण करता है ॥८॥

अब सूर्य और अन्धकार के दृष्टान्त से विद्वान् और अविद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्य१न्ये अशक्नुवन् ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (स्वर्भानुः) सूर्य से प्रकाशित (आसुरः) मेघ ही (तमसा) अन्धकार से (यम्) जिस (सूर्यम्) सूर्य्य को (अविध्यत्) ताड़ित करता है (तम्) उस को (वै) निश्चय करके (अत्रयः) विद्या में दक्ष जन (अनु, अविन्दन्) अनुकूल प्राप्त होवें (नहि) नहीं (अन्ये; अन्य इस के जानने को (अशक्नुवन्) समर्थ होवें ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मेघ सूर्य्य को ढांप के अन्धकार को उत्पन्न करता है वैसे ही अविद्या आत्मा का आवरण करके अज्ञान को

उत्पन्न करती है और जैसे सूर्य्य मेघ का नाश और अन्धकार का निवारण करके प्रकाश को प्रकट करता है वैसे ही प्राप्त हुई विद्या अविद्या का नाश करके विज्ञान के प्रकाश को उत्पन्न करती है इस विवेचन को विद्वान् जन जानते हैं अन्य नहीं ॥९॥

इस सूक्त में इन्द्र मेघ सूर्य विद्वान् अविद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में चालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ विंशत्यृचस्यैकचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्याऽत्रिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ । २ । ६ । १५ । १८ त्रिष्टुप् । ४ । १३ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । १४ । १९ पङ्क्तिः । ५ । ९ । १० । ११ । १२ भुरिक्पङ्क्तिः । ७ । ८ पङ्क्तिश्छन्दः । २० याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १६ जगती । १७ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब बीस ऋचावाले इकतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में विश्वदेवों के गुणों को कहते हैं ॥

को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे ।

ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ॥१॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान पढ़ने और पढ़ाने वाले जनो (वाम्) आप दोनों और (दिवः) प्रकाशों को (कः) कौन (ऋतायन्) सत्य का आचरण करता हुआ (वा) वा (पार्थिवस्य) पृथिवी में विदित जन के (महः) तेज को कौन (नु) शीघ्र जाने (वा) वा (दे) प्रकाशमान विद्वान् जनों (ऋतस्य) सत्य की (सदसि) सभा में (त्रासीथाम्) रक्षा करो (वा) वा (यज्ञायते) यज्ञ की कामना करते हुए के लिये (नः) हम लोगों की रक्षा करिये (वा) वा (पशुषः) पशुओं और (वाजान्) अन्नों के (न) सदृश हम लोगों के लिये भोगों को प्राप्त कराइए ॥१॥

भावार्थः- हे विद्वानो ! जो आप लोग पृथिवी आदि पदार्थों की विद्या को जानते हैं तो हम लोगों को उपदेश देवें और सभा में बैठ के सत्य न्याय को करें ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ते नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒मायुरिन्द्र॑ ऋभु॒क्षा म॒रुतो॑ जुषन्त ।
नमो॑भिर्वा॒ ये दध॑ते सुवृ॒क्तिं स्तोमं॑ रु॒द्राय॑ मी॒ळ्हुषे॑ स॒जोषाः॑ ॥२॥

पदार्थः—(ये) जो (मरुतः) मनुष्य (नमोभिः) सत्कार और अन्नादिकों से (मीळ्हुषे) सुख का सेचन करते हुए (रुद्राय) दुष्ट आचरणों के करने वाले जनों के रुलाने वाले के लिये (सजोषाः) तुल्य प्रीति के सेवन करने वाले हुए (सुवृक्तिम्) उत्तम प्रकार वर्जन होता है जिससे उस (स्तोमम्) प्रशंसा का (दधते) धारण करते (वा) वा (जुषन्त) सेवन करते हैं (ते) वे (मित्रः) मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ आचरण करने वाला (अर्य्यमा) न्याय का ईश और (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् (ऋभुक्षाः) बड़ा विद्वान् (नः) हम लोगों के लिए (आयुः) जीवन का सेवन करें ॥२॥

भावार्थः—उन्हीं विद्वानों को उत्तम समझना चाहिये जो अपने सदृश सब प्राणियों में वर्त्ताव करें ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ वां॒ येष्ठा॑श्विना हु॒वध्यै॒ वात॑स्य॒ पत्म॒न्रथ्य॑स्य पु॒ष्टौ ।
उ॒त वा॑ दि॒वो असु॑राय॒ मन्म॒ प्रान्धां॑सीव॒ यज्य॑वे भरध्वम् ॥३॥

पदार्थः—हे (येष्ठा) अत्यन्त नियम के निर्वाहक (अश्विना, अध्यापक और उपदेशक जनो जैसे (वाम्) आप दोनों (रथ्यस्य) रथ में उत्पन्न हुए (वातस्य, पवन के (पत्मन्) मार्ग में और (पुष्टौ) पोषण करने में (उत, वा) अथवा (असुराय) मेघ के लिये (दिवः) कामना करते हुए के (अन्धांसीव, अन्न आदिकों के सदृश (यज्यवे) यज्ञारम्भ वा यजमान के लिये कारण होते हो वैसे (हुवध्यै) ग्रहण करने के लिये (मन्म, विज्ञान का (प्र, आ, भरध्वम्) प्रारम्भ करो ॥३॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे पढ़ने और पढ़ाने वाला विद्या के प्रचार के लिये प्रयत्न करता है वैसे ही सब मनुष्यों को चाहिये कि निरन्तर प्रयत्न करें ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

प्र स॑क्ष॒णो दि॒व्यः कण्व॑होता त्रि॒तो दि॒वः स॒जोषा॒ वातो॑ अ॒ग्निः ।
पू॒षा भगः॑ प्रभृ॒थे वि॒श्वभो॑जा आ॒जिं न ज॑ग्मुरा॒श्व॑श्वतमाः ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वन् (दिव्यः) शुद्ध व्यवहारयुक्त (कण्वहोता) बुद्धिमान्,

तथा देने और ग्रहण करने वाले के सदृश जो (सक्षणः) सहने वाला (त्रितः) तीन पृथिवी जल और अन्तरिक्ष में बढ़ता (दिवः) श्रेष्ठ कामनाओं की इच्छा करता और (सजोषाः)साथ ही सेवन करता(वातः) वायु और (अग्निः) अग्नि (प्रभृथे) शुद्ध करने वाले व्यवहार में (पूषा) पुष्टि करने वा (भगः) ऐश्वर्य्य का देने वा (विश्वभोजाः) संसार का पालन करनेवाला और (आशुअश्वतमाः) शीघ्र चलने वाले घोड़े जिनके विद्यमान वे (आजिम्) संग्राम का (जग्मुः) जैसे प्राप्त होते हैं (न) वैसे (प्र) प्रयत्न किया जाता है वहा बहुत भोग की प्राप्ति कराता है ।।४।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग अग्नि आदि पदार्थों से दारिद्रय का नाश करके धनवान् हूजिये ।।४।।

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

प्र वो॑ र॒यिं यु॒क्ताश्वं॑ भरध्वं रा॒य एषेऽव॑से दधीत॒ धीः ।
सु॒शेव॒ एवै॑रौशि॒जस्य॒ होता॒ ये व॒ एवा॑ मरुतस्तु॒राणा॑म् ।।५।।

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो आप लोग (धीः) बुद्धियों को (दधीत) धारण करो और (वः) आप लोगों के लिए अर्थात् आप अपने लिये युक्ताश्वम्) युक्त घोड़े जिससे उस (रयिम्) धन को (प्र, भरध्वम्) अत्यन्त धारण करो । तथा (अवसे) रक्षण आदि के लिये (एषे) प्राप्त होने को (सुशेवः) सुन्दर सुख से युक्त जन (एवैः) गमनों से (औशिजस्य) कामना करने वाले सन्तान का और (रायः) धनों का (होता) देनेवाला होता है और (ये) जो (वः) आप लोगों के (तुराणाम्) नाश करनेवालों के नाश करने वाले (एवाः) और कामना करनेवाले हैं उन का आप लोग सत्कार करो ।।५।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग अग्नि आदि पदार्थों की विद्या से धनवान् होकर सत्यता से सब अनाथों का पालन करो और दुष्टों का ताड़न करो ।।५।।

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

प्र वो॑ वा॒युं र॑थ॒युजं॑ कृणुध्वं॒ प्र दे॒वं विप्रं॑ पनि॒तार॑म॒र्कैः ।
इ॒षु॒ध्यव॑ ऋत॒साप॒ः पुरं॑धी॒र्वस्वी॑र्नो॒ अत्र॒ पत्नी॒रा धि॒ये धुः॑ ।।६।।

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अत्र) इस संसार में (इषुध्यवः) बाणों के द्वारा युद्ध करने वा (ऋतसापः) सत्य संबन्ध रखने वाले विद्वान् जन (वः) आप लोगों के लिए (रथयुजम्) वाहन से युक्त (वायुम्) वेगवाले वायु को (धुः) धारण करें वा आप लोगों और (नः) हम लोगों के लिये (पत्नीः) स्त्रियों के सदृश वर्त्तमानों को

और (धिये) बुद्धि के लिए (वस्वीः) बहुत पदार्थों से युक्त (पुरन्धीः) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (आ) सब प्रकार धारण करें उन के संग से वेगयुक्त वाहन से युक्त को (प्र, कृणुध्वम्) अच्छे प्रकार सिद्ध करें (अर्कैः) प्रशंसनीय पदार्थों से (पनितारम्) स्तुति करने और धर्म्म से व्यवहार करनेवाले (विप्रम्) बुद्धिमान् (देवम्) विद्वान् को (प्र, अच्छे प्रकार प्रकट करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे पतिव्रता पत्नी पति आदि को सुख देती हैं वैसे ही वायु के समान वेगयुक्त रथ को और धार्मिक विद्वानों को धारण कर सब को सुखयुक्त करो ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उप॑ व॒ एषे॒ वन्द्ये॑भिः शू॒षैः प्र य॒ह्वी दि॒वश्चि॒तय॑द्भिर॒र्कैः ।
उ॒षासा॒नक्ता॑ वि॒दुषी॑व॒ विश्व॒मा हा॑ वहतो॒ मर्त्या॑य य॒ज्ञम् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (दिवः) विद्याके प्रकाशों को (चितयद्भिः) जनाते हुए (अर्कैः) सत्कार करने योग्य विद्वानों के साथ और (वन्द्येभिः) स्तुति करने योग्य (शूषैः) बलों के साथ (यह्वी) बड़ी (विदुषीव) पूर्ण विद्यायुक्त स्त्री के तुल्य जो (उषासानक्ता, रात्रि और दिन (वः) आप लोगों के (उप, एषे, समीप प्राप्त होने को (मर्त्याय) मनुष्य के सुख के लिए (विश्वम्) सम्पूर्ण (यज्ञम्, विद्या के प्रचार आदि को (हा) निश्चय (प्र, आ, वहतः) सब प्रकार धारण करते हैं उन के सेवन की विद्या को आप लोग जानें ॥७॥

भावार्थः- इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जैसे बड़ी विद्यायुक्त स्त्री सब जगह विद्यायुक्त स्त्रियों और विद्वानों में सत्कारयुक्त हो और संपूर्ण उत्तम गुणों को धारण करके विद्यायुक्त पति आदि की वृद्धि करती है वैसे ही रात्रि और दिन सब व्यवहारों को धारण करके सब जगत् की वृद्धि करते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अ॒भि वो॑ अर्चे पो॒ष्याव॑तो॒ नॄन्वास्तो॒ष्पतिं॒ त्वष्टा॑रं॒ ररा॑णः ।
धन्या॑ स॒जोषा॑ धि॒षणा॒ नमो॑भि॒र्वन॒स्पतीँ॒रोष॑धी रा॒य एषे॑ ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (धन्या) धन को प्राप्त हुई (सजोषाः) तुल्य प्रीति की सेवने वाली (धिषणा) बुद्धि (नमोभिः) सत्कारों वा अन्न आदिकों से (वनस्पतीन्) अश्वत्थ आदि और (ओषधीः) यव सोमलतादिकों को तथा (रायः) धनों को

(एषे) प्राप्त होने के लिये समर्थ होती है वैसे (वास्तोः) निवास के स्थान के (पतिम्) पालने वाले (त्वष्टारम्) तेजस्वीजन को (रराणः) दाता मैं (पोष्यावतः) बहुत पोषण करने योग्य पदार्थ जिन के विद्यमान उन (वः) आप (नॄन्) मनुष्यों का (अभि, अर्चे) प्रत्यक्ष सत्कार करता हूं ॥ ८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे तीव्र बुद्धि और विद्या से युक्त मनुष्य वैद्यक विद्या को जान कर मनुष्य आदिकों का पालन करते हैं वैसे ही सब के हित की इच्छा करने वाले मनुष्यों का सदा ही सत्कार करिये ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः ।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (ये) जो (स्वैतवः) उत्तम गमन वाले (वसवः) पृथिवी आदि (वीराः) बुद्धि और शरीर के बल से युक्त जनों के (न) सदृश (तने) विस्तीर्ण (तुजे) दान में (नः) हम लोगों के लिये (पर्वताः) जल के देने वाले मेघ और दाता जनों के सदृश (सन्तु) होवें और जो (अभिष्टौ) इष्ट की सिद्धि में (पनितः) प्रशंसित (आप्त्यः) यथार्थवक्ता जनों में उत्पन्न (यजतः) मिलने वा सत्कार करने योग्य जन (नः) हम लोगों की (सदा) सदा (वर्धात्) वृद्धि करे और जो (नर्यः) मनुष्यों में श्रेष्ठ (नः) हम लोगों को (शंसम्) प्रशंसा को प्राप्त करावें उन सब का हम लोग सत्कार करें ॥९॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमालं०—जो जन वीर जनों के सदृश शत्रुओं के निवारण करने, मेघ के सदृश देने वाले और वायु के सदृश वेग-युक्त विद्वान् हम लोगों की नित्य वृद्धि करें उन की हम लोग भी वृद्धि करें ॥९॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति ।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना ॥१०॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप (वृष्णः) सुख की वृष्टिकरने वालों की (अस्तोषि) प्रशंसा करते हो (त्रितः) तीनों में वृद्धिकरने वाला (अपाम्) मनुष्यों के सदृश प्राणियों के (नपातम्) नहीं पतन जिस का उस (भूम्यस्य) पृथ्वी में हुए (गर्भम्) गर्भ की (सुवृक्ति) उत्तम गमन के सहित (गृणीते) स्तुति करता है इस प्रकार जो (अग्निः)

पवित्र करने वाले अग्नि के सदृश (एतरी प्राप्त होती हुई के और (शोचिष्केशः) प्रकाशित विज्ञान वाले के (न)सदृश शूर्षः)बलों से(वना) किरणों को (नि, रिणाति,जाता वा प्राप्त होता है वही सम्पूर्ण सृष्टि में उत्पन्न हुए सुख को प्राप्त होता है ॥१०॥

भावार्थः—वही पुरुष बहुत धन और आदर को प्राप्त होता है कि जो सृष्टिक्रम की विद्या को जान कर कार्य्य की सिद्धि के लिये यत्न करता है ॥१०॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

कथा महे रुद्रियांय ब्रवाम् कद्राये चिकितुषे भगांय ।
आप ओषंधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयों वृक्षकेशाः ॥११॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो मनुष्य (आपः) जल (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधियां (वृक्षकेशाः) वृक्ष हैं केशों के समान जिन के वे पर्वत (गिरयः) मेघ (उत) और (द्यौः) सूर्य्य (वना) किरणों के सदृश (नः) हम लोगों की (अवन्तु) रक्षा करें उन के सहाय से हम लोग (महे) बड़े (चिकितुषे) जानने योग्य और (रुद्रियाय) रुलाने वालों से प्राप्त हुए के लिये (कथा) किस प्रकार से (ब्रवाम) उपदेश देवें और (राये) धन और (भगाय, ऐश्वर्य्य के लिये (कत) कब उपदेश देवें ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—सब मनुष्य अपने और अन्यों के रक्षण के लिये विद्वानों को मिल के प्रश्न और उत्तर से सत्य विद्याओं को प्राप्त हो और अन्यों के लिये उपदेश देकर ऐश्वर्य्य की वृद्धि हम कब करें इस प्रकार नित्य उत्साह करें ॥११॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

शृणोतुं न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचों बबृहाणस्याद्रेः ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (सः) वह (नभः) जल (तरीयान्) तैरने और (इषिरः) प्राप्त होने योग्य (परिज्मा, सर्वत्र प्राप्त होने वाला (ऊर्जाम्) बल से युक्त सेनाओं वा अन्नादिकों का (पतिः) स्वामी पालन करने वाला (नः) हम लोगों की (गिरः) उत्तम शिक्षा से युक्त वाणियों को (शृणोतु) सुने तथा (शुभ्राः) श्वेतवर्णवाले (पुरः) नगरों के (न) सदृश (आपः) और जलों के सदृश विद्याओं से व्याप्त विद्वान् जन (नः) हम लोगों की वाणियों को सुनें (बबृहाणस्य) उत्तम प्रकार बढ़े (अद्रेः) मेघ के (स्रुचः) चलने वालों के सदृश हम लोगों की वाणियों को विद्वान्‌जन (परि, शृण्वन्तु) सुनें ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—वे ही जन विद्वान् होने योग्य हैं जो विद्वानों से पढ़ी हुई विद्या की परीक्षा को प्रसन्नता से देते हैं और वे ही अध्यापक विद्यार्थियों को विद्वान् कर सकते हैं जो प्रीति से उत्तम प्रकार पढ़ा के विरोधियों के सदृश परीक्षा लेते हैं। जो इस प्रकार दोनों प्रयत्न करते हैं वे नदी की उन्नति के समान अच्छे प्रकार बढ़ते हैं ॥१२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व१' आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ॥१३॥

पदार्थः—हे (दस्माः) दुःख की उपेक्षा करने वाले (महान्तः) बड़े श्रेष्ठ जनो (ये) जो (वार्य्यम्) स्वीकार करने योग्य सुख और (वयः) जीवन को (चन) भी (दधानाः) धारण करते हुए (सुभ्वः) श्रेष्ठ कर्म्मों में प्रवृत्त होने वाले हम लोग जो (वः) आप लोगों को (ब्रवाम) कहें उस को (एवाः) ही (चित्) निश्चय (नु) शीघ्र आप लोग (विदा) जानिये जो (वधस्नैः) ताड़न से स्नान करते अर्थात् पवित्र होते हैं उनके साथ (क्षुभा) उत्तम प्रकार चलने से (अनुयतम्) अनुकूलता से प्रयत्न करते हुए (मर्त्तम्) मनुष्य को (आ, अव, यन्ति) उत्तम प्रकार प्राप्त होते हैं उन की आप लोग शिक्षा करो ॥१३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन शुभ कर्म्म को करें और उपदेश देवें वैसे ही आप लोग आचरण करो और जो मनुष्यों को क्लेश देते हैं उन को दण्ड दीजिये ॥१३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मापश्चाच्छा सुमखाय वोचम् ।
वर्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो मैं जिन (दैव्यानि) श्रेष्ठ गुणों में हुए (पार्थिवानि) पृथिवी में विदित (जन्म) जन्मों और (अपः) कर्म्मों को (च, भी (अच्छा) उत्तम प्रकार (आ, वोचम् सब ओर से उपदेश करूं जिस (उदा) जल से (अर्णाः) समुद्रों के सदृश हम लोगों की (चन्द्राग्राः) सुवर्ण वा आनन्द अग्रे अर्थात् परिणाम दशा में जिन के उन (अभिषाताः) चारों ओर से बटी हुई (द्यावः) सत्य कामनाओं की और (गिरः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों की (वर्धन्ताम्) वृद्धि कीजिये जिससे (सुमखाय) शोभन यज्ञों वाले के लिये प्राणियों की (वर्धन्ताम्) वृद्धि हो ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं—हे मनुष्यो ! आप लोग धर्म्मयुक्त कर्म्मों और श्रेष्ठ गुणों का ग्रहण कर के अपनी कामनाओं और वाणी को शोभित करो। जैसे जल से नदियां और समुद्र बढ़ते हैं वैसे ही धर्म्मयुक्त पुरुषार्थ से मनुष्य बढ़ते हैं ॥१४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च ।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिभिर्ऋजुहस्ता ऋजुवनिः ॥१५॥

पदार्थः - हे मनुष्यो (सूरिभिः) विद्वानों और (पायुभिः) रक्षकों से (च) और (या) जो (मे) मेरे (पदेपदे) प्राप्त होने प्राप्त होने, जानने जानने वा जाने जाने योग्य पदार्थ में (वरूत्री) श्रेष्ठ सुख की देने (जरिमा) और स्तुति कराने वाली (वा) वा (शक्रा) सामर्थ्य में कारण (माता) माता (रसा) रस आदि गुणों से युक्त (मही) बड़ी वाणी वा भूमि (ऋजुहस्ता) ऋजु अर्थात् सरल हस्त जिसके वा जिस में वह (ऋजुवनिः) ऋजु अर्थात् नहीं जो कुटिल उन पदार्थों के विभक्त करने वाली (नः) हम लोगों को (सिषक्तु) सम्बन्धित करे वह (स्मत्) ही (नि) निरन्तर (धायि) स्थित की जाती है ॥१५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे माता सन्तानों की रक्षा करती है वैसे ही विद्वानों के संग से प्राप्त और उत्तम प्रकार शिक्षित विद्या विद्वानों की सब प्रकार रक्षा करती है ॥१५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो अच्छोक्तौ । मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥१६॥

पदार्थः—हे विद्वानो (प्रश्रवसः) उत्तम श्रवण वा अन्न जिनका वे (मरुतः) मनुष्य हम लोग (एवया) गमन क्रिया से (अच्छोक्तौ) सत्य कथन में (नमसा) सत्कार वा अन्न आदि से (सुदानून्) उत्तम दानों को (कथा) कैसे (दाशेम) देवें जैसे (मरुतः) पवन (अच्छोक्तौ) उत्तम वचन में प्रवृत्त कराते है वैसे (नः) हम लोगों को इस विषय में प्रवृत्त करिये। जैसे (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में हुआ (अहिः) मेघ (अस्माकम्) हम लोगों का (उपमातिवनिः) उपमा का विभाग करने वाला (भूत्) हो और (रिषे) अन्न के लिये हम लोगों को (मा) नहीं (धात्) धारण करे वैसे आप लोग भी हम लोगों को हिंसा में न प्रवृत्त कीजिये ॥१६॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! आप लोग विद्वानों के प्रति प्रश्न करके कि हम लोग क्या देवें और किस से क्या ग्रहण करें ऐसा निश्चय करके व्यवहार करो और जैसे मेघ स्वयं छिन्न भिन्न होके अन्यों की रक्षा करता है वैसे ही विद्वान् जन स्वयं दूसरे से अपकार किये हुए से छिन्न भिन्न होकर भी अन्यों का सदा उपकार करते हैं ॥१६॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो वनते मर्त्यो वः । अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत ॥१७॥

पदार्थः—हे (देवासः) विद्वान् जनो जो (मर्त्यः) मनुष्य (वः) आप लोगों को (पशुमत्यै, बहुत पशु विद्यमान जिसमें उस (प्रजायै) प्रजा के लिये (धासिम्) अन्न की (वनते) सेवा करता है और जो (चित्) निश्चय से (इति) इस प्रकार से (अस्याः) इस प्रजा के (तन्वः) शरीर की (शिवाम्) मंगलस्वरूप (जराम्) वृद्धावस्था की (आ, वनते) अच्छे प्रकार सेवा करता है और जो (मर्त्यः) मनुष्य (चित्) निश्चय से (मे) मेरे शरीर की मंगल स्वरूप वृद्धावस्था का सेवन करता है और (निर्ऋतिः) भूमि के सदृश (अत्रा) इस प्रजा में (वः) आप लोगों के अन्न को (जग्रसीत) खाता है इस प्रकार हे (देवासः) विद्वान् आपलोग हमलोगों के लिये इसको (नु) शीघ्र सिद्ध कीजिये ॥१७॥

भावार्थः हे विद्वान् जनो ! आप लोग ऐसा प्रयत्न करो जिस से मनुष्यों की अवस्था बढ़े। जब तक मनुष्य वृद्ध नहीं होते तब तक ये परीक्षक भी नहीं होते हैं ॥१७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तां वो देवाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसवः शसा गोः । सा नः सुदानुर्मृळयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः ॥१८॥

पदार्थः—हे (देवाः) धार्मिक विद्वान् जनो जो (सुदानुः) उत्तम दान से युक्त (मृळयन्ती) सुख देती (द्रवन्ती, जानती वा चलती हुई (देवी) विद्यायुक्त स्त्री (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिये (वः) आप लोगों को प्राप्त होती है (ताम्) उसको (ऊर्जयन्तीम्) तथा पराक्रम आदि के दान से वृद्धि कराती हुई (सुमतिम्) श्रेष्ठ बुद्धि को और (इषम्) अन्न को हम लोग (अश्याम) भोगें। हे (वसवः) उत्तम गुणों

में निवास किये हुए जनो ! जो (गोः) पृथिवी के मध्य में (शसा) प्रशंसा के साथ वर्त्तमान है (सा) वह (नः) हम लोगों को प्राप्त हो । और हे विद्यायुक्त स्त्री आप इन जनों के (प्रति) प्रति (गम्याः) प्राप्त हूजिये ॥१८॥

भावार्थः—मनुष्य सदा उत्तम प्रकार घृत आदि के संस्कार से युक्त वुद्धि और बल के बढ़ाने वाले अन्न का सदा भोग करें जिस से वुद्धि यश और धन बढ़े ॥१८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु ।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥१९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (इळा) प्रशंसा करने योग्य वाणी वा भूमि (यूथस्य) समूह की (माता) आदर करने वाली माता के सदृश (नः) हम लोगों की (अभि, गृणातु) सब ओर से स्तुति करे (वा) वा (आयोः) जीवन की (उर्वशी) बहुत वश में होने हैं जिस से ऐसी वाणी (नदीभिः) श्रेष्ठों के सदृश नाड़ियों से (स्मत्) ही स्तुति करे (वा) वा (बृहद्दिवा) बड़ा प्रकाश जिसका ऐसी (गृणाना) स्तुति करने वाली (उर्वशी) और बहुतों को वश में करने वाली वुद्धि (अभ्यूर्ण्वाना) संमुखता से अर्थों को ढांपती हुई (प्रभृथस्य) प्रकर्पता से धारण किये गए जीवन की स्तुति करे ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! आप लोग जो सत्य भाषण से युक्त वाणी को धारण करें तो आप लोगों की अवस्था बढ़े ॥१९॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः ॥२०॥

पदार्थः—जो विद्वान् होवे वह (नः) हम लोगों को (ऊर्जव्यस्य) बहुत बल से प्राप्त (पुष्टेः) पुष्टि के योग का (सिषक्तु) सेवन करे ॥२०॥

भावार्थः—जो जगत् का उपकार करने वाला होता है वही सम्पूर्ण विद्याओं के संबन्ध करने को योग्य होता है ॥२०॥

इस सूक्त में विश्वेदेवों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में इकतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टादशर्चस्य द्विचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्यात्रिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ । ४ । ६ । ११ । १२ । १५ । १६ । १८ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् । ३ । ५ । ७ । ८ । ६ । १३ । १४ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । १७ याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः । १० भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब अठारह ऋचावाले बयालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विश्वेदेवों के गुणों को कहते हैं ॥

प्र शंतमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो (वरुणम्) उदान वायु को (दीधिती) प्रकाशित करती हुई (शन्तमा) अत्यन्त सुख करने वाली (पृषद्योनिः) वृष्टि है कारण जिसका ऐसी तथा (पञ्चहोता) पांच प्राण ग्रहण करने वाले जिस के ऐसी (गीः) वाणी वर्त्तमान है उसको (मित्रम्) प्राण (भगम्) ऐश्वर्य और (अदितिम्) आकाश वा भूमि को (नूनम्) निश्चय करके (प्र, अश्याः) प्राप्त होवे और जो (अतूर्त्तपन्थाः) नहीं हिंसित है मार्ग जिसका ऐसा (मयोभुः) सुखकारक (असुरः) प्रकाश का आवरण करने वाला मेघ है उस में स्थित जो वाणी उसको आप (शृणोतु) सुनिये ॥१॥

भावार्थः—सब चर और अचर पदार्थों में आकाश के संयोग से वाणी वर्त्तमान है उसको विद्वान् ही जान और कार्य्यों में व्यवहार में ला सकते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात्सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम् ।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (अदितिः) पूर्ण सुख की देने वाली (माता) माता (हृद्यम्, हृदय के प्रिय (सूनुम्) सन्तान के (न) सदृश जो (मे) मेरी (स्तोमम्) स्तुति को (प्रति, जगृभ्यात्) अत्यन्त ग्रहण करे और (यत्) जिस (सुशेवम्) उत्तम प्रकार सुख देनेवाले (प्रियम्) सुन्दर और प्रीतिकारक तथा (देवहितम्) देव अर्थात् विद्वानों के लिये हितकारक (ब्रह्म, सत्, चित् और आनन्द स्वरूप चेतन (अस्ति) है और (यत्) जो (मित्रे) प्राणवायु और (वरुणे) उदान वायु में (मयोभु) सुखकारक है उसको (अहम्) मैं इष्ट मानता हूं वैसे आप लोग भी मानिये ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर प्रेमभाव से स्तुति किया गया और जो उसकी आज्ञा का सेवन किया हो तो वह जैसे कृपा करने वाली माता शीघ्र उत्पन्न हुए बालक पर वैसे धार्मिक उपासक जन पर दया करता है, जो जगदीश्वर सर्वत्र व्याप्त हुआ भी प्राणादिकों में पाया जाता है उस सब काल में सुख देने वाले परमात्मा की हमलोग उपासना करें ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे खेत बोने वाले जन (मध्वा) मधुर (घृतेन) जल से क्षेत्र आदि सींचकर अन्नादिकों को प्राप्त होते हैं वैसे ही (एनम्) इस (कवीनाम्) बुद्धिमानों के मध्य में (कवितमम्) अत्यन्त बुद्धिमान् को (उत्, ईरय) उत्तमता से प्रेरणा देओ तथा (अभि, उनत्त) अभ्युदय के अर्थ विद्या और उत्तम शिक्षा से सींचो और हे विद्वन् जिस कवियों के मध्य में श्रेष्ठ कवि की प्रेरणा करो (सः) वह (सविता) विद्या और ऐश्वर्य्य का करने वाला (देवः) विद्वान् (नः) हम लोगों के लिये (प्रयता) प्रयत्न से सिद्ध होने योग्य (चन्द्राणि) आनन्द के देनेवाले सुवर्ण आदि (हितानि) हितकारक (वसूनि) द्रव्यों को (सुवाति) देवे ॥३॥

भावार्थः—हे विद्वान् अध्यापक पुरुषो ! आप लोग जो निश्चय करके सब से उत्तम, सम्पूर्ण विद्याओं से युक्त, श्रेष्ठ विद्वान् होवे उसको—'गृहाश्रम न कर' ऐसा उपदेश दीजिये । जिस से संसार में वर्त्तमान मनुष्यों का बड़ा सुख बढ़े क्योंकि जो निश्चय करके पूर्ण विद्यायुक्त होकर गृहाश्रम को करे वह बहुत व्यापारवान् होने से वीर्य्य आदि के नाश होने से थोड़ी अवस्थायुक्त होकर निरन्तर मनुष्यों के हित करने को नहीं समर्थ होवे ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त जिस से आप (यत्) जो (गोभिः) इन्द्रियों वा वाणियों के साथ (सम्, स्वस्ति) उत्तम सुख (अस्ति) है वह

(नः) हमलोगों को (मनसा) विज्ञान के साथ (सम्, नेषि) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं और हे (हरिवः) श्रेष्ठ मनुष्यों से युक्त जो (सूरिभिः) विद्वानों के साथ सुख है वह हमलोगों को (सम्) एक साथ प्राप्त करते हैं और जो (ब्रह्मणा) वेद धन वा अन्न के साथ (देवहितम्) विद्वानों का हितकारक सुख है वह हमलोगों को (सम्) एक साथ प्राप्त करते हैं और जो (यज्ञियानाम्) यज्ञ करने वाले (देवानाम्) विद्वानों की (सुमत्या) श्रेष्ठ बुद्धि के साथ विद्वानों का हितकारक सुख है वह हम लोगों के लिये (सम्) एक साथ प्राप्त करते हैं इस से सत्कार करने योग्य हो ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आपलोग सत्यवाणी, विद्वानों का सङ्ग, वेदविद्या और श्रेष्ठ बुद्धि के सहित उत्तम प्रकार शोभित हुए अभीष्ट सुख को प्राप्त हूजिये ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य संजितो धनानाम् ।
ऋभुक्षा वाज उत वा पुरंन्धिरवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ॥५॥

पदार्थः हे मनुष्यो ! जैसे (देवः) दाता (भगः) ऐश्वर्य्य से सम्पन्न (सविता) प्रेरणा करने वाला (रायः) धनों का (अंशः) विभाग तथा (वृत्रस्य) मेघ और (धनानाम्) धनों का (संजितः) उत्तम प्रकार जीतने वाला (इन्द्रः) सूर्य्य (ऋभुक्षाः) बड़ा (वाजः) ज्ञानवान् (उत) भी (वा) वा (पुरन्धिः) बहुत बुद्धिमान् और (तुरासः) शीघ्र कार्य्य करने वाले तथा (अमृतासः) अपने रूप से नहीं नाश होने वाले (नः) हम लोगों की (अवन्तु) रक्षा करें वैसे ये आप लोगों की भी रक्षा करें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य अपने सदृश अन्यों के भी सुख दुःख हानि लाभ प्रतिष्ठा और अप्रतिष्ठा को मानते हैं वे ही प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥५॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरजूर्य्यतः प्र ब्रवामा कृतानि ।
न ते पूर्वे मघवन्नापरासो न वीर्यं१ नूतनः कश्चनाप ॥६॥

पदार्थः—हे (मघवन्) अत्यन्त श्रेष्ठ धन से युक्त और अत्यन्त विद्या वाले विद्वान् वा अति बलवान् राजन् (मरुत्वतः) प्रशंसित विद्वानों से युक्त (अप्रतीतस्य) प्रतीति के अविषय (अजूर्य्यतः) जिस को जीर्ण अवस्था नहीं प्राप्त हुई ऐसे

(जिष्णोः) जीतने वाले (ते) आप के जिन (कृतानि) कृत्यों का हम लोग (प्र, ब्रवाम) उपदेश देवें उनको (न) न (पूर्वे) प्राचीनजन (न) न (अपरासः) पीछे से हुए जन व्याप्त होते हैं और (नूतनः) नवीन (कः, चन) कोई भी आप के (वीर्य्यम्) पराक्रम को (न) नहीं (आप) व्याप्त होता है ॥६॥

भावार्थः –विद्वानों को चाहिये कि उन्हीं प्रशंसित कर्म वालों के कृत्यों को अन्य जनों के लिये उपदेश देवें जिन के कर्म अप्रतिहत अर्थात् नष्ट नहीं, होते हैं ॥६॥

फिर विद्वानों के उपदेश विषय को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

उप॑ स्तुहि प्रथ॒मं र॑त्न॒धेयं॒ बृह॒स्पतिं॑ सनि॒तारं॒ धना॑नाम् ।

यः शंस॑ते स्तुव॒ते शम्भ॑विष्ठः पु॒रू॒वसु॑रा॒गम॒ज्जोहु॑वानम् ॥७॥

पदार्थः—हे विद्या और ऐश्वर्य से युक्त (यः) जो (पुरूवसुः) बहुत धनों से युक्त (शम्भविष्ठः) अत्यन्त सुखकारक जन (शंसते) प्रशंसा करने वाले और (स्तुवते) स्तुति करने वाले के लिये (प्रथमम्) पहिले (रत्नधेयम्) रत्न धरने योग्य जिस से उस (जोहुवानम्) पुकारे गये वा पुकारने वाले के लिये (बृहस्पतिम्, बड़ों के पालने करने और (धनानाम्) धनों के (सनितारम्) उत्तम प्रकार विभाग करने वाले को (आगमत्) प्राप्त हो उस की आप (उप, स्तुहि) समीप में स्तुति करो ॥७॥

भावार्थः—वे ही जन प्रशंसा करने योग्य होते हैं जो सब पदार्थ बाँट अर्थात् विभाग कर के खाते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तवो॒तिभिः॒ सच॑माना॒ अरि॑ष्टा॒ बृह॑स्पते म॒घवा॑नः सु॒वीराः॑ ।

ये अ॑श्व॒दा उ॒त वा॒ सन्ति॑ गो॒दा ये व॑स्त्र॒दाः सु॒भगा॒स्तेषु॒ रायः॑ ॥८॥

पदार्थः – हे (बृहस्पते) बृहत् अर्थात् विद्या आदि उत्तम पदार्थों की रक्षा करने वाले (ये) जो (तव) आपकी (ऊतिभिः) रक्षा आदिकों के साथ (अरिष्टाः) नहीं हिंसा किये गए (सचमानाः) संबन्ध करते हुए (मघवानः) अत्यन्त श्रेष्ठ धन से युक्त (सुवीराः) उत्तम वीरजन (अश्वदाः) अग्नि आदि वा घोड़ों को देनेवाले (उत) भी (वा) वा (ये) जो (गोदाः) सुशिक्षित वाणी वा गौओं के देनेवाले (वस्त्रदाः) वस्त्रों के देनेवाले और (सुभगाः) सुन्दर ऐश्वर्य्य वा धन से युक्त (सन्ति) हैं (तेषु) उनमें (रायः) धन होते हैं ॥८॥

भावार्थः – जो धार्मिक राजा से रक्षा किये गए और प्रशंसित धनों से युक्त दाताजन हैं वे ही यशस्वी होके धनाढ्य होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्रिसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः ।
अपव्रतान्प्रसवे वावृधानान्ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व ॥९॥

पदार्थः – हे विद्वन् (ये) जो (अपृणन्तः) नहीं पूर्ण वा नहीं पालन करते हुए (भुञ्जते) भोगते हैं और (नः) हमारे (उक्थैः) उत्तम वाक्यों से (प्रसवे) उत्पन्न हुए जगत् में (वावृधानान्) अत्यन्त बढ़ते हुए (अपव्रतान्) ब्रह्मचर्य्य सत्यभाषणादि व्रताचाररहित (ब्रह्मद्विषः) वेद वा परमात्मा से द्वेष करने वालों को रोकते हैं (एषाम्) इन लोगों के (विसर्म्माणम्) उत्पन्न करने वाले (वित्तम्) धन वा भोग को (कृणुहि) करो और (सूर्य्यात्) सूर्य्य से उनको (यावयस्व) अमिश्रित करो ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो लोग शुद्ध आचरणों से रहितों को शुद्ध आचरणों के सहित और अविद्वानों को विद्वान् कर के नास्तिकों को रोक के अधर्म्म के आचरण से पृथक् होके निरन्तर सुखी करते वे निरन्तर आदर करने के योग्य होते हैं ॥९॥

फिर शिक्षाविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात । यो वः शमीं शशमानस्य निन्दात्तुच्छ्यान् कामान् करते सिष्विदानः ॥१०॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो (यः) जो (देववीतौ) देव अर्थात् विद्वानों से व्याप्त क्रिया में (रक्षसः) दुष्ट आचरणयुक्त मनुष्यों को (ओहते) प्राप्त कराता है (यः) जो (वः) आपलोगों और (शशमानस्य) प्रशंसा किये गये के (शमीम्) कर्म्म की (निन्दात्) निन्दा करे और (सिष्विदानः) संलग्न हुआ (तुच्छ्यान्) क्षुद्रों में हुए (कामान्) मनोरथों को (करते) करे (तम्) उस को (अचक्रेभिः) चक्रों से रहितों के द्वारा दण्ड से (नि, यात) निरन्तर प्राप्त हूजिये ॥१०॥

भावार्थः - हे राजा आदि मनुष्यो ! जो बुरी शिक्षा से मनुष्यों को दूषित करते और निन्दा तथा विषयों की आसक्ति में प्रवृत्त कराते हैं उन को निरन्तर दण्ड दीजिये ॥१०॥

अब रुद्रविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य ।
यक्ष्वा महे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥११॥

पदार्थः हे राजन् अथवा विद्वन् (यः) जो (स्विषुः) सुन्दर बाणों से युक्त (सुधन्वा) उत्तम धनुष् वाला शत्रुओं को जीतता है और (यः) जो (विश्वस्य) सम्पूर्ण जगत् के मध्य में (भेषजस्य) ओषधि की प्रवृत्ति का (क्षयति) निवास करता वा निवास कराता है (तम्) उसकी (महे) बड़े (सौमनसाय) श्रेष्ठ मन के भाव के लिये (स्तुहि) स्तुति कीजिये और श्रेष्ठ कर्म्मों को (यक्ष्वा) मिलाइये वा प्राप्त हूजिये उस (उ) ही (देवम्) श्रेष्ठ गुणों से युक्त (रुद्रम्) और दुष्टों के रुलानेवाले (असुरम्) मेघ को बड़े श्रेष्ठ मनके भाव के लिए (नमोभिः) अन्नादिकों से (दुवस्य) सेवन कीजिये ॥११॥

भावार्थः हे राजन् ! जो शस्त्र और अस्त्रों के चलाने के लिए युद्धविद्या में चतुर वैद्य विद्या में निपुण और दुष्टों के दण्ड देने वाले जन होवें उन की स्तुति कर अच्छे कर्मों में नियुक्त कर और अच्छे प्रकार सेवन कर समस्त राजकृत्यों को पूर्ण करो ॥११॥

अब विद्वत्कर्त्तव्यशिक्षाविषय को कहते हैं ॥

दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः ।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ये) जो (अपसः) उत्तम कर्म्म करने (दमूनसः) संयमी (सुहस्ताः) और उत्तम कर्म्मों में हाथ लगानेवाले (वृष्णः) पराक्रम से युक्त और (विभ्वतष्टाः) व्यापक ईश्वर से रचे गये जन (नद्यः) नदियों के सदृश (उत) और (बृहद्दिवा) बड़ा विद्याका प्रकाश जिसमें ऐसी (राका) सुख को देने वाली (सरस्वती) विज्ञानयुक्त वाणी के सदृश (दशस्यन्तीः) अभीष्ट मनोरथ मनोरथ को देती हुई और (शुभ्राः) सुन्दर स्वरूप तथा उत्तम आचरण करने वाली (पत्नीः) विवाहित स्त्रियों का (वरिवस्यन्तु) सेवन करें वे अत्यन्त सुख को प्राप्त होवें ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—कन्या और वर—जब ब्रह्मचर्य्य से विद्यायें पूर्ण, युवावस्था और परस्पर की परीक्षा होवे तब स्वयंवर विवाह से पति और पत्नी होकर सौभाग्यवान् होते हैं ॥१२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम्।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥१३॥

पदार्थः—हे विद्वन् (यः) जो मनुष्य (वक्षणासु) बहती हुई नदियों के निमित्त (दुहितुः) कन्या के (रूपा) सुन्दर रूपों (आहनाः) और जो सब ओर से ताड़ित होतीं उनका (मिनानः) मान करता हुआ (नः) हम लोगों को (इदम्) इस वर्त्तमान सुख में पाये हुए (अकृणोत्) करे उसके साथ मैं (महे) बड़े (सुशरणाय) उत्तम आश्रय के लिये (नव्यसीम्) अत्यन्त नवीन (जायमानाम्) प्रसिद्ध (मेधाम्) उत्तम बुद्धि और (गिरम्) वाणी को (प्र, सू, भरे) उत्तम प्रकार धारण करता हूं ॥१३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! समानरूप वाली कन्या को देख के ही उसका सदृश पति कराने के समान बुद्धि और शिक्षित वाणी को बढ़ाय के गृहाश्रम से उत्पन्न हुए सुख को सब मनुष्यों के लिये आप लोग प्राप्त कराओ ॥१३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥१४॥

पदार्थः—हे (जरितः) स्तुति करने वाले आप (यः) जो (अब्दिमान्) मेघों से युक्त और (उदनिमान्) बहुत जलवाला (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (उक्षमाणः) सींचता हुआ (विद्युता) बिजुली के साथ मेघ (इयर्त्ति) प्राप्त होता है और जो (सुष्टुतिः) उत्तम प्रशंसायुक्त है उस (स्तनयन्तम्) गर्जना करते हुए को (नूनम्) निश्चय से (प्र, अश्याः) प्राप्त होओ और आप (रुवन्तम्) शब्द करते हुए (इळः) पृथिवी के (पतिम्) पालन करने वाले को (प्र) उत्तम प्रकार जनाइये ॥१४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो मेघ भूमि में वर्त्तमान जीवों का पालन करनेवाला, बिजुली के साथ वृष्टि करता और शब्द करता हुआ भूमि को प्राप्त होता है उसको जान के अन्यों को जनाइये ॥१४॥

अब रुद्रविषयक विद्वत्कर्त्तव्य शिक्षाविषयक को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एष स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः ॥१५॥

पदार्थः— हे विद्वन् जो (कामः) इच्छा (मा) मुझ को (राये) धन के लिए (स्वस्ति) सुख को (हवते) ग्रहण करती है उसकी (उप, स्तुहि) समीप में स्तुति प्रशंसा कीजिए और जो (अयासः) चलते हुए (पृषदश्वान्) सींचनेवाले तथा शीघ्र चलने वाले पदार्थों को प्राप्त होते हैं उन (युवन्यून्) अपने मिले और नहीं मिले हुए पदार्थों की इच्छा करते हुओं को आप (उत, अश्याः) अत्यन्त प्राप्त हूजिए और जो (एषः) यह (स्तोमः) प्रशंसा का विषय (मारुतम्) मनुष्यों के इस (शर्धः) बल को ग्रहण करता है उस (रुद्रस्य) प्राण आदि है रूप जिसका ऐसे वायुके (सूनून्) उत्पत्ति के गुणों को (अच्छा) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिए ।।१५।।

भावार्थः- हे मनुष्यो ! आप लोग वह्नि और मेघविद्या को जानकर पूर्ण मनोरथवाले हूजिये ।।१५।।

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

प्रैष स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतीँरोषधी राये अंश्याः ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ।।१६।।

पदार्थः—हे विद्वन् (देवोदेवः) विद्वान् विद्वान् (सुहवः) उत्तम प्रकार ग्रहण करने वाले और दाता आप और जो (एषः) यह (स्तोमः) प्रशंसा करने योग्य मेघ वा वह्नि (राये) धन के लिए (पृथिवीम्) भूमि (अन्तरिक्षम्) आकाश और (ओषधीः) यव आदि ओषधियों तथा (वनस्पतीन्) वट और अश्वत्थ आदि वनस्पतियों को प्राप्त होता है उसको आप (प्र, अश्याः) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिए वह (मह्यम्) मेरे लिए सुखकारक (भूतु) होवे जिस से यह (पृथिवी) पृथिवी (माता) माता के सदृश पालन करने वाली (नः) हम लोगों को (दुर्मतौ) दुष्टबुद्धि में (मा) नहीं (धात्) धारण करे ।।१६।।

भावार्थः—सब स्त्री और पुरुष विद्वान् होकर विजुली और मेघ आदि की विद्या को ग्रहण करें जिससे यह विद्या आप लोगों की माता के सदृश पालना करे और जैसे माता उत्तम शिक्षा से अपने सन्तानों को उत्तम करती है वैसे ही मेघवृष्टिविद्या से युक्त भूमि उत्तम अन्न आदिकों को उत्पन्न करती है ।।१६।।

फिर उसी विषय को कहते हैं ।।

उरौ देवा अनिबाधे स्याम ।।१७।।

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वान् जनो जैसे हम लोग (अनिबाधे) विघ्नरहित

होने पर (उरौ) बहुत सुख करने वाले कार्य्य में विद्वान् (स्याम) होवें वैसे आप लोग करिये ॥१७॥

भावार्थः—अध्यापक विद्वान् जनों को चाहिये कि सम्पूर्ण विद्या के प्रतिबन्धकों का निवारण करके सम्पूर्ण जनों को विद्वान् करें ॥१७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

सम॒श्विनो॒रव॑सा॒ नूत॑नेन मयो॒भुवा॑ सु॒प्रणी॑ती गमेम ।
आ नो॑ र॒यिं व॑हत॒मोत वी॒राना विश्वा॑न्यमृ॒ता सौभ॑गानि ॥१८॥

पदार्थः हे (मयोभुवा) सुख के करने वालो (सुप्रणीती) उत्तम प्रकार वर्त्ती गई नीति जिन से ऐसे अध्यापक और उपदेशक जनो ! जो आप दोनों (नः) हम लोगों के लिये (रयिम्) लक्ष्मी को (आ, वहतम्) प्राप्त कराइये (उत) भी (वीरान्) श्रेष्ठ शूरता आदि गुणों से युक्त शूरवीर जनों को (आ) प्राप्त कराइये और भी (विश्वानि) सम्पूर्ण (अमृता) नित्य (सौभगानि) सुन्दर ऐश्वर्य्यों के भावरूप को (आ) प्राप्त कराइये उन (अश्विनोः) अध्यापक और उपदेशकों के (नूतनेन) नवीन (अवसा) रक्षण से हम लोग सम्पूर्ण नित्य सुन्दर ऐश्वर्य्यों के भावरूपों को (सम्, गमेम) उत्तम प्रकार प्राप्त होवें ॥१८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! विद्वानों से रक्षित और बोध को प्राप्त हुए आप लोग लक्ष्मी और उत्तम मनुष्यों के सहाय से सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों को प्राप्त हूजिये ॥१८॥

इस सूक्त में विश्वेदेव रुद्र और विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में बयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तदशर्चस्य त्रिचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्याऽत्रिर्ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ । ३ । ६ । ८ । ६ । १७ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ४ । ५ । १० । ११ । १२ । १५ त्रिष्टुप् । ७ । १३ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १४ भुरिक्पङ्क्तिः । १६ याजुषी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब सत्रह ऋचा वाले तेतालीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् के विषय को कहते हैं ॥

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ।।१।।

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (जरिता) सम्पूर्ण विद्याओं की स्तुति करने वाला (विप्रः) बुद्धिमान् जन (महः) बड़े (राये) धन के लिये (सप्त) सात प्रकार की (बृहतीः) बड़ी वाणियों का (जोहवीति) वार २ उपदेश करता है और उस से प्रेरणा किये गए (मध्वा) मधुर आदि गुणों के साथ और (पयसा) दुग्धदान के साथ (अमर्धन्तीः) नहीं हिंसा करती हुई और (तूर्ण्यर्थाः) शीघ्र चलने वाले अर्थ जिन में ऐसी (मयोभुवः) सुख की भावना कराने वाली (धेनवः) गौओं के सदृश वाणियां (नः) हम लोगों को (उप, आ, यन्तु) समीप में उत्तम प्रकार प्राप्त होवें ।।१।।

भावार्थः—जो मनुष्य यथार्थ वक्ता विद्वानों के सङ्ग से शास्त्रों के विषय से युक्त वाणियों को ग्रहण करके उनका, कृपा से अन्यों के लिये उपदेश देवें वे भी श्रेष्ठ होते हैं ।।१।।

फिर उसी विषय को कहते हैं ।।

आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ।।२।।

पदार्थः—हे मनुष्यो आप लोगों से (वाजाय) विज्ञान के लिये (सुष्टुती) श्रेष्ठ प्रशंसा से (नमसा) सत्कार वा अन्न आदि से (अमृध्रे) नहीं हिंसा किये गए में (सुहस्ता) सुन्दर हस्त जिन के वे (यशसौ) यश और धन से युक्त (द्यावा) अन्तरिक्ष और (पृथिवी) पृथिवी (मधुवचाः) मधुर वचन जिसका ऐसा वा ऐसी (पिता) पिता और (माता) माता के सदृश (भरेभरे) संग्राम संग्राम में (नः) हम लोगों को (अविष्टाम्) प्राप्त होवें वे (आ, वर्तयध्यै, उत्तम प्रकार वर्त्ताव करने को प्राप्त होवें ।।२।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे माता और पिता अपने सन्तानों को उत्तम प्रकार शिक्षा देकर और वृद्धि करके विजयकारी करते हैं वैसे ही प्राप्त हुई सूर्य्य और पृथिवी की विद्या सर्वत्र विजय को प्राप्त कराती है ।।२।।

फिर उसी विषय को कहते हैं ।।

अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ।।३।।

पदार्थः—हे (देव) विद्वन् (प्रथमः) पहिले आप (होतेव) दाता जन के सदृश (अस्य) इस (मध्वः) मधुर के मध्य में (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा करिये जिस से हम लोग (ते) आप के (मदाय) आनन्द के लिये (ररिमा) क्रीड़ा करें। हे (चकृवांसः) कार्य्यं करते हुए और (अध्वर्य्यवः) अपनी अहिंसा की इच्छा करते हुए आप लोग (वायवे) वायु विद्या के लिये (मधूनि) विज्ञानों और (चारु) सुन्दर (शुक्रम्) जल को (प्र, भरत) उत्तम प्रकार धारण कीजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं० - हे मनुष्यो! जैसे हवन करने वाला होम से सब के हित को सिद्ध करता है वैसे ही सब के हित लिये वायु और जल की विद्या को विस्तारिये जिस से सब हम लोग आनन्दित हुए वर्त्ताव करें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रिं सोमस्य या शमितारा सुहस्ता ।
मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चदद् दुदुहे शुक्रमंशुः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (सुगभस्तिः) सुन्दर किरणें जिस की वह सूर्य्य और (अंशुः) किरण (चनिश्चदत्) प्रसन्न करता है और (मध्वः) मधुर आदि गुणों से युक्त (सोमस्य) ऐश्वर्य्य के सम्बन्धी (गिरिष्ठाम्) मेघ में वर्त्तमान (अद्रिम्) मेघ को (रसम्) रस को और (शुक्रम्) जल को (दुदुहे) दुहता है वैसे जो (दश) दशसंख्या वाली (क्षिपः) प्रेरणा करते हैं जिन से वे अङ्गुलियां और (या) जो (शमितारा) शांति से यज्ञकर्म्म के करने वाले और (सुहस्ता) अच्छे हाथों वाले (बाहू) भुजाओं को (युञ्जते) युक्त करते हैं उन से धर्म संबन्धी कार्य्यों को करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० जैसे मनुष्य आदि प्राणी अङ्गुलियों से पदार्थों का ग्रहण करते और त्यागते हैं वैसे ही सूर्य्य किरणों से भूमि के नीचे से जल को ग्रहण करके फेंकता अर्थात् वृष्टि करता है ऐसा जानो ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त विद्वन् जिन से (ते) आप के (बृहते) बड़े (जुजुषाणाय) प्रीति से सेवन किये गए (क्रत्वे) प्रज्ञान तथा (दक्षाय) चातुर्य्य बल और (मदाय) आनन्द के लिये (सोमः) बड़ी ओषधियों का रस वा

ऐश्वर्य्य (प्रसाविं) उत्पन्न किया जाय और उनके (योगे) संयोग होने पर (अर्वाक्) नीचे चलने वाले (सुधुरा) सुन्दर धुरा जिन की ऐसे (हरी) हरणशील घोड़ों को (रथे) वाहन में जोड़ के (हूयमानः) स्पर्द्धा किये गए आप (प्रिया) सेवन करने योग्य सुन्दर वस्तुओं वा सुखों को (कृणुहि) सिद्ध करिये ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस से वुद्धि वल आनन्द और पुरुषार्थ वढें और अग्नि और घोड़े आदि के चलाने की विद्या प्राप्त होवे वह कर्म्म सदा करना चाहिये ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ नो॑ म॒हीम॒रम॑तिं स॒जोषा॒ ग्नां दे॒वीं नम॑सा रा॒तह॑व्याम् ।
मधो॒र्मदा॑य बृह॒तीमृ॑त॒ज्ञामाग्ने॑ वह प॒थिभि॑र्देव॒यानैः॑ ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (आ, सजोषाः) सब ओर से तुल्य प्रीति के सेवन करने वाले आप (नमसा) सत्कार वा अन्न आदि से (पथिभिः, देवयानैः) यथार्थ वक्ता विद्वान् चलते हैं जिन में उन मार्गों से (मधोः) मधुर आदि गुण युक्त से (मदाय) आनन्द के लिये नः) हम लोगों को (अरमतिम्) विषयों में नहीं रमण करती हुई (रातहव्याम्) देन योग्य दान जिस से (ग्नाम्) प्राप्त होते हैं ज्ञान को जिस से तथा (ऋतज्ञाम्) सत्य को जानता है जिस से उस (बृहतीम्) वड़े पदार्थों के विषय से युक्त (देवीम्) देदीप्यमान मनोहर (महीम्) वड़ी वाणी को हम लोगों के लिये (आ, वह) प्राप्त कराइये ॥६॥

भावार्थः—वे ही विद्वान् होते हैं जो सब प्रकार से सब काल में विद्या की याचना करते हैं और वे ही विद्वान् हैं जो धर्मयुक्त मार्ग से विरुद्ध कुछ भी आचरण नहीं करते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अ॒ञ्जन्ति॒ यं प्र॒थय॑न्तो॒ न विप्रा॑ व॒पाव॑न्तं॒ नाग्निना॒ तप॑न्तः ।
पि॒तुर्न पु॒त्र उ॒पसि॒ प्रेष्ठ॒ आ घ॒र्मो अ॒ग्निमृ॒तय॑न्नसादि ॥७॥

पदार्थः—हे विद्यार्थिन् (यम्) जिस (वपावन्तम्) विद्या के वीज के विस्तार को करते हुए के (न) सदृश आप को (अग्निना) अग्नि के सदृश ब्रह्मचर्य्य से (तपन्तः) संताप दुःख को सहते और विद्या के वीज का विस्तार करने हुए के (न) सदृश (प्रथयन्तः) प्रसिद्ध करते हुए (विप्राः) वुद्धिमान् जनों के (न) सदृश अग्नि के समान ब्रह्मचर्य्य से सन्ताप दुःख को सहते हुए (अञ्जन्ति) कामना करते वा प्रकट करते हैं और जो (पितुः) पिता के (पुत्रः न) पुत्र के सदृश (उपसि) समीप में (प्रेष्ठः)

अत्यन्त प्रिय (घर्मः) यज्ञ वा तप (अग्निम्) अग्नि को (ऋतयन्) सत्य के सदृश आचरण करते हुए (आ, असादि) उत्तम प्रकार स्थित होवे उन को और उस को आप निरन्तर सेवन करके विद्या को ग्रहण करिये ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे अध्यापक विद्वानो ! तुम लोग जो जितेन्द्रिय उत्तम स्वभावयुक्त शीत उष्ण सुख दुःख आनन्द शोक निन्दा स्तुति आदि द्वन्द्व को सहने वाले अभिमान और मोह से रहित सत्य आचरण-कर्त्ता और परोपकार प्रिय ब्रह्मचारी विद्यार्थी होवें उन को पुरुषार्थ से विद्वान् करिये ॥७॥

फिर उसी विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

अच्छां मही बृहती शन्तमा गीर्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यैं ।
मयोभुवा सरथा यांतमर्वाग्गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम् ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (बृहती, बड़े ब्रह्म आदि वस्तु को प्रकाश करने वाली और (शन्तमा) अत्यन्त कल्याणकारिणी (मही) बड़ी (गीः) गाते हैं पदार्थों को जिस से ऐसी वाणी और (मयोभुवा) सुख को उत्पन्न करने वाले (सरथा) वाहन आदिकों के साथ वर्त्तमान (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जनों को (हुवध्यै) बुलाने को जैसे (दूतः) धार्म्मिक विद्वान् चतुर राजा का दूत (न) वैसे (गन्तु) प्राप्त हूजिये तथा जिस से अध्यापक और उपदेशक जन (नाभिम्) मध्य (धुरम्) वाहन के आधार काष्ठ को (आणिः) कीले के (न) सदृश और (अर्वाक्) सत्य धर्म्म के पीछे (गन्तम्) चलते हुए (निधिम्) द्रव्यपात्र को (अच्छा) उत्तम प्रकार (आ, यातम्) प्राप्त हूजिये उस को आप लोग प्राप्त होओ ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—वे ही मनुष्य हैं जिनको जैसे राजा को दूत वैसे सम्पूर्ण शास्त्रों में प्रवीण वाणी प्राप्त होवे और वे ही भाग्य-शाली हैं जिन को धर्मयुक्त पुरुषार्थ से अतुल ऐश्वर्य्य प्राप्त होवे ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

प्र तव्यसो नमउक्तिं तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि ।
या राधसा चोदितारां मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन् ॥९॥

पदार्थः हे विद्वान जनो जैसे (अहम्) मैं (तुरस्य) शीघ्र कार्य्य करने वाले (तव्यसः बलयुक्त उत और (पूष्णः) पुष्टिकारक (वायोः) वायु के (नमउक्तिम्) सत्कार वा अन्न आदि के वचन का (अदिक्षि) उपदेश करता हूं और (उत) भी

(त्मन्) आत्मा में (या) जो (राधसा) धन से (मर्तानाम्) मनुष्यों के (प्र, चोदितारा) अत्यन्त प्रेरणा करने वाले और (या) जो (वाजस्य) विज्ञान वा अन्न के (द्रविणोदौ) बल से देने वाले वर्त्तमान हैं उन को उपदेश देता हूं वैसे आपलोग भी उपदेश दीजिये ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे विद्वान् जन विद्या के उपदेश और दान से मनुष्यों को उत्तम प्रकार शिक्षित करते हैं वैसे ही तुम लोग भी करो ॥९॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ नाम॑भिर्म॒रुतो॑ वक्षि॒ विश्वा॒ना रू॒पेभि॑र्जातवेदो हुवा॒नः ।
य॒ज्ञं गिरो॑ जरि॒तुः सु॑ष्टु॒तिं च॒ विश्वे॑ गन्त मरुतो॒ विश्व॑ ऊ॒ती ॥१०॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) बुद्धि से युक्त (हुवानः) दान करते हुए आप (नामभिः) संज्ञाओं और (रूपेभिः) रूपों से (विश्वान्) सम्पूर्ण (मरुतः) मनुष्यों को (आ) सब प्रकार (वक्षि) प्राप्त हूजिये (जरितुः) स्तुति करने वाले की (सुष्टुतिम्) उत्तम प्रशंसा को (गिरः) वाणियों को (यज्ञम्, च) और संगति करने को (विश्वे) सम्पूर्ण (गन्त) प्राप्त होवें तथा (विश्वे, समस्त (मरुतः) मनुष्यों को (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (आ) प्राप्त होवें ॥१०॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! आप सम्पूर्ण नाम और रूप आदिकों से सम्पूर्ण पदार्थों को सम्पूर्ण मनुष्यों के लिये साक्षात् कराओ जिस से सब मनुष्य प्रशंसित होकर सब के लिये प्रशंसित विद्यायुक्त संपादित करें ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ नो॑ दि॒वो बृ॑ह॒तः पर्व॑ता॒दा सर॑स्वती यज॒ता ग॑न्तु य॒ज्ञम् ।
हवं॑ दे॒वी जु॑जुषा॒णा घृ॒ताची॑ श॒ग्मां नो॒ वाच॑मुश॒ती शृ॑णोतु ॥११॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी जनो जैसे यह (यजता) उत्तम प्रकार प्राप्त होने योग्य (सरस्वती) विज्ञानयुक्त वाणी (दिवः) कामना करते हुए (बृहतः) महदाशययुक्त (नः) हमलोगों को (पर्वतात्) मेघ से जल के सदृश (आ, गन्तु) सब प्रकार प्राप्त होवे (घृताची) घृत को प्राप्त होने वाली (जुजुषाणा) उत्तम प्रकार से सेवन की गई (देवी) श्रेष्ठ गुण और शास्त्र के बोध से युक्त (उशती) कामना करती हुई विद्यायुक्त स्त्री (नः) हमलोगों के (यज्ञम्) विद्याव्यवहार को (हवम्) कहने सुनने योग्य व्यवहार को वा (शग्माम्) सुखमयी (वाचम्) वाणी को और हमलोगों

को (आ, शृणोतु) अच्छे प्रकार सुने वैसे ही आप लोगों को भी प्राप्त हुई यह आप लोगों के कृत्य को सुने ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—उन्हीं को श्रेष्ठ वाणी प्राप्त होती है जो सत्य की कामना करने वाले महाशय परोपकारप्रिय धर्मिष्ठ और विद्यार्थियों के परीक्षक होवें ॥११॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम् ।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥१२॥

पदार्थः—हे बुद्धिमान् जनो आप लोग (नीलपृष्ठम्) नील गुण से युक्त पृष्ठ जिस का उस (बृहन्तम्) बड़े (बृहस्पतिम्) बड़ों के स्वामी (वेधसम्) बुद्धिमान् को (सदने) सभा के स्थान में (आ, सादयध्वम्) उत्तम प्रकार स्थित कीजिये । और हम लोग (सादद्योनिम्) धर्मसंबन्धी कारण में स्थित होते और (दीदिवांसम्) निरन्तर प्रकाशमान देने वाले (हिरण्यवर्णम्) तेजस्वी (अरुषम्) मर्मविद्या में स्थित होते हुए को (दमे) गृह में अर्थात् सभास्थान में (आ, सपेम) अच्छे प्रकार शपथों से नियत करावें ॥१२॥

भावार्थः—वे ही मनुष्य राज्य करने और बढ़ाने को समर्थ होवें जो धर्मिष्ठ और किये हुए उपकारों को जाननेवाले कुलीन विद्वानों को सभा में स्थित करें तथा वहां स्थापनसमय में शपथों से आप लोग अन्याय को कभी मत करो ऐसा प्रलम्भन करावें ॥१२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः ।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः ॥१३॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (धर्णसिः) धारण करनेवाला (बृहद्दिवः) बड़े प्रकाश का (रराणः) दान करता हुआ (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (ओमभिः) रक्षण आदि के करने वालों के साथ (हुवानः) ग्रहण करता और (ग्नाः) वाणियों को (वसानः) आच्छादित करता हुआ (ओषधीः) सोमलता आदि का (अमृध्रः) नहीं नाश करने वाला (त्रिधातुशृङ्गः) तीन धातु अर्थात् शुक्ल रक्त कृष्ण गुण शृङ्गों के सदृश जिस के और (वयोधाः) सुन्दर आयु को धारण करनेवाला (वृषभः) वृष्टि-कारक सूर्य्य संसार का उपकारी है वैसे ही आप संसार के उपकार के लिये (आ, गन्तु) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिये ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्वान् तीन गुणों से युक्त प्रकृति के जनाने, वाणी के जनाने, नहीं हिंसा करने, औषधों से रोगों के निवारने और ब्रह्मचर्य्य आदि के बोध से अवस्था के बढ़ानेवाले होते हैं वे ही संसार के पूज्य होते हैं ॥१३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

मातुष्पदे परमे शुक्र आयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन् ।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (शुक्रे) शुद्ध (परमे) उत्तम (मातुः) माता के सदृश वर्त्तमान भूमि के (पदे) प्राप्त होने योग्य स्थान में (आयोः) जीवन के (विपन्यवः) विशेपतया स्तुति करने और (रास्पिरासः) दानों की प्रीति करने वाले (रातहव्याः) दिये हुओं के देने योग्य (नमसा) सत्कार वा अन्नआदि से (वासे) वसने में (आयवः) मनुष्य (शिशुम्) शासन करने योग्य बालक को (मृजन्ति) शुद्ध करते हैं (न) जैसे वैसे (सुशेव्यम्) उत्तम सुखों में हुए व्यवहार को (अग्मन्) प्राप्त होते हैं वे उत्तम प्रकार सुखों से युक्त होते हैं ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे माता शीघ्र उत्पन्न हुए बालक को उत्तम प्रकार शुद्धकर के उत्तम स्थान में रक्षा करती है वैसे ही जो योगाभ्यास में चित्त को शुद्ध करते हैं वे ऐश्वर्य्य के सहित सुख को प्राप्त होते हैं ॥१४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त ।
देवोदेव: सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥१५।

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जो (धियाजुरः) बुद्धि वा कर्म्म से प्राप्त हुई वृद्धावस्था जिन को ऐसे (मिथुनासः) स्त्रियों के सहित वर्त्तमान जन (बृहते) वृद्ध (तुभ्यम्) आप के लिये (बृहद्) बड़े (वयः) जीवन को (सचन्त) उत्तम प्रकार प्राप्त होते हैं और (सुहवः) उत्तम प्रकार प्रशंसा करने योग्य (देवोदेवः) विद्वान् विद्वान् (मह्यम्) मेरे लिये सुखकारी (भूतु) हो और (पृथिवी) भूमि के सदृश (माता) माता (नः) हम लोगों को (दुर्म्मतौ) दुष्ट बुद्धि में (मा) नहीं (धात्) धारण करे ॥१५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अवस्था और विद्या में वृद्ध आप लोगों

को विद्याओं से संबन्धित करते हैं और माता के सदृश कृपा से रक्षा करते हैं वे आप लोगों के पूज्य हों ॥१५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥१६॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वान् जनो ! आप लोग जैसे हम लोग (उरौ) बहुत (अनिबाधे) व्यवहार में (स्याम) होवें वैसे करिये ॥१६॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि सब मनुष्य जैसे विघ्नरहित होवें वैसा करें ॥१६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥१७॥

पदार्थः—हे अध्यापकोपदेशको जो (मयोभुवा) सुख के उत्पन्न करने वाले (सुप्रणीती) धर्म सम्बन्धी नीति से युक्त आप (नः) हम लोगों को (रयिम्) धन (उत) और (वीरान्) अति उत्तम पुत्र पौत्र आदिकों को (आ, वहतम्) अच्छे प्रकार प्राप्त करावें और जिन (अश्विनोः) अध्यापक और उपदेशकों के (नूतनेन) नवीन (अवसा) रक्षण आदि से हम लोग (विश्वानि) सम्पूर्ण (अमृता) नाश से रहित (सौभगानि) सुन्दर ऐश्वर्यों के भावों को हम लोग (सम, आ, गमेम) उत्तम प्रकार प्राप्त होवें वे दोनों हम लोगों से सदा (आ) उत्तम प्रकार सेवन करने योग्य हैं ॥१७॥

भावार्थः—जो अध्यापक और उपदेशक जन सब मनुष्यों को नवीन और प्राचीन विद्या से युक्त कर ऐश्वर्य्य को प्राप्त कराते हैं वे सदा ही प्रशंसित होते हैं ॥१७॥

इस सूक्त में संपूर्ण विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

पञ्चम मण्डल में तेतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चदशर्चस्य चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य अवत्सारः काश्यप अन्ये च ऋषयो दृष्टिलिङ्गाः । विश्वेदेवा देवताः । १ । १३ विराड्जगती । २ । ३ । ४ । ५ । ६ निचृज्जगती । ८ । ९ । १२ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ७ भुरिक्-

त्रिष्टुप् । १० । ११ स्वराट्त्रिष्टुप् । १४ विराट् त्रिष्टुप् । १५ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले चवालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में सूर्यरूपता से राजगुणों को कहते हैं ॥

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे ॥१॥

पदार्थः हे राजन् जो आप (गिरा) वाणी से (प्रत्नथा) पुराने के सदृश (पूर्वथा) पूर्व के सदृश (विश्वथा) सम्पूर्ण संसार के सदृश (इमथा) इस के सदृश (ज्येष्ठतातिम्) जेठे ही को (बर्हिषदम्) उत्तम आसन वा अन्तरिक्ष में स्थित होने वाले (स्वर्विदम्) सुख को जानते जिससे उस (प्रतीचीनम्) हमलोगों के सम्मुख सम्मुख प्राप्त होते हुए (वृजनम्) बल को तथा (आशुम्) शीघ्रकारी संग्राम को (जयन्तम्) जीतते हुए को (दोहसे) पूर्ण करते हो (तम्) उन आप को और (यासु) जिनमें (अनु, वर्धसे) वृद्धि को प्राप्त होते हो उन सेनाओं और उन प्रजाओं की हम लोग निरन्तर वृद्धि करें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमाल० हे मनुष्यो ! जो प्राचीन रीति से प्राचीन उत्तम राजाओं के तुल्य पिता के सदृश राज्य का उत्तम प्रकार पालन करके पूर्ण बलयुक्त सेना को कर शीघ्र विजय को प्राप्त हुई प्रजाओं को सुख के अनुकूल वर्त्तावें उन्हीं को उत्तम अधिकार में नियुक्त करिये जिस से राजा और प्रजा का निरन्तर सुख बढ़े ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

श्रिये सुदृशीरुपरस्य याः स्वर्विरोचमानः ककुभामचोदते ।
सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते ॥२॥

पदार्थः—हे (सुक्रतो) उत्तम कर्म्म और बुद्धि से युक्त विद्वान् आप जैसे (विरोचमानः) प्रकाशमान (स्वः) सूर्य्य (ककुभाम्) दिशाओं और (उपरस्य) मेघ का प्रकाशक (आस) वर्त्तमान है वैसे (श्रिये) धन वा शोभा के लिये (याः) जिन (सुदृशीः) सुन्दर दर्शनों वालियों को प्रेरणा करने वाले और (परः) उत्तम से उत्तम (सुगोपाः) और उत्तम प्रकार रक्षा करने वाले (असि) हो और (अचोदते) नहीं प्रेरणा करने और (दभाय) हिंसा करने वाले जन के लिये (मायाभिः) बुद्धियों के साथ (न) नहीं वर्त्तमान हो जिन (ते) आप के (ऋते) सत्य में (नाम) वर्त्तमान है उसकी वे प्रजायें सब प्रकार वृद्धि को प्राप्त होती हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य दिशाओं का प्रकाशक हुआ सब प्रजाओं को सुख देने के लिये वृष्टि करने वाला होता है वैसे ही सब प्रजाओं को न्याय से प्रकाशित कर के विद्या और सुख का बढ़ाने वाला राजा होता है ॥२॥

अब मेघविषय से राजगुणों को कहते हैं ॥

अत्यं हविः संचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरिः ।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अरिष्टगातुः) ऐसा है कि जिस की नहीं हिंसित वाणी वह (सहोभरिः) बल को धारण करने वाला (होता) दाताजन (प्रसर्स्राणः) प्रकर्षता से अत्यन्त चलता हुआ (वृषा) बलिष्ठ (युवा) यौवन अवस्था को प्राप्त (अजरः) वृद्ध अवस्था से रहित (विस्रुहा) रोगों का नाश करने वाला (हितः) हितकारी (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (अनु) पश्चात् (सत्) वर्त्तमान को (च) और (धातु) धारण करने वाले (च) और (अत्यम्) व्याप्त होने वाले में उत्पन्न (हविः) हवन करने योग्य द्रव्य को (सचते) सम्बन्धित करता है (सः) वह (शिशुः) बालक माता को जैसे वैसे संसार के (मध्ये) बीच में पुण्य से युक्त होता है ॥३॥

भावार्थः हे राजन् ! जैसे हवन करनेवाला सुगन्धि आदि से युक्त, अग्नि में हवन किये हुए द्रव्य से वायु वृष्टि और जल की शुद्धि के द्वारा संसार में सुख का उपकार करता है वैसे न्याय और कीर्त्ति की वासना से युक्त दी हुई विद्या से राज्य देश को सुखी करिये ॥३॥

अब सूर्यसंयोग से मेघदृष्टान्त से राजगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र व एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः ।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति ॥४॥

पदार्थः—जैसे (क्रिविः) प्रजा का पालन करने वाला सूर्य (अभीशुभिः) किरणों से (प्रवणे) नीचे स्थल में (नामानि) जलों को (प्र, मुषायति) अत्यन्त चुराता है वैसे ही हे मनुष्यो जो (सुयुजः) जो अच्छे धर्म से युक्त होते वह (एते) राजा आदि जन (वः) आप लोगों के (इष्टये) इष्ट सुख के लिये (यामन्) मार्ग में और (अमुष्मै)- परोक्ष सुख के लिये (सुयन्तुभिः) उत्तम नियन्ता जिन में उन (सर्वशासैः) सम्पूर्ण राज्य के शासन करने वालों से (यम्यः) न्यायकारी के लिये हितकारक (ऋतावृधः) सत्य को बढ़ाने वाली (नीचीः) नीची हुई प्रजाओं को सम्पन्न करें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य सब के सुख के लिये जल को खींचता है वैसे ही राजा न्यायमार्ग से सम्पूर्ण प्रजाओं को चलाता हुआ उत्तम विज्ञान से युक्त भृत्यों के सहित सब मनुष्यों के हित को सम्पादन करता है ॥४॥

अब विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सञ्जर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः ।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ॥५॥

पदार्थः—हे (ऋजुगाथ) सरल व्यवहार के स्तुति करने वाले आप (तरुभिः) वृक्षों से (सञ्जर्भुराणः) उत्तम प्रकार पालन और धारण करते हुए (धारवाकेषु) शास्त्रवाणी के उपदेश करने वालों में और (चित्तगर्भासु) चेतनतारूप गर्भ जिनमें उन के निमित्त (सुतेगृभम्) उत्पन्न जगत् में ग्रहण किये गए (वयाकिनम्) व्यापी को प्रजाओं में (सुस्वरुः) उत्तम प्रकार उपदेश करने वाले हुए (अध्वरे) अहिंसा-युक्त व्यवहार में (शोभसे) शोभा को प्राप्त हूजिये और (जीवः) जीवते हुए (पत्नीः) स्त्रियों को जैसे वैसे प्रजाओं के (अभि) सन्मुख (वर्धस्व) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य स्थावर जङ्गमरूप प्रजाओं से उपकार ग्रहण कर सकें वे सदा ही आनन्दित होवें ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा ।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः ॥६॥

पदार्थः—जो (ज्रयः) वेगवाले (सिध्रया) मंगल स्वरूप (छायया) छाया से (अप्सु) जलों वा प्राणों में (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (उरुषाम्) बहुतों के विभाग करने वाले को (महीम्) बड़ी वाणी और (उरु) बहुत (बृहत्) बड़े (सुवीरम्) सुन्दर वीर पुरुष को जिस से उस (अनपच्युतम्) नाश से रहित (सहः) बल को (सम्, आ, दधिरे) उत्तम प्रकार धारण करते हैं और जिन लोगों से (यादृक्) जैसे (ददृशे) देखा जाता है (तादृक्) वैसा (एव) ही (उच्यते) कहा जाता है वे हम लोगों से निरन्तर सत्कार करने योग्य हैं ॥६॥

भावार्थः—जो अन्य जनों में विद्या के बल और धन संचय को स्थापित करते हैं और जिन से जैसा आत्मा में वर्त्तमान है वैसा मन में

और जैसा मन में वैसा वाणी से कहा जाता है वे ही यथार्थवक्ता जानने योग्य हैं । ६ ।

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वेत्यग्रुर्जनिवान्वा अति स्पृधः समर्य्यता मनसा सूर्यः कविः ।
घ्रंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वावसुः ॥७॥

पदार्थः—जो (स्वावसुः) अपनों में वसता वा अपनों को जो वसाता है वह (सूर्य्यः) सूर्य्य के सदृश (कविः) उत्तम बुद्धिमान् (अग्रुः) अग्रगन्ता (जनिवान्) विद्या में जन्मवान् विद्यायुक्त पुरुष (समर्य्यता) संग्राम की इच्छा करते हुए (मनसा) चित्त से (स्पृधः) स्पर्द्धा करते हैं जिनमें उन संग्रामों को (अति, वेति) अत्यन्त व्याप्त होता है वह (वै) निश्चय से जैसे सूर्य्य (घ्रंसम्) दिन को वैसे (अस्माकम्) हमलोगों की (विश्वतः) सब से (रक्षन्तम्) रक्षा करते हुए (गयम्) श्रेष्ठ अपत्य वा धन और (शर्म्म) गृह का (परि) सब प्रकार से (वनवत्) संविभाग करे वह हम लोगों से सत्कार करने योग्य है ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या और विनय को प्राप्त दुष्टों में उग्र और धार्मिकों में शान्त और सदा ही दुष्टों के साथ युद्ध करने से प्रजाओं की रक्षा करता हुआ सुख में वास करावे वह सूर्य्य के सदृश प्रकाशित यशवाला हो ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते ।
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ॥८॥

पदार्थः—(यः) जो (अस्य) इस (यतुनस्य) यत्न करने वाले विद्वान् के (केतुना) प्रज्ञान से (ज्यायांसम्) श्रेष्ठ (ऋषिस्वरम्) ऋषियों के उपदेश को (चरति) प्राप्त होता है और जिन (ते) आप का (यासु) जिन प्रजाओं में (नाम) नाम है और (यादृश्मिन्) जैसे व्यवहार में जो अन्य जनों से (धायि) धारण किया जाता है (तम्) उस को (अपस्यया) अपने कर्म्म की इच्छा से (विदत्) प्राप्त होता और (उ) भी (स्वयम्) स्वयम् (वहते) प्राप्त होता है (सः) वह हम लोगों को (अरम्, समर्थं (करत्) करे ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य यथार्थवक्ता जन के समीप से प्राप्त हुए बोध से स्वयं उत्तम होकर अन्यों को उत्तम प्रकार भूषित करें वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता ।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वन् (यस्मिन्) जिस में (अग्रिमा) अतिश्रेष्ठ (सवनम्) ऐश्वर्य्य का (न) नहीं (रिष्यति) नाश करता है और (आसाम्) इन प्रजाओं के बीच (समुद्रम्) अन्तरिक्ष को (अव, तस्थे) स्थित होता है और (यत्रा) जहां (आयता) बहुत धनों की वृद्धि होती है और (पूतबन्धनी) पवित्र गुणों को ग्रहण करने वाली (मतिः) बुद्धि (विद्यते) विद्यमान है (न) नहीं (अत्रा) इस में (क्रवणस्य) शब्द करने वाले का (हार्दि) हृदयसंबन्धी कार्य (रेजते) चलता है ॥९॥

भावार्थः—जो प्रजाओं के मध्य में अन्तरिक्ष के सदृश सुखरूपी अवकाश देने वाले और नहीं हिंसा करने वाले बुद्धिमान् उपदेशक विद्यमान हैं वे ही सुखयुक्त होते हैं ॥९॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः ।
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम् ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (चित्तिभिः) इकट्ठे करनेरूप क्रियाओं से जिस (एवावदस्य) एवावद अर्थात् प्राप्त गुणों को कहते हैं जिससे वा (यजतस्य) मिलते हैं जिस से वा जो (अवत्सारस्य) रक्षकों को प्राप्त होते और (मनसस्य) माना जाता और उस (सध्रेः) तुल्य स्थान वाले (क्षत्रस्य) राजकुल वा राज्य के संबन्ध की (स्पृणवाम) इच्छा करें तथा (विदुषा) विद्वान् से (चित्) भी (अर्ध्यम्) अर्द्ध में उत्पन्न की तथा (रण्वभिः) रमणीयों से (शविष्ठम्) अत्यन्त बलिष्ठ (वाजम्) विज्ञानवान् की हम इच्छा करें (स, हि) वही हम लोगों की इच्छा करे ॥१०॥

भावार्थः—जो मनुष्य दिनरात्रि राज्य की उन्नति करने की इच्छा करते हैं वे महाराज होते हैं ॥१०॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

श्येन आसामदितिः कक्ष्यो३ मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः ।
समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ॥११॥

पदार्थः—जो मनुष्य (श्येनः) प्रशंसनीय गमन वाले घोड़े के सदृश (आसाम्) इन प्रजाओं की (अवितिः) नहीं नाश होने वाली प्रकृति और (कक्ष्यः) श्रेणियों में उत्पन्न (मदः) आनन्द (विश्ववारस्य) संपूर्ण स्वीकार करने योग्य (यजतस्य) मिले हुए (मायिनः) निकृष्ट बुद्धिवाले के (अन्यमन्यम्) अन्य अन्य को (अर्थयन्ति) अर्थ करते अर्थात् याचते हैं और (एतवे) प्राप्त होने को (अन्ति) समीप में (परिपानम्) सब ओर से पान और (विपाणम्) प्रवेश किये हुए को (सम्, विदुः) उत्तम प्रकार जानते हैं वे सुखी होते हैं ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्वान् जन दुष्ट बुद्धिवालों को श्रेष्ठ बुद्धियुक्त करते हैं और श्येनपक्षी के सदृश दुष्टों का नाश करते हैं वे जन कल्याणकारक हैं ॥११॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा ।
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (श्रुतवित्) श्रुत को जानने वाला (तर्य्यः) जो तैरा जाता वा तैरने के योग्य (सचा) सम्बन्धी (बाहुवृक्तः) बाहुओं से दुष्टों का नाश करने वाला (यजतः) सत्कर्त्ता (सदापृणः) सदा तृप्ति करने वाला (सुप्रयावभिः) उत्तम प्रकार चलने वालों से (द्विषः) धर्म्म के द्वेष करने वालों का (वि, वधीत्) विशेष करके नाश करता है (च) और जो (यः) आप लोगों को (प्रति, एति) प्राप्त होता वा विशेष करके जानता है, सत्य (भाति) प्रकाशित होता वा सत्य को प्रकाशित करता और (गणम्) समूह का (भजते) सेवन करता है (सः) वह (उभा) दोनों (वरा) श्रेष्ठ सुनने और सुनाने वालों का (ईम्) ही सत्कार कर सकता है ॥१२॥

भावार्थः—जो बहुत शास्त्रों को सुननेवाले न्याय का आचरण करने वाले जन दुष्टों का नाश करते हुए श्रेष्ठों का पालन करते हैं वे सदा प्रसन्न होते हैं ॥१२॥

फिर विद्वान् क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सुतम्भरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः ।
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो विद्वान् (यजमानस्य) सत्कार करने वाले का (सुतम्भरः) उत्पन्न जगत् को धारण करनेवाला (विश्वासाम्) सम्पूर्ण (धियाम्) प्रज्ञान

और कर्म्मों का (उदञ्चनः) उत्कृष्टता को प्राप्त कराने और (ऊधः) ऊपर को पहुंचाने और (सत्पतिः) सत्पुरुषों का पालन करनेवाला (रसवत्) बहुत रस से युक्त (पयः) दुग्ध को जैसे (धेनुः) गौ वैसे विद्या को (भरत्) धारण करता और धर्म्म का (शिश्रिये) आश्रयण करता और (न) न (स्वपन्) शयन करता हुआ अन्यों के प्रति (अनु, ब्रुवाणः) पढ़कर पीछे उपदेश देता हुआ सत्य का (अधि, एति) स्मरण करता है (सः) वही सत्कार करने योग्य है ॥१३॥

भावार्थः—वही उत्तम पुरुष है जो कृतज्ञ और यथार्थवक्ता जनों की सेवा में प्रिय, सम्पूर्ण मनुष्यों के लिये बुद्धि देने और गौ के सदृश सत्य उपदेश का वर्षाने वाला और अविद्या आदि क्लेशों से पृथक् वर्त्तमान है वही सब से मेल करने योग्य है ॥१३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१४॥

पदार्थः—(यः) जो (जागार) अविद्यारूप निद्रा से उठ के जागने वाला है (तम्) उसको (ऋचः) ऋचाओं के सदृश जन (कामयन्ते) कामना करते हैं और (यः) जो (जागार) अविद्यारूप निद्रा से उठ के जागनेवाला है (तम्) उसको (उ) भी (सामानि) सामवेद के विभाग (यन्ति) प्राप्त होते हैं और (यः) जो (जागार) अविद्यारूप निद्रा से उठ के जागनेवाला (तम्) उसको (अयम्) यह (सोमः) सोमलता आदि ओषधियों का समूह वा ऐश्वर्य्य के सदृश (न्योकाः) निश्चित स्थानवाला (सख्ये) मित्रत्व में (तव) आप का (अहम्) मैं (अस्मि) हूं इस प्रकार (आह) कहता है ॥१४॥

भावार्थः जो वेदविद्या को प्राप्त होने की इच्छा करते हैं उन को ही वेदविद्या प्राप्त होती और जो मनुष्य आदिकों के साथ मित्रता करता है वह बहुत सुख को प्राप्त होता है ॥१४॥

जो सत्य की कामना करते हैं वे सत्य को प्राप्त होते हैं ॥

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अग्निः) अग्नि के सदृश (जागार) जागृत होता है (तम्) उस की (ऋचः) प्रशंसित बुद्धि वाले विद्यार्थी जन (कामयन्ते) कामना

करते हैं और (अग्निः) जो अग्नि के सदृश वर्त्तमान (जागार) जागृत होता है (तम्) उस को (उ) भी (सामानि) सामवेद में कहे हुए विज्ञान (यन्ति) प्राप्त होते हैं (अग्निः) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (जागार) जागृत होता है (तम्) उस को (अयम्) यह (न्योकाः) निश्चित स्थान युक्त (सोमः) विद्या और ऐश्वर्य्य की इच्छा करने वाला (तव) आप की (सख्ये) मित्रता में (अहम्) मैं (अस्मि) हूं ऐसा (आह) कहता है ।।१५।।

भावार्थः—जो मनुष्य आलस्य से रहित पुरुषार्थी धार्मिक होते और जितेन्द्रिय विद्यार्थी होते हैं उन्हीं को विद्या और उत्तम शिक्षा प्राप्त होती हैं ।।१५।।

इस सूक्त में सूर्य मेघ और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ।।

यह पंचम मण्डल में चवालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथैकादशर्चस्य पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य सदापृण आत्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः १ । २ पङ्क्तिः । ५ । ९ । ११ भुरिक्पङ्क्तिः । ८ । १० स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४ । ६ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

अब ग्यारह ऋचावाले पैंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में आदित्यविषय को कहते हैं ।।

विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः ।
अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषीर्देव आवः ।।१।।

पदार्थः - हे मनुष्यो जैसे (स्वः, देवः) श्रेष्ठ गुणों से विशिष्ट सूर्य्य वा मेघ (मानुषीः) मनुष्य संबन्धी (दुरः) द्वारों को (वि, गात्) विशेषतया प्राप्त होता और (आवः) ढांपता है और (अद्रिम्) मेघ को और (व्रजिनीः) वर्जन क्रियाओं को (उत्, अप, अवृत) अत्यन्त दूर करते हैं वैसे ही (विदः) कामना करते हुए (विदाः) विद्वान् जन (अर्चिनः) सत्कार करने वाले (उक्थैः) वेदविद्या से उत्पन्न हुए उपदेशों से (आयत्याः) पीछे से हुए (उषसः) प्रभात कालों के सदृश (विष्यन्) व्याप्त होते और (गुः) चलते हैं उनकी निरन्तर सेवा करो ।।१।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो प्रभातकाल और सूर्य्य के

और कर्म्मों का (उदञ्चनः) उत्कृष्टता को प्राप्त कराने और (ऊधः) ऊपर को पहुंचाने और (सत्पतिः) सत्पुरुषों का पालन करनेवाला (रसवत्) बहुत रस से युक्त (पयः) दुग्ध को जैसे (धेनुः) गौ वैसे विद्या को (भरत्) धारण करता और धर्म्म का (शिश्रिये) आश्रयण करता और (न) न (स्वपन्) शयन करता हुआ अन्यों के प्रति (अनु, ब्रुवाणः) पढ़कर पीछे उपदेश देता हुआ सत्य का (अधि, एति) स्मरण करता है (सः) वही सत्कार करने योग्य है ॥१३॥

भावार्थः—वही उत्तम पुरुष है जो कृतज्ञ और यथार्थवक्ता जनों की सेवा में प्रिय, सम्पूर्ण मनुष्यों के लिये वुद्धि देने और गौ के सदृश सत्य उपदेश का वर्षाने वाला और अविद्या आदि क्लेशों से पृथक् वर्त्तमान है वही सब से मेल करने योग्य है ॥१३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१४॥

पदार्थः—(यः) जो (जागार) अविद्यारूप निद्रा से उठ के जागने वाला है (तम्) उसको (ऋचः) ऋचाओं के सदृश जन (कामयन्ते) कामना करते हैं और (यः) जो (जागार) अविद्यारूप निद्रा से उठ के जागनेवाला है (तम्) उसको (उ) भी (सामानि) सामवेद के विभाग (यन्ति) प्राप्त होते हैं और (यः) जो (जागार) अविद्यारूप निद्रा से उठ के जागनेवाला (तम्) उसको (अयम्) यह (सोमः) सोमलता आदि ओषधियों का समूह वा ऐश्वर्य्य के सदृश (न्योकाः) निश्चित स्थानवाला (सख्ये) मित्रत्व में (तव) आप का (अहम्) मैं (अस्मि) हूं इस प्रकार (आह) कहता है ॥१४॥

भावार्थः जो वेदविद्या को प्राप्त होने की इच्छा करते हैं उन को ही वेदविद्या प्राप्त होती और जो मनुष्य आदिकों के साथ मित्रता करता है वह बहुत सुख को प्राप्त होता है ॥१४॥

जो सत्य की कामना करते हैं वे सत्य को प्राप्त होते हैं ॥

अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अग्निः) अग्नि के सदृश (जागार) जागृत होता है (तम्) उस की (ऋचः) प्रशंसित बुद्धि वाले विद्यार्थी जन (कामयन्ते) कामना

करते हैं और (अग्निः) जो अग्नि के सदृश वर्त्तमान (जागार) जागृत होता है (तम्) उस को (उ) भी (सामानि) सामवेद में कहे हुए विज्ञान (यन्ति) प्राप्त होते हैं (अग्निः) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (जागार) जागृत होता है (तम्) उस को (अयम्) यह (न्योकाः) निश्चित स्थान युक्त (सोमः) विद्या और ऐश्वर्य्य की इच्छा करने वाला (तव) आप की (सख्ये) मित्रता में (अहम्) मैं (अस्मि) हूं ऐसा (आह) कहता है ॥१५॥

भावार्थः—जो मनुष्य आलस्य से रहित पुरुषार्थी धार्मिक होते और जितेन्द्रिय विद्यार्थी होते हैं उन्हीं को विद्या और उत्तम शिक्षा प्राप्त होती हैं ॥१५॥

इस सूक्त में सूर्य मेघ और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में चवालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकादशर्चस्य पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य सदापृण आत्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः १ । २ पङ्क्तिः । ५ । ६ । ११ भुरिक्पङ्क्तिः । ८ । १० स्वराट्-पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४ । ६ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले पैंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में आदित्यविषय को कहते हैं ॥

वि॒दा दि॒वो वि॒ष्यन्नद्रि॑मु॒क्थैरा॑य॒त्या उ॒षसो॑ अ॒र्चिनो॑ गुः ।
अपा॑वृत व्र॒जिनी॒रुत्स्व॑र्गा॒द्वि दुरो॒ मानु॑षीर्दे॒व आ॑वः ॥१॥

पदार्थः - हे मनुष्यो जैसे (स्वः, देवः) श्रेष्ठ गुणों से विशिष्ट सूर्य्य वा मेघ (मानुषीः) मनुष्य संबन्धी (दुरः) द्वारों को (वि, गात्) विशेषतया प्राप्त होता और (आवः) ढांपता है और (अद्रिम्) मेघ को और (व्रजिनीः) वर्जन क्रियाओं को (उद्, अप, अवृत) अत्यन्त दूर करते हैं वैसे ही (विदः) कामना करते हुए (विदाः) विद्वान् जन (अर्चिनः) सत्कार करने वाले (उक्थैः) वेदविद्या से उत्पन्न हुए उपदेशों से (आयत्याः) पीछे से हुए (उषसः) प्रभात कालों के सदृश (विष्यन्) व्याप्त होते और (गुः) चलते हैं उनकी निरन्तर सेवा करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो प्रभातकाल और सूर्य्य के

सदृश मनुष्यरूप प्रजाओं में विद्या और धर्म्म के प्रकाश करनेवाले होवें वे ही अध्यापक और उपदेशक होवें ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वि सूर्यो॒ अम॑तिं॒ न श्रियं॑ सा॒दोर्वा॒द्गवां॑ मा॒ता जा॑न॒ती गा॑त् ।
धन्व॑र्णसो न॒द्य१॒॑: खादो॑अर्णा॒: स्थूणे॑व॒ सुमि॑ता दृंहत॒ द्यौः ॥२॥

पदार्थः—जो (द्यौः) कामना करता हुआ (सुमिता) उत्तम प्रकार किया प्रमाण जिन का उन (स्थूणेव) स्तम्भ के समान विद्या आदि सद्गुणों को (दृंहत) बढ़ाता वा धारण करता तथा (खादोअर्णाः) भक्षण करने योग्य अन्न और जल जिन में और (धन्वर्णसः) स्थल में जल जिन का ऐसी (नद्यः) शब्द करनेवाली नदियों के सदृश वा (जानती) जानती हुई (माता) माता के सदृश शिष्यों और उपदेश करने योग्यों को (गात्) प्राप्त होता है और (सूर्यः) सूर्य्य (अमतिम्) रूप के (न) सदृश (श्रियम्) लक्ष्मी का (वि, सात्) विशेष करके विभाग करता है (गवाम्) किरणों के (ऊर्वात्) बहुत रूप से ऐश्वर्य्य को (आ) अच्छे प्रकार प्राप्त होता है वही सब को सुखी करने को योग्य होवे ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सूर्य्य के सदृश विद्या माता के सदृश कृपा, नदी के सदृश उपकार और खम्भ के सदृश धारणा करते हैं वे ही श्रीमान् और सदा सुखी होते हैं ॥२॥

अब विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

अ॒स्मा उ॒क्थाय॒ पर्व॑तस्य॒ गर्भो॑ म॒हीनां॑ ज॒नुषे॑ पू॒र्व्याय॑ ।
वि पर्व॑तो॒ जिही॑त॒ साध॑त॒ द्यौरा॒विवा॑सन्तो दसयन्त भू॒म ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (महीनाम्) भूमियों और (पर्वतस्य) मेघ के (पूर्व्याय) पूर्वों में उत्पन्न (जनुषे) जन्म के लिये तथा (अस्मै) इस (उक्थाय) प्रशंसित के लिये (गर्भः) कारणभूत (पर्वतः) पक्षी के समान पर्ववान् मेघ वा (द्यौः) कामना करते हुए के सदृश (वि, जिहीत) विशेष चलता है और जिस को (आविवासन्तः) सब ओर घूमते हुए (साधत) सिद्ध करें जिस से दुःख का और (दसयन्त) दोषों का नाश करें उसके तुल्य हम लोग (भूम) होवें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्यार्थियों में विद्या के गर्भ को धारण करते हैं वे मेघ के सदृश सब के सुखकारक होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्व१ग्नी अवसे हुवध्यै ।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (आविवासन्तः) सत्य का सब प्रकार से सेवन करते हुए (सुयज्ञाः) सुन्दर विद्या और धर्म के प्रचार करने वाली क्रिया जिन की ऐसे (कवयः) बुद्धिमान् विद्वान् (मरुतः) मनुष्य (सूक्तेभिः) जो उत्तम प्रकार कहे जांय उन (देवजुष्टैः) विद्वानों से सेवित और (उक्थेभिः) प्रशंसा करने वाले (वचोभिः) उत्तम प्रकार शिक्षित वचनों से (हि) निश्चय से (इन्द्रा) बिजुली (अग्नी) और अग्नि को तथा (वः) आप लोगों को (अवसे) रक्षण आदि के लिये (हुवध्यै) ग्रहण करने को (नु) शीघ्र (यजन्ति) मिलते हैं वैसे (स्मा) ही आप लोग भी इसी प्रकार मिलो ॥४॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन सबके लिये सुख, विद्या और विज्ञान का सेवन करते हुए अग्नि आदि की विद्या को सब के लिये देते हैं वे ही उत्तम होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

एतो न्व१द्य सुध्यो३ भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः ।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छ ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अद्य) आज (एतो) ये हम लोग (नु) शीघ्र (सुध्यः) अच्छी बुद्धिवाले (भवाम) हों और जो (दुच्छुनाः) दुष्ट कुत्तों के सदृश वर्त्तमान उनका (प्र. मिनवामा) अत्यन्त नाश करें और (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त कर्म्मों को (आरे) समीप वा दूर में (अयाम) प्राप्त करावें (प्राञ्चः) प्राचीन काल में वर्त्तमान अधिक अवस्था वाले हम लोग (सनुतः) सदा (वरीयः) अत्यन्त श्रेष्ठ (यजमानम्) मिलने वाले को (अच्छ) उत्तम प्रकार (दधाम) धारण करें वैसे आप लोग भी धारण करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य विज्ञान को बढ़ाते दुष्टों का निवारण करते और द्वेष आदि दोषों से रहित सनातन सत्य को धारण करते हैं वे अत्यन्त प्रशंसा के योग्य होते हैं ॥५॥

फिर मनुष्यों को उत्तम बुद्धि कैसे प्राप्त होनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या माताँ ऋणुत व्रजं गोः।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यया) जिस से (मनुः) मनुष्य (विशिशिप्रम्) सुन्दर ठुड्डी और नासिका जिसकी उसको (जिगाय) जीतता है (यया) जिस से (वङ्कुः) धन की इच्छा करने वाला (वणिक्) व्यापारी वैश्य (पुरीषम्) पूर्ण करने वाले जल को (आपा) प्राप्त होता है उस (धियम्) बुद्धि को (सखायः) मित्र होते हुए हम लोग (कृणवामा) करें और जैसे (या) जो (माता) माता के सदृश (गोः) किरण से (व्रजम्) मेघ को करता है और दुःख को (अप) दूर करता है वैसे इस को आप लोग (ऋणुत) सिद्ध करिये और बुद्धि को (आ) सब प्रकार (इता) प्राप्त हूजिये ॥६॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—मनुष्यों को योग्य है कि परस्पर में मित्र हो कर बुद्धि को बढ़ाय औरों के लिये विशेष ज्ञान अच्छे प्रकार देवें जैसे वैश्य धन को प्राप्त होकर बढ़ता है वैसे उत्तम बुद्धि को पाकर बढ़े ॥६॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥७॥

पदार्थः—(येन) जिस से (अत्र) इस संसार में (नवग्वाः) नवीन गमनवाले (दश) दश (मासः) चैत्र आदि महीने वर्तमान हैं और (हस्तयतः) हाथ निग्रह किये अर्थात् वशीभूत किये जिस के वह (अद्रिः) मेघ के सदृश (आर्चन्) सत्कार करता हुआ (अनूनोत्) प्रेरणा करे और जो (सरमा) तुल्य रमने वाली (ऋतम्) सत्य का (यती) यत्न करती हुई (गाः) इन्द्रियों को (अविन्दत्) प्राप्त होती है और जो (अङ्गिराः) अङ्गों का रस रूप प्राण के सदृश (विश्वानि) सम्पूर्ण (सत्या) सत्य कार्य्यों को (चकार) करता है वे सत्कार करने योग्य हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य सर्वदा सत्य आचरण से युक्त होकर सब के उपकार को सिद्ध करते हैं वे इस संसार में धर्मात्मा गिने जाते हैं ॥७॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद् गोभिरङ्गिरसो नवन्त ।
उत्सं आसां परमे सधस्थं ऋतस्य पथा सरमा विदद् गाः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (विश्वे) सम्पूर्ण प्राणी (माहिनायाः) महत्त्व से युक्त (अस्याः) प्रातर्वेला के (व्युषि) विशिष्ट निवास में (गोभिः) किरणों के साथ (अङ्गिरसः) पवन (सम्, नवन्त) अच्छे प्रकार स्तुति करते हैं (यत्) जिस से (आसाम्) इन प्रातर्वेलाओं के (परमे) प्रकृष्ट (सधस्थे) साथ के स्थान में (ऋतस्य) सत्य वा जल के (पथा) मार्ग से (उत्सः) कूप के सदृश (सरमा) प्राप्त हुओं का आदर करने वाली (गाः) किरणों को (विदत्) जानती है उन उनको आप लोग विशेष कर जानिये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे प्रभात वेला में प्राणी प्रसन्न होते हैं वैसे ही सन्देह रहित होकर मनुष्य आनन्दित होते हैं ॥८॥

फिर सूर्य्य के समान मनुष्य क्या करें उसका उपदेश करते हैं ॥

आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे ।
रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद् गोषु गच्छन् ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (सप्ताश्वः) सात प्रकार की शीघ्र चलने वाली किरणें जिस की ऐसा (सूर्य्यः) सूर्य्य (यत्) जिस (क्षेत्रम्) निवास के स्थान को (अस्य) इस जगत् सम्बन्धिनी (उर्विया) पृथिवी के (दीर्घयाथे) चलें जिस में ऐसे बड़े मार्ग में (रघुः) लघु (श्येनः) अन्तरिक्षस्थ बाज पक्षी के सदृश अन्तरिक्ष में जाता है वैसे आप सेना के मध्य में (आ) सब प्रकार से (यातु) प्राप्त हूजिये और जैसे (गोषु) पृथिवियों में (गच्छन्) चलता हुआ (दीदयत्) प्रकाश करता है वैसे (युवा) मिले और नहीं मिले हुए को करने वाले यौवनावस्थायुक्त (कविः) बुद्धिमान् विद्वान् (अच्छा) उत्तम प्रकार (अन्धः) अन्न आदि का (पतयत्) स्वामी के सदृश आचरण करता है यह जानो ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जिस सूर्य्य में सात तत्त्व हैं और जो अपने चक्र को छोड़ के इधर उधर नहीं जाता है और बहुत भूगोलों के मध्य में एक ही प्रकाशित है वैसे ही सब पुरुष होवें ॥९॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोऽयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः ।
उद्ना न नावमनयन्त धीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन् ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (सूर्य्यः) सूर्य्य (शुक्रम्) वीर्य का (आ, अरुहत्) आरोहण करता और (अर्णः) उदक का (अयुक्त) योग करता है और (वीतपृष्ठाः) व्याप्त हैं लोक लोकान्तरों के पृष्ठ जिन से वे (हरितः) जल आदि को हरने वाले (धीराः) ध्यानवान् बुद्धिमान् जन (उद्ना) जल से (नावम्) नौका को (न) जैसे वैसे (अनयन्त) प्राप्त होते अर्थात् व्यवहार को पहुंचते हैं (अर्वाक्) पीछे (आशृण्वतीः) जो चारों ओर से सुन पड़ते हैं वह (आपः) प्राण (अतिष्ठन्) स्थित होते हैं उस सब को आप लोग जानें ॥१०॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य्य और जल आदि की विद्याओं को जान के नौका आदि को चलावें वे लक्ष्मीवान् होते हैं ॥१०॥

जो मनुष्य उत्तम बुद्धि की याचना करते हैं वे विद्वान् होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

धियं॑ वो अ॒प्सु द॑धिषे स्व॒र्षां य॒याऽत॑रन्द॒श मा॒सो नव॑ग्वाः ।
अ॒या धि॒या स्या॑म दे॒वगो॑पा अ॒या धि॒या तु॑तु॒र्यामाऽत्यंहः॑ ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यया) जिस से (नवग्वाः) नवीनगमन वाले (दश) दश (मासः) महीने (अतरन्) पार होते हैं (अया) इस (धिया) बुद्धि से हम लोग (देवगोपाः) विद्वानों के रक्षक (स्याम) होवें और (अया) इस (धिया) बुद्धि से (अंहः) पाप वा पाप से उत्पन्न दुःख का (अति, तुतुर्याम) अत्यन्त विनाश करें (वः) आप की (स्वर्षाम्) सुख का विभाग करता है जिस से उस (धियम्) बुद्धि को (अप्सु) प्राणों में मैं (दधिषे) धारण करूं ॥११॥

भावार्थः—जो बुद्धिमान् धनवान् और बल से युक्त होकर सब की रक्षा करते हैं वे दुःखों के पार होते हैं ॥११॥

इस सूक्त में सूर्य्य और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में पैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य षट्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य प्रतिक्षत्र आत्रेय ऋषिः । १—६ विश्वेदेवाः । ७—८ देवपत्न्यो देवताः । १ भुरिग्जगती । ३ । ५ । ६ निचृज्जगती । ४ । ७ जगतीछन्दः । निषादः स्वरः । २ । ८ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः पञ्चमः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले छयालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में शिल्पविद्या का विद्वान् रथों को रचकर सुख से मार्ग को जाता है इस विषय को कहते हैं ॥

हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।
नास्या वश्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान् पथः पुरएत ऋजु नेषति ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (विद्वान्) विद्यायुक्त मैं (स्वयम्) आप (अयुजि) नहीं संयुक्त (धुरि) मार्ग में (हयः) उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त घोड़े के (न) सदृश (ताम्, प्रतरणीम्) पार होते हैं जिससे उस (अवस्युवम्) अपनी रक्षा की इच्छा करती हुई को (वहामि) प्राप्त होता हूं वा प्राप्त कराता हूं और (अस्याः) इस के सम्बन्ध में (विमुचम्) त्यागते हैं जिस से उसी की (न) नहीं (वश्मि) कामना करता हूं और (न) नहीं (आवृतम्) ढपे हुए की कामना करता हूं (पुनः) फिर (पुरएता) प्रथम जाने वाला (विद्वान्) विद्यायुक्त जन (ऋजु) सरलता जैसे हो वैसे (पथः) मार्गों को (नेषति) प्राप्त करावे ॥१॥

भावार्थः - इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे विद्वानों से उत्तम प्रकार शिक्षित घोड़े कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही प्राप्त हुई विद्या और शिक्षा जिन को ऐसे मनुष्य कार्य्य की सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥१॥

मनुष्यों को विद्युदादि विद्या अवश्य स्वीकार करने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥२॥

पदार्थः - हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त (अग्ने) विद्वान् (वरुण) श्रेष्ठ (मित्र) मित्र (मारुत) मनुष्यों में विदित और (देवाः) विद्वानो आप (शर्धः) बल को (प्र, यन्त) प्राप्त होते हैं (उत) और हे (विष्णो) व्यापनशील (उभा) दो (नासत्या) असत्य आचरण से रहित जन (रुद्रः) दुष्टों को भयंकर (भगः) ऐश्वर्य्यवान् (पूषा) पुष्टिकारक वायु (अध) इस के अनन्तर (सरस्वती) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी भी (ग्नाः) वाणियों का (जुषन्त) सेवन करे ॥२॥

भावार्थः . हे मनुष्यो ! आप लोगों को चाहिये कि विद्या शरीर बल और योग की वृद्धि करके अग्नि आदि विद्या का स्वीकार करें ॥२॥

इस सृष्टि में मनुष्यों को क्या क्या जानना योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वताँ अपः ।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (ऊतये) रक्षा आदि व्यवहार की सिद्धि के लिये

(इन्द्राग्नी, सूर्य्य और बिजुली (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु तथा (अदितिम्) अन्तरिक्ष को (स्वः) सूर्य्य और (पृथिवीम्) भूमि को (द्याम्) प्रकाश को (मरुतः) पवनों वा मनुष्यों को (पर्वतान्) मेघों वा पर्वतों को (अपः) जलों को (विष्णुम्) व्यापक धन वा जय को (पूषणम्) पुष्टिकारक व्यान वायु और (ब्रह्मणः) ब्रह्माण्ड के (पतिम्) पालन करने वाले सूत्रात्मा को (भगम्) ऐश्वर्य और (शंसम्) प्रशंसा करने योग्य (सवितारम्) संसार के उत्पन्न करने वाले परमात्मा को (हुवे) ग्रहण करता हूं वैसे आप लोग (नु) शीघ्र इन को ग्रहण कीजिये ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को विद्युद्विद्या अवश्य स्वीकार करनी चाहिये ॥३॥

अवश्य मनुष्यों को ईश्वरादिकों का सेवन करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत् ।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विभ्वानु मंसते ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (नः) हम लोगों को (विष्णुः) व्यापक ईश्वर (उत) और (वातः) वायु (उत) और (अस्रिधः) नहीं हिंसा करने और (द्रविणोदाः) धन का देने वाला (उत) और (सोमः) ऐश्वर्य्यवान् (उत) और (ऋभवः) बुद्धिमान् जन (उत) और (राये) धन के लिये (नः) हम लोगों को (उत) और (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जन (उत) और (त्वष्टा) सूक्ष्म करने वाला (विभ्वा) समर्थ से (अनु, मंसते) अनुमान करें उन से विद्वान् (मयः) सुख को (करत्) सिद्ध करे ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर आदि पदार्थों की सेवा करते हैं वे जानने योग्य पदार्थों के जानने वाले होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहा है ॥

उत त्यन्नो मारुतं शर्ध आ गमद्दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे ।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद्वरूथ्यं१ वरुणो मित्रो अर्यमा ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (दिविक्षयम्) जिसका प्रकाश में निवास (यजतम्) जो मिलता हुआ (त्यत्) वह (मारुतम्) मनुष्य सम्बन्धी (बर्हिः) उत्तम आसन और (शर्धः) बल (नः) हम लोगों को (आ, गमत्) प्राप्त होवे और (उत) भी (बृहस्पतिः) बड़ों का पालन करने और (पूषा) पुष्टि करनेवाला (वरुणः) उदानवायु के सदृश उत्तम (मित्रः) प्राणवायु के सदृश प्रिय (उत) भी (अर्य्यमा) न्यायकारी और (आसदे) प्रवेश होने को (वरूथ्यम्) गृहों में श्रेष्ठ (शर्म) गृह को प्रवेश होने को (नः) हम लोगों को (यमत्) देता है ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य वायु के गुणों को विशेषकर जानें वे सब प्रकार से धन को प्राप्त होवें ॥५॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्य१स्त्रामणे भुवन्।
भगो विभक्ता शवसावसा गमदुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥६॥

पदार्थः - हे मनुष्यो जो (पर्वतासः) मेघों के सदृश (सुशस्तयः) उत्तम प्रशंसायुक्त (नद्यः) नदियों के सदृश (सुदीतयः) प्रशंसित प्रकाशवाले (नः) हम लोगों को वा हमारे (त्रामणे) पालन व्यवहार के लिये (भुवन्) हों (उत) और (उरुव्यचाः) बहुतों में व्याप्त (अदितिः) खंडन से रहित (भगः) आदर करने योग्य ऐश्वर्य्य का योग (विभक्ता) विभाग कर देने वाला (शवसा) बल और (अवसा) रक्षण आदि से (आ, गमत्) सब प्रकार प्राप्त होवे और (मे) मेरे (हवम्) शब्द को (श्रोतु) सुने (त्ये) वे और वह सत्कार करने योग्य होवें ॥६॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मेघ के सदृश संसार के पालन करनेवाले प्रशंसित न्याय का विधान कर सम्पूर्ण प्रजा की विनती सुन के न्याय करें वे विनययुक्त होते हैं ॥६॥

राजा के समान राजपत्नी न्याय करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये। याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म्म यच्छत ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (याः) जो (देवानाम्) विद्वानों वा राजाओं के न्याय की (उशतीः) कामना करती हुई (पत्नीः) स्त्रियाँ (नः) हम लोगों की वा हमारे सम्बन्धी पदार्थों की (अवन्तु) रक्षा करें और (तुजये) बल और (वाजसातये) संग्राम के लिये (प्र, अवन्तु) अच्छे प्रकार रक्षा करें और (याः) जो (पार्थिवासः) पृथिवी में विदित (अपाम्) जलों के (व्रते) स्वभाव में (अपि) भी (देवीः) प्रकाशमान (सुहवाः) उत्तम आह्वान वाली (नः) हम लोगों को (शर्म) सुखकारक गृह देवें और (ताः) उन को (नः) हम लोगों के लिये आप लोग (यच्छत) दीजिये ॥७॥

भावार्थः—जैसे राजा लोग पुरुषों का न्याय करें वैसे ही स्त्रियों के न्याय को रानियाँ करें ॥७॥

राजा के समान रानी स्त्रियों का न्याय करें इस विषय को कहते हैं॥

उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य१ग्नाय्यश्विनी राट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥८॥

पदार्थः—(यः) जो (राट्) प्रकाशमान (इन्द्राणी) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष की स्त्री और (अग्नायी) अग्नि के सदृश तेजस्वी पुरुष की स्त्री (अश्विनी) शीघ्र चलने वाले की स्त्री और (देवपत्नीः) विद्वानों की स्त्रियां न्याय करने के लिये स्त्रियों की (ग्नाः) वाणियों को (व्यन्तु) व्याप्त हों और (रोदसी) अन्तरिक्ष तथा पृथिवी के सदृश (वरुणानी) श्रेष्ठ जन की स्त्री (जनीनाम्) उत्पन्न करनेवाली स्त्रियों की वाणियों को (आ, शृणोतु) सब प्रकार से सुने और (उत) भी (देवीः) विद्यायुक्त स्त्रियां (ऋतुः) ऋतु के सदृश क्रम से उत्पन्न करनेवाली स्त्रियों का जो न्याय उसकी (व्यन्तु) कामना करें ॥८॥

भावार्थः– इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमा०—जैसे राजाओं के समीप पुरुष मन्त्री होते हैं वैसे रानियों के समीप स्त्रियां मन्त्री होवें ॥८॥

यह पंचम मण्डल में छयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य प्रतिरथ आत्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ । २ । ३ । ७ त्रिष्टुप् । ४ भुरिक्त्रिष्टुप् । ६ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले सैंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में स्त्री पुरुषों के गुणों को कहते हैं ॥

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥१॥

पदार्थः—जो (दिवः) प्रकाश से प्रातःकाल के सदृश (ब्रुवाणा) उपदेश देती (प्रयुञ्जती) उत्तम कर्म्म में अच्छे प्रकार योग करती (दुहितुः) कन्या का (बोधयन्ती) बोध देती और (मही) आदर करने योग्य (आविवासन्ती) सब प्रकार से सेवती हुई (सदने) गृह में (जोहुवाना) अत्यन्त प्रशंसा को प्राप्त (युवतिः) युवा अवस्था में विद्याओं को पढ़कर विवाह जिसने किया वह (माता) आदर करने वाली माता (मनीषा) बुद्धि से (पितृभ्यः) पालन करनेवालों से शिक्षा को प्राप्त गृहाश्रम को (आ) सब प्रकार से (एति) जाती वा प्राप्त होती है वह मंगलकारिणी होती है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो माता पांचवें वर्ष के प्रारम्भ होने तक सन्तानों को बोध देकर पांचवें वर्ष में पिता को सौंपती है और पिता भी तीन वर्ष पर्य्यन्त शिक्षा देकर आचार्य्य को पुत्रों को और आचार्य्य की स्त्री को कन्याओं को ब्रह्मचर्य्य से विद्याग्रहण के लिये सौंपता है और वे आचार्यादि भी नियत समयपर्यन्त ब्रह्मचर्य्य को समाप्त करा के और विद्याओं को प्राप्त करा के तथा व्यवहार की शिक्षा देकर गृहाश्रम में प्रविष्ट कराते हैं वे आचार्य और आचार्य्या कुल के भूषक और शोभाकारक होते हैं ॥१॥

अब मनुष्यों को कार्य कारण से विस्तृत अनन्त पदार्थों को जान कर कार्यसिद्धि करनी चाहिये ॥

अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम् ।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः ॥२॥

पदार्थः—जो (अजिरासः) वेग से युक्त (ईयमानाः) प्राप्त होते हुए (तदपः) उन के प्राणों को (अमृतस्य) नाश से रहित कारण के (नाभिम्) मध्य में (आतस्थिवांसः) सब ओर से स्थित (अनन्तासः) नहीं विद्यमान अन्त जिनका वे (उरवः) बहुत (विश्वतः) सब ओर (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि (सीम्) सूर्य्य के प्रकाश के सदृश (परि) चारों ओर (यन्ति) प्राप्त होते हैं उनका (पन्थाः) मार्ग जानना चाहिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो आकाश आदि अनन्त पदार्थ हैं और उनमें वर्त्तमान असंख्य परमाणु कारण के मध्य में कारण से उत्पन्न हुए सूर्य्य और प्रकाश के सदृश विस्तीर्ण हैं ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुरा विवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥३॥

पदार्थः हे मनुष्यो जो (समुद्रः) सागर (अरुषः) सुख को प्राप्त कराने वाला (सुपर्णः) सुन्दर पालन जिसके ऐसा और (दिवः) प्रकाश के (मध्ये) मध्य में (निहितः) स्थापित किया गया (पृश्निः) अन्तरिक्ष और (अश्मा) मेघ (उक्षा) सींचने वाला (पूर्वस्य) पूर्ण आकाश आदि और (पितुः) पालन करने वाले के (योनिम्) कारण को (आ, विवेश) सब प्रकार प्रविष्ट होता है और (रजसः) लोक

में उत्पन्न हुए का (वि, चक्रमे) विशेष कर के क्रमण करता और (अन्तो) समीप में (पाति) रक्षा करता है वह सब को जानने योग्य है ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग कार्य्य और कारण को जानकर उनके संयोग से उत्पन्न हुए वस्तुओं को कार्य्यों में उपयुक्त कर के अपने अभीष्ट की सिद्धि करें ॥३॥

मनुष्यों को चाहिये कि पृथिवी आदि तत्त्व जगत् के पालक हैं ऐसा जानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते ।
त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (अस्य) इस संसार के मध्य में (चरसे) चलने को (क्षेमयन्तः) रक्षा करते हुए (परमाः) प्रकृष्ट (त्रिधातवः) तीन सत्व रज और तमोगुण धारण करने वाले जिनके वे और (चत्वारः) चार पृथिवी आदि (ईम्) सब ओर से (गर्भम्) समस्त जगत् की उत्पत्ति के स्थान को (बिभ्रति) धारण करते हैं तथा (दश) दश दिशाओं को (धापयन्ते) धारण कराते हैं और (सद्यः) शीघ्र (दिवः) प्रकाश के मध्य में (अन्तान्) समीपवर्त्ती देशों के (गावः) किरणें (परि, चरन्ति) चारों ओर चलते हैं ऐसा जानिये ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! इस संसार के धारण करने वाले पृथिवी, जल, तेज और पवन हैं और वे कारण से उत्पन्न हो के उपयुक्त होते हैं ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

इदं वपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः ।
द्वे यदीं बिभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या३ सबन्धू ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (इहेह) इसी संसार में (द्वे) दो (यम्या) रात्रि और दिन (सबन्धू) तुल्य बन्धु जिनका उनके सदृश वर्त्तमान और (मातुः) माता से (अन्ये) अन्य (जाते) उत्पन्न हुए (ईम्) जल को (बिभृतः) धारण करते हैं और (यत्) जो संसार का उपकार करते हैं और (यत्) जो (जनासः) विद्वान् जन जैसे (नद्यः) नदियां (आपः) जलों को वैसे (इदम्) इस (निवचनम्) निश्चित वचन जिसका उस (वपुः) शरीर को (चरन्ति) प्राप्त होते और (तस्थुः) स्थित होते हैं वैसे इनको विशेष कर जानिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे रात्रि दिन क्रम से व्यवहार करते हैं वैसे क्रम से आहार विहार कर के शरीर की रक्षा करें ॥५॥

मनुष्यों को चाहिये कि युवा अवस्था ही में स्वयंवर विवाह करें इस विषय को कहते हैं ॥

वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति ।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ॥६॥

पदार्थः—जो (दिवः) कामना और (मोदमानाः) आनन्द करती हुई (वध्वः) युवावस्थायुक्त स्त्रियां (पथा) गृहाश्रम के मार्ग से वर्त्तमान (उपप्रक्षे) सम्बन्ध में (वृषणः) युवापुरुषों को (अच्छ) उत्तम प्रकार (यन्ति) प्राप्त होती हैं वे (मातरः) माता (अस्मै) इस व्यवहार से सिद्ध (पुत्राय) पुत्र के लिये (धियः) बुद्धियों और (अपांसि) कर्म्मों को (वि, तन्वते) विस्तार करती हैं और (वस्त्रा) वस्त्रों को (वयन्ति) बनाती हैं ॥६॥

भावार्थः—जो स्त्री और पुरुष ब्रह्मचर्य से विद्याओं को पढ़ कर युवावस्था में वर्त्तमान गृहाश्रम की कामना करते हुए परस्पर प्रीति से स्वयंवर विवाह कर के धर्म से सन्तानों को उत्पन्न कर और उत्तम प्रकार शिक्षा देकर शरीर और आत्मा के बल का विस्तार करते हैं और जैसे वस्त्रों से शरीर को वैसे गृहाश्रम के व्यवहार का आच्छादन कर के आनन्द करते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम् ।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥७॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान माता पिता तथा अध्यापक और उपदेशक जन आप दोनों के सङ्ग से (तत्) उस (शम्) सुख को हम लोग (अशीमहि) प्राप्त होवें और (अग्ने) हे अग्ने (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (तत्) वह (अस्तु) हो (योः) दुःख से पृथग्भूत (इदम्, यह (शस्तम्) प्रशंसा करने योग्य (अस्तु) हो और (गाधम्) गम्भीर (उत) भी (प्रतिष्ठाम्) आदर को प्राप्त होकर (बृहते) बड़े (सादनाय) स्थितिमान् के लिये और (दिवे) कामना करते हुए के लिये (नमः) सत्कार हो ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य यथार्थवक्ता विद्वानों और अध्यापकों का सत्कार करते हैं वे ही सुख को प्राप्त होते हैं ॥७॥

इस सूक्त में स्त्री पुरुषादि के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में सैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्याष्टचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य प्रतिभानुरात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ४ । ५ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथ पांच ऋचा वाले अड़तालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर मनुष्यों को किस की इच्छा करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम् ।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी ॥१॥

पदार्थः—(यत्) जो (आमेन्यस्य) चारों ओर से ज्ञान के विषय (रजसः) लोक के मध्य में और (अभ्रे) मेघ में (अपः) जलों का (आ, वृणाना) उत्तम प्रकार स्वीकार करती हुई और (मायिनी) बुद्धि जिसमें विद्यमान वह नीति (वितनोति) विस्तार युक्त करती है उसको (उ) भी (वयम्) हम लोग (महे) बड़े (प्रियाय) सुन्दर (धाम्ने) जन्म स्थान और नाम स्वरूप के लिये (स्वक्षत्राय) अपने राज्य वा क्षत्रिय कुल के लिये और (स्वयशसे) अपना यश जिस से उसके लिये (कत्) कब (मनामहे) जानें ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि निरन्तर इस प्रकार से इच्छा करें जिस से राज्य यश और धर्म्म बढ़े वैसे ही स्वीकार करके अनुष्ठान करें ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

ता अत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः ।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ॥२॥

पदार्थः—(देवयुः) विद्वानों की कामना करता हुआ (जनः) जन (वीरवक्षणम्) वीरों के पहुंचाने को (वयुनम्) कर्म्म वा प्रज्ञान को तथा (समान्या) तुल्य (वृतया) आवरण करने वाली क्रिया से (विश्वम्) सम्पूर्ण (रजः) लोक-

लोकान्तर और जिन (अपाचीः) नीचे चलने वाले (अपराः) अन्य (अपः) जलों को (अप, ईजते) चलाता है वा (पूर्वाभिः) प्राचीन जलों से (प्र, तिरते) पार होता है (ताः) उन जलों को आप लोग (आ) सब ओर से (अत्नत) निरन्तर प्राप्त होओ ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग विद्वानों के संग की कामना करते हुए सम्पूर्ण विद्याओं को ग्रहण कीजिये ॥२॥

फिर स्त्री पुरुष कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

आ ग्रावंभिरहृन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमा जिंघर्त्ति मायिनि ।
शतं वा यस्यं प्रचरन्त्स्वे दमें संवर्त्तयन्तो वि चं वर्त्तयन्नहा ॥३॥

पदार्थः—हे (मायिनि) प्रशंसित बुद्धि से युक्त ! जिस से आप (ग्रावभिः) मेघों (अह्न्येभिः) दिनों और (अक्तुभिः) रात्रियों से (वरिष्ठम्) अति श्रेष्ठ (वज्रम्) शस्त्रविशेष को (आ, जिघर्त्ति) प्रदीप्त करती हो (शतम्, वा) अथवा सैंकड़ों का दल (यस्य) जिस के (स्वे) अपने (दमे) गृह में (प्रचरन्) चलता और (अहा) दिनों को (आ, वर्त्तयन्) अच्छे प्रकार व्यतीत करता हुआ व्यवहार को प्रकाशित करता है (च) और जिसकी (संवर्त्तयन्तः) उत्तम प्रकार वर्त्तमान किरणें (वि) विशेष फैलते हैं उस को तू विशेष करके जान ॥३॥

भावार्थः—जो स्त्री और पुरुष भयरहित हों तो सूर्य्य और बिजुली के सदृश दिनरात्रि पुरुषार्थ को करके ऐश्वर्य्य से प्रकाशित हों ॥३॥

राजा कैसे राज्य को करे इस विषय को कहते हैं ॥

तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः ।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अस्य) इस के (भुजे) पालन के लिये (अख्यम्) कहने योग्य (अनीकम्) सेना दल के (प्रति) प्रति (परशोरिव) परशु के सम्बन्ध को जैसे वैसे (ताम्) उस (रीतिम्) रीति को (दधाति) धारण करता है (अस्य) इस (वर्पसः) रूप के (सचा) सम्बन्धि (पितुमन्तमिव) अन्नवान् के सदृश (यदि) यदि (भरहूतये) पालन धारण करने वाली वाणी आह्वान के लिये जिस की उस (विशे) प्रजा के लिये (रत्नम्) रमणीय (क्षयम्) निवास स्थान को धारण करता है तो वही राज्य करने के योग्य होता है ॥४॥

भावार्थः—प्रजा की पालना के लिये गूढनीति से राजा व्यवहारों का अनुष्ठान करे और सब की पालना यथार्थभाव से करे ॥४॥

प्रशंसित सेना जिस की ऐसा ही राजा जीतने वाला होने को योग्य है॥

स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम्।
न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम्॥५॥

पदार्थः—जो (वरुणः) श्रेष्ठ (चारु) सुन्दर वस्त्र को (वसानः) धारण करता हुआ (चतुरनीकः) चार प्रकार की सेनायें जिसकी वह (जिह्वया) वाणी से (अरिम्) शत्रु का (यतन्) यत्न करता हुआ (पुरुषत्वता) बहुत पुरुषार्थ के साथ (भगः) ऐश्वर्य्य से युक्त (सविता) सत्य में प्रेरणा करने वाला (वार्य्यम्) स्वीकार करने योग्य उपदेश को (दाति) देता है (सः) वह (ऋञ्जते) उत्तम प्रकार सिद्ध करता है (यतः) जिस से (वयम्) हम लोग (तस्य) उस के पुरुषार्थ के अन्त को (न) नहीं (विद्म) जानें॥५॥

भावार्थः—जिस की उत्तम सेना है वही राजा प्रशंसित होता है॥५॥

इस सूक्त में विद्वान् और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह पंचम मण्डल में अड़तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥

अथ पंचर्चस्यैकोनपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य प्रतिप्रभ आत्रेय ऋषिः। विश्वेदेवा देवताः। १। २। ४ भुरिक्त्रिष्टुप्। ३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ५ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः। पंचमः स्वरः॥

अब पांच ऋचा वाले उनचासवें सूक्त का प्रारम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को चाहिये कि परोपकार ही करें इस विषय को कहते हैं॥

देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन्॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो मैं (अद्य) आज (वः) आप लोगों के लिये (आयोः) जीवन का (विभजन्तम्) विभाग करते हुए (देवम्) विद्वान् (सवितारम्) ऐश्वर्य्यवान् (रत्नम्) रमणीय धन (भगम्) और ऐश्वर्य्य को (च) भी (आ, इषे) अच्छे प्रकार चाहता हूं और हे (पुरुभुजा) बहुतों का पालन करते हुए (नरा) अग्रणी (अश्विना) राजा और प्रजा जनो (सखीयन्) मित्र के सदृश आचरण करता हुआ मैं (चित्) निश्चित (दिवेदिवे) प्रतिदिन (वाम्) आप दोनों को (आ, ववृत्याम्) अच्छे प्रकार वर्त्ताऊं॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य मित्र होकर दूसरे के लिये सुख की इच्छा करें वे सदा ही आदर करने योग्य होवें ॥१॥

मेघ का कारण क्या है इस विषय को कहते हैं ॥

प्रति॑ प्र॒याण॒मसु॑रस्य वि॒द्वान्त्सू॒क्तैर्दे॒वं स॑वि॒तारं॑ दुवस्य ।
उप॑ ब्रुवीत॒ नम॑सा विजा॒नञ्ज्ये॒ष्ठं च॒ रत्नं॑ वि॒भज॑न्तमा॒योः ॥२॥

पदार्थः—हे जन (विद्वान्) विद्वान् आप (सूक्तैः) अच्छे अर्थों को कहने वाले वेद के विभागों से (असुरस्य) मेघ की (प्रयाणम्) यात्रा का और (देवम्) प्रकाशित होते हुए (सवितारम्) मेघ को उत्पन्न करने वाले का (प्रति) प्रत्यक्ष में (दुवस्य) सेवन करो और (नमसा) अन्न आदि के दानरूप सत्कार से (ज्येष्ठम्) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य (रत्नम्) धन को (च) भी (विजानन्) विशेष करके जानता हुआ (आयोः) जीवन के (विभजन्तम्) विभाग करते हुए को (उप, ब्रुवीत) कहें ॥२॥

भावार्थः - हे मनुष्यो ! सूर्य्य ही मेघ आदिकों का उत्पन्न करने वाला है उस की विद्या का उपदेश दीजिये ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अ॒द॒त्र॒या द॑यते॒ वार्या॑णि पू॒षा भगो॒ अदि॑ति॒र्वस्त॑ उ॒स्रः ।
इन्द्रो॒ विष्णु॒र्वरु॑णो मि॒त्रो अ॒ग्निरहा॑नि भ॒द्रा ज॑नयन्त द॒स्माः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो विद्वान् (अदत्रया वार्य्याणि) खाने और स्वीकार करने योग्य अन्नादिकों को (दयते) देता है और (पूषा) पुष्टिकर्त्ता (भगः) सेवन करने योग्य तथा (अदितिः) माता (उस्रः) किरणों का (वस्ते) आच्छादन करती है और (इन्द्रः) सूर्य्य (विष्णुः) व्यापक विजुली (वरुणः) उदान (मित्रः) प्राण (अग्निः) प्रसिद्ध अग्नि (दस्माः) और दुःख के नाश करने वाले (भद्रा) कल्याण कारक (अहानि) दिनों को (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं उनको व्यर्थ मत व्यतीत करिये ॥३॥

भावार्थः—जैसे माता अनुग्रह से अन्न पान आदि के दान से सन्तानों का पालन करती है वैसे ही सूर्य्य आदि पदार्थ दिन और रात्रि से सब की रक्षा करते हैं ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या वर्त्ताव करके क्या प्राप्त करना चाहिये इस विषय को कहते है ॥

तन्नो॑ अन॒र्वा स॑वि॒ता वरू॑थं॒ तत्सिन्ध॑व इ॒षय॑न्तो॒ अनु॑ ग्मन् ।
उप॒ यद्वोचे॑ अध्व॒रस्य॒ होता॑ रा॒यः स्या॑म॒ पत॑यो॒ वाज॑रत्नाः ॥४॥

पदार्थः—(अध्वरस्य) अहिंसारूप यज्ञ का (होता) ग्रहण करने वाला मैं सब के प्रति (यत्) जिस का (उप, वोचे) उपदेश करूं (तत्) उस के और (नः) हम लोगों के (वरूथम्) गृह (अनर्वा) घोड़े जिस के नहीं वह और (सविता) सूर्य्य तथा (तत्) उस को (इययन्तः) प्राप्त होते वा प्राप्त कराते हुए (सिन्धवः) नदियाँ वा समुद्र (अनु, ग्मन्) पीछे चलते हैं, जिस से (वाजरत्नाः) विज्ञान धन है जिन के ऐसे हम लोग (रायः) धन के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो तुम सूर्य्य आदि के सदृश निरन्तर पुरुषार्थी होओ तो लक्ष्मीवान् होओ ॥४॥

मनुष्यों को क्या कर के क्या प्राप्त करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दुर्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः ।
अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ये) जो (मित्रे) मित्र (वरुणे) उत्तम तिथि के निमित्त (ईवत्) गतिमान् तथा रक्षणवान् पदार्थ को (प्र, आ, दुः) उत्तम प्रकार देवें वा (ये) जो तुम लोग (वसुभ्यः) धनों के लिये (नमः) अन्न को (कृणुता) सिद्ध करो उन से युक्त (सूक्तवाचः) उत्तम प्रशंसित वाणी वाले हम लोग (दिवः, पृथिव्योः) प्रकाश सूर्य्य और भूमि के मध्य में जिस से (वरीयः, अभ्वम्) अत्युत्तम धनादि तथा अत्यन्त (अव, एतु) प्राप्त हो उस की (अवसा) रक्षा से (मदेम) आनन्दित हों ॥५॥

भावार्थः- हे मनुष्यो ! पुरुषार्थ से लक्ष्मी को और उस से अन्न आदि को इकट्ठा कर बड़े सुख को प्राप्त होकर सब का रक्षण करो ॥५॥

इस सूक्त में सूर्य और विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में उनचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ स्वराडुष्णिक् । २ निचृदुष्णिक् । ३ भुरिगुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ । ५ निचृदनुष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले पचासवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के साथ मित्रता से विद्या और धन को प्राप्त होकर यश बढ़ावें इस विषय को कहते हैं ॥

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ॥१॥

पदार्थः—(विश्वः) सम्पूर्ण (मर्त्तः) मनुष्य (नेतुः) अग्रणी (देवस्य) विद्वान् की (सख्यम्) मित्रताको (वुरीत) स्वीकार करे और (विश्वः) सम्पूर्ण (राये धनके लिये (इषुध्यति) बाणों को धारण करता है और जिससे आप (पुष्यसे) पुष्ट होते हैं उस (द्युम्नम्) यश को आप (वृणीत) स्वीकार करिये ॥१॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि विद्या धन और शरीरपुष्टि की प्राप्ति के लिये विद्वानों की शिक्षा शरीर और आत्मा से परिश्रम निरन्तर करें ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

ते ते देव नेतर्ये चेमाँ अनुशसे ।
ते राया ते ह्या३पृचे सचेमहि सचथ्यैः ॥२॥

पदार्थः—हे (नेतः) अग्रणी (देव) विद्वन् (ये) जो (ते) आप के (अनुशसे) अनुशासन के लिये (इमान्) इन को सम्बन्धित करते हैं (ते, ते) वे वे सत्कार करने योग्य हों (च) और जो (राया) धन से सब की रक्षा करते हैं (ते) वे प्रीति से युक्त होते हैं और जो (हि) निश्चित (आपृचे) सब ओर से सम्बन्ध के लिये (सचथ्यैः) पूर्ण सम्बन्धों में उत्पन्न हुओं के साथ वर्त्तमान हैं उन के साथ हमलोग (सचेमहि) मिलें ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! आप इन वर्त्तमान और समीप में स्थित जनों को शिक्षा दीजिये और विद्वानों के साथ मिल के विद्याओं को प्राप्त हूजिये ॥२॥

मनुष्यों को किस का सत्कार करना और क्या प्राप्त करना चाहिये
इस विषय को कहते हैं ॥

अतो न आ नॄनतिथीनतः पत्नीर्दशस्यत ।
आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (अतः) इस कारण से (नः) हम लोगों और (नॄन्) अधर्म्म से अलगकर धर्म्म के मार्ग पर चलाने वाले (अतिथीन्) जिन के आगमन की तिथि नियत नहीं उनको (अतः) इस के अनन्तर (पत्नीः) स्त्रियों को (आ) सब

प्रकार से (दशस्यत) प्रबल करिये और (विश्वम्) सम्पूर्ण जन को तथा (पथेष्ठाम्) जो धर्म्मयुक्त पथ में स्थित हो उसको (आरे) समीप में प्रबल करिये और (यूयुविः) विभाग करनेवाला (द्विषः) द्वेष्टा जनों को दूर में (युयोत्) विशेप करके विभक्त करे ॥३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि धार्मिक अतिथियों की उत्तम प्रकार सेवा कर और मिल के विवेक को प्राप्त होकर द्वेष आदि दोषों को दूर करें ॥३॥

जो अग्नि के सदृश व्यवहार के धारण करने वाले होवें वे धीर होते हैं
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद् द्रोण्यः पशुः ।
नृमणा वीरपस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्र) जिस में (द्रोण्यः) शीघ्र चलनेवालों में उत्पन्न (पशुः) जो देखा जाता है उस के सदृश (अभिहितः) कहा गया वा धारण किया गया (वह्निः) प्राप्त करने वाला अग्नि (दुद्रवत्) अत्यन्त चलता है वहां (अर्णा) प्राप्त कराने वाली (धीरेव) ध्यानवती के सदृश (नृमणाः) मनुष्यों में जिसका मन (वीरपस्त्यः) जिसके गृह में वीर वह पुत्र (सनिता) विभाग करनेवाला होवे ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो अग्नि के सदृश तेजस्वी और वेग से युक्त होवें वे सत्य और असत्य के विभाग करने वाले होवें ॥४॥

मनुष्यों को क्या मांगना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः ।
शं राये शं स्वस्तय इषः स्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥५॥

पदार्थः—हे (नेतः) प्राप्ति कराने वाले (देव) विद्वन् ! (ते) आप का (एषः) यह (रथस्पतिः) वाहन का स्वामी (शम्) सुखरूप (रयिः) धन और (शम्) सुख (राये) धन के लिये वा (स्वस्तये) सुख के लिये (शम्) कल्याण (इषःस्तुतः) अन्न आदि की स्तुति करनेवाला और जो (देवस्तुतः) विद्वानों से प्रशंसित है उन की हम लोग (मनामहे) याचना करते हैं और हम लोग (मनामहे) जानते है ॥५॥

भावार्थः—जो विद्वानों से प्रशंसित और कल्याणकारक पदार्थ होवें उनको हम लोग ग्रहण करें ॥५॥

इस सूक्त में विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में पचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चदशर्चस्यैकपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य स्वस्त्यात्रेय ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ गायत्री । २ । ३ । ४ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ५ । ८ । ९ । १० निचृदुष्णिक् । ६ उष्णिक् । ७ विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ११ निचृत्त्रिष्टुप् । १२ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १३ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १४ । १५ अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले इक्यावनवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मंत्र में विद्वान् जन विद्वानों के साथ क्या करें यह उपदेश किया जाता है ॥

अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरा गहि । देवेभिर्हव्यदातये ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् आप (विश्वैः) सम्पूर्ण (ऊमेभिः) रक्षा आदि करने वाले (देवेभिः) विद्वानों के साथ (सुतस्य) निकाले हुए ओषधिरस के (पीतये) पान करने के लिये और (हव्यदातये) देने योग्य वस्तु के देने के लिये (आ, गहि) प्राप्त हूजिये ॥१॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन अत्यन्त विद्वान् के साथ सम्पूर्ण जनों को उत्तम प्रकार बोध देवें तो सब आनन्दित होवें ॥१॥

कैसे मनुष्यों को होना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम् ।
अग्नेः पिबत जिह्वया ॥२॥

पदार्थः—हे (ऋतधीतयः) सत्य के धारण करने वाले (सत्यधर्माणः) सत्य है धर्म्म जिनका ऐसे विद्वानो आप लोग (अध्वरम्) अहिंसारूप व्यवहार को (आ, गत) प्राप्त हूजिये और (अग्नेः) अग्नि की (जिह्वया) जिह्वा से रस को (पिबत) पीजिये ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग सत्यधर्म्म के धारण से अत्यन्त सुख को प्राप्त हूजिये ॥२॥

विद्वानों के साथ विद्वान् क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरा गहि । देवेभिः सोमपीतये ॥३॥

पदार्थः—हे (सन्त्य) वर्त्तमान में श्रेष्ठ (विप्र) बुद्धिमान् आप (प्रातर्यावभिः) प्रातःकाल में जाने वाले (देवेभिः) विद्वानों के और (विप्रेभिः) बुद्धिमानों के साथ (सोमपीतये) सोमलतानामक ओषधि के रस के पान के लिये (आ, गहि) प्राप्त हूजिये ॥३॥

भावार्थः—जब विद्वानों के साथ विद्वानों का सङ्ग होता है तब ऐश्वर्य्य का प्रादुर्भाव होता है ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अयं सोमश्चमू सुतोऽमत्रे परि षिच्यते । प्रिय इन्द्राय वायवे ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अयम्) यह (वायवे) बलवान् (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त पुरुष के लिये (सुतः) उत्पन्न किया गया (प्रियः) सुन्दर (सोमः) ऐश्वर्य्य का योग (अमत्रे) पात्र में (परि) सब ओर से (सिच्यते) सींचा जाता है वह (चमू) दो प्रकार की सेनाओं को सब प्रकार से वृद्धि करता है ॥४॥

भावार्थः—जो वैद्यजन ओषधियों के सारभागों को निकालकर रोग-रहित मनुष्यों को करें तो सब ऐश्वर्यों से युक्त होते हैं ॥४॥

मनुष्यों को क्या भोजन करना और क्या पीना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये ।
पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥५॥

पदार्थः—हे (वायो) अत्यन्त बल से युक्त आप (हव्यदातये) देने योग्य वस्तु के देने के लिये और (वीतये) विज्ञान आदि की प्राप्ति के लिये (अभि, प्रयः) सब ओर से सुन्दर जल का (जुषाणः) सेवन करते हुए (आ, याहि) प्राप्त हूजिये और (सुतस्य) उत्पन्न हुए (अन्धसः) अन्न के रस का (पिबा) पान करिये ॥५॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! आप रोग और प्रमाद के नाश करने और बुद्धि के बढ़ानेवाले अन्न को खाइये और रस को पीजिये ॥५॥

अब राजा और अमात्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रश्च वायवेषां सुतानां पीतिमर्हथः ।
तान् जुषेथामरेपसावभि प्रयः ॥६॥

पदार्थः—हे (वायो) मुख्य पुरुष (इन्द्रः, च) और राजा आप दोनों (एषाम्) इन वर्त्तमान (सुतानाम्) पालना से छूटे अर्थात् सिद्ध हुए पदार्थों के (पीतिम्) पान के

(अर्हथः) योग्य होते हैं (तान्) उनको और (अरेपसौ) दयालु हुए (प्रयः) सुन्दर अन्न को (अभि, जुषेथाम्) सेवन करें ॥६॥

भावार्थः—जहां राजा और मन्त्री धार्मिक होवें वहां संपूर्ण योग्यता होवे ॥६॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

सुता इन्द्राय वायवे सोमासो दध्याशिरः ।
निम्नं न यन्ति सिन्धवोऽभि प्रयः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (सिन्धवः) नदियां (निम्नम्) अर्थात् नीचे स्थल को (न) जैसे वैसे (दध्याशिरः) धारण करने और खाने योग्य (सुताः) उत्पन्न हुए (सोमासः) ऐश्वर्य से युक्त पदार्थ (वायवे) वायु के सदृश बलयुक्त (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य वाले के लिये (प्रयः) अत्यन्त प्रिय को (अभि) सब ओर से (यन्ति) प्राप्त होते हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे नदियां समुद्र को प्राप्त होती हैं वैसे ही बड़ी ओषधियों के सेवन करने वाले सुख को प्राप्त होते हैं ॥७॥

अब अग्नि के समान विद्वान् कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

सजूर्विश्वेभिर्देवेभिरश्विभ्यामुषसा सजूः ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वन्! जैसे अग्नि (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (देवेभिः) पृथिवी आदिकों से (सजूः) संयुक्त तथा (अश्विभ्याम्) प्रकाशित और अप्रकाशित लोकों तथा (उषसा) प्रातःकाल से (सजूः) संयुक्त (सुते) उत्पन्न जगत् में (अत्रिवत्) व्यापक के सदृश है वैसे (आ, याहि) प्राप्त हूजिये और (रण) उपदेश करिये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०— हे मनुष्यो ! जो बिजुली सब पदार्थों में व्याप्त है उसको विशेष कर के जानिये ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

सजूर्मित्रावरुणाभ्यां सजूः सोमेन विष्णुना ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! आप जो (मित्रावरुणाभ्याम्) प्राण और उदान पवनों से (सजूः) संयुक्त (सोमेन) ऐश्वर्य वा चन्द्र से और (विष्णुना) व्यापक आकाश से (सजूः) संयुक्त और (सुते) उत्पन्न हुए जगत् में (अत्रिवत्) व्यापक के सदृश है उसके जानने के लिये (आ, याहि) प्राप्त हूजिये और हम लोगों के लिये सत्य का (रण) उपदेश कीजिये ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य प्राण और अपान आदि में स्थित बिजुली की विद्या को जानें तो बहुत सुख को प्राप्त होवें ॥९॥

फिर वह कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

सजूरादित्यैर्वसुभिः सजूरिन्द्रेण वायुना ।
आ याह्यग्ने अत्रिवत्सुते रण ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वन् ! जो (आदित्यैः) महीनों और (वसुभिः) पृथिवी आदिकों के साथ (सजूः) संयुक्त और (वायुना) बलवान् (इन्द्रेण) जीव के साथ (सजूः) संयुक्त (सुते) उत्पन्न हुए जगत् में (अत्रिवत्) व्यापक के सदृश वर्त्तमान है उसके जानने के लिये (आ, याहि) प्राप्त हूजिये और (रण) उपदेश करिये ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो मन सम्बन्धी बिजुली रूप अग्नि आकाश में स्थित हुआ वर्त्तमान है उस को जान कर कार्य्यों में उपयोग करिये ॥१०॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।
स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जन (अनर्वणः) अश्वरहित का (स्वस्ति) सुख (मिमीताम्) रचें और (भगः) ऐश्वर्य को करने वाला वायु (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुख (देवी) प्रकाशित (अदितिः) अखण्डविद्या (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुख (सुचेतुना) उत्तम विज्ञापन से (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुख और (पूषा) पुष्टि करने वाला दुग्धादि पदार्थ और (असुरः) मेघ हम लोगों के लिये सुख को (दधातु) धारण करे वैसे आप लोगों के लिये भी वे सुख को धारण करें ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य पदार्थ विद्या से जिन पदार्थों को उपयुक्त करें अर्थात् काम में लावें वे इन से उपकार ग्रहण करने को समर्थ होवें ॥११॥

फिर मनुष्य कैसे विद्या वृद्धि करें इस विषय को कहते हैं ॥

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।

बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (स्वस्तये) सुख के लिये (वायुम्) वायु-विद्या और (सोमम्) ऐश्वर्य का (उप, ब्रवामहै) उपदेश देवें वैसे सुनकर आप लोग अन्यों के प्रति उपदेश दीजिये और (यः) जो (भुवनस्य) लोक का (पतिः) स्वामी है वह (स्वस्तये) उपद्रव दूर होने के लिये (सर्वगणम्) सम्पूर्ण समूह जिस में उस (बृहस्पतिम्) बड़ी वेदवाणियों के स्वामी को और (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुख को धारण करे और जैसे (आदित्यासः) अड़तालीस वर्ष परिमित ब्रह्मचर्य से किया विद्याभ्यास जिन्होंने तथा जो मासों के सदृश सम्पूर्ण विद्याओं में व्याप्त वे हम लोगों के अर्थ (स्वस्तये) अत्यन्त सुख के लिये (भवन्तु) होवें वैसे आप लोगों के लिये भी हों ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्य परस्पर पदार्थ विद्या को सुन और अभ्यास कर के विद्वान् होवें ॥१२॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये ।

देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अद्या) आज (विश्वे, देवाः) संपूर्ण विद्वान् जन (स्वस्तये) सुख के लिये (नः) हम लोगों की (अवन्तु) रक्षा करें और (स्वस्तये) सुख के लिये (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों में प्रकाशमान (वसुः) सर्वत्र वसने वाला (अग्निः) अग्नि रक्षा करे और (ऋभवः) बुद्धिमान् (देवाः) विद्वान् जन (स्वस्तये) विद्या सुख के लिये रक्षा करें और (रुद्रः) दुष्टों को दण्ड देने वाला (स्वस्ति) सुख की भावना करके (नः) हम लोगों की (अंहसः) अपराध से (पातु) रक्षा करे ॥१३॥

भावार्थः—विद्वानों की योग्यता है कि उपदेश और अध्यापन से सब मनुष्यों की निरन्तर रक्षा कर के वृद्धि करावें ॥१३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति ।
स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि ॥१४॥

पदार्थः—हे (अदिते) खण्डित विद्या से रहित (रेवति) बहुत धन से युक्त आप (पथ्ये) मार्ग युक्त कर्म्म में जैसे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुख (इन्द्रः, च) और वायु (स्वस्ति) सुख को (अग्निः, च) और बिजुली (स्वस्ति) सुख (नः) हम लोगों के लिये करती है वैसे (स्वस्ति) सुख (कृधि) करिये ॥१४॥

भावार्थः—जो सब जीवों के लिये सुख देता है वही विद्वान् प्रशंसित होता है ॥१४॥

मनुष्यों को विद्वानों के संग से जो धर्म मार्ग उस से चलना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्य्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥१५॥

पदार्थः—हम लोग (सूर्य्याचन्द्रमसाविव) सूर्य्य और चन्द्रमा के सदृश (स्वस्ति) सुख (पन्थाम्) मार्गों के (अनु, चरेम) अनुगामी हों और (पुनः) फिर (ददता) दान करने (अघ्नता) और नहीं नाश करने वाले (जानता) विद्वान् के साथ (सम्, गमेमहि) मिलें ॥१५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य और चन्द्रमा नियम से दिन रात्रि चलते हैं वैसे न्याय के मार्ग को प्राप्त हूजिये । और सज्जनों के साथ समागम करिये ॥१५॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में इक्यावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तदशर्चस्य द्विपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । ४ । ५ । १५ विराडनुष्टुप् । २ । ७ । १० निचृदनुष्टुप् । ६ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ । ९ । ११ विराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ८ ।

१२ । १३ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । १४ बृहती । १६ निचृद्बृहती । १७ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब सत्रह ऋचा वाले बावनवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य सत्कार करने योग्यों का सत्कार करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र श्यावाश्व धृष्णुयार्चा मरुद्भिर्ऋक्वभिः ।

ये अद्रोघमनुष्वधं श्रवो मदन्ति यज्ञियाः ॥१॥

पदार्थः—हे (श्यावाश्व) काली शिखा वाले घोड़ों से युक्त (ये) जो (यज्ञियाः) सत्कार करने वाले (अद्रोघम्) द्रोह से रहित (अनुष्वधम्, श्रवः) अन्न और श्रवण के अनुकूल वर्त्तमान (मदन्ति) आनन्दित होते हैं उनकी (ऋक्वभिः) सत्कार करने वाले (मरुद्भिः) मनुष्यों के साथ (धृष्णुया) दृढ़ता से (प्र, अर्चा) सत्कार करो ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य सत्कार करने योग्यों का सत्कार करते हैं वे सब सत्कृत होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।

ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥२॥

पदार्थः—जो (स्थिरस्य) स्थिर (शवसः) बल के (धृष्णुया) दृढ़त्वादि गुणों से युक्त (सखायः) मित्र (सन्ति) हैं (ते) वे (हि) ही (त्मना) आत्मा से (यामन्) मार्ग में (धृषद्विनः) बहुत दृढ़त्व आदि गुणों से युक्त (आ, पान्ति) अच्छे प्रकार पालन करते हैं और जो (यामन्) मार्ग में प्रवृत्त हैं (ते) वे (शश्वतः) निरन्तर पथिकों की रक्षा करते हैं ॥२॥

भावार्थः—विद्वानों का ही मित्रपन और रक्षण स्थिर होता है, अन्य किसी का नहीं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ते स्यन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः ।

मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान् जो (महः) बड़े (दिवि) प्रकाश और (मरुताम्) मनुष्यों के समीप में (क्षमा) क्षमा (अधा, च) और इसके अनन्तर (स्यन्द्रासः) कुछ

चेष्टा करते हुओं के (न) सदृश (उक्षणः) सेचन करने वा (शर्वरीः) रात्रियों को (अति, स्कन्दन्ति) अत्यन्त प्राप्त होते हैं उनको हम लोग (मन्महे) विशेष प्रकार से जानते हैं (ते) वे सब मनुष्यों को जानने योग्य हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य दिनरात्रि पुरुषार्थ करते हैं वे दुःख का उल्लंघन करते हैं ॥३॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ये) जो (विश्वे) सब आप लोग (धृष्णुया) दृढ़ (मानुषा) मनुष्यों के सम्बन्धी (युगा) वर्षों को (स्तोमम्) प्रशंसा करने योग्य (यज्ञम्) पुरुषार्थ को (मर्त्यम्, च) और मनुष्य को (रिषः) हिंसक से (पान्ति) रखते अर्थात् बचाते हैं उन (वः) आप लोगों को हम लोग (मरुत्सु) मनुष्यों में (दधीमहि) धारण करें ॥४॥

भावार्थः—जो देव और मनुष्य सम्बन्धी युगों और वर्षों को जानते हैं वे गणित विद्या के जानने वाले होते हैं ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वन् (ये) जो (यज्ञियेभ्यः) यज्ञ करने वालों के लिये (यज्ञम्) सत्कार नामक कर्म्म को (अर्हन्तः) योग्यता को प्राप्त होते हुए (सुदानवः) उत्तम दान देने वाले (असामिशवसः) अखण्डित बलयुक्त (नरः) जन (दिवः) कामना करते हुए (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये सत्कार नामक कर्म्म को सिद्ध करते हैं उनका आप (प्र, अर्चा) सत्कार करिये ॥५॥

भावार्थः—मनुष्य जितना बल बढ़ाने की इच्छा करें उतना ही बढ़ सकता है ॥५॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वानो जैसे (ऋष्वाः) बड़े (नरः) अग्रणी जन (युधा) युद्ध से (ऋष्टीः) प्राप्त हुए सेनाओं के जन (आ, अनु, अस्वक्षत) सब प्रकार अनुकूल उत्पन्न करें और (एनान्) इनको (अह) ग्रहण करने में (जझ्झतीरिव) शब्द करने वा शीघ्र चलने वालियों के सदृश (विद्युतः) बिजुली और (मरुतः) पवन की (दिवः) कामना करते हुए जन और (भानुः) दीप्ति (त्मना) आत्मा से जानने योग्य हैं उन को आप (रुक्मैः) रोचमान प्रदीप्तों से (आ) सब प्रकार (अर्त्त) प्राप्त हूजिये ॥६॥

भावार्थः—विद्वान् जन मनुष्यों के लिये बिजुली आदि विद्याओं को प्राप्त करावें ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ये वांवृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।

वृजनें वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ये) जो (उरौ) बहुत रूप वाले (अन्तरिक्षे) आकाश में (पार्थिवाः) पृथिवी में जाने गये पदार्थ (वावृधन्त) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होते हैं (ये, वा) अथवा जो (नदीनाम्) नदियों के (सधस्थे) समान स्थान में (वृजने, वा) वा वर्जते हैं जिसमें उसमें (आ) सब प्रकार अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होते हैं और (महः) महान् (दिवः) कामना करने वाले वृद्धि को प्राप्त होते हैं उनको आप लोग विशेष कर के जानिये ॥७॥

भावार्थः—जो पृथिवी आदिकों की विद्या को जानते हैं वे सब प्रकार वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥७॥

फिर विद्वान् क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।

उत स्म ते शुभे नरः प्र स्यन्द्रा युंजत त्मना ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप (मारुतम्) मनुष्यों के सम्बन्धी इस (शर्धः) बल और (सत्यशवसम्) सत्य बल जिसका उस (ऋभ्वसम्) बुद्धिमान् को ग्रहण करने वाले की (उत्, शंस) अच्छे प्रकार स्तुति करो (उत) और (स्म) निश्चित (ते) वे (स्यन्द्राः) धीरता युक्त गमन वाले (नरः) नायक आप लोग (शुभे) उत्तम कार्य्यं में (त्मना) आत्मा से परमात्मा को (प्र, युजत) प्रयुक्त करो ॥८॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि उत्तम बल और परमात्मा की निरन्तर प्रशंसा करें ॥८॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।
उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (परुष्ण्याम्) पालन करने वाली में (शुन्ध्यवः) शोधन करने वाली (रथानाम्) वाहनों के (पव्या) रथों के चक्रों पहियों की कीलों के सदृश (ओजसा) बल से (अद्रिम्) मेघ को (भिन्दन्ति) तोड़ती हैं (उत) और वर्षाती हैं वे (ते) तुम्हारे लिये हों (उत) और (स्म) निश्चित (ऊर्णाः) रक्षित हुए यहां सत्कार किये गए आप लोग (वसत) वसिये ॥९॥

भावार्थः—जैसे मेघ वर्षते हुए पृथिवी को विदीर्ण करते हैं वैसे ही श्रेष्ठ पुरुषों का सङ्ग अशुद्धि का नाश करता है ॥९॥

मनुष्यों को समस्त विद्या धर्म मार्ग ढूंढने चाहियें इस विषय को कहते हैं ॥

आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः ।
एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (आपथयः) सब ओर से अभिमुख मार्ग जिन का वे और (विपथयः) अनेक प्रकार के वा विरुद्ध मार्ग जिन के वे और (अन्तस्पथा) भीतर मार्ग जिनके वे और (अनुपथाः) अनुकूल मार्ग जिन का वे (एतेभिः) इन मार्गों वा मार्गों में स्थित हुओं और (नामभिः) संज्ञाओं से (मह्यम्) मेरे लिये (यज्ञम्) विद्वानों के सत्कार आदि कर्म को (विष्टारः) विस्तार (ओहते) प्राप्त होता है ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग सम्पूर्ण विद्याओं और उन से उत्पन्न हुए क्रिया कौशल मार्गों को यथावत् प्रत्यक्ष करके अन्यों को भी उत्तम प्रकार जनाओ सिखलाओ ॥१०॥

मनुष्य क्रम से विद्यादि व्यवहार को प्राप्त होवें इस विषय को कहते हैं ॥

अधा नरो न्योहतेऽधा नियुत ओहते ।
अधा पारावता इति चित्रा रूपाणि दर्श्या ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (अधा) इस के अनन्तर जो (नरः) विद्याओं में अग्रणी जन विद्याओं के कार्यों को (नि) निश्चय करके (ओहते) प्राप्त होता वा प्राप्त कराता है और (अधा) इसके अनन्तर (नियुतः) निश्चित वायु आदि गमन वाला

(ओहते) प्राप्त होता वा प्राप्त कराता है (अधा) इसके अनन्तर (पारावताः) दूर देश में होने वाले (दर्श्या) देखने के योग्य (चित्रा) अद्भुत (रूपाणि) रूपों को (इति) इस प्रकार से प्रत्यक्ष करता है वह कृतकृत्य होता है ॥११॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि पहिले ब्रह्मचर्य्य से विद्याओं को पढ़ कर उसके अनन्तर कार्यों के रचने में प्रवीणता को प्रत्यक्ष कर के फिर अनुमान से दूर में स्थित अदृश्य पदार्थों के विज्ञान को कर के आश्चर्य्ययुक्त कर्म्म करें ॥११॥

फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

छन्दःस्तुभः कुभन्यव उत्समा कीरिणो नृतुः ।
ते मे के चिन्न तायव ऊमा आसन्दृशि त्विषे ॥१२॥

पदार्थः—(ये) जो (के) कोई (चित्) भी (छन्दःस्तुभः) छन्दों से स्तुति करने वाले (उत्सम्) कूप के सदृश (कुभन्यवः) अपने को आर्द्रपन की इच्छा करते हुए (ऊमाः) सब के रक्षण आदि करने वाले (दृशि) दर्शक में (मे) मेरे (त्विषे) शरीर और आत्मा के प्रकाश और बल के लिये (आसन्) होवें (ते) वे (नृतुः) नाचनेवाले के सदृश (आ) सब ओर से (कीरिणः) विक्षेप व्याकुल करने वाले (तायवः) चोर जन (न) न होवें ॥१२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अन्यजनों के विक्षेप और चोरी न करके जैसे पिपासा से व्याकुल के लिए जल वैसे शान्ति के देने वाले होकर सब के शरीर और आत्माके बल को बढ़ाते हैं वे ही श्रेष्ठ यथार्थवक्ता होते हैं ॥१२॥

मनुष्यों को किस का संग करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

य ऋष्वा ऋष्टिविद्युतः कवयः सन्ति वेधसः ।
तमृषे मारुतं गणं नमस्या रमया गिरा ॥१३॥

पदार्थः—हे (ऋषे) वेदार्थ के जानने वाले (ये) जो (ऋष्टिविद्युतः) ऋष्टिविद्युत् अर्थात् विजुली में विज्ञान जिन का वे (कवयः) सम्पूर्ण शास्त्रों में निपुण (ऋष्वाः) बड़े महाशय (वेधसः) बुद्धिमान् जन (सन्ति) हैं उन का (गिरा) उत्तम प्रकार शिक्षित सत्य कोमल वाणी से (नमस्या) सत्कार करिये और इस से (तम्) उस (मारुतम्) विद्वान् मनुष्यों के (गणम्) समूह को (रमया) क्रीड़ा से आनन्दित करिये ॥१३॥

भावार्थः—जो महाशय यथार्थवक्ता जनों की सेवा और सत्कार कर उत्तम शिक्षा को प्राप्त होकर सत्य और असत्य के विवेक के लिये उपदेश करके सब मनुष्यों को आनन्दित करते हैं वे सब लोगों से सत्कार पाने योग्य होते हैं ॥१३॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते है ॥

अच्छं ऋषे मारुतं गुणं दाना मित्रं न योषणां ।

दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥१४॥

पदार्थः—हे (ऋषे) विद्वन् आप (योषणा) स्त्री और (मित्रम्) मित्र के (न) सदृश (मारुतम्) मनुष्यसम्बन्धी (गणम्) समूह को (अच्छ) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिए (वा) वा जैसे (दिवः) कामना करते हुए (धृष्णवः) धृष्टप्रगल्भ दृढ निश्चय वाले (स्तुताः) प्रशंसितजन (धीभिः) बुद्धियों और (ओजसा) बल आदि से (दाना) दानों को देकर मनुष्यसम्बन्धी समूह को (इषण्यत) प्राप्त होते हैं वैसे सब प्राप्त हों ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—सम्पूर्ण अध्यापक और पढ़ने वाले मित्र के सदृश परस्पर वर्त्ताव करके वायु आदि पदार्थों की विद्या का अच्छे प्रकार ग्रहण करें ॥१४॥

फिर मनुष्य विद्वानों के संग से विद्याओं को प्राप्त हों इस विषय को कहते हैं ॥

नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणां ।

दाना संचेत सूरिभिर्यामंश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (मन्वानः) मननशील पुरुष (यामश्रुतेभिः) याम प्रहर सुने गए जिन से उन (अञ्जिभिः) विद्या और श्रेष्ठ गुणों के प्रकट करने वाले (सूरिभिः) विद्वानों के साथ (एषाम्) इन मनुष्यों के मध्य में (देवान्) श्रेष्ठ विद्वानों वा श्रेष्ठ पदार्थों को (अच्छ) उत्तम प्रकार प्राप्त होता और (वक्षणा) प्रवाह से (दाना) दानों को करता है वह (नू) निश्चय दारिद्र्य और अज्ञान को (न) नहीं प्राप्त होता है उस को आपलोग (सचेत) सम्बन्धित करिए ॥१५॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों के सग को प्रिय मानने और विद्या के दान में रुचि करनेवाले होवें वे ही शीघ्र विद्या को प्राप्त होवें ॥१५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् ।
अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥१६॥

पदार्थः—(ये) जो (सूरयः) विद्वान् जन (मे) मेरी (बन्ध्वेषे) बन्धुओं की इच्छा के लिए (गाम्) वाणी को (प्र, वोचन्त) उत्तम प्रकार उच्चारण करते हैं और (पृश्निम्) अन्तरिक्ष और (मातरम्) माता का (वोचन्त) उपदेश करते हैं (अधा) इस के अनन्तर (शिक्वसः) सामर्थ्यवाले (इष्मिणम्) बहुत प्रकार का बल जिसका उस (पितरम्) पालन करने वाले पिता और (रुद्रम्) दुष्टों के भय देने वाले का (वोचन्त) उपदेश करते हैं वे मुझ से सत्कार करने योग्य हैं ॥१६॥

भावार्थः—मनुष्यों को इस प्रकार जानना चाहिए कि जो हमलोगों के लिए विद्या और उत्तम शिक्षा को देवें वे हम लोगों से सदा आदर करने योग्य होवें ॥१६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।
यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥१७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस (राधः) धनको (यमुनायाम्) यम और नियमों से अन्वित क्रिया के बीच मैंने (अधि, श्रुतम्) सुना और जो (गव्यम्) गौओं के हित को (उत्, मृजे) उत्तमता से शुद्ध करता हूं और जो (अश्व्यम्) घोड़ों में श्रेष्ठ (राधः) द्रव्य को (नि) निरन्तर (मृजे) स्वच्छ करता हूं वह (मे) मेरे (सप्त) सातप्रकार के मनुष्यों के भेद और (शाकिनः) सामर्थ्य वाले (सप्त) सात (एकमेका) एक एक (शता) सैकड़ों को जो (ददुः) देवें उस को और उन को आपलोग प्राप्त हूजिए और विशेष करके जानिए ॥१७॥

भावार्थः—इस संसार में मूढ, मूढतर, मूढतम, विद्वान्, विद्वत्तर विद्वत्तम और अनूचान ये सात, सात प्रकार के मनुष्य होते हैं ॥१७॥

इस सूक्त में वायु और विश्वेदेव के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में बावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षोडशर्चस्य त्रिपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । मरुतो देवताः । १ भुरिग्गायत्री । ८ । १२ गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः । २ निचृद्बृहती । ६ स्वराड्बृहतीच्छन्दः । १४ बृहतीच्छन्दः । मध्यमः स्वरः । ३ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ४ । ५ उष्णिक् । १० । १५ विराडुष्णिक् । ११ निचृदुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ६ पङ्क्तिः । ७ । १३ निचृत्पङ्क्तिः । १६ पङ्क्तिश्छन्दः पञ्चमः स्वरः ॥

अब सोलह ऋचा वाले तिरेपनवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अब मनुष्य क्या जानें इस विषय को कहते हैं ॥

को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् ।
यद्युयुज्रे किलास्यः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो वा विद्वानो (यत्) जो (युयुज्रे) युक्त होता है वह (एषाम्) इन (मरुताम्) मनुष्यों वा पवनों के (जानम्) प्रादुर्भाव को (किलास्यः) निश्चित मुख जिस का वह (कः) कौन (वेद) जानता है (कः, वा) अथवा कौन (सुम्नेषु) सुखों में (पुरा) प्रथम (आस) स्थित है ॥१॥

भावार्थः मनुष्य और वायु आदि पदार्थों के लक्षण और लक्ष्यों को विद्वान् जन ही जानने को समर्थ हो सकते हैं अन्य नहीं ॥१॥

फिर मनुष्य कैसे पूछि के क्या जानें इस विषय को कहते हैं ॥

ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वानो (रथेषु) विमान आदि वाहनों में (एतान्) इन (तस्थुषः) स्थावर काष्ठ आदि पदार्थों को (कः) कौन (आ, शुश्राव) अच्छे प्रकार सुनाता है और (कथा) कैसे मनुष्य (ययुः) प्राप्त होते हैं और (कस्मै) किसके लिए (सस्रुः) प्राप्त होते हैं (इळाभिः) अन्न आदिकों से (वृष्टयः) वृष्टियां और (आपयः) प्राप्त होने वाले पदार्थ (सह) एकसाथ (सुदासे) सुन्दर दास जिस के उस में (अनु) अनुकूल प्राप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थः—कोई ही वह मनुष्य सम्पूर्ण शिल्पविद्या के व्यवहार करने को समर्थ होता है जो व्याप्त और बहुत उत्तम गुणवाले बिजुली आदि पदार्थों को यथावत् जानता है ॥२॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे ।
नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि ॥३॥

पदार्थः—(ये) जो (अरेपसः) दोषों के लेप से रहित (मर्य्याः) मरणधर्म्म वाले (नरः) नायक मनुष्य (द्युभिः) कामना करते हुए (विभिः) पक्षियों के सदृश (मदे) आनन्द के लिए (मे) मेरे सत्य को (आहुः) कहें और (आययुः) जानें वा प्राप्त होवें (ते) वे (इमान्) इन मनोरथों को (पश्यन्) देखते हुए के समान कहें (इति, इस प्रकार आप मेरी (उप, स्तुहि) समीप में स्तुति करिए ॥३॥

भावार्थः जो विद्वान् जन दिनरात्रि परिश्रम से विद्या को प्राप्त होकर अन्यों को उपदेश देवें उन को यथार्थवक्ता जानना चाहिये ॥३॥

मनुष्य पुरुषार्थ से किस किस को प्राप्त होवें इस विषय को कहते हैं ॥

ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु ।
श्राया रथेषु धन्वसु ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ये) जो (वाशीषु) वाणियों में (स्वभानवः) अपने प्रकाश जिनके वे (अञ्जिषु) प्रकट व्यवहारों में (स्रक्षु) माला के मणियों में और (रुक्मेषु, सुवर्ण आदिकों में वा (ये) जो (खादिषु) भक्षण आदिकों में (रथेषु) वाहनों में और (धन्वसु) स्थलों में (श्रायाः) सुनते वा सुनाते हैं वे प्रसिद्ध होते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य पुरुषार्थी होवें वे सब प्रकार से सत्कार को प्राप्त हुए लक्ष्मीवान् होते हैं ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥५॥

पदार्थः—हे (जरिदानवः) जीवते हुए (मरुतः) मनुष्यो ! मैं (युष्माकम्) आप लोगों के (मुदे) आनन्द के लिए (रथान्) विमान आदि यानों को (दधे) धारण करता हूं और (वृष्टी, वर्षाओं तथा (द्यावः) प्रकाशों को (यतीरिव) प्रयत्न से सिद्ध होने वाली क्रियाओं के समान (स्मा) ही (अनु) पीछे आनन्द के लिए धारण करता हूं ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं अभ्यास से विद्या के प्रकाशों को यज्ञ से वृष्टि को धारण करता हूं वैसे आप लोग भी इन को धारण कीजिये ॥५॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (सुदानवः) उत्तम विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों के दान से युक्त (दिवः) कामना करते हुए (नरः) नायक मनुष्य (ददाशुषे) देनेवाले के लिए (यम्) जिस (कोशम्) मेघ को (आ) चारों ओर से (अचुच्यवुः) वर्षावें और (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (पर्जन्यम्) मेघ को (वि, सृजन्ति) विशेषतया छोड़ते हैं उसके (अनु) अनुकूल (धन्वना) अन्तरिक्ष से (वृष्टयः) वर्षायें (यन्ति) प्राप्त होती हैं वैसे आप लोग भी आचरण करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—वे ही मनुष्य उत्तम दाता हैं जो यज्ञ, जङ्गलों की रक्षा और जलाशयों के निर्म्माण से बहुत वर्षाओं को कराते हैं ॥६॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ततृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः ॥७॥

पदार्थः— हे मनुष्यो (यथा) जिस प्रकार से (धेनवः) दुग्ध देने वाली गौएं वैसे (क्षोदसा) जल से (ततृदानाः) भूमि को तोड़ने वाली (सिन्धवः) नदियां (रजः) लोक को (प्र, सस्रुः) प्रस्रवित करती हैं। और (अश्वाइव) जैसे घोड़े दौड़ते हैं वैसे (यत्) जो (स्यन्नाः) शीघ्र जाने वाली (एन्यः) नदियां (विमोचने) विमोचन में (अध्वनः) मार्गों को (वि, वर्त्तन्ते) बिताती हैं उन से संपूर्ण उपकार ग्रहण करने चाहिये ॥७॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जैसे दुग्ध देनेवाली गौवें दुग्ध की वृष्टि करती हैं वैसे ही नदी तड़ाग समुद्र आदि और अन्य जलाशय पृथिवी पर वृष्टि करते हैं ॥७॥

फिर मनुष्यों को क्या प्राप्त करना योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत । माव स्थात परावतः ॥८॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो आप लोग (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष (उत, और (अमात्) गृह से (दिवः) कामनाओं को (आ) सब प्रकार से (यात) प्राप्त हूजिये और (परावतः) दूर देश से (मा) नहीं (अव, आ, स्यात, अच्छे प्रकार से स्थित हूजिये ॥८॥

भावार्थः वे ही मनुष्य कामना की सिद्धि को प्राप्त होते हैं जो विरोध का त्याग करके विद्वान् होते हैं ॥८॥

फिर विद्वानों को क्या उपदेश देना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परि ष्ठात्सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत्सुम्नमस्तु वः ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (अनितभा) दीप्ति को न प्राप्त (कुभा) कुत्सित प्रकाशयुक्त (क्रुमुः) क्रमण करनेवाली (रसा) पृथिवी (मा, मत (वः) आप लोगों को (नि) अत्यन्त (रीरमत्) रमण करावे और (सिन्धुः) नदी वा समुद्र (मा) नहीं (वः) आपलोगों को निरन्तर रमण करावे तथा (सरयुः) चलनेवाला और (पुरीषिणी) पुरों की इच्छा करने वाली (मा) मत (वः) आपलोगों को (परि, स्थात्) परिस्थित करावें अर्थात् मत आलसी बनावे जिस से (अस्मे) हम लोगों के लिए और (वः) आपलोगों के लिए (सुम्नम्) सुख (इत्) ही (अस्तु) हो ॥९॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिए कि इस प्रकार का पुरुषार्थ करें कि जिस प्रकार सम्पूर्ण पदार्थ सुख देनेवाले होवें ॥९॥

फिर विद्वान्जन को मनुष्यों के अर्थ क्या इच्छा करनी चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस (रथानाम्) वाहनों और (नव्यसीनाम् नवीन नवीनों के बीच (मारुतम्) मनुष्यों के सम्बन्धी (गणम्) समूह का और (त्वेषम्) सद्गुणों के प्रकाश का उपदेश करता हूं और जिस को (वृष्टयः) वर्षायें (अनु, प्र, यन्ति) प्राप्त होती हैं (तम्) उस (शर्धम्) बल को (वः) आप लोगों के लिए प्राप्त करता हूं ॥१०॥

भावार्थः—जो विद्वानों की नवीन नवीन नीति को प्राप्त होते हैं वे बल को प्राप्त होते हैं ॥१०॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणंगणं सुशस्तिभिः ।
अनु क्रामेम धीतिभिः ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (धीतिभिः) जैसे अङ्गुलियों से कर्म्मों को वैसे (सुशस्तिभिः) अच्छी प्रशंसाओं से (वः) आप लोगों के और (एषाम्) इन के (शर्धंशर्धम्) बल बल और (व्रातंव्रातम्) वर्त्तमान वर्त्तमान (गणंगणम्) समूह समूहको (अनु, क्रामेम) उल्लंघन करें वैसे आप लोगों को भी करना चाहिये ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य पूर्ण बल को करें तो बहुत बलिष्ठों का भी उत्क्रमण करें ॥११॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः ।
एना यामेन मरुतः ॥१२॥

पदार्थः—जो (मरुतः) मनुष्य (अद्य) आज (एना) इस (यामेन) विरक्त हुए से (कस्मै) किस (सुजाताय) उत्तम विद्याओं में प्रसिद्ध (रातहव्याय) दिया दातव्य जिस ने उस के लिए (प्र, ययुः) प्राप्त होते हैं वे विद्या के देने वाले हो कर प्रशंसित होते हैं ॥१२॥

भावार्थः—विद्या आदि उत्तम गुणों के दान के विना विद्वानों की प्रशंसा नहीं होती है ॥१२॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

येन तोकाय तनयाय धान्यं१ बीजं वहध्वे अक्षितम् ।
अस्मभ्यं तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (येन) जिस कर्म्म से (तोकाय) तुरन्त उत्पन्न हुए सन्तान के और (तनयाय) कुमार के लिए (अक्षितम्) नाश से रहित (धान्यम्) तण्डुल आदि को और (बीजम्) बोने के योग्य को (वहध्वे) प्राप्त हूजिए और (यत्) जिस (विश्वायु) सम्पूर्ण आयु के करने और (सौभगम्) सौभाग्य को बढ़ाने वाले नाश से रहित (राधः) धन की (वः) आप लोगों के लिए (ईमहे) याचना करते हैं (तत्) उसको (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (धत्तन) धारण करिये ॥१३॥

भावार्थः—जो मनुष्य सन्तानों की रक्षा के लिए धान्य आदि वस्तु की उत्तम प्रकार रक्षा करते हैं वे नाशरहित सुख को प्राप्त होते हैं ॥१३॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वाऽवद्यमरातीः ।
वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥१४॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो जैसे हम लोग (निदः) निन्दा करने वाले मिथ्यावादियों का (अति, इयाम) उल्लङ्घन करें अर्थात् त्याग करें और (स्वस्तिभिः) सुख आदिकों से (तिरः) तिरश्चीनकर्म्म और (अवद्यम्) निन्दित कर्म्म (अरातीः) और शत्रुओं का (हित्वा) त्याग और (शम्) सुख की (वृष्ट्वी) वर्षा करके (आपः) जलों को और (योः) मिश्रित (उस्रि) गो आदि से युक्त (भेषजम्) ओषधि को सुख आदिकों के (सह) साथ प्राप्त (स्याम) होवें वैसे आप लोगों को होना चाहिए ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिए कि निन्दक, निन्दा और पापी पाप को छोड़ शत्रुओं को जीतकर ओषधि आदि के सेवन से शरीर को रोग-रहित कर विद्या और योगाभ्यास से आत्मा की उन्नति कर के निरन्तर सुख प्राप्त करें ॥१४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।
यं त्रायध्वे स्याम ते ॥१५॥

पदार्थः—हे (समह) सत्कार से सहित ! (सः) वह (सुदेवः) सुन्दर विद्वान् (सुवीरः) सुन्दर वीर (मर्त्यः) मनुष्य (असति) है (यम्) जिस को हे (मरुतः) मनुष्यो (नरः) अग्रणीजनो (ते) वे आप लोग (त्रायध्वे) रक्षा करो हम लोग उस के साथ (स्याम) होवें ॥१५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिए कि अतिउन्नत होकर निर्बल प्राणियों की सदा ही रक्षा करें ॥१५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स्तुहि भोजान्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।
यतः पूर्वाँ इव सखीँरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिनः ॥१६॥

पदार्थः—हे विद्वन् (रणन्) उपदेश देते हुए आप (स्तुवतः) प्रशंसा करने वाले (भोजान्) पालकों को (स्तुहि) स्तुति कीजिए और (अस्य) इस रक्षण के (यामनि) मार्ग में (यतः) जिस से (पूर्वानिव) जैसे पूर्व वैसे वर्त्तमान (सखीन्) मित्रों का (गिरा) वाणी से (अनु, ह्वय) निमन्त्रण करो और मित्रों को (यवसे) बुस आदि में (गावः) गौओं के (न) सदृश निमन्त्रण करो और (कामिनः) श्रेष्ठ मनोरथ जिन का उन की (गृणीहि) स्तुति करो ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे विद्वन् ! जो प्रशंसा करने योग्य और सब के प्रिय और सत्य की कामना करने वाले होवें उन का सदा ही सत्कार करो ॥१६॥

इस सूक्त में प्रश्न उत्तर और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह पंचम मण्डल में तिरेपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चदशर्चस्य चतुःपञ्चाशत्तमस्य । सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । ३ । ७ । १२ जगती । २ विराड् जगती । ६ भुरिग् जगती । ११ । १५ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ४ । ८ । १० भुरिक् त्रिष्टुप् । ५ । ९ । १३ । १४ त्रिष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पंद्रह ऋचा वाले चौवनवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मंत्र में विद्वानों को कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥१॥

पदार्थः—हे (दिवः) कामना करते हुए विद्वानो आपलोग (स्वभानवे) अपनी कान्ति विद्यमान जिसके उस (मारुताय) मनुष्यों के सम्बन्धी (शर्धाय) बल के लिए (इमाम्) इस वर्त्तमान (वाचम्) उत्तमप्रकार शिक्षितवाणी का (अनज) उच्चारण कीजिए अर्थात् उपदेश दीजिये और (पर्वतच्युते) मेघ से गिरे वा जो मेघ को वर्षाता (घर्मस्तुभे) यज्ञ की स्तुति करता और (पृष्ठयज्वने) पृष्ठ से यज्ञ करता (द्युम्नश्रवसे) वा यश सुनागया जिसका उसके लिए (महि) बड़े (नृम्णम्) मनुष्य अभ्यास करते हैं जिसका उसका (आ, अर्चत) सत्कार करो ॥१॥

भावार्थः—हे विद्वानो आप लोग सदा ही ज्ञानरहित पुरुषों को विद्या

के दान से ज्ञानवान् करो सत्य और असत्य का विचार करके सत्य का ग्रहण कराय के असत्य का त्याग कराइए और सब के सुख के लिए ऐश्वर्य्य को इकट्ठा करो ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

प्र वो॑ मरुतस्तवि॒षा उ॑द॒न्यवो॑ वयो॒वृधो॑ अश्व॒युज॒ः परि॑ज्रयः ।
सं वि॒द्युता॒ दध॑ति॒ वाश॑ति त्रि॒तः स्वर॒न्त्यापो॒ऽवना॒ परि॑ज्रयः ॥२॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो जो (तविषाः) बलवान् (उदन्यवः) अपने को जल की इच्छा करने (वयोवृधः) अवस्था से बढ़ने वा अवस्था को बढ़ाने (अश्वयुजः) शीघ्रगामी पदार्थों को युक्त करने (परिज्रयः) और सब ओर जानेवाले जन (विद्युता) बिजुली के साथ (वः) आप लोगों को (सम्, दधति) उत्तम प्रकार धारण करते और (वाशति) वाणी के सदृश आचरण करते हैं और (त्रितः) तीन से (परिज्रयः) सब ओर जाने वाले (आपः) जल (अवना) रक्षण आदि का (प्र, स्वरन्ति) अच्छे प्रकार उच्चारण करते हैं उनका आप लोग सत्कार करो ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य बिजुली आदि की विद्या को जानते हैं वे सम्पूर्ण सुख को सब के लिये धारण करते हैं ॥२॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

वि॒द्युन्म॑हसो॒ नरो॒ अश्म॑दिद्यवो॒ वात॑त्विषो म॒रुत॑ः पर्व॒त॒च्युत॑ः ।
अ॒ब्द॒या चि॒न्मुहु॒रा ह्रा॑दुनी॒वृत॑ः स्त॒नय॑दमा र॒भ॒सा उदो॑जसः ॥३॥

पदार्थः—हे (नरः) नायकजनो जो (विद्युन्महसः) बिजुली की विद्या में बड़े श्रेष्ठ (अश्मदिद्यवः) मेघ विद्या का प्रकाश करने वाले (वातत्विषः) वायुविद्या से कांतियां जिनकी ऐसे और (पर्वतच्युतः) मेघों को वर्षाने वा (अब्दया) जलों को देने वाले और (स्तनयदमाः) शब्द करते गृह जिनके वे (रभसाः) वेग से युक्त (उदोजसः) उत्कृष्ट पराक्रम जिन का वे (मुहुः) वार वार (आ) सब प्रकार से (ह्रादुनीवृतः) शब्द करने वाली बिजुली से युक्त (चित्) भी (मरुतः) मनुष्य हैं उन से मिलिये ॥३॥

भावार्थः—जो बिजुली मेघ, वायु और शब्द आदि की विद्या को जानने वाले हैं वे सब प्रकार से लक्ष्मीवान् होते हैं ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

व्य१'क्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्य१'न्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥४॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो (यत्) जो (शिक्वसः) सामर्थ्य से युक्त (धूतयः) कंपाने वाले (रुद्राः) पवन (अक्तून्) प्रसिद्धों को प्रकट करते हैं और (अहानि) दिनों का (वि) विशेष कर के परिणाम करते अर्थात् गिनाते हैं (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष के प्रति (रजांसि) लोकों का (वि) विधान करते और (वि) विशेष कर के चलाते हैं तथा (ईम्) जल को जैसे (नावः) बड़ी नौकायें वैसे सम्पूर्ण लोकों को चलाते हैं उन (अज्रान्) निरन्तर चलने वालों को (वि, अजथ) प्राप्त हूजिये और (यथा) जैसे (दुर्गाणि) दुःख से प्राप्त होने योग्यों को (न) नहीं (अह) ग्रहण करने में (वि, रिष्यथ) नाश करें वैसे विचारिये ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि वायुविद्या को अवश्य जानें ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्न्ययातना गिरिम् ॥५॥

पदार्थः—हे (मरुतः) वायु के सदृश वर्त्तमान मनुष्यो (सूर्यः) सूर्य्य (योजनम्) युक्त करते हैं जिस से उस आकर्षण नामक के (न) सदृश और (महित्वनम्) बड़प्पन को जैसे वैसे (दीर्घम्) विशाल (वः) आप के (तत्) उस (वीर्यम्) पराक्रम को (ततान) विस्तृत करता है और (अगृभीतशोचिषः) नहीं ग्रहण किया तेज जिन्होंने वे (यामे) प्रहर में (एताः) ये गमन (न) जैसे (अनश्वदाम्) नहीं घोड़े जिसमें उस गमन और (गिरिम्) मेघ को देते है और (यत्) जिस को आप लोग (नि, अयातना) प्राप्त हूजिये उस सब को हम लोग ग्रहण करें ॥५॥

भावार्थः—जो लोग सूर्य और मेघों के गुणों को जानकर सामर्थ्य और धन को इकट्ठा करते हैं वे परोपकारी होते हैं ॥५॥

मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥६॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो आप लोगों से (यत्) जो (शर्धः) बल (अभ्राजि) प्रकाशित किया जाता और (अर्णसम्) जल को जो तुम लोग (मोषथ) चुराइये तो

आप लोगों को जैसे (वृक्षम्) वट आदि वृक्ष को (कपनेव) पवनों के गमन वैसे हम लोग दण्ड देवें (अध) इसके अनन्तर हे (वेधसः) बुद्धिमान् जनो (सजोषसः) तुल्य प्रीति के सेवन करने वाले आप लोग (चक्षुरिव) नेत्र को जैसे वैसे (नः) हम लोगों के (अरमतिम्) रमण रहित (यन्तम्) प्राप्त होने वाले (सुगम्) सुग अर्थात् उत्तमता से चलते हैं जिसमें उस को (स्म) ही (अनु, नेषथ) अनुकूल प्राप्त कीजिये ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो सब के शरीर और आत्मा के बल को प्रकाशित करते हैं वे धन्य हैं और जो श्रेष्ठ विद्या और गुणों को चुराते उनको धिक्कार धिक्कार ॥६॥

अब ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥७॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो (सः) वह (न) न (जीयते) जीता जाता (न) न (हन्यते) नाश किया जाता (न) न (स्रेधति) नाश होता (न) न (व्यथते) पीड़ित होता और (न) न (रिष्यति) हिंसा करता है (अस्य) इसका (न) न (रायः) धन और (न) न (ऊतयः) रक्षण आदि व्यवहार (उप, दस्यन्ति) नाश होते हैं (यम्) जिस (ऋषिम्) वेदार्थ के जानने वाले (वा) अथवा (राजानम्) राजा को (वा) भी आप लोग (सुषूदथ) रखिये ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो वृद्धावस्था वा मरणावस्था रहित सत् चित् और आनन्दस्वरूप नित्य गुण कर्म्म और स्वभाव वाला जगदीश्वर है उस की सब आप लोग उपासना करो ॥७॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः ।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यथा) जैसे (नियुत्वन्तः) निश्चयवान् (ग्रामजितः) ग्राम को जीतने वाले (अर्य्यमणः) न्यायाधीशों के (न) सदृश (कबन्धिनः) बहुत जलों से युक्त (इनासः) समर्थ (नरः) नायक (मरुतः) मनुष्य (यत्) जिस को (उत्सम्) कूप के समान (पिन्वन्ति) तृप्त करते वा (अस्वरन्) शब्द करते हैं और (अन्धसा)

अन्न के साथ (मध्वः) मधुर गुणयुक्त होते हुए (पृथिवीम्) पृथिवी को (वि, उन्दन्ति) विशेष गीली करते हैं वे भाग्यशाली होते हैं ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो जल के सदृश शान्ति करने वाले और सामर्थ्य को बढ़ाते हुए विजय को प्राप्त होते हैं वे लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥८॥

मनुष्यों को कैसे उपकार लेना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः ।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥९॥

पदार्थः - हे मनुष्यो जो (इयम्) यह (प्रवत्वती) नीचे के स्थान से युक्त (पृथिवी) भूमि और (प्रवत्वती) फैलने वाला (द्यौः) प्रकाश और (प्रयद्भ्यः) प्रयत्न करते हुओं से (मरुद्भ्यः) मनुष्य आदिकों के लिए हितकारक (भवति) होता है जिस में (प्रवत्वन्तः) गमनशील (जीरदानवः) जीवन को देने वाले (पर्वताः) मेघ (अन्तरिक्ष्याः) अन्तरिक्ष में उत्पन्न (प्रवत्वतीः) नीचे चलने वाली (पथ्याः) मार्ग के लिए हितकारक वृष्टियों को करते हैं वे यथावत् जानने योग्य हैं ॥९॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिए कि पृथिवी के समीप से जितना हो सकता है उतना उपकार ग्रहण करें ॥९॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य्य उदिते मदथा दिवो नरः ।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ ॥१०॥

पदार्थः हे (सभरसः) तुल्य पालन और पोषण करने वाले (स्वर्णरः) सुख को प्राप्त कराते और (दिवः) कामना करते हुए (नरः) सत्य धर्म्म में पहुँचाने वाले (मरुतः) जनो आपलोग (उदिते) उदय को प्राप्त हुए (सूर्य्ये) सूर्य में (यत्) जिस को प्राप्त होकर (मदथ) आनन्दित होओ उस से (वः) आप लोगों के (सिस्रतः) चलनेवाले (अश्वाः) घोड़े (न) नहीं (श्रथयन्त, अह) हिंसा करते रुकते हैं उन से (अस्य) इस (अध्वनः) मार्ग के (पारम्) पार को (सद्यः) शीघ्र (अश्नुथ) प्राप्त हूजिये ॥१०॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य्योदय से पहिले उठ के जब तक सोवें नहीं तब तक प्रयत्न करते हैं दुःख और दारिद्र्य के अन्त को प्राप्त होकर सुखी और लक्ष्मीवान् होते हैं ॥१०॥

फिर मनुष्य कौन कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षःसु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ॥११॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो जब (वः) आप लोगों के वायु के सदृश वर्तमान वीरजनो जो आपलोगों के (अंसेषु) कन्धों में (ऋष्टयः) शस्त्र और अस्त्र (पत्सु) पैरों में (खादयः) भोक्ताजन (वक्षः सु) वक्षःस्थलों में (रुक्माः) सुवर्ण अलंकार (रथे) सुन्दर वाहन में (शुभः) शोभित पदार्थ (गभस्त्योः) हाथों के मध्य में (अग्निभ्राजसः) अग्नि के सदृश प्रकाशमान (विद्युतः) विजुलियां (शीर्षसु) शिरों में (वितताः) विस्तृत (हिरण्ययीः) सुवर्ण जिन में बहुत ऐसी (शिप्राः) पगड़ियां होवें तब हस्तगत विजय होता है ॥११॥

भावार्थः जो राजपुरुष अहर्निश राजकार्य्यों में प्रवीण दुर्व्यसनों से विरक्त और साङ्गोपाङ्ग राज सामग्रीवाले हों वे सदैव प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत् पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥१२॥

पदार्थः-- हे (मरुतः) वायु के सदृश वेगयुक्त वर्त्तमान जनो आप लोग (अर्यः) स्वामी ईश्वर के सदृश (ऋतायवः) अपने सत्य की इच्छा करते हुए (यत्) जिस (विततम्) विस्तृत (घोषम्) वाणी का (स्वरन्ति) उच्चारण करते हैं (तम्, अगृभीतशोचिषम्) उस अगृभीतशोचिषम् अर्थात् नहीं ग्रहण की स्वच्छता जिस में ऐसे (रुशत्, अच्छे स्वरूप वाले (पिप्पलम्) फल भोगरूप (नाकम् दुःख रहित आनन्द को (सम्, अच्यन्त) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिए दुःख को (वि) विशेष करके (धूनुथ) कम्पाइये और (वृजना) चलते हैं जिन से उन को (अतित्विषन्त) प्रकाशित कीजिए तथा प्रकाशित हूजिये ॥१२॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य ईश्वर के सदृश न्यायकारी सम्पूर्ण जगत् के उपकार करने वाले और उपदेशक हैं वे संसार के भूषक हैं ॥१२॥

फिर मनुष्यों को क्या इच्छा करनी चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो३ वयस्वतः । न यो युच्छति तिष्यो३ यथा दिवो३ स्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥१३॥

पदार्थः—हे (विचेतसः) अनेक प्रकार का संज्ञान जिन का वे (रथ्यः) बहुत रथ आदि से युक्त (मरुतः) प्राणों के सदृश प्रियजनो हम लोग (युष्मादत्तस्य) आप लोगों से दिये गये (वयस्वतः) प्रशंसित जीवन जिस का उस (रायः) धन के स्वामी (स्याम) होवें और (यः) जो (अस्मे) हम लोगों के लिए वा हम लोगों में (न) नहीं (युच्छति) प्रमाद करता और (यथा) जैसे (दिवः) प्रकाश के मध्य में (तिष्यः) सूर्य्य वा पुष्य नक्षत्र है वैसे प्रकाशित होवे और हे (मरुतः) जनो आप लोग (सहस्रिणम्) असंख्य वस्तु हैं विद्यमान जिस के उस को (रारन्त) रमण करते हैं ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदा धनाढ्यपन का खोज करें और प्रमाद न करें ॥१३॥

राजादिकों से कौन कौन रक्षापाने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम् । यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥१४॥

पदार्थः—हे (मरुतः) पुरुषार्थी मनुष्यो (यूयम्) आपलोग (स्पार्हवीरम्) अभिकांक्षित वीर जिस में उस (रयिम्) लक्ष्मी की (अवथ) रक्षा कीजिये और (यूयम्) आप लोग (सामविप्रम्) सामों में बुद्धिमान् (ऋषिम्) वेदार्थ के जानने वाले की रक्षा कीजिये और (यूयम्) आप लोग (भरताय) धारण और पोषण के लिए (अर्वन्तम्) प्राप्त होते हुए (वाजम्) वेग अन्न और विज्ञान आदि को (धत्थ) धारण करो और (यूयम्) आपलोग (श्रुष्टिमन्तम्) अच्छा क्षिप्रकरण जिस में उस (राजानम्) न्याय और विनय से प्रकाशमान को धारण कीजिये ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि उत्तम सहाय से लक्ष्मी विद्वान् सेना और राजा को धारण करें ॥१४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तद्वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्व१र्ण ततनाम नॄँरभि । इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः ॥१५॥

पदार्थः—हे (सद्यऊतयः) शीघ्र रक्षण आदि वाले (मरुतः) मनुष्यो (वः) आपलोगों के समीप से जिस (द्रविणम्) धन वा यश को (यामि) प्राप्त होता हूं (तत्) उस को आपलोग दीजिए (येना) जिस से (स्वः) सुख के (न) सदृश (नॄन्) मनुष्यों को (अभि, ततनाम) सब प्रकार विस्तृत करें और आपलोग (इदम्) इस (मे) मेरे (वचः) वचन की (सु, हर्यता) अच्छे प्रकार कामना करिए और (यस्य) जिस के (तरसा) बल से हम लोग (शतम्) सौ (हिमाः) वर्ष (तरेम) पार होवें उस से आप लोग भी पार हूजिए ॥१५॥

भावार्थः—हे विद्वानो आपलोग यश धन सुख सत्य वचन और बल को बढ़ाय दुःखों के पार हूजिए ॥१५॥

इस सूक्त में सूर्य्य बिजुली और सुख के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में चौवनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य पञ्चपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । ५ जगती । २ । ४ । ७ । ८ निचृज्जगती । ९ विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । ६ । १० निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वर ॥

अब दश ऋचा वाले पचपनवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं ॥

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः ।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिन (अश्वैः) शीघ्र करने वा (आशुभिः) शीघ्र जाने वाले (सुयमेभिः) सुन्दर यम इन्द्रियनिग्रह आदि जिन के उन जनों से (शुभम्) धर्म-युक्त व्यवहार को (याताम्) प्राप्त होते हुओं के (रथाः) सुन्दर वाहन आदि (ईयन्ते) प्राप्त किये जाते हैं और (प्रयज्यवः) उत्तम मिलने वाले मनुष्य (भ्राजदृष्टयः) शोभित होते हैं विज्ञान जिन के वे (रुक्मवक्षसः) सुवर्ण आदि से युक्त आभूषण जिन के वे (मरुतः) प्राणों के सदृश वर्त्तमान (बृहत्) बड़े (वयः) सुन्दर जीवन को (दधिरे) करें और जो (अनु) पश्चात् (अवृत्सत) वर्त्तमान होते हैं उन के साथ आप लोग भी इस प्रकार प्रयत्न कीजिए ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो आप लोग ब्रह्मचर्य्य आदि से अति काल पर्य्यन्त जीवन वाले योगी और पुरुषार्थी होइये ॥१॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को कहते हैं॥

स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥२॥

पदार्थः—हे राजजनो (यथा) जैसे (महान्तः) गम्भीर आशय वाले आप लोग (तविषीम्) बल युक्त सेना को (स्वयम्) अपने से (दधिध्वे) धारण कीजिये (महत्) बड़े को (विद) जानिये (उर्विया) बहुत से (वि) विशेष करके (राजथ) शोभित हूजिए और जैसे (शुभम्) कल्याण को (याताम्) प्राप्त होते हुओं के (रथाः) वाहन (अनु, अवृत्सत) अनुकूल वर्त्तमान हैं (उत) और (अन्तरिक्षम्) आकाश को (वि) विशेष करके (ममिरे) व्याप्त होते हैं वैसे आप लोग (ओजसा) बल से (वि) विशेष करके (राजथ) शोभित हूजिये॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो! ब्रह्मचर्य्य से शरीर और आत्मा के बल को धारण करके और क्रियाकुशलता को जान के जैसे ईश्वर अन्तरिक्ष में सम्पूर्ण पदार्थों को उत्पन्न करता है वैसे ही आप लोग अनेक व्यवहारों को सिद्ध कीजिये॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं॥

साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः।
विरोकिणः सूर्य्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत॥३॥

पदार्थः—हे (नरः) सत्य को पहुंचाने वाले मनुष्यो (सूर्य्यस्येव) सूर्य के जैसे (साकम्) एक साथ (जाताः) उत्पन्न और (सुभ्वः) शोभित (साकम्) साथ में (उक्षिताः) सींचे हुए (विरोकिणः) अनेक प्रकार की रुचि वर्त्तमान जिन में वे (रश्मयः) किरण (प्रतरम्) अत्यन्त दुःख से पार करने वाले व्यवहार को (आ) सब प्रकार (वावृधुः) बढ़ावें वैसे (चित्) भी मित्र होते हुए (श्रिये) शोभा वा धन के लिए प्रवृत्त हूजिए और जैसे (शुभम्) कल्याण को (याताम्) प्राप्त होते हुओं के (रथाः) सुन्दर वाहन आदि (अनु, अवृत्सत) पीछे वर्त्तमान हैं वैसे सब के उपकार के पीछे वर्तिये॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो! आप लोग सूर्य्य की किरणों के सदृश एकसाथही पुरुषार्थ के लिए उद्यत हूजिये और जैसे कल्याण करने वालों के रथों के पीछे भृत्यजन वर्त्तमान होते हैं वैसे ही धर्म के पीछे वर्त्तमान हूजिए॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्य्यस्येव चक्षणम् ।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥४॥

पदार्थः—हे (मरुतः) प्राण के सदृश प्रिय आचरण करने वालो जिन (वः) आप लोगों का (सूर्य्यस्येव) सूर्य्य के सदृश (आभूषेण्यम्) शोभा करने और (दिदृक्षेण्यम्) देखने को योग्य (चक्षणम्) प्रकाश (महित्वनम्) और बड़प्पन है जिस से (उतो) निश्चित (अस्मान्) हम लोगों को (अमृतत्वे) नाशरहित पदार्थों के भाव अर्थात् नित्यपन के वर्त्तमान होने पर (दधातन) धारण कीजिये और जिन (शुभम्) धर्म युक्त मार्ग को (याताम्) प्राप्त होते हुओं के (रथाः) वाहन (अनु, अवृत्सत) अनुकूल वर्त्तमान हैं उन का हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य सूर्य्य के सदृश न्याय के प्रकाशक अन्यायरूपी अन्धकार के रोकनेवाले धर्ममार्ग के अनुगामी होवें उन की सदा ही आप लोग प्रशंसा करो ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः ।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥५॥

पदार्थः—हे (पुरीषिणः) बहुत प्रकार का पोषण विद्यमान जिनमें वे (मरुतः) मनुष्यो (यूयम्) आप लोग हम लोगों की श्रेष्ठ कर्मों में (उत्, ईरयथा) प्रेरणा कीजिये और जैसे पवन (समुद्रतः) अन्तरिक्ष से (वृष्टिम्) वर्षा करते हैं वैसे आप लोग (वर्षयथा) वर्षाइये जिस से (दस्राः) नाश होने वाले और (धेनवः) वाणियां (वः) आप लोगों को (न) नहीं (उप, दस्यन्ति) उपक्षय करते जैसे (शुभम्) कल्याण को (याताम्) प्राप्त होते हुओं के (रथाः) वाहन (अनु, अवृत्सत) अनुकूल वर्त्तते हैं वैसे धर्म मार्ग का अनुकूल वर्त्ताव कीजिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वान् जन ! जैसे पवन अन्तरिक्ष से वृष्टि करके सम्पूर्ण प्राणियों को तृप्त करके दुःख का नाश करते हैं वैसे ही सत्यविद्या के उपदेश की वृष्टि से अविद्यारूप अन्धकार से हुए दुःख का निवारण कीजिये ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुंग्ध्वं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुंग्ध्वम् ।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥६॥

पदार्थः—हे (मरुतः) वायु के सदृश वेग और बल से युक्त जनो जैसे (शुभम्) कल्याण को (याताम्) प्राप्त होते हुओं के (रथाः) वाहन (अनु, अवृत्सत) अनुकूल वर्त्तमान हैं वैसे (धूर्षु) विमान आदि यानों के अवयव कोष्ठों में (यत्) जिन (हिरण्ययान्) ज्योतिर्मय (प्रति, अत्कान्) स्पष्ट (पृषतीः) वायु और जल के गमनों और (अश्वान्) अग्नि आदिकों को आप लोग (अयुग्ध्वम्) संयुक्त कीजिये और (अमुग्ध्वम्) त्यागिये उनसे (विश्वाः) सम्पूर्ण (स्पृधः) स्पर्धायें रोप (इत्) ही (वि) विशेष करके (अस्यथ) चलाइये ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि वायु और जल आदिकों को वाहनों में उत्तम प्रकार युक्त करते हैं वे विजय के लिये समर्थ होकर धर्मसम्बन्धी मार्ग के अनुगामी होते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत् ।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥७॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो आप लोग (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि को (गच्छथ, इत्) प्राप्त ही हूजिये (तत्) उनको (उ) और भी (परि, याथना) सब ओर से प्राप्त हूजिये (उत) और (यत्र) जहां (अचिध्वम्) प्राप्त हूजिये और जैसे (शुभम्) कल्याण को (याताम्) प्राप्त होते हुओं के (रथाः) वाहन (अनु, अवृत्सत) पश्चात् वर्त्तमान हैं वहां वर्त्तमान हूजिये और जैसे सूर्य्य के संबन्ध को (न) (पर्वताः) न मेघ (न) न (नद्यः) नदियां (वरन्त) वारण करती हैं वैसे (वः) आप लोगों को कोई भी रोक नहीं सकते हैं ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य पृथिवी आदि की विद्या से तथा सृष्टि क्रम से कार्य्यों को सिद्ध करें उनको दारिद्र्य कभी प्राप्त नहीं होवे ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥८॥

पदार्थः—हे (वसवः) वास करने वाले (नवेदसः) नहीं विद्यमान धन जिन के वे (मरुतः) मनुष्यो (यत्) जो (पूर्व्यम्) प्राचीन विद्वानों से निष्पन्न किया हुआ (यत्) जो (नूतनम्) नवीन (यत्, च) जो (उद्यते) कहा जाता है (यत्, च) और जो (शस्यते) स्तुति किया जाता है (तस्य) उस (विश्वस्य) सम्पूर्ण संसार की वैसे रक्षा करने वाले (भवथ) हूजिये जैसे (शुभम्) कल्याण को (याताम्) प्राप्त होने हुओं के (रथाः) वाहन (अनु, अवृत्सत) वर्त्तमान होते हैं ॥८॥

भावार्थः—जो शिक्षा और विद्या के दण्ड से संसार की रक्षा करते हैं वे ही प्रशंसित होकर कल्याण को प्राप्त होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्तन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥९॥

पदार्थः—हे (मरुतः) विद्वानो आप लोग (नः) हम लोगों को (मृळत) सुखी करिये किन्तु (मा) मत (वधिष्टन) नष्ट करिये और (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (बहुलम्) बहुत (शर्म्म) सुख वा गृह (वि, यन्तन) विशेष करके दीजिये और (अधि, स्तोत्रस्य) अधिक प्रशंसित (सख्यस्य) मित्रपने के (शुभम्) सुख की (गातन) प्रशंसा करिये और जो (याताम्) प्राप्त होते हुओं के (रथाः) वाहन (अवृत्सत) वर्त्तमान हैं उनके (अनु) अनुगामी हूजिये ॥९॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों से प्रार्थना करके श्रेष्ठ गुणों को ग्रहण करें और सब जगह मित्रता करके सब के लिये सुख प्राप्त कराया जावे ॥९॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१०॥

पदार्थः—हे (गृणानाः) स्तुति करते हुए (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो (यूयम्) आप लोग (वस्यः) अति धन से युक्त (अस्मान्) हम लोगों की रक्षा कीजिये और (अंहतिभ्यः) मारते हैं जिन से उन अस्त्रों से पृथक् (अच्छा) उत्तम प्रकार (निः नयत) निरन्तर पहुंचाइये और (नः) हम लोगों की (जुषध्वम्) सेवा करिये । और हे (यजत्राः) मिलने वाले जनो हम लोगों के लिये (हव्यदातिम्) देने योग्य दान को प्राप्त कराइये जिस से (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनों के (पतयः) पालन करने वाले (स्याम) होवें ॥१०॥

भावार्थः—जिज्ञासुजन विद्वानों की प्रार्थना इस प्रकार करें कि आप लोग हम लोगों को दुष्ट आचरण से अलग करके धर्मयुक्त मार्ग को प्राप्त कराइये ॥१०॥

इस सूक्त में मरुत नाम से विद्वान् आदि के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में पचपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य षट्पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । २ । ५ निचृद्बृहती । ४ विराड्बृहती । ८ । ९ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ३ विराट्पङ्क्तिः । ६ । ७ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नौ ऋचा वाले छप्पनवे सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों के उपदेश से मनुष्य और वायु के गुणों को जानकर फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः ।
विशो अद्य मरुतामवं ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जैसे मैं (रुक्मेभिः) प्रकाशमान सुवर्ण आदि वा (अञ्जिभिः) सुन्दर पदार्थों से (मरुताम्) मनुष्यों के (पिष्टम्) अवयवीभूत (शर्धन्तम्) बलवान् (गणम्) समूह को (आ) सब ओर से (ह्वये) पुकारता हूं और (अद्य) आज (दिवः) प्रकाशमान (रोचनात्) प्रीति के विषय से (चित्) भी (विशः) मनुष्यों को (अधि) ऊपर के भाव में (अव) अत्यन्त पुकारता हूं वैसे आप भी आचरण करिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य वायु और मनुष्यों के गुणों को जानते हैं वे सत्कार करने वाले होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः ।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्ध भीमसंदृशः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्य (ये) जो (ते) आप के लिये (नेदिष्ठम्) अत्यन्त सामीप्य को (आशसः) कहने वाले (जग्मुः) प्राप्त होते हैं (तान्) उनकी आप (वर्ध) वृद्धि

करिये और (यथा, चित्) जिस प्रकार से आप (हृदा) हृदय से (मे) मेरे लिये (तत्) उसको (मन्यसे) मानते हो उस प्रकार से (हवनानि) देने लेने योग्य वस्तुयें (आगमन्) प्राप्त होवें और (भीमसन्दृशः) भयंकर दर्शन जिनका वे (इव) ही प्राप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमालं०—मनुष्य लोग परस्पर के उपकार से सुखी हों ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मर्दन्त्येत्यस्मदा ।

ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥३॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो जैसे (वः) आप लोगों को (पृथिवी) भूमि (मीळहुष्मतीव) वीर्य्य का देनेवाला सुन्दर स्वामी जिस का उसके समान (अस्मत्) हम लोगों से (पराहता) दूर को प्राप्त (मदन्ती) प्रसन्न होती हुई वर्त्तमान है उसको (शिमीवान्) अच्छे कर्म्मों वाला (ऋक्षः) पशु विशेष के (न) समान (आ, एति) प्राप्त होता है तथा (गौरिव) सूर्य्य के सदृश (भीमयुः) भयंकर युद्ध करने वाले को प्राप्त होने वाला (दुध्रः) दुःख से धारण करने योग्य पुरुष (अमः) गृह को प्राप्त होता है वैसे आप लोग भी आचरण करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो प्रयत्न करते हुए कर्म्मों को करते हैं वे सदा सुखी होते हैं ॥३॥

फिर विद्वानों के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः ।

अश्मानं चित्स्वर्य१ं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥४॥

पदार्थः—(ये) जो मनुष्य (ओजसा) पराक्रम से (नि, रिणन्ति) प्राप्त होते हैं (चित्) और जो (यामभिः) प्रहरों से (स्वर्यम्) शब्दों में श्रेष्ठ (पर्वतम्) पर्वत के सदृश ऊंचे (गिरिम्) शब्द कराने वाले (अश्मानम्) मेघ को (दुर्धुरः) दूरगत है धुरा जिनकी उनके (न) समान (प्र, च्यावयन्ति) गिराते हैं और (वृथा) व्यर्थ निज अर्थ के विना (गावः) गौओं के सदृश होते हैं वे सब से सत्कार करने योग्य होते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य के किरणें मेघ को नीचे गिराते हैं वैसे विद्वान् लोग दोषों को दूर करते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम् ।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे मैं (गवाम्) गौओं के (सर्गमिव) जल के सदृश (पुरुतमम्) अत्यन्त बहुत (अपूर्व्यम्) अपूर्व में हुए को (ह्वये) पुकारता हूं वैसे (एषाम्) इन (समुक्षितानाम्) उत्तम प्रकार से सींचने वाले (मरुताम्) मनुष्यों की (स्तोमैः) प्रशंसाओं से (नूनम्) निश्चय से (उत्तिष्ठ) ऊपर पहुंचिए ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिए कि सृष्टि के क्रम को जानकर सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त हों ॥५॥

अब अग्निविद्या के उपदेश को कहते हैं ॥

युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वान् कारीगरो आपलोग (रथे) वाहन में (अरुषीः) रक्त-गुणों से विशिष्ट घोड़ियों के सदृश ज्वालाओं को (युङ्ग्ध्वम्) युक्त कीजिये (रथेषु) रथों में (रोहितः) लाल गुणवाले पदार्थों को (युङ्ग्ध्वम्) युक्त कीजिये और (धुरि) अग्रभाग में (वोळ्हवे) प्राप्त करने के लिये (अजिरा) जाने वाले (हरी) धारण और आकर्षण को तथा (धुरि) अग्रभाग में (वोळ्हवे) स्थानान्तर में प्राप्त होने के लिये (वहिष्ठा) अत्यन्त पहुंचाने वाले (हि) निश्चय अग्नि और पवन को (युङ्ग्ध्वम्) युक्त कीजिये ॥६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अग्नि आदि पदार्थों को वाहन आदि के चलाने के लिये निरन्तर युक्त करें ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत ॥७॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो जो (वाजी) वेगवान् (इह) इस में (अरुषः) मर्मस्थल के (तुविष्वणिः) बल का सेवी (दर्शतः) देखने योग्य (धायि) धारण किया जाता है (स्यः) वह (यामेषु) यम आदि से युक्त उत्तम व्यवहारों वा प्रहरों में (वः) आपलोगों को (चिरम्) बहुत कालपर्य्यन्त (मा) मत (स्म) ही (करत्) करे अर्थात् न निषेध करे (तम्, उत) उसी को (रथेषु) रथों में (प्र, चोदत) प्रेरित करो ॥७॥

भावार्थः - जो अग्निविद्या को धारण करते हैं उनका सब समय में सत्कार करो ॥७॥

फिर वायुगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥८॥

पदार्थः—(यस्मिन्) जिस में (सुरणानि) सुन्दर रमण करने योग्य पदार्थ हैं और वीर (आ) सब प्रकार से (तस्थौ) स्थिर है तथा जिस में (मरुत्सु) पवनों में सुन्दर पदार्थों को (बिभ्रती) धारण करते हुए (सचा) सम्बन्ध रखने वाले (रोदसी) पृथिवी और सूर्य्य वर्त्तमान हैं उस (मारुतम्) मनुष्य और वायु सम्बन्धी (श्रवस्युम्) अपनी श्रवण की इच्छा करने वाले की और (रथम्) विमान आदि वाहन की (नु) शीघ्र (वयम्) हम लोग (आ, हुवामहे) स्पर्द्धा करें ॥८॥

भावार्थः—जैसे पवन भूमि आदि को धारण करते हैं वैसे ही विद्वान् जन सब मनुष्यों को धारण करें ॥८॥

फिर विद्वानों के उपदेश विषय को कहते हैं ॥

तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यस्मिन्) जिस कुल में (सुजाता) उत्तम प्रकार प्रसिद्ध (सुभगा) सौभाग्य से युक्त (सचा) सम्बद्ध (मीळ्हुषी) सेचन करने वाली (मरुत्सु) मनुष्यों में (महीयते) सत्कार किई जाती और जिस को सेचन करने वाली प्राप्त होती है (तम्) उस (पनस्युम्) अपनी स्तुति की इच्छा करते हुए को (आ, हुवे) बुलाता हूं उसको (वः) आप लोगों के (रथेशुभम्) रथ के द्वारा कहते हुए (त्वेषम्) प्रकाशमान (शर्धम्) बलयुक्त को पुकारता हूं ॥९॥

भावार्थः जिस कुल में किया ब्रह्मचर्य्य जिन्होंने ऐसे स्त्री और पुरुष वर्त्तमान हैं उसी कुल को भाग्यशाली जानना चाहिये ॥९॥

इस सूक्त में विद्वान् तथा वायु के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में छप्पनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य सप्तपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । ४ । ५ जगती । २ । ६ विराड्जगती । ३ निचृज्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः । ७ विराट् त्रिष्टुप् । ८ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले सत्तावनवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में रुद्रगुणों को कहते हैं ॥

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥१॥

पदार्थः— हे मनुष्यो जैसे (हिरण्यरथाः) सुवर्ण रथों में जिन के अथवा तेज के सदृश रथ जिन के वे (सजोषसः) समान प्रीति सेवने और (इन्द्रवन्तः) बहुत ऐश्वर्य्य रखने और (रुद्रासः) दुष्टों को रुलाने वाले (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिए (आ) सब ओर (गन्तन) प्राप्त होवें और जो (इयम्) यह (अस्मत्) हम लोगों के समीप से (मतिः) बुद्धि है वह (वः) आप लोगों की (प्रति, हर्यते) कामना करती है और (तृष्णजे) तृष्णायुक्त (उदन्यवे) जल की इच्छा करने वाले के लिये (उत्साः) कूप (न) जैसे वैसे जो (दिवः) कामनाओं की कामना करते हैं वे हम लोगों से निरन्तर सत्कार करने योग्य हैं ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे पिपासा से व्याकुल के लिए जल शान्तिकारक होता है वैसे विद्वान् जन जानने की इच्छा करनेवालों के लिये शान्ति के देनेवाले होते हैं ॥१॥

अब मरुद् गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥२॥

पदार्थः—हे (पृश्निमातरः) अन्तरिक्ष माता के सदृश जिन का ऐसे (मरुतः) उत्तम प्रकार शिक्षित जनो आपलोग (वाशीमन्तः) उत्तम वाणी जिन की वा जो (ऋष्टिमन्तः) ज्ञानवाले (मनीषिणः) वा मन की इच्छा करनेवाले (सुधन्वानः) सुन्दर धनुष् जिनका (इषुमन्तः) वा वाणोंवाले और (निषङ्गिणः) अच्छे तरवार आदि पदार्थ जिन के वा जो (स्वश्वाः) उत्तम घोड़ों से युक्त (स्वायुधाः) सुन्दर आयुधों वाले वा (सुरथाः) सुन्दर रथ जिन के ऐसे (स्थ) होओ और (शुभम्) कल्याणकारक व्यवहार वा संग्राम को (याथना) प्राप्त होओ ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिए कि विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों को ग्रहण करके सदा ही विजय से युक्त हों ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

धूनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥३॥

पदार्थः हे (उग्राः) तेजस्वियो (पृश्निमातरः) जिन की माता के सदृश अन्तरिक्ष उन पवनों के सदृश वेग से युक्त (यत्) जो आप लोग (द्याम्) विजुली और (पर्वतान्) मेघों को (धूनुथ) कंपाइये वह (दाशुषे) दाताजन के लिये (वसु) द्रव्य को कंपित कीजिये जो (वः) आप लोगों को (वना) जङ्गल (जिहते) प्राप्त होते हैं उन को (यामनः) जानेवाले आप लोग (भिया) भय से (नि, कोपयथ) निरन्तर कंपाइये और जैसे पवन (पृथिवीम्) पृथिवी को युक्त होते हैं वैसे (शुभे) जल के लिये (पृषतीः) सेचन करने वाली जल की धाराओं को (अयुग्ध्वम्) युक्त कीजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे पवन पृथिवी, मेघ और वन आदिकों को कंपाते हैं और जैसे शत्रुजन शत्रुओं को क्रुद्ध करते हैं वैसे ही विद्वान् जन पदार्थों को मथकर विजुली आदि को कंपाते हैं और कार्य्यों में युक्त करते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमाइव सुसदृशः सुपेशसः ।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो जो (यमाइव) न्यायाधीशों के सदृश (वातत्विषः) वायु की कान्ति के समान कान्ति जिन की ऐसे (वर्षनिर्णिजः) वर्ष का निर्णय करने वाले (सुसदृशः) उत्तम प्रकार तुल्य गुण कर्म और स्वभाव युक्त (सुपेशसः) उत्तम तुल्य रूप वा सुवर्ण जिनका वे (पिशङ्गाश्वाः) सब ओर से पीले वर्ण के घोड़ों वाले (अरेपसः) अपराध से रहित (अरुणाश्वाः) रक्त वर्ण के घोड़ों वाले (प्रत्वक्षसः) अत्यन्त सूक्ष्मकरने वाले (महिना) महिमा से (द्यौरिव) सूर्य्य के सदृश (उरवः) बहुत (मरुतः) मनुष्य होवें उनका सत्कार करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य सूर्य्य के सदृश आत्मा से प्रकाशित और न्यायाधीशों के सदृश व्यवहार करनेवाले विमान आदि वाहन से युक्त हैं उनका निरन्तर सत्कार करो ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं॥

पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसंदृशो अनवभ्रराधसः।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (पुरुद्रप्साः) बहुत मोहवाले (अञ्जिमन्तः) अच्छी कामना विद्यमान जिन की ऐसे वा (सुदानवः) उत्तम दानों के करने और (त्वेषसन्दृशः) प्रकाशित रूप को देखनेवाले (अनवभ्रराधसः) नहीं विद्यमान धन का नाश जिन के ऐसे और (जनुषा) जन्म से (सुजातासः) उत्तम प्रकार धर्मसंयुक्त व्यवहार से प्रसिद्ध (रुक्मवक्षसः) सुवर्ण आदि से जड़े हुए आभूषण वक्षः स्थलों में जिन के वे (दिवः) कामना करनेवाले (अर्काः) सत्कार करने योग्य जन (अमृतम्) नाश रहित (नाम) नाम का (भेजिरे) सेवन करें उन का सब प्रकार सत्कार करिये॥५॥

भावार्थः—जो जन उत्तम गुण कर्म्म और स्वभाव को सब प्रकार ग्रहण करते हैं वे सब प्रकार से सुखी होते हैं॥५॥

फिर मरुद्विषय में यान चलाने के फल को कहते हैं॥

ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम्।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे॥६॥

पदार्थः—हे (ऋष्टयः) ज्ञानवान् (मरुतः) मनुष्यो (वः) आप लोगों के (अंसयोः) भुजारूप दण्डों के मूलों में जो (सहः) सहन और (ओजः) पराक्रम तथा (बाह्वोः) बाहुसंबन्धी (वः) आप लोगों का (बलम्) बल (हितम्) स्थित (शीर्षसु) मस्तकों (अधि) पर (नृम्णा) और मनुष्य रमते हैं जिन में ऐसे (आयुधा) शस्त्र और अस्त्र (रथेषु) संग्रामार्थ वाहनों में वा (वः) आप लोगों के (विश्वा, सम्पूर्ण (श्रीः) धन वा शोभा (अधि, पिपिशे) अधिक आश्रय की जाती और (वः) आप लोगों के (तनूषु) शरीरों में धन वा शोभा अधिक आश्रयण की जाती उन का आप लोग संग्रहण कीजिए॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य शरीर और आत्मा से बलिष्ठ और आयुधों की विद्या में निपुण होकर उत्तम वाहन आदि सामग्रियों से युक्त हुए पुरुषार्थ करते हैं वे धनवान् होते हैं॥६॥

फिर मरुद्विषय को कहते हैं॥

गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा नः।
प्रशस्तिं नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य॥७॥

पदार्थः—हे (रुद्रियासः) साधन करने वालों में हुए (मरुतः) मनुष्यो आप लोग (नः) हम लोगों के लिये (गोमत्) बहुत गौवें विद्यमान जिसमें वा (अश्वावत्) बहुत घोड़ों से युक्त (रथवत्) वा प्रशंसित वाहनों के सहित (चन्द्रवत्) वा सुवर्ण आदि से युक्त वा आनन्द आदि के देने वाले (सुवीरम्) उत्तम वीर निमित्तक (राधः) धन को (ददा) दीजिये और (दैव्यस्य) विद्वानों से किये गए (अवसः) रक्षण आदि के संबन्ध में (नः) हम लोगों की (प्रशस्तिम्) प्रशंसा को (कृणुत) करिये जिस से (वः) आप लोगों के समीप से एक एक मैं सुख का (भक्षीय) सेवन करूं ॥७॥

भावार्थः—जब मनुष्य सत्पुरुषों का सङ्ग करें तब इस लोक में सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य और परलोक में धर्म्म के अनुष्ठान करने की याचना करें ॥७॥

फिर मरुद् विषयक विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतंज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८॥

पदार्थः—(हये) हे (नरः) नायक (मरुतः) मरणशील जनो (तुवीमघासः) बहुतों धनों से युक्त (अमृताः) अपने स्वरूप से मृत्यु रहित (ऋतज्ञाः) यथार्थ को जानने वाले (सत्यश्रुतः) सत्य को सुने हुए वा सत्य को सुनने वाले (युवानः) युवावस्था को प्राप्त (बृहद्गिरयः) बहुत प्रशंसा वाले (बृहत्, उक्षमाणाः) बहुत सेवन किये और (कवयः) विद्वान् होते हुए आप लोग (नः) हम लोगों को (मृळता) सुखी करो ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य यथार्थ वक्ता विद्वानों का सेवन करते हैं वे सत्य विद्या को प्राप्त होकर सदा ही प्रसन्न होते हैं ॥८॥

इस सूक्त में रुद्र और वायु के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में सत्तावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्याष्टपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । मरुतो देवता । १ । ३ । ४ । ६ । ८ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ५ त्रिष्टुप् छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ७ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले अट्ठावनवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में वायु गुणों को कहते हैं ॥

तमु॒ नू॒नं तवि॑षीमन्तमेषां स्तु॒षे ग॒णं मारु॑तं॒ नव्य॑सीनाम् ।
य आ॒श्व॑श्वा॒ अम॑व॒द्वह॑न्त उ॒तेशि॑रे अ॒मृत॑स्य स्व॒राजः॑ ॥१॥

पदार्थः—(अमृतस्य) नाश से रहित कारण (स्वराजः) जो कि आप प्रकाशवान् उसके संबन्ध में (आश्वश्वाः) शीघ्र चलने वाले अग्नि आदि अश्व जिनके वे (ये) जो (अमवत्) गृहों को जैसे प्राप्त हों वैसे (वहन्ते) प्राप्त होते हैं (उत) और (नव्यसीनाम्) अत्यन्त नवीन प्रजाओं के (मारुतम्) पवन सम्बन्धी (गणम्) समूह की (स्तुषे) स्तुति करने के लिये (ईशिरे) ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं (एषाम्) इन वीरों के (उ) तर्क के साथ (तविषीमन्तम्) अच्छी सेना जिसकी (तम्,) उसी को (नूनम्) निश्चय प्राप्त होते हैं वे विजयी होते हैं ॥१॥

भावार्थः—जो कार्य्य और कारण स्वरूप संसार के गुण कर्म्म और स्वभावों को जानते हैं वे गृह के सदृश सब को सुखी कर सकते हैं ॥१॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वेषं॑ ग॒णं त॒वसं॒ खादि॑हस्तं॒ धुनि॑व्रतं मा॒यिनं॒ दाति॑वारम् ।
म॒यो॒भुवो॒ ये अमि॑ता महि॒त्वा वन्द॑स्व विप्र तुवि॒राध॑सो॒ नॄन् ॥२॥

पदार्थः—हे (विप्र) बुद्धिमान् आप (त्वेषम्) प्रकाशित (तवसम्) बलवान् (खादिहस्तम्) खाद्य हाथों में जिस के (धुनिव्रतम्) कंपन के सदृश स्वभाव जिसका वा (मायिनम्) उत्तम बुद्धि जिसकी उस (दातिवारम्) दान के स्वीकार करने वाले वीरों के (गणम्) गणन करने योग्य की (वन्दस्व) वन्दना करिये और (ये) जो (महित्वा) महत्त्व को प्राप्त होकर (अमिताः) अतुल शुभ गुण वाले (मयोभुवः) सुख को कराने वाले हों उन (तुविराधसः) बहुत धन वाले (नॄन्) मनुष्यों की वन्दना कीजिये ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि योग्य धार्मिक विद्वानों का ही सत्कार करें जिस से सुख बढ़े ॥२॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

आ वो॑ यन्तूदवा॒हासो॑ अ॒द्य वृ॒ष्टिं ये विश्वे॑ म॒रुतो॑ जु॒नन्ति॑ ।
अ॒यं यो अ॒ग्निर्म॑रुतः॒ समि॑द्ध ए॒तं जु॑षध्वं कवयो युवानः ॥३॥

पदार्थः—हे (कवयः) बुद्धिमान् (युवानः) युवावस्था को प्राप्त हुए (मरुतः) मनुष्यो (ये) जो (विश्वे) सम्पूर्ण (उदवाहासः) जल को जो धारण करते हैं उन के सदृश (मरुतः) पवन (वृष्टिम्) वृष्टि की (जुनन्ति) प्रेरणा करते हैं वे (अद्य) इस समय (वः) आप लोगों को (आ, यन्तु) प्राप्त हों और (यः) जो (अयम्) यह (समिद्धः) प्रदीप्त (अग्निः) अग्नि है (एतम्) इस को आप लोग (जुषध्वम्) सेवन करो ॥३॥

भावार्थः—जो वृष्टि करने वाले वायु और अग्नि आदि को विशेष करके जानते हैं वे इन को वृष्टि करने के लिये प्रेरणा करने को समर्थ होते हैं ॥३॥

फिर मरुद् के गुणों को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥४॥

पदार्थः- हे (यजत्राः) मिलने वाले (मरुतः) उत्तम प्रकार शिक्षित मनुष्यो जो (युष्मत्) आप लोगों के समीप (मुष्टिहा) मुष्टि से मारने वाला (बाहुजूतः) बाहुओं से बलवान् वा (युष्मत्) आप लोगों के समीप (सदश्वः) अच्छे घोड़े जिस के ऐसा (सुवीरः) सुन्दर वीरजन (एति) प्राप्त होता है उस को (जनाय) मनुष्य के लिये (इर्यम्) प्रेरणा करने वाले (विभ्वतष्टम्) बुद्धिमानों के मध्य में तीव्र बुद्धि वाले (राजानम्) न्याय और विनय से प्रकाशमान राजा को (यूयम्) आप (जनयथा) प्रकट कीजिये ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य सम्पूर्ण उपायों से धर्मयुक्त गुण कर्म्म और स्वभाव वाले राजा और उसी प्रकार के सहायों को उत्पन्न करें ॥४॥

अब विद्वानों के उपदेश गुणों को कहते हैं ॥

अरा इवेद चरमा अहेव प्रप्र जायन्ते अकवा महोभिः ।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वानो जो (मरुतः) पवन (अराइव) चक्रों के अवयवों के सदृश (अचरमाः) नहीं अन्त्यावयव जिनके वे (अहेव) दिनों के सदृश (अकवाः) नहीं शब्द करते हुए (पृश्नेः) अन्तरिक्ष के (पुत्राः) पुत्र (महोभिः इव) बड़ों के ही साथ (प्रप्र, जायन्ते) अत्यन्त उत्पन्न होते और (सम्, मिमिक्षुः) अच्छे प्रकार सिञ्चन करते हैं वैसे (उपमासः) प्रत्येक के तुल्य (रभिष्ठाः) अत्यन्त आरम्भ करने वाले आप लोग (स्वया) अपनी (मत्या) बुद्धि से अत्यन्त उत्पन्न होओ ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे वाहन के चक्रों के अग और दिन क्रम से वर्त्तमान हैं और जैसे पवन जा, आकर वर्षाते हैं वैसे ही मनुष्यों को चाहिये कि क्रम से वर्त्ताव करके बुद्धि से सुख की वृष्टि सब के सुख के लिये करें ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यत् प्रायांसिष्ट पृषंतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः ।
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यवोस्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥६॥

पदार्थः—हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो आप लोग (पृषतीभिः) वेग आदिकों और (अश्वैः) शीघ्र चलने वाले (रथेभिः) विमान आदि वाहनों से (यत्) जो (वीळुपविभिः) दृढ़ चक्रों से (क्षोदन्ते) वृष्टि करते हैं और जैसे (आपः) जल (वनानि) किरणों को (रिणते) प्राप्त होते हैं वैसे ही (उस्रियः) किरणों में उत्पन्न (वृषभः) वर्षाने वाला मेघ (द्यौः) कामना करता हुआ किरणों का (अव, क्रन्दतु) आह्वान करे और इष्ट को (प्र, अयासिष्ट) अत्यन्त प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो आप लोग वायु के सदृश शीघ्र गमन और जल के सदृश तृप्ति करने रूप कार्य को करें तो संपूर्ण सुखों को प्राप्त हों ॥६॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।
वातान्ह्यश्वान्धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (एषाम्) इन के मध्य में (पृथिवी) भूमि (यामन्) प्रहर में (गर्भम्) गर्भ को (भर्त्तेव) स्वामी के सदृश (प्रथिष्ट) प्रकट करती है वैसे आप लोग (स्वम्) सुख और (शवः) गमन को (इत्) ही (धुरि) वाहन के मध्य में (धुः) धारण करते और (अश्वान्) शीघ्र चलने वाले (वातान्) पवनों को (आयुयुज्रे) सब ओर से युक्त करते और (चित्) भी (रुद्रियासः) दुष्टों के रुलाने वालों में चतुर हुए (स्वेदम्) पसीने के सदृश (हि) निश्चय (वर्षम्) वृष्टि को (चक्रिरे) करते हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो मनुष्य पृथिवी के सदृश क्षमाशील और विस्तीर्ण विद्यावाले वाहनों में पवनरूप घोड़ों को संयुक्त करके और वृष्टि के कारणों का निर्माण करके कार्यों को सिद्ध करते हैं वे सम्पूर्ण सुख कर सकते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८॥

पदार्थः—(हये) हे (नरः) नायक (मरुतः) जनो (तुवीमघासः) बहुत धनवान् (अमृताः) मोक्ष को प्राप्त हुए (सत्यश्रुतः) सत्य को यथार्थ सुनने और (ऋतज्ञाः) परमात्मा वा प्रकृति को जानने वाले (युवानः) प्राप्त हुई अपने शरीर की यौवन अवस्था जिन को (बृहद्गिरयः) जिन के बड़े मेघों के सदृश उपकार करने वाले गुण वे (बृहत्) महत् ब्रह्म का (उक्षमाणाः) सेवन करते हुए (कवयः) पूर्ण-विद्या वाले आप लोग (नः) हम लोगों को (मृळत) सुखी करिये ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य सम्पूर्ण सत्य विद्याओं को प्राप्त होकर यथार्थ-वक्ता, परमात्मा और उस की आज्ञा का सेवन करते हुए महाशय पूर्ण शरीर और आत्मा के वल से युक्त अध्यापन और उपदेश से हम लोगों की वृद्धि करते हैं वे ही सर्वदा हम लोगों से सत्कार करने योग्य हैं ॥८॥

इस सूक्त में विद्वान् तथा वायु के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये

यह पञ्चम मण्डल में अट्ठावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्यैकोनषष्टितमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । ४ विराड्जगती । २ । ३ । ६ निचृज्जगती छन्दः । ५ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ७ स्वराट्त्रिष्टुप् । ८ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले उनसठवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में विद्वद्गुणों को कहते हैं ॥

प्र वः स्पळक्रन्त्सुविताय दावनेऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतम्भरे ।
उक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वानो जो (सुविताय) ऐश्वर्य्य से युक्त और (दावने) देनेवाले के लिए (दिवे) कामना करते हुए के लिए (पृथिव्यै) अन्तरिक्ष वा भूमि के लिए तथा (वः) आप लोगों के लिए (भरे) धारण करते हैं जिस में उस व्यवहार में (ऋतम्) सत्य को (प्र, अक्रन्) अच्छे प्रकार करते हैं और (अश्वान्) वेग से युक्त अग्नि आदि को (उक्षन्ते) सेवते हैं तथा (तरुषन्ते) शीघ्र प्लवित होते हैं तथा (रजः)

लोक के (अनु) पश्चात् (स्वम्) अपनी (भानुम्) कान्ति को (अर्णवैः) समुद्रों वा नदियों से (प्र, आ, अथयन्ते) सब प्रकार शिथिल करते हैं उन का आप लोग सत्कार करिये और हे राजन् (स्पट्) स्पर्श करनेवाले आप इनका निरन्तर (अर्चा) सत्कार कीजिये ॥१॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो मनुष्य शिल्पविद्या से विमानादि को रच के अन्तरिक्षादि मार्गों में जा आकर सब के सुख के लिए ऐश्वर्य का आश्रयण करते हैं वे संसार के विभूषक होते हैं ॥१॥

अब वायुगुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अमा॑देषां भि॒यसा॒ भूमि॑रेजति॒ नौर्न पू॒र्णा क्ष॑रति॒ व्यथि॒र्य॒ती ।
दू॒रे॒दृशो॒ ये चि॒तय॑न्त॒ एम॑भिर॒न्तर्म॒हे वि॒दथे॒ येति॑रे॒ नरः ॥२॥

पदार्थः—हे (नरः) नायक मनुष्यो जो (भूमिः) पृथिवी (पूर्णा) पूर्ण (नौः) बड़ी नौका के (न) सदृश (भियसा) भय से (व्यथिः) पीड़ित होने वाली (यती) जाती हुई स्त्री के तुल्य (एजति) कांपती है और (एषाम्) इन वायु और अग्नि आदि के (अमात्) गृह से (क्षरति) वर्षाती है उसको (ये) जो (एमभिः) प्राप्त कराने वाले गुणों से इसके (अन्तः) मध्य में (दूरेदृशः) जो दूर देखे जाते वा दूर देखनेवाले (महे) बड़े के लिए (चितयन्ते) उत्तमता से समझाते हैं और (विदथे) संग्राम वा विज्ञान युक्त व्यवहार में (येतिरे) प्रयत्न करते हैं वे ही सब को सुखी करने के योग्य होते हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे शूरवीर जनों के समीप से डरने वाले जन भागते हैं वैसे ही वायु और सूर्य से भूमि कांपती और चलती है और जैसे पदार्थों से पूर्ण नौका अग्नि आदि के योग से समुद्र के पार को शीघ्र जाती है वैसे विद्या के पार मनुष्य जावें और जैसे वीर संग्राम में प्रयत्न करते हैं वैसे ही अन्य मनुष्यों को प्रयत्न करना चाहिये ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

गवा॑मिव श्रि॒यसे॒ शृङ्ग॑मुत्त॒मं सूर्यो॒ न चक्षू॒ रज॑सो वि॒सर्ज॑ने ।
अत्या॑इव सु॒भ्व१॒॑श्चार॑वः स्थन॒ मर्या॑इव श्रि॒यसे॒ चेतथा नरः ॥३॥

पदार्थः—हे (सुभ्वः) उत्तम प्रकार होनेवाले (चारवः) सुन्दर स्वभाव युक्त वा जानेवाले (नरः) नायक मनुष्यो (शृङ्गम्) ऊपर के (उत्तमम्) उत्तम भाग को

(सूर्य्यः) सूर्य्य के (न) सदृश (गवामिव) किरणों के सदृश (श्रियसे) सेवने को (रजसः) लोक के (विसर्जने) त्याग में (चक्षुः) प्रकाश करने वाले के सदृश आपलोग (स्थन) हूजिये और (अत्याइव) घोड़े के सदृश (मर्य्याइव) वा विद्वानों के सदृश आश्रयण करने को आपलोग (चेतथा) उत्तम प्रकार जानिये वा जनाइये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य किरणों, सूर्य्य, घोड़े और मनुष्यों के सदृश प्रकाश, दान, वेग और विवेक को सेवते हैं वे ही उत्तम सुख को प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर विद्वद्विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

को वो महान्ति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या ।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुवितायं दावने ॥४॥

पदार्थः—हे (मरुतः) विचार करने वाले जनो (महताम्) बड़े (वः) आप लोगों के वा आप लोगों को (महान्ति) बड़े विज्ञान आदिकों को (कः) कौन (उत्, अश्नवत्) उत्तमता से प्राप्त होता है (कः) कौन (काव्या) बुद्धिमानों के कामों को उत्तमता से प्राप्त होता है (कः) कौन (ह) निश्चय से (पौंस्या) पुरुषों के इन बलों को प्राप्त होता है जिस से (यूयम्) आप लोग (भूमिम्) पृथिवी को (किरणम्) दीप्ति के (न) समान (रेजथ) कंपावें और (यत्) जिस को (ह) निश्चय (सुविताय) ऐश्वर्य और (दावने) देने वाले के लिये (प्र, भरध्वे) धारण कीजिये उसी को सब लोग प्राप्त होवें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में प्रश्न और उत्तर हैं—कौन यथार्थवक्ता जनों के समीप से बड़े विज्ञानों को प्राप्त होता है और कौन आप्तजनों के कर्म्मों को और कौन वीरों के बलों को प्राप्त होता है, इन प्रश्नों का उत्तर यह है कि पवित्र अन्तःकरणयुक्त और धर्म्म के सुनने की इच्छा करने वाले धर्मिष्ठ पुरुषार्थी और ब्रह्मचारी हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अश्वाइवेदरुषासः सबन्धवः शूराइव प्रयुधः प्रोत युयुधुः ।
मर्याइव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षुः प्र मिनन्ति वृष्टिभिः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो (सबन्धवः) तुल्यबन्धु जिन के ऐसे (नरः) नायक आप लोग (अरुषासः) रक्त आदि गुणों से विशिष्ट (अश्वाइव, इत्) घोड़ों के सदृश ही शीघ्र चलिए (उत) और (प्रयुधः) अत्यन्त युद्ध करने वाले (शूराइव) शूरवीरों के

सदृश (प्र, युयुधुः) अत्यन्त युद्ध करिये तथा (सुवृधः) उत्तम प्रकार बढ़ने वाले (मर्य्या-इव) मनुष्यों के सदृश (वावृधुः) बढ़िये और पवन (सूर्यस्य) सूर्य्य देव के (चक्षुः) देखता जिससे उसको (वृष्टिभिः) वर्षाओं से जैसे वैसे शत्रुओं की सेनाओं को (प्र, मिनन्ति) अत्यन्त नाश करते हैं वे सत्कार करने योग्य हैं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो घोड़ों के सदृश बलिष्ठ, शूरवीरों के सदृश भयरहित मनुष्यों के सदृश विचारशील और सूर्य्य के सदृश अविद्यारूपी अन्धकार के निवारक हैं वे सब के कल्याण के लिये होते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ते अ॑ज्येष्ठा अक॑निष्ठास उ॒द्भिदोऽम॑ध्यमासो॒ मह॑सा॒ वि वा॑वृधुः । सुजा-तासो॑ ज॒नुषा॒ पृश्नि॑मातरो॒ दि॒वो मर्य्या॒ आ नो॒ अच्छा॑ जिगातन ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वानो जो (अज्येष्ठाः) नहीं विद्यमान ज्येष्ठ जिन के वा (अकनिष्ठासः) नहीं विद्यमान छोटा जिन के वा (उद्भिदः) पृथिवी को फोड़कर उगनेवाले तथा (अमध्यमासः) नहीं विद्यमान मध्यम जिन के वे (जनुषा) जन्म से (सुजातासः) उत्तम व्यवहारों में प्रसिद्ध वा (पृश्निमातरः) अन्तरिक्ष माता जिनका वे और (दिवः) कामना करते हुए (मर्य्याः) मनुष्य (महसा) बड़े बल आदि से (वि, वावृधुः) विशेष बढ़ते हैं (ते) वे (नः) हमलोगों की (अच्छा) उत्तम प्रकार (आ, जिगातन) सब ओर से प्रशंसा करते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्यों में यथायोग्य उत्तम शिक्षा हो तो कनिष्ठ, मध्यम और उत्तम जन विचारशील होकर यथायोग्य जगत् की उन्नति कर सकें ॥६॥

फिर शिक्षाविषय को कहते हैं ॥

वयो॒ न ये श्रेणीः॑ प॒प्तुरोज॒सान्ता॑न्दि॒वो बृ॑ह॒तः सानु॑न॒स्परि॑ । अश्वा॑स एषामु॒भये॒ यथा॑ वि॒दुः प्र पर्व॑तस्य नभ॒नूँर॑चुच्यवुः ॥७॥

पदार्थः—(ये) जो (ओजसा) पराक्रम से (वयः) पक्षियों के (न) सदृश (श्रेणीः) पङ्क्तियों को (पप्तुः) प्राप्त होते और (बृहतः) बड़े (सानुनः) शिखर के समान (अन्तान्) समीप में वर्त्तमान (दिवः) व्यवहार करनेवालों को (परि) सब ओर से प्राप्त होते हैं (एषाम्) इनके जो (उभये) दो प्रकारके (अश्वासः) शीघ्र चलनेवाले पदार्थ हैं उनको (यथा) जिस प्रकार से (विदुः) जानते हैं और (पर्वतस्य)

मेघ के (नभनून्) समूहों को (प्र, अचुच्यवुः) अत्यन्त वर्षावें वे संसार के आधार होते हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं० -जैसे पक्षी पंक्तिवद्ध हुए शीघ्र जाते हैं वैसे ही उत्तम प्रकार शिक्षायुक्त नौकर और घोड़े आदि वाहन तीनों मार्गों में शीघ्र जाते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम् ।

आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥८॥

पदार्थः—हे (ऋषे) विद्या के देनेवाले जैसे (अदितिः) माता वा (द्यौः) प्रकाश के सदृश (वीतये) विज्ञान आदि की प्राप्ति के लिये (नः) हम लोगों का (मिमातु) आदर करे वैसे आप आदर करिये जैसे (दानुचित्राः) अद्भुत दान जिन में ऐसी (उषसः) प्रातर्वेलायें व्यवहारों को सिद्ध कराती हैं वा जैसे (एते, ये (रुद्रस्य) अन्यायकारियों को रुलाने वाले (दिव्यम्) कामना में श्रेष्ठ (कोशम्) धन के स्थान को (आ, अचुच्यवुः) प्राप्त होवें वैसे (गृणानाः) स्तुति करते हुए (मरुतः) मनुष्य (सम्) उत्तम प्रकार (यतन्ताम्) प्रयत्न करें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० —जो जन विजुली. प्रातःकाल और ऋषि के सदृश धन के कोश को इकट्ठा करते हैं वे प्रतिष्ठित होते हैं ॥८॥

इस सूक्त में पवन और विजुली के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में उनसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य षष्टितमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । मरुतो वाग्निश्च देवता । १ । ३ । ४ । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । २ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ७ । ८ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को क्या साधना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

ईळे अग्निं स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो वि चयत्कृतं नः ।

रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥१॥

पदार्थः- जैसे (प्रसत्तः) प्रसन्न (इह) इस संसार में मैं (नमोभिः) सत्कारों

से हूं वैसे सत्कारों से (स्ववसम्) उत्तम रक्षण जिससे उस (अग्निम्) बिजुली की (ईळे) अधिक इच्छा करता और (कृतम्) किये काम को (वि, चयत्) विवेक करता हूं और जो (मरुताम्) मनुष्यों के समूह (वाजयद्भिः) वेगवाले (रथैरिव) वाहनों के सदृश पदार्थों से (नः) हम लोगों को पहुंचाते हैं उन को मैं (प्र, भरे) धारण करता हूं और (प्रदक्षिणित्) प्रदक्षिणा को प्राप्त कराने वाला मैं मनुष्यों की (स्तोमम्) प्रशंसा को (ऋध्याम्) बढ़ाऊं ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—विद्वान् जन को चाहिये कि विद्वानों के संग से अग्नि आदि की विद्या को प्रकट करा के प्रसन्नता संपादित करे ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु ।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद्रेजते पर्वतश्चित् ॥२॥

पदार्थः—(ये) जो (रुद्राः) प्राण आदि और (मरुतः) मनुष्य (श्रुतासु) विद्याओं में (पृषतीषु) सेचन करने वालियों में (सुखेषु) सुखों में और (रथेषु) विमानादि वाहनों में (आ, तस्थुः) स्थित होवें (चित्) और (वना) किरण (उग्राः) तीव्र स्वभाव वालों के सदृश (नि, जिहते) निरन्तर जाते हैं और (वः) आप लोगों के (भिया) भय से (पृथिवी) भूमि (चित्) भी (रेजते) कम्पित होती है (पर्वतः) मेघ के (चित्) समान पदार्थ कम्पित होता है उनका हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! उत्तम विद्याओं और उत्तम वाहनों पर स्थित होकर शीघ्र जाने के लिये समर्थ हूजिये ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः ।
यत्क्रीळथ मरुत ऋष्टिमन्त आपइव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥३॥

पदार्थः—हे (ऋष्टिमन्तः) अच्छे विज्ञान वाले (मरुतः) मनुष्यो (यत्) जहां तुम (क्रीळथ) क्रीड़ा करते हो (आपइव) जलों के सदृश (सध्र्यञ्चः) एक साथ गमन करते हुए (धवध्वे) कंपाओ और (वः) आप लोगों के (स्वने) शब्द में (पर्वतः) मेघ के (चित्) सदृश (महि) बड़ा (वृद्धः) वृद्ध (बिभाय) डरता है (दिवः) प्रकाश

से (चित्) भी जैसे वैसे (सानु) शिखर के तुल्य (रेजत) कम्पित होता है वहां अन्वेषण करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य विद्या के व्यवहार की सिद्धि के लिये क्रीड़ा करते हैं तथा मित्र होकर कार्य की सिद्धि करते हैं वे सब प्रकार से आनन्दित होते हैं ॥३॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

वराइवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे ।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥४॥

पदार्थः—जो (श्रेयांसः) अत्यन्त कल्याण की इच्छा करते हुए (तवसः) बलवान् गतिवाले (रैवतासः) पशुओं में हुए मनुष्य (वराइव) श्रेष्ठों के तुल्य (इत्) ही (हिरण्यैः) सुवर्ण तेज आदिकों से और (स्वधाभिः) अन्न आदिकों से (तन्वः) शरीरों को (पिपिश्रे) स्थूल अवयव वाले करते हैं और (श्रिये) लक्ष्मी के लिये (रथेषु) वाहनों और (तनूषु) शरीरों में (सत्रा) सत्य (महांसि) बड़े काम (अभि, चक्रिरे) करते हैं वे भाग्यशाली होते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य के शरीर का आश्रय करके लक्ष्मी की इच्छा करते हैं वे दारिद्र्य का नाश करते हैं ॥४॥

फिर मनुष्यों को कैसे होना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (स्वपाः) श्रेष्ठ कर्म का अनुष्ठान करने वाला (युवा) युवावस्था युक्त और (रुद्रः) अन्यों का रुलाने वाला (पिता) पालक जन और (एषाम्) इन की (सुदुघा) उत्तम प्रकार मनोरथ की पूर्ण करने वाली (सुदिना) सुन्दर दिन जिस से वह (पृश्निः) अन्तरिक्ष के सदृश बुद्धि (मरुद्भ्यः) मनुष्यों के लिये, विद्यादि दान देती है वैसे (अज्येष्ठासः) जेठेपन से रहित (अकनिष्ठासः) कनिष्ठपन से रहित (एते) ये (भ्रातरः) बन्धु जन (सौभगाय) श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य होने के लिये (सम्, वावृधुः) बढ़ते हैं ॥५॥

भावार्थः - जो मनुष्य पूर्ण युवावस्था में विद्याओं को समाप्त कर और सुशीलता को स्वीकार कर बहुत ही उत्तम हुए उत्तम स्वभाव युक्त स्त्रियों का विवाह द्वारा स्वीकार कर के प्रयत्न करते हैं वे ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर आनन्दित होते हैं ॥५॥

फिर मनुष्यों को परस्पर कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्व१स्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम ॥६॥

पदार्थः - (सुभगासः) उत्तम ऐश्वर्य्य वाले और (रुद्राः) मध्यस्थ विद्वान् (मरुतः) मनुष्यो आपलोग (यत्) जिस (उत्तमे) उत्तम व्यवहार में (मध्यमे) मध्यस्थ व्यवहार में (वा) वा (अवमे) निकृष्ट व्यवहार में (यत्) जहां (वा) अथवा अन्यत्र निकृष्ट व्यवहार में (दिवि) शुद्ध व्यवहार में (स्थ) हूजिये वहां (अतः) इस कारण से (नः) हम लोगों को उत्तम व्यवहार में स्थापित कीजिये (उत, वा) और अथवा हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशित आत्मावाले (अस्य) इस के (वित्तात्) धन से और (हविषः) भोग करने योग्य से (यत्) जिस को (नु) निश्चय हम लोग (यजाम) प्रेरणा करें वहां आप भी प्रेरणा करिये ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ व्यवहारों में यथा-योग्य वर्त्ताव कर के उत्तम ऐश्वर्य्य वाले होते हैं उन का सब लोग सत्कार करें ॥६॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः ।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (अग्निः) अग्नि के सदृश (विश्ववेदसः) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से युक्त (दिवः) कामना करते हुए (रिशादसः) हिंसकों के नाश करने वाले (मन्दसानाः) आनन्द करते हुए (धुनयः) दुष्टों के कम्पाने वाले (मरुतः) विचारशील मनुष्य आप लोग (सुन्वते) यज्ञ करने और (यजमानाय) पदार्थों के मेल करने वाले जन के लिये (वामम्) प्रशंसा करने योग्य व्यवहार को (धत्त) धारण करो और (उत्तरात्) पीछे से (अधि) ऊपर के होने में (स्तुभिः) इच्छा वालों से प्रशंसा करने योग्य को (वहध्वे) प्राप्त हूजिये (ते, च) वे भी आप लोग सदा सब का उपकार करिये ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—वे ही महात्मा हैं जो सब के लिये सत्य का धारण करते हैं ॥७॥

अब विद्वानों की सेवा करना अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अग्ने॑ म॒रुद्भिः॑ शु॒भय॑द्भि॒र्ऋक्व॑भिः॒ सोमं॑ पिब मन्दसा॒नो ग॑ण॒श्रिभिः॑ ।
पा॒व॒केभि॑र्विश्वमि॒न्वेभि॑रा॒युभि॒र्वैश्वा॑नर प्र॒दिवा॑ के॒तुना॑ स॒जूः ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (गणश्रिभिः) समुदाय की लक्ष्मियों से (मन्दसानः) आनन्द करता हुआ (प्रदिवा) अत्यन्त प्रकाश वाली (केतुना) बुद्धि के साथ (सजूः) तुल्य प्रीति को सेवने वाले (वैश्वानर) सब में मुख्य आप (शुभयद्भिः) उत्तम आचरण करने वाले (ऋक्वभिः) सत्कार करने योग्य (पावकेभिः) पवित्र (विश्वमिन्वेभिः) सम्पूर्ण संसार के व्यवहार को प्राप्त कराते हुए (आयुभिः) जीवनों से (मरुद्भिः) मनुष्यों के साथ (सोमम्) बड़ी ओषधियों के रस का (पिब) पान करिये ॥८॥

भावार्थः—मनुष्यों की योग्यता है कि सदा यथार्थ वक्ता, विद्वानों के साथ मिलकर विद्या, अवस्था और वुद्धि को बढ़ाकर औषध के सदृश आहार और विहार को करके उत्तम आचरण सर्वदा करें ॥८॥

इस सूक्त में वायु, अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में साठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकोनविंशत्यृचस्यैकषष्टितमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । १—४ । ११—१६ मरुतः । ५—८ शशीयसी तरन्तमहिषी । ९ पुरुमीळ्हो वैददश्विः । १० तरन्तो वैददश्विः । १७—१९ रथवीतिर्दाल्भ्यो देवताः । १ । २ । ३ । ४ । ६ । ७ । ८ । १० । ११ । १२ । १३ । १४ । १५ । १६ । १७ । १८ । १९ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ५ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ९ सतोबृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब उन्नीस ऋचावाले इकसठवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में प्रश्नोत्तरों से मरुदादिकों के गुणों को कहते हैं ॥

के ष्ठा॑ नरः॒ श्रेष्ठ॑तमा॒ य एक॑एक आ॒यय॑ । प॒र॒मस्याः॑ परा॒वतः॑ ॥१॥

पदार्थः—हे (श्रेष्ठतमाः) अत्यन्त कल्याण करने वाले (नरः) नायक जनो (परमस्याः) अत्यन्त श्रेष्ठ के पार जानेवाले (के) कौन (स्था) ठहरें (ये) जो (परावतः) दूर से आकर उपदेश करते हैं और जिनके मध्य में (एकएकः) एकएक आप दूर देश से एक को (आयय) प्राप्त होवें ॥१॥

भावार्थः—कौन अत्यन्त श्रेष्ठ मनुष्य होते हैं जो सर्वदा अत्यन्त श्रेष्ठ कर्म्मों को करें ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

क्व१ वोऽश्वाः क्वा३ भीशवः कथं शेक कथा यय ।
पृष्ठे सदो नसोर्यमः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (वः) आप लोगों के (क्व) कहां (अश्वाः) शीघ्र चलने वाले घोड़े और (क्व) कहां (अभीशवः) अङ्गुलियां हैं उन को आप लोग (कथम्) किस प्रकार (शेक) शीघ्र पहुंचने वाले हूजिये और (कथा) किस प्रकार से (यय) जाइये और जैसे (नसोः) नासिकाओं के (पृष्ठे) पीछे के भाग में (सदः) छेदन करने योग्य वस्तु का (यमः) नियन्ता है वैसे आप लोग हूजिए ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० जब कोई विद्वानों को पूछे तब वे उत्तर दें और पक्षपात को छोड़कर न्यायाधीशों के सदृश होवें तब सम्पूर्ण बोध को प्राप्त होवें ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः । पुत्रकृथे न जनयः ॥३॥

पदार्थः—हे (नरः) नायक जनो (पुत्रकृथे) पुत्र करने में (जनयः) माता पिता (न) जैसे वैसे (एषाम्) इन के (जघने) कटि के नीचे के भाग के अवयवों को जो (चोदः) प्रेरणा करने वाला है और जो (सक्थानि) घुटनों को (वि, यमुः) नियम में रक्खें उन का आप लोग सत्कार करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे उत्पन्न करने वाले माता पिता सुन्दर नियम से सन्तानोत्पत्ति करके इन को उत्तम प्रकार नियमयुक्त करके उत्तम प्रकार शिक्षित करें वैसे सब करें ॥३॥

अब विद्वानों के उपदेशविषय को कहते हैं ॥

परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः । अग्नितपो यथासथ ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आप लोग (यथा) जैसे (अग्नितपः) अग्नि से तपाने वाले (वीरासः) विद्या और बल से व्याप्त (मर्यासः) मनुष्य (परा) दूर के लिये (एतन) प्राप्त हों और (भद्रजानयः) कल्याण के जानने वाले (असथ) होवें वैसे वे सत्कार करने योग्य होवें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो बन्धन के साधन और पाप

के आचरण का त्याग कर और त्याग कराके और मुक्ति के साधन को ग्रहण कर और ग्रहण करा के सबको आनन्दित करते हैं उनको सब आनन्दित करें ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम् ।
श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥५॥

पदार्थः— (या) जो (श्यावाश्वस्तुताय) कालेघोड़ों से प्रशंसित (वीराय) वीर जन के लिए (दोः) भुजा का बल (उप, बर्बृहत्) अत्यन्त समीप में देती है (सा) यह विद्यायुक्त स्त्री (सनत्) सनातन (अश्व्यम्) घोड़ों में श्रेष्ठ (गव्यम्) गौओं में श्रेष्ठ (उत) और (शतावयम्) सौ अवयव जिस में उस (पशुम्) देखते हुए को बढ़ा सकती है ॥५॥

भावार्थः—वही स्त्री प्रशंसित होती है जो अपने पति को काम में आसक्त करके बल का नाश नहीं करती है और गृहस्थित घोड़े आदि का पालन करके वढ़ाती है ॥५॥

फिर स्त्री के पुरुषार्थ उपदेश को कहते हैं ॥

उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी । अदेवत्रादराधसः ॥६॥

पदार्थः - हे पुरुष जो (स्त्री) स्त्री (अदेवत्रात्) विद्वानों की रक्षा करती है जिस से उससे विरुद्ध (अराधसः) धनविरुद्ध पदार्थ से पृथक् हो कर (पुंसः) पुरुष की (वस्यसी) अत्यन्त धनवाली (उत) और (शशीयसी) अत्यन्त दुःख को दूर करनेवाली (भवति) होती और (त्वा) आप को सुखी करती है उस को आप सुखयुक्त करो ॥६॥

भावार्थः—वही स्त्री पति से आदर करने योग्य होती है जो अन्यायाचरण और नहीं आदर करने योग्य के आदर करने से रहित हुई पति को सुखी करती है वही पति से निरन्तर आदर करने योग्य होती है ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम् ।
देवत्रा कृणुते मनः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (या) जो (जसुरिम्) प्रयत्न करते हुए को (वि) विशेष करके (जानाति) जानती है (तृष्यन्तम्) पिपासा से व्याकुल हुए के तुल्य को (वि)

विशेष करके जानती है और (कामिनम्) कामातुर पुरुष को (वि) विशेष करके जानती है वह (देवत्रा) विद्वानों में (मनः) चित्त (कृणुते) करती है ॥७॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुषार्थी, धार्मिक, लोभी और कामातुर पति को जानकर दोषों के निवारण और गुणों के ग्रहण करने के लिये प्रेरणा करती है वही पति आदि की कल्याण करनेवाली होती है ॥७॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः ।
स वैरदेय इत्समः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अस्तुतः) नहीं प्रशंसा कियागया (उत) और (नेमः) आधे का अधिकारी (घा) ही (वैरदेये) वैर देने योग्य जिस से उस में (पुमान्) पुरुष और जो (पणिः) प्रशंसित वर्त्तमान है (सः, इत्) वही (समः) तुल्य है (इति) इस प्रकार से मैं (ब्रुवे) कहता हूं ॥८॥

भावार्थः—जो आलस्ययुक्त जन श्रेष्ठ कर्म्मों में नहीं प्रवृत्त होता है और दूसरा विद्वान् पुरुष सत्य और असत्य को जानकर सत्य का आचरण नहीं करता है वे दोनों तुल्य अधर्मात्मा हैं यह जानना चाहिये ॥८॥

फिर स्त्रीपुरुष के विषय को कहते हैं ॥

उत मेऽरपद्युवतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्त्तनिम् ।
वि रोहिता पुरुमीह्ळाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ॥९॥

पदार्थः—जो (प्रति, श्यावाय) धूमिल वर्ण से युक्त अश्व और (पुरुमीह्ळाय) बहुत वीर्य्य के सींचने वाले (दीर्घयशसे) बड़े यशस्वी (विप्राय) बुद्धिमान् (मे) मेरे लिये (ममन्दुषी) प्रशंसा करने योग्य और आनन्द करने वाली (वर्त्तनिम्) मार्ग को (वि, रोहिता) जानेवाली (युवतिः) यौवनावस्था को प्राप्त स्त्री (अरपत्) स्पष्ट उपदेश देती है (उत) और मैं स्पष्ट उपदेश करूं वे हम दोनों जैसे श्रेष्ठ गुणों से युक्त स्त्री और पुरुष (येमतुः) नियम करते हैं वैसे वर्त्ताव करें ॥९॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष परस्पर तुल्य गुणकर्म और स्वभाव वाले हों तो श्रेष्ठ मार्ग, अत्यन्त कीर्त्ति और आनन्द को प्राप्त हों ॥९॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत् । तरन्त इव मंहना ॥१०॥

पदार्थः—(यः) जो (वैदवदिवः) घोड़ों के ज्ञाता का पुत्र (मे) मेरी (धेनूनाम्) गौओं के (शतम्) सैकड़े को (ददत्) देता है (यथा) जैसे (मंहना) बड़ी नौका से (तरन्तइव) तैरतेहुओं के समान दुःख के पार पहुंचाता है वही स्वामी होने के योग्य होता है ॥१०॥

भावार्थः—जो मनुष्य सैकड़ों वा हजारों का देनेवाला होता है और दुग्ध देनेवाली गौओं की रक्षा करता है वह नौका से नदी वा समुद्र को तरता है वैसे ही बुद्धिमान् स्त्री और पुरुष दुःखरूपी सागर को धर्म के आचरण से तरते हैं ॥१०॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

य ईं॑ वह॑न्त आ॒शुभिः॒ पिब॑न्तो मदि॒रं मधु॑ ।

अत्र॒ श्रवां॑सि दधिरे ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ये) जो (आशुभिः) शीघ्रकारी गुणों से (मदिरम्) आनन्द कारक (ईम्) जल को (वहन्ते) प्राप्त होते हैं और (मधु) माधुर्य्य आदि गुणों से युक्त को (पिबन्तः) पीते हुए (अत्र) यहां (श्रवांसि) अन्न आदिकों को (दधिरे) धारण करते हैं वे ही लक्ष्मीवान् होते हैं ॥११॥

भावार्थः—जो शीघ्र सुखकारक और बुद्धिवर्धक वस्तुओं का सेवन करते हैं वे यहां लक्ष्मीवान् होते हैं ॥११॥

फिर उपदेशविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

येषां॒ श्रि॒याधि॒ रोद॑सी वि॒भ्राज॑न्ते॒ रथे॒ष्वा । दि॒वि रु॒क्मइ॑वो॒परि॑ ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (येषाम्) जिन विद्वानों का (श्रिया) शोभा वा लक्ष्मी से धर्मयुक्त व्यवहार (दिवि) कामना में (रुक्मइव) प्रीतिकारक सुवर्ण आदि पदार्थ जैसे वैसे (विभ्राजन्ते) शोभित होते हैं और जो (रथेषु) विमान आदि वाहनों में (आ, अधि) विराजित होवें वे (उपरि) ऊपर (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी के सदृश प्रकाशित होते हैं ॥१२॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो धर्मयुक्त पुरुषार्थ से धन आदि को इकट्ठे करते हैं वे सूर्य्य के किरणों के सदृश प्रकाशित यश वाले होते हैं ॥१२॥

फिर स्त्रीपुरुष के विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

युवा॒ स मारु॑तो ग॒णस्त्वे॒षर॑थो॒ अने॑द्यः । शु॒भं॒यावा॒ प्रति॑ष्कुतः ॥१३॥

पदार्थः हे मनुष्यो जो (अनेद्यः) नहीं निन्दा करने योग्य (स्वेपरथः) प्रकाशवान् वाहन जिसका वह (शुभंयावा) जल को प्राप्त होने वाला (अप्रतिष्कुतः) नहीं कम्पित दृढ़ (युवा) यौवनावस्था को प्राप्त (मारुतः) पवनों के समूह के सदृश मनुष्यों का (गणः) समूह है (सः) वह बहुत काम्यों को सिद्ध कर सकता है ॥१३॥

भावार्थः—जो मनुष्य संपूर्ण स्त्रीपुरुषों को यौवनावस्थायुक्त और विद्वान् करते हैं वे प्रशंसा करने योग्य, कल्याणकारी और दृढ़ होते हैं ॥१३॥

फिर उपदेशार्थ विषय को कहते हैं ॥

को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः । ऋतजाता अरेपसः ॥१४॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यत्रा) जहां (ऋतजाताः) सत्य में उत्पन्न होनेवाले (अरेपसः) अपराध से रहित (धूतयः) पाप को कम्पाने वाले (मदन्ति) प्रसन्न होते हैं वहां (एषाम्) इन वायु आदि के स्वरूप को (नूनम्) निश्चित (कः) कौन (वेद) जानता है ॥१४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! अपराध, अनपराध तथा सत्य और असत्य को कौन जानता है यह हम पूंछते हैं जो प्रमाद से रहित और परमेश्वर के भक्त होते हैं ॥१४॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

यूयं मर्तं विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया । श्रोतारो यामहूतिषु ॥१५॥

पदार्थः—हे (विपन्यवः) बुद्धिमानो (यूयम्) आप लोग (प्रणेतारः) प्रेरणा करने और (श्रोतारः) सुनने वाले जन (धिया) बुद्धि वा कर्म से (यामहूतिषु) उपरम अर्थात् निवृत्ति और आह्वानरूप कर्म्मों में (इत्था) इस प्रकार से (मर्त्तम्) मनुष्य को प्रेरणा करो ॥१५॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन धर्मयुक्त व्यवहारों में मनुष्यों को प्रेरणा करके बुद्धिमान् करते हैं वे धन्य होते हैं ॥१५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः ।
आ यज्ञियासो ववृत्तन ॥१६॥

पदार्थः—जो (यज्ञियासः) यज्ञ के करने (रिशादसः) और हिंसकों के मारने वाले (नः) हम लोगों के (पुरुश्चन्द्राः) बहुत सुवर्ण और (काम्या) सुन्दर (वसूनि)

धनों को (आ, ववृत्तन) प्राप्त होते हैं (ते) वे विद्वान् हम लोगों के कल्याणकारी होते हैं ॥१६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! वे ही इस संसार में परोपकार के लिए वर्त्तमान हैं जो न्याय से द्रव्य का सङ्ग्रह करते हैं ॥१६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह । गिरो देवि रथीरिव ॥१७॥

पदार्थः—हे (देवि) प्रकाशमान विद्यायुक्त स्त्री (ऊर्म्ये) रात्रि के सदृश वर्त्तमान आप (मे) मेरी (एतम्) इस (स्तोमम्) प्रशंसा को सुनिये और (दार्भ्याय) विदारण करने वालों में हुए के लिये वर्त्तमान को (परा, वह) दूर कीजिये तथा (रथीरिव) प्रशंसित रथ वाला जैसे वैसे (गिरः) वाणियों को धारण कीजिये ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे प्राणियों के सुख के लिये रात्रि है वैसे ही पति आदिकों के सुख के लिये श्रेष्ठ स्त्री होती है ॥१७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ ।
न कामो अप वेति मे ॥१८॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप (मे) मेरे लिये (रथवीतौ) वाहनों के गमन में (उत) और (सुतसोमे) उत्पन्न किये हुए ऐश्वर्य्य आदि में सत्य का उपदेश देने योग्य है (इति) इस प्रकार (वोचतात्) उपदेश देवें जिस से (मे) मेरी (कामः) कामना (न) नहीं (अप, वेति) नष्ट होती है ॥१८॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि विद्वान् जनों के प्रति यह प्रार्थना करें कि आप लोग हम लोगों को ऐसे उपदेश करो जिस से हम लोगों की इच्छायें सिद्ध होवें ॥१८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु । पर्वतेष्वपश्रितः ॥१९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (पर्वतेषु) मेघों में (अपश्रितः) आश्रित सूर्य्य (गोमतीः) किरणें विद्यमान जिनमें ऐसे गमनों को (अनु) अनुकूल वर्त्ताता है वैसे (एषः) यह (रथवीतिः) रथ से मार्ग को व्याप्त होने वाला (मघवा) अत्यन्त धनवान् जन (क्षेति) निवास करता है ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य मेघ का कारण होकर पृथक् स्वरूप है वैसे ही विद्वान् सर्वत्र वास करता हुआ भी मोहरहित होता है ॥१९॥

इस सूक्त में प्रश्न, उत्तर और वायु आदि के गुण का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह पंचम मण्डल में इकसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य द्विषष्टितमस्य सूक्तस्य श्रुतिविदात्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १ । २ त्रिष्टुप् । ३ । ४ । ५ । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ । ८ । ९ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले बासठवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में सूर्य गुणों को कहते हैं ॥

ऋतेन॑ ऋतमपि॑हितं ध्रुवं वां॒ सूर्य॑स्य॒ यत्र॑ विमुचन्त्यश्वा॑न् ।
दश॑ श॒ता स॒ह त॑स्थु॒स्तदेकं॑ दे॒वानां॒ श्रेष्ठं॒ वपु॑षामपश्यम् ॥१॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो (यत्र) जहां विद्वान् जन(सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (दश) दश (शता) सैकड़ों (अश्वान्) किरणों को (विमुचन्ति) छोड़ते और (सह) साथ (तस्थुः) स्थित होते हैं (वाम्) तुम दोनों के (ऋतेन) सत्य कारण से (ध्रुवम्) निश्चल (ऋतम्) सत्य स्वरूप (अपिहितम्) आच्छादित है (तत्) उस (एकम्) अद्वितीय (देवानाम्) विद्वानों के और (वपुषाम्) रूप वाले शरीरों के (श्रेष्ठम्) श्रेष्ठभाव को मैं (अपश्यम्) देखता हूं उस को आप लोग भी देखिये ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो यह सूर्य्यलोक है वह परमेश्वर से अनेक तत्वों द्वारा रचा गया है इस कारण अनेक गुणों से युक्त है उसको तुम लोग यथावत् जानो ॥१॥

अब मित्रावरुण के गुणों को कहते हैं ॥

तत्सु वां॑ मित्रावरुणा महि॒त्वमी॒र्मा त॒स्थुषी॒रह॑भिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः॑ पिन्वथः॒ स्वस॑रस्य॒ धेना॒ अनु॑ वा॒मेकः॑ प॒विरा व॑वर्त ॥२॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के सदृश अध्यापक और उपदेशक जनो (वाम्) आप दोनों के जिस (महित्वम्) महत्त्व की (ईर्मा) निरन्तर

चलने वाला रक्षा करता है (तत्) उस की आप दोनों (पिन्वथः) तृप्ति कीजिये और जैसे (अहभिः) दिनों से किरणें (तस्थुषीः) स्थिर वेलाओं को (सु) उत्तम प्रकार (दुदुहे) पूर्ण करते हैं और (स्वसरस्य) दिन के मध्य में (वाम्) आप दोनों (विश्वाः) सम्पूर्ण (धेनाः) वाणियों को तृप्त कीजिये वैसे (एकः) सहाय-रहित केवल एक (पविः) पवित्र व्यवहार (अनु) अनुकूल (आ) (ववर्त्त) वर्त्तमान हो ॥२॥

भावार्थः हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! आप दोनों मनुष्यों को रात्रि दिन प्राण उदान और बिजुली की विद्याओं को ग्रहण कराइये जिस से सम्पूर्ण प्रजायें आनन्दित होवें ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अधा॑रयतं पृथि॒वीमु॒त द्यां मित्र॑राजाना वरु॒णा मही॑भिः ।
व॒र्धय॑त॒मोष॑धीः॒ पिन्व॑तं॒ गा अव॑ वृ॒ष्टिं सृ॑जतं जीरदानू ॥३॥

पदार्थः—हे (जीरदानू) जीवन के देने वाले (वरुणा) श्रेष्ठ (मित्रराजाना) प्राण और बिजुली जैसे वायु और बिजुली (पृथिवीम्) भूमि को (उत) और (द्याम्) सूर्य्य को धारण करते हैं वैसे (अधारयतम्) धारण कीजिये और जैसे ये दोनों (महोभिः) बड़े गुणों से (ओषधीः) यव आदि ओषधियों को (वर्धयतम्) बढ़ावें (गाः) पृथिवियों को तृप्त करते हैं वैसे आप दोनों (पिन्वतम्) तृप्त कीजिये और जैसे वे दोनों (वृष्टिम्) वृष्टि को उत्पन्न करते हैं वैसे (अव, सृजतम्) उत्पन्न कीजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजा और मंत्रीजनो ! आप दोनों प्राण और सूर्य्य के सदृश वर्त्ताव कर पृथिवी के राज्य का पालन कर वैद्य और ओषधियों की वृद्धि कर और वृष्टि की उन्नति करके सब के सुख के लिये वर्त्ताव कीजिये ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ वा॒मश्वा॑सः सु॒युजो॑ वहन्तु य॒तर॑श्मय॒ उप॑ य॒न्त्वर्वाक् ।
घृ॒तस्य॑ नि॒र्णिग॑नु वर्त्तते वा॒मुप॒ सिन्ध॑वः प्र॒दिवि॑ क्षरन्ति ॥४॥

पदार्थः—हे वाहन के बनाने और चलाने वाले जनो जो जैसे (वाम्) आप दोनों के (सुयुजः) उत्तम प्रकार मिलने वाले (यतरश्मयः) ग्रहण की गई किरणें वा रस्सियां जिन की ऐसे (अश्वासः) अग्नि आदि पदार्थ वा घोड़े (घृतस्य) जल के

(अर्वाक्) नीचे से (आ, वहन्तु) पहुंचावें और यानों को (उप, यन्तु) चलावें और (निर्णिक्) निर्णय करने वाला सारथी (अनु, वर्त्तते) प्रवृत्त होता है और (प्रदिवि) प्रकाश स्वरूप अग्नि में (सिन्धवः) नदियां (वाम्) आप दोनों को (उप, क्षरन्ति) जल छिड़ती हैं वैसा प्रयत्न कीजिये ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य वाहनों में यन्त्र कलाओं को रच के नीचे अग्नि और ऊपर जल स्थापित करके और फिर उस अग्नि को प्रदीप्त करके मार्गों में चलावे तो बहुत लक्ष्मियाँ इन को प्राप्त हों ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अनु श्रुतामृमतिं वर्धदुर्वीं बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा ।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ॥५॥

पदार्थः—हे (मित्र) प्राण के सदृश (वरुण) श्रेष्ठ (धृतदक्षा) धारण किया बल जिन्होंने वे (बर्हिरिव) जल के सदृश (यजुषा) सत्संग वा क्रिया से (उर्वीम्) पृथिवी की (रक्षमाणा) रक्षा करते हुए (नमस्वन्ता) बहुत अन्न वाले (इळासु) वाणियों में और (अन्तः) मध्य (गर्त्ते) गृह में आप दोनों (आसाथे) वर्त्तमान हैं और वह (अनु, श्रुताम्) पीछे श्रवण किये गए (अमतिम्) रूप को (अधि) ऊपर को (वर्धत्) बढ़ावे उनकी हम लोग परिचर्य्या करें ॥५॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जैसे प्राण और उदान आदि पवन सब जगत् की रक्षा करते हैं वैसे आप लोग रक्षा करें ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ ॥६॥

पदार्थः—हे (वरुणा) अति श्रेष्ठ सभा और सेना के स्वामी राजा और मंत्री जनो वायु और सूर्य्य के सदृश (अक्रविहस्ता) नहीं हिंसा करने वाले हस्त जिनके वा दानशील हस्त जिन के वे (परस्पा) दूसरों की रक्षा करने वाले (राजाना) प्रकाशमान और (क्षत्रम्) राज्य वा धन को (अहृणीयमाना) क्रोध से रहित आचरण करते हुए (द्वौ) दोनों आप (इळासु) पृथिवियों के (अन्तः) मध्य में (सुकृते) धर्मयुक्त काम में वर्त्तमान (सह) साथ (यम्) जिस को (त्रासाथे) भय देवें उस (सहस्रस्थूणम्) सहस्र वा असंख्य थूनी वाले जगत् राज्य वा वाहन को (बिभृथः) धारण करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजा और मन्त्री जन ! आप स्वयं धर्मात्मा होकर सहस्र शाखा जिस की ऐसे राज्य के रक्षण के लिये दुष्टों को दण्ड देकर और श्रेष्ठों का सत्कार करके यशस्वी होवें ॥६॥

फिर प्रसंग से विद्युद्विद्या विषय को कहते हैं ॥

हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्य१श्वाजनीव।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ॥७॥

पदार्थः—इस संसार में जो (हिरण्यनिर्णिक्) पृथिवी के सुवर्ण और अग्नि के तेज को अत्यन्त निश्चय करने और (अयः) जाने वाला (अस्य) इस राज्य और जगत् के मध्य में (दिवि) प्रकाश में (भद्रे) कल्याण कारक (तिल्विले) स्नेह के स्थान में (क्षेत्रे) निवास करते हैं जिस पुण्य कर्म्म में उसमें (वि, भ्राजते) विशेष प्रकाशित होता है और (अश्वाजनीव) बिजुली के सदृश (निमिता) अत्यन्त मापी अर्थात् जांची गई (वा) अथवा (स्थूणा) खंभे के सदृश दृढ़नीति विशेष प्रकाशित होती है उस और उसको (अधिगर्त्यस्य) अधिक सुन्दर गृह में हुए (मध्वः) मधुरादि पदार्थ के मध्य में हम लोग (सनेम) विभाग करें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा वाचकलु०—जो मनुष्य श्रेष्ठ व्यवहार में विराजमान, बिजुली आदि की विद्या को ग्रहण करते हुए गृह के कृत्य में यथावत् न्याय को करते हैं विभाग कर और विभाग देकर कृतकृत्य होते हैं वे नीति वाले होते हैं ॥७॥

फिर मित्रावरुण के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयःस्थूणमुदिता सूर्य्यस्य।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥८॥

पदार्थः—हे (मित्र) (वरुण) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान राजा और मन्त्रीजनो आप दोनों जैसे (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (उदिता) उदय में और (उषसः) प्रातःकाल के (व्युष्टौ) विशेष दाह वा निवास में (हिरण्यरूपम्) (अयःस्थूणम्) सुवर्ण के खम्भे के सदृश तेजःस्वरूप को (आ, रोहथः) आरोहण करते हैं (अतः) इस कारण से (गर्तम्) गृह को अधिष्ठित हो के (अदितिम्) नहीं नष्ट होने वाले कारण (दितिम्, च) और नाश होने वाले कार्य्य का (चक्षाथे) उपदेश करते हैं उन दोनों को हम लोग मिलें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य के उदय होने पर अन्धकार निवृत्त होता और प्रकाश प्रवृत्त होता है वैसे ही कार्य्य और

कारणरूप विद्या के जानने वाले राजा और मन्त्रीजन मित्र के सदृश वर्त्ताव कर के दृढ़ न्याय का प्रचार करावें ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥९॥

पदार्थः—हे (सुदानू) उत्तम दान करने वाले (भुवनस्य) सम्पूर्ण संसार के (गोपा) रक्षक (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान के सदृश वर्त्तमान राजा और मन्त्री जनो आप दोनों जैसे (न, अतिविधे) अधिवेधन करने के अयोग्य (यत्) जिस (बंहिष्ठम्) अत्यन्त वृद्ध (अच्छिद्रम्) छिद्ररहित (शर्म) गृह को प्राप्त हूजिये (तेन) इस से (नः) हम लोगों को (अविष्टम्) व्याप्त हूजिये जिससे हम लोग (सिषासन्तः) विभाग करते हुए (जिगीवांसः) शत्रुओं के धनों की जीतने की इच्छा करने वाले (स्याम) होवें ॥९॥

भावार्थः– विद्वान् जन अति उत्तम गृहों को रचकर और वहां विचार करके विजय, विद्या और क्रिया को प्राप्त होते हैं ॥९॥

इस सूक्त में सूर्य, प्राण, उदान और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में बासठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्थाऽध्यायारम्भः ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ सप्तर्चस्य त्रिषष्टितमस्य सूक्तस्यार्चनाना आत्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १ । २ । ४ । ७ निचृज्जगती । ३ । ५ । ६ जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब चतुर्थाध्याय का आरम्भ है और पञ्चम मण्डल में सात ऋचा वाले त्रेसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मित्रावरुण विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्म्माणा परमे व्योमनि ।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः ॥१॥

पदार्थः—हे (ऋतस्य) ऋत अर्थात् सत्य की (गोपौ) रक्षा करने वाले और (सत्यधर्म्माणा) सत्य है धर्म जिनका ऐसे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान राजा और अमात्य जनो (युवम्) आप दोनों (परमे) अति उत्तम (व्योमनि) आकाश के सदृश प्रकाशित व्यापक परमात्मा में स्थित होकर (रथम्) वाहन पर (अधि, तिष्ठथः) वर्त्तमान हूजिये और (अत्र) इस राज्य में (यम्) जिसकी (अवथः) रक्षा करते हैं (तस्मै) उस के लिये (दिवः) अन्तरिक्ष से (वृष्टिः) वर्षा (मधुमत्) मधुर आदि श्रेष्ठ गुणों से युक्त (पिन्वते) सिञ्चन करती है ॥१॥

भावार्थः—जहां धार्म्मिक विद्वान् पुत्र की जैसे वैसे प्रजा की पालना करने वाले राजा आदि होते हैं वहां उचित काल में वृष्टि और उचितकाल में मृत्यु होता है ॥१॥

फिर मित्रावरुण वाच्य राजा अमात्य विषय को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा ।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः ॥२॥

पदार्थः हे (मित्रावरुणा) वायु और सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान (स्वर्दृशा) सुख को दिखाने और (सम्राजौ) उत्तम प्रकार शोभित होने वाले राजा और मन्त्री-जनो आप जैसे (तन्यवः) विजुलियां (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि को (वि, चरन्ति) विचरती और (वृष्टिम्) वृष्टि को उत्पन्न करती हैं वैसे (अस्य) इस (भुवनस्य) संसार के मध्य (विदथे) संग्राम में (राजथः) प्रकाशित होते हैं हम लोग (वाम्) आप दोनों से (राधः) धन और (अमृतत्वम्) जल होने की (ईमहे) याचना करते हैं ॥२॥

भावार्थः-इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे वायु और विजुली वर्षा करके सब मनुष्यों को धन और धान्य से युक्त करते हैं वैसे धार्मिक राजा और मन्त्री प्रजाओं को ऐश्वर्य्ययुक्त करें ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी ।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥३॥

पदार्थः—हे राजा और मन्त्रीजनो जैसे (वृषभा) बलिष्ठ वृष्टि के कारण (पृथिव्याः) भूमि के और (दिवः) प्रकाश के (पती) पालन करने वाले (विचर्षणी) प्रकाशक (मित्रावरुणा) वायु और सूर्य्य (चित्रेभिः) अद्भुत (अभ्रैः) मेघों के साथ (उप, तिष्ठथः) समीप में स्थित होते हैं और (असुरस्य) मेघ के (मायया) आच्छादन आदि से वा बुद्धि से (रवम्) शब्द को और (द्याम्) प्रकाश को करते हैं वैसे (उग्रा) तेजस्वी (सम्राजौ) उत्तम प्रकार शोभित होने वाले आप दोनों प्रजाओं के समीप स्थित होते हैं और कामनाओं से प्रजाओं को (वर्षयथः) वृष्टियुक्त करते हैं ॥३॥

भावार्थः—हे प्रजाजनो ! जो राजा और मन्त्री आदि जन न्याय और विनय से प्रकाशमान, दुष्टों में तेजस्वी और कठोर दण्ड के देने वाले, सूर्य्य और वायु के सदृश मनोरथों की वृष्टि करने वाले हैं वे यशस्वी और प्रजाओं के प्रिय होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्य्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम् ।
तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥४॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के सदृश वर्त्तमान राजा और मन्त्री जनो (वाम्) आप दोनों की (दिवि) बिजुली में (श्रिता) आश्रित (माया) बुद्धि (सूर्य्यः) सूर्य्य के सदृश जिस (ज्योतिः) प्रकाशरूप (चित्रम्) अद्भुत (आयुधम्) युद्ध करते हैं जिस से उस शस्त्र को (चरति) प्राप्त होती है (तम्) उस को (अभ्रेण) मेघ से और (वृष्ट्या) वृष्टि से (गूहथः) घेरते हो, हे (पर्जन्य) मेघ के समान वर्त्तमान जन (दिवि) सूर्य्य के प्रकाश में (मधुमन्तः) बहुत मधुर कर्म्म विद्यमान जिनके वे (द्रप्साः) विमोह के करने वाले (ईरते) चलते वा कंपते हैं वैसे आप जानिये ॥४॥

भावार्थः—जो राजा और मन्त्री जन सूर्य्य और चन्द्रमा के सदृश तीव्र और शान्त स्वभाव वाले बुद्धिमान् वृष्टि के सदृश प्रजाओं का पालन करते हैं वे सब काल में सुख की वृद्धि करते हैं ॥४॥

अब मित्रावरुण वाच्य शिल्प विषय को कहते हैं ॥

रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु । रजांसि
चित्रा वि चरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥५॥

पदार्थः—हे (दिवः) कामना करने वालों के प्रति (सम्राजा) उत्तम प्रकार शोभित होने वाले (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के सदृश यज्ञ और शिल्प के

करनेवाले जो (मरुतः) कारीगर मनुष्य (शूरः) भयरहित वीरशत्रु को मारने वाले के (न) सदृश (शुभे) कल्याण के लिए (सुखम्) सुखकारक (रथम्) विमान आदि वाहन को (युञ्जते) युक्त करते हैं और (गविष्टिषु) किरणों की सङ्गतियों में (चित्रा) अद्भुत (रजांसि) लोक और (तन्यवः) बिजुलियां (वि) विशेष करके (चरन्ति) चलती हैं उन के साथ (पयसा) जल से (नः) हम लोगों को आप दोनों (उक्षतम्) सींचिये ॥५॥

भावार्थः- इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जो शूरवीरजनों के सदृश सुखकारक रथ पर चढ़कर यथेष्टस्थान में घूमते हैं वे अभीष्ट पदार्थ को प्राप्त होते हैं ॥५॥

फिर मित्रावरुणवाच्य विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम् ।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥६॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणौ) पढ़ाने और पढ़नेवालेजनो आप दोनों जैसे (पर्जन्यः) मेघ (वदति) शब्द करता है वैसे (इरावतीम्) जल विद्यमान जिस में उस (त्विषीमतीम्) अच्छी विद्याओं के प्रकाश से युक्त (चित्राम्) अद्भुत (वाचम्) वाणी को कहो जैसे (अभ्रा) मेघ आकाश में हैं वैसे ही (मरुतः) मनुष्य (सु,मायया) उत्तमबुद्धि से (सु) उत्तम प्रकार (वसत) वसें और हे मित्रावरुण (अरुणाम्) प्राप्त होने योग्य (अरेपसम्) अपराधरहित (द्याम्) कामना को आप लोग (वर्षयतम्) वृष्टि करिये ॥६॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य विद्या से युक्त वाणी को प्राप्त होकर मेघ के सदृश मनोरथों की वृष्टि करते हैं वे बुद्धि से विद्वान् करके अपराध रहित करते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया ।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ॥७॥

पदार्थः—हे (विपश्चिता) विद्वान् (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमानो जिससे आप दोनों (असुरस्य) मेघ के (मायया) आडम्बर से और (धर्मणा) धर्म से (व्रता) सत्य भाषण आदि व्रतों की (रक्षेथे) रक्षा करते हैं तथा (ऋतेन) यथार्थ से (विश्वम्) प्रविष्ट होते हैं (भुवनम्) वा होते हैं जिस में उस संपूर्ण जगत् को (वि, राजथः) विशेष कर के प्रकाशित करते हैं और (दिवि, प्रकाश

में (सूर्य्यम्) सूर्य के सदृश (चित्र्यम्) अद्‌भुत में हुए (रथम्) वाहन को (आ, धत्थः) धारण करते हैं इस से सत्कार करने के योग्य होते हैं ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य धर्मसम्बन्धी सत्य भाषण आदि व्रत वा कर्मों को करते हैं वे सूर्य के सदृश सत्य से प्रकाशित होते हैं ॥७॥

इस सूक्त में मित्रावरुण और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पिछिले सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में त्रेसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य चतुःषष्टितमस्य सूक्तस्य अर्चनाना ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १ । २ विराडनुष्टुप् । ६ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ३ । ५ भुरिगुष्णिक् । ४ उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ७ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले चौसठवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मित्रावरुण-पदवाच्य विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे ।
परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् ॥१॥

पदार्थः—जैसे (जगन्वांसा) जाते हुए प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान जन (स्वर्णरम्) सुख को प्राप्त करानेवाले को (बाह्वोः) भुजाओं की (व्रजेव) चलते हैं जिससे उस गति से जैसे वैसे (वः) आप लोगों को स्वीकार करते हैं वैसे हम लोग (रिशादसम्) शत्रुओं के रोकनेवाले (वरुणम्) उत्तम विद्वान् और (मित्रम्) मित्र का (ऋचा) स्तुति से (परि) सब ओर से (हवामहे) स्वीकार करते हैं ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन प्रीति से आप लोगों का ग्रहण करते हैं वैसे इन का आप लोग भी स्वीकार करिये ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते ।
शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥२॥

पदार्थः—हे प्राण और उदानवायु के सदृश वर्त्तमानो (ता) वे दोनों आप (बाहवा) बाहु और (सुचेतुना) उत्तम विज्ञान से (अस्मै) इस (अर्चते) सत्कार करने वाले जन के लिए (शेवम्) सुख को (हि) ही (प्र, यन्तम्) प्रयत्न करते हुए (वाम्) आप दोनों का (जार्यम्) जरा वृद्धावस्था में उत्पन्न विषय का मैं (विश्वासु) सम्पूर्ण (क्षासु) भूमियों में (जोगुवे) उपदेश करता हूं वैसे उस की आप लोग प्रशंसा करो ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब पृथिवी पर विद्या और बाहुबल से उत्तम पुरुषों के लिए सुख देते हैं उनके लिये हम लोग भी सुख देवें ॥२॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा ।

अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (अस्य) इस (प्रियस्य) सुन्दर (अहिंसानस्य) हिंसा से रहित (मित्रस्य) मित्र के (शर्मणि) गृह में (यत्) जिस (गतिम्) गमन को विद्वान् जन (सश्चिरे) प्राप्त होते हैं उस गमन को मैं (नूनम्) निश्चित (अश्याम्) प्राप्त होऊं और (पथा) मार्ग से (यायाम्) जाऊं ॥३॥

भावार्थः—सब मनुष्य विद्वानों का अनुकरण कर और धर्ममार्ग से चल कर उत्तम गति को प्राप्त होवें ॥३॥

फिर मित्रावरुणपदवाच्य विद्वानों के गुणों को कहते हैं ॥

युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा ।

यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ॥४॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) अध्यापक और उपदेशक जनो (युवाभ्याम्) आप दोनों से (ऋचा) स्तुति से (स्पूर्धसे) स्पर्धा के लिये (यत्) जिस (मघोनाम्) बहुत धन वालों के (स्तोतॄणाम्, च) और विद्वानों के (क्षये) गृह में (उपमम्) उपमा को जैसे मैं (धेयाम्) धारण करूं वैसे उस को (ह) निश्चय आप धारण करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—सब मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों की उपमा को ग्रहण करें ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ ।

स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ॥५॥

पदार्थः—हे (मित्र) मित्र आप और (वरुणः) श्रेष्ठ जन आप दोनों (सुदीतिभिः) अच्छे प्रकाशों से (मघोनाम्) प्रशंसित धन जिन के ऐसे (सखीनाम्) मित्रों और (नः) हम लोगों की (वृधसे) वृद्धि के लिए (स्वे) अपने (क्षये) निवासस्थान में (आ) सब ओर वसिये (सधस्थे, च) और तुल्यस्थान में (आ) सब ओर से वसिये तथा हम लोग भा आप दोनों के निवास स्थान (च) और तुल्य स्थान में वसें ॥५॥

भावार्थः—वे ही मित्र श्रेष्ठ हैं जो परस्पर की उन्नति के लिए सुख दुःख और सङ्ग में प्रयत्न करते हैं ॥५।

फिर विरोध छोड़ धनप्राप्ति विषय को कहते हैं ॥

युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च बिभृथः ।
उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥६॥

पदार्थः—हे (वरुण) उत्तमो (च) और हे मित्र (युवम्) आप दोनों (येषु) जिन में (नः) हम लोगों के लिये (बृहत्) बड़े और (उरु) बहुत (क्षत्रम्) धन को (बिभृथः) धारण करते हैं और (नः) हम लोगों को (वाजसातये) सङ्ग्राम के लिए (राये) धन के और (स्वस्तये) सुख के लिए (कृतम्) किया उन में वैसे ही हूजिये ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि विरोध का त्याग कर और उत्तम प्रकार मिलने से उद्यम करके विजय और धन आदि को प्राप्त करें ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि । सुतं सोमं
न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा बिभ्रतावर्चनानसम् ॥७॥

पदार्थः—हे प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान (यजता) मिलने वाले (नरा) नायक राजा और मन्त्रीजन आप दोनों (उच्छन्त्याम्) विवास करती हुई में तथा (रुशद्गवि) प्रकाशमान किरणों से युक्त (देवक्षत्रे) विद्वानों के धन वा राज्य में (सुतम्) उत्पन्न किये गये (सोमम्) ऐश्वर्य को (हस्तिभिः) हाथियों से (न) जैसे वैसे (पड्भिः) पैरों से (धावतम्) प्राप्त होओ और (अर्चनानसम्) श्रेष्ठ नासिका जिस की उस को (बिभ्रतौ) धारण करते हुए (मे) मेरे उत्पन्न किये गये ऐश्वर्य को (आ) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥७॥

भावार्थः—हे पुरुषार्थी राजजनो ! प्रजाओं का न्याय से पालन करके विद्वानों के धन को प्राप्त होओ ॥७॥

इस सूक्त में मित्रावरुण के सदृश वर्त्तमान तथा विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस के पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में चौसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडर्चस्य पञ्चषष्टितमस्य सूक्तस्य रातहव्यात्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १ । ४ अनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ३ स्वराडुष्णिक् । ५ भुरिगुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ६ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले पैंसठवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मित्रावरुण पदवाच्य पढ़ने पढ़ाने वाले वा उपदेश योग्य वा उपदेश देनेवालों के विषय को कहते हैं ॥

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः ।
वरुणो यस्य दर्शतो मित्रो वा वनते गिरः ॥१॥

पदार्थः—(यः) जो (सुक्रतुः) उत्तम प्रकार बुद्धिमान् और (वरुणः) श्रेष्ठ है (सः) वह (चिकेत) जाने और जो (देवत्रा) विद्वानों में विद्वान् है (सः) वह (नः) हम लोगों को (ब्रवीतु) कहे (वा) वा (यस्य) जिस का (दर्शतः) देखने के योग्य (मित्रः) मित्र है वह हम लोगों की (गिरः) वाणियों का (वनते) पालन करता है ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो हम लोगों के मध्य में अधिक विद्वान् होवे वही उपदेश करे और जो अधिक ज्ञानवान् होवे वह सत्य और असत्य को अलग करे ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ता हि श्रेष्ठवर्चसा राजाना दीर्घश्रुत्तमा ।
ता सत्पती ऋतावृधा ऋतावाना जनेजने ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (दीर्घश्रुत्तमा) दीर्घकाल पर्यन्त अत्यन्त शास्त्र को सुनने वाले (श्रेष्ठवर्चसा) श्रेष्ठ अध्ययन जिन का ऐसे (राजाना) प्रकाशमान जन वर्त्तमान हैं (ता) वे दोनों और जो (जनेजने) मनुष्य मनुष्य में (सत्पती) श्रेष्ठों के

पालन करने और (ऋतावृधा) सत्य को बढ़ाने वाले (ऋतावाना) तथा सत्य विद्यमान जिन में (ता, हि) उन्हीं दोनों का हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य बहुश्रुत, पूर्ण विद्यावाले, सत्य धर्म्म में निष्ठा करनेवाले और जो विद्या की प्रवृत्ति में प्रीति करनेवाले हों वे ही उपदेशक और अध्यापक होवें ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ता वामियानोऽवसे पूर्वा उप ब्रुवे सचा ।
स्वश्वासः सु चेतुना वाजाँ अभि प्र दावने ॥३॥

पदार्थः—हे प्राण और उदान के समान वर्त्तमानो (स्वश्वासः) अच्छे घोड़े जिन के वे (सु, चेतुना) उत्तम ज्ञानवान् के साथ (दावने) देनेवाले के लिए (वाजान्) संग्रामों के (अभि, प्र) सम्मुख अच्छे प्रकार कहें उन को मैं (उप, ब्रुवे) समीप में कहूं । हे अध्यापक और उपदेशक जनो जिन (पूर्वौ) प्रथम विद्या पढ़े हुए (वाम्) आप दोनों को (इयानः) प्राप्त होता हुआ (अवसे) रक्षा आदि के लिए वर्त्तमान हूं (ता) उन (सचा) मिले हुओं के मैं समीप में कहता हूं ॥३॥

भावार्थः—जैसे उपदेशक जन उपदेश देवें वैसे ही जिन को उपदेश दिया जाय वे औरों को भी उपदेश करें ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

मित्रो अंहोश्चिदादुरु क्षयाय गातुं वनते ।
मित्रस्य हि प्रतूर्वतः सुमतिरस्ति विधतः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (मित्रः) मित्र (अंहोः) दुष्ट आचरण से (चित्) भी वियुक्त करके (आत्) अनन्तर (उरु) बहुत (क्षयाय) निवास के लिये (गातुम्) पृथिवी को (वनते) सेवन करता है वह (हि) निश्चय से (प्रतूर्वतः) शीघ्र करने वाले (विधतः) परिचरण करते हुए (मित्रस्य) मित्र की जो (सुमतिः) श्रेष्ठ बुद्धि (अस्ति) है उस को ग्रहण करे ॥४॥

भावार्थः—वे ही मित्र हैं जो निष्कपटता से और शुद्धभाव से परस्पर के जनों के साथ वर्त्तमान हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वयं मित्रस्यावसि स्याम सप्रथस्तमे ।
अनेहसस्त्वोतयः सत्रा वरुणशेषसः ॥५॥

पदार्थः- हे मनुष्यो जैसे (अनेहसः) नहीं हिंसक होते हुए (त्वोतयः) आप से रक्षित और (वरुणशेषसः) उत्तम जन शेष जिन के वे (वयम्) हम लोग (सत्रा) सत्य से युक्त (मित्रस्य) मित्र के (सप्रथस्तमे) अतिविस्तार युक्त (अवसि) रक्षण आदि कर्म्म में (स्याम) प्रवृत्त होवें ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सदा कृतज्ञता करें और कृतघ्नता का दूर से त्याग करें ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

युवं मित्रेमं जनं यतथः सं च नयथः । मा मघोनः परि ख्यतं मो अस्माकमृषीणां गोपीथे न उरुष्यतम् ॥६॥

पदार्थः—हे (मित्रा) प्राण और उदान के समान वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशक जनो (युवम्) आप दोनों (इमम्) इस (जनम्) उपदेश देने योग्य जन को (यतथः) प्रेरणा करते और (सम्, नयथः, च) प्राप्त कराते हैं तथा (मघोनः) बहुत धनों से युक्त (नः) हम लोगों का मत (परि, ख्यतम्) निरादर कीजिये और (ऋषीणाम्) वेदार्थ के जानने वाले (अस्माकम्) हम लोगों का (गोपीथे) गौओं के पीने योग्य दुग्ध आदि में (मो) नहीं निरादर करिये और शुभ कर्म में हम लोगों को (उरुष्यतम्) प्रेरणा करिये ॥६॥

भावार्थः- हे विद्वानो ! आप लोग सब लोगों को प्रयत्न से युक्त करके सुख को प्राप्त कराइये और हे विद्यार्थीजनो वा श्रोतृजनो ! आप लोग हम अध्यापक और उपदेशकों का अपमान मत करो इस प्रकार वर्त्ताव कर सत्य धर्म का सेवन हम लोग करें ॥६॥

इस सूक्त में मित्रावरुण पदवाच्य अध्यापक और अध्ययन करने तथा उपदेश करने और उपदेश देने योग्यों के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त की पिछले सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में पैंसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य षट्षष्टितमस्य सूक्तस्य रातहव्य आत्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १ । ५ । ६ विराडनुष्टुप् । २ निचृदनुष्टुप् । ३ । ४ स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले छियासठवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्य क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त्त रिशादसा ।
वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥१॥

पदार्थः—हे (चिकितान, मर्त्त) ज्ञान और मरण धर्मयुक्त आप (ऋतपेशसे) सत्यस्वरूप और (प्रयसे) प्रयत्न करते हुए (महे) बड़े (वरुणाय) उत्तम व्यवहारयुक्त के लिए (रिशादसा) दुष्टों के मारनेवाले (सुक्रतू) उत्तम बुद्धिमान् (देवौ) दो विद्वानों को (आ) सब प्रकार से (दधीत) धारण करिये ॥१॥

भावार्थः—वही विद्वान् होता है जो विद्वानों का सङ्ग कर के बुद्धि को बढ़ाता है ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ता हि क्षत्रमविहुतं सम्यगसुर्य१माशाते ।
अध व्रतेव मानुषं स्व१र्ण धायि दर्शतम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ता) वे (हि) ही (अविह्रुतम्) नहीं कुटिल (असुर्य्यम्) विद्वानों के लिए हितकारक (सम्यक्) उत्तम प्रकार चलनेवाले (क्षत्रम्) धन वा राज्य को (आशाते) व्याप्त होते हैं (अध) इस के अनन्तर जिन्होंने हित (मानुषम्) मनुष्य संबन्धी (दर्शतम्) देखने योग्य (व्रतेव) कर्म्मों के सदृश और (स्वः) सुख के (न) सदृश (धायि) धारण किया ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—सब मनुष्य धर्मपथ से सुख और कर्म्म को धारण करें ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम् ।
रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक् स्तोमैर्मनामहे ॥३॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशकजन आप दोनों (एषाम्) इन (रथानाम्) विमान आदि वाहनों का (रातहव्यस्य) दिया है देने योग्य पदार्थ जिसने उस की (सुष्टुतिम्) उत्तम प्रशंसा को और (गव्यूतिम्) मार्ग को (एषे) प्राप्त होने को प्रवृत्त होते हैं और जैसे विद्वान् जन (स्तोमैः) प्रशंसाओं से इन की (उर्वीम्) पृथिवी को धारण करता है वैसे (ता) उन (दधृक्) प्रगल्भता को प्राप्त (वाम्) आप दोनों को और उस विद्वान् को हम लोग (मनामहे) अच्छे प्रकार जानते हैं ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जगत् के कल्याण के लिए सृष्टिक्रम से पदार्थविद्या को प्रकाशित करते हैं वे धन्य होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता ।
नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥४॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो (पूतदक्षसा) पवित्र बल जिन का ऐसे (युवम्) आप दोनों (केतुना) बुद्धि से (अद्भुता) आश्चर्य्यरूप (काव्या) कवियों के कर्म्मों को (चिकेथे) जानते हैं (अधा) इस के अनन्तर (हि) जिस से (जनानाम्) मनुष्यों के (दक्षस्य) बलसम्बन्धी (पूर्भिः) नगरों से (नि) निरन्तर करके जानते हैं उन का हम लोग सदा सत्कार करें ॥४॥

भावार्थः—विद्वानों को यह योग्य है कि जो स्वयं पूर्ण विद्वान् होके अज्ञजनों को अध्यायन और उपदेश से उपकृत करें ॥४॥

स्त्री भी विद्वानों के समान होकर उत्तमाचरण करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तदृतं पृथिवि बृहच्छ्रव एष ऋषीणाम् ।
ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः ॥५॥

पदार्थः—हे (पृथिवि) पृथिवी के सदृश वर्त्तमान विद्या से युक्त स्त्री जैसे मेघ वा योगी जन (यामभिः) प्रहरों वा प्रहर में उत्पन्न कर्म्मों से (पृथु) विस्तीर्ण जल को (अरम्) पूरा (अति, क्षरन्ति) वर्षाते हैं और जैसे (ज्रयसानौ) जाते हुए वा विशेष करके जानते हुए वर्त्तमान हैं वैसे (ऋषीणाम्) मंत्रार्थ जानने वालों के (तत्) उस (बृहत्) बड़े (ऋतम्) सत्य को वा जल को (श्रवः) और अन्न वा श्रवण को (एषे) प्राप्त होने को प्रवृत्त होओ ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो स्त्रियां विद्यायुक्त हो कर सत्य, धर्म्म और उत्तम स्वभाव का स्वीकार कर के मेघ के सदृश सुखों की वृष्टि करती हैं तो वे बड़े सुख को प्राप्त होती हैं ॥५॥

मनुष्यों को न्याय से राज्य की रक्षा करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः ।
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥६॥

पदार्थः—हे (ईर्यचक्षसा) प्राप्त होने वा जानने योग्य दर्शन वा कथन जिन का वे (मित्रा) मित्र (वाम्) आप दोनों के (यत्) जिस (व्यचिष्ठे) अत्यन्त व्याप्त और (बहुपाय्ये) बहुतों से रक्षा करने योग्य राज्य (स्वराज्ये, च) और अपने राज्य में (सूरयः) विद्वान्जन (वयम्) हम लोग (आ) सब प्रकार से (यतेमहि) यत्न करें उसमें यत्न करो ।।६।।

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि मित्रता करके अपने और दूसरे के राज्य की न्याय से रक्षा करके धर्म की उन्नति करें ।।६।।

इस सूक्त में मित्र और श्रेष्ठ विद्वान् के और विद्यायुक्त स्त्री के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ।।

यह पञ्चम मण्डल में छियासठवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ पञ्चर्चस्य सप्तषष्टितमस्य सूक्तस्य यज आत्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १ । २ । ४ निचृदनुष्टुप् । ३ । ५ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।।

अब पांच ऋचा वाले सड़सठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को किस के तुल्य क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ।।

बळित्था देवा निष्कृतमादित्या यजतं बृहत् ।
वरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे ।।१।।

पदार्थः—हे (देवा) श्रेष्ठ स्वभाव वाले (आदित्या) अविनाशी (मित्र) मित्र (वरुण) और श्रेष्ठ आप दोनों (बृहत्) बड़े (निष्कृतम्) उत्पन्न हुए को (यजतम्) उत्तम प्रकार मिलो । हे (अर्य्यमन्) न्यायकारी (इत्था) इस प्रकार से आप भी मिलिये और हे मित्र श्रेष्ठ जनो तुम जैसे (बट्) सत्य (वर्षिष्ठम्) अत्यन्त बढ़े हुए (क्षत्रम्) राज्य वा धन को (आशाथे) प्राप्त होते हो वैसे इस को न्यायकारी भी प्राप्त हो ।।१।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे विद्वान् जन इस संसार में धर्म्मयुक्त कर्म्मों को करें वैसे राज्य का राजा आदि पालन करें ।।१।।

फिर मनुष्यों को किस के तुल्य क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ।।

आ यद्योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः ।
धर्त्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा ।।२।।

पदार्थः—हे (रिशादसा) दुष्टों को दण्ड देने वाले (मित्र) मित्र (वरुण) श्रेष्ठ (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के (धर्त्तारा) धारण करने वाले तुम (यत्) जिस (सुम्नम्) सुख को (यन्तम्) प्राप्त होते हुए और (हिरण्ययम्) तेजःस्वरूप (योनिम्) कारण को (आ) सब प्रकार से (सवथः) प्राप्त होते हो उसको हम लोग भी प्राप्त होवें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे विद्वान् जन तेजःस्वरूप बिजुली रूप सूर्य्य आदि कारण को जान के उपकार करते हैं वैसे ही इसको करके मनुष्य सुख को प्राप्त हों ॥२॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्य्यमा।
व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (विश्वे) सब (विश्ववेदसः) संपूर्ण विद्या और ऐश्वर्य्य पाये हुए (वरुणः) श्रेष्ठ (मित्रः) और सब का मित्र (अर्य्यमा) और न्यायकारी जन (पदेव) चलते हैं जिन से उन चरणों के सदृश (व्रता) सत्याचरण रूप कर्म्मों को (सश्चिरे) प्राप्त होते वा जाते हैं और (रिषः) मारने वाले से वा हिंसा से (मर्त्यम्) मनुष्य की (पान्ति) रक्षा करते हैं वे (हि) ही आप लोगों से आदर करने योग्य हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो! जैसे प्राणी पैरों से अभीष्ट—एक स्थान से दूसरे स्थान को जाके अपने प्रयोजन को सिद्ध करते हैं वैसे ही सत्यभाषण आदि कर्म्मों को धर्म्ममार्ग के लिये प्राप्त होकर अभीष्ट आनन्द को सिद्ध करो ॥३॥

फिर विद्वान् कैसे होकर क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने।
सुनीथासः सुदानवोंऽहोश्चिदुरुचक्रयः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (हि) जिससे (जनेजने) मनुष्य मनुष्य में जो (सत्याः) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ (ऋतस्पृशः) यथार्थ को स्वीकार करने वाले (ऋतावानः) सत्य मत वा कर्म्म विद्यमान जिनमें वे (सुदानवः) सुन्दर श्रेष्ठ विद्या आदि का दान जिनका और (सुनीथासः) उत्तम नीति के देने और (उरुचक्रयः) बहुत करने वाले बड़े पुरुषार्थी हुए (अंहोः) अपराध से (चित्) भी पृथक् हुए होवें (ते) वे सर्वदा सब प्रकार से सत्कार करने योग्य हों ॥४॥

भावार्थः—जो स्वयं धर्मयुक्त गुण कर्म और स्वभाव वाले हुए दुष्ट आचरण से पृथक् वर्त्ताव करके अन्य मनुष्यों को तादृश अर्थात् अपने समान करते हैं वे धन्यवाद के योग्य हैं ॥४॥

मनुष्य विद्वानों से किस प्रकार विद्या ग्रहण करें इस विषय को कहते हैं ॥

को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् ।
तत्सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः ॥५॥

पदार्थः—हे (मित्र) मित्र (वाम्) आप दोनों के (तनूनाम्) शरीरों को (कः) कौन (आ, ईषते) सब प्रकार से प्राप्त होता है आप (वा) वा (वरुणः) उत्तम स्वभावयुक्त कौन (नु) शीघ्र (अस्तुतः) नहीं प्रशंसित है और जो (वाम्) आप दोनों की (मतिः) बुद्धि हम लोगों को (आ, ईषते) सब प्रकार प्राप्त होती है और (अत्रिभ्यः) व्याप्त विद्या जिन में उन के लिये (मतिः) मननशील अन्तःकरण की वृत्ति (सु) उत्तम प्रकार प्राप्त होती है (तत्) उस को हम लोग स्वीकार करें ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य अध्यापक और उपदेशकों को प्राप्त होकर उनके उपदेश और विद्या को ग्रहण करके उनसे बुद्धि और उत्तम क्रिया का स्वीकार करते हैं वे प्रसिद्ध स्तुति वाले होते हैं ॥५॥

इस सूक्त में मित्रावरुण और विद्वानों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में सड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्याष्टषष्टितमस्य सूक्तस्य यजत आत्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १ । २ गायत्री । ३ । ४ निचृद्गायत्री । ५ विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को परस्पर क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (वः) तुम लोगों के जो (विपा) अनेक प्रकार से रक्षा करने वाले (महिक्षत्रौ) बड़े क्षत्र जिनके वे (बृहत्) बड़े (ऋतम्) सत्य से युक्त को ग्रहण करें उन दोनों से (मित्राय) मित्र के और (वरुणाय) उत्तम आचरण वाले के लिये तुम (गिरा) वाणी से (प्र, गायत) प्रशंसा करो ॥१॥

भावार्थः—जो अध्यापक और उपदेशक जन सब मनुष्यों को विद्यादि से पवित्र करते हैं वे मनुष्यों से सर्वदा सत्कार करने योग्य हैं ॥१॥

मनुष्यों को यहां कैसे होना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च ।

देवा देवेषु प्रशस्ता ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (या) जो (घृतयोनी) घृतयोनी अर्थात् जल कारण जिन का वे (देवेषु) विद्वानों में (प्रशस्ता) श्रेष्ठ (सम्राजा) उत्तम प्रकार शोभित होने माले (देवा) दो विद्वान् अर्थात् (मित्रः) मित्र (च) और (वरुणः) स्वीकार करने योग्य (च) भी (उभा) दोनों प्रवृत्त होते हैं उन दोनों का आप लोग बहुत आदर करिये ॥२॥

भावार्थः—जो विद्वानों में विद्वान् राजपुरुष चक्रवर्त्ति राज्य को सिद्ध कर सकते हैं वे ही यशस्वी होते हैं ॥२॥

फिर राज्य कैसे उन्नति को प्राप्त करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य ।

महि वां क्षत्रं देवेषु ॥३॥

पदार्थः - हे मनुष्यो जो (नः) हम लोगों के सम्बन्ध में (पार्थिवस्य) पृथिवी में विदित (महः) बड़े (रायः) धन के (दिव्यस्य) शुद्ध व्यवहार में हुए का (शक्तम्) समर्थ, जिन (वाम्) आप दोनों का (देवेषु) सत्य विद्या को प्राप्त हुओं में (महि) बड़ा (क्षत्रम्) राज्य वा धन वर्त्तमान है (ता) उन आप दोनों का हम लोग सत्कार करें ॥३॥

भावार्थः—हे राजपुरुषो आप लोग जो अपने राज्य की विद्वानों से रक्षा करें तो वह पृथिवी में विदित हुआ समर्थ होवे ॥३॥

विद्वानों के सदृश इतरजनों को वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (ऋतेन) सत्य से (ऋतम्) सत्य का (सपन्ता) आक्रोश करते हुए (इषिरम्) प्राप्त होने योग्य (दक्षम्) बल को (आशाते) व्याप्त होते हैं और (अद्रुहा) द्वेष से रहित (देवौ) दो विद्वान् जन (वर्धेते) वृद्धि को प्राप्त होते हैं वैसे आप लोग भी प्रयत्न करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों के सदृश क्रिया करके सदा ही वृद्धि करें ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या जानकर क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्त्तमाशाते ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (वृष्टिद्यावा) वृष्टि और अन्तरिक्ष के कारण (रीत्यापा) रीति और जल जिन के सम्बन्ध में वह (इषः) अन्न आदि के (पती) पालक वायु और विद्युदग्नि (दानुमत्याः) बहुत दान विद्यमान जिस में उस पृथिवी के मध्य में (बृहन्तम्) बड़े (गर्त्तम्) गृह को (आशाते) व्याप्त होते हैं उन दोनों को आप लोग जान के उपकार करो ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य वृष्टि आदि में कारण सूर्य्य वायु और विजुली आदि को जानें तो उस उस कार्य्य को कर सकें ॥५॥

इस सूक्त में मित्र श्रेष्ठ और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में अड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

त्री रोचनेति चतुर्ऋचस्यैकोनसप्ततितमस्य सूक्तस्य उरुचक्रिरात्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १ । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ । ४ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब चार ऋचा वाले उनहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में इस संसार में मनुष्यों को क्या जान कर क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

त्री रोचना वरुण त्रीँरुत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वावृधानावमतिं क्षत्रियस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्य्यम् ॥१॥

पदार्थः—हे (मित्र) प्राणवायु के और (वरुण) उदानवायु के सदृश वर्त्तमान जैसे प्राण और उदानवायु वा (त्री) तीन अर्थात् भूमि विजुली और सूर्य्य रूप अग्नि जो (रोचना) प्रकाश होने योग्य उन को और (त्रीन्) तीन (द्यून्) प्रकाशों (उत) और (त्रीणि) प्रकाशित होने योग्य (रजांसि) लोकों को (वावृधानौ) बढ़ाते हुए (क्षत्रियस्य) राजपूत राजा के (अमतिम्) रूप को और (अजुर्य्यम्) नहीं जीर्ण हुए (अनु, व्रतम्) कर्म वा स्वभाव को (रक्षमाणौ) रक्षाकरते हुए धारण करते हैं वैसे इन दोनों को आप दोनों (धारयथः) धारण करते हैं ॥१॥

भावार्थः—इस संसार में तीन प्रकार का प्रकाश है एक सूर्य का दूसरा विजुली का तीसरा पृथिवी में वर्त्तमान अग्नि का उन तीनों को जो क्षत्रिय आदि जानें वे अक्षयराज्य करने को समर्थ होवें ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद्वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥२॥

पदार्थः—हे (वरुण) उत्तम कर्म्म के करने वाले और (मित्र) मित्र (वाम्) आप दोनों को जो (इरावतीः) बहुत अन्न आदि सामग्रियां (धेनवः) और वाणियां गौओं के सदृश (मधुमत्) मधुमान् जैसे हो वैसे (दुह्रे) अच्छे प्रकार पूरित करती हैं और जो (सिन्धवः) नदियां वे (वाम्) आप दोनों को उत्तम प्रकार पूरित करती हैं (तिसृणाम्) तीन प्रकार के (धिषणानाम्) कर्म्म उपासना और ज्ञान के जाननेवालों के (त्रयः) तीन (द्युमन्तः) उत्तम कामनाओं से युक्त (वृषभासः) वपनेवाले (रेतोधाः) और जो वीर्य्य को धारण करता है वह (वि) विशेष कर के (तस्थुः) स्थित होते हैं उनको आप दोनों संप्रयुक्त करिये ॥२॥

भावार्थः—हे सब के मित्र जनो आप लोग गौ के सदृश सुख के देने वाले नदी के] सदृश मल के दूर करने वृद्धि के देने और कामनाओं की सिद्धि के देने वाले हूजिये ॥२॥

मनुष्यों को निरन्तर प्रयत्न करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यन्दिन उदिता सूर्य्यस्य ।
राये मित्रावरुणा सर्वतातेळे तोकाय तनयाय शं योः ॥३॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के सदृश माता और पिता जैसे मैं (सर्वताता) सब के सुख देनेवाले यज्ञ में (राये) धन आदि के लिये (तोकाय) छोटे (तनयाय) कुमार के अर्थ (प्रातः) प्रातःकाल (देवीम्) श्रेष्ठ बुद्धि को (अदितिम्) अखण्डित बोध से युक्त को और (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (मध्यन्दिने) मध्याह्न (उदिता) उदित में (योः) संयुक्त (शम्) सुख को (जोहवीमि) अत्यन्त ग्रहण करता हूं और मैं (ईळे) प्रशंसा करता हूं वैसे आप दोनों आचरण कीजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य कुटुम्ब के पालन के लिये श्रेष्ठ पुरुषों की शिक्षा और वृद्धि के लिये सर्वदा प्रयत्न करते हैं वे विद्वानों के कल को करते हैं ॥३॥

मनुष्यों को क्या क्या जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

या धर्त्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ॥४॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु के समान वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशक जनो जो (अमृताः) प्राप्त हुआ जीवनमुक्ति सुख जिन को वे (देवाः) विद्वान् जन (वाम्) आप दोनों के (ध्रुवाणि) निश्चित (व्रतानि) कर्म्मों का (न) नहीं (आ) सब प्रकार से (मिनन्ति) नाश करते हैं और (या) जो (रोचनस्य) प्रकाश वाले (रजसः) लोक के (आदित्या) सूर्य्यों के (दिव्या) प्रकाशमानों के (उत) और (पार्थिवस्य) पृथिवी में विदित लोक के (धर्त्तारा) धारण करने वाले वर्त्तमान हैं उन को जानिये ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो वायु बिजुली और सूर्य्य सम्पूर्ण लोक के धारण करने वाले हैं वे परमेश्वर से धारण किये गये हैं ऐसा जान कर सम्पूर्ण ईश्वर ने ही धारण किया ऐसा जानना चाहिये ॥४॥

इस सूक्त में प्राण उदान और बिजुली के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में उनहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

पुरूरुणेति चतुर्ऋचस्य सप्ततितमस्य सूक्तस्य । उरुचक्रिरात्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १—४ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले सत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण । मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥१॥

पदार्थः—हे (मित्र) मित्र और (वरुण) श्रेष्ठ (हि) जिस से (वाम्) आप दोनों का जो (पुरूरुणा) अत्यन्त बहुत (नूनम्) निश्चित (अवः) रक्षण आदि (अस्ति) है और जिसको (चित्) निश्चित आप (वंसि) सेवन करते हैं और जो (वाम्) आप दोनों की (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को ग्रहण करता है उन आप दोनों और उस की हम लोग सेवा करें ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो रक्षक राजपुरुष प्रजाओं की अत्यन्त रक्षा करते हैं वे ही प्रजापुरुषों से सेवा करने योग्य हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ।।

ता वां॑ स॒म्यग॑द्रुह्वा॒णेष॑मश्याम॒ धाय॑से । व॒यं ते रु॑द्रा स्याम ।।२।।

पदार्थः—हे (अद्रुह्वाणा) द्वेष से रहित (रुद्रा) रोदन से हृदय द्रवित करने वाले (वयम्) हम लोग (वाम्) आप दोनों के (धायसे) धारण करने को (इषम्) अन्न वा विज्ञान को (सम्यक्) उत्तम प्रकार (अश्याम) प्राप्त होवें (ते) वे हम लोग (ता) उन दोनों का सेवन करते हुए सब के धारण करने को (स्याम) होवें ।।२।।

भावार्थः—वे ही अध्यापक और उपदेशक कृतक्रिय होवें जो क्रोध और लोभ आदि दोषों से रहित होवें और जो उन से पढ़ते हैं वे विद्या के धारण में प्रयत्न करते हुए होवें ।।२।।

फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं

पा॒तं नो॑ रुद्रा पा॒युभि॑रु॒त त्रा॑येथां सुत्रा॒त्रा ।

तु॒र्याम॒ दस्यू॑न्त॒नूभिः॑ ।।३।।

पदार्थः—हे (रुद्रा) दुष्टों के रुलाने वाले सभा और सेना के स्वामी आप दोनों (सुत्रात्रा) उत्तम प्रकार पालन करने वाले के साथ (पायुभिः) रक्षणों वा रक्षकों से (नः) हम लोगों का (पातम्) पालन करिये और (उत) भी (त्रायेथाम्) रक्षा कीजिये जिस से हम लोग (तनूभिः) शरीरों से (दस्यून्) दुष्ट चोरों का (तुर्य्याम) नाश करें ।।३।।

भावार्थः—हे मनुष्यो जो सभा और सेना के स्वामी निरन्तर प्रजाओं की रक्षा करें उन का रक्षण प्रजा करें ।।३।।

उत्तमों को किसी पुरुष से भी दान कभी न ग्रहण करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ।।

मा कस्या॑द्भुतक्रतू य॒क्षं भु॑जेमा त॒नूभिः॑ । मा शेष॑सा मा तन॑सा ।।४।।

पदार्थः—हे (अद्भुतक्रतू) अद्भुत बुद्धि वा कर्म वालो ! हमलोग (तनूभिः) शरीरों से (कस्य) किसी के (यक्षम्) दान का (मा) नहीं (भुजेम) सेवन करें और (शेषसा) अन्यों के साथ वर्त्तमान हुए (मा) नहीं पालन करें और (तनसा) पौत्र आदि के सहित (मा) नहीं पालन करें ।।४।।

भावार्थः विद्वान् जन ऐसा उपदेश करें जिस से कि किसी से दान कोई भी नहीं ग्रहण करे वैसे ही माता और पिता से पुत्र पौत्र आदि भी दान की रुचि न करें ।।४।।

इस सूक्त में प्राण उदान और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में सत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आ नो गन्तमिति त्र्यृचस्यैकसप्ततितमस्य सूक्तस्य बाहुवृक्त आत्रेय ऋषिः मित्रावरुणौ देवते । १ । २ । ३ गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब तीन ऋचावाले इकहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर अध्यापक और उपदेशक क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा । उपेमं चारुमध्वरम् ॥१॥

पदार्थः—हे (रिशादसा) दुष्टों के मारनेवाले (वरुण) श्रेष्ठ और (मित्र) मित्र (बर्हणा) बढ़ानेवाले आप दोनों (इमम्) इस (नः) हमलोगों के (चारुम्) सुन्दर (अध्वरम्) यज्ञ के (उप) समीप (आ) सब प्रकार से (गन्तम्) प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थः– जो विद्वान् जन व्यवहारनामक यज्ञ को करें तो हम लोगों की उन्नति के लिये समर्थ हों ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः ।
ईशाना पिप्यतं धियः ॥२॥

पदार्थः—हे (प्रचेतसा) उत्तम ज्ञानवाले (ईशाना) समर्थ (वरुण) वर के देने और (मित्र) सब के सुख करने वालो (विश्वस्य) संसार के मध्य में आप दोनों (राजथः) प्रकाशित होते हैं और (धियः) बुद्धियों का (हि) ही (पिप्यतम्) बढ़ाइये ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जैसे अन्तरिक्ष में सूर्य्य और चन्द्रमा प्रकाशित होते हैं वैसे मनुष्यों की बुद्धियों को बढ़ाइये ॥२॥

अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः । अस्य सोमस्य पीतये ॥३॥

पदार्थः—हे (मित्र) मित्र और (वरुण) श्रेष्ठ आप दोनों (अस्य) इस (दाशुषः) देने वाले के (सोमस्य) बड़ी ओषधियों के रस को (पीतये) पीने के लि

(नः) हम लोगों के (सुतम्) उत्पन्न किये हुए पदार्थ के (उप) समीप में (आगतम्) आइये ॥३॥

भावार्थः—मनुष्य धार्मिक विद्वानों को बुला कर सदा उनका सत्कार करें ॥३॥

इस सूक्त में मित्र श्रेष्ठ और विद्वानों के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में इकहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

आमित्र इति त्र्यृचस्य द्विसप्ततितमस्य सूक्तस्य बाहूवृक्त आत्रेय ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १ । २ । ३ उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब तीन ऋचा वाले बहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों के प्रति कैसे कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

आ मित्रे वरुणे व॒यं गी॒र्भिर्जु॑हुमो अ॒त्रिवत् ।
नि ब॒र्हिषि॑ सदतं॒ सोम॑पीतये ॥१॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो जैसे (वयम्) हम लोग (गीर्भिः) वाणियों से (अत्रिवत्) नहीं विद्यमान तीन प्रकार का दुःख जिस को उस के तुल्य (मित्रे) मित्र और (वरुणे) उत्तम पुरुष के निमित्त (आ, जुहुमः) अच्छे प्रकार होम करते हैं और आप (सोमपीतये) सोम रस के पान करने के लिए (बर्हिषि) उत्तम गृह वा आसन में (नि, सदतम्) बैठिये ॥१॥

भावार्थः—जो मित्र के सदृश वर्त्ताव करके संपूर्ण जगत् का सत्कार करते हैं उन के अनुसार सब को वर्त्तना चाहिये ॥१॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

व्र॒तेन॑ स्थो ध्रु॒वक्षे॑मा धर्म्म॑णा यात॒यज्ज॑ना ।
नि ब॒र्हिषि॑ सदतं॒ सोम॑पीतये ॥२॥

पदार्थः—हे (ध्रुवक्षेमा) निश्चित रक्षण और (यातयज्जना) यत्न कराते हुए जनों वाले मनुष्यो जो तुम (धर्म्मणा) धर्म्म के और (व्रतेन) धर्म्म युक्त कर्म्म के साथ वर्त्तमान (स्थः) हो वे आप (सोमपीतये) सोम पीने के लिये (बर्हिषि) उत्तम व्यवहार में (निसदतम्) उपस्थित हूजिए ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य निश्चित धर्म्म व्रत और शील को धारण करते हैं वे दृढ़ सुख से युक्त होते हैं ॥२॥

मनुष्यों को यहां कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

मित्रश्चं नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये ।

नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥३॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो जैसे (मित्रः) मित्र (च) और (वरुणः) स्वीकार करने योग्य जन (च) भी (इष्टये) इष्ट सुख के लिये और (सोमपीतये) सोमरस के पान के लिये (नः) हम लोगों के (यज्ञम्) यज्ञ का (जुषेताम्) सेवन करिये और (बर्हिषि) उत्तम व्यवहार में प्रवृत्त होते हैं वैसे आप दोनो (नि, सदताम्) स्थिर हूजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मित्र के सदृश वर्त्ताव कर के वांछित सुख के सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे गणना करने योग्य होते हैं ॥३॥

इस सूक्त में मित्र और श्रेष्ठ विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में बहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

यदद्य स्थइति दशर्चस्य त्रिसप्ततितमस्य सूक्तस्य । पौर आत्रेय ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ । २ । ४ । ५ । ७ निचृदनुष्टुप् । ३ । ६ । ८ । ९ अनुष्टुप्-छन्दः । १० विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब दश ऋचा वाले तिहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में फिर स्त्री पुरुष कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं ॥

यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना ।

यद्वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥१॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो (यत्) जो (अश्विना) वायु बिजुली (परावति) दूर देश में और (यत्) जो (अर्वावति) निकट देश में (यत्) जो (पुरुभुजा) बहुतों के पालन करने वाले (वा) वा (यत्) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (पुरु) बहुत (स्थः) स्थित होते हैं उन के विज्ञान के लिये (अद्य) आज (आ, गतम्) आइये ॥१॥

भावार्थः—जो ब्रह्मचर्य्य से विद्या को पढ़कर परस्पर प्रीति से गृहारम्भ करें वे स्त्री पुरुष शिल्प विद्या को भी सिद्ध कर सकें ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता ।
वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥२॥

पदार्थः—हे स्त्रि जिन (पुरुभूतमा) अत्यन्त बहुत व्यापक (पुरू) बहुत (दंसांसि) कर्म्मों को (बिभ्रता) धारण करते हुए (वरस्या) अत्यन्त श्रेष्ठ और (तुविष्टमा) अत्यन्त बलिष्ठ (अध्रिगू) अधिक चलने वालों को (इह) इस संसार में (भुजे) भोग के लिये (हुवे) स्वीकार करता हूं जिन दोनों से इष्ट सिद्धि को (यामि) प्राप्त होता हूं (त्या) उन दोनों को तू भी संप्रयुक्त कर ॥२॥

भावार्थः—जहां स्त्री और पुरुष तुल्य गुण कर्म्म स्वभाव और सुरूपवान् हैं वहां सम्पूर्ण पदार्थ विद्या होती है ॥२॥

मनुष्यों को इस के आगे क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।
पर्य्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥३॥

पदार्थः—हे स्त्री और पुरुषो ! वायु और सूर्य्य के सदृश जो आप दोनों (रथस्य) वाहन के (चक्रम्) चलता है जिस से उस पहिये के सदृश (वपुषे) सुरूप के लिये (अन्यत्) अन्य (ईर्मा) प्राप्त होने वा जानने योग्य (वपुः) सुरूप को मनुष्यों के सम्बन्धी (युगा) वर्ष वा वर्षों के समूहों को (परि) सब ओर से प्राप्त कराओ और (मह्ना) महत्त्व से (रजांसि) लोकों का (दीयथः) नाश करते हो वे आप कालविद्या जानने योग्य हों ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जैसे रथ के पहिये घूमते हैं वैसे दिन रात्रि काल सम्बन्धी चक्र घूमता है जिससे क्षण आदि तथा युग कल्प और महाकल्प आदि संबन्धी गणित विद्या सिद्ध होती है ऐसा जानो ॥३॥

फिर मनुष्य क्या विशेष जानें इस विषय को कहते हैं ॥

तदू षु वामेना कृतं विश्वा यद्वामनु ष्टवे ।
नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥४॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! (यत्) जो आप दोनों ने

(कृतम्) सिद्ध किया (तत्) उन (एना) इन (विश्वा) संपूर्णों की मैं (अनुस्तवे) स्तुति करता हूं और जो (अरेपसा) अपराध रहित (नाना) अनेक प्रकार (जातौ) प्रकट (वाम्) आप दोनों प्राप्त होते हैं वह (अस्मे) हम लोगों के (बन्धुम्) बन्धु को (सम्, आ, ईयथुः) प्राप्त हूजिये (उ) और उस को मैं (वाम्) आप दोनों की (सु) उत्तम प्रकार प्रेरणा करूं ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं वायु और बिजुली की विद्या को जानूं वैसे ही आप लोग भी जानिये ॥४॥

फिर स्त्री कैसी हों इस विषय को कहते हैं ॥

आ यद्वां सूर्या रथं तिष्ठद्रघुष्यदं सदा ।

परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (घृणा) प्रकाशित (अरुषा) लाल चमकते हुए गुणों वाली (सूर्या) सूर्य्य संवन्धिनी प्रातर्वेला के सदृश स्त्री (वाम्) तुम्हारे (रघुस्यदम्) थोड़े चलने वाले (रथम्) विमान आदि वाहन पर (आ) सब प्रकार से (तिष्ठत्) स्थित होती है जिसको (वाम्) आप दोनों के (वयः) पक्षी (परि, वरन्ते) सब ओर से स्वीकार करते हैं वह (आतपः) चारों ओर से उष्ण करने वाले घर्म्म के सदृश (सदा) सब काल में उपकार करने वाली होती है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे प्रातःकाल सब प्रकार से प्रिय और सुखकारक है वैसे परस्पर प्रीतियुक्त स्त्री पुरुष प्रसन्न हैं ॥५॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।

घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥६॥

पदार्थः—हे (नासत्या) असत्य से रहित (नरा) धर्म्म मार्ग में ले चलने वाले दो नायक जनो (यत्) जो (अत्रिः) आध्यात्मिक आधिभौतिक आधिदैविक आदि तीन प्रकार के दुःख से रहित जन (सुम्नेन) सुख और (चेतसा) चित्त से (युवोः) आप दोनों अध्यापक और उपदेशकों के (घर्मम्) यज्ञ को (चिकेतति) जानता और (आस्ना) मुख से (वाम्) आप दोनों के (अरेपसम्) अपराधरहित यज्ञ को (भुरण्यति) धारण करता है उसको आप जानिये ॥६॥

भावार्थः—जो पुरुष विद्वानों के संग से अध्ययन और अध्यापन रूप यज्ञ का विस्तार करते हैं वे संसार के उपकारक हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु संतनिः ।
यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नरावर्वर्तति ॥७॥

पदार्थः—हे (नरा) नायक (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जनो (यत्) जो (ययिः) चलने वाला (ककुहः) बड़ा (उग्रः) तेजस्वी (सन्तनिः) उत्तम प्रकार विस्तार कर्त्ता मैं (यामेषु) प्रहरों में (वाम्) आप दोनों को (शृण्वे) सुनूं और जो (वाम्) आप दोनों के (दंसोभिः) कर्म्मों से (अत्रिः) न तीन वार (आववर्त्तति) अत्यन्त वर्त्तमान हैं उन हम दोनों को आप दोनों बोध कराइये ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य्य और चन्द्रमा के सदृश नियम से वर्त्ताव करके कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वे सर्वदा उन्नत होते हैं ॥७॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत्समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥८॥

पदार्थः—हे (मधूयुवा) सोम आदि रस को मिलाने और (रुद्रा) दुष्टों के रुलाने वाले जनो (यत्) जो (पिप्युषी) पान कराती हुई (मध्वः) सोमलता के रस को (ऊ) तर्क वितर्क से (सुसिषक्ति) अच्छे प्रकार सींचती है उससे आप दोनों (समुद्रा) उत्तम प्रकार द्रवित होने वालों को (अति, पर्षथः) सींचते हैं जिस से (पक्वाः) पके (पृक्षः) संबन्ध हुए फल (वाम्) आप दोनों (भरन्त) पोषण करते हैं ॥८॥

भावार्थः–हे मनुष्यो जैसे सूर्य्य और वायु वृष्टि से सब को सींचते और पके हुए फलों को उत्पन्न करते हैं वैसे आप लोग भी आचरण करो ॥८॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

सत्यमिद्वा उं अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥९॥

पदार्थः—हे (मयोभुवा) सुख कारक (अश्विना) अन्तरिक्ष और पृथिवी के सदृश अध्यापक और उपदेशक जनो जो (युवाम्) आप दोनों (यामहूतमा)

प्रहरों को बुलाने वाले अत्यन्त (यामन्) प्रहर में (आ, मृळयत्तमा) सब ओर से अतीव सुखकारकों को (आहुः) कहते हैं (ता) वे दोनों (यामन्) प्रहर में (वै) निश्चय (सत्यम्) यथार्थ व्यवहार वा जल को (उ) तर्क के साथ (इत्) भी प्रचरित कीजिये ॥९॥

भावार्थः—जैसे भूमि और मेघ सब प्राणियों के सुख कारक हैं वैसे ही अध्यापक और उपदेशक जन अत्यन्त सुखकारक हों ॥९॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

इमा ब्रह्मा॑णि॒ वर्ध॑ना॒श्विभ्यां॑ सन्तु॒ शन्त॑मा ।
या तक्षा॑म॒ रथाँ॑ इ॒वावो॑चाम बृ॒हन्नमः॑ ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (अश्विभ्याम्) अन्तरिक्ष और पृथिवी से (या) जो (इमा) ये (वर्धना) वृद्धि को प्राप्त होते जिन से उन (शन्तमा) अत्यन्त सुखकारक (ब्रह्माणि) धनों वा अन्नों का (रथानिव) रथों के समान (तक्षाम) आच्छादन करें वा स्वीकार करें वे आप लोगों के लिये सुखकारक (सन्तु) हों उनसे (बृहत्) बड़े (नमः) सत्कार का हम (अवोचाम) उपदेश करें ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो आप जैसे वस्त्र आदि से वाहनों को उढ़ा कर शृङ्गार युक्त करते हैं वैसे ही धन और धान्यों को उत्तम प्रकार ग्रहण कर के उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त करें और शुद्ध अन्न के भोग से बड़े विज्ञान को प्राप्त होकर अन्य जनों को भी इस का उपदेश करें ॥१०॥

इस सूक्त में अन्तरिक्ष पृथिवी और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में तिहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

कूष्ठ इति दशर्चस्य चतुः सप्ततितमस्य सूक्तस्य आत्रेय ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ । २ । १० विराडनुष्टुप् । ३ अनुष्टुप् ४ । ५ । ६ । ९ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ७ विराडुष्णिक् । ८ निचृदुष्णिक् छन्दः ऋषभः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को क्या अनुष्ठान करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

कूष्ठो॑ देवावश्विना॒द्या दि॒वो म॑नावसू ।
तच्छ्र॑वथो वृषण्वसू अत्रि॒र्वामा वि॑वासति ॥१॥

पदार्थः—हे (मनावसू) मन को वसाने वाले (वृषण्वसू) उत्तमों को वसाने वाले (अश्विना) विद्या से व्याप्त (देवौ) विद्वानो जो (कूष्ठः) पृथिवी में स्थित होने वाला (अत्रिः) विद्या व्याप्त जन (अद्य) इस समय (दिवः) प्रकाश के संबन्ध में (वाम्) आप दोनों का (आविवासति) सब प्रकार से सेवन करता है (तत्) उस को आप दोनों (श्रवथः) सुनते हैं ॥१॥

भावार्थः—हे विद्वानो जो आप लोगों का सेवन करते हैं ये बहुश्रुत विचारशील विद्वान् जन सम्पूर्ण श्रेष्ठ कर्मों का सेवन करते हैं और वे दुःख से रहित होते हैं ॥१॥

फिर मनुष्यों को विद्वानों के प्रति कैसे पूछना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥२॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो (त्या) वे (नासत्या) सत्यस्वरूप (कुह) कहां वर्त्तमान हैं और (कुह) कहां (श्रुता) सुने हुए (देवा) श्रेष्ठ गुण वाले होते हैं और तुम (कस्मिन्) किस (जने) जन में (आ, यतथ) सब ओर से यत्न करते हो उन आप दोनों की (नदीनाम्) नदियों के (सचा) संबन्ध से (कः) कौन (नु) शीघ्र है जो (दिवि) श्रेष्ठ व्यवहार वा प्रकाश में प्रयत्न करते हैं ॥२॥

भावार्थः—जिज्ञासु जनों को चाहिये कि विद्वानों के समीप जाकर विजुली आदि की विद्याओं को पूछें ॥२॥

अब मनुष्यों को क्या पूछना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥३॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो आप दोनो (कम्) किस को (याथः) प्राप्त होते हो और (कम्) किसको (गच्छथः) जाते हो (कम्) किस (रथम्) रमण करने योग्य वाहन को (अच्छा) उत्तम प्रकार (युञ्जाथे) युक्त होते हो और (कस्य) किस के (ह) निश्चय से (ब्रह्माणि) धन और धान्यों को (रण्यथः) रमाते हो (वयम्) हम लोग (इष्टये) इच्छा के लिये (वाम्) आप दोनों की (उश्मसि) कामना करें ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! विद्वान् जन जिस को प्राप्त होवें और युक्त होते तथा इच्छा करते हैं उसी की आप लोग इच्छा करो ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः ।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥४॥

पदार्थः—हे (पौर) पुर में हुए आप (हि) ही (उदप्रुतम्) जल से युक्त (पौरम्) मनुष्य के सन्तान को (चित्) निश्चय से प्राप्त हूजिये और (पौराय) पुर में हुए मनुष्य के लिए अध्यापक और आप (जिन्वथः) प्राप्त होते हो (गृभीततातये) ग्रहण किया श्रेष्ठ कर्म्मों का विस्तार जिस ने उसके लिए (द्रुहः) शत्रु के (पदे) प्राप्त होने योग्य स्थान में (सिंहमिव) सिंह के सदृश (यत्) जिस को (ईम्) सब ओर से प्राप्त होते हो उस को आप सन्तुष्ट कीजिये ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे एक नगर के वासी जन परस्पर सुख की उन्नति करते हैं वैसे ही अन्य देशवासी भी करें ॥४॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः ।
युवा यदीं कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥५॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो (जुजुरुषः) वृद्धावस्था को प्राप्त जन (च्यवानात्) गमन से (अत्कम्) व्याप्त (वव्रिम्) रूप और व्यभिचार का (प्रमुञ्चथः) त्याग करते हो और (यदि) जो (युवा) युवावस्था को प्राप्त पुरुष के (न) समान कार्य्य को (कृथः) करते हो (पुनः) फिर (वध्वः) स्त्री के (कामम्) मनोरथ को युवावस्था को प्राप्त हुआ मैं (ऋण्वे) सिद्ध करता हूं वैसे आप दोनों (आ) सब ओर से करिये ॥५॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमावाचकलु०—जैसे वृद्धावस्थाओं में रूप का त्याग कर के वृद्धावस्था को प्राप्त होते हैं वैसे ही दोषों के जानने वाले गुणों का त्याग करके दोषों का ग्रहण करते हैं ॥५॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां सन्दृशि श्रिये ।
नु श्रुतं म आ गंतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥६॥

पदार्थः—हे (वाजिनीवसू) बहुत अन्नादि क्रिया को बसाने वाले अध्यापक और उपदेशक जनो (इह) इस संसार में जो (वाम्) आप दोनों को (स्तोता) प्रशंसा

करने वाला (अस्ति) है उस को (हि) जिस से हम लोग प्राप्त (स्मसि) होवें और (वाम्) आप दोनों के (संवृशि) सादृश्य में (श्रिये) धन के लिए (नु) शीघ्र (श्रुतम्) सुनिये और (अवोभिः) रक्षणादिकों से मुझ को प्राप्त हूजिए (मे) मेरे कथन को सुनने को (आ, गतम्) आइए ॥६॥

भावार्थः—जो विद्वानों के गुणों की स्तुति करते हैं वे गुणों से युक्त हो और विद्वानों की समता को प्राप्त हो कर श्रीमान् होते हैं ॥६॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

को वा॑म॒द्य पु॑रू॒णामा व॑व्ने॒ मर्त्या॑नाम् ।

को विप्रो॑ विप्रवाहसा॒ को य॒ज्ञैर्वा॑जिनीवसू ॥७॥

पदार्थः—हे (विप्रवाहसा) विद्वानों से प्राप्त होने योग्य (वाजिनीवसू) धन धान्य प्राप्त कराने वालो (पुरूणाम्) बहुत (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के मध्य में (कः) कौन (विप्रः) बुद्धिमान् (अद्य) आज (वाम्) आप दोनों का (आ, वव्ने) अच्छे प्रकार आदर करता है (कः) कौन (यज्ञैः) यज्ञों से विद्या को और (कः) कौन बुद्धि का आदर करता है ॥७॥

भावार्थः—जो विद्या की याचना करते हैं वे विद्वान् के समीप प्राप्त हो कर प्रश्न और उत्तरों से आनन्द कर के लाभ को प्राप्त होवें वे अन्यों को भी प्राप्त करा सकें ॥७॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

आ वां॒ रथो॒ रथा॑नां॒ येष्ठो॑ यात्वश्विना ।

पु॒रू चि॑दस्म॒युस्ति॒र आ॑ङ्गू॒षो मर्त्ये॒ष्वा ॥८॥

पदार्थः—हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जनो जो (वाम्) तुम्हारा (रथानाम्) वाहनों के मध्य में (येष्ठः) अतिशय चलने वाला (रथः) वाहन (यातु) चले (अस्मयुः) हम लोगों को प्राप्त होने वाली (चित्) भी (मर्त्येषु) मनुष्यों में (आङ्गूषः) अङ्गों में हुई प्रशंसा (पुरू) बहुतों को (आ) सब प्रकार से प्राप्त हो और दुःखों का (तिरः) तिरस्कार कर के सुख प्राप्त होता है उस को आप दोनों प्राप्त (आ) हूजिए ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे अध्यापक और उपदेशक शिल्पीजन उत्तम वाहनों को रचते हैं वैसे सुख के साधनों को आप लोग उत्पन्न कीजिये ॥८॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

शमू षु वां मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः ।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥९॥

पदार्थः—हे (मधूयुवा) माधुर्य्य गुण से युक्त (विचेतसा) अनेक प्रकार के विज्ञानवाले (अर्वाचीना) सन्मुख चलते हुए दो जनो (वाम्) आप दोनों की जो (चर्कृतिः) अत्यन्त क्रिया है वह (अस्माकम्) हम लोगों की (अस्तु) हो जिस से आप दोनों (उ) ही (विभिः) पक्षियों के साथ (श्येनेव) वाज पक्षी के सदृश (शम्) सुख वा कल्याण को (सु, दीयतम्) उत्तम प्रकार देवें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—वे ही विद्वान् हैं जो अपने ऐश्वर्य्य को अन्य जनों के सुख के लिए नियुक्त करते हैं जैसे पक्षियों के साथ श्येन पक्षी शीघ्र चलता है वैसे इनके साथ विद्यार्थी जन पूर्ण रीति से चलें ॥९॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥१०॥

पदार्थः—हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जनो (यत्) जो (कर्हि, चित्) कभी हम लोगों की (इमम्) इस वर्त्तमान (हवम्) प्रशंसा को (शुश्रूयातम्) प्राप्त होओ और जो (पृचः) कामना और (वस्वीः) धनसंबन्धिनी (भुजः) भोग की क्रियाओं को (वाम्) आप दोनों के संबन्ध में (सु) उत्तम प्रकार (पृञ्चन्ति) संबन्धित करते हैं उन को (ह) निश्चय से (उ) और (वाम्) आप दोनों की हम लोग (सु) उत्तम प्रकार कामना करें ॥१०॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन विद्यार्थियों की परीक्षा करते हैं उन को विद्यार्थीजन विद्वान् हो कर प्रसन्न करते हैं ॥१०॥

इस सूक्त में अध्यापक उपदेशक और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में चौहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य पञ्चसप्ततितमस्य सूक्तस्य अवस्युरात्रेय ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ । ३ पङ्क्तिः । २ । ४ । ६ । ७ । ८ निचृत्पङ्क्तिः । ५ स्वराट्पङ्क्तिः । ९ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले पिचहत्तरवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में विद्वानों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

प्रति॒ प्रि॒यत॑मं॒ रथं॒ वृष॑णं वसु॒वाह॑नम् । स्तो॒ता वा॑मश्विना॒वृषि॒ः स्तोमे॑न॒ प्रति॑ भूषति॒ माध्वी॒ मम॑ श्रु॒तं॒ हव॑म् ॥१॥

पदार्थः—हे (माध्वी) मधुर आदि गुणों को प्राप्त कराने वाले (अश्विनौ) अध्यापक परीक्षकजनो जो (स्तोता) स्तुति करने और (ऋषिः) मन्त्र और अर्थ का जानने वाला (स्तोमेन) स्तवन से (वाम्) आप दोनों के (प्रियतमम्) अत्यन्त प्रिय (वृषणम्) सुख के वर्षाने और (वसुवाहनम्) द्रव्यों के पहुंचाने वाले (रथम्) रमते हैं जिस से उस विमान आदि वाहन को (प्रतिभूषति) शोभित करता है उस के और (मम) मेरे (हवम्) बुलाने को (प्रति, श्रुतम्) सुनिये ॥१॥

भावार्थः—जो अध्यापन और उपदेश करते हैं वे योग्य समय में परीक्षा भी करें ॥१॥

फिर मनुष्यों को किस विषय की इच्छा करनी चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

अ॒त्याया॑तमश्विना ति॒रो विश्वा॑ अ॒हं सना॑ । दस्रा॒ हिर॑ण्यवर्त्तनी॒ सुषु॑म्ना॒ सिन्धु॑वाहसा॒ माध्वी॒ मम॑ श्रु॒तं॒ हव॑म् ॥२॥

पदार्थः—हे (दस्रा) दुःख के दूर करने और (हिरण्यवर्त्तनी) ज्योतिः वा सुवर्ण को वर्त्तने वालो (सुषुम्ना) उत्तम सुख से युक्त तथा (सिन्धुवाहसा) नदियों को प्राप्त कराने वालो (माध्वी) मधुर गति से युक्त और (अश्विना) शिल्प कार्य्य के जानने वालो जैसे (अहम्) मैं (सना) सदा (विश्वाः) सम्पूर्ण विद्याओं को ग्रहण करता हूं वैसे आप दोनों (अत्यायातम्) देशों का अतिक्रमण करके आइए और (मम) मेरा (तिरः) तिरस्कारपूर्वक (हवम्) पठित (श्रुतम्) सुनिए ॥२॥

भावार्थः- इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जिन विद्वानों से विद्याओं को आप लोग पढ़ो और वे जब जब परीक्षा करें तब तब तिरस्कार के साथ वर्त्तमान को धारण करें जिस से सब को अच्छे प्रकार विद्या प्राप्त होवे ॥२॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

आ नो॒ रत्ना॑नि॒ बिभ्र॑ता॒वश्वि॑ना॒ गच्छ॑तं यु॒वम् । रुद्रा॒ हिर॑ण्यवर्त्तनी जुषा॒णा वा॑जिनीवसू॒ माध्वी॒ मम॑ श्रु॒तं॒ हव॑म् ॥३॥

पदार्थः—हे (वाजिनीवसू) अन्न आदि से युक्त सामग्री को वसाने और (हिरण्यवर्त्तनी) सुवर्ण वा ज्योति को वर्त्तने वाले (रत्नानि) रमणीय धनों को (जुषाणा) सेवा और (बिभ्रतौ) धारण करते हुए (उग्रा) दुष्टों को भय देने वाले (अश्विना) विद्या से युक्त (माध्वी) मधुर स्वभाव वालो (युवम्) आप दोनों (नः) हम लोगों को (आ) सब प्रकार से (गच्छतम्) प्राप्त होइये और (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को (श्रुतम्) सुनिये ॥३॥

भावार्थः—वे ही भाग्यशाली होवें जो यथार्थवक्ता विद्वानों के समीप जाकर वा उन को बुलाकर प्रयत्न से विद्या का अभ्यास कर के परीक्षा देते हैं ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता । उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥४॥

पदार्थः—हे (वृषण्वसू) बलिष्ठों को वसाने वाले (माध्वी) मधुर स्वभाव वाले विद्यायुक्त जनो जो (सुष्टुभः) उत्तम स्तुति करने वाला (वाम्) आप दोनों के (रथे) रथ में रमता है जिस से (वाणीची) वाणी (आहिता) स्थापित की गई (उत) और जो (वाम्) आप दोनों का (ककुहः) बड़ा (मृगः) शुद्ध करने वाला और (वापुषः) शरीर में हुआ (पृक्षः) अन्न को (कृणोति) करता है उसके और (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को (श्रुतम्) सुनिये ॥४॥

भावार्थः—वही बड़ा होता है जो विद्वानों के समीप से विद्या और सुशीलता को ग्रहण करता है ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता । विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥५॥

पदार्थः—हे (रथ्या) रथों में श्रेष्ठ (इषिरा) चलने वाले (हवनश्रुता) आह्वान सुना गया जिन का और (बोधिन्मनसा) बोधित मन जिन का ऐसे (माध्वी) मधुर स्वभाव वाले (अश्विना) विद्या के अध्यापक और उपदेशक आप दोनों (अद्वयाविनम्) द्वन्द्वभाव से रहित (विभिः) पक्षियों के साथ (च्यवानम्) पूछते हुए को (नि) अत्यन्त (याथः) प्राप्त होते हो और (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को भी (श्रुतम्) सुनिये ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य शुद्ध अन्तःकरण वाले, प्राप्त हुई शिल्पविद्या जिन को ऐसे और कपटरहित होकर विद्यार्थियों के परीक्षक हैं वे जगत् के मङ्गलकारक होते हैं ॥५॥

मनुष्यों को शिल्प विद्या से कार्य्य सिद्ध करने चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः । वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥६॥

पदार्थः—हे (माध्वी) मधुर स्वभाव युक्त (नरा) नायक (अश्विना) शिल्पविद्या के जानने वालो आप दोनों (सुम्नेभिः) सुखों के (सह) साथ (पीतये) पान के लिये जो (वाम्) आप दोनों के (मनोयुजः) मन के सदृश युक्त होने वाले अत्यन्त वेगवान् (प्रुषितप्सवः) जलाया ईंधन आदि जिन्होंने ऐसे (वयः) व्याप्ति शील (अश्वासः) वेग आदि गुण हैं वे वाहनों को (आ) सब प्रकार से (वहन्तु) पहुँचावें उन के लिये (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को (श्रुतम्) सुनिये ॥६॥

भावार्थः जो मनुष्य पदार्थ विद्या से शिल्प सिद्ध कार्य्यों को सिद्ध करें तो अधिक धनी होवें ॥६॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् । तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७॥

पदार्थः—हे (नासत्या) नहीं विद्यमान असत्य व्यवहार जिन के ऐसे (अदाभ्या) नहीं हिंसा करने योग्य (माध्वी) मधुर स्वभाव वाले (अश्विनौ) विद्या में व्याप्त आप दोनों (इह) इस संसार में (आ, गच्छतम्) आइये तथा (अर्यया) वैश्य वा स्वामी की स्त्री से (वेनतम्) कामना करो (तिरः) तिरस्कार को (चित्) भी (मा) मत करो (वर्त्तिः) मार्ग को (परि, यातम्) सब ओर से प्राप्त होओ और (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को (वि) विशेष कर के (श्रुतम्) सुनो ॥७॥

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों गृहस्थ मार्ग में वर्त्ताव कर के धर्म्म से सन्तान और ऐश्वर्य्य की इच्छा करो तथा अध्यापन और परीक्षा सदा ही करो ॥७॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती । अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥८॥

पदार्थः—हे (अघ्न्या) नहीं हिंसा करने योग्य (माध्वी) मधुर स्वभाव वाले (शुभः, पती) कल्याण कारक व्यवहार के पालन करने वाले (अश्विना) ब्रह्मचर्य्य से प्राप्त हुई विद्या जिन को ऐसे स्त्री पुरुषो (युवम्) आप दोनों (अस्मिन्) इस गृहाश्रम नामक (यज्ञे) उत्तम प्रकार प्राप्त होने योग्य यज्ञ में (जरितारम्) स्तुति करने और (अवस्युम्) अपने कल्याण की इच्छा वा कामना करने वाले (गृणन्तम्) स्तुति करते हुए जन को (उप, भूषथः) शोभित करते हो (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को भी (श्रुतम्) सुनिये ॥८॥

भावार्थः—जो स्त्री पुरुष गृहाश्रम में वर्त्तमान उत्तम आचरण वाले स्तुतियों से स्तुति करने वाले गृह के कृत्यों को शोभित करते हैं तथा अध्यापन और परीक्षा से विद्या की उन्नति करते हैं वे ही इस जगत् में प्रशंसित होते हैं ॥८॥

फिर स्त्री पुरुष कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

अभू॑दु॒षा रुश॑त्पशु॒राग्निर॑धाय्यृ॒त्वियः॑ । अयो॑जि वां॒ वृषण्वसू॒ रथो॑ दस्रा॒वम॑र्त्यो॒ माध्वी॒ मम॑ श्रुतं॒ हव॑म् ॥९॥

पदार्थः—हे (वृषण्वसू) बलिष्ठ दो देहों को वसाने और (दस्रौ) दुःख के नाश करने वाले (माध्वी) मधुर स्वभाव वाले स्त्री पुरुषो जिन (वाम्) आप दोनों को (रुशत्पशुः) पाला पशु जिसने वह (ऋत्वियः) ऋतु ऋतु में यज्ञ कराने वाला (अग्निः) अग्नि (आ, अधायि) स्थापन किया जाता है और (उषाः) प्रातःकाल के सदृश (अभूत्) होवे और (अमर्त्यः) नहीं विद्यमान मनुष्य जिसमें ऐसा (रथः) वाहन (अयोजि) युक्त किया जाता वे आप दोनों (मम) मेरे (हवम्) आह्वान को (श्रुतम्) सुनिये और हे स्त्री के पति जो पत्नी प्रातःकाल के सदृश होवे उस को निरन्तर प्रसन्न करो ॥९॥

भावार्थः—सदा स्त्री पुरुष ऋतुगामी होवें, सदा शरीर के आरोग्य और पुष्टि को करें तथा विद्या की उन्नति कर के आनन्द की उन्नति करें ॥९॥

इस सूक्त में अश्विपद व्याप्त विद्वान् स्त्री पुरुष के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में पिचहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य षट्सप्ततितमस्य सूक्तस्य अत्रिर्ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ २ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ । ४ । ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले छिहत्तरवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर स्त्री पुरुष कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं ॥

आ भा॑त्य॒ग्निरु॒षसा॒मनी॑क॒मुद्विप्रा॑णां देव॒या वाचो॑ अस्थुः ।
अ॒र्वाञ्चा॑ नू॒नं र॑थ्ये॒ह या॑तं पीपि॒वांस॑मश्विना घ॒र्मम॑च्छ ॥१॥

पदार्थः—हे (रथ्या) वाहनों में प्रवीण (अर्वाञ्चा) नीचे चलने वाले (अश्विना) स्त्री पुरुषो जो (विप्राणाम्) बुद्धिमानों की (देवयाः) विद्वानों को प्राप्त होने वाली (वाचः) वाणियां (अस्थुः) हैं और जो (उषसाम्) प्रभात वेलाओं की (अनीकम्) सेनारूप (अग्निः) सूर्य्यरूप से परिणत हुआ अग्नि (उत्) ऊपर को (भाति) प्रकाशित होता है उनसे (इह) इस संसार में (पीपिवांसम्) उत्तम प्रकार बढ़ते हुए (घर्मम्) गृहाश्रम के कृत्य नामक यज्ञ को (नूनम्) निश्चित (अच्छ) अच्छे प्रकार (आ) सब प्रकार से (यातम्) प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थः—हे बुद्धिमान् जनो ! जैसे बिजुली आदि अग्नि बहुत कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही स्त्री पुरुष मिल कर गृह कृत्यों को सिद्ध करें ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

न सं॒स्कृ॒तं प्र मि॑मीतो॒ गमि॑ष्ठा॒न्ति नू॒नम॒श्विनोप॑स्तुते॒ह ।
दिवा॑भिपि॒त्वेऽव॒साग॑मिष्ठा॒ प्रत्यव॑र्तिं दा॒शुषे॒ शम्भ॑विष्ठा ॥२॥

पदार्थः—हे (गमिष्ठा) अतिशय चलने वाले (शम्भविष्ठा) अतिशय सुख कारक और (नूनम्) निश्चित (उपस्तुता) प्राप्त हुई प्रशंसा से कीर्त्ति को पाये हुए (अश्विना) स्त्री पुरुषो आप (इह) इस संसार में (संस्कृतम्) किया संस्कार जिसका उस को (न) नहीं (प्र, मिमीतः) उत्पन्न करते हो और (अभिपित्वे) सब ओर से प्राप्त होने पर (अवसा) रक्षण आदि से (अवर्तिम्) अमार्ग के (प्रति) प्रतिकूल उत्पन्न करते हो और (दाशुषे) दान करने वाले के लिये (दिवा) दिवस से (अन्ति) समीप में (आगमिष्ठा) चारों ओर अतिशय चलने वाले होओ ॥२॥

भावार्थः—जो गृहस्थ जन—किया है संस्कार जिन का ऐसे पदार्थों का वृथा नहीं नाश करते हैं वे लक्ष्मीवान् होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उता यांतं सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३॥

पदार्थः—हे (अश्विना) व्याप्तसुख स्त्री पुरुषो तुम (अह्नः) दिवस के (मध्यन्दिने) मध्याह्न भाग में और (प्रातः) प्रभात समय में (सूर्य्यस्य) सूर्यमण्डल के (उदिता) उदय होने में और दिन के (सङ्गवे) सायं समय में जिसमें गौयें संगत होतीं अर्थात् चर के आतीं (दिवा) दिन (नक्तम्) रात्रि (शन्तमेन) अत्यन्त सुख से (अवसा) रक्षा आदि के साथ (आ, यातम्) आओ (उत) और तुम दोनों की जो (पीतिः) पिआवट (आ, ततान) विस्तृत होती है उसको (इदानीम्) अब (न) नहीं नाश करो ॥३॥

भावार्थः—किया विवाह जिन्होंने वे स्त्री पुरुष प्रातः, मध्याह्न, सायं समयों में दिन रात्रि को कल्याण करने वाले कर्म्मों को सुखों से प्राप्त हों कभी आलस्य मत करें ॥३॥

फिर गृहस्थों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् ।
आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥४॥

पदार्थः—हे (दिवः) प्रकाश से (बृहतः) बड़े (पर्वतात्) मेघ और (अद्भ्यः) जलों से (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) पराक्रम को (आ) सब प्रकार से (वहन्ता) प्राप्त करने वाले (अश्विना) स्त्री पुरुषो (नः) हम लोगों को वा हम लोगों के (इदम्) इस (दुरोणम्) गृह को (आ) सब प्रकार से (यातम्) प्राप्त होओ (हि) जिससे (इदम्) यह (वाम्) आप दोनों के (प्रदिवि) उत्तम प्रकाश में (स्थानम्) स्थित होते है जिस में उस (ओकः) गृह को (इमे) ये (गृहाः) ग्रहण करने वाले गृहस्थ जन प्राप्त होते हैं उनको सब प्रकार से प्राप्त होओ ॥४॥

भावार्थः—जो गृहस्थ जन गृहाश्रम के कर्म्मों को पूर्ण रीति से करते हैं वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं ॥४॥

मनुष्यों को चाहिये कि पुरुषार्थ और विद्वानों के संग से ऐश्वर्य्य को प्राप्त करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अश्विनोः) अन्तरिक्ष और पृथिवी के सदृश राजा और उपदेशक के (नूतनेन) नवीन (अवसा) अन्न आदि और (मयोभुवा) सुखकारक से और (सुप्रणीती) उत्तम नीति से (नः) हम लोगों के लिये (रयिम्) धन को (आ) सब प्रकार (वहतम्) प्राप्त कराते हुए को (वीरान्) वीरों को (उत) और (विश्वानि) संपूर्ण (अमृता) स्वादु जलों और (सौभगानि) उत्तम धनादि ऐश्वर्यों के भाव रूपों को (आ) सब प्रकार प्राप्त कराते हुए को हम लोग (सम्, आ, गमेम) उत्तम प्रकार से प्राप्त होवें वैसे आप लोग भी प्राप्त होओ ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो लोग यथार्थ वक्ताओं के उपदेश से राजा की न्याय व्यवस्था के साथ वर्त्ताव करके न्याय से उत्तम पुरुषों को और संपूर्ण ऐश्वर्य्यों को प्राप्त होते हैं वे अभीष्ट पदार्थों की सिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि, अश्वि, राजा और उपदेशक के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये

यह पंचम मण्डल में छिहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य सप्तसप्ततितमस्य सूक्तस्य अत्रिर्ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ । २ । ३ । ४ । ५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले सतहत्तरवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम जैसे (पुरा) पहिले (प्रातर्यावाणा) जो सूर्य्य और उषा प्रातर्वेला में चलते हैं उन (प्रथमा) प्रथम और विस्तीर्ण स्वरूप वालों को और (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जनों को (यजध्वम्) मिलाओ और (अररुषः) नहीं देने वाले की (गृध्रात्) अभिकांक्षा से रस को (पिबातः) पीते और (प्रातः, हि) प्रातःकाल ही (यज्ञम्) राज्य पालन को (दधाते) धारण करते हैं उनकी (पूर्वभाजः) पूर्वजनों के आदर करने वाले (कवयः) बुद्धिमान् जन (प्र, शंसन्ति) प्रशंसा करते हैं वैसे उनको आप लोग जानो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो राजा और

उपदेशक जन दिन में शयनरहित और जिनकी विद्वान् जन स्तुति करते हैं उनके सत्संग से आप लोग कांक्षा सिद्धि करो ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।
उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वःपूर्वो यजमानो वनीयान् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आप लोग (प्रातः) प्रभात काल में (अश्विना) सूर्य्य और उषा को (यजध्वम्) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिये और (हिनोत) वृद्धि कीजिये जहां (न) नहीं (सायम्) सन्ध्याकाल (अस्ति) है वहां जो (देवयाः) श्रेष्ठ गुण और विद्वानों को प्राप्त होने वाले हैं उनका (अजुष्टम्) सेवन करिये और जो (अन्यः) अन्य (अस्मत्) हम लोगों से (यजते) मिलता है (च) और जो (वि, आवः) विशेष रक्षा करता है वह (उत) भी (पूर्वः पूर्वः) पहिला पहिला (यजमानः) यज्ञ करने वाला (वनीयान्) अतिशय विभाग करने वाला होता है उसका भी सत्कार करो ॥२॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि प्रतिदिन रात्रि के चौथे शेष प्रहर में उठकर जैसे नियम से अन्तरिक्ष और पृथिवी वर्त्तमान हैं वैसे वर्त्ताव करके सब की रक्षा करें ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

हिरंण्यत्वङ् मधुंवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्त्तते वाम् ।
मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥३॥

पदार्थः—हे (अश्विना) शिल्प विद्या के जानने वालो (वाम्) आप दोनों का (हिरण्यत्वक्) तेज और सुवर्ण के सदृश त्वचा पर का वर्ण और (मधुवर्णः) देखने योग्य वर्ण जिस का वह (घृतस्नुः) जल को शुद्ध करने वाला (पृक्षः) अन्न आदि को (वहन्) प्राप्त होता वा प्राप्त कराता हुआ (रथः) विमान आदि वाहन को (आ, वर्त्तते) सब प्रकार वर्त्तमान है और जिस को (मनोजवाः) मन के सदृश वेग वाले (वातरंहाः) वायु के सदृश वेग युक्त अग्नि आदि पदार्थ प्राप्त होते हैं और (येन) जिस रथ से (विश्वा) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुःख से प्राप्त होने योग्य स्थानान्तरों को (अतियाथः) अत्यन्त प्राप्त होते हैं उस को आप दोनों रचिये ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य विमानादिकों को अग्नि और जलादिकों से

चलावें तो वे विमान आदि मन और वायु के सदृश शीघ्र जा कर लौट आवें ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे ।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित्तुतुर्यात् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (नासत्याभ्याम्) नहीं विद्यमान असत्य जिनके उनसे (शमीभिः) कर्म्मों के द्वारा (भूयिष्ठम्) अतीव बहुत (चनिष्ठम्) अतिशय अन्न को (विवेष) व्याप्त होता है और (पित्वः) अन्न के (विभागे) विभाग में (ररते) देता है (सः) वह (अनूर्ध्वभासः) नहीं ऊपर कान्तियां जिसकी (अस्य) इसके (तोकम्) सन्तान का (पीपरत्) पालन करे वह (इत्) ही (सदम्) प्राप्त दुःख का (तुतुर्यात्) नाश करे ॥४॥

भावार्थः—जो अग्नि और जल से बहुत कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वे जगत् का रक्षण करके सम्पूर्ण दुःख के नाश करने योग्य हैं ॥४॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (अश्विनोः) अग्नि और जल के समीप से (नूतनेन) नवीन (मयोभुवा) सुख के साधक (अवसा) रक्षण आदि और (सुप्रणीती) श्रेष्ठ नीति से (नः) हम अपने लिये (रयिम्) धन को (आ, वहतम्) प्राप्त कराते हुए को और हमारे लिये (वीरान्) शूरता आदि गुणों से युक्त पुरुषों को (उत) और (विश्वानि) संपूर्ण (अमृता) जलों के सदृश सुख कारक (सौभगानि) सुन्दर ऐश्वर्य्यों को प्राप्त कराते हुए को (सम्, आ, गमेम) मिलें वैसे उनको आप लोग भी (आ) उत्तम प्रकार मिलिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० - जैसे यथार्थवक्ता जन सब के साथ वर्त्ताव करें वैसे इन सब लोगों को वर्त्ताव करना चाहिये ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि, जल, विद्वान् और राजा के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में सतहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्याष्टसप्ततितमस्य सूक्तस्य सप्तवध्रिरात्रेय ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ । २ । ३ उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ४ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ । ६ अनुष्टुप् । ७ । ८ । ९ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले अठहत्तरवें सूक्त का आरम्भ किया है उसके प्रथम मंत्र में फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥१॥

पदार्थः—हे (नासत्या) सत्य व्यवहार से युक्त तथा (अश्विनौ) वायु और जल के सदृश उपदेश देने वा ग्रहण करने वाले आप दोनों (इह) इस संसार में (हंसाविव) दो हंसों के सदृश (आ, गच्छतम्) आइये और (सुतान्) उत्पन्न हुए पदार्थों के (उप) समीप (आ) सब प्रकार (पततम्) प्राप्त हूजिये तथा (मा, वि, वेनतम्) विरुद्ध कामना मत कीजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो विमान से हंस के सदृश अन्तरिक्ष में जा आकर विरुद्ध आचरण का त्याग करके सत्य की कामना करते हैं वे बहुत सुख को प्राप्त होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥२॥

पदार्थः—हे (अश्विना) यजमान और यज्ञ कराने वाले आप दोनों (हंसाविव) दो हंसों के सदृश (सुतान्) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य्य आदिकों के (उप) समीप (आ, पततम्) आइये तथा (यवसम्) सोमलता के (अनु) पश्चात् (हरिणाविव) जैसे हरिण दौड़ते हैं वैसे और (गौराविव) जैसे दो मृग दौड़ते हैं वैसे आइये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य जल और बिजुली को सिद्ध करते हैं वे हरिण के सदृश शीघ्र जाने के योग्य हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥३॥

पदार्थः – हे (वाजिनीवसू) विज्ञान क्रिया को वसाने वाले (अश्विना) अध्यापक और उपदेशक जनो आप लोग (इष्टये) इष्ट सुख की प्राप्ति के लिये (यज्ञम्) विज्ञान की संगतिमय यज्ञ का (आ) सब प्रकार से (जुषेथाम्) सेवन करिये तथा (हंसाविव) दो हंसों के समान (सुतान्) पुत्र के सदृश वर्त्तमान शिक्षा करने योग्य शिष्यों के (उप) समीप (पततम्) प्राप्त हूजिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—उपदेशक जन सम्पूर्ण शिक्षा करने योग्य मनुष्यों को पुत्र के सदृश मान कर और सब जगह भ्रमण कर के सत्य उपदेश से कृतकृत्य करें ॥३॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।

श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥४॥

पदार्थः—हे (अश्विना) सूर्य्य और चन्द्रमा के सदृश वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशक जनो (यत्) जो (अत्रिः) त्रिविध दुःखरहित (वाम्) आप दोनों को (अवरोहन्) प्राप्त होता हुआ (योषा) स्त्री (नाधमानेव) जो याचना करती उस के समान (ऋबीसम्) सरल को (अजोहवीत्) अत्यन्त आह्वान करता है उस के साथ (श्येनस्य) वाज पक्षी के (नूतनेन) नवीन (शन्तमेन) अतिशय सुखकारक (जवसा) वेग के (चित्) सदृश मान से (आ, अगच्छतम्) आइये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो विद्वानों के अनुकरण से सरल स्वभाव को स्वीकार कर के प्रयत्न करते हैं वे सर्वदा सुखी होते हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।

श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥५॥

पदार्थः – हे (अश्विना) विद्या से व्याप्त अध्यापक और परीक्षक जनो (मे) मेरे (हवम्) शब्द को (श्रुतम्) श्रवण को (च) और (सप्तवध्रिम्) नष्ट हुए सात इन्द्रिय जिस के उसका (मुञ्चतम्) त्याग करो और (वनस्पते) हे वनस्पति (सूष्यन्त्याइव) गर्भवती स्त्री के सदृश (योनिः) कारण आप (वि) विशेष करके (जिहीष्व) त्याग करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—आप लोग यथार्थवक्ता अध्यापक

और उपदेशकों की इच्छा करिये और जैसे गर्भवती स्त्री बालक का त्याग करती है वैसे ही अन्तःकरण से अविद्या को दूर करिये ॥५॥

इस के अनन्तर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥६॥

पदार्थः—हे (अश्विना) अध्यापक और उपदेशकजनो (युवम्) आप दोनों (मायाभिः) बुद्धियों से (भीताय) भय को प्राप्त (नाधमानाय) उपतप्यमान और (सप्तवध्रये) पांच ज्ञानेन्द्रियां मन और बुद्धि ये सात नष्ट हुई जिसकी अर्थात् इन की प्रबलता से रहित उसके लिए और (ऋषये) वेदार्थ के जानने वाले के लिए (च) भी (सम्, अचथः) उत्तम प्रकार जाइये (वृक्षम्, च) और जो काटा जाता उस वृक्ष को (वि) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिये ॥६॥

भावार्थः—विद्वानों की योग्यता है कि बुद्धि के देने से अविद्यादि भय के कारण डरे हुओं को भयरहित करके तथा संसार में मोह और अधर्म्म के योग से वियुक्त करके सुखी करें ॥६॥

कैसा गर्भ और जन्म इस विषय को कहते हैं ॥

यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः ।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यथा) जिस प्रकार से (वातः) पवन (पुष्करिणीम्) छोटे तलावों को (सर्वतः) सब ओर से (समिङ्गयति) उत्तम प्रकार हिलाता है वैसे (एवा) ही (ते) आपका (गर्भः) जो धारण किया जाता वह गर्भ (एजतु) कंपित होवे और (दशमास्यः) दश महीनों में हुआ (निरैतु) निकले ऐसा जानो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो स्त्रीपुरुष ब्रह्मचर्य्य से विद्या को पढ़ के विवाह करें तो दशवें मास में प्रसव हो ऐसा जानना चाहिए ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥८॥

पदार्थः—हे (दशमास्य) दश महीनों में उत्पन्न हुए (यथा) जिस प्रकार से

(वातः) वायु (यथा) जिस प्रकार से (वनम्) जङ्गल (यथा) जिस प्रकार से (समुद्रः) समुद्र (एजति) कम्पित होता वा चलता है वैसे (एवा) ही (त्वम्) आप (जरायुणा) देह के ढांपने वाले के (सह) सहित (अव, इहि) आइये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—वही गर्भ और उसमें स्थित वालक उत्तम होता है जो दशवें महीने में होता है ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (जीवः) प्राण आदि का धारण करने वाला (अधि) ऊपर (मातरि) माता में (दश) दश (मासान्) महीनों तक (शशयानः) शयन करता हुआ (अक्षतः) घाव से रहित (कुमारः) वालक (निरैतु) निकले वह (जीवः) जीव (जीवन्त्याः) जीवती हुई के (अधि) ऊपर जीवता है ॥९॥

भावार्थः—वे ही सन्तान उत्तम होते हैं कि जो दश महीने पूर्ण हों जबतक तबतक गर्भ में स्थित होकर प्रकट होते हैं ॥९॥

इस सूक्त में अश्विपद वाच्य स्त्रीपुरुष के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पिछले सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में अठहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्यैकोनाऽशीतितमस्य सूक्तस्य सत्यश्रवा आत्रेय ऋषिः । उषा देवता । १ स्वराड्ब्राह्मी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । २ । ३ । ७ भुरिग्बृहती । १० स्वराड् बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । ४ । ५ । ८ पङ्क्तिः । ६ । ९ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब दश ऋचावाले उन्नासिवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में स्त्री कैसी हो इस विषय को कहते हैं ॥

महे नो अद्य बोधयोषो राये दिवित्मती ।
यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥१॥

पदार्थः—हे (उषः) श्रेष्ठ गुणों से प्रातः काल के सदृश वर्त्तमान (वाय्ये) डोरे के सदृश फैलाने योग्य सन्ततिरूप (सुजाते) उत्तम रीति से उत्पन्न (अश्वसूनृते)

बड़ी प्रिया वाणी जिस की ऐसी हे स्त्रि (यथा) जैसे (विवित्मती) प्रकाश से युक्त प्रातर्वेला (महे) बड़े (राये) धन के लिए प्रबोध देती है वैसे (अद्य) आज (नः) हम लोगों को (बोधय) जनाइये और (चित्) भी (सत्यश्रवसि) सत्यों के श्रवण सत्य वा अन्न में (नः) हम लोगों को (अबोधयः) जनाइये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं० – जैसे प्रातर्वेला दिन को उत्पन्न कर के सब को जगाती है वैसे ही विद्यायुक्त स्त्री अपने सन्तानों को अविद्या के सदृश वर्त्तमान निद्रा से उठा कर विद्या को जनाती है ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

या सुनीथे शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः ।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥२॥

पदार्थः – हे (अश्वसूनृते) बड़े अन्न से युक्त (सुजाते) उत्तम संस्कारों से उत्पन्न (वाय्ये) जनाने योग्य (सहीयसि) अतिशय सहने वाली (दिवः) सूर्य्य की (दुहितः) पुत्री के समान वर्त्तमान स्त्री (या) जो तू (शौचद्रथे) पवित्र रथ में (सुनीथे) श्रेष्ठ न्याय में (सत्यश्रवसि) सत्य का श्रवण जिसमें उसमें (वि, औच्छः) विशेष वसाती है (सा) वह तू हम लोगों को सुख में (वि, उच्छ) विशेष वसावे ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० जैसे प्रातर्वेला सब को सुख में वसाती है वैसे ही श्रेष्ठ स्त्री आनन्दयुक्त गृहाश्रम में सब को वसाती है ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

सा नो अद्याभरद्वसुर्व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
यो व्यौच्छः सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥३॥

पदार्थः—हे (सत्यश्रवसि) सत्य व्यवहार से प्राप्त अन्न आदि ऐश्वर्य्य वाली (सुजाते) अच्छी विद्या से प्रकट हुई (वाय्ये) प्राप्त होने योग्य (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञान से युक्त (सहीयसि) अतिशय सहनशील और (दिवः) कामना करते हुए की (दुहितः) कन्या के सदृश विदुषी स्त्री (यो) जो तू (आभरद्वसुः) सब प्रकार से धनों को धारण करने वाली हुई (नः) हम लोगों को (वि) विशेष करके (औच्छः) निवास कराने वाली है (सा) वह आप (अद्य) आज उत्तम सुख में (वि) विशेष करके (उच्छ), निवास कराओ ॥३॥

भावार्थः—जो स्त्रियां प्रातर्वेला के सदृश श्रेष्ठ गुणवाली हों तो सब को आनन्द में वसाने के योग्य होती हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अभि ये त्वा विभावरि स्तोमैर्गृणन्ति वह्नयः ।
मघैर्मघोनि सुश्रियो दामन्वन्तः सुरातयः सुजाते अश्वसूनृते ॥४॥

पदार्थः—हे (मघोनि) बहुत धन से युक्त (सुजाते) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञान से युक्त और (विभावरि) प्रकाशवती प्रातर्वेला के सदृश वर्त्तमान विद्यायुक्त स्त्री (ये) जो विद्वान् जन (सुश्रियः) सुन्दर लक्ष्मी जिन की ऐसे (दामन्वन्तः) बहुत दान क्रिया से युक्त (सुरातयः) सुन्दर दान की इच्छा जिन की वे (वह्नयः) पहुंचाने वाले अग्नियों के समान वर्त्तमान विद्वान् जन (मघैः) धनों से और (स्तोमैः) स्तोत्रों से (त्वा) आप की (अभि) सन्मुख (गृणन्ति) स्तुति करते हैं वे आप से सत्कार करने योग्य हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे अग्नि प्रातर्वेलाओं के कर्त्ता हैं वैसे ही शिक्षक जन विद्या की प्राप्ति करने वाले हों ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यच्चिद्धि ते गणा इमे छदयन्ति मघत्तये ।
परि चिद्वष्टयो दधुर्ददतो राधो अह्रयं सुजाते अश्वसूनृते ॥५॥

पदार्थः—हे (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञान से युक्त (सुजाते) उत्तम विद्या से प्रकट हुई विदुषि स्त्रि ! (यत्) जो (इमे) ये (वष्टयः) कामना करते हुए (ते) आप के (गणाः) समूह (मघत्तये) धनदान के लिए (अह्रयम्) लज्जा आदि दोष से रहित को (चित्) और (राधः) धन को (ददतः) देनेवालों को (चित्) निश्चय (छदयन्ति) प्रबल करते हैं वे निश्चय (हि) ही सुखों को (परि, दधुः) धारण करें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे प्रातःकाल के किरणसमूह अपने तेज से सब को ढांपते हैं वैसे ही शुभगुण वाली स्त्रियां अपने शुभ-गुणों से सब को आच्छादित करती हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ऐषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु ।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥६॥

पदार्थः – हे (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञानवाली (सुजाते) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (मघोनि) प्रशंसित धन से युक्त और (उषः) प्रातःकाल के सदृश वर्त्तमान उत्तम स्त्री तू (एषु) इन स्त्री पुरुषों और (सूरिषु) विद्वानों में (वीरवत्) वीरजन विद्यमान जिसमें उस (यशः) यश को (आ) सब प्रकार से (धाः) धारण कर और (ये) जो (मघवानः) बहुत धनों से युक्त जन (नः) हम लोगों को (अह्रया) विना लज्जा से कहे गये (राधांसि) अन्नों को (अरासत) देवें उनका तू सत्कार कर ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० - वही प्रशंसित स्त्री है जो पिता और पति के कुल में श्रेष्ठ आचरण से पिता और पति के कुल को प्रकाशित करे ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तेभ्यो॑ द्यु॒म्नं बृ॒हद्यश॒ उषो॑ मघो॒न्या व॑ह ।

ये नो॒ राधां॒स्यश्व्या॑ ग॒व्या भज॑न्त सू॒रयः॒ सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ॥७॥

पदार्थः—हे (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञान से युक्त और (सुजाते) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (मघोनि) बहुत धनवती (उषः) प्रातःकाल के सदृश वर्त्तमान विदुषि स्त्रि ! (ये) जो (नः) हम लोगों में (सूरयः) विद्वान् जन (अश्व्या) घोड़ों के लिए और (गव्या) गौओं के लिए हितकारक (राधांसि) धनों का (भजन्त) सेवन करते हैं (तेभ्यः) उन विद्वानों के लिए (बृहत्) बड़े (द्युम्नम्) धन और (यशः) यश को (आ, वह) सब प्रकार से प्राप्त कराओ ॥७॥

भावार्थः– जो विद्वान् जन सब के सुख के लिए पदार्थों की वृद्धि करते हैं वे प्रातःकाल के सदृश प्रकाशित यशवाले होकर सुखी होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उ॒त नो॒ गोम॑ती॒रिष॒ आ व॑हा दुहितर्दिवः । सा॒कं सूर्य॑स्य

र॒श्मिभि॑ः शु॒क्रैः शोच॑द्भिर॒र्चिभि॑ः सुजा॑ते॒ अश्व॑सूनृते ॥८॥

पदार्थः—हे (सुजाते) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञान से युक्त और (दिवः) प्रकाशमान की (दुहितः) कन्या के सदृश वर्त्तमान स्त्रि (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (रश्मिभिः) किरणों के (साकम्) साथ (उत) और (शुक्रैः) शुद्ध (शोचद्भिः) पवित्र करने वाले (अर्चिभिः) श्रेष्ठ गुण कर्म्म और स्वभावों के साथ (नः) हम लोगों को (गोमतीः) गौवें विद्यमान जिनमें उन (इषः) अन्न आदिकों को (आ, वहा) सब प्रकार से प्राप्त कराइये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जैसे सूर्य्य की किरणों से उत्पन्न उषा उपकार करने वाली होती है वैसे ही शुभगुण कर्म और स्वभावों के सहित स्त्री आनन्द और उपकार करने वाली होती है ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः । नेत्त्वा स्तेनं

यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ॥९॥

पदार्थः—हे (सुजाते) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञान से युक्त (दिवः) प्रकाश की (दुहितः) कन्या के सदृश वर्त्तमान उत्तम आचरण वाली स्त्रि तू (अपः) कर्मको (चिरम्) बहुत काल पर्यन्त (मा) नहीं (तनुथाः) विस्तार कर (यथा) जैसे (रिपुम्) शत्रुको (तपाति) संतापित करती है वैसे (स्तेनम्) चोर को सन्तापित कर और (त्वा) तुझको कोई भी (न) नहीं सन्ताप युक्त करे और जैसे (अर्चिषा) तेज से (सूरः) सूर्य सब को तपाता है वैसे (इत्) ही तू दुष्टजनों को सन्तापित करके हम लोगों को (वि, उच्छा) अच्छे प्रकार वसाओ ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो स्त्री और पुरुष मन्द, आलसी और चोर नहीं होते हैं वे सूर्य्य के सदृश प्रकाशित होते हैं ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एतावद्वेदुंषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि । या स्तोतृभ्यो

विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥१०॥

पदार्थः—हे (अश्वसूनृते) बड़े ज्ञान से युक्त (सुजाते) उत्तम विद्या से प्रकट हुई (विभावरि) प्रकाशमान और (उषः) प्रातर्वेला के सदृश वर्त्तमान स्त्री (त्वम्) तू (एतावत्) इतने को (वा) वा (भूयः) अधिक को (वा) भी (दातुम्) देने को (अर्हसि) योग्य है और (या) जो तू (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वालों के लिए (उच्छन्ती) निवास करती हुई वर्त्तमान है वह तू अपने स्वरूप से (इत्) ही (न) नहीं (प्रमीयसे) मरती है ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे स्त्रीजनो ! जैसे उषर्वेला थोड़ी भी बड़े आनन्दों को देती है वैसे तुम होओ ॥१०॥

इस सूक्त में प्रातः, और स्त्री के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह पंचम मण्डल में उन्नासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडर्चस्याऽशीतितमस्य सूक्तस्य सत्यश्रवा आत्रेय ऋषिः । उषा देवता । १ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । ४ । ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले अस्सीवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में स्त्रियों के गुणों को कहते हैं ॥

द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्तीं प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥१॥

पदार्थः—हे स्त्रि जैसे (विप्रासः) बुद्धिमान् जन (मतिभिः) बुद्धियों से और (ऋतेन) जल के सदृश सत्य से (द्युतद्यामानम्) प्रहरों को प्रकाश करती और (बृहतीम्) बढ़ती हुई (ऋतावरीम्) बहुत सत्य आचरण से युक्त (अरुणप्सुम्) लालरूप वाली (विभातीम्) प्रकाश करती हुई (देवीम्) प्रकाशमान और (स्वः) सूर्य्य के सदृश विद्या के प्रकाश को (आ, वहन्तीम्) धारण करती हुई (उषसम्) उपर्वेला को (प्रति) उत्तम प्रकार (जरन्ते) स्तुति करते हैं उनकी तू प्रशंसा कर ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे बुद्धिमान् पति उषःकाल आदि पदार्थों की विद्या को जानकर क्षणभर भी काल व्यर्थ नहीं व्यतीत करते हैं वैसे ही स्त्रियां भी व्यर्थ समय न व्यतीत करें ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती यात्यग्रे ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे अह्नाम् ॥२॥

पदार्थः—हे उत्तम स्वभाववाली स्त्रियो जैसे (एषा) यह (बृहद्रथा) बड़े रथ जिसके ऐसी (बृहती) बड़ी (विश्वमिन्वा) संपूर्ण जगत् को प्रक्षेप करती अलग करती और (जनम्) मनुष्य को और (दर्शता) देखने योग्य भूमियों को (बोधयन्ती) जनाती हुई (सुगान्) सुखपूर्वक जिनमें चलें उन (पथः) मार्गों को (कृण्वती) प्रकाशित करती हुई (उषाः) प्रातर्वेला (अग्रे) दिन से आगे (याति) चलती है और (अह्नाम्) दिनों के (अग्रे) पहिले से (ज्योतिः) प्रकाश को (यच्छति) देती है वैसे तुम होओ ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो स्त्रियां प्रभातवेला के सदृश अपने पति आदि को सूर्य्योदय से पहिले जगातीं, गृह और बाहर के मार्गों को साफ करतीं, आते हुए पतियों के साथ जोड़ के आगे खड़ी होतीं और

सब काल में विज्ञान को देती हैं वे ही देश और कुल को शोभन करने वाली हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्रेधन्ती रयिमप्रायु चक्रे ।
पथो रदन्ती सुवितायं देवी पुरुष्टुता विश्ववारा विभाति ॥३॥

पदार्थः—हे विद्यायुक्त स्त्रि जैसे (एषा) यह प्रातर्वेला (अरुणेभिः) चारो ओर रक्त वर्ण वाले (गोभिः) किरणों के साथ (युजाना) युक्त और (रयिम्) धन को (अस्रेधन्ती) सिद्ध करती हुई (अप्रायु) नहीं नष्ट होने वाले को (चक्रे) करती है और (पथः) मार्गों को (रदन्ती) खोदती हुई (पुरुष्टुता) बहुतों से प्रशंसा की गई (विश्ववारा) संपूर्ण मनुष्यों से स्वीकार करने योग्य (देवी) प्रकाशित होती हुई (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिए (वि, भाति) विशेष करके प्रकाशित होती है वैसे आप होओ ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे पतिव्रता, विद्यायुक्त और चतुर स्त्री गृह को प्रकाशित करने वाली होती है वैसे ही प्रातर्वेला ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने वाली है ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं पुरस्तात् ।
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति ॥४॥

पदार्थः—हे विद्यायुक्त स्त्रि जैसे (एषा) यह प्रातर्वेला (पुरस्तात्) प्रथम (तन्वम्) शरीर को (आविष्कृण्वाना) और संपूर्ण रूपवाले द्रव्यों की प्रकटता करती हुई (द्विबर्हाः) दिन और रात्रि से बढ़ाने वाली (व्येनी) विशेष हरणी के सदृश वेगयुक्त (भवति) होती है और (ऋतस्य) सत्यके (पन्थाम्) मार्ग की (अनु, एति) अनुगामिनी होती है और (साधु) उत्तम विज्ञान को (प्रजानतीव) विशेष करके जानती हुई सी (दिशः) दिशाओं का (न) नहीं (मिनाति) नाश करती है वैसा तू वर्त्ताव कर ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सती स्त्री गृहाश्रम के मार्ग को प्रकाशित करके सम्पूर्ण सुखों को प्रकट करती है वैसे ही प्रातर्वेला वर्त्तमान है ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव स्नाती दृशये नो अस्थात् ।
अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥५॥

पदार्थः—हे श्रेष्ठ लक्षणों वाली स्त्रि जैसे (एषा) यह (उषाः) प्रातर्वेला (शुभ्रा) श्वेतवर्ण वाली बिजुली के (न) सदृश (तन्वः) शरीरों को (विदाना) जनाती हुई (ऊर्ध्वेव) ऊपर सी स्थित (स्नाती) शुद्ध और (नः) हम लोगों के (दृशये) दर्शन के लिये (अस्थात्) स्थित होती है और (द्वेषः) द्वेष करने वाले जनों और (तमांसि) रात्रियों को (अप, बाधमाना) निवारण करती हुई (दिवः) सूर्य्य की (दुहिता) कन्या के सदृश वर्त्तमान (ज्योतिषा) प्रकाश से (आ, अगात्) प्राप्त होती है वैसे तू हो ॥५॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०– जैसे कुलीन स्त्री जलादिकों और इन्द्रियों के निग्रहों से बाहर और भीतर से शुद्ध, गृहस्थान्धकार को निवृत्त करती हुई सब के शरीर की रक्षा करती है और गृह के कृत्यों में चतुर है वैसे ही प्रातर्वेला होती है ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

एषा प्रतीची दुहिता दिवो नॄन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥६॥

पदार्थः—हे शुभ लक्षणों वाली स्त्री जैसे (एषा) यह प्रातर्वेला (दिवः) सूर्य्य की (दुहिता) कन्या के सदृश (नॄन्) अग्रणी श्रेष्ठ पुरुषों को (योषेव) स्त्री के सदृश (भद्रा) कल्याण करने वाली (प्रतीची) पश्चिम दिशा को प्राप्त (अप्सः) सुन्दर रूप को (नि, रिणीते) अत्यन्त प्राप्त होती है और (दाशुषे) देने वाले के लिये (वार्य्याणि) स्वीकार करने योग्य धन आदि को (व्यूर्ण्वती) विशेष करके आच्छादित करती हुई (पूर्वथा) पहिली के सदृश (पुनः) फिर (ज्योतिः) ज्योतिः रूप को (युवतिः) प्राप्त यौवनावस्था वाली के सदृश (अकः) करती है वैसी तुम होओ ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—जो स्त्रियां शुभ आचरण वालीं और युवावस्था को प्राप्त हुईं अपने सदृश पतियों को प्राप्त होकर सम्पूर्ण गृह कृत्यों को व्यवस्थापित करती हैं वे प्रातर्वेला के सदृश अत्यन्त शोभित होती हैं ॥६॥

इस सूक्त में प्रातर्वेला और स्त्री के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये

यह पंचम मण्डल में अस्सीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकाऽशीतितमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः। सविता देवता। १। ५ जगती। २ विराड् जगती। ४ निचृज्जगतीछन्दः। निषादः स्वरः। ३ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब पांच ऋचा वाले इक्यासीवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में योगीजन क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं॥

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (होत्राः) लेने वा देने वाले (विप्राः) बुद्धिमान् जोगीजन (विप्रस्य) विशेष कर के व्याप्त होने वाले (बृहतः) बड़े (विपश्चितः) अनन्त विद्यावान् (सवितुः) सम्पूर्ण जगत् के उत्पन्न करने वाले (देवस्य) सम्पूर्ण जगत् के प्रकाशक परमात्मा के मध्य में (मनः) मननस्वरूप मन को (युञ्जते) युक्त करते (उत) और (धियः) बुद्धियों को (युञ्जते) युक्त करते हैं और जो (वयुनावित्) प्रज्ञानों को जानने वाला (एकः) सहायरहित अकेला (इत्) ही संपूर्ण जगत् को (वि, दधे) रचता और जिस की (मही) बड़ी आदर करने योग्य (परिष्टुतिः) सब ओर व्याप्त स्तुति है वैसे उस में आप लोग भी चित्त को धारण करो ॥१॥

भावार्थः- अनेक विद्याबृंहित, वुद्धि आदि पदार्थों के अधिष्ठान, जगदीश्वर के बीच जो मन और वुद्धि को निरन्तर स्थापन करते हैं वे समस्त ऐहिक और पारलौकिक सुख को प्राप्त होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं॥

विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (कविः) सर्व पदार्थों का जाननेवाला सर्वज्ञ (वरेण्यः) स्वीकार करने योग्य और (सविता) सम्पूर्ण ऐश्वर्यों का देने वाला ईश्वर

(द्विपदे) मनुष्य आदि और (चतुष्पदे) गौ आदि के लिये (भद्रम्) कल्याण को (प्र, असावीत्) उत्पन्न करता और (विश्वा) सम्पूर्ण (रूपाणि) सूर्य्य आदिकों का (प्रति, मुञ्चते) त्याग करता है तथा (नाकम्) नहीं विद्यमान दुःख जिसमें उसका (वि, अख्यत्) प्रकाश करता है वह जैसे (उषसः) प्रातःकाल के (अनु, प्रयाणम्) पीछे गमन को सूर्य (वि, राजति) विशेष करके शोभित करता है वैसे सूर्य्य आदि को प्रकाशित करता है उसकी तुम सब उपासना करो ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने विचित्र और अनेक प्रकार के जगत् को संपूर्ण प्राणियों के सुख के लिये रचा उसी जगदीश्वर की आप लोग उपासना करो ॥२॥

फिर ईश्वर कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

यस्यं प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्यं महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वानों (यस्य) जिस जगदीश्वर (देवस्य) सब के प्रकाशक के (प्रयाणम्) अच्छी तरह चलते हैं जिस से उस मार्ग और (महिमानम्) महिमा को (अनु) पश्चात् (अन्ये,इत्) और ही वसु आदि (देवाः) प्रकाश करने वाले सूर्य्य आदि (ययुः) चलते अर्थात् प्राप्त होते हैं और (यः) जो (एतशः) सर्वत्र व्याप्त (सविता) संपूर्ण ऐश्वर्यों का करने और (देवः) सम्पूर्ण सुखों का देने वाला (महित्वना) महिमा से (ओजसा) पराक्रम से और बल से (पार्थिवानि) अन्तरिक्ष में विदित कार्यों और (रजांसि) लोकों को (विममे) विशेष करके रचता है (सः) वही सब से ध्यान करने योग्य है ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सूर्य्य आदिकों के धारण करने वालों का धारण करने वाला और देने वालों का देने वाला, बड़ों का बड़ा और प्रकृतिरूप कारण से सम्पूर्ण जगत् को रचता है और जिस के पीछे अर्थात् आश्रय से सब जीवते और स्थित हैं वही सम्पूर्ण जगत् का रचने वाला ईश्वर ध्यान करने योग्य है ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उत यांसि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्य्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ।
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥४॥

पदार्थः—हे (सवितः) सम्पूर्ण जगत् को उत्पन्न करने वाले (देव) विद्वन्

जो आप (उत) निश्चय से (त्रीणि) सूर्य्य चन्द्रमा और बिजुली नामक (रोचना) प्रकाशकों को (यासि) प्राप्त होते (उत) और (सूर्य्यस्य) सूर्य की (रश्मिभिः) किरणों से (सम्, उच्यसि) उत्तम प्रकार कहते हो (उत) और (उभयतः) दोनों ओर से (रात्रीम्) अन्धकार को (परि, ईयसे) दूर करते हो (उत) और (धर्म्मभिः) धर्म्माचरणों से (मित्रः) मित्र (भवसि) होते हो वह आप हम लोगों से सत्कार करने योग्य हो ।।४।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सब का स्वामी, ईश्वर तीन – बिजुली, सूर्य्य और चन्द्रमा रूप बड़े दीपों को रचके सर्वत्र व्याप्त और सब का मित्र हुआ और सूर्य आदि को अभिव्याप्त हो और धारण करके प्रकाशित करता है वही सब प्रकार पूज्य है अर्थात् उपासना करने योग्य है ।।४।।

फिर ईश्वर विषय को कहते हैं ।।

उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः ।
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ।।५।।

पदार्थः—हे (सवितः) सत्य व्यवहार में प्रेरणा करने और (देव) संपूर्ण सुखों के देने वाले (ते) आपका जो (श्यावाश्वः) सूर्यलोक (यामभिः) प्रहरों से (स्तोमम्) प्रशंसा को (आनशे) व्याप्त होता है उसके दृष्टान्त से (उत) भी (इदम्) इस (विश्वम्) समस्त (भुवनम्) भुवन को (त्वम्) आप (वि, राजसि) प्रकाशित करते हो (उत) और (पूषा) पुष्टि करने वाले (भवसि) होते हो (उत) और (एकः) द्वितीय रहित (इत्) ही (प्रसवस्य) उत्पन्न हुए जगत् के (ईशिषे) ऐश्वर्य्य का विधान करते हो ।।५।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस के महत्त्व के जनाने के लिये सूर्य्य आदि लोक दृष्टान्त हैं उसी सम्पूर्ण परमैश्वर्य्य के देने वाले का तुम ध्यान करो ।।५।।

इस सूक्त में सत्य व्यवहार में प्रेरणा करने वाले ईश्वर के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ।।

यह पंचम मण्डल में इक्यासीवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ नवर्चस्य द्वयशीतितमस्य सूक्तस्य श्यावाश्व आत्रेय ऋषिः । सविता देवता । १ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ । ४ । ९ निचृद्गायत्री । ३ । ५ । ६ । ७ गायत्री । ८ विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले बयासीवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को किस की उपासना करनी चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (वयम्) हम लोग (भगस्य) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से युक्त (सवितुः) अन्तर्य्यामी (देवस्य) सम्पूर्ण के प्रकाशक जगदीश्वर का जो (श्रेष्ठम्) अतिशय उत्तम और (भोजनम्) पालन वा भोजन करने योग्य (सर्वधातमम्) सब को अत्यन्त धारण करने वाले (तुरम्) अविद्या आदि दोषों के नाश करनेवाले सामर्थ्य को (वृणीमहे) स्वीकार करते और (धीमहि) धारण करते हैं (तत्) उसका तुम लोग स्वीकार करो ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब से उत्तम जगदीश्वर की उपासना करके अन्य की उपासना का त्याग करते हैं वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों से युक्त होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अस्य हि स्वयंशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् ।
न मिनन्ति स्वराज्यम् ॥२॥

पदार्थः—जो (हि) निश्चय से (अस्य) इस परमात्मा (सवितुः) जगदीश्वर का (स्वयशस्तरम्) अपना यश जिस का वह अतिशयित (प्रियम्) अत्यन्त प्रिय (स्वराज्यम्) अपने राज्य को (कत्, चन) कभी (न) नहीं (मिनन्ति) नष्ट करते हैं वे धार्म्मिक होते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो परमात्मा के सम्मुख अज्ञान का नाश करते हैं वे यशस्वी होकर राज्य को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः ।
तं भागं चित्रमीमहे ॥३॥

पदार्थः—जो (सविता) उत्पन्न करने वाला (भगः) ऐश्वर्य्यवान् परमात्मा (दाशुषे) दाताजन के लिए (रत्नानि) धनों को (सुवाति) उत्पन्न करता है (तम्) उस (भागम्) ऐश्वर्य्य सम्बन्धी (चित्रम्) अद्भुत को (ईमहे) प्राप्त होवें वा जानें और (सः, हि) वही उदार दाता है ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य सम्पूर्ण रत्नों के देनेवाले परमात्मा की सेवा करते हैं वे अद्भुत ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् ।

परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥४॥

पदार्थः—हे (सवितः) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य के देने वाले स्वामिन् (देव) शोभित आप कृपा से (नः) हम लोगों के लिए वा हम लोगों के (अद्या) आज (प्रजावत्) बहुत प्रजायें विद्यमान जिसके उस (सौभगम्) सुन्दर ऐश्वर्य्य के भाग को (सावीः) उत्पन्न कीजिए और (दुःष्वप्न्यम्) दुष्ट स्वप्नों में उत्पन्न दुःख को (परा, सुव) दूर कीजिये ॥४॥

भावार्थः—जो परमेश्वर की प्रार्थना करके धर्म्मयुक्त पुरुषार्थ करते हैं वे बहुत ऐश्वर्य्य वाले होकर दुःख और दारिद्र्य से रहित होते हैं ॥४॥

मनुष्य किस लिए ईश्वर की प्रार्थना करें इस विषय को कहते हैं ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥५॥

पदार्थः—हे (सवितः) संपूर्ण संसार के उत्पन्न करने वाले (देव) और संपूर्ण संसार को प्रकाशित करने वाले जगदीश्वर (विश्वानि) संपूर्ण (दुरितानि) दुष्ट आचरणों को आप (परा, सुव) दूर कीजिये और (यत्) जो (भद्रम्) कल्याण-कारक है (तत्) उसको (नः) हम लोगों के लिए (आ, सुव) सब प्रकार से प्राप्त कीजिये ॥५॥

भावार्थः—हे परमेश्वर ! आप कृपा से जितने हम लोगों में दुष्ट आचरण हैं उनको अलग करके धर्म्मयुक्त गुण कर्म्म और स्वभावों को स्थापित कीजिये ॥५॥

इस जगत् में मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे ।

विश्वा वामानि धीमहि ॥६॥

पदार्थः – हे मनुष्यो जैसे (अनागसः) अपराध से रहित हम लोग (अदितये) माता आदि के लिए (देवस्य) सर्व सुख देने वाले (सवितुः) संपूर्ण ऐश्वर्य्य से युक्त परमात्मा के (सवे) जगत्‌रूप ऐश्वर्य्य में (विश्वा) सम्पूर्ण (वामानि) ऐश्वर्य प्राप्त करने योग्य धनों को (धीमहि) धारण करें वैसे आप लोग भी धारण करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० –जैसे विद्वान् जन इस ईश्वर से रचे हुए संसार में सृष्टिक्रम से विद्या के द्वारा कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही अन्य जनों को भी चाहिये कि सिद्ध करें ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे । सत्यसवं सवितारम् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (अद्या) आज (सूक्तैः) उत्तम प्रकार कहे गये सत्य वचनों वा वेदोक्त वचनों से (विश्वदेवम्) संसार के प्रकाश करने और (सत्पतिम्) प्रकृति आदि पदार्थ और सत्पुरुषों के पालन करने वाले (सत्यसवम्) नहीं नाश होने वाला सामर्थ्ययोग जिसका उस (सवितारम्) सम्पूर्ण पदार्थों के बनाने वाले परमात्मा का (आ, वृणीमहे) स्वीकार करते हैं वैसे आप लोग भी स्वीकार कीजिये ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिए कि परमेश्वर को छोड़ कर किसी अन्य का आश्रय नहीं करें ॥७।

फिर मनुष्य कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् । स्वाधीर्देवः सविता ॥८॥

पदार्थः—(यः) जो (अप्रयुच्छन्) प्रमाद को नहीं करता हुआ मनुष्य जैसे (स्वाधीः) उत्तम प्रकार स्थापन किया जाता है जिससे वह (देवः) प्रकाशमान (सविता) श्रेष्ठ कर्म्मों में प्रेरणा करने वाला सत्य में वर्त्तमान है वैसे (इमे) इन (उभे) दोनों (अहनी) रात्रि और दिनों को सत्य से (पुरः) आगे (एति) प्राप्त होता है वही भाग्यशाली होता है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे परमेश्वर अपने नियमों की यथायोग्य रक्षा करता है वैसे ही मनुष्य भी श्रेष्ठ नियमों की यथावत् रक्षा करें ॥८॥

मनुष्यों से कौन परम गुरु मानाजाता है इस विषय को कहते हैं ॥

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।
प्र च सुवाति सविता ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (श्लोकेन) वाणी से (इमा) इन (विश्वा) सम्पूर्ण प्रज्ञानों और (जातानि) उत्पन्न हुओं को (आश्रावयति) सब प्रकार से सुनाता है वह (च) और (सविता) प्रेरणा करने वाला हम लोगों को (प्र, सुवाति) प्रेरणा करे ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर वेद के द्वारा मनुष्यों के लिए सम्पूर्ण विद्याओं का उपदेश करता है वही परमगुरु मानने योग्य है ॥९॥

इस सूक्त में ईश्वर और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में बियासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य त्र्यशीतितमस्य सूक्तस्य अत्रिर्ऋषिः । पृथिवी देवता । १ निचृत्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् त्रिष्टुप् ३ भुरिक्त्रिष्टुप् । ४ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ५ । ६ त्रिष्टुप् । ७ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ८ । १० भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ९ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब दश ऋचा वाले तिरासीवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मेघ कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो (वृषभः) थूहेवाले बैल के सदृश (जीरदानुः) जीवाने वाला (कनिक्रदत्) शब्द करता हुआ (नमसा) अन्नआदि के साथ (आ, विवास) सब ओर से वसता और (ओषधीषु) ओषधियों में (रेतः) जलरूप (गर्भम्) गर्भ को (दधाति) धारण करता है उस (पर्जन्यम्) मेघ को (आभिः) इन वर्त्तमान (गीर्भिः) वाणियों से (अच्छा) उत्तम प्रकार (वद) कहिये और (तवसम्) बल की (स्तुहि) प्रशंसा करिये ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों से मेघविद्या का यथावत् विज्ञान प्राप्त करें ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे बढ़ई (वृक्षान्) काटने योग्य वृक्षों को (वि, हन्ति) विशेष कर के काटता है (उत) और न्यायकारी राजा जिन से (विश्वम्) संपूर्ण संसार (बिभाय) भय करता है उन (रक्षसः) दुष्ट आचरणवालों का (हन्ति) नाश करता है और (यत्) जो (पर्जन्यः) मेघ (स्तनयन्) शब्द करता हुआ (महावधात्) बड़े हनन से (भुवनम्) जल को वर्षाता है और जैसे (अनागाः) नहीं अपराध जिस में वह (वृष्ण्यावतः) वर्षने योग्य मेघ जिन में उन का (ईषते) नाश करता है (उत) और (दुष्कृतः) दुष्ट कर्मों के करने वालों का (हन्ति) नाश करता है वैसा ही मनुष्य वर्त्ताव करें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य पालन करने योग्यों का पालन करते हैं और नाश करने योग्यों का नाश करते हैं वे राजसत्ता से युक्त होते हैं ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ३' अह ।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं१' नभः ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (यत्) जो (पर्जन्यः) मेघ (कशया) मारने के लिए रस्सी अर्थात् कोड़े से (अश्वान्) घोड़ों को (अभिक्षिपन्) सन्मुख लाता हुआ (रथीव) बहुत रथवाले के सदृश (वर्ष्यान्) वर्षाओं में श्रेष्ठ (दूतान्) दूतों को (आविः कृणुते) प्रकट करता है (अह) परतंत्र करने में वे (दूरात्) दूर से (सिंहस्य) सिंह के सदृश (उत, ईरते) कम्पाते वा चलते हैं और पर्जन्य (वर्ष्यम्) वर्षाओं में हुए (नभः) अन्तरिक्ष को (कृणुते) करता अर्थात् प्रकट करता है उसको आप (स्तनथाः) पुकारिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे सारथी घोड़ों को यथेष्ट स्थान में ले जाने को समर्थ होता है वैसे ही मेघ जलों को इधर उधर ले जाता है ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (पर्जन्यः) पालनों को उत्पन्न करने वाला मेघ (रेतसा) जल से (पृथिवीम्) भूमि की (अवति) रक्षा करता है जिस से (विश्वस्मै) संपूर्ण (भुवनाय) भुवन के लिए (इरा) अन्न आदिक (जायते) उत्पन्न होता है और बद्दल (स्वः) अन्तरिक्ष का (पिन्वते) सेवन करते हैं और जिससे (ओषधीः) ओषधियों को (उत्, जिहते) उत्तमता से प्राप्त होते हैं जिस से (विद्युतः) बिजुलियां (पतयन्ति) पतन होती हैं जहां (वाताः) पवन (प्र) अत्यन्त (वान्ति) चलते हैं उस मेघ को यथावत् तुम विशेष जानो ॥४॥

भावार्थः—मनुष्य लोगों को चाहिये कि जिस मेघ से सबका पालन होता है उस की वृद्धि वृक्षों के लगाने, वनों की रक्षा करने और होम करने से सिद्ध करें जिस से सबका पालन सुख से होवे ॥४॥

फिर वह मेघ कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

यस्य व्रते पृथिवी नंनमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥५॥

पदार्थः—हे (पर्जन्य) मेघ के सदृश वर्त्तमान विद्वन् (यस्य) जिस मेघ के (व्रते) कर्म्म में (पृथिवी) भूमि (नंनमीति) अत्यन्त नम्र होती और (यस्य) जिस मेघ के (व्रते) कर्म्म में (शफवत्) खुर के तुल्य (जर्भुरीति) निरन्तर धारण करती है और (यस्य) जिस मेघ के (व्रते) कर्म में (विश्वरूपाः) अनेक प्रकार की (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधियां उत्पन्न होती हैं उस मेघ की विद्या से युक्त (सः) वह आप (नः) हम लोगों के लिए (महि) बड़े (शर्म) गृह को (यच्छ) दीजिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो वृष्टियां न होवें तो किसी का भी जीवन न होवे ॥५॥

फिर वह मेघ कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः ।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥६॥

पदार्थः—हे (मरुतः) वायुवद्वर्त्तमान मनुष्यो आप लोग (नः) हम लोगों के

लिये (दिवः) सूर्य्य से (वृष्टिम्) वृष्टि को (ररीध्वम्) दीजिये तथा (वृष्णः) वर्षने वाले (अश्वस्य) बड़े मेघ के (धाराः) प्रवाहों को (प्र, पिन्वत) सींचिये और जो (अर्वाङ्) नीचे वर्त्तमान और (एतेन) इस (स्तनयित्नुना) बिजुली रूप से (अपः) जलों का (निषिञ्चन्) अत्यन्त सेचन करता हुआ (असुरः) मेघ (नः) हम लोगों के (पिता) उत्पन्न करने वाले पिता के सदृश पालन करने वाला (आ, इहि) प्राप्त होता है उसका आप लोग विशेष कर के जानिये ॥६॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जिन कर्म्मों से वृष्टि अधिक होवे उन कर्म्मों का सेवन कीजिये ॥६॥

फिर वह मेघ क्या करता है इस विषय को कहते हैं ॥

अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन ।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो मेघ (गर्भम्) गर्भ को (आ, धाः) चारों ओर से धारण करता और (उदन्वता) बहुत जल के सहित (रथेन) सुन्दर स्वरूप से (अभि) सम्मुख (क्रन्द) शब्द करता और (स्तनय) गर्जता है (दृतिम्) फाड़ने वाले के सदृश जल से पूर्ण को (सु, कर्ष) विशेष करके खोदता और दुःखों का (परि) सब प्रकार से (दीया) नाश करता और (विषितम्) बंधे (न्यञ्चम्) निश्चित सेवा करते हुए को विशेष कर के लिखता अर्थात् चेष्टा में लाता है तथा जिससे हम लोगों के (उद्वतः) ऊर्ध्व स्थान में वर्त्तमान (निपादाः) निश्चित वा नीचे हैं अंश जिनके ऐसे (समाः) वर्ष (भवन्तु) होवें उस को जानिये ॥७॥

भावार्थः—जो निश्चय जल से संसार को पुष्ट करता है और दुःख का नाश करता तथा फलों को उत्पन्न करता है वह मेघ विश्वंभर है ऐसा जानना चाहिये ॥७॥

अब मेघ निमित्त कौन हैं इस विषय को कहते हैं ॥

महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात् ।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो सूर्य्य (महान्तम्) बड़े परिमाण वाले (कोशम्) धनादिकों के कोश के समान जल से परिपूर्ण मेघ को (उत्) (अचा) ऊपर प्राप्त होता है और जिससे पृथिवी को (नि, सिञ्च) निरन्तर सींचता है और (पुरस्तात्) प्रथम (विषिताः) व्याप्त (कुल्याः) रचे गये जल के निकलने के मार्ग (स्यन्दन्ताम्) बहें और जो (घृतेन) जल से (द्यावापृथिवी) पृथिवी और अन्तरिक्ष को (वि, उन्धि)

अच्छे प्रकार गीला करता है वह (अघ्न्याभ्यः) गौओं के लिये (सुप्रपाणम्) उत्तम प्रकार प्रकर्षता से पीते हैं जिसमें ऐसा जलाशय (भवतु) हो यह जानो ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो बिजुली, सूर्य्य और वायु मेघ के कारण हैं उनको यथायोग्य प्रयुक्त कीजिये जिससे वृष्टि द्वारा गौ आदि पशुओं का यथावत् पालन होवे ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः ।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (पर्जन्य) मेघ (कनिक्रदत्) अत्यन्त शब्द करता तथा (स्तनयन्) गर्जन करता हुआ (दुष्कृतः) दुःख से करने वालों को (हंसि) नाश करता है (यत्) जो (किम्) कुछ (च) भी (इदम्) यह वर्त्तमान (पृथिव्याम्) पृथिवी (अधि) पर (विश्वम्) सम्पूर्ण जगत् वर्त्तमान है वह सब जिस मेघ से (प्रति, मोदते) आनन्दित होता है वह बड़ा उपकारी है ॥९॥

भावार्थः—मेघ से ही सम्पूर्ण प्राणी आनन्दित होते हैं इससे यह मेघ को बनाना रूप कर्म्म परमेश्वर का धन्यवाद के योग्य है यह सब लोग जानो ॥९॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उं ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥१०॥

पदार्थः—हे विद्वन् वैद्य ! जैसे सूर्य्य (वर्षम्) वृष्टि को (अवर्षीः) वर्षाता है वैसे आप (उत्, गृभाय) उत्कृष्टता से ग्रहण कीजिये तथा (धन्वानि) जल आदि से रहित देशों को (अत्येतवै) प्राप्त होने के लिये (सु) उत्तम प्रकार (अकः) करिये (उ) और (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधियों को (भोजनाय) भोजन के लिये (अजीजनः) उत्पन्न कीजिये (उत) और भी (प्रजाभ्यः) प्रजाओं के लिये (कम्) किस को (अविदः) जानते हो (उ) क्या (मनीषाम्) बुद्धि को ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे जगदीश्वर वर्षाओं से प्रजा के हित को सिद्ध करता है वैसे ही धार्मिक राजा प्रजाओं के लिये सुख और अध्यापक बुद्धि को उत्पन्न करे ॥१०॥

इस सूक्त में मेघ और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में तिरासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यृचस्य चतुरशीतितमस्य सूक्तस्याऽत्रिर्ऋषिः । पृथिवी देवता । १ । २ निचृदनुष्टुप् छन्दः । ३ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब तीन ऋचावाले चौरासीवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।
प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥१॥

पदार्थः—हे (प्रवत्वति) अत्यन्त नीचे स्थान से युक्त (महिनि) आदर करने योग्य (पृथिवी) भूमि के सदृश वर्त्तमान (या) जो तुम (पर्वतानाम्) मेघों के (मह्ना) महत्त्व से (भूमिम्) भूमि को धारण करती (इत्था) इस प्रकार से (बट्) सत्य को जिस कारण (बिभर्षि) धारण करती हो तथा (खिद्रम्) दीनता को (प्र, जिनोषि) विशेष करके नष्ट करती हो इस से सत्कार करने योग्य हो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे भूमि पर पर्वत स्थिर होकर वर्त्तमान हैं वैसे जिन के हृदय में धर्म आदि श्रेष्ठ व्यवहार हैं वे आदर करने योग्य होते हैं ॥१॥

फिर स्त्री कैसी हो इस विषय को कहते हैं ॥

स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः ।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥२॥

पदार्थः—हे (अर्जुनि) उषा के समान वर्त्तमान (विचारिणि) विचार करने वाली स्त्री (या) जो तू (वाजम्) वेग के (न) समान (हेषन्तम्) शब्द करते हुए (पेरुम्) पूर्ण करने वाले को (प्र, अस्यसि) फेंकती है उस (त्वा) तेरी (स्तोमासः) स्तुति करने वाले जन (अक्तुभिः) रात्रियों से (प्रति, स्तोभन्ति) सब प्रकार स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—जैसे विद्वान् जन स्तुति करने योग्य जनों की स्तुति करते हैं वैसे ही विद्यायुक्त स्त्री प्रशंसा करने योग्य की प्रशंसा करती है ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

दृळ्हा चिद्या वनस्पतीन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा।
यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः॥३॥

पदार्थः—हे स्त्री! (या) जो (दृळ्हा) दृढ़ तुम (क्ष्मया) पृथिवी से (वनस्पतीन्) वृक्षादिकों को (दर्धर्षि) अत्यन्त धारण करती हो और (यत्) जो (चित्) निश्चित (ते) आप के (अभ्रस्य) घन की (दिवः) अन्तरिक्ष में हुई (विद्युतः) बिजुली और (वृष्टयः) वर्षायें (वर्षन्ति) वर्षती हैं उनको तुम (ओजसा) बल से धारण करो॥३॥

भावार्थः—जो स्त्री पृथिवी के सदृश क्षमा से युक्त और पुत्र पौत्रादि से युक्त होती है वह वृष्टि के सदृश सुखों को वर्षाने वाली होती है॥३॥

इस सूक्त में मेघ विद्वान् और स्त्री के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये॥

यह पंचम मण्डल में चौरासीवां सूक्त समाप्त हुआ॥

अथाष्टर्चस्य पञ्चाशीतितमस्य सूक्तस्य अत्रिर्ऋषिः। वरुणो देवता। १। २ विराट्त्रिष्टुप्। ३। ४। ६। ८ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ७ ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः।

अब आठ ऋचा वाले पिच्यासीवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं॥

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्य (यः) जो रचने वाले के सदृश दुष्टों का (वि, जघान) नाश करता और (सूर्याय) रचने वाले के लिये (उपस्तिरे) बिछौने पर (चर्म) चमड़े और (पृथिवीम्) पृथिवी को (शमितेव) जैसे यज्ञमय व्यवहार प्राप्त होता है वैसे आप (वरुणाय) श्रेष्ठ (श्रुताय) विशेष कर के सिद्ध यश वाले तथा (सम्राजे) उत्तम प्रकार शोभित के लिये (बृहत्) बड़े (गभीरम्) थाह रहित (प्रियम्) जो प्रसन्न करता उस (ब्रह्म) धन वा अन्न का (प्र, अर्चा) सत्कार करो॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य यजमान के सदृश राजा को सुखी करते हैं वे बड़े ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं॥१॥

फिर उस परमेश्वर ने क्या किया इस विषय को कहते हैं ॥

वनेषु व्य१न्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्व१ग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो जगदीश्वर (वनेषु) किरणों वा जंगलों में (अन्तरिक्षम्) जल को (अर्वत्सु) घोड़ों में (वाजम्) वेग को और (उस्रियासु) पृथिवियों में (पयः) जल वा रस को (हृत्सु) हृदयों में (क्रतुम्) विशेष ज्ञान को (अप्सु) आकाश प्रदेशों में (अग्निम्) अग्नि को (दिवि) प्रकाश में (सूर्य्यम्) सूर्य्य को (अद्रौ) मेघ में (सोमम्) रस को (अदधात्) धारण करता है वह (वरुणः) श्रेष्ठ परमात्मा संपूर्ण जगत् को (वि, ततान) विस्तृत करता है ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जिस जगदीश्वर ने संपूर्ण जगत् को विस्तृत किया उसी का निरन्तर ध्यान करो ॥२॥

फिर ईश्वर क्या करता है इस विषय को कहते हैं ॥

नीचीनबारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (वरुणः) श्रेष्ठ परमेश्वर (नीचीनबारम्) नीचे के स्थानों में वृष्टि करने वाले (कवन्धम्) मेघ को और (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी तथा (अन्तरिक्षम्) जल को (प्र, ससर्ज) उत्तमता से उत्पन्न करता है और (विश्वस्य) सम्पूर्ण (भुवनस्य) ब्रह्माण्ड का (राजा) प्रकाशक परमात्मा (वृष्टिः) वृष्टि (यवम्) यव आदि धान्य को (न) जैसे वैसे (वि, उनत्ति) विशेष करके गीला करता है (तेन) उससे हम लोग सुखी (भूम) होवें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! आप लोग जगत् के रचनेवाले जगदीश्वर की उपासना करके और राजा होकर जैसे धान्य आदि का मेघ वैसे प्रजाओं का पालन कीजिये ॥३॥

अब राजाजन कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित् ।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥४॥

पदार्थः—हे राजन् (यदा) जब (वरुणः) वायु के सदृश राजा (अभ्रेण) मेघ से (पृथिवीम्) विस्तीर्ण (भूमिम्) भूमि को और (उत) भी (द्याम्) प्रकाश को

(सम्, उनत्ति) गीला करता है (आत्) उस के अनन्तर (इत्) ही वायु के सदृश राजा (दुग्धम्) दुग्ध की (वष्टि) कामना करता है और हे (तविषीयन्तः) सेना की कामना करते हुए (वीराः) शूरवीरो आप लोग (पर्वतासः) मेघों के सदृश यहां (वसत) वास करिये और (श्रथयन्त) अर्थात् शत्रुओं का नाश करिये ॥४॥

भावार्थः—वे ही राजा लोग श्रेष्ठ हैं जो प्रजा के हित की कामना करते हैं और जैसे मेघ सब के सुखों की वृष्टि करते हैं वैसे ही राजा लोग प्रजाओं की कामनाओं को पूर्ण करें ॥४॥

अब विद्वान् और ईश्वर क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

इमामू ष्वा॑सु॒रस्य॑ श्रु॒तस्य॑ म॒हीं मा॒यां वरु॑णस्य॒ प्र वो॑चम् ।
मा॒नेने॑व तस्थि॒वाँ अ॒न्तरि॑क्षे॒ वि यो म॒मे पृ॑थि॒वीं सूर्ये॑ण ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (इमाम्) इस (श्रुतस्य) सुने गये (आसुरस्य) मेघ में उत्पन्न हुए और (वरुणस्य) श्रेष्ठ की (महीम्) आदर करने योग्य वाणी का और (मायाम्) बुद्धि का आप लोगों के लिए (सु, प्र, वोचम्) उत्तम प्रकार उपदेश करूं (उ) और (यः) जो (तस्थिवान्) ठहरने वाला (मानेनेव) सत्कार से जैसे वैसे (अन्तरिक्षे) आकाश में (सूर्येण) सूर्य के साथ (पृथिवीम्) पृथिवी को (वि, ममे) विस्तारता है उसको ईश्वर जानो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो मेघ की विद्या के जानने वाले की वाणी और बुद्धि की प्रशंसा करता है और जो परमेश्वर संपूर्ण जगत् को रचता है उन दोनों का सदा सत्कार करो ॥५॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

इ॒मामू नु क॒वित॑मस्य मा॒यां म॒हीं दे॒वस्य॒ नकि॒रा द॑धर्ष ।
एकं॒ यदु॒द्ना न पृ॒णन्त्येनी॑रासि॒ञ्चन्ती॑र॒वन॑यः समु॒द्रम् ॥६॥

पदार्थः- हे मनुष्यो जो (इमाम्) इस (कवितमस्य) अतिशय कविजन (देवस्य) विद्वान् की (मायाम्) बुद्धि को (उ) और (महीम्) वाणी को कोई भी (नु, शीघ्र (नकिः) नहीं (आ, दधर्ष) दबाता है और (यत्) जो (उद्ना) जल से (न) जैसे वैसे (एनीः) हरिणियों के सदृश दौड़तीं और (आसिञ्चन्तीः) चारो ओर सींचती हुई (अवनयः) रक्षा करने वाली नदियां (एकम्) एक (समुद्रम्) समुद्र को (पृणन्ति) पूर्ण करती हैं उन को आप लोग यथावत् जानिये ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य बड़े विद्वानों के समीप से बड़ी बुद्धि और वाणी

को प्राप्त हो कर अन्यों के लिए प्राप्त कराते हैं वे ही संसार में धन्य होते हैं ॥६॥

मनुष्यों को चाहिये कि प्रमाद से किसी के भी प्रमाद को करके शीघ्र निवृत्त करावें ॥

अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद्भ्रातरं वा ।

वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥७॥

पदार्थः—हे (वरुण) श्रेष्ठ विद्वान् (अर्य्यम्यम्) न्यायाधीशों में हुए और (मित्र्यम्) मित्रों में हुए (वा) अथवा (सखायम्) मित्र और (सदम्) स्थित होते हैं जिसमें उस गृह (इत्) ही (वा) वा (भ्रातरम्) भ्राता (वा) अथवा (वेशम्) प्रविष्ट होने वाले को (वा) अथवा हे (वरुण) श्रेष्ठ विद्वान् (नित्यम्) नित्य (अरणम्) जल को (वा) वा (सीम्) सब ओर से (यत्) जिस (आगः) अपराध को हम लोग (चकृम) करें (तत्) उस सबका आप (शिश्रथः) प्रयत्न करिये वा नाश करिये ॥७॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! अज्ञान वा प्रमाद से श्रेष्ठ पुरुषों में हम लोग जो प्रमाद करें उस संपूर्ण को आप निवृत्त कीजिये ॥७॥

कौन से मनुष्य सत्कार और कौन तिरस्कार करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।

सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥८॥

पदार्थः—हे (वरुण) श्रेष्ठ (देव) विद्वन् (यत्) जो (कितवासः) जुआ करने वाले (दीवि) जुआरूप कर्म्म में (न) नहीं (रिरिपुः) आरोपित करते हैं (वा) अथवा (यत्) जिस (सत्यम्) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ को (उत) तर्क वितर्क से (न) न (विद्म) जानें और (यत्) जिसे (घा) ही नहीं जानें (ता) उन (सर्वा) सम्पूर्णों को (शिथिरेव) जैसे शिथिल वैसे आप (वि, स्य) अन्त करिये जिससे (अधा) इसके अनन्तर हम लोग (ते) आप के (प्रियासः) प्रसन्न प्यारे (स्याम) होवें ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो छली मनुष्य जुआ आदि कर्म्म करें वे ताड़ना करने योग्य और जो सत्य आचरण करें वे सत्कार करने योग्य हैं ॥८॥

इस सूक्त में राजा, ईश्वर, मेघ और विद्वान् के गुण कर्म वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में पिच्यासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य षडशीतितमस्य सूक्तस्य अत्रिर्ऋषिः इन्द्राग्नी देवते । १ । ४ । ५ स्वराडुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । २ । ३ विराडनुष्टुप् छन्दः । ६ विराट् पूर्वानुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले छियासीवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् जन क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रा॑ग्नी॒ यमव॑थ उ॒भा वाजे॑षु॒ मर्त्य॑म् ।

दृ॒ह्ळा चि॒त्स प्र भे॑दति द्यु॒म्ना वाणी॑रिव त्रि॒तः ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) वायु और विजुली के सदृश अध्यापक और उपदेशको तुम (उभा) दोनों (वाजेषु) संग्रामों में (यम्) जिस (मर्त्यम्) मनुष्य की (अवथः) रक्षा करते हो (सः) वह (चित्) भी (त्रितः) तीन अर्थात् अध्यापन उपदेशन और रक्षण से (वाणीरिव) जैसे वाणियों का वैसे (दृह्ळा) स्थिर (द्युम्ना) धनों वा यशों का (प्र, भेदति) अत्यन्त भेद करता है ॥१॥

भावार्थः—जहां धार्मिक, विद्वान्, शूरवीर, बलिष्ठ और शिक्षक हैं वहां पर कोई भी दुःख को नहीं प्राप्त होता है ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

या पृत॑नासु दु॒ष्टरा॒ या वाजे॑षु श्र॒वाय्या॑ ।

या पञ्च॑ च॒र्षणी॑र॒भीन्द्रा॒ग्नी ता ह॑वामहे ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) वायु और विजुली के समान वर्त्तमान सेनापति और अध्यक्ष (या) जो सेना के शिक्षक और लड़ाने वाले (पृतनासु) सेनाओं में (दुष्टरा) दुःख से उल्लंघन करने योग्य (या) जो (वाजेषु) अन्नादिकों वा संग्रामों में (श्रवाय्या) प्रशंसा करने योग्य (या) जो (पञ्च) पांच (चर्षणीः) प्राणों वा मनुष्यों को (अभि) सम्मुख रक्षा करते हैं (ता) उन दोनों को हम लोग (हवामहे) स्वीकार करें वा प्रशंसा करें ॥२॥

भावार्थः—राजा और सेनापति को चाहिए कि उत्तम प्रकार परीक्षा करके सेना में अध्यक्ष भृत्यों को रक्खें जिस से सर्वदा विजय होवे ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तयो॒रिदम॑व॒च्छव॑स्ति॒ग्मा दि॒द्युन्म॒घोनोः॑ ।

प्रति॒ द्रु॒णा गभ॑स्त्यो॒र्गवां॑ वृत्र॒घ्न एष॑ते ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे सूर्य्य (वृत्रघ्ने) मेघ के नाश करने वाले के लिए (गवाम्) किरणों का (आ, ईवते) सब प्रकार नाश करता है और जो दोनों (द्रुणा) चलने वाले वर्त्तमान हैं (तयोः, इत्) उन्हीं सेनापति और सेनाध्यक्ष और (मघोनोः) बहुत धन से युक्त (गभस्त्योः) भुजाओं के (अमवत्) गृह के सदृश (शवः) बलयुक्त (तिग्मा) तीव्र (विद्युत्) बिजुली है वैसे उसको आप लोग (प्रति) ग्रहण करें ॥३॥

भावार्थः- इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजपुरुषो ! जैसे सूर्य्य मेघ का नाश करके प्रजाओं का पालन करता है वैसे ही आप लोग दुष्टों का नाश करके प्रजाओं की निरन्तर रक्षा कीजिये ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं

ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे ।

पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (रथानाम्) वाहनों और (तुरस्य) शीघ्र सुखकारक (राधसः) धन के (पती) पालन करने वाले (गिर्वणस्तमा) अतिशय उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी का सेवन करते हुए (विद्वांसा) विद्या से युक्त (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली (वाम्) और आप दोनों को (एषे) प्राप्त होने के लिए हम लोग (हवामहे) प्राप्त होने की इच्छा करें (ता) उन दोनों को आप लोग भी प्राप्त होओ ॥४॥

भावार्थः – मनुष्यों को चाहिए कि वायु और बिजुली के सदृश श्रेष्ठ गुणों से व्याप्त विद्वानों के सङ्ग से विद्या और शिक्षा को प्राप्त होकर प्रजाओं में मित्र के सदृश वर्त्ताव करें ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ता वृधन्तावनु द्यून्मर्त्ताय देवावदभा ।

अर्हन्ता चित्पुरो दधेऽशेव देवावर्वते ॥५॥

पदार्थः – हे मनुष्यो जो (अंशेव) भाग के सदृश सत्कार करने योग्य (मर्त्ताय) मनुष्य के लिए (अनु, द्यून्) प्रतिदिन (वृधन्तौ) बढ़ते वा बढ़ाते हुए (अदभा) नहीं हिंसा करने वाले (अर्हन्ता) आदर करने योग्य (देवौ) देने वालों को मैं (पुरः) आगे (दधे) धारण करता हूं और जो (देवौ) प्रकाशमान दोनों (चित्) भी (अर्वते) विज्ञान के लिए वर्त्तमान हैं (ता) उन दोनों का आप लोग सत्कार करो ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य दिनरात्रि मनुष्यों के हित के लिये प्रयत्न करते हैं वे ही सबसे आदर करने योग्य हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवेन्द्राग्निभ्यामहाँ वि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिन (इन्द्राग्निभ्याम्) सूर्य्य और अग्नि से (अहा) दिनों को और (अद्रिभिः) मेघों से (घृतम्) घृत जैसे (न) वैसे (पूतम्) पवित्र (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य (शूष्यम्) बल में उत्पन्न (श्रवः) अन्न होता है तथा (गृणत्सु) प्रशंसा करते हुए (सूरिषु) विद्वानों में (बृहत्) बड़े (रयिम्) धन को जो दोनों (दिधृतम्) धारण करें तथा (गृणत्सु) स्तुति करते हुए विद्वानों में (इषम्) विज्ञान को (वि, दिधृतम्) विशेष धारण करें (ता) वे दोनों (एव) ही यथावत् जानने के योग्य हैं ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जो विद्वानों में आप लोग निवास करें तो बिजुली और मेघ आदि की विद्या को जानें ॥९॥

इस सुक्त में इन्द्र, अग्नि और बिजुली के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में छियासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य सप्ताऽशीतितमस्य सूक्तस्य एवयामरुदात्रेय ऋषिः । मरुतो देवताः । १ अतिजगती । २ । ८ स्वराड्जगती । ३ । ६ । ७ भुरिग्जगती । ४ निचृज्जगती । ५ । ९ विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले सत्तासीवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को कैसे क्या प्राप्त होता है इस विषय को कहते हैं ॥

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।
प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (मरुत्वते) प्रशंसित मनुष्य जिस में उस (महे) बड़े (विष्णवे) व्यापक बिजुली रूप अग्नि के लिये (गिरिजाः) मेघ में उत्पन्न हुए प्राप्त होते हैं वैसे (वः) आप लोगों को (मतयः) मनुष्य वा बुद्धियां (प्र, यन्तु) प्राप्त होवें और जैसे (एवयामरुत्) प्राप्त कराने वालों को प्राप्त होने वालों का मनुष्य (शर्धाय) बल के और (प्रयज्यवे) अत्यन्त यजन करते हैं जिस से उस (सुखादये) उत्तम प्रकार खाने वाले (तवसे) बलिष्ठ के लिए तथा (भन्ददिष्टये)

कल्याण और सुख की संगति के लिये (धुनिव्रताय) और कंपित व्रत जिस का उस (शवसे) बल के लिए (प्र) समर्थ होता है वैसे आप लोग भी इस के लिये समर्थ हूजिये ॥१॥

भावार्थः जैसे बिजुली रूप अग्नि को मेघोत्पन्न गर्जनादि प्रभाव प्राप्त होते हैं क्योंकि वे गर्जनादि प्रभाव अग्नि और वायु से सिद्ध होने योग्य हैं, वैसे बुद्धिमान् पुरुषों को अन्य पुरुष प्राप्त होते हैं। और गुण प्राप्त कराने वाला पुरुष गुणी पुरुष को ढूंढ़ता है और अति उत्तम बल को भी प्राप्त होता है ॥१॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत्। क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषामधृष्टासो नाद्रयः ॥२॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो (ये) जो (महिना) महत्त्व से (जाताः) उत्पन्न हुए तथा (ये) जो (विद्मना) विज्ञान से (प्र, ब्रुवते) उपदेश देते हैं (च) और जो (स्वयम्) अपने से (नु) शीघ्र (प्र) विशेष करके उपदेश देते हैं और (एवयामरुत्) विज्ञान वाला मनुष्य मैं (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म्म से उन (वः) आप लोगों के (तत्) उस (शवः) बल को (दाना) देने से वा (मह्ना) महत्त्व से (न) नहीं (आधृषे) दबाने को समर्थ होता हूं तथा (अद्रयः) मेघों के (न) समान (अधृष्टासः) नहीं घर्षण किये गए जो (एषाम्) इनका बल है उसको नहीं दबाने को समर्थ होता हूं ॥२॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है—जो मनुष्य सब के उपकार को करके प्राणवत् प्रिय होते हैं वे ही जगत् के उपकार करने वाले होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत्। न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्यन्द्रासो धुनीनाम् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ये) जो (सुशुक्वानः) उत्तम प्रकार शुद्ध (सुभ्वः) और सुन्दर धर्मयुक्त व्यवहार में होने वाले (दिवः) कामना करते हुओं वा बिजुली आदिकों

को जैसे (स्वविद्युतः) अपने स्वरूप से व्याप्त और (धुनीनाम्) कम्पन क्रिया से युक्त भूमि आदिकों के (स्यन्द्रासः) पिघलते हुए वा पिघलाते हुए (अग्नयः) अग्नियां (न) वैसे (गिरा) वाणी से (बृहतः) बड़े (प्र, शृण्विरे) सुनते हैं और (येषाम्) जिनका (एवयामरुत्) विज्ञान वाला मनुष्य (इरी) प्रेरणा करने वाला (सधस्थे) समान स्थान में (न) जैसे वैसे (प्र, ईष्टे) स्वामी होता है उनको आप लोग (आ) अच्छे प्रकार जानिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—मनुष्यो ! जो विद्या की कामना करने वाले जन बड़ी विद्याओं को प्राप्त हो कर बिजुली आदि पदार्थों को स्वाधीन करते हैं वे ही सिद्ध इच्छा वाले होते हैं ॥३॥

अब ईश्वर की उपासना विषय को कहते हैं ॥

स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत् । यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति शेवृधो नृभिः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (एवयामरुत्) विज्ञान वाला मनुष्य (उरुक्रमः) जो बहुत क्रम वाला (समानस्मात्) तुल्य (महतः) बड़े (सदसः) गृह से (निः) निरन्तर (चक्रमे) क्रमण करता है उस को जो (त्मना) आत्मा से (यदा) जब (अयुक्त) युक्त होता है (स्नुभिः) तथा पवित्र गुणों और (नृभिः) नायकों के साथ वर्त्तमान (स्वात्,) अपने से (विष्पर्धसः) विशेष कर के स्पर्द्धा करने वालों (विमहसः) विशेष कर के बड़े गुणों से विशिष्ट और (शेवृधः) सुख के बढ़ाने वालों को (अधि, जिगाति) प्राप्त होता है (सः) वह परमेश्वर उपासना करने योग्य और योगीजन सेवन करने योग्य है ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वान् पुरुष के द्वारा परमेश्वर के योग का अभ्यास करते हैं वे सुख के धारण करने वाले होते हैं ॥४॥

फिर विद्वान् राजाजन कैसे होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

स्वनो न वोऽमवान्रेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत् । येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास इष्मिणः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो वह (वः) आप लोगों के मध्य में (स्वनः) शब्द के (न) समान (अमवान्) गृहवाला (वृषा) बलिष्ठ और (त्वेषः) प्रकाशवान् (तविषः) बल से (ययिः) प्राप्त होने वाला (एवयामरुत्) बुद्धिमान् मनुष्य व्यवहारों को (रेजयत्)

कंपित कराता है (येना) जिस पुरुष से (सहन्तः) सहन करने वाले (स्वरोचिषः) अपने से प्रकाश जिनका ऐसे और (स्थारश्मानः) स्थिर किरणों के सदृश व्यवहार जिनके तथा (हिरण्ययाः) तेजः स्वरूप (स्वायुधासः) अपने आयुधों वाले और (इष्मिणः) बहुत प्रकार की इच्छा वाले जन आप लोग अपने प्रयोजनों को (ऋञ्जत) सिद्ध करें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो प्रकाशित धर्म्मयुक्त व्यवहार वाले तथा शम दम आदि से युक्त, तेजस्वी बल वाले और युद्ध विद्या में कुशल होवें वे ही विजयी होते हैं ॥५॥

अब विद्वानों को किनका निवारण कर किनका सत्कार करना चाहिये
इस विषय को कहते हैं ॥

अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत् । स्थातारो हि प्रसितौ सन्दृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो नाग्नयः ॥६॥

पदार्थः—हे (वृद्धशवसः) बढ़े हुए बल वालो (स्थातारः) स्थित होने वाले (अग्नयः) अग्नियां (न) जैसे वैसे (वः) आप लोगों का जो (अपारः) अपार (महिमा) बड़प्पन और (एवयामरुत्) बुद्धिमान् मनुष्य (त्वेषम्) प्रकाशित (शवः) बल की (अवतु) रक्षा करे (हि) जिससे कि (प्रसितौ) प्रकृष्ट बन्धन के रहने पर (निदः) निन्दा करने वाले (शुशुक्वांसः) शोक से युक्त होवें (ते) वे आप लोग (संदृशि) तुल्य दर्शन में (स्थन) स्थित हूजिये और (नः) हम लोगों का (उरुष्यता) सेवन करिये ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जो निन्दक अर्थात् मिथ्यावादी होवें उनको सदा बन्धन में प्रविष्ट करिये और जो महाशय, परोपकारी, स्तुति करने और सत्य बोलने वाले होवें उन का सदा सत्कार करिये ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् । दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ते) वे (सुमखाः) सुन्दर न्यायाचरण और यज्ञ के करने वाले (रुद्रासः) मध्यम विद्वान् जन (यथा) जैसे (अग्नयः) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (तुविद्युम्नाः) बहुत धन और यश से युक्त हुए हम लोगों की (अवन्तु)

रक्षा करें जिन (अद्भुतैनसाम्) अद्भुत बड़े पाप वालों के (अज्मेषु) संग्रामों में (शर्धांसि) बलों और (महः) बड़े (दीर्घम्) लम्बे (पृथु) विस्तृत वा प्रसिद्ध (पार्थिवम्) पृथिवी में विदित (सद्म) ठहरते हैं जिसमें उस स्थान को (एवयामरुत्) बुद्धिमान् पुरुष (आ, पप्रथे) अच्छे प्रकार प्रसिद्ध करता है ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमाल०—जो मनुष्य अग्नि के सदृश पाप के नाश करने, सत्य के प्रकाश करने और दुष्टों के रुलाने वाले, श्रेष्ठों के पालक हैं वे ही अधिक कीर्त्ति वाले होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् । विष्णोर्महः संमन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो३ न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः ॥८॥

पदार्थः—हे (समन्यवः) समान क्रोध वाले (मरुतः) मनुष्यो आप लोग (एवयामरुत्) बुद्धिमान् मनुष्य के सदृश (नः) हम लोगों का (अद्वेषः) द्वेष से रहित करिये। और (गातुम्) पृथिवी को (आ, इतन) प्राप्त हूजिये तथा हम लोगों के (हवम्) श्रेष्ठ व्यवहार को (श्रोता) सुनिए (जरितुः) स्तुति करने योग्य (विष्णोः) व्यापक के (महः) महत्त्व को (स्मत्) ही (युयोतन) संयुक्त कीजिये और (रथ्यः) वाहनों के चलाने में कुशलों के (न) सदृश (सनुतः) सनातन (दंसना) कर्म्मों को और (अप) दूरीकरण के निमित्त (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त कर्मों को संयुक्त कीजिये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो विद्वान् और उपदेशक जन मनुष्यों को द्वेष आदि दोषों से रहित करते हैं वे व्यापक ईश्वर के पद को प्राप्त होते हैं ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

गन्ता नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् । ज्येष्ठासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो निदः ॥९॥

पदार्थः—हे (यज्ञियाः) यज्ञ करने योग्य (यूयम्) आप लोग (एवयामरुत्) बुद्धिमान् मनुष्य के सदृश (नः) हम लोगों को वा हम लोगों के (यज्ञम्) सत्य को प्रकट करने वाले व्यवहार को (गन्ता) प्राप्त हूजिये और (सुशमि) श्रेष्ठ कर्म्म और (हवम्) पठन की परीक्षा नामक कर्म्म को (श्रोता) सुनिये तथा (अरक्षः) नहीं रक्षा करने योग्य का निवारण करिये और (व्योमनि) आकाश

के सदृश व्यापक परमेश्वर में (पर्वतासः) मेघ (न) जैसे वैसे (ज्येष्ठासः) विद्या और अवस्था से वृद्ध और प्रशंसा युक्त वाणी वाले हूजिये, और जो आकाश के सदृश व्यापक ईश्वर है (तस्य) उस के (प्रचेतसः) जनाने वाले (स्यात) हूजिये और जो (दुर्धर्त्तवः) दुःख से धारण करने वाले (निदः) निन्दक जन हैं उनके निवारण करने वाले हूजिये ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे विद्वान् जनो ! आप लोग विद्या के प्रचार नामक व्यवहार के प्रचार से धर्म सम्बन्धी कार्यों को करके अन्यों से भी कराओ और निन्दा आदि दोषों से मनुष्यों को पृथक् कर के परमेश्वर की ओर प्रवृत्त करो और स्वयं भी ऐसे होओ ॥९॥

इस सूक्त में वायु, विद्वान् और परमेश्वर की उपासना का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पंचम मण्डल में सत्तासीवां सूक्त समाप्त हुआ ॥



* ओ३म् *

ऋग्वेद-भाषाभाष्यम् ॥

—:०:०:०:०:—

अथ षष्ठं मण्डलम् ॥

—:०:०:०:०—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

अथ त्रयोदशर्चस्य प्रथमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ७ । १३ भुरिक्पङ्क्तिः । २ स्वराट्पङ्क्तिः । ५ पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ । ४ । ६ । ११ । १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ । १० त्रिष्टुप् । ९ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब छठे मण्डल में तेरह ऋचावाले प्रथम सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् जन अग्नि के सदृश क्या क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (दस्म) दुःख के नाश करने वाले विद्वान् जन जैसे (प्रथमः) आदिम (मनोता) मन के समान जाने वाले और (होता) दान करने वाले हुए (त्वम्) आप (हि) निश्चय से (अस्याः) इस (धियः) बुद्धि की वृद्धि करते हुये सुखयुक्त (अभवः) होते हो । और हे (वृषन्) वीर्य्य के सींचने वाले (त्वम्) आप (सीम्) सब ओर से (विश्वस्मै) सम्पूर्ण प्राणियों के लिए

(सहः) सहनशील (सहसे) बल के लिए (सहध्यै) सहने को (दुष्टरीतु) दुःख से उल्लंघन करने योग्य (अकृणोः) करते हो वैसे विजुलीरूप अग्नि करता है ॥१॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन मूर्ख लोगों से किये हुए अपराधों को सहकर सम्पूर्ण जनों के सुख के लिए प्रयत्न करते हैं वही सब के हितकारी होते हैं ॥१॥

मनुष्य किस रीति से विद्या को प्राप्त होवें इस विषय को कहते हैं ॥

अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु ग्मन् ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वन् जिस प्रकार से (होता) ग्रहण करने और (यजीयान्) अत्यन्त यज्ञ करने वाला पुरुष (इषयन्) प्राप्त कराता और (ईड्यः) स्तुति करने योग्य (सन्) होता हुआ अग्नि (इळः) पृथिवी वा वाणी के (पदे) स्थान में वर्त्तमान है वैसे होकर आप (नि, असीदः) निरन्तर स्थिर हूजिए और जैसे (देवयन्तः) कामना करते और (चितयन्तः) जनाते हुए (नरः) मनुष्य (प्रथमम्) आदिम अग्नि को (अनु, ग्मन्) पश्चात् चलते हैं वैसे (अधा) अनन्तर (महः) बड़े (राये) धन के लिए (तम्) उस (त्वा) आप को ये सब पश्चात् प्राप्त होवें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य विद्वानों की कामना कर के अग्नि आदि की विद्या को ग्रहण करने की इच्छा करते हैं वे विज्ञान युक्त होते हैं ॥२॥

फिर विद्वान् जन क्या जानें इस विषय को कहते हैं ॥

वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यैः स्त्वे रयिं जागृवांसो अनु ग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वन् (जागृवांसः) विद्या से जागृत विद्वान् जन जिसको (बहुभिः) बहुत (वसव्यैः) पृथिवी आदिकों में हुए पदार्थों के साथ (वृतेव) वर्त्तमान होते हैं जिसमें उस मार्ग से (यन्तम्) जाते (रुशन्तम्) हिंसा करते (दर्शतम्) देखने वाले वा देखने योग्य (बृहन्तम्) बड़े (वपावन्तम्) बहुत कार्य्यों के संस्कार जमाने के अधिकरण विद्यमान जिसमें उस (विश्वहा) सब दिनों वा सब दिनों को (दीदिवांसम्) प्रकाशमान वा प्रकाश करते हुए (अग्निम्) अग्नि के सदृश विद्यादिरूप के (अनु, ग्मन्) पीछे चलते हैं और जो (त्वे) आप में (रयिम्) धन को धारण करे उसको आप पश्चात् जानिये ॥३॥

भावार्थः—जो निरन्तर सर्वत्र चलते हुए सब के प्रकाशक और सम्पूर्ण पदार्थों में व्यापक और पदार्थों के जलाने वाले बिजुली आदि स्वरूप अग्नि को जान कर कार्य्यों में उपयुक्त करते हैं वे अत्यन्त लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त सन्दृष्टौ ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो (व्यन्तः) व्याप्त हैं विद्या और क्रियायें जिन में ऐसे और (श्रवस्यवः) अपने अन्न की इच्छा करने वाले आप लोग (नमसा) अन्न आदि वा वज्रवच्छेदकत्वगुण के साथ वर्तमान (देवस्य) सब में प्रकाशमान अग्नि के (पदम्) प्राप्त होने योग्य (अमृक्तम्) शुद्धि से रहित (श्रवः) पृथिवी के अन्न आदि को (आपन्) प्राप्त होते हैं तथा इस सब में प्रकाशक के (यज्ञियानि) यज्ञ की सिद्धि के लिए योग्य (नामानि) जलों वा संज्ञाओं को (चित्) निश्चय से (दधिरे) धारण करें और (ते) वे (भद्रायाम्) कल्याणकारक (सन्दृष्टौ) उत्तम दर्शन में (रणयन्त) रमें वा रमण करावें ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि आदि पदार्थों के गुण कर्म्म और स्वभावों को जान कर कार्यों को सिद्ध करते हैं वे अतुल आनन्द को प्राप्त कर सुख के विषय में रमते हैं ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या प्रयोग करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (जनानाम्) मनुष्यों के (उभयासः) दोनों प्रकार के अर्थात् विद्वान् और अविद्वान् जन और (क्षितयः) निवास वाले मनुष्य (पृथिव्याम्) भूमि में (रायः) धनों की और (त्वाम्) आप की (वर्धन्ति) वृद्धि करते हैं और (त्वाम्) उन आप को उत्तम प्रकार प्रयुक्त करते हैं वह आप (तरणे) दुःखों से उद्धार के निमित्त (त्राता) रक्षा करने वाले (चेत्यः) चयन समूहों में हुए (पिता) पिताके सदृश पालनकर्त्ता और (माता) माता के सदृश आदर करने वाले (मानुषाणाम्) मनुष्यों के पालक (भूः) होओ और (सदम्) स्थिर होते हैं जिस में उस गृह को व्याप्त हुए उन आप को (इत्) ही सब लोग विशेष करके जानें ॥५॥

भावार्थः जो पृथिवी आदिकों में वर्त्तमान बिजुलीरूप अग्नि का उत्तम प्रकार प्रयोग करते हैं वे सब के सुख देने वाले होते हैं ॥५॥

फिर मनुष्यों को किसकी सेवा करनी चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

सपर्येण्यः स प्रियो विक्ष्व१ग्निर्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान् ।
तं त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! जो (विक्षु) प्रजाओं में (सपर्य्येण्यः) सेवा करने योग्य और (प्रियः) कामना करने योग्य अर्थात् सुन्दर (होता) ग्रहण करने और (मन्द्रः) आनन्द देने वाला (यजीयान्) अतिशय यज्ञकर्त्ता (अग्निः) अग्नि (नि) अत्यन्त (ससाद) स्थित होता है जिन आप से (सः) वह प्रयोग किया जाता है (तम्) उस (दमे) गृह में (दीदिवांसम्) प्रकाशमान (त्वा) आप को (ज्ञुबाधः) जंघाओं को बाधते हुए (वयम्) हम लोग (नमसा) सत्कार वा अन्न आदि से (उप आ, सदेम) समीप होवें ॥६॥

भावार्थः—जो अग्नि आदि की विद्या को जानते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥६॥

फिर मनुष्यों को कैसे होकर क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

तं त्वा वयं सुध्यो३ नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान विद्वन् जैसे (सुध्यः) उत्तम बुद्धियुक्त (सुम्नायवः) अपने सुख की इच्छा करने वाले (देवयन्तः) कामना करते हुए (वयम्) हम लोग (तम्) उस (नव्यम्) नवीन पदार्थों में हुए अग्नि को (ईमहे) व्याप्त होवें वैसे (त्वा) आप को प्राप्त होवें और हे (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्या से प्रकाशित जैसे सूर्य्य (बृहता) बड़े (रोचनेन) प्रकाश से (दीद्यानः) प्रकाशित होता हुआ (दिवः) कामना करने के योग्य पदार्थों को (विशः) प्रजाओं को (अनयः) पहुंचाता है वैसे (त्वम्) आप इनको प्राप्त कराइये ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्वान् जनों के सदृश अग्नि का अनुचरण करते हैं वे कृतकार्य्य होते हैं ॥७॥

फिर मनुष्य किस को प्राप्त होवें इस विषय का कहते हैं ॥

विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग (शश्वतीनाम्) अनादिभूत (विशाम्) प्रजाओं के मध्य में (कविम्) तेजयुक्त दर्शन जिसका ऐसे (विश्पतिम्) प्रजा के पालने वाले (नितोशनम्) पदार्थों के नाश करने वाले (वृषभम्) बलिष्ठ और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों और (रयीणाम्) धनों और (प्रेतीषणिम्) अच्छे प्रकार से प्राप्त हुओं को प्राप्त होने वाले को (इषयन्तम्) प्राप्त कराते हुए और (यजतम्) प्राप्त होने योग्य (राजन्तम्) प्रकाशित होते हुए (पावकम्) पवित्र करते वाले (अग्निम्) अग्नि को उत्तम प्रकार काय्यों में युक्त करें वैसे आप लोग भी संप्रयुक्त करो ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि का शरीर के सदृश सेवन करते हैं वे प्रजा के स्वामी होते हैं ॥८॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत्स वामा दधते त्वोतः ॥९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान विद्वन् (ते) आप का (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (समिधा) समिध् से (हव्यदातिम्) हवन करने योग्य वस्तुओं के देने वाले को (आनट्) व्याप्त होता है उस को जानने वाला (सः) वह मैं उसको (ईजे) उत्तम प्रकार प्राप्त होता और (शशमे) प्रशंसा करता हूं (च) और (यः) जो (आहुतिम्) आहुति को अर्थात् जो चारों ओर से होमी जाती उस सामग्री को (परि) सब प्रकार से (वेदा) जानता है (सः) वह (त्वोतः) आप से रक्षित हुआ (नमोभिः) अन्न आदिकों वा सत्कारों से (विश्वा) सम्पूर्ण (वामा) प्रशंसा करने योग्य कर्म्मों को (इत्) ही (दधते) धारण करता है ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो प्रशंसित काय्यों का करने वाला अग्नि है उसको विशेष कर जानिये ॥९॥

जो जन पदार्थविद्याप्राप्ति के लिए प्रयत्न करते हैं वे भाग्यशाली होते हैं ॥
इस विषय को कहते हैं ॥

अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥१०॥

पदार्थः—हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) पुत्र (अग्ने) विद्वज्जन जैसे (समिधा) ईन्धन आदि के सदृश विद्या और (नमोभिः) अन्न आदिकों से संपूर्ण स्त्रियों को जो धारण करते हैं और जो आहुति को देख कर जानता है और जो (वेदी) जानते हैं सुखों को जिस में वह होती है उस का (गीर्भिः) वाणियों और (उक्थैः) कीर्त्तन

करने योग्य वचनों से और (हव्यैः) भोजन करने योग्य पदार्थों से (अस्मै) इस (महे) बड़े (ते) आप के लिए (महि) बहुत (आ) सब प्रकार से (विधेम) सत्कार करें उन वाणियों के सहित आप लोग (उ) भी (उत) और हम भी (ते) आप की (भद्रायाम्) कल्याणकारिणी (सुमतौ) उत्तम बुद्धि में (यतेम) प्रयत्न करें ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग इस प्राणियों के समुदाय के लिये सामग्री से यज्ञ करें ॥१०॥

फिर मनुष्य किस को प्राप्त होवें इस विषय को कहते हैं ॥

आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य१'स्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजैः स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥११॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (यः) जो अग्नि (भासा) प्रकाश से और (श्रवोभिः) श्रवण आदि वा अन्न आदि से (च) भी (श्रवस्यः) सुनने के योग्य और (तरुत्रः) दुःख से पार करने वाला (बृहद्भिः) बड़े और (स्थविरेभिः) स्थूल अर्थात् भारी (वाजैः) संग्रामों के सहित वर्त्तमान (रेवद्भिः) बहुत धनों से युक्त जनों के साथ (रोदसी) द्यावापृथिवी को (वि, आ, ततन्थ) विशेष कर सब प्रकार विस्तार करता है तथा (अस्मे) हम लोगों के लिए उस (वितरम्) वितर अर्थात् विविध प्रकार से तरते हैं जिससे उसको (वि, भाहि) उत्तम प्रकार प्रकाशित कीजिये ॥११॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन उत्तम विद्या से अग्नि के प्रभाव को जानें तो विस्मय को प्राप्त होकर चकित होवें ॥११॥

फिर विद्वज्जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥१२॥

पदार्थः—हे (वसो) वसने वाले विद्वज्जन आप (अस्मे) हम लोगों में (तोकाय) कन्या और (तनयाय) पुत्र के लिये (पश्वः) पशु गौ आदि को तथा (सदम्) वर्त्तमान होते हैं जिसमें उस गृह और (बृहतीः) बड़ी (पूर्वीः) प्राचीन (आरेअघाः) दूर पाप जिनके उन (इषः) अन्न आदि सामग्रियों को (भूरि) बहुत (धेहि) धारण करिये जिससे (अस्मे) हम लोगों के लिये (इत्) ही (नृवत्) मनुष्यों के सदृश (भद्रा) कल्याणकारक (सौश्रवसानि) उत्तम प्रकार संस्कार से युक्त अन्न में हुए पदार्थ (सन्तु) हों ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—वे ही विद्वान् हैं जो माता पिताओं के समान सांसारिक जनों के लिए हितकारक वस्तुओं को देते हैं ॥१२॥

अब ईश्वर के तुल्य प्रजापालन विषय को कहते हैं ॥

पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥१३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (राजन्) विद्या और विनय से प्रकाशमान (ते) आप के समीप जो (वसुता) द्रव्यों का होना उस में वर्त्तमान (पुरूणि) बहुत और (पुरुधा) बहुत प्रकारों से धारण किये हुए(वसूनि) द्रव्यों को (त्वाया) आप के साथ मैं (अश्याम्) प्राप्त होऊं और हे (पुरुवार) बहुतों से स्वीकार करने योग्य (अग्ने) विद्या और विनय से प्रकाशमान (हि) निश्चय से (त्वे) आप में (पुरूणि) बहुत द्रव्य (सन्ति) हैं (राजनि) राजा (त्वे) आप के होने पर (वसु) द्रव्य का (विधते) विधान करने वाले के लिए कल्याण होता है वह आप हमारे राजा हूजिये ॥१३॥

भावार्थः—वे ही राजा उत्तम हैं जो परमेश्वर के सदृश पक्षपात का त्याग करके पुत्र के सदृश प्रजाओं का पालन करते हैं और वे ही प्रजाजन श्रेष्ठ होते हैं जो राजा और ईश्वर के भक्त हैं ॥१३॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान् और ईश्वर के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

इस अध्याय में मित्रावरुण, अश्वि, सूर्य, वायु और अग्नि आदि के गुण वर्णन करने से इस अध्याय में कहे हुए अर्थ की इस से पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में प्रथम सूक्त समाप्त हुआ ॥



* ओ३म् *

अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

—:०:०:०:०:—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथैकादशर्चस्य द्वितीयस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता: । १ । ९ भुरिगुष्णिक् । २ स्वराडुष्णिक् । ७ निचृदुष्णिक् । ८ उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । ३ । ४ अनुष्टुप् । ५ । ६ । १० निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ११ भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब पञ्चमाध्याय का आरम्भ है और छठे मण्डल में ग्यारह ऋचा वाले दूसरे सूक्त का आरम्भ किया जाता है उस के प्रथम मन्त्र में अग्नि कैसा होता है इस विषय को कहते हैं ॥

त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥१॥

पदार्थः—हे (विचर्षणे) प्रकाश करने वाले (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान (हि) जिस कारण (त्वम्) आप (क्षैतवत्) पृथिवी में हुए के समान (यशः) धन अन्न वा कीर्त्ति को (मित्रः) मित्र (न) जैसे वैसे (पत्यसे) पति के सदृश आचरण करते हो और हे (वसो) वसाने वाले (त्वम्) आप (पुष्टिम्) धातु के साम्य से बल आदि के योग को (न) जैसे वैसे (श्रवः) अन्न वा श्रवण का (पुष्यसि) पालन करते हो इससे सुखी होते हो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे पृथिवी में उत्पन्न हुए शुष्क वस्तु रस से रहित होते हैं वैसे विद्यारहित और धर्म्मरहित जन दयारहित और कोमलता रहित होते हैं ॥१॥

विद्वानों को इस संसार में कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते ।

त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो (चर्षणयः) मनुष्य (यज्ञेभिः) अध्ययन अध्यापन आदिकों और (गीर्भिः) वाणियों से (त्वाम्) आपकी (हि) निश्चित (ईळते) स्तुति करते (ष्मा) हा हैं (रजस्तूः) लोकों का बढ़ाने वाला (विश्वचर्षणिः) सम्पूर्ण विचारशील मनुष्य जिसके वह (अवृकः) चोर आदिकों के संग से रहित (वाजी) वेग से युक्त हुआ (त्वाम्) आप को (याति) प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य जिस विद्वान् का सेवन करते हैं वह उनके लिये विद्या देवे ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते ।

यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वन् (सजोषः) तुल्य प्रीति के सेवन करने वाले (दिवः) सत्य की कामना करते हुए (नरः) नायक जन (यज्ञस्य) न्यायव्यवहार की (केतुम्) बुद्धि को और (त्वा) आपको (इन्धते) प्रकाशित करते हैं और (यत्) जिससे (ह) निश्चय करके (स्यः) वह (मानुषः) विचारशील और (सुम्नायुः) सुख की कामना करने वाले (जनः) प्रसिद्ध मनुष्य आप (अध्वरे) अहिंसा रूप में वर्त्तमान होते हो उसकी मैं (जुह्वे) स्पर्द्धा करता हूँ ॥३॥

भावार्थः—उसी का संग मनुष्यों को करना चाहिये जिस की धार्मिक विद्वान् जन प्रशंसा करें ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्त्तः शशमते ।

ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वन् ! (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (धिया) बुद्धि से (सुदानवे) उत्तम दान करने वाले (ते) आप के लिये (ऋधत्) उत्तम प्रकार ऋद्धि करे तथा (शशमते) शान्त हो (सः) वह (ऊती) रक्षण आदि कर्म्म से (बृहतः) बड़े (दिवः) कामना करते हुओं को (द्विषः) शत्रु का (अंहः) अपराध (न) जैसे वैसे (तरति) पार होता है ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य धर्मात्मा जनों के लिए सुख देने वाले होवें वे जैसे धार्मिक जन पाप का नाश करते हैं वैसे ही शत्रुओं का उल्लंघन करते हैं ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत् ।
वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जन (यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (समिधा) अग्नि को प्रदीप्त करने वाले वस्तु से (ते) आप के लिये (निशितिम्) तीक्ष्ण अतितीव्र (आहुतिम्) आहुति को (नशत्) व्याप्त होता है (सः) वह (वयावन्तम्) बहुत पदार्थों से युक्त (क्षयम्) गृह और (शतायुषम्) सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवने वाले को प्राप्त होकर (पुष्यति) पुष्ट होता है ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों की सेवा से उत्तम गुण कर्म्म और स्वभाव वालों को प्राप्त होते हैं वे सुख की वृद्धि और अतिकाल पर्य्यन्त जीवन से युक्त और अच्छे गृहों वाले होकर शरीर और आत्मा से पुष्ट होते हैं ॥५॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जसे (ते) उसका (सूरः) सूर्य्य (न) जैसे वैसे (त्वेषः) प्रदीप्त (धूम) धूम (शुक्रः) शुद्धि का करने वाला (आततः) व्याप्त (सन्) होता हुआ (दिवि) प्रकाश में (ऋण्वति) चलता है वैसे (हि) ही (त्वम्) आप (द्युता) प्रकाश और (कृपा) कृपा से (पावक) अग्नि के सदृश वर्त्तमान हुए (रोचसे) प्रकाशित होते हो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—हे विद्वान् जनो ! जिस अग्नि के धूम से वायु आदि पदार्थ शुद्ध होते हैं और जो सूर्य्य आदि का कारण है उस की विद्या को प्राप्त होकर उत्तम गुणों में आप लोग प्रकाशित हूजिये ॥६॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः ।
रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वन् (हि) जिस कारण से आप (विक्षु) प्रजाओं में (ईड्यः) स्तुति करने के योग्य और (नः) हम लोगों के (प्रियः) कामना करने योग्य (पुरीव) रमणीय पुरी के समान (रण्वः) रमण करता हुआ (जूर्य्यः) जीर्ण (त्रययाय्यः) रक्षक को प्राप्त होने वाला (सूनुः) सन्तान (न) जैसे वैसे (अतिथिः) नहीं नियत तिथि जिसकी ऐसे (असि) हो तिससे (अधा) इसके अनन्तर सत्कार करने योग्य हो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जैसे अतिथिजन प्रजाजनों से सत्कार करने योग्य होते और जैसे यहां माता और पिता से सन्तान पालन करने योग्य होते हैं वैसे ही धार्म्मिक विद्वान् जन सत्कार करने योग्य होते हैं ॥७॥

फिर विद्वान् को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः ।
परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्य्यः शिशुः ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान प्रतापी जन आप (हि) जिस कारण (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म से (वाजी) वेग से युक्त (न) जैसे वैसे (कृत्व्यः) करने योग्य कर्म्म को (परिज्मेव) सब ओर जाने वाला वह वायु (स्वधा) अन्न (गयः) गृह और (अत्यः) मार्ग को व्याप्त होने वाला (न) जैसे वैसे (ह्वार्य्यः) कुटिल मार्ग में जाने योग्य (शिशुः) बालक (द्रोणे) जाने योग्य मार्ग में (अज्यसे) प्राप्त किये जाते हो इस कारण से कृतकृत्य हो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो विद्वान् जन सम्पूर्ण अज्ञ जनों के लिए बुद्धि देकर श्रेष्ठ मार्ग में प्राप्त कराते हैं और माता पिता बालक को जैसे वैसे शिक्षा करते हैं वे अन्न आदि से सत्कार करने योग्य होते हैं ॥८॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे ।
धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥९॥

पदार्थः—हे (अजर) जरारूप रोग से रहित (अग्ने) विद्वन् ! (यत्) जिन (शिक्वसः) प्रकाशमान (ते) आप के गुण (वना) जङ्गलों को जैसे किरण वैसे दोषों को (वृश्चन्ति) काटते हैं और (त्या, चित्) उन्हीं (अच्युता) नाश से रहित (धामा) स्थानों को (यवसे) भूसे आदि के लिए (पशुः) गौ आदि पशु (न) जैसे वैसे (त्वम्) आप (ह) निश्चय प्राप्त होते हो ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है– जिन अध्यापकों को गौओं को जैसे बछड़े प्राप्त होकर दुग्ध के सदृश विद्या को ग्रहण करते हैं और जो विद्वान् जन अग्नि के सदृश दोषों का नाश करते हैं वे संसार के कल्याण करने वाले होते हैं ॥९॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम् ।

समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥१०॥

पदार्थः—हे (अङ्गिरः) अंगों के मध्य में रसरूप (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (विश्पते) प्रजा के स्वामिन् विद्वन् जो (हि) जिस कारण से (होता) दाता आप (अध्वरीयताम्) अपने अध्वर की इच्छा करते हुए (विशाम्) प्रजाजनों के (दमे) गृह में (वेषि) व्याप्त होते हो वह आप (समृधः) उत्तम प्रकार से ऋद्धि वाले (कृणु) करिये और (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य का (जुषस्व) सेवन करिये ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि– यज्ञ करने वालों और प्रजाओं के कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही विद्वान् जन सब के प्रयोजनों को सिद्ध करते हैं ॥१०॥

अब विद्वानों के विषय को कहते हैं ॥

अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः । वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम तवावसा तरेम ॥११॥

पदार्थः—हे (मित्रमहः) मित्र आदर करने योग्य जिसका ऐसे (देव) दान करने वाले (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान जन आप (नः) हम लोगों के (देवान्) विद्वान् दाता जनों को (रोदस्योः) अन्तरिक्ष और पृथिवी के मध्य में (सुमतिम्) श्रेष्ठ बुद्धि का (अच्छा) उत्तम प्रकार (वोचः) उपदेश करें जिस कारण से

(स्वस्तिम्) सुख वा शान्ति तथा (सुक्षितिम्) उत्तम पृथिवी वा उत्तम निवास को (दिवः) कामना करते हुए और (नॄन्) नायक जनों को (वीहि) व्याप्त हूजिये और (द्विषः) द्वेष करने वालों का त्याग करो तथा (दुरिता) दुःख के प्राप्त कराने वाले (अंहांसि) पापों के हम लोग (तरेम) पार होवें (ता) उनको (तरेम) फिर भी पार हों और (तव) आप के (अवसा) रक्षण आदि से (तरेम) पार होवें ॥११॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों को मिल कर और बल को प्राप्त होकर शत्रुओं को जीत कर दुःखरूप सागर से पार हों ॥११॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठ मण्डल में द्वितीय सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य तृतीयस्य सूक्तस्य भारद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ३ । ४ त्रिष्टुप् । २ । ५ । ६ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले तीसरे सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मंत्र में फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अग्ने स क्षेषदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ॥१॥

पदार्थः—हे (देव) सुख के देने वाले (अग्ने) बिजुली के सदृश तेजस्वी विद्वान् जैसे (ऋतपाः) सत्य का पालन करने और (ऋतेजाः) सत्य में प्रकट होने वाला सूर्य्य (उरु) बड़े (ज्योतिः) प्रकाश को (नशते) प्राप्त होता है वैसे (देवयुः) विद्वानों की कामना करता हुआ (ते) आप के (मित्रेण) मित्र के सहित (वरुणः) श्रेष्ठ (सजोषाः) तुल्य प्रीति का सेवन करने वाला वर्त्तमान है और (यम्) जिस (अंहः) अपराधी (मर्त्तम्) मनुष्य की (त्वम्) आप (त्यजसा) त्याग से (पासि) रक्षा करते हो (सः) वह पुण्यात्मा होता हुआ (क्षेषत्) निवास करता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे ईश्वर से रचा गया सूर्य्य सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करता है वैसे ही विद्वानों के संग से हुए विद्वान् सब के आत्माओं को प्रकाशित करते हैं और जैसे सूर्य्य अन्धकार का नाश

करके दिन को प्रकट करता है वैसे ही विद्या को प्राप्त हुआ धार्मिक विद्वान् अविद्या का नाश करके विद्या को प्रकट करता है ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्नये ददाश ।

एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ॥२॥

पदार्थः—जो विद्वान् (यज्ञेभिः) विद्वानों की सेवा और सत्य भाषण आदिकों के साथ (ईजे) उत्तम प्रकार मिलता है और (शमीभिः) शुभकर्म्मों से (शशमे) शान्त होता है (ऋधद्वाराय) उत्तम प्रकार बढ़ाने वाला सत्य स्वीकार करने योग्य व्यवहार जिसका उस (अग्नये) अग्नि के सदृश वर्त्तमान सुपात्र के लिए (ददाश) देता है (तम्) उसको (एवा) ही (चन) निश्चय से (मर्त्तम्) मनुष्य को और (यशसाम्) धनों वा अन्नों का (अजुष्टिः) असेवन (न) जैसे वैसे (अंहः) अपराध (न) नहीं (नशते) प्राप्त होता है और (प्रदृप्तिः) अत्यन्त मोह प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो सत्यभाषण आदि धर्म्म के अनुष्ठान करने वाले, योगी अभय देने वाले है वे पाप और मोह का त्याग करके विज्ञान को प्राप्त होकर सुखी होते हैं ॥२॥

फिर विद्वानों की बुद्धि कैसी होती है इस विषय को कहते हैं ॥

सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः ।

हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्रा चिद्रण्वो वसतिर्वनेजाः ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वन् (यस्य) जिन (हेषस्वतः) प्रसिद्ध शब्द विद्यमान जिसके उन (शुचतः) शोक से व्याकुल (ते) आपका (यत्) जो (दृशतिः) दर्शन और (अरेपाः) पाप से रहित और (भीमा) भयकारक (धीः) बुद्धि (सूरः) सूर्य्य के (न) जैसे वैसे (आ, एति) प्राप्त होती है उसका (अयम्) यह (शुरुधः) अन्धकार को नाश करने वाले तेज का धारण करने वाला सूर्य्य (अक्तोः) रात्रि का दूर करने वाला (न) जैसे वैसे (कुत्रा) (चित्) कहीं भी (रण्वः) सुन्दर (वनेजाः) किरणों के समुदाय में उत्पन्न होने और (वसतिः) निवास करने वाला वर्त्तमान है उसकी हम लोग सेवा करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जिस विद्वान् की सूर्य्य की ज्योति वा बिजुली के सदृश बुद्धि है वही सम्पूर्ण जितना योग्य उतने विज्ञान को प्राप्त होता है ॥३॥

फिर विद्वानों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस (अस्य) इस विद्वान् के (तिग्मम्) तीव्र (महि) बड़े (वर्पः) रूपका (यमसानः) नियमन करता और (विजेहमानः) शब्द करता हुआ (अश्वः) शीघ्र चलने वाला घोड़ा (न) जैसे वैसे (आसा) मुख से (भसत्) प्रकाशित करता है। और (परशुः) कुठार (न) जैसे वैसे (जिह्वाम्) वाणी को (द्रविः) द्रवी होकर उच्चारण की क्रिया (न) जैसे वैसे (द्रावयति) गीला करता है और (दारु) काष्ठ को (धक्षत्) जलावे उसको (चित्) निश्चय से हम लोग (एम) प्राप्त होवें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०— हे विद्वन् ! जैसे उत्तम प्रकार से शिक्षित घोड़ा मनुष्य को मार्ग में पहुंचाता है वैसे धर्ममार्ग को हम लोगों को पहुंचाइये और जैसे तालु से उत्पन्न आर्द्र रस जिह्वा को प्राप्त होता है वैसे विद्या के रस को प्राप्त कराइये तथा जैसे अग्नि काष्ठों को जलाता है वैसे ही हमारे दुर्व्यसनों को जलाइये ॥४॥

फिर मनुष्य कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (चित्रध्रजतिः) विचित्रगमनवाला (अरतिः) नहीं रमण करता हुआ (अक्तोः) रात्रि से और (वेः) पक्षी से (न) जैसे वैसे (द्रुषद्वा) द्रवीभूत आदि पदार्थों में स्थित होने और (रघुपत्मजंहाः) लघुपतनका त्याग करने वाला ही प्रकट होता है (सः) वह अग्नि (अस्तेव) फूकने वाले के सदृश (असिष्यन्) बन्धन को नहीं प्राप्त होता हुआ (अयसः) सुवर्ण के (न) जैसे (तेजः) तेज को वैसे (धाराम्) वाणी को (प्रति, धात्) धारण करता है वह (इत्) ही तेज को (शिशीत) तीक्ष्ण करता है ॥५॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—जो मनुष्य अग्नि को बांध और तीक्ष्ण कर के युद्ध आदि कार्य्यों में प्रयुक्त करते हैं तो पक्षि के सदृश आकाश में जाने को समर्थ होवें ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः ।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन् ॥६॥

पदार्थः—(यः) जो (अरुषः) रक्तगुण के सहित वर्त्तमान (नक्तम्) रात्रि को (ईम्) सब ओर से (यः) जो (अमर्त्यः) अपने रूप से मृत्युरहित (दिवा) कामना से (नॄन्) नायक मनुष्यों को (यः) जो (अरुषः) मर्मस्थलों में वर्त्तमान हुआ (दिवा) कामना वा प्रीति के साथ (नॄन्) नायक जनों के साथ मिलता है (सः) वह (ईम्) जल और (रेभः) आदर करने योग्य विद्वान् वा विद्वानों का सत्कार करनेवाला (न) जैसे वैसे (शोचिषा) (दीप्ति) के सहित वर्त्तमान (उस्राः) किरणों को (प्रति, वस्ते) आच्छादित करता है और (मित्रमहाः) मित्रों का आदर करने वाला (रारपीति) अत्यन्त शब्द करता है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य जल का आकर्षण कर और उस जल को वर्षा के प्राणियों के लिए सुख देता है वैसे विद्वान् पुरुष गुणों का आकर्षण कर और गुणों को दे करके सब जिज्ञासु जनों को सुख देता है ॥६॥

फिर वह कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

दिवो न यस्य विधतो नवीनोद्वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत् ।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी ॥७॥

पदार्थः—(यस्य) जिस वैद्य के (दिवः) प्रकाश का (न) जैसे वैसे (विधतः) विधान करते हुए का (वृषा) बलिष्ठ (रुक्षः) तेजस्वी जन (नवीनोत्) अत्यन्त स्तुति युक्त होता है तथा (ओषधीषु) ओषधियों के निमित्त (नूनोत्) अत्यन्त स्तुति करता है और (यः) जो (घृणा) दीप्ति (न) जैसे वैसे (ध्रजसा) गमन और (पत्मना) उद्गमन से (वसुना) और धन से (सुपत्नी) सुन्दर स्वामी वाली (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (यन्) प्राप्त होने वाला वह (दम्) इन्द्रियों के निग्रह करने वाले की (आ) सब ओर से अत्यन्त स्तुति करता है वह अग्नि सब से जानने के योग्य है ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो अग्नि पृथिवी आदिकों में पूर्ण हुआ घिसने आदि से प्रकाशित होवे वह मनुष्यों के अनेक प्रकार के कार्य्यों को करने वाला होता है ॥७॥

अब कैसा मनुष्य राजा होने के योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः ।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ॥८॥

पदार्थः—हे (विद्वन्) (यः) जो (धायोभिः) धारण करने वाले गुणों से और (युज्येभिः) युक्त करने योग्य (स्वेभिः) अपने (शुष्मैः) बलों और गुणों से (वा) वा (विद्युत्) विजुली (न) जैसे वैसे अपने (अर्कैः) सत्कारों योग्य कारणों से (दविद्योत्) प्रकाशित होता है (यः) जो (वा) वा (मरुताम्) मनुष्यों के (शर्धः) बल को (ऋभुः) बुद्धिमान् जन (न) जैसे वैसे (ततक्ष) तीक्ष्ण करता है तथा (त्वेषः) प्रकाशयुक्त और (रभसानः) वेगयुक्त जैसे (अद्यौत्) प्रकाशित होता है वही राजा संस्थापित करने योग्य है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जो विजुली के सदृश प्रतापी, बलवान्, पदार्थों के संयोग और वियोग की विद्या में चतुर, बुद्धिमान्, विद्वान्, धर्मात्मा, इन्द्रियों को जीतने वाला और प्रजापालनप्रिय क्षत्रिय होवे वही राजा होने के योग्य होवे ॥८॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में तीसरा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य चतुर्थस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ५ । ६ । ७ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । ३ । ४ निचृत्पङ्क्तिः । ८ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले चौथे सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥१॥

पदार्थः—हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) सन्तान और (होतः) दान करने वाले (उशन्) कामना करते हुए (अग्ने) अग्नि के समान विद्वन् (यथा) जैसे (मनुषः) मनुष्य आप (यज्ञेभिः) मिले हुए साधनों और उपसाधनों से (देवताता) श्रेष्ठ यज्ञ

में (यजासि) यजन करें वैसे आप (अद्य) इस समय (समानान्) सदृशों और (उशतः) कामना करते हुए (नः) हम (देवान्) विद्वानों को (समना) संग्राम में (एवा) ही (यक्षि) उत्तम प्रकार मिलिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे विद्वान् यज्ञ के करने वाले जन अंग और उपांगों के सहित साधनों से यज्ञ को शोभित करते हैं वैसे ही शूरवीर बलवान् योद्धा और विद्वान् जनों से राजा संग्राम को जीतें ॥१॥

फिर जगदीश्वर कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

स नो॑ वि॒भावा॑ च॒क्षणि॒र्न वस्तो॑र॒ग्निर्व॒न्दारु॒ वेद्य॒श्चनो॑ धात् ।
वि॒श्वायु॒र्यो अ॒मृतो॒ मर्त्ये॑षूष॒र्भुद्भू॒दति॑थिर्जा॒तवे॑दाः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (वस्तोः) दिन और (चक्षणिः) प्रकाशक सूर्य और (अग्निः) अग्नि के सदृश स्वयं प्रकाशयुक्त (न) जैसे वैसे (नः) हम लोगों के बीच (विभावा) अत्यन्त प्रकाश वाला और (वेद्यः) जानने योग्य (विश्वायुः) पूर्णावस्था वाला (मर्त्येषु) मरण धर्मयुक्त मनुष्यों में (अमृतः) नाशरहित और (उषर्भुत्) प्रातःकाल में जाना जाता है ऐसा और (अतिथिः) जिसके प्राप्त होने की कोई तिथि विद्यमान नहीं उसके समान वर्त्तमान और (जातवेदाः) उत्पन्न हुओं में विद्यमान वा उत्पन्न हुए पदार्थों को जानने वाला (वन्दारु) प्रशंसा करने योग्य (चनः) अन्न आदि को (धात्) धारण करता है (सः) वह परमेश्वर हम लोगों का मङ्गल करने वाला (भूत्) हो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सूर्य्य के सदृश अपने से प्रकाशित, जाननेयोग्य, अजर, अमर, अतिथि के सदृश सत्कार करने योग्य और सर्वत्र व्याप्त है उसकी सब उपासना करें ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

द्यावो॒ न यस्य॑ प॒नय॒न्त्यभ्वं॒ भासां॑सि वस्ते॒ सूर्यो॒ न शु॒क्रः ।
वि य इ॒नोत्य॒जरः॑ पाव॒कोऽश्न॑स्य चिच्छिश्नथत्पू॒र्व्याणि॑ ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (द्यावः) कामना करते हुए विद्वान् जन (न) जैसे वैसे जन (यस्य) जिस परमेश्वर की (अभ्वम्) बड़ी महिमा की (पनयन्ति) स्तुति कराते हैं और (सूर्य्यः) सूर्य्य (न) जैसे वैसे (शुक्रः) शुद्ध पवित्र वा बलिष्ठ जन (भासांसि) तेजों को (वस्ते) आच्छादित करता है और (यः) जो (अजरः) जरादोष से रहित (पावकः) पवित्र और सब को पवित्र करने वाला (वि, इनोति) विशेष व्याप्त होता

है और (अश्नस्य) व्यापक के मध्य में (पूर्व्याणि) पहिले निर्मित वस्तुओं का (चित्) भी (शिश्नथत्) प्रलय करता है वही जगदीश्वर जानने योग्य है ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो परमेश्वर प्रकाशकों का प्रकाशक नित्यों का नित्य और चेतनों का चेतन है उसी का भजन करो ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

वद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम् ।
स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः ॥४॥

पदार्थः -हे (सूनो) संपूर्ण जगत् के रचने वाले (वद्मा) कहने और (अद्मसद्वा) भोग्य पदार्थों में प्राप्त रहने वाले (अग्निः) पवित्र (जनुषा) जन्म से (अज्म) प्राप्त होने और (अन्नम्) खाने योग्य पदार्थ को प्राप्त हुए (असि) हो और शुद्ध (चक्रे) करते हो (सः) वह (हि) निश्चय से (त्वम्) आप (नः) हम लोगों के लिये (ऊर्जसने) पराक्रम के प्रक्षेपण में (राजेव) जैसे प्रकाशमान राजा वैसे (ऊर्जम्) पराक्रम को (धाः) धारण करिये (अवृके) चोर से रहित के (अन्तः) मध्य में (जेः) जीतिये और (क्षेषि) निवास करिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन हैं वे ईश्वर के सदृश पक्षपात से रहित और धर्म्म मार्ग में निवास करते हुए परमेश्वर का भजन करें ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्र्यत्येत्यक्तून् ।
तुर्याम यस्त आदिशामरातीरत्यो न ह्रुतः पततः परिह्रुत् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो विद्वान् (नितिक्ति) अत्यन्त तीक्ष्ण किये (वारणम्) स्वीकार करने और (अन्नम्) खाने योग्य पदार्थ को (अत्ति) भक्षण करता और (वायुः) पवन (न) जैसे वैसे (अक्तून्) प्रसिद्ध पदार्थों को (अति, एति) व्याप्त होता है और (यः) जो (पततः) पतनशील (ते) आप का (ह्रुतः) कुटिलता को प्राप्त हुआ (अत्यः) मार्ग को व्याप्त हुए घोड़े के (न) समान (परिह्रुत्) सब ओर से कुटिल गमन करने वाला है और जिसके हम लोग (आदिशाम्) सब प्रकार से दिये हुओं के (अरातीः) शत्रुओं का (तुर्याम) नाश करें और (राष्ट्री) ईश्वर जैसे वैसे न्याय में वर्त्ताव करें उस का हम लोग सेवन करें ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो शुद्ध खाने और पीने योग्य पदार्थ का

सेवन करता है वायु के सदृश बलिष्ठ और ईश्वर के सदृश पक्षपात से रहित होकर न्याय की अपेक्षा से विपरीत दशा को प्राप्त हुओं का मारने वाला हो उसी को राजा मानो ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा ।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान आप (भानुमद्भिः) बहुत प्रकाश वाले (अर्कैः) वज्र के सदृश छेदक किरणों से (सूर्यः) सूर्य्य के (न) जैसे वैसे (भासा) प्रकाश से (वि, ततन्थ) अत्यन्त विस्तार युक्त करते हो और जैसे (चित्रः) अनेक प्रकार के वर्णों से अद्भुत सूर्य्य (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को प्रकाशित करता और (शोचिषा) प्रकाश से (अक्तः) प्रसिद्ध हुआ (तमांसि) अन्धकारों को (परि) सब ओर से (नयत्) दूर करता है वैसे (पत्मन्) चलते हैं जन जिस में उस मार्ग में (दीयन्) चलते हुए (औशिजः) कामना करते हुए के पुत्र के (न) समान सत्य मार्ग में चलते हुए आप धर्म कर्म का (आ) सब प्रकार से विस्तार करें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य अपने प्रकाश से समीप में वर्त्तमान पदार्थों को प्रकाशित करके रात्रि का निवारण करता है वैसे ही उत्तम गुणों को प्रकाशित कर के अज्ञानान्धकार का निवारण करिये ॥६॥

अन्नादि देने वाले प्रशंसनीय होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान जो आप (नः) हम लोगों के (महि) बड़े वचन को (श्रोषि) सुनते हैं उन (अर्कशोकैः) अन्न आदिकों के शोधनों से (मन्द्रतमम्) अत्यन्त आनन्द देने वाले (त्वाम्) आप का हम लोग (ववृमहे) स्वीकार करते हैं और हे (नृतमाः) अत्यन्त अग्रणी जनो आप लोग (हि) जिस कारण से जैसे (देवता) जगदीश्वर सम्पूर्ण जगत् को प्रसन्न करता है वैसे (शवसा) बल और (राधसा) धन से (वायुम्) प्राण आदि को (पृणन्ति) सुखी करते हैं उन (त्वा) आप को (इन्द्रम्) बिजुली को (न) जैसे वैसे हम लोग स्वीकार करते हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो अन्नादिकों से अत्यन्त आनन्द देने वाले मनुष्यों में उत्तम मनुष्य सम्पूर्ण संसार को उत्तम बुद्धि-युक्त करते हैं वे सत्कार करने के योग्य होते हैं ॥७॥

अब विद्वानों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू नो॑ अग्नेऽवृ॒केभिः॑ स्व॒स्ति वेषि॑ रा॒यः प॒थिभिः॒ पर्ष्यंहः॑ ।
ता सू॒रिभ्यो॑ गृण॒ते रा॑सि सु॒म्नं मदे॑म श॒तहि॑माः सु॒वीराः॑ ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जो आप (अवृकेभिः) चोरों से भिन्न जनों के साथ (नः) हम लोगों को (स्वस्ति) सुख (वेषि) प्राप्त करते हो तथा (पथिभिः) उत्तम मार्गों से (रायः) धनों का (नू) शीघ्र (पर्षि) पालन करते हो और (सूरिभ्यः) विद्वानों के लिये और (गृणते) स्तुति करते हुए के लिये (सुम्नम्) सुख को (रासि) देते हो तथा (अंहः) अपराध को दूर करते हो उन आप के साथ (ता) उक्त पदार्थों को प्राप्त होकर (शतहिमाः) सौ वर्ष पर्य्यन्त (सुवीराः) श्रेष्ठ वीर हम लोग (मदेम) आनन्द करें ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! चोरी और चोर के संग और अन्याय से पाप के आचरण का त्याग करके और सुख को प्राप्त होकर सौ वर्ष युक्त होओ ॥८॥

इस सूक्त में अग्नि, ईश्वर और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में चौथा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य पञ्चमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ४ त्रिष्टुप् । २ । ५ । ६ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले पांचवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या ग्रहण करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

हु॒वे वः॑ सू॒नुं सह॑सो॒ युवा॑न॒मद्रो॑घवाचं म॒तिभि॒र्यवि॑ष्ठम् ।
य इन्व॑ति॒ द्रवि॑णानि॒ प्रचे॑ता वि॒श्ववा॑राणि पुरु॒वारो॑ अ॒ध्रुक् ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (प्रचेताः) उत्तम बुद्धियुक्त (पुरुवारः) बहुतों

से स्वीकार किया गया (अद्रुक्) नहीं द्रोह करने वाला जन (विश्ववाराणि) संपूर्ण जनों से स्वीकार करने योग्य (द्रविणानि) द्रव्यों को (इन्वति) व्याप्त होता है उस (मतिभिः) मनुष्यों वा बुद्धियों के सहित वर्त्तमान (सहसः) बल के (सूनुम्) सन्तान (युवानम्) युवावस्था को प्राप्त (अद्रोघवाचम्) द्रोहरहित वाणी जिस की ऐसे (यविष्ठम्) अतिशय युवावस्था को प्राप्त हुए को (वः) आप लोगों के लिए मैं (हुवे) ग्रहण करता हूं ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोगों को चाहिये कि जो पक्षपात से रहित वाद युक्त, द्रोह से रहित और बुद्धिमानों के संग का सेवन करने वाले और बहुत विद्वानों से आदर किये गए और ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण युवावस्था वाले विद्वान् हों उन्हीं का उपदेश ग्रहण करें ॥१॥

मनुष्यों को किसके होने पर क्या प्राप्त होना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः ।

क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके ॥२॥

पदार्थः—हे (पुर्वणीक) अनेक सेनाओं से युक्त (होतः) दान करने वाले राजन् (यस्मिन्) जिन (पावके) अग्नि के सदृश पवित्र (त्वे) आप के रक्षक रहने पर (यज्ञियासः) यज्ञ के अनुष्ठान करने के योग्य प्रजाजन (दोषा) रात्रि में और (वस्तोः) दिन में (क्षामेव) जैसे पृथिवी वैसे (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) लोकों में प्रकट और पञ्चभूत अधिकरण जिनके उन प्राणियों की और (वसूनि) धनों की (आ, ईरिरे) प्रेरणा करते और (सौभगानि) श्रेष्ठ ऐश्वर्य्यों के भावों को (सम्, दधिरे) सम्यक् धारण करते हैं उनका हम लोग सत्कार करें ॥२॥

भावार्थः—राजा के रक्षक रहने पर ही प्रजाजन प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होते और ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर सुख युक्त होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रथीरभवो वार्याणाम् ।

अत इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि ॥३॥

पदार्थः—हे (चिकित्वः) शुद्ध बहुत बुद्धि से युक्त और (जातवेदः) उत्पन्न हुआ विज्ञान जिन को ऐसे हे राजन् जिस कारण (त्वम्) आप (आनुषक्) संग करने वाले होते हुए (वसूनि) धनों की (विधते) सत्कार करने वाले के लिए (वि, इनोषि) प्रेरणा करते हो और (आसु) इन (विक्षु) प्रजाओं में (क्रत्वा) बुद्धि से (वार्य्याणाम्)

स्वीकार करने योग्यों के (रथीः) बहुत रथों वाले (अभवः) होते हो (अतः) इस कारण से (प्रदिवः) उत्तम प्रकाश के मध्य में (सीद) स्थित होइये ॥३॥

भावार्थः—वही राजा होने के योग्य होवे जो राजविद्या को अच्छे प्रकार जाने ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात् ।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान् ॥४॥

पदार्थः—हे (तपिष्ठ) अत्यन्त तप करने वाले और (मित्रमहः) बड़े मित्रों से युक्त (अग्ने) विद्वन् (यः) जो (सनुत्यः) निश्चित अन्तर्हित अर्थात् मध्य के सिद्धान्तों में प्रकट हुआ अथवा श्रेष्ठ (नः) हम लोगों का (अभिदासत्) चारों ओर से नाश करता है और (यः) जो (अन्तरः) भिन्न हम लोगों से (वनुष्यात्) याचना करे (तम्) उस को (अजरेभिः) वृद्धावस्था से रहित (वृषभिः) बलिष्ठ युवा (तव) आप के (स्वैः) अपने जनों के साथ (तपा) तप युक्त करो वा तपस्वी होओ। और (तपसा) ब्रह्मचर्य्य और प्राणायामादि कर्म्म से (तपस्वान्) बहुत तप युक्त हूजिये ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो आप लोगों से याचना करे उस सुपात्र के लिये यथाशक्ति दान करिये। और जो पीड़ा देवे उसको पीड़ित करो और तपस्वी होकर धर्म का ही आचरण करो ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यस्ते यज्ञेन समिधा य उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत् ।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति ॥५॥

पदार्थः—हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) पुत्र और (अमृत) मरणधर्म्म से रहित (यः) जो (यज्ञेन) विद्वानों के सत्कार नामक यज्ञ और (समिधा) सत्य के प्रकाशक वा ईंधन से तथा (यः) जो (अर्केभिः) आदर करने योग्य और (उक्थैः) कहने के योग्य पदार्थों से (ते) आप के लिये (ददाशत्) देता है (सः) वह (मर्त्येषु) मनुष्यों में (प्रचेताः) उत्तम ज्ञानवान् (राया) धन (द्युम्नेन) यश और (श्रवसा) अन्न वा श्रवण से (वि, भाति) प्रकाशित होता है इस प्रकार विशेष कर के जानो ॥५॥

भावार्थः—जो प्रशंसित कर्म्म और गुणों के सहित जन इस संसार में

प्रयत्न करते हैं वे विद्या, यश और धन से युक्त होकर संसार में प्रसिद्ध होते हैं ॥५॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

स तत्कृ॑धीषि॒तस्तूय॑मग्ने॒ स्पृधो॑ बाधस्व॒ सह॑सा॒ सह॑स्वान् ।
यच्छ॒स्यसे॑ द्युभि॑र॒क्तो वचो॑भि॒स्तज्जु॑षस्व जरि॒तुर्घोषि॒ मन्म॑ ॥६॥

पदार्थः- हे (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रतापयुक्त (यत्) जो आप (द्युभिः) प्रकाशमान दिनों से (अक्तः) रात्रि जैसे वैसे (शस्यसे) स्तुति किये जाते हो वह आप (वचोभिः) वचनों से (जरितुः) स्तुति करने वाले का (घोषि) वाणी जिस में ऐसा (मन्म) विज्ञान है (तत्) उसका (जुषस्व) सेवन करो (सः) वह (सहस्वान्) सहन करने वाले आप (सहसा) बल से (स्पृधः) स्पर्धा करते हैं जिनमें उन संग्राम सेनाओं की (बाधस्व) बाधा करते हो तथा (तूयम्) शीघ्र (इषितः) प्रेरित हुए (तत्) उसको (कृधि) करो ॥६॥

भावार्थः—जो विद्वान् और ईश्वर से प्रेरित हुए शीघ्र आलस्य का त्याग कर के दिन रात्रि धर्म्म, अर्थ और मोक्ष की सिद्धि के लिये प्रयत्न करते हैं वे योग्य होकर दुःखों को बाधित करते हैं ॥६॥

मनुष्यों को किसके संग से क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अ॒श्याम॒ तं काम॑मग्ने॒ तवो॒ती अ॒श्याम॑ र॒यिं र॑यिवः सु॒वीर॑म् ।
अ॒श्याम॒ वाज॑म॒भि वा॒जय॑न्तो॒ऽश्याम॑ द्यु॒म्नम॑जराज॒रं ते ॥७॥

पदार्थः—हे (अजर) वृद्धावस्थारहित (रयिवः) बहुत धन और (अग्ने) विद्या से युक्त राजन् (तव) आपके (ऊती) रक्षण आदि कर्म्म से हम लोग (तम्) उस (कामम्) मनोरथ को (अश्याम) प्राप्त होवें और (सुवीरम्) उत्तम वीरों की प्राप्ति कराने वाले (रयिम्) धन को (अश्याम) प्राप्त होवें तथा (वाजयन्तः) जनाते हुए हम लोग (वाजम्) अन्न आदि को (अभि) सन्मुख (अश्याम) प्राप्त होवें और (ते) आप के (अजरम्) जीर्ण होने से रहित (द्युम्नम्) यश वा धन को (अश्याम) प्राप्त होवें ॥७॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि हम लोग यथार्थ वक्ता जन के उपदेश से इच्छा की सिद्धि, बहुत धन, वीर पुरुषों और नहीं नष्ट होने वाले यश को प्राप्त होवें ॥७॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में पांचवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य षष्ठस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ । ३ । ४ । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ । ७ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले छठे सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अब मनुष्यों को सन्तान किस प्रकार उत्पन्न करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

प्र नव्यंसा सहंसः सूनुमच्छां यज्ञेनं गातुमवं इच्छमानः ।
वृश्चद्वनं कृष्णयांमं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिंगाति ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यज्ञेन) संगतिरूप यज्ञ से (गातुम्) पृथिवी और (अवः) रक्षण की (इच्छमानः) इच्छा करता हुआ (नव्यसा) अत्यन्त नवीन व्यवहार से (सहसः) बलवान् के (सूनुम्) सन्तान को और (कृष्णयामम्) आकर्षित किया मार्ग जिसने ऐसे (रुशन्तम्) हिंसा करते हुए (वृश्चद्वनम्) काटता है वन जिसमें उसके समान (वीती) व्याप्ति से (होतारम्) देने वाले (दिव्यम्) शुद्ध व्यवहारों में प्रकट हुए को (अच्छ) अच्छे प्रकार (प्र, जिगाति) प्राप्त होता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! आप लोग ब्रह्मचर्य से बलिष्ठ होकर सन्तानों को उत्पन्न करो जिससे रोग रहित, बलयुक्त और उत्तम स्वभावयुक्त सन्तान होकर आप लोगों को निरन्तर सुखयुक्त करें ॥१॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

स श्वितानस्तंन्यतू रौचनस्था अजरेभिर्नानंदद्भिर्यविष्ठः ।
यः पावकः पुंरुतमंः पुरूणि पृथून्यग्निरंनुयाति भर्वन् ॥२॥

पदार्थः हे मनुष्यो (यः) जो (यविष्ठः) अत्यन्त युवावस्था से युक्त जैसे वैसे अत्यन्त बली (पावकः) पवित्र और पवित्र करने वाला (पुरुतमः) अतीव बहुरूप (श्वितानः) शुभ्रवर्ण (अजरेभिः) जीर्णपन आदि रोगरहित (नानदद्भिः) निरन्तर गर्जनाओं से (तन्यतुः) बिजुलीरूप (रोचनस्थाः) दीपन में स्थिर (अग्निः) अग्नि (भर्वन्) दहन करता हुआ (पुरूणि) बहुत (पृथूनि) विस्तीर्णों के (अनुयाति) पश्चात् जाता है (सः) वह आप लोगों को उत्तम प्रकार प्रयोग करने योग्य है ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! जो आप अंग और उपांग के सहित बिजुली की विद्या को जानें तो बहुत सुख को प्राप्त होवें ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वि ते विष्वग्वातजूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति ।
तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः ॥३॥

पदार्थः—हे (शुचे) पवित्र विद्वन् (ते) आपके जो (विष्वक्) सबका आदर करने वाला और (वातजूतासः) वायु के सदृश वेगयुक्त (भामासः) क्रोध (शुचयः) पवित्र (वि, चरन्ति) विशेष करके चलते हैं (तुविम्रक्षासः) बहुतों के साथ मिले हुए (दिव्याः) अन्तरिक्ष में हुए (नवग्वाः) नवीन गमन वाले (धृषता) प्रगल्भता से (रुजन्तः) शत्रुओं को भग्न करते हुए (वना) आदर करने योग्य पदार्थों का (वनन्ति) उत्तम प्रकार सेवन करते हैं वे पवित्र होते हैं ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो बिजुली के सदृश पवित्र, दुष्टों में क्रोध करने वाले, श्रेष्ठों के साथ मेल करने और नवीन नवीन विद्या को प्राप्त होने वाले होवें वे सब स्थानों में विचरते हुए अन्यों को जनावें ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः क्षां वपन्ति विषितासो अश्वाः ।
अध भ्रमस्त उर्विया वि भाति यातयमानो अधि सानु पृश्नेः ॥४॥

पदार्थः—हे (शुचिष्मः) प्रकाशयुक्त विद्वन् (ये) जो (ते) आपके (शुक्रासः) पराक्रमयुक्त (शुचयः) पवित्र (विषितासः) व्याप्त (अश्वाः) शीघ्र चलने वाले (क्षाम्) भूमि को (वपन्ति) बोते हैं (अध) इसके अनन्तर (ते) आप का (यातयमानः) दण्ड देता हुआ (भ्रमः) भ्रमण (उर्विया) बहुत प्रकार के प्रकाश से (पृश्नेः) अन्तरिक्ष के मध्य में (अधि) ऊपर के (सानु) विभाग में (वि, भाति) विशेष शोभित होता है उन सबको आप उत्तम प्रकार शिक्षा दीजिये ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अपने समीप में पवित्र और यथावद्वक्ता पुरुषों की सदा रक्षा करें अथवा आप भी उनका संग करें ॥४॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अध जिह्वा पापतीति प्र वृष्णो गोषुयुधो नाशनिः सृजाना ।
शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्नेर्दुर्वर्तुर्भीमो दयते वनानि ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वन् (गोपयुध:) वाणियों में युद्ध करने वाले (वृष्ण:) बलिष्ठों को (जिह्वा) वाणी (न) नहीं (पापतीति) अत्यन्त वारवार प्राप्त होती है (अध) इसके अनन्तर (अशनिः) बिजुली जैसे वैसे (सृजाना) उत्पन्न किया गया (शूरस्येव) शूरवीर के सदृश (अग्नेः) अग्नि के समान प्रकाशमान (दुर्वर्त्तुः) दुःख के साथ वर्त्तमान से युक्त का (प्रसितिः) प्रकृष्ट बन्धन (क्षातिः) और नाश (भीमः) भयंकर हुआ (वनानि) वनों को (प्र, दयते) नष्ट करता है ॥५॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमावाचकलु०—जो मनुष्य धर्म्म से पतित न होकर धार्म्मिकों में शान्त और दुष्टों में अग्नि के सदृश भयंकर होते हैं वे ही बलवान् गिने जाते हैं ॥५॥

मनुष्यों को किसके सदृश क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

आ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महस्तोदस्यं धृषता ततन्थ ।

स बाधस्वापं भया सहोभिः स्पृधों वनुष्यन्वनुषो नि जूर्व ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वन् राजन् जैसे आप (भानुना) किरण से (तोदस्य) प्रेरण के (धृषता) ढीठ से (महः) बड़े (पार्थिवानि) पृथिवी में विदित कार्य्य वा पृथिवी आदि से कृत (ज्रयांसि) जानने योग्यों का (आ) चारों ओर से (ततन्थ) विस्तार करते हैं वैसे (सः) वह आप (सहोभिः) बलों से (भया) भयों की (अप, बाधस्व) अतीव बाधा करो और (वनुषः) सेवन करने योग्यों का (वनुष्यन्) सेवन कराते हुए (स्पृधः) संग्रामों का (नि, जूर्व) नाश करिये ॥६॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो प्रम से मित्र होकर जैसे सूर्य्य अन्धकार को वैसे भयों को दूर करके संग्रामों को जीतते हैं वे प्रतिष्ठित होते हैं ॥६॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रंक्षत्र चित्रतमं वयोधाम् ।

चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्रं चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ॥७॥

पदार्थः—हे (चित्र) अद्भुत गुण कर्म्म और स्वभाव वाले (चित्रक्षत्र) अद्भुत राज्य वा धन से युक्त (चन्द्र) आह्लादकारक जैसे (सः) वह विद्वान् (चन्द्राभिः) आनन्द और धन करने वाली प्रजाओं से (अस्मे) हम लोगों के लिये (चित्रम्) आश्चर्यभूत (चन्द्रम्) आनन्द देने वाले सुवर्ण आदि को (चितयन्तम्) जनाते हुए तथा (चित्रतमम्) अत्यन्त आश्चर्ययुक्त रूप और (वयोधाम्) जीवन के धारण

करने वाले और (बृहन्तम्) बड़े (पुरुवीरम्) बहुत वीरों के देने वाले (रयिम्) धन की (गृणते) स्तुति करता है उसको आप (युवस्व) उत्तम प्रकार युक्त करिये ॥७॥

भावार्थः—जो मनुष्य अद्भुत गुण कर्म्म और स्वभावों का स्वीकार करके तथा अन्य जनों को ग्रहण कराय के धनाढ्य कराते हैं वे अद्भुत स्तुति वाले होते हैं ॥७॥

इस सूक्त में अग्नि तथा विद्वान् के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में छठा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य सप्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । वैश्वानरो देवता । १ त्रिष्टुप् । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ७ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ निचृत्पङ्क्तिः । ४ स्वराट् पङ्क्तिः । ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ६ जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अथ सात ऋचावाले सातवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को कैसा अग्नि जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

मूर्द्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (देवाः) विद्वान् जन (दिवः) प्रकाश वा सूर्य्य के (मूर्द्धानम्) सर्वोपरि विराजमान (पृथिव्याः) पृथिवी की (अरतिम्) प्राप्ति को (ऋते) सत्य में (जातम्) प्रसिद्ध (कविम्) स्वच्छबुद्धियुक्त वा विद्वान् (सम्राजम्) भूगोल के राजा (जनानाम्) मनुष्यों के (अतिथिम्) आदर करने योग्य (पात्रम्) पालन करने वाले (वैश्वानरम्) सम्पूर्ण मनुष्यों में अग्रणी (अग्निम्) अग्नि के सदृश वर्त्तमान को (आ, जनयन्त) प्रकट करते हैं वे सुखी (आ, आसन्) अच्छे प्रकार हैं ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा के सदृश न्यायकारी होकर तथा अग्नि के सदृश विद्या और विनय से प्रकाशित हुए चक्रवर्त्तित्व को प्राप्त होते हैं वे सब को सुख देने को योग्य होते हैं ॥१॥

फिर उसी अग्नि के विषय को कहते हैं ॥

नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥२॥

पदार्थः— हे मनुष्यो (देवाः) विद्वान् जन जिस (यज्ञानाम्) सत्य क्रियामय यज्ञों के (नाभिम्) बीच के भाग को और (महाम्) महान् (रयीणाम्) धनों के (सदनम्) स्थान और (आहावम्) चारों ओर से स्पर्द्धा करने योग्य (वैश्वानरम्) सर्वत्र प्रकाशमान (रथ्यम्) रथ को वहाने [ले जाने] के योग्य (अध्वराणाम्) नहीं नष्ट करने योग्यों के (यज्ञस्य) प्राप्त होने योग्य व्यवहार के (केतुम्) जनाने वाले को (सम्, जनयन्त) अच्छे प्रकार प्रकट करते हैं और (नवन्त) स्तुति करते हैं उस की आप लोग (अभि) सम्मुख प्रशंसा करिये ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य सर्वत्र व्याप्त और सम्पूर्ण कार्य्यों की सिद्धि के करने वाले अग्नि को अच्छे प्रकार जान कर वाहनों को प्रकट करते हैं वे कार्य्यसिद्धि को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं ॥

त्वद्विप्रो॑ जायते वा॒ज्य॑ग्ने॒ त्वद्वी॒रासो॑ अभिमाति॒षाहः॑ ।

वैश्वा॑नर॒ त्वम॒स्मासु॑ धेहि॒ वसू॑नि राजन्त्स्पृह॒याय्या॑णि ॥३॥

पदार्थः - हे (वैश्वानर) संपूर्ण जनों में अग्रणी (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रतापी विद्वान् (राजन्) राजन् [यस्मात्] जिस कारण से (त्वत्) आपके समीप से (विप्रः) बुद्धिमान् (वाजी) वेगयुक्त (जायते) होता है और (त्वत्) आप के समीप से (अभिमातिषाहः) अभिमानयुक्त शत्रुओं के सहने वाले (वीरासः) शूरवीर जन [जायन्ते] प्रकट होते हैं इस से (त्वम्) आप (अस्मासु) हम लोगों में (स्पृहयाय्याणि) इच्छा के विषय होने योग्य (वसूनि) धनों को (धेहि) धारण करिये ॥३॥

भावार्थः - वही राजा होने को योग्य है जिस के संग से दुष्ट जन भी श्रेष्ठ, कायर भी शूरवीर और कृपण भी दाता होते हैं ॥३॥

अब द्वितीय जन्म के विषय को कहते हैं ॥

त्वां विश्वे॑ अमृत॒ जाय॑मानं॒ शिशुं॒ न दे॒वा अ॒भि सं न॑वन्ते ।

तव॒ क्रतु॑भिरमृत॒त्वमा॑य॒न्वैश्वा॑नर॒ यत्पि॒त्रोरदी॑देः ॥४॥

पदार्थः—हे (वैश्वानर) संपूर्ण जनों को धर्म्म के कार्य्यों में ले चलनेवाले (अमृत) मरण धर्म्म से रहित यथार्थवक्ता विद्वन् जन जिन (त्वाम्) आप को (शिशुम्) बालक को (न) जैसे वैसे (जायमानम्) उत्पन्न हुए को (विश्वे) सम्पूर्ण (देवाः) विद्वान् जन (अभि) सब ओर से (सम्) उत्तम प्रकार (नवन्ते) स्तुति करते हैं और जिन (तव) आप के (क्रतुभिः) बुद्धि के कर्म्मों से मनुष्य लोग

(अमृतत्वम्) मोक्षपन को (आयन्) प्राप्त होते हैं और (यत्) जो आप (पित्रोः) माता और पिता के सदृश विद्या और आचार्य्य के (अवीदेः) प्रकाशक हो वह आप धन्य हो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य माता और पिता से जन्म को प्राप्त होकर आठवें वर्ष से प्रारम्भ करके आचार्य से विद्या के ग्रहण से द्वितीय जन्म को प्राप्त होते हैं वे स्तुति करने योग्य हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करने को समर्थ होते हैं ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या प्राप्त कराना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष ।
यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् ॥५॥

पदार्थः—हे (वैश्वानर) सम्पूर्ण संसार में विद्या और धर्म्म के प्रकाश से अग्रणी (अग्ने) अग्नि के सदृश प्रकाशस्वरूप (यत्) जो आप (पित्रोः) माता पिता के सदृश विद्या और आचार्य्य के (उपस्थे) समीप में (जायमानः) प्रकट हुआ (अह्नाम्) दिनों के मध्य में (वयुनेषु) पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्य्यन्त पदार्थों के विज्ञानों में (केतुम्) बुद्धि को (अविन्दः) प्राप्त होते हो उन (तव) आप के (तानि) उक्त ब्रह्मचर्य्य विद्याग्रहण सत्यभाषण आदि (महानि) बड़े (व्रतानि) कर्म्मों को कोई भी (नकिः) नहीं (आ, दधर्ष) तिरस्कार करे ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य दूसरे विद्यारूप जन्म को प्राप्त होवें तो उन के सफल कर्म्म होते हैं ऐसा जानना चाहिये ॥५॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना ।
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्द्धनि वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस (वैश्वानरस्य) संपूर्ण नरों में विद्या और विनय से प्रकाशमान के (चक्षसा) प्रज्ञान से (विमितानि) विशेष करके परिमित (सानूनि) प्राप्त स्थानों को (दिवः) प्रकाशमान (अमृतस्य) नाश से रहित की (केतुना) बुद्धि से (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवना) लोक (सप्त) सात प्रकार के (विस्रुहः) विशेष कर के सरकते जाते और (मूर्द्धनि) शिर पर अर्थात् ऊपर (वयाइव) पक्षियों के सदृश (अधि) अधिकतर (रुरुहुः) प्रकट होते हैं (तस्य) उसका (इत्) ही (उ) तर्क वितर्क से संग करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो विद्वान् जन परमेश्वर से रचे गए, पक्षियों के सदृश अन्तरिक्ष में चलते हुए लोकों और उन की गति को बुद्धि से विशेष करके जाने वह विद्वानों के मस्तक के सदृश प्रशंसा करने योग्य होता है ॥६॥

फिर जगदीश्वर कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो वि दिवो रोचना कविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो (यः) जो जगदीश्वर (वैश्वानरः) सम्पूर्ण मनुष्यों का हित करने वाला (सुक्रतुः) उत्तम कर्म जिस के वह (कविः) उत्तम बुद्धि वाला ईश्वर (दिवः) प्रकाशमान सूर्य्य के (रोचना) प्रकाशरूप (रजांसि) लोकों को (वि) विशेष कर के (अमिमीत) निर्मित करता तथा (यः) जो (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) भुवनों को (परि) सब ओर से (पप्रथे) विस्तारयुक्त करता है वह (अमृतस्य) मोक्ष का (गोपाः) पालन करने वाला (अदब्धः) अहिंसनीय और (रक्षिता) रक्षा करने वाला (वि) विशेष करके निर्माण करता है ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने सम्पूर्ण लोक निर्मित किये हैं तथा जो सबका रक्षक है उस की सब उपासना करें ॥७॥

इस सूक्त में सब के हित करने वाले, विद्वान् और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में सातवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्याष्टमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । वैश्वानरो देवता । १ । ४ जगती । ६ विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २ । ३ । ५ भुरिक् त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले आठवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मंत्र में अब मनुष्यों को क्या जान कर क्या उपदेश करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोमइव पवते चारुरग्नये ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जिस (पृक्षस्य) सर्वत्र संबद्ध अर्थात् संयुक्त (अरुषस्य) नहीं हिंसा करने और (वृष्णः) सेचन करनेवाले (जातवेदसः) उत्पन्न हुओं

में विद्यमान के (सहः) बलका (नु) शीघ्र (प्र, वोचम्) उपदेश देऊं और (विदथा) विज्ञानों का (नू) शीघ्र उपदेश देऊं और जिसकी (सोमइव) सोमलता जैसे वैसे (नव्यसी) अत्यन्त नवीन (शुचिः) पवित्र (चारुः) सुन्दर (मतिः) बुद्धि (पवते) पवित्र होती है उस (वैश्वानराय) संपूर्ण विश्व के प्रकाशक (अग्नये) विद्वान् जन के लिये बुद्धि को धारण करूं ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जिन मनुष्यों की सोमलतारूप ओषधि के सदृश पवित्र करने वाली बुद्धि, अतुल बल और अग्नि विद्या होती है वे ही आनन्दित होते हैं ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।
व्य१न्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो आप लोगों को जो (व्रतपाः) कर्म्मों की रक्षा करने वाला (अग्निः) अग्नि (परमे) श्रेष्ठ और (व्योमनि) आकाश के सदृश व्यापक परमेश्वर में (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ (व्रतानि) सत्यभाषण आदि कर्म्मों की (अरक्षत) रक्षा करता तथा (अन्तरिक्षम्) जल की (वि) विशेष कर के (अमिमीत) रक्षा करता और (सुक्रतुः) अच्छे कर्म्मोंवाला (वैश्वानरः) सम्पूर्ण मनुष्यों में प्रकाशमान होता हुआ (महिना) महत्त्व से (नाकम्) दुःख रहित का (अस्पृशत्) स्पर्श करता है (सः) वह जानने योग्य है ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर ने अपने में सूर्य्य आदि लोकों के निर्माण से सब का उपकार किया उस के सत्य कर्म्मों का अनुष्ठान करके उपासना करो अर्थात् उसी का भजन करो ॥२॥

फिर सूर्य्य कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः ।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अद्भुतः) आश्चर्यजनक गुण कर्म और स्वभाव वाला (मित्रः) सब के मित्र के समान वर्त्तमान (वैश्वानरः) संपूर्ण मनुष्यों में विराजमान सूर्य्य (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (वि, अस्तभ्नात्) धारण करता तथा (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमः) रात्रि को (अकृणोत्) करता (अन्तर्वावत्) अन्तः अर्थात् ब्रह्माण्ड के भीतर अत्यन्त चलता (चर्म्मणीव) जैसे चर्म में रोम धारण किये

गये वैसे (धिषणे) सब के धारण करने वालियों को (वि, अवर्त्तयत्) विशेष कर के वर्ताता (वृष्ण्यम्) वृषों में उत्पन्न वा श्रेष्ठ (विश्वम्) सम्पूर्ण जगत् को (अधत्त) धारण करता है उस का तुम लोग प्रयोग करो ॥३॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमाल०—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर से बनाया गया यह सूर्य्य जैसे चर्म्म रोमों को वैसे आकर्षण से लोकों को धारण करता है तथा नियम से चलाता और चलता है वही जगत् के उपकार के लिए समर्थ होता है ॥३॥

फिर वह वायु कैसा है और क्या करता है इस विषय को कहते हैं ॥

अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम् ।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो जो (दूतः) संतापित कराने वाला (मातरिश्वा) अन्तरिक्ष में शयन करने वाला वायु (परावतः) दूर स्थित (विवस्वतः) सूर्य्य के (वैश्वानरम्) सर्वत्र प्रकाशमान (अग्निम्) अग्नि को (अभरत्) धारण करता और जिस (ऋग्मियम्) ऋचाओं द्वारा प्रमाण किया जाता उस (राजानम्) जैसे राजा को वैसे सूर्य को (विशः) प्रजायें (उप) समीप में (आ) चारों ओर से (तस्थुः) प्राप्त होती हैं वैसे सूर्य्य उपस्थित होता है और जिस (अपाम्) प्राणों वा जलों के (उपस्थे, समीप में वर्तमान का (महिषाः) बड़े जन (अगृभ्णत) ग्रहण करते हैं उस वायु को आप लोग जानिये ॥४॥

भावार्थः—जैसे वायु दूर वर्त्तमान भी सूर्य्य के तेज को धारण करता है वैसे उत्तम राजा दूर स्थित भी प्रजाओं का पोषण करे ॥४॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

युगेयुगे विदथ्यं गृणद्भ्योऽग्ने रयिं यशसं धेहि नव्यसीम् ।
पव्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा ॥५॥

पदार्थः—हे (अजर) वृद्धावस्था रूप दोष से रहित (राजन्) प्रकाशमान (अग्ने) अग्नि के सदृश वर्त्तमान आप (तेजसा) तेज से (वनिनम्) किरण विद्यमान जिस में उसको (न) जैसे वैसे वा शूरवीर जन (पव्येव) वज्र से जैसे (नीचा) नीच को वैसे (अघशंसम्) चोर को (नि) अत्यन्त (वृश्च) काटो और (गृणद्भ्यः) स्तुति करने वालों के लिये (युगेयुगे) वर्ष वर्ष वा वर्ष समुदाय वर्ष समुदाय में (विदथ्यम्) संग्राम और विज्ञानादिकों में (रयिम्) धन (यशसम्) कीर्ति वा अन्न को और (नव्यसीम्) अतिशय नवीन विद्या वा क्रिया को (धेहि) धारण करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे सूर्य्य किरणों से संयुक्त मेघ का नाश करता है और जैसे वज्र विदारण करने योग्य पदार्थ को विदारण करता वैसे राजा चोर आदि दुष्ट जनों का छेदन भेदन करके धार्मिक जनों के लिये धन आदि ऐश्वर्य्य का धारण करे ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अस्माकमग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥६॥

पदार्थः—हे (वैश्वानर) संसार के अग्रणी (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्वन् राजन् (वयम्) हम लोग (तव) आप की (ऊतिभिः) रक्षा आदि के साथ (शतिनम्) सैकड़ों प्रकार के योद्धाओं से और (सहस्रिणम्) सहस्रों योद्धाओं से संयुक्त (वाजम्) संग्राम को (जयेम) जीतें । तथा हे (अग्ने) तेजस्विन् जैसे (अस्माकम्) हम लोगों के (मघवत्सु) बहुत धनों से युक्त प्रजाजनों में (सुवीर्य्यम्) उत्तम बल (अजरम्) नाशरहित (क्षत्रम्) राज्य वा धन (अनामि) नम्र होवे वैसा (धारय) धारण करो ॥६॥

भावार्थः—जो राजा और सेना के अध्यक्ष धार्मिक विद्वान् न्यायकारी और जितेन्द्रिय हों तो उनका सर्वत्र विजय होता है ॥६॥

फिर राजा आदि जनों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन् ।
रक्षा च नो ददुषां शर्धो अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः ॥७॥

पदार्थः—हे (त्रिषधस्थ) तीन तुल्य स्थानों में वर्त्तमान (इष्टे) मेल करने योग्य (वैश्वानर) विद्या और विनय से प्रकाशमान (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान (स्तवानः) प्रशंसा करते हुए आप (अदब्धेभिः) अहिंसक जनों से (गोपाभिः) रक्षाओं के द्वारा (नः) हम लोगों (सूरीन्) विद्वानों का (पाहि) पालन करिये और (अस्माकम्) हम लोगों के सम्बन्धियों की (च) भी (रक्षा) रक्षा करिये तथा आपका और (ददुषाम्) देने वालों का (च) और हमारा (शर्धः) बल बढ़े और हम लोगों के साथ आप शत्रुओं का (प्र, तारीः) उल्लंघन करो ॥७॥

भावार्थः—हे राजजन ! जैसे सूर्य्य ऊपर नीचे और मध्यस्थ लोकों को प्रकाशित करता है वैसे ही प्रजाजनों की आप सब प्रकार से रक्षा कीजिये और जैसे इस राज्य में विद्वान् बढ़े वैसे कार्य करिये ॥७॥

इस सूक्त में विद्या और विनय से प्रकाशमान, विद्वान्, सूर्य्य और राजा आदि के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में आठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य नवमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । वैश्वानरो देवता । १ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ भुरिक् पङ्क्तिः । ३ । ४ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ७ भुरिग्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब सात ऋचावाले नवम सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा प्रजा परस्पर कैसे वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्त्तेते रजसी वेद्याभिः ।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (अहः) दिन (कृष्णम्) रात्रि (च) और (अहः) व्याप्तिशील (अर्जुनम्) सरल गमन आदि गुणों को (च) भी (रजसी) रात्रिदिन (वेद्याभिः) जानने योग्यों के साथ (वि, वर्त्तेते) विविध प्रकार वर्त्तते हैं और (राजा) राजा के (न) समान (जायमानः) उत्पन्न हुआ (वैश्वानरः) सम्पूर्ण करने योग्य कामों में प्रकाशमान (अग्निः) अग्नि (ज्योतिषा) प्रकाश से (तमांसि) रात्रियों का (अव, अतिरत्) उल्लंघन करता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे रात्रि दिन संयुक्त हैं वैसे ही राजा और प्रजा अनुकूल हों और जैसे सूर्य्य प्रकाश से अन्धकार को निवृत्त करता है वैसे ही राजा विद्या और विनय के प्रकाश से अविद्यारूप अन्धकार को निवृत्त करे ॥१॥

अब अपत्य किस का होता है इस विषय को कहते हैं ॥

नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः ।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो (यम्) जिसको (समरे) संग्राम में (अतमानाः) घूमते हुए जन (न) जैसे वैसे (वयन्ति) व्याप्त होते हैं यह (इह) यहां (कस्य) किस का (स्वित्) भी (पुत्रः) पवित्र और सुख देने वाला है (परः) अन्य (अवरेण)

द्वितीय (पित्रा) पालक वा आचार्य के साथ (वक्त्वानि) कहने के योग्यों को (वदाति) कहे और जिस को घूमते हुए जन संग्राम में (न) नहीं व्याप्त होते हैं उस (तन्तुम्) विस्तार को (ओतुम्) रचने को (अहम्) मैं (न) नहीं (वि) विशेष कर के (जानामि) जानता हूं ॥२॥

भावार्थः—विद्वानों का यह सिद्धान्त है कि जो दो से उत्पन्न होता है जिस के दो माता और दो पिता हैं वह किस का पुत्र है यह हम लोग नहीं जानते हैं ऐसा प्रश्न है। इस में सिद्धान्त यह है कि जैसे उत्पन्न करने वाले माता पिता का पुत्र है वैसे ही आचार्य और विद्या का भी वह द्विज पुत्र है ऐसा सब लोग जानो ॥२॥

फिर अपत्य विषय को कहते हैं ॥

स इत्तन्तुं स वि जा॑नात्योतुं स वक्त्वा॑न्यृतुथा व॑दाति ।
य ईं॒ चिके॑तद॒मृत॑स्य गो॒पा अ॒वश्चर॑न्प॒रो अ॒न्येन॒ पश्य॑न् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (अमृतस्य) नित्य पदार्थ का (गोपाः) रक्षक (अन्येन) अन्य से (पश्यन्) देखता हुआ (अवः) नीचे (परः) ऊपर स्थित दूसरा (चरन्) चलता हुआ (ईम्) जल के सदृश शुक्र को (चिकेतत्) जानता है (सः, इत्) वही (तन्तुम्) कारण को (सः) वह (ओतुम्) रक्षक को (वि, जानाति) विशेष कर के जानता है (सः) वह (ऋतुथा) जैसे काल काल में वैसे (वक्त्वानि) कथन करने योग्यों को (वदाति) कहे ॥३॥

भावार्थः—जो ब्रह्मचर्य्य के द्वारा यथार्थवक्ताओं से विद्या और शिक्षा को प्राप्त होते हैं वे ही इस जगत् के पूर्ण कारण को जानने को समर्थ होते हैं ॥३॥

अब इस देह में दो जीवात्मा और परमात्मा वर्त्तमान हैं इस विषय को कहते हैं ॥

अ॒यं होता॑ प्रथ॒मः पश्य॑ते॒मम्इ॒दं ज्योति॑र॒मृतं॒ मर्त्ये॑षु ।
अ॒यं स ज॑ज्ञे ध्रु॒व आ निष॒त्तोऽम॑र्त्य॒स्तन्वा॒३॒ वर्ध॑मानः ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो जो (ध्रुवः) निश्चल दृढ़ (निषत्तः) स्थित (प्रथमः) पहिला (होता) देने वा ग्रहण करनेवाला (अयम्) यह और (मर्त्येषु) मरणधर्म्मयुक्त शरीरों में (इदम्) इस प्रत्यक्ष (अमृतम्) नाश से रहित (ज्योतिः) सूर्य्य के सदृश अपने से प्रकाशित चेतन परमात्मा है उस (इमम्) इस को (पश्यत) देखिये और जो (अयम्) यह (अमर्त्यः) मरणधर्म्म से रहित (तन्वा) शरीर से (वर्धमानः) बढ़ता हुआ (आ) चारों ओर से (जज्ञे) प्रकट होता है (सः) वह जीव है ऐसा देखो ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! इस शरीर में दो चेतन नित्य हुए जीवात्मा और परमात्मा वर्त्तमान हैं उन दोनों में एक अल्प, अल्पज्ञ और अल्पदेशस्थ जीव है वह शरीर को धारण करके प्रकट होता, वृद्धि को प्राप्त होता और परिणाम को प्राप्त होता तथा हीन दशा को प्राप्त होता, पाप और पुण्य के फल का भोग करता है । द्वितीय परमेश्वर ध्रुव निश्चल, सर्वज्ञ, कर्म्मफल के सम्बन्ध से रहित है ऐसा तुम लोग निश्चय करो ॥४॥

इस शरीर में क्या क्या जानने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

ध्रुवं ज्योतिर्निहि॑तं दृ॒शये॒ कं मनो॒ जवि॑ष्ठं प॒तय॑त्स्व॒न्तः ।
विश्वे॑ दे॒वाः सम॑नसः॒ सके॑ता॒ एकं॒ क्रतु॑म॒भि वि य॑न्ति सा॒धु ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (दृशये) दर्शन के लिये (ध्रुवम्) निश्चल (निहितम्) स्थित (कम्) सुखस्वरूप (ज्योतिः) अपने से प्रकाशित और सब का प्रकाशक ब्रह्म है उसके आधार में जो (जविष्ठम्) अतिवेगयुक्त (पतयत्सु) पति के सदृश आचरण करते हुओं में (अन्तः) मध्य में वर्त्तमान (मनः) अन्तःकरण का व्यापार है उस के आश्रय से (समनसः) सहकारि साधन मन जिन का और (सकेताः) तुल्य बुद्धि जिन की वे (विश्वे) संपूर्ण (देवाः) अपने २ विषयों को प्रकाशित करने वाली श्रोत्र आदि इन्द्रियां (एकम्) सहायरहित (क्रतुम्) जीव के प्रज्ञान को (साधु) उत्तम प्रकार (अभि) सन्मुख (वि) विशेष करके (यन्ति) प्राप्त होते हैं यह आप लोग जानो ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! इस शरीर में सच्चिदानन्दस्वरूप अपने से प्रकाशित ब्रह्म, द्वितीय जीव, तृतीय मन, चौथी इन्द्रियां, पांचवें प्राण, छठा शरीर वर्त्तमान हैं ऐसा होने पर सम्पूर्ण व्यवहार सिद्ध होते हैं जिन के मध्य से सब का आधार ईश्वर, देह, अन्तः करण, प्राण और इन्द्रियों का धारण करने वाला और जीवादिकों का अधिष्ठान शरीर है यह जानो ॥५॥

अब मनुष्य के शरीर में क्या क्या जानने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

वि मे॒ कर्णा॑ पतयतो॒ वि चक्षु॒र्वी॑३॒॑दं ज्योति॒र्हृद॑य॒ आहि॑तं॒ यत् ।
वि मे॒ मन॑श्चरति दू॒रआ॑धीः॒ किं स्वि॑द्व॒क्ष्यामि॒ किमु॒ नू म॑निष्ये ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो (यत्) जो (मे) मेरे (कर्णा) श्रोत्र (वि) विशेष करके (पतयतः) स्वामी के सदृश आचरण करते हुए और जो मेरा (चक्षु) देखने की चेष्टा करता है जिससे वह चक्षु (वि) विशेष करके (चरति) चलता है और जो

(मे) मेरे (हृदये) हृदय में (इदम्) यह (आहितम्) स्थित (ज्योतिः) प्रकाशक (वि) विशेष कर के चलता है और जो मेरा (दूर-आधी) दूरस्थ पदार्थों का सब प्रकार से चिन्तक (मनः) अन्तःकरण (वि) विशेष कर के चलता है जिससे उसको मैं (किम्) क्या (स्वित्) भी (वक्ष्यामि) कहूंगा और (किम्) क्या (उ) और (नू) शीघ्र (मनिष्ये) विचार करूंगा यह विचारता हूं उस सब को आप लोग जनाइये ॥६॥

भावार्थः—हे विद्वान् जनो ! जो मैं और जो मेरे साधन हैं, उस सब व्यवहार को मेरे लिये जनाइये ॥६॥

मनुष्यों को किससे डर कर पापाचरण का आचरण न करना चाहिये
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विश्वे॑ दे॒वा अ॑नमस्यन्भिया॒नास्त्वाम॑ग्ने॒ तम॑सि तस्थि॒वांस॑म् ।
वै॒श्वा॒न॒रो॑ऽवतू॒तये॒ नोऽम॑र्त्यो॑ऽवतू॒तये॑ नः ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) प्रकाशक परमात्मन् (तमसि) अन्धकार में (तस्थिवांसम्) स्थित (त्वाम्) परमात्मा के सदृश बिजुली से युक्त को वा प्राण के सदृश परमात्मा को जैसे पृथिवी आदि वैसे (विश्वे) सम्पूर्ण (देवाः) विद्वान् जन (भियानाः) भय को प्राप्त हुए (अनमस्यन्) नम्र होते हैं वह (वैश्वानरः) सम्पूर्ण संसार के प्रकाशक (अमर्त्यः) मृत्यु धर्म से रहित आप (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (नः) हम लोगों की (अवतु) रक्षा कीजिये और (ऊतये) रक्षा आदि के लिए (नः) हम लोगों की (अवतु) रक्षा कीजिये ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे प्राण और बिजुली को प्राप्त होकर सम्पूर्ण पृथिवी आदिकों की स्थिति है और जैसे अग्नि से सम्पूर्ण प्राणी डरते हैं वैसे ही सर्वत्रव्यापी और सब के अन्तर्यामी परमात्मा को मान के पाप के आचरण से विद्वान् जन डरते हैं इस निमित्त से सब जन इस से डरें ॥७॥

इस सूक्त में दिन रात्रि, अपत्य, जीव, परमात्मादिकों की स्थिति का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में नवम सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य दशमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ त्रिष्टुप् । ४ आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ३ । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ७ प्राजापत्या बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम् ।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आप लोग (वः) आप लोगों के (प्रयति) प्रयत्न से साध्य (अध्वरे) अहिंसनीय (यज्ञे) संगतिस्वरूप यज्ञ में (उक्थेभिः) कहने के योग्यों से (पुरः) प्रथम (मन्द्रम्) आनन्द देनेवाले वा प्रशंसनीय (दिव्यम्) शुद्ध (सुवृक्तिम्) उत्तम प्रकार चलते हैं जिससे उस (अग्निम्) विद्युदादिस्वरूप अग्नि को (दधिध्वम्) धारण करिये और जो (हि) निश्चय करके (विभावा) विशेष करके प्रकाशक (जातवेदाः) प्रकट हुओं को जाननेवाला (नः) हम लोगों को (पुरः) प्रथम (स्वध्वरा) उत्तम प्रकार अहिंसा आदि धर्मों से युक्त (करति) करे (सः) वही हम लोगों से सत्कार करने योग्य है ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे यज्ञ करने वाले यज्ञ में अग्नि को प्रथम उत्तम प्रकार स्थापित कर के उस अग्नि में आहुति देकर संसार का उपकार करते हैं वैसे ही आत्मा के आगे परमात्मा को संस्थापित करके वहां मन आदि का हवन करके और प्रत्यक्ष करके उस के उपदेश से जगत् का उपकार करो ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

तमु द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः ।
स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचि मतयः पवन्ते ॥२॥

पदार्थः—हे (पुर्वणीक) बहुतों को संविभाग करने और (द्युमः) प्रकाशवान् (होतः) धारण करने वाले (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्वन् (मनुषः) मनुष्यों को (इधानः) प्रकाशित करते हुए आप और (मतयः) मननशील अन्य मनुष्य (ममतेव) ममता के समान (अग्निभिः) अग्नियों से (अस्मै) इसके लिए (शुचि) पवित्र (घृतम्) घृत वा (शूषम्) बल के (न) समान (यम्) जिस को (पवन्ते) पवित्र करते हैं (तम्, उ) उसी अग्नि की (स्तोमम्) प्रशंसा को सुनिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—मनुष्य जिस से पदार्थों को सिद्ध करते हैं वह अग्नि सबको कार्य्यसाधक जानने योग्य है ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

पीपाय सः श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः ।
चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो (यः) जो (गोमतः) अतिशय स्तुति करनेवाला और (चित्रशोचिः) अनेक प्रकार का प्रकाश जिसका ऐसा (विप्रः) बुद्धिमान् (उक्थैः) प्रशंसित कर्मा और (चित्राभिः) अद्भुत (ऊतिभिः) रक्षादिकों से (मर्त्येषु) मनुष्य आदिकों में (अग्नये) अग्नि के लिए (श्रवसा) अन्नादि से (पीपाय) बढ़ाता और (ददाश) देता है (सः) वह (व्रजस्य) चलते हैं सघन जल जिस में उस मेघ के (साता) संग्राम से (दधाति) धारण करता है (तम्) उस को आप लोग जानिये ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस अग्नि में अद्भुत गुण कर्म्म स्वभाव हैं उसको अच्छे प्रकार जानकर संप्रयोग करो अर्थात् काम में लाओ ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा ।
अध बहु चित्तम ऊर्म्यायास्तिरः शोचिषा ददृशे पावकः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (जायमानः) प्रकट हुआ (कृष्णाध्वा) कर्षित किया अर्थात् जैसे हल से जोतें वैसे पहियों से सतीरा मार्ग जिस ने वह (दूरेदृशा) जिस से दूर देखते हैं उस (भासा) प्रकाश से (उर्वी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (आ) चारों ओर से (पप्रौ) व्याप्त होता है और (अध) इस के अनन्तर (ऊर्म्यायाः) रात्रि का (बहु) बहुत (चित्) भी (तमः) अन्धकार (शोचिषा) प्रकाश से (तिरः) तिरस्कार करता है और (पावकः) पवित्रकर्त्ता हुआ (ददृशे) देखा जाता है उस को आप लोग जानिये ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि अवश्य विजुलीरूप अग्नि को जानें ॥४॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि ।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान्त्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान् ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) यथार्थवक्ता विद्वन् आप (पुरुवाजाभिः) बहुत ज्ञान और पुरुषार्थ से युक्त (ऊती) रक्षा आदि क्रियाओं से (नः) हम लोगों और (मघवद्भ्यः) धन से युक्त जनों के लिये (च) भी (चित्रम्) अद्भुत (रयिम्) धन को (नू) शीघ्र

(धेहि) धारण कीजिये (ये) जो (सुवीर्य्येभिः) श्रेष्ठ बल वा पराक्रम जिन के उन और (राधसा) धन और (श्रवसा) अन्न आदि से (च) भी (अन्यान्) अन्य (जनान्) मनुष्यों को धारण करते हुए (अभि) सन्मुख (सन्ति) हैं वे (अति) अत्यन्त प्रतिष्ठा को (च) भी प्राप्त होते हैं ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो आप लोगों के लिये विद्या और लक्ष्मी को धारण करते हैं उन की आप लोग अत्यन्त प्रतिष्ठा करो ॥५॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यं त आसानो जुहुते हविष्मान् ।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) पुरुषार्थी विद्वन् आप (यम्) जिस (यज्ञम्) परोपकार नामक यज्ञ की (उशन्) कामना करते हुए (चनः) अन्न आदि को (धाः) धारण करें और (आसानः) बैठे हुए (हविष्मान्) बहुत देने और भोग करने योग्य पदार्थ जिन में वह आप (जुहुते) हवन करते हैं (इमम्) इस की (गध्यस्य) अभिकांक्षा करने योग्य (वाजस्य) विज्ञान आदि के (सातौ) संग्राम में (अवीः) रक्षा कीजिये और (भरद्वाजेषु) अन्न आदि को धारण करने वालों में (सुवृक्तिम्) उत्तम प्रकार चलते हैं जिस में उस मार्ग को (दधिषे) धारण कीजिये उन (ते) आपका सम्पूर्ण सुख सुगम होजाय ॥६॥

भावार्थः—जो परोपकार करते हैं उनको ही अभिष्ट स्वार्थसिद्धि होती है ॥६॥

फिर विद्वद्विषय को कहते हैं ॥

विद्वेषांसीनुहि वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥७॥

पदार्थः—हे अग्नि के समान परोपकार साधक विद्वन् ! आप (द्वेषांसि) द्वेष से युक्त कर्म्मों का त्याग करिये कराइये और (इळाम्) वाणी वा अन्न को (वि) विशेष करके (इनुहि) व्याप्त होओ और हम लोगों की (वर्धय) वृद्धि कीजिये जिस से हम लोग (शतहिमाः) सौ वर्ष पर्यन्त (सुवीराः) अच्छे वीर पुरुषों से युक्त होकर (मदेम) आनन्द करें ॥७॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि वह कर्म्म करें और करावें जिस से मनुष्यों के दोषों की निवृत्ति और बुद्धि, बल तथा अवस्था की वृद्धि होवे ॥७॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में दसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्यैकादशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ३ । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ । ६ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ निचृत्-पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले ग्यारहवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

यजस्व होतरिषितो यजीयानग्ने बाधो मरुतां न प्रयुक्ति ।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः ॥१॥

पदार्थः—हे (होतः) दाता और (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वज्जन (यजीयान्) अतिशय यज्ञ करने वाले (इषितः) प्रेरणा किये गये जैसे (नासत्या) असत्य आचरण से रहित (मित्र वरुणा) प्राण और उदान वायु के समान अध्यापक और उपदेशक जन (होत्राय) ग्रहण करने और देनेवाले के लिये (द्यावा) अन्तरिक्ष और (पृथिवी) पृथिवी मिलाते हैं वैसे (नः) हम लोगों को (प्रयुक्ति) प्रयोग करते हैं पदार्थों का जिस में वह कर्म्म (आ) सब प्रकार से (ववृत्याः) प्रवृत्त कराइये और (मरुताम्) वायु के सदृश मनुष्यों की (बाधः) रुकावट (न) जैसे वैसे वर्त्तमान दिन को निवृत्त कर (यजस्व) उत्तम प्रकार मिलाइये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्वान् जन प्राण और उदान वायु के सदृश प्रिय और पुरुषार्थी होते हैं वे सब के लिये सुख प्राप्त कराने योग्य होते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रुगन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु ।
पावकया जुह्वा३ वह्निरासाग्ने यजस्व तन्वं१ तव स्वाम् ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान परोपकार के सहित वर्त्तमान विद्वन् जन जैसे (मन्द्रतमः) अतिशय आनन्द कराने वाले (होता) दाताजन (विदथा) यज्ञ के (अन्तः) मध्य में (देवः) प्रकाशमान (वह्निः) धारण करने वाला अग्नि (आसा) मुख के सदृश (पावकया) पवित्र करने वाली ज्वाला से (जुह्वा) ग्रहण करता वा

देता जिस से उससे (नः) हम लोगों को और (तव) आप के सम्बन्ध में (स्वाम्) अपने (तन्वम्) शरीर को मिलाता है वैसे (त्वम्) आप (मर्त्येषु) मनुष्यों में (अद्रुक्) किसी से न द्रोह करने वाले होते हुए हम लोगों वा हम लोगों के शरीरों को (यजस्व) उत्तम प्रकार मिलाइये ॥२॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जैसे बिजुली, सूर्य्य और भूमि में हुए तेजस्वी पदार्थों के रूप से अग्नि सम्पूर्ण जगत् का उपकार करता है वैसे ही विद्वान् जन जगत् को आनन्दित करते हैं ॥२॥

फिर वे कैसा होकर क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

धन्यां चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ्जन्मं गृणते यजंध्यै ।

वेपिंष्ठो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधुंच्छन्दो भनंति रेभ इष्टौ ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो (हि) निश्चित (त्वे) आप के रहते (धन्या) धन को प्राप्त हुई (धिषणा) बुद्धि, अन्तरिक्ष वा पृथिवी (देवान्) विद्वानों की (प्र, वष्टि) कामना करती है उन (अङ्गिरसाम्) प्राणों के सदृश विद्वानों के (जन्म) जन्म को (यजध्यै) उत्तम प्रकार प्राप्त होने को जो (गृणते) स्तुति करते हैं और (यत्) जो (ह) निश्चित (वेपिष्ठः) अतिशय कम्पानेवाला (विप्रः) बुद्धिमान् (रेभः) स्तुतिकर्त्ता (इष्टौ) विज्ञान के बढ़ाने वाले यज्ञ में (मधु) माधुर्य गुण से युक्त विज्ञान और (छन्दः) स्वतन्त्रता को (भनति) कहता है (चित्) उन्हीं सब को हम लोग ग्रहण करें ॥३॥

भावार्थः—जो बुद्धि और विद्वानों के सङ्ग से विद्या की कामना करते और अन्यों को उपदेश देते हैं वे धन्य हैं ॥३॥

फिर विद्वान् जन कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

अदिंद्युतत्स्वपांको विभावाग्ने यजंस्व रोदंसी उरूची ।

आयुं न यं नमंसा रातहंव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वज्जन (रातहव्याः) दिये गये देने योग्य (पञ्च) पांच (जनाः) प्राणों के सदृश वर्त्तमान जन (नमसा) अन्न आदि से (यम्) जिस (सुप्रयसम्) उत्तम प्रकार प्रयत्न वाले को (अञ्जन्ति) अच्छे प्रकार प्रकट करते हैं वह (सु) उत्तम प्रकार (अपाकः) नहीं परिपक्व (विभावा) अत्यन्त दीप्तिमान् जन (आयुम्) जीवन को (न) जैसे वैसे (अदिद्युतत्) प्रकाशित होता है इस प्रकार आप (उरूची) बहुतों को प्राप्त होने वाले (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (यजस्व) उत्तम प्रकार प्राप्त हों ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जिस प्रकार से पांच प्राण शरीर को धारण करते हैं वैसे ही नियमित आहार और विहार करने वाले जन शरीर की अति कालपर्य्यन्त रक्षा करते हैं वैसे ही विद्वानों के उपदेश विद्या को अतिकाल पर्य्यन्त स्थिर होने वाली करते हैं ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः ।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वानो मैं (नमसा) अन्न आदि से (अग्नौ) अग्नि में (यत्) जिस (बर्हिः) घृत का (ह) निश्चय करके (वृञ्जे) त्याग करता हूं और जो (सुवृक्तिः) सुवृक्ति अर्थात् उत्तम प्रकार चलते हैं जिस में वह (घृतवती) बहुत जल से युक्त नदी (स्रुक्) बहने वाली (अम्यक्षि) चलती है उस को (अयामि) प्राप्त होता हूं और जो (यज्ञः) प्राप्त होने योग्य यज्ञ (सूर्ये) सूर्य्य में (चक्षुः) नेत्र (न) जैसे वैसे (पृथिव्याः) पृथिवी के (सदने) स्थान में (सद्म) रहने का स्थान अर्थात् गृह का (अश्रायि) आश्रयण करता है उस का सब लोग अनुष्ठान करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे हवन करने वाले जन अग्नि में स्रुवा से घृत छोड़ते हैं वैसे विद्वान् जन अन्य की वृद्धि में विद्या को छोड़े और जैसे सूर्य्य के प्रकाश में नेत्र व्याप्त होता है वैसे ही हवन किया गया द्रव्य अन्तरिक्ष में व्याप्त होता है ॥५॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

दशस्या नः पुर्वणीक होतर्देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।
रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेम वृजनं नांहः ॥६॥

पदार्थः—हे (पुर्वणीक) अनेक सेनाओं से युक्त (होतः) दान करनेवाले (सहसः) बलवान् के (सूनो) सन्तान (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान राजन् (देवेभिः) निरन्तर प्रकाशमान (अग्निभिः) अग्नि के समान वर्त्तमान वीरजनों से (इधानः) प्रकाशमान अग्नि जैसे वैसे आप (नः) हम लोगों के लिये (रायः) धनों को (दशस्या) देते हैं जिस से वह दशस् है उसकी अपने लिये इच्छा करिये, जिससे (वावसानाः) ढांपे गये हम लोग (वृजनम्) वर्जने योग्य बलको (न) जैसे वैसे (अंहः) अपराध को (अति) (स्रसेम) अतिक्रमण करें ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि इन्धनों से बढ़ता है वैसे आप लोग

पुरुषार्थ से बढ़िये और जैसे मनुष्य शत्रु का शीघ्र त्याग करते हैं वैसे अन्यायाचरणरूप पाप का शीघ्र त्याग करो ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में ग्यारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य द्वादशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। अग्निर्देवता। १ त्रिष्टुप्। २ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। ३ भुरिक्पंक्तिः। ४। ६ निचृत्-पङ्क्तिः। ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले बारहवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै।
अयं स सूनुः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (दुरोणे) गृह में (बर्हिषः) अवकाश के (मध्ये) मध्य में (होता) आदान वा ग्रहण करनेवाला (तोदस्य) व्यथा के सम्बन्ध में (राट्) प्रकाशमान (अग्निः) अग्नि (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (यजध्यै) मिलने को (ततान) विस्तृत करता है वैसे (सः) सो (अयम्) यह (सहसः) सहनशील का (सूनुः) अपत्य (ऋतावा) सत्य की याचना करनेवाला (दूरात्) दूर से (शोचिषा) प्रकाश से (सूर्यः) सूर्य्य (न) जैसे वैसे विद्या के प्रकाश को विस्तृत करता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो वेदविहित यज्ञ आदि कर्म्मों के करने वाले जन सूर्य्य के सदृश उत्तम कर्म्मों के प्रकाशक होवें वे सब के सुख बढ़ाने को समर्थ हो सकते हैं ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

आ यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः।
त्रिषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥२॥

पदार्थः—हे (यजत्र) मेल करने योग्य (राजन्) राजा (यस्मिन्) जिन (अपाके) बुद्धि के परिपाक अर्थात् पूर्णता से रहित (त्वे) आप में (सर्वतातेव) सब की वृद्धि करने वाला यज्ञ जैसे वैसे (द्यौः) बिजुली आदि का प्रकाश (नु) उत्तम

प्रकार (आ, यक्षत्) सब ओर से मेल करे वह आप (नु) शीघ्र (त्रिषधस्थः) तीन पृथिवी अन्तरिक्ष और सूर्य्यलोक में तीन प्रकार के तुल्य स्थानों में वर्त्तमान (ततरुषः) तारने और (जंहः) शीघ्र चलने वाला (न) जैसे वैसे (हव्या) देने और ग्रहण करने योग्य (मानुषा) मनुष्य सम्बन्धी (मघानि) धनों को (यजध्यै) प्राप्त होने को यजन कीजिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जहां सूर्य्य के सदृश प्रतापी राजा होता है वहां सम्पूर्ण सुख होते हैं ॥२॥

फिर राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं ॥

तेजि॑ष्ठा॒ यस्या॑र॒तिर्व॑ने॒राट् तो॒दो अध्व॒न्न वृ॒धस॒नो अ॑द्यौत् ।
अ॒द्रोघो न द्र॑वि॒ता चे॑तति॒ त्मन्नम॑र्त्योऽव॒र्त्र ओष॑धीषु ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यस्य) जिस अग्नि के सदृश राजा की (तेजिष्ठा) अतिशय तेजस्विनी (अरतिः) प्राप्ति (वनेराट्) सेवन करने योग्य वा किरण में शोभित होने वाली (अध्वन्) मार्ग में (वृधसानः) बढ़ती हुई (तोदः) पीड़ा (न) जैसे वैसे (अद्यौत्) प्रकाशित होती है वह (अद्रोघः) द्रोह से रहित (न) जैसे वैसे (द्रविता) चलने वाला (त्मन्) आत्मा में (अमर्त्यः) मरणधर्म्म से रहित (अवर्त्रः) नहीं निवारण करने योग्य (ओषधीषु) सोमलता आदि ओषधियों में (चेतति) जनाता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जिस राजा की तेजस्विनी प्रकृति और प्रेरणा होवे वह द्रोहरहित हुआ जैसे ओषधियां दुःख को वैसे सब के दुःख का निवारण करता है वही कृतकृत्य होता है ॥३॥

फिर विद्वानों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

सास्माके॑भिरे॒तरी॒ न शू॒षैर॒ग्निः ष्ट॑वे॒ दम॒ आ जा॒तवे॑दाः ।
द्र्व॑न्नो॒ वन्व॒न् क्रत्वा॒ नार्वो॒स्रः पि॒तेव॑ जार॒यायि॑ य॒ज्ञैः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अस्माकेभिः) हम लोगों के साथ (द्रुवन्नः) द्रवीभूत अन्न जिस से वह (जारयायि) वृद्धावस्था को प्राप्त होने का स्वभाव जिस का उस शरीर का (वन्वन्) सेवन करता हुआ (पितेव) जैसे पिता वैसे (अर्वा) घोड़ा (न) जैसे वैसे (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म्म से (उस्रः) गौओं का सेवन करता है वैसे (यज्ञैः) विद्वानों की सेवा आदि (शूषैः) बल आदिकों के साथ (अग्निः) अग्नि के समान (जातवेदाः) प्रकट हुओं को जानने वाला (स्तवे) प्रशंसा करने योग्य (दमे) गृह में

ग्रौर (एतरी) प्राप्त होने योग्य में (न) जैसे वैसे (ग्रा) प्राप्त होता है (सः) वह राजा हम लोगों से सेवन करने योग्य है ॥४॥

भावार्थः— इस मंत्र में उपमालं०—जैसे प्रशंसा करने योग्य गृह में सुख से निवास होता है वैसे ही पिता के सदृश पालन करने वाले राजा के होने पर प्रजा सुखपूर्वक निवास करती है ग्रौर जैसे बुद्धि से जितेन्द्रिय होकर ग्रौर पृथिवी के राज्य को प्राप्त होकर ग्रनाथों की रक्षा करता है वैसे ही विद्वानों को चाहिये कि सत्य उपदेश से सब जगत् की रक्षा करें ॥४॥

ग्रब कैसी विजुली है इस विषय को कहते हैं ॥

ग्रध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम् ।
सद्यो यः स्यन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट् ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो (यः) जो (स्यन्द्रः) बहानेवाला (विषितः) व्याप्त (धवीयान्) ग्रतिशय कम्पाने ग्रौर (वृथा) व्यर्थ (ऋणः) प्राप्त कराने वाला (तायुः) चोर (न) जैसे वैसे वर्त्तमान ग्रग्नि (यत्) जिन (भासः) प्रकाशों को (तक्षत्) सूक्ष्म करता है (पृथ्वीम्) पृथिवी के (सद्यः) शीघ्र (ग्रनुयाति) पीछे चलता है (ग्रध) इस के ग्रनन्तर (स्म) ही (ग्रस्य) इस राजा के गुणों की विद्वान् जन (पनयन्ति) स्तुति करते हैं उस को जान कर ग्रौर उसकी विद्या को प्राप्त होकर (राट्) राजा (ग्रति, धन्वा) धनुर्वेद का ग्रत्यन्त जाननेवाला होता है ॥५॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—हे विद्वान् जनो ! जो ग्राप लोग विजुली की विद्या को जानकर यन्त्रों से घर्षित कर इस को उत्पन्न करके इस विजुली के साथ मनुष्य ग्रादिकों को युक्त करें तो यह ग्रति कम्पाने वाली ग्रौर वेगवती होवे ग्रौर स्वच्छ काच के स्वभ्र पट्टे के ग्रन्तर्गत मनुष्य को ग्रलग करावें तो यह विजुली शीघ्र भूमि में प्राप्त होती है सो यह सर्वत्र व्याप्त ग्रौर प्रशंसा करने योग्य गुणवाली है जिस से राजा लोग शत्रुग्रों को सहज से जीतकर धनवान् होते हैं ॥५॥

फिर मनुष्य कैसे होवें इस विषय को कहते हैं ॥

स त्वं नो ग्रर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने ग्रग्निभिरिधानः ।
वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥

पदार्थः—हे (ग्रर्वन्) घोड़े के सदृश शीघ्र चलाते हुए (ग्रग्ने) ग्रग्नि के सदृश प्रतापी जिस कारण से (त्वम्) ग्राप (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (ग्रग्निभिः) विजुली

आदिकों से (इधानः) निरन्तर प्रकाशमान (नः) हम लोगों की (निदायाः) निन्दा करते हुए प्रजाजन के (रायः) धनों को (वेषि) व्याप्त होते हो और (दुच्छुनाः) दुष्ट श्वा के सदृश वर्त्तमान सेनाओं को (वि, यासि) विशेष प्राप्त होते हो (सः) वह आप और हम लोग (शतहिमाः) सौ हिम वर्ष जिनके वे (सुवीराः) सुन्दर वीर जन (मदेम) हर्षित होवें ॥६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सम्पूर्ण अग्नि आदि पदार्थों से कार्य्यों को सिद्ध कर के जो न्याय की आज्ञा से विरुद्ध प्रजाजन हैं उन को ताड़न कर के शान्त सम्पादित करें क्योंकि इस प्रकार न्याय के आचरण से सम्पूर्ण जन सौ वर्षयुक्त होते हैं ॥६॥

इस सूक्त में विद्वान्, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छठे मण्डल में बारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य त्रयोदशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ पङ्क्तिः । २ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ । ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५ । ६ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर राजा से क्या प्राप्त होता है इस विषय को कहते हैं ॥

त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम् ॥१॥

पदार्थः—हे (सुभग) सुन्दर ऐश्वर्य्य वाले (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्वज्जन वा राजन् (वनिनः) वनसम्बन्धी (वयाः) पक्षी (न) जैसे वैसे जन (त्वत्) आपसे (विश्वा) सम्पूर्ण (सौभगानि) ऐश्वर्यों के भावों को (वि, यन्ति) विशेष कर प्राप्त होते हैं (वृत्रतूर्ये) मेघ का हनन जिसमें उसके सदृश वर्त्तमान संग्राम में (दिवः) अन्तरिक्ष से (अपाम्) जलों की (वृष्टिः) वृष्टि के सदृश (रीतिः) श्लिष्ट जानने वा प्रकाश कराने वाला (ईड्यः) स्तुति करने योग्य (रयिः) धन और (वाजः) अन्न (श्रुष्टी) शीघ्र प्राप्त होते हैं इससे आप सत्कार करने योग्य हैं ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे सूर्य्य अन्तरिक्ष से वृष्टि कर के सम्पूर्ण जगत् को तृप्त करता है वैसे ही राजा न्याय से युक्त पुरुषार्थ से ऐश्वर्य्यों को बढ़ा कर प्रजाओं को निरन्तर तृप्त करे ॥१॥

फिर विद्वानों को इस संसार में कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः ।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥२॥

पदार्थः—हे (देव) देने वाले (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् जिस कारण से (त्वम्) आप (मित्रः) मित्र (न) जैसे वैसे (बृहतः) बड़े (वामस्य) श्रेष्ठ (भूरेः) बहुत (ऋतस्य) सत्य वा जल के (क्षत्ता) छेदक (असि) हैं इस कारण से (दस्मवर्चाः) उपक्षयित अर्थात् निवास कराई वा निवास की कान्ति जिन्होंने तथा (परिज्मेव) जो सब ओर से चलने वाले वायु के सदृश (भगः) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य्य जिन का ऐसे हुए (नः) हम लोगों को (हि) जिस कारण से (रत्नम्) धन को (इषे) प्राप्त होने को (आ) सब ओर से (क्षयसि) निवास करते वा निवास कराते हो इस कारण आदर करने योग्य हो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो विद्वान् जन प्राणों के सदृश धन और ऐश्वर्य्य की शोभा को धारण करते हैं वे मित्र के सदृश वर्त्ताव कर के सब को सुखी करें ॥२॥

फिर विद्वान् जन कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम् ।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि ॥३॥

पदार्थः—हे (ऋतजात) सत्य में प्रकट होने वाले (प्रचेतः) अच्छे ज्ञान से युक्त (अग्ने) प्रकाश स्वरूप (विप्रः) बुद्धिमान् जन (त्वम्) आप जैसे (सत्पतिः) जल का पालक सूर्य्य (शवसा) बल से (वृत्रम्) मेघ का (हन्ति) नाश करता है और (पणेः) व्यवहार कर्त्ता के (वाजम्) अन्न वा विज्ञान को (वि, भर्त्ति) विशेष कर धारण करता है वैसे (यम्) जिस को (सजोषाः) तुल्य प्रीति से सेवन करने वाले आप (राया) धन से (अपाम्) जलों के (नप्त्रा) नहीं गिरने वाले के साथ (हिनोषि) वृद्धि करते हो (सः) सो यह सब प्रकार से वृद्धि को प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो बुद्धिमान् जन सूर्य्य के सदृश विद्या को प्रकाशित करके अविद्या का नाश करते हैं वे अतुल सुख को प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

यस्तै सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्त्तो निशितिं वेद्यानट् ।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं१ पत्यते वसव्यैः ॥४॥

पदार्थः—हे (सहसः) बलिष्ठ के (सूनो) पुत्र (देव) दीप्तिमान् (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् (ते) आप का (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (गीर्भिः) वाणियों और (उक्थैः) कहने और जानने योग्य वेद के वचनों से और (वेद्या) सुख को प्राप्त कराने वाली वेदी से (निशितिम्) निरन्तर तीक्ष्णता के साथ (आनट्) व्याप्त होता है (वसव्यैः) धनों में प्रकट हुए पदार्थों से तथा (यज्ञैः) विद्वानों के सत्कारादिकों से (विश्वम्) समग्र पदार्थ को (धान्यम्) धान्य को (वा) वा (अरम्) पूर्ण (प्रति, धत्ते) धारण करता और (पत्यते) स्वामी के सदृश आचरण करता है (सः) वह आप से मेल करने योग्य है ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से शरीर और आत्मा के बल को पूर्ण करके सन्तानों की उत्पत्ति करो ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः ।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये ॥५॥

पदार्थः—हे (सहसः) बल के सम्बन्ध में (सूनो) बलवान् सन्तान (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान आप (यत्) जिस (शवसा) बल से (पुष्यसे) पुष्टि के लिये (नृभ्यः) नायक जनों से (सुवीरा) सुन्दर वीर जिनके लिये (ता) उन (सौश्रवसा) विद्वान् से सिद्ध किये गए कर्म्मों को (आ, धाः) धारण करते (पश्वः) पशु के (भूरि) बड़े (वयः) जीवन को (कृणोषि) करते हो और (जसुरये) हिंसा करने वाले (वृकाय) वृक के सदृश वर्त्तमान (अरये) शत्रु के लिये दण्ड देते हो इस कारण से आप न्यायकारी हो ॥५॥

भावार्थः—जो राजा दुष्ट चोरादिकों का निवारण कर के प्रजाओं को पुष्ट करता है वह सब का हितैषी होता है ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः ।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्त्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥६॥

पदार्थः—हे (सहसः) बलिष्ठ के (सूनो) सन्तान (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्वन् (विहायाः) बड़े (वद्मा) सत्य हित के उपदेष्टा आप (नः) हम को

(विश्वाभिः) संपूर्ण (गीर्भिः) वाणियों से (वाजिनः) अन्न आदि युक्त के (तोकम्) वृद्धि करने और (तनयम्) सुख के बढ़ाने वाले के अपत्य को (वाः) दीजिये जिससे मैं (पूर्तिम्) पूर्णता को (अश्याम्) प्राप्त होऊं और जिससे हम लोग (शतहिमाः) सौ वर्ष की अवस्था युक्त (सुवीराः) उत्तम वीरों वाले (अभि, मदेम) सब ओर से आनन्द करें ॥६॥

भावार्थः—हे विद्वान् जनो ! आप अध्यापन और उपदेश से सम्पूर्ण गृहस्थों के पुत्र और पुत्रियों को उत्तम प्रकार शिक्षित करके विद्या से सुखयुक्त करो जिससे दीर्घ अवस्था वाले होकर ये सन्तान भी ऐसा ही आचरण करें ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान् और राजा के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में तेरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य चतुर्दशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ३ भुरिगुष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । २ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ अनुष्टुप् । ५ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ६ भुरिगतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले चौदहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अब मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः ।
भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो (यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (धीतिभिः) अंगुली आदि अवयवों से (अग्ना) अग्नि में (दुवः) सेवन और (धियम्) बुद्धि वा कर्म्म का (जुजोष) सेवन करता है और (अवसे) रक्षण आदि के लिये (पूर्व्यः) पूर्वजनों से प्रकाशित किया गया (प्र, भसत्) प्रकाशित होवे और (इषम्) अन्न वा विज्ञान को (नु) शीघ्र (वुरीत) स्वीकार करे (सः) वह भाग्यशाली होता है ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य आलस्य आदि दोषों का त्याग कर धर्म्म से पुरुषार्थ करते हैं वे सम्पूर्ण इष्ट सुख को प्राप्त होते हैं ॥१॥

अत्र मनुष्य क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः ।
अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस (होतारम्) सब को धारण करने वा देने वाले (अग्निम्) परमात्मा को (प्रचेताः) जनाने वाला (अग्निः) बिजुली जैसे वैसे (वेधस्तमः) अतीव विद्वान् (अग्निः) पवित्र (ऋषिः) मन्त्र और अर्थों को जानने वाला और (मनुषः) विचार करने वाले (विशः) मनुष्य (यज्ञेषु) सन्ध्योपासन आदि श्रेष्ठ कर्म्मों में (ईळते) स्तुति करते हैं उस (इत्) ही की (हि) निश्चित आप लोग प्रशंसा करो ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! सब आप लोगों का परमेश्वर ही स्तुति करने, मानने, हृदय में धारण करने और उपासना करने योग्य है ऐसा सब लोग निश्चय करो ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

नाना ह्य१ग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्य्यः ।
तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जो (हि) निश्चय (नाना) अनेक (अव्रतम्) धर्म्मयुक्त कर्म्म से रहित (दस्युम्) दुष्ट जन को (तुर्वन्तः) हिंसा करते और (व्रतैः) कर्म्मों से (सीक्षन्तः) सहने की इच्छा करते हुए (आयवः) मनुष्य (अवसे) रक्षण आदि के लिये (स्पर्धन्ते) दूसरे की बड़ाई को नहीं सहते हैं उनका सत्कार (रायः) धन का (अर्य्यः) स्वामी करे ॥३॥

भावार्थः—जो दुष्टों के निवारण में प्रयत्न करते हैं वे मनुष्य धनवान् होते हैं ॥३॥

फिर उत्तम मनुष्य क्या करता है इस विषय को कहते हैं ॥

अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् ।
यस्य त्रसन्ति शवसः सञ्चक्षि शत्रवो भिया ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यस्य) जिस के (शवसः) बल से (सञ्चक्षि) सम्मुख (भिया) भय से (शत्रवः) शत्रुजन (त्रसन्ति) व्याकुल होते हैं वह (अग्निः) बड़ा बलिष्ठ वीर पुरुष (अप्साम्) श्रेष्ठ कर्म्मों के विभाग करने और (ऋतीषहम्) दूसरे

के पदार्थों के प्राप्त कराने वाले शत्रुओं को सहन कर्त्ता (सत्पतिम्) श्रेष्ठों के पालक (वीरम्) वीर पुरुष को (ददाति) देता है ॥४॥

भावार्थः – जो ब्रह्मचारी जितेन्द्रिय और विद्वान् होकर शरीर और आत्मा के सामर्थ्य को नहीं दूर करते हैं उन से शत्रुजन डर के भागते हैं अथवा वश को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अ॒ग्निर्हि वि॒द्मना॑ नि॒दो दे॒वो मर्त॑मुरु॒ष्यति॑ ।

स॒हावा॒ यस्यावृ॑तो र॒यिर्वाजे॒ष्ववृ॑तः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अवृतः) नहीं स्वीकार किया गया (सहावा) सहने वाला (देवः) निरन्तर प्रकाशमान (अग्निः) अग्नि के सदृश पवित्रों से बढ़ा हुआ मुनि (मर्त्तम्) मनुष्य को (उरुष्यति) सेवता है उसका (हि) जिस से (विद्मना) ज्ञान से विशेष कर के जानें और (यस्य) जिस के (वाजेषु) संग्रामों में (अवृतः) नहीं आच्छादित किया गया (रयिः) धन होता है उस से (निदः) निन्दा करने वालों का निवारण कीजिये ॥५॥

भावार्थः—सब पदार्थों को उत्पन्न करती हुई बिजुली को मनुष्य जानें जिस विज्ञान से आग्नेयादि नामक अस्त्र सिद्ध होते हैं उसका सब काल में खोज करो ॥५॥

फिर विद्वानों को प्रतिदिन क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अच्छा॑ नो मित्रमहो देव दे॒वानग्ने॒ वोचः॑ सुम॒तिं रोद॑स्योः । वी॒हि स्व॒स्तिं सु॑क्षि॒तिं दि॒वो नॄन्द्वि॒षो अंहां॑सि दुरि॒ता त॑रेम॒ ता त॑रेम॒ तवा-वसा॑ तरेम । ६ ।

पदार्थः हे (मित्रमहः) मित्रों से आदर करने योग्य (देव) सुख के देनेवाले (अग्ने) अग्नि के सदृश विद्या के प्रकाश से युक्त विद्वन् आप (नः) हम लोगों (देवान्) विद्वानों को तथा (रोदस्योः) अग्नि और पृथिवी सम्बन्धिनी (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को (अच्छा) उत्तम प्रकार (वोचः) कहिये (सुक्षितिम्) उत्तम भूमि जिसमें उस (स्वस्तिम्) सुख को (वीहि) प्राप्त हूजिये और (दिवः) कामना करते हुए (नॄन्) मनुष्यों से पदार्थ विद्या को कहिये जिस से (तव) आप के (अवसा) रक्षण आदि से (द्विषः) द्वेष से युक्त जनों (अंहांसि) पापों और (दुरिता) दुष्ट आचरणों दुर्व्यसनों

का (तरेम) उल्लंघन करें तथा (ता) उन निन्दादिकों का (तरेम) उल्लंघन करें और कुसंग से हुए दोषों का (तरेम) उल्लंघन करें ॥६॥

भावार्थः—हे विद्वान् जनो ! जितनी विद्या को आप लोग प्राप्त होओ उतनी का अन्य जनों के लिए यथावत् उपदेश करो और सत्य उपदेश से मनुष्यों के दुष्ट व्यसनों को दूर करो और आप अधर्म्म के आचरण से पृथक् वर्त्ताव करो और सत्संग तथा पुरुषार्थ से शुद्ध होकर दुःखों से पार होकर सुख को प्राप्त होओ ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में चौदहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकोनविंशत्यृचस्य पञ्चदशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्यो वीतहव्यो वा ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ । ५ निचृज्जगती । ३ निचृदतिजगती । ७ जगती । ८ विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ४ । १४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ६ । १० । ११ । १६ निचृत् त्रिष्टुप् । १३ विराट् त्रिष्टुप् । १६ त्रिष्टुप् । ६ निचृदतिशक्वरी छन्दः । धैवतः स्वरः । १२ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १५ ब्राह्मी बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । १७ विराडनुष्टुप् । १८ स्वराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ।

अब उन्नीस ऋचावाले पन्द्रहवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अब मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

इमम् षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा ।
वेतीद्दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक्चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् जिस कारण से आप (इमम्) इस (विश्वासाम्) सम्पूर्ण (विशाम्) मनुष्य आदि प्रजाओं के (पतिम्) पालक (अतिथिम्) अतिथि के समान वर्त्तमान (उषर्बुधम्) प्रातःकाल में जगाने वाले को (ऋञ्जसे) सिद्ध करते हैं (गर्भः) अन्तःस्थ के समान जो (उ) तर्कनासहित (दिवः) पदार्थबोध की (जनुषा) उत्पत्ति से (सु, वेति) अच्छे प्रकार व्याप्त होता (इत्) ही है तथा (कत्) कभी (चित्) भी (यत्) जो (शुचिः) पवित्र (अच्युतम्) नाश से रहित वस्तु को (ज्योक्) निरन्तर (अत्ति) भोगता है और (वः) आप लोगों की (गिरा) वाणी से (चित्) निश्चित (आ) आज्ञा करता है वह विद्वान् होता है ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे अतिथि सत्कार करने योग्य है वैसे ही

पदार्थ विद्या का जानने वाला सत्कार करने योग्य है, जो सब के अन्तःस्थ नित्य बिजुली की ज्योति को जानते हैं वे अभीप्सित सुख को प्राप्त होते हैं ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पताबीड्यमूर्ध्वशोचिषम् ।

स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे ॥२॥

पदार्थः—हे (अद्भुत) महाशय (यम्) जिस (मित्रम्) मित्र को (न) जैसे वैसे (सुधितम्) उत्तम प्रकार स्थित का (वनस्पतौ) किरणों के पालक सूर्य्य में (ईड्यम्) उत्तम गुणों से प्रशंसा करने योग्य (ऊर्ध्वशोचिषम्) ऊपर को ज्वाला जिस की उसको (भृगवः) विद्वान् मनुष्य (दधुः) धारण करते हैं (सः) वह (त्वम्) आप (प्रशस्तिभिः) प्रशंसा करने योग्य धर्म्म युक्त क्रियाओं से (दिवेदिवे) प्रतिदिन (सुप्रीतः) उत्तम प्रकार प्रसन्न हुए (वीतहव्ये) व्याप्त हुआ ग्रहण करने योग्य वस्तु जिससे उसमें (महयसे) सत्कार किये जाते हो इससे सेवन करने योग्य हो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जैसे मित्र कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही अग्नि उत्तम प्रकार प्रयोग किया गया कार्य्यों को सिद्ध करता है ॥२॥

फिर मनुष्य कैसे होवें इस विषय को कहते हैं ॥

स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः । रायः सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथः ॥३॥

पदार्थः – हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) सन्तान जो (त्वम्) आप (दक्षस्य) बल के (अवृकः) नहीं चोर (वृधः) बढ़ाने वाले (परस्य) अत्यन्त (अन्तरस्य) भिन्न (तरुषः) तारने वाले (रायः) धन के (अर्यः) स्वामी (मर्त्येषु) मनुष्यों में (सप्रथः) तुल्य प्रसिद्धि वाले (वीतहव्याय) प्राप्त हुआ प्राप्त होने योग्य जिसको उस (भरद्वाजाय) धारण किया विज्ञान जिस ने उसके लिये दाता (भूः) होओ (सः) वह (सप्रथः) विस्तृत विज्ञान के सहित आप (छर्दिः) गृह को (आ, यच्छ) आदान कीजिये अर्थात् लीजिये ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब प्रकार से बल की वृद्धि करें तो लक्ष्मीयुक्त कैसे न हों ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुषः स्वध्वरम् ।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो आप (वः) आप लोगों के (अतिथिम्) अतिथि के समान (द्युतानम्) सत्यार्थ के प्रकाशक (स्वर्णरम्) सुख को प्राप्त कराने और (मनुषः) मनुष्य के (होतारम्) ग्रहण करने वाले (स्वध्वरम्) उत्तम प्रकाश यज्ञ जिस से उस (अग्निम्) अग्नि को (सुवृक्तिभिः) अच्छे प्रकार चलते हैं जिन क्रियाओं से उन के सहित जैसे वैसे (द्युक्षवचसम्) द्योतक वचन के प्रकाशक (हव्यवाहम्) धारण करने योग्य को वहन करने और (अरतिम्) प्राप्ति कराने वाले (देवम्) प्रकाशमान (विप्रम्) बुद्धिमान् को (न) जैसे वैसे (ऋञ्जसे) सिद्ध करते हो उसका हम लोग सत्कार करें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे बुद्धिमान् जन यथा योग्य कर्म्मों को करने को समर्थ होता है वैसे ही युक्ति से अच्छे प्रकार प्रयोग किया अग्नि सम्पूर्ण व्यापार सिद्ध करने को समर्थ होता है ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या प्रकाशित करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन् रुरुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (भानुना) किरण से (उषसः) प्रभातवेला (न) जैसे वैसे (पावकया) अग्नि की क्रिया से और (चितयन्त्या) जनाती हुई (कृपा) कृपा से (क्षामन्) पृथिवी में (रुरुचे) प्रकाशित किया जाता है (घृणे) प्रदीप्त में (न) जैसे वैसे (रणे) संग्राम में (ततृषाणः) पिपासा से व्याकुल (अजरः) जरा से रहित (यः) जो (यामन्) चलते हैं जिस में उस मार्ग में (एतशस्य) घोड़े का चलाने वाला (तूर्वन्) हिंसन करता हुआ (न) जैसे वैसे (नू) शीघ्र (आ) प्रकाशित होता है वह सेवा करने योग्य है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य के किरण प्रातःकाल को प्रकाशित करते हैं वैसे ही विद्वान् जन सब के अन्तःकरणों को प्रकाशित करें ॥५॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अग्निमग्निं वः समिधा दुवस्यत प्रियम्प्रियं वो अतिथिं गृणीषणि । उप

वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं देवो देवेषु वनते हि नो दुवः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (गृणीषणि) स्तुति करने योग्य व्यवहार में (समिधा) इन्धनों से (वः) आप लोगों के (अग्निमग्निम्) अग्नि अग्नि का और (वः) आप लोगों के (प्रियम्प्रियम्) कामना करने योग्य कामना करने योग्य (अतिथिम्) अतिथि का (उप, वनते) समीप में सेवन करता (हि) ही है और जो (देवेषु) श्रेष्ठ गुण-युक्तों में (देवः) प्रकाशमान (गीर्भिः) वाणियों से (वः) आप लोगों को (वार्यम्) स्वीकार करने योग्य व्यवहार (अमृतम्) कारणरूप से नाश रहित का सेवन करता है और जो (हि) निश्चित (देवेषु) पितृरूप विद्वानों में (देवः) दाता जन (नः) हम लोगों के लिये (दुवः) सेवन को (वनते) स्वीकार करता है उसका (दुवस्यत) सेवन करो उसका (विवासत) सेवन करो ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग जैसे विद्वान् का वैसे अग्नि का भी मेल करावें जिससे अभीष्ट कार्य्य सिद्ध होवे ॥६॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (समिधा) इन्धन के समान पदार्थ से (समिद्धम्) प्रकाशित हुए (अग्निम्) अग्नि को जैसे वैसे वर्त्तमान को (अध्वरे) अहिंसारूपयज्ञ में (ध्रुवम्) निश्चल (शुचिम्) पवित्र और (पावकम्) पवित्र करने वाले (होतारम्) दाता (पुरुवारम्) बहुत विद्वानों से सत्कार किये गए (अद्रुहम्) द्रोह से रहित (जातवेदसम्) प्रकट हुई विद्या जिस की ऐसे (विप्रम्) विद्या और विनय से बुद्धिमान् को (गिरा) वाणी से (पुरः) आगे (गृणे) स्तुति करता हूं (कविम्) पूर्ण विद्या से युक्त को जैसे वैसे (सुम्नैः) सुखों से हम लोग (ईमहे) याचना करें वैसे आप लोग भी याचना करो ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग सत्य के प्रकाशक विद्वानों से विद्या की याचना करो तथा इस विद्या को प्राप्त होकर अन्यों को देओ ॥७॥

मनुष्यों से किसकी उपासना करने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्त्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश स्वयं प्रकाशमान भगवन् (युगेयुगे) वर्ष वर्ष वा सत्ययुग आदि में जिस (हव्यवाहम्) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को धारण करने वाले (ईड्यम्) स्तुति करने योग्य (पायुम्) पालन करने वाले (विश्पतिम्) मनुष्य आदि प्रजाओं के पालक (जागृविम्) सदा जागने वाले (अमृतम्) नाश से रहित (दूतम्) दुःखों के दूर करने वाले (विभुम्) व्यापक परमात्मा (त्वाम्) आप को (देवासः) विद्वान् (च) और योगी (मर्तासः) मरण धर्म्म वाले (च) भी (नमसा) सत्कार से (दधिरे) धारण करें (नि, षेदिरे) स्थित होते हैं उसको हम लोग धारण करें तथा उसमें स्थित होवें ॥८॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! आप लोग प्रतिदिन सर्वव्यापी, न्यायेश, दयालु, सब धन्यवादों के योग्य, परमात्मा ही की उपासना करो ॥८॥

फिर वह उपासित ईश्वर क्या करता है इस विषय को कहते हैं ॥

विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥९॥

पदार्थः- हे (अग्ने) सम्पूर्ण दुःखों को जलाने अर्थात् दूर करने वाले परमेश्वर जो आप (रजसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (देवानाम्) विद्वानों के (दूतः) दोषों के दूर करने अथवा धर्म्म अर्थ और मोक्ष को प्राप्त कराने वाले होते हुए (व्रता) कर्म्मों को (विभूषन्) शोभित करते और (उभयान्) विद्वान् और अविद्वान् मनुष्यों को (अनु) पीछे शोभित करते हुए अन्तरिक्ष और पृथिवी को (सम्, ईयसे) व्याप्त होते हैं और (यत्) जिस (ते) आप की (धीतिम्) धारणा वा बुद्धि को (सुमतिम्) श्रेष्ठ बुद्धि को हम लोग (आवृणीमहे) स्वीकार करें वह (अध) इस के अनन्तर (त्रिवरूथः) तीन उत्तम मध्यम निकृष्ट गृहों के सदृश निवासस्थान वाले आप (नः) हम लोगों के लिये (शिवः) कल्याणकारी (स्मा) ही (भव) हूजिये ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य जगत् के रचने वाले ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल वर्त्ताव करते हैं तथा उसके गुण कर्म्म और स्वभावों के सदृश अपने गुण कर्म्म और स्वभावों को करते हैं उनको वह जैसे दूत वैसे सब विद्या के समाचार को जनाता हुआ सहज से मुक्ति के पद को प्राप्त कराता है इस से सब काल में ही इस की उपासना करनी चाहिये ॥९॥

फिर उस का ज्ञान और उपासना आवश्यक है इस विषय को कहते हैं

तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम ।
स यंक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अविद्वांसः) विद्या से रहित जन (तम्) उस (सुप्रतीकम्) सुन्दर कर्म्म किये जिसने तथा (सुदृशम्) योगाभ्यास से देखने योग्य वा उत्तम प्रकार दिखाने और (स्वञ्चम्) अच्छे प्रकार जानने वा प्राप्त कराने वाले (विदुष्टरम्) अत्यन्त विद्वान् ईश्वर को नहीं विशेष कर के जानते और न उपासना करते हैं उनको हम लोग (सपेम) शाप देते हैं और जो (विद्वान्) प्रकट विद्याओं से युक्त (अग्निः) अग्नि के समान स्वयं प्रकाशित हुआ (विश्वा) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञानों और (अमृतेषु) नाशरहित कारण जीवों में (हव्यम्) देने योग्य विज्ञान को (प्र, वोचत्) अत्यन्त कहता है (सः) वह हम लोगों को (यक्षत्) प्राप्त करावे ॥१०॥

भावार्थः—जो परमात्मा को नहीं जानते और उसकी आज्ञा के अनुकूल आचरण नहीं करते उनको धिक् है धिक् है और जो उसकी उपासना करते हैं वे धन्य हैं। और जो हम लोगों के लिये वेद द्वारा सम्पूर्ण विज्ञानों का उपदेश देता है उसी की हम सब लोग उपासना करें ॥१०॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तमंग्ने पास्युत तं पिंपर्षि यस्त आनंट् कवये शूर धीतिम् ।
यज्ञस्यं वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया ॥११॥

पदार्थः—हे (शूर) भयरहित दुष्ट दोषों के विनाश करने और (अग्ने) अविद्यारूप अन्धकार के नाश करने वाले (यः) जो (ते) आप की आज्ञा को (आनट्) व्याप्त होता है उस (कवये) विद्वान् के लिए (धीतिम्) धारणा को देते हो (तम्) उस की (पासि) रक्षा करते हो (उत) और (तम्) उसको (पिपर्षि) पालना करते वा श्रेष्ठ गुणों से पूरित करते हो (वा) वा (यज्ञस्य) यज्ञ की (निशितिम्) अत्यन्त तीक्ष्णता का वा (उदितिम्) उदय का (वा) वा (पृणक्षि) सम्बन्ध करते हो (तम्) उस का (वा) वा (शवसा) बल से (उत) और (राया) धन से भी सम्बन्ध करते हो वह (इत्) ही आप उपासना करने योग्य हैं ॥११॥

भावार्थः—जो सत्यभाव से जगदीश्वर की उपासना करते हैं उन की ईश्वर सब प्रकार से रक्षा कर धर्म्मयुक्त गुण कर्म और स्वभावों में प्रेरणा कर तथा शरीर और आत्मा का बल अच्छे प्रकार देकर मोक्ष को प्राप्त कराता है ॥११॥

फिर ईश्वर किस निमित्त उपासना करने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥१२॥

पदार्थः—हे (सहसावन्) अत्यन्त बलयुक्त (अग्ने) श्रेष्ठ गुणों के देनेवाले (त्वम्) आप (वनुष्यतः) याचना करते हुए (नः) हम लोगों की (अवद्यात्) निन्द्य आचरण से (त्वम्) आप (नि, पाहि) नित्य रक्षा करिये और जो (स्पृहयाय्यः) स्पृहा कराने योग्य (सहस्री) सम्पूर्ण सुख जिस में वह (रयिः) धन और जो (ध्वस्मन्वत्) नाशवाला (पाथः) अन्न आदि हम लोगों को (सम्, अभि, एतु) उत्तम प्रकार प्राप्त हो उससे युक्त हम लोग (उ) भी (त्वा) आप की (सम्) अच्छे प्रकार उपासना करें ॥१२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो धर्म्म से याचना किया गया जगदीश्वर अधर्म के आचरण से अलग कर के धर्म्म को प्राप्त कराता है और जो अनित्य सुखको भी देता है उसी को रक्षक, सब ऐश्वर्य्य देनेवाला तथा इष्ट देव जानो ॥१२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः ।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा ॥१३॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यः) जो (गृहपतिः) गृह का पालक जैसे वैसे ब्रह्माण्ड का प्रबन्ध करने (होता) धारण करने तथा (जातवेदाः) प्रकट हुए पदार्थों को जानने वाला और सब का (राजा) न्याय करने तथा (ऋतावा) सत्य और असत्य का विभाग करने (यजिष्ठः) अतिशय यज्ञ करने वा पदार्थों का मेल करानेवाला (अग्निः) सब का प्रकाशक (देवानाम्) दिव्य पदार्थों वा विद्वानों के मध्य में (उत) और (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के (विश्वा) सम्पूर्ण (जनिमा) जन्मों को (वेद) जानता है (सः) वह हम लोगों को (प्र यजताम्) अत्यन्त प्राप्त करावे (सः) वह हम लोगों का राजा होवे ऐसा हम लोग निश्चय करते हैं वैसे आप लोग भी जानो ॥१३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सम्पूर्ण जगत् और जीवों के कर्म्मों को जानकर फलों को देता है वही सत्य राजा है ऐसा जानना चाहिये ॥१३॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

अग्ने यद॒द्य वि॒शो अ॑ध्वरस्य होतः॒ पाव॑कशोचे॒ वेष्ट्वं हि यज्वा॑ ।
ऋ॒ता य॑जासि महि॒ना वि यद्भूर्ह॒व्या व॑ह यविष्ठ॒ या ते॑ अ॒द्य ॥१४॥

पदार्थः—हे (पावकशोचे) पवित्र प्रकाश और (होतः) दान करने तथा (यविष्ठ) अतिशय मिलाने या विभाग कराने और (अग्ने) सम्पूर्ण प्रजा की पीड़ाओं के दूर करनेवाले (यत्) जो (यज्वा) मेल करने वाले (त्वम्) आप (हि) निश्चय से (अद्य) इस समय (विशः) मनुष्य आदि प्रजा के (वेः) आकाशगन्ता पक्षी के समान (अध्वरस्य) अहिंसामय के (ऋता) सत्य सुख के प्राप्त कराने वाले यज्ञ में (यजासि) यजन करते हो (यत्) जो आप (महिना) महत्त्व से (वि) विशेष करके (भूः) होवें और (या) जो वस्तुएं (ते) आप के वर्त्तमान में (अद्य) इस समय हैं उन (हव्या) देने योग्यों को हम लोगों के लिए (वह) प्राप्त करिये ॥१४॥

भावार्थः - हे मनुष्यो ! जो सम्पूर्ण सृष्टि को एकत्रित करता है और जो व्यापक अहिंसा आदि धर्म्म के अनुष्ठान के लिये आज्ञा देता है वह ही सबसे उपासना करने योग्य है ॥१४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अ॒भि प्रयां॑सि॒ सुधि॑तानि॒ हि ख्यो नि त्वा॑ दधीत॒ रोद॑सी॒ यज॑ध्यै ।
अवा॑ नो मघवन्वाज॑साताव॒ग्ने विश्वा॑नि दुरि॒ता त॑रेम॒ ता त॑रेम॒ तवा-
व॑सा तरेम ॥१५॥

पदार्थः—हे (मघवन्) अत्यन्त श्रेष्ठ धन से युक्त (अग्ने) अतितेजस्वी जो आप (सुधितानि) उत्तम प्रकार तृप्ति करानेवाले (प्रयांसि) कामना कराने योग्य अन्न आदि वस्तुओं को (हि) निश्चित (नि, दधीत) अच्छे प्रकार धारण करें और आप विज्ञानों को (अभि, ख्यः) सम्मुख कहते हो और आप (यजध्यै) मेल करने को (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को धारण करिये तथा (वाजसातौ) संग्राम में (नः) हम लोगों की (अवा) रक्षा करिये जिन (त्वा) आप का आश्रय करके हम लोग (ता) उन (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरिता) दुःख के प्राप्त कराने वाले पापों का (तरेम) उल्लंघन करें (तव) आप के (अवसा) रक्षण आदि से (तरेम) दुःखसागर के पार जावें और निरन्तर (तरेम) सम्पूर्ण दोषों का त्याग करें ॥१५॥

भावार्थः - हे मनुष्यो ! जो अन्न और पानादिक जीवन के हितकारक पदार्थों को धारण करता, अन्तर्यामी होने से सत्य का उपदेश करता उस के आश्रय से ही सम्पूर्ण दुःखों के पार प्राप्त होओ ॥१५॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥१६॥

पदार्थः—हे (स्वनीक) सुन्दर सेना वाले (अग्ने) विद्वन् राजन् (प्रथमः) प्रसिद्ध आप (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (देवैः) विद्वानों वा वीर पुरुषों के साथ (ऊर्णावन्तम्) बहुत ऊर्ण के वस्त्रों से युक्त (योनिम्) गृह में (सीद) वर्त्तमान हो (सवित्रे) संसार को उत्पन्न करने और (यजमानाय) पदार्थों के मिलानेरूप विद्या को जानने वाले के लिये (कुलायिनम्) गृह आदि सामग्री से और (घृतवन्तम्) बहुत घृत आदि पदार्थों से युक्त (यज्ञम्) संगतिस्वरूप व्यवहार को (साधु) उत्तम प्रकार (नय) प्राप्त कराइये ॥१६॥

भावार्थः—हे विद्यायुक्त राजजनो ! आप लोग विद्वानों के सहाय से न्याय के गृहों में ठहर के न्याय करिये और सब मनुष्यों को न्यायमार्ग पर चलाइये जिससे सब श्रेष्ठ मार्ग में स्थित होकर परोपकारी होवें ॥१६॥

फिर बिजुली को किससे निकालें इस विषय को कहते हैं ॥

इममु त्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः ।
यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्यः ॥१७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (वेधसः) बुद्धिमान् विद्वान् जन (श्याव्याभ्यः) रात्रियों में हुई क्रियाओं से (यम्) जिस (अङ्कूयन्तम्) प्रसिद्ध चिह्न प्राप्त होते जिस में (इमम्) इस (उ) और (त्यम्) जो नहीं प्रत्यक्ष हुआ उस (अग्निम्) बिजुलीरूप अग्नि को। (अथर्ववत्) जैसा अथर्ववेद में मन्थन कहा है वैसे (अमूरम्) मूढ़ से भिन्न का (मन्थन्ति) मन्थन करते और कार्य्य की सिद्धि को (आ, अनयन्) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं उसका आप लोग भी मन्थन करके कार्य्यों को सिद्ध करिये ॥१७॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन भूमि, अन्तरिक्ष, वायु, आकाश और सूर्य्य आदि से मन्थन करके बिजुली को निकालते हैं वे अनेक कार्य्यों के सिद्ध करने को समर्थ होते हैं ॥१७॥

मनुष्यों को सृष्टि से कौन कौन उपकार ग्रहण करना चाहिये इस विषय को कहते हैं

जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये ।
आ देवान् वक्ष्यमृताँ ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः ॥१८॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप (देववीतये) श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति के लिये और (स्वस्तये) सुख की प्राप्ति के लिये (सर्वताता) सम्पूर्ण सुख के करने वाले शिल्पकारीगरीरूप यज्ञ में (अमृतान्) नाशरहित (ऋतावृधः) सत्यव्यवहार के बढ़ाने वाले (देवान्) श्रेष्ठ गुणों वा भोगों को (आ, वक्षि) प्राप्त कराइये और (देवेषु) विद्वानों में (यज्ञम्) सुख के देनेवाले यज्ञ का (पिस्पृशः) स्पर्श कराइये इससे सुखों को (जनिष्वा) प्रकट कीजिये ॥१८॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि सृष्टि में वर्त्तमान पदार्थों से विद्या के द्वारा श्रेष्ठ भोगों को प्राप्त होकर अपने लिये अनेक प्रकार के सुख को उत्पन्न करें ॥१८॥

फिर गृहस्थों को कैसा प्रयत्न करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म्म समिधा बृहन्तम् ।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा सं शिशाधि ॥१९॥

पदार्थः—हे (गृहपते) गृहस्थों के पालन करने वाले (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान (वयम्) हम लोग (जनानाम्) मनुष्यों के मध्य में (त्वा) आपका आश्रय करके (समिधा) प्रदीपक साधन से अग्नि को (बृहन्तम्) बड़ा (अकर्म्म) करें (उ) और (नः) हम लोगों का (अस्थूरि) चलनेवाला वाहन और (गार्हपत्यानि) गृहपति से संयुक्त कर्म्म जिस प्रकार से सिद्ध (सन्तु) हों उस प्रकार से (तिग्मेन) तीव्र (तेजसा) तेज से आप (नः) हम लोगों को (सम्, शिशाधि) उत्तम प्रकार शिक्षा दीजिये ॥१९॥

भावार्थः—हे गृहस्थजनो ! आप लोग आलस्य का त्याग करके सृष्टिक्रम से विद्या की उन्नति करके अन्य विद्यार्थियों को विद्या ग्रहण कराइये जिससे सब सुख बढ़े ॥१९॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान्, ईश्वर और गृहस्थ के कार्य्यों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में पन्द्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाऽष्टचत्वारिंशदृचः षोडशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ६ । ७ आर्ची उष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । २ । ३ । ४ । ५ । ८ । ९ । ११ । १३ । १४ । १५ । १७ । १८ । २१ । २४ । २५ । २८ । ३२ । ४० निचृद्गायत्री । १० । १९ । २० । २२ । २३ । २९ । ३१ । ३४ । ३५ । ३६ ।

३७ । ३८ । ३९ । ४१ गायत्री । २६ । ३० विराड्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः । १२ । १६ । ३३ । ४२ । ४४ साम्नीत्रिष्टुप् । ४३ । ४५ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । पञ्चमः स्वरः २७ आर्चीपङ्क्तिः । ४६ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४७ । ४८ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब अड़तालीस ऋचावाले सोलहवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अब विद्वान् क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

त्वम॑ग्ने य॒ज्ञानां॒ होता॒ विश्वे॑षां हि॒तः । दे॒वेभि॒र्मानु॑षे॒ जने॑ ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! जिस कारण से (त्वम्) आप (यज्ञानाम्) प्राप्त होने योग्य व्यवहारों के (होता) देने वाले और (विश्वेषाम्) सब के (हितः) हितकारी हो इस से (देवेभिः) विद्वानों के साथ (मानुषे) मनुष्यसम्बन्धी (जने) मनुष्य में प्रेरणा करने वाले होओ ॥१॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जैसे ईश्वर सबका हितकारी और सम्पूर्ण सुखों का देनेवाला तथा विद्वानों के संग से जानने योग्य है वैसे आप लोग भी अनुष्ठान करो ॥१॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

स नो॑ म॒न्द्राभि॑रध्व॒रे जि॒ह्वाभि॑र्यजा म॒हः ।
आ दे॒वान् व॑क्षि॒ यक्षि॑ च ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वन् अग्नि के सदृश तेजस्वी (सः) वह आप (अध्वरे) सब प्रकार अनुष्ठान करने योग्य धर्म्मयुक्त व्यवहार में (मन्द्राभिः) आनन्द करने वाली (जिह्वाभिः) विद्या और विनय से युक्त वाणियों से (नः) हम लोगों को (यजा) प्राप्त कराइये और (महः) बड़े अथवा सत्कार करने योग्यों को और (देवान्) श्रेष्ठ गुणों वा विद्वानों को (आ, वक्षि) प्राप्त कराइये और सब को (यक्षि, च) भी प्राप्त कराइये ॥२॥

भावार्थः— विद्वान् जन विद्या की प्राप्ति के लिए सबको सदा उपदेश देवें जिससे श्रेष्ठ गुणों वाले मनुष्य होवें ॥२॥

कौन उपदेश करने योग्य होवें इस विषय को कहते हैं ॥

वेत्था॒ हि वे॑धो॒ अध्व॑नः प॒थश्च॑ दे॒वाञ्ज॑सा ।
अग्ने॑ य॒ज्ञेषु॑ सुक्रतो ॥३॥

पदार्थः—हे (सुक्रतो) उत्तम ज्ञान वा उत्तम कर्म्मयुक्त (देव) विज्ञान के

वाले (वेधः) मेधावी (अग्ने) प्रकाशात्मा (हि) जिससे आप (यज्ञेषु) विद्या और धर्म के प्रचारनामक व्यवहारों में (अञ्जसा) स्वतन्त्रतायुक्त वेगवालेपन से (अध्वनः) मार्गों को और (पथः) मार्गों को (च) भी (वेत्था) जानते हो इससे हम लोगों को जनाइये ॥३॥

भावार्थः— इस संसार में जो मनुष्य धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष के मार्गों को जानें वे ही अन्यों को भी उपदेश देवें न कि इतर अज्ञ जन ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

त्वामी॑ळे॒ अध॑ द्वि॒ता भ॑र॒तो वा॒जिभि॑: शु॒नम् ।
ई॒जे य॒ज्ञेषु॑ य॒ज्ञिय॑म् ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे मैं (यज्ञेषु) समागमरूप यज्ञों में (यज्ञियम्) यज्ञ करने योग्य (त्वाम्) आप विद्वान् की (ईळे) प्रशंसा करता हूं (अध) इस के अनन्तर (द्विता) दो पढ़ाने और पढ़ने वाले वा उपदेश करने वा उपदेश पाने योग्यों का (भरतः) धारण और पोषण करने वाला मैं (वाजिभिः) विज्ञानादिकों से (शुनम्) सुख की (ईजे) संगति करता हूं वैसे आप संगति कीजिये ॥४॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि परस्पर विद्या की उन्नति करके अन्यों को ग्रहण करावें ॥४॥

मनुष्य किस का सत्कार करें इस विषय को कहते हैं ॥

त्वमि॒मा वार्या॑ पु॒रु दिवो॑दासाय सुन्व॒ते । भ॒रद्वा॑जाय दा॒शुषे॑ ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वन् जिस कारण से (त्वम्) आप (दिवोदासाय) कामना करने योग्य पदार्थ के देने और (सुन्वते) सोमलतारूप ओषधि आदि की सिद्धि करने वाले और (भरद्वाजाय) धारण किया विज्ञान जिसने उसके और (दाशुषे) विज्ञान के देने वाले के लिए (इमा) इन (पुरु) बहुत (वार्य्या) स्वीकार करने योग्यों को देते हो इससे प्रशंसा करने योग्य हो ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सत्य के उपदेशकों और विद्या के प्रचारकों का सदा ही सत्कार करें अन्य जनों का नहीं ॥५॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

त्वं दू॒तो अम॑र्त्य॒ आ व॑हा॒ दैव्यं॒ जन॑म् ।
शृ॒ण्वन् विप्र॑स्य सुष्टु॒तिम् ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वन् (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यों के स्वभाव से विरुद्ध (दूतः) सम्पूर्ण पदार्थविद्याओं के समाचार के जनाने वाले (त्वम्) आप (विप्रस्य) बुद्धिमान् की (सुष्टुतिम्) सुन्दर प्रशंसा को (शृण्वन्) सुनते हुए (दैव्यम्) विद्वानों से सिद्ध किये गये विद्वान् (जनम्) जन को (आ, वहा) सब प्रकार से प्राप्त कराइये ॥६॥

भावार्थः—हे परीक्षा करने वालो ! आप लोग पक्षपात का त्याग करके विद्यार्थियों की यथावत् परीक्षा करके विद्यायुक्त कीजिये ॥६॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

त्वामग्ने स्वाध्यो३' मर्त्तासो देववीतये । यज्ञेषु देवमीळते ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्या और विनय से प्रकाशात्मा विद्वन् जैसे (स्वाध्यः) उत्तम प्रकार चारों ओर से ध्यान करने वाले (मर्त्तासः) मनुष्य (देववीतये) विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति के लिये (यज्ञेषु) पढ़ाने, पढ़ने और उपदेश नामक व्यवहारों में (त्वाम्) पूर्ण विद्यायुक्त यथार्थवक्ता आप (देवम्) विज्ञान के देने वाले की (ईळते) स्तुति करते हैं उस प्रकार से हम लोग प्रशंसा करें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्यार्थियों को चाहिये कि विद्या की प्राप्ति के लिय विद्वानों का सेवन करें और जैसे सृष्टि के पदार्थों में अग्नि प्रशंसित है वैसे ही मनुष्यों में धार्मिक विद्वान् हैं यह जानना चाहिये ॥७॥

फिर अध्यापक और पढ़नेवाले परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

तव प्र यंक्षि सन्दृशमुत क्रतुं सुदानवः । विश्वे जुषन्त कामिनः ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो (सुदानवः) श्रेष्ठ दान के दाता (विश्वे) सब (कामिनः) कामना करनेवाले जन (तव) विद्वान् आपके (सन्दृशम्) अच्छे दर्शन (उत) और (क्रतुम्) बुद्धि वा कर्म्म का (जुषन्त) सेवन करते हैं उन का आप उसके दान से (प्र, यक्षि) मेल कराइये ॥८॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जैसे विद्या की कामना करने वाले आप लोगों की कामना करते हैं वैसे ही आप लोग विद्यार्थियों की कामना करो ॥८॥

फिर राजा प्रजाओं में कैसे वर्त्ताव करे इस विषय को कहते हैं ॥

त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने यक्षि दिवो विशः ॥९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् राजन् (वह्निः) प्राप्त करने वाले अग्नि जैसे वैसे (होता) दाता (मनुर्हितः) मनुष्यों के हितकारी (विदुष्टरः) अत्यन्त विज्ञानवाले (त्वम्) आप (आसा) मुख से (विवः) कामना करती हुई (विशः) प्रजाओं को (यक्षि) सुखयुक्त करिये ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे प्रजाजनो! जैसे राजा आप लोगों की कामना करता और सुख देने की इच्छा करता है वैसे आप लोग भी उस राजा की कामना करके उसके लिये निरन्तर सुख दीजिये ॥९॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।

नि होता सत्सि बर्हिषि ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जिस कारण से आप (गृणानः) स्तुति करते हुए (होता) दाता (बर्हिषि) उत्तम सभा में (वीतये) विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों की व्याप्ति के लिए और (हव्यदातये) देने योग्य के दान के लिए (नि, सत्सि) उत्तम प्रकार जानते हो इस से हम लोगों की उत्तम दीप्ति को (आ, याहि) सब प्रकार प्राप्त होओ ॥१०॥

भावार्थः—जहां विद्वान् जन विद्या की वृद्धि करने की इच्छा करते हैं वहां सब सुखी होते हैं ॥१०॥

फिर मनुष्य परस्पर क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥११॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ्य) अत्यन्त युवा जनों में साधु (अङ्गिरः) बिजुली के समान वर्त्तमान जैसे यज्ञ करने वाले जन (समिद्भिः) उत्तम प्रकार प्रकाशक समिध्-रूप काष्ठों और (घृतेन) घृत से अग्नि की वृद्धि करते हैं वैसे ज्ञान के कारण उपदेश से (तम्) उन (त्वा) आपकी हम लोग (वर्धयामसि) वृद्धि करते हैं और आप (बृहत्) बहुत (शोचा) विचारिये ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा आदि जन जैसे घृत से अग्नि की वैसे शिक्षा और सत्कार से शूर जनों की वृद्धि करते हैं वे सदा विजय को प्राप्त होते हैं ॥११॥

फिर मनुष्यों को परस्पर कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवासिस। बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥१२॥

पदार्थः—हे (देव) विद्या के देने वाले (अग्ने) अग्नि के समान कार्य्य के साधक जैसे अग्नि वैसे जिस कारण से आप (नः) हम लोगों के लिए (पृथु) विस्तारयुक्त (श्रवाय्यम्) सुनने योग्य (बृहत्) बड़े (सुवीर्य्यम्) श्रेष्ठ बलयुक्त (अच्छा) अच्छे प्रकार (विवाससि) सेवा करते हो इससे (सः) वह आप सत्कार करने योग्य हो ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो जिसका उपकार करते हैं वे उसके सत्कार करने योग्य होते हैं ॥१२॥

मनुष्य किस किससे विजुली का ग्रहण करें इस विषय को कहते हैं ॥

त्वाम॑ग्ने॒ पुष्क॑रा॒दध्यथ॑र्वा॒ निर॑मन्थत। मू॒र्ध्नो विश्व॑स्य वा॒घतः॑ ॥१३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् जैसे (वाघतः) बुद्धिमान् जन (विश्वस्य) सम्पूर्ण जगत् के (मूर्ध्नः) ऊपर वर्त्तमान के (पुष्करात्) अन्तरिक्ष से (अधि) ऊपर अग्नि को (निः, अमन्थत) मथते हैं वैसे (अथर्वा) अहिंसक मैं (त्वाम्) आप को प्रकाशित करता हूं ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वान् जनो! जैसे पदार्थविद्या के जाननेवाले जन सूर्य्य आदि के समीप से विजुली को ग्रहण करके कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे ही आप लोग भी सिद्ध करो ॥१३॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

तमु॑ त्वा द॒ध्यङ्ङृषिः॑ पु॒त्र ई॑धे॒ अथ॑र्वणः। वृ॒त्र॒हणं॑ पुरन्द॒रम् ॥१४॥

पदार्थः—हे विद्वन् राजन् (तम्, उ) उन्हीं (वृत्रहणम्) मेघों के नाश करने वाले (पुरन्दरम्) मेघों के पुरों को नाश करनेवाले सूर्य्य को जैसे वैसे (त्वा) आप को (अथर्वणः) नहीं हिंसा करनेवाले का (पुत्रः) पुत्र (दध्यङ्) धारण करनेवाले विद्वानों को प्राप्त होने और (ऋषिः) मंत्र और अर्थ का जाननेवाला (ईधे) प्रदीप्त करता है वैसे आप मुझको करिये ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वान् जनो! जैसे ईश्वर ने प्रकाशस्वरूप और सम्पूर्ण जगत् का उपकारक सूर्य्य रचा है वैसे विद्या से प्रकाशित जनों को विद्वान् करो ॥१४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

तमु॑ त्वा पा॒थ्यो वृषा॒ समी॑धे दस्यु॒हन्त॑मम्। ध॒न॒ञ्ज॒यं रणे॑रणे ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (पाथ्यः) मार्गों में हुए (वृषा) वर्षाने वाले सूर्य्य के समान वीर्य्य का सींचने वाला (दस्युहन्तमम्) डाकुओं को अतिशय मारने वाले

(रणेरणे) प्रत्येक संग्राम में (धनञ्जयम्) धन को जीते (तम्) उन (त्वा) आप को (सम्, ईषे) प्राप्त कराता है वैसे आप मुझ को (उ) भी प्राप्त कराइये ॥१५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! यदि आप लोग विजुली की विद्या को प्राप्त होकर युद्ध करो तो आप लोगों का बहुत धन और ऐश्वर्य्यों का देने वाला मैं बिजुली आदि से विजय कराऊं ॥१५॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

एह्यू षु ब्रवा॑णि॒ तेऽग्न॑ इ॒त्थेत॑रा॒ गिरः॑ । ए॒भिर्व॑र्धास॒ इन्दु॑भिः ॥१६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् जन (एभिः) इन (इन्दुभिः) सोमलताओं व चन्द्रकिरणों से आप (वर्धासे) वृद्धि को प्राप्त होते हो उन से (आ, इहि) प्राप्त हूजिये (इत्था) इस प्रकार से (इतराः) पीछे का (ते) आप की (गिरः) वाणियों को (सु, ब्रवाणि) उत्तम प्रकार उपदेश करूं और आप (उ) तर्क वितर्क से सुनें ॥१६॥

भावार्थः—जो मनुष्य—हम लोग विद्याओं को पढ़कर सब को उपदेश देवें—इस प्रकार इच्छा करते हैं वे हम लोगों को प्राप्त होवें ॥१६॥

मनुष्यों को कहां मन स्थित करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

यत्र॒ क्व॑ च ते॒ मनो॒ दक्षं॑ दधस॒ उत्त॑रम् । तत्रा॒ सदः॑ कृणवसे ॥१७॥

पदार्थः—हे विद्वन् (यत्र) जहां (ते) आप का (मनः) विचारात्मक चित्त है और (उत्तरम्) पार होते हैं जिस से उस (दक्षम्) बल को (च) भी आप (दधसे) धारण करते हो (तत्र) वहां (सदः) स्थित होते हैं जिस में उस को (कृणवसे) करते हो तथा (क्व) कहां निवास करते हो इन का उत्तर कहिये ॥१७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जहां जगदीश्वर वा योगाभ्यास में आप लोगों का अन्तःकरण पवित्र होकर कार्य्य की सिद्धि को करता है वहां ही आप लोग भ प्रवृत्ति करिये ॥१७॥

मनुष्यों की किस प्रकार से इच्छा सिद्ध होती है इस विषय को कहते हैं ॥

न॒हि ते॑ पू॒र्तम॑क्षि॒पद्भुव॒न्नेमा॑नां वसो । अथा॒ दुवो॑ वनवसे ॥१८॥

पदार्थः—हे (वसो) धनाने वाले (ते) आप के (नेमानाम्) अन्नों के (पूर्तम्) पूर्ण करने वाले को कोई भी (नहि) नहीं (अक्षिपत्) फेंकता है और नहीं (भुवत्) होवे इस से (अथा) इसके अनन्तर (दुवः) सेवा का (वनवसे) स्वीकार करिये । १८॥

भावार्थः—जो मनुष्य सत्य आचरण को करते हैं उनकी कामना
पूर्त्ति कभी भी नहीं नष्ट की जाती है ॥१८॥

अब अग्नि कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

आग्निरंगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः ।
दिवोदासस्य सत्पतिः ॥१९॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो जो (दिवोदासस्य) प्रकाश के देने वाले
(भारतः) धारण करने वा पोषण करने और (वृत्रहा) मेघ को नाश क
वाला (पुरुचेतनः) बहुत चेतन जिस में वह (सत्पतिः) श्रेष्ठ स्वामी (अग्नि
अग्नि के सदृश तेजस्वी सूर्य्य (आ, अगामि) प्राप्त किया जाता है उसका हम
सेवन करें ॥१९॥

भावार्थः—जैसे इस देह में साधन और उपसाधनों के सहित
बहुत कर्म्मों को करता है वैसे ही विद्वान् सम्पूर्ण कर्म्मों को सिद्ध क
है ॥१९॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना ।
वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥२०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अस्तृतः) नहीं हिंसित (अवातः) पवन से
(महित्वना) महत्त्व से (वन्वन्) सेवन करता हुआ अग्नि (विश्वा) सम्पूर्ण (पार्थि
पृथिवी में विदित वस्तुओं और (रयिम्) धन को (अति, दाशत्) अत्यन्त दे
(सः, हि) वही सब लोगों से जानने योग्य है ॥२०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अग्नि बहुत सुख को देता है उसका
नहीं सेवन किया जावे ॥२०॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता । बृहत्ततन्थ भानुना ॥२१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी विद्वन् जैसे सूर्य्य (भा
किरण से (प्रत्नवत्) प्राचीन के सदृश (बृहत्) बड़े को (ततन्थ) विस्तृत
है वैसे (सः) वह आप (नवीयसा) अत्यन्त नवीन (संयता) उत्तम प्रकार
जिससे उस (द्युम्नेन) धन वा यश से हम लोगों को विस्तृत करो ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सूर्य्य के सदृश यशस्वी होते हैं वे नवीन नवीन प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं ॥२१॥

मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।

अर्च गाय च वेधसे ॥२२॥

पदार्थः—हे (सखायः) मित्रो जो (वः) आप लोगों की (स्तोमम्) स्तुति और (यज्ञम्) सत्य व्यवहार को (च) भी उत्पन्न करता है उस का आप लोग सत्कार करो और हे विद्वन् जो आप में जैसे मित्र वैसे वर्त्तता है उस (वेधसे) बुद्धिमान् (अग्नये) अग्नि के समान वर्त्तमान के लिये आप (धृष्णुया) दृढ़ता के साथ (प्र, अर्च) अच्छे प्रकार सत्कार करिये (गाय, च) और प्रशंसा करिये ॥२२॥

भावार्थः—सूर्य्य ही यज्ञफलों की प्राप्ति का साधक है वैसे यथार्थ कहने और करने वाले, धर्म्मात्मा जन परोपकार में कुशल होते हैं ऐसा जानकर संसार में वर्त्ताव करे ॥२२॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः ।

दूतश्च हव्यवाहनः ॥२३॥

पदार्थः—(यः) जो (हव्यवाहनः) हवन किये गए द्रव्यों को प्राप्त कराने पहुंचाने वाला और (दूतः) दूतवत् वर्त्तमान (च) भी अग्नि (मानुषा) मनुष्यसम्बन्धी (युगा) वर्ष वा वर्षसमुदायों को (सीदत्) प्राप्त होता है (सः) (हि) वही (होता) दाता (कविक्रतुः) बड़ा विद्वान् जैसे वैसे कार्य का साधक होता है ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो अग्नि धार्मिक और विद्वानों के कार्य्यों का करने वाला होता है उस को विद्वान् जन कार्य्यों की सिद्धि के लिये सम्प्रयुक्त करें ॥२३॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

ता राजाना शुचिव्रतादित्यान् मारुतं गणम् ।

वसो यक्षीह रोदसी ॥२४॥

पदार्थः—हे (वसो) श्रेष्ठ गुणों के वसाने वाले आप (इह) इस संसार में

(ता) उन दोनों मित्र के सदृश वर्त्तमान (शुचिव्रता) पवित्र कर्म्म वाले (राजाना) प्रकाशमान हुए तथा (आदित्यान्) बारह महीनों और (मारुतम्) मनुष्य सम्बन्धी इस (गणम्) समूह को (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (यक्षि) उत्तम प्रकार प्राप्त कराइये ॥२४॥

भावार्थः—जो मनुष्य पढ़ाने और पढ़ने वाले आदिकों की सेवा करके पदार्थ विद्या का ग्रहण करते हैं वे सुखी होते हैं ॥२४॥

उत्तम जन का व्यवहार वा संग निष्फल नहीं होता इस विषय को कहते हैं ॥

वस्वीं ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय । ऊर्जो नपादमृतस्य ॥२५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान (ते) आप की (वस्वी) पृथिवी आदि वसु सम्बन्धिनी (सन्दृष्टिः) उत्तम प्रकार देखते जिससे वह दृष्टि (इषयते) अन्न वा विज्ञान की कामना करते हुए (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (अमृतस्य) नाशरहित और (ऊर्जः) बल आदि से युक्त की (नपात्) नहीं गिरने वाली होती है ॥२५॥

भावार्थः—जिस विद्वान् का विद्यादर्शन—विद्या पढ़ना निष्फल नहीं होता और जिससे पढ़कर विद्यार्थी जन विद्वान् होते हैं उसका सदा सत्कार करो ॥२५॥

फिर विद्वान् को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

क्रत्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः ।
मर्त्त आनाश सुवृक्तिम् ॥२६॥

पदार्थः—(श्रेष्ठः) धर्मयुक्त गुण कर्म्म और स्वभाव से अतिशय युक्त (सुरेक्णाः) सुन्दर धन वाला (मर्त्तः) मनुष्य (अद्य) आज (क्रत्वा) बुद्धि वा कर्म्म से (सुवृक्तिम्) उत्तम प्रकार जाते हैं दुःख जिस के द्वारा उसको (आनाश) व्याप्त हो और (त्वा) आप का (वन्वन्) सेवन करता हुआ सुखी (अस्तु) हो और आप विद्या के (दाः) देने वाले हाओ ॥२६॥

भावार्थः—वे ही उत्तम जन गणनीय हैं जो विज्ञान को देते हैं ॥२६॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः ।
तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः ॥२७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशमान जो (ते) आपका

(अर्य्यः) स्वामी आज्ञा देवे उसको आप करिये और जो (स्वोताः) आप से रक्षित (इषयन्तः) अन्न की कामना करते और (विश्वम्) सम्पूर्ण (आयुः) जीवन के (तरन्तः) पार होते हुए (अरातीः) नहीं विद्यमान दान जिन में उन कृपण विरोधियों का (वन्वन्तः) विभाग करते हुए तथा (अरातीः) जिन में दान नहीं उन शत्रुओं को विशेष करके जीतते हैं वे (ते) आप के सम्बन्धी होवें आप इन के (अर्य्यः) स्वामी होओ ।।२७।।

भावार्थः—जो ब्रह्मचर्य आदि से रोगों को दूर करके चिरंजीवी होवें वे धार्मिक सम्पूर्ण कार्य्यों में अध्यक्ष हों ।।२७।।

फिर राजा को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ।।

अ॒ग्निस्ति॒ग्मेन॑ शो॒चिषा॒ यास॒द्विश्वं॒ न्य१॒॑त्रिण॑म् ।

अ॒ग्निर्नो॑ वनते र॒यिम् ।।२८।।

पदार्थः—हे राजन् जैसे (अग्निः) अग्नि (तिग्मेन) तीव्र (शोचिषा) प्रकाश से प्राप्त हुए वस्तु को जलाता है वैसे जो (विश्वम्) सम्पूर्ण (अत्रिणम्) शत्रु के प्रति (नि, यासत्) प्रयत्न करे और वैसे जो (अग्निः) अग्नि के सदृश (नः) हम लोगों के लिये (रयिम्) द्रव्य का (वनते) सेवन करता है उस को अध्यक्ष करिये ।।२८।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—राजा को चाहिये कि अधिकारियों के नियत करने में प्रजा की सम्मति भी ग्रहण करे ऐसा होने पर कभी भी उपद्रव नहीं होता है ।।२८।।

फिर राजा को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ।।

सु॒वीरं॑ र॒यिमा भ॑र॒ जात॑वेदो॒ विच॑र्षणे । ज॒हि रक्षां॑सि सुक्रतो ।।२९।।

पदार्थः—हे (जातवेदः) उत्पन्न हुआ प्रज्ञानबल जिनके उन (विचर्षणे) तेजस्वी तथा (सुक्रतो) उत्तम बुद्धि और कर्म्म से युक्त राजन् आप (सुवीरम्) सुन्दर वीर जिससे होते हैं उस (रयिम्) धन को (आ, भर) सब ओर से धारण करिये और (रक्षांसि) दुष्टाचारियों को (जहि) नष्ट करिये ।।२९।।

भावार्थः—राजा को चाहिये कि सदा ही धन आदि से धार्मिक विद्वान् और क्षत्रिय कुल में हुए वीरों की उत्तम प्रकार रक्षा करे और दुष्टों का सदा तिरस्कार करे ।।२९।।

फिर राजा और विद्वान् क्या करें इस विषय को कहते हैं ।।

त्वं नः॑ पा॒ह्यंह॑सो॒ जात॑वेदो अघाय॒तः । रक्षा॑ णो ब्रह्मणस्कवे ।।३०।।

पदार्थः— हे (जातवेदः) विद्या से युक्त (ब्रह्मणः) वेद के (कवे) कहने वाले (त्वम्) आप (नः) हम लोगों की (अंहसः) अधर्माचरण से (पाहि) रक्षा कीजिये और (नः) हम लोगों की (अघायतः) अपने पाप करते हुए से (रक्षा) रक्षा कीजिये ॥३०॥

भावार्थः— हे राजन् वा विद्वन् ! आप दोनों हम लोगों को अधर्म्मा-चरण और अधर्म्म का आचरण करते हुए से अलग करके सुख को बढ़ाइये ॥३०॥

फिर न्यायाधीश क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

यो नो अग्ने दुरेव आ मर्त्तो वधाय दाशति ।

तस्मान्नः पाह्यंहसः ॥३१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) न्यायाधीश (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (नः) हम लोगों को (वधाय) मारने के लिये (दुरेवः) दुष्ट आचरण को (दाशति) देता है (तस्मात्) उस (अंहसः) अधर्म्माचरण से (नः) हम लोगों की (पाहि) रक्षा कीजिये ॥३१॥

भावार्थः—हे न्यायाधीश ! जो करने के विना अपराध को स्थापित करते हैं उनके लिये आप तीव्र दण्ड को दीजिये ॥३१॥

फिर राजा को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

त्वं तं देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम् ।

मर्त्तो यो नो जिघांसति ॥३२॥

पदार्थः—हे (देव) विद्यायुक्त न्यायाधीश (त्वम्) आप (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (नः) हम लोगों की (जिघांसति) मारने की इच्छा करता है (तम्) उस (दुष्कृतम्) दुष्ट कर्म्म करने वाले को (जिह्वया) वाणी से (परि) सब ओर से (बाधस्व) पीड़ित करिये ॥३२॥

भावार्थः—हे राजन् वा विद्वन् ! जो न्यायधर्म का त्याग करके पक्षपात से अधर्म्म करता है उसको शीघ्र निरन्तर दण्ड दीजिये ॥३२॥

फिर राजा को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

भरद्वाजाय सप्रथः शर्म यच्छ सहन्त्य । अग्ने वरेण्यं वसु ॥३३॥

पदार्थः—हे (सहन्त्य) शान्त जनों में हुए (अग्ने) दाता जन आप (भरद्वाजाय) विज्ञान और अन्न को धारण किये हुए जन के लिये (सप्रथः) प्रसिद्धि

के सहित वर्त्तमान (शर्म) गृह को और (वरेण्यम्) स्वीकार करने योग्य (वसु) द्रव्य को (यच्छ) दीजिये ॥३३॥

भावार्थः - हे श्रेष्ठ गृहस्थ! आप सदा ही सुपात्र धार्मिकजन के लिये दान दीजिये ॥३३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद् द्रविणस्युर्विपन्यया ।

समिद्धः शुक्र आहुतः । ३४॥

पदार्थः—हे विद्वन् उद्योग वाले जैसे (शुक्रः) शीघ्रकारिणी (समिद्धः) प्रदीप्त (अग्निः) बिजुली (वृत्राणि) घनों को (जङ्घनत्) अत्यन्त प्राप्त होती है वैसे (द्रविणस्युः) अपने धन की इच्छा करने वाले (आहुतः) सब प्रकार सत्कार को प्राप्त आप (विपन्यया) विशिष्ट उद्यम से धनों को प्राप्त होओ ॥३४॥

भावार्थः—जो निरन्तर उद्यम करते वे दारिद्र्य का नाश करते हैं ॥३४॥

फिर ईश्वर कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

गर्भे मातुः पितुष्पिता विदिद्युतानो अक्षरे ।

सीदन्नृतस्य योनिमा ॥३५॥

पदार्थः – हे विद्वान् जनो जो (अक्षरे) नहीं नाश होने वाले अपने रूप, कारण वा जीव में (ऋतस्य) सत्य के (योनिम्) गृह को (आ) सब ओर से (सीदन्) प्राप्त होता हुआ (मातुः) माता का जैसे वैसे भूमि का और (पितुः) पिता का जैसे वैसे सूर्य्य का (पिता) पालक और (गर्भे) गर्भ में (विदिद्युतानः) विशेष करके प्रकाशमान है उसको सम्पूर्ण संसार का जनक जानो ॥३५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो उत्पन्न करने वालों का उत्पादक, प्रकाशकों का प्रकाशक है उस की सब लोग उपासना कर ॥३७॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

ब्रह्म प्रजावदा भर जातवेदो विचर्षणे । अग्ने यद्दीदयद्दिवि । ३६॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) धन से युक्त (विचर्षणे) बुद्धिमान् (अग्ने) अग्नि के समान गृहस्थ (यत्) जो ज्योति (दिवि) प्रकाश में (दीदयत्) प्रकाशित करती है उससे (प्रजावत्) प्रजा में विद्यमान जिस में उस (ब्रह्म) धन वा अन्न को (आ, भर) सब प्रकार से धारण वा पोषण करिये ॥३६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अग्नि में, जो सूर्य्य में और जो बिजुली में तेज है उस के विज्ञान से धन और धान्य की उन्नति करिये ॥३६॥

मनुष्य कैसी वाणी का प्रयुक्त करें इस विषय को कहते हैं ॥

उप त्वा रण्वसंन्दृशं प्रयंस्वन्तः सहस्कृत । अग्ने ससृज्महे गिरः ॥३७॥

पदार्थः—हे (सहस्कृत) सहसा कार्य्यकर्त्ता (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी विद्वन् (प्रयस्वन्तः) प्रयत्न करते हुए हम लोग जिन (गिरः) वाणियों को (ससृज्महे) अत्यन्त प्रकट करें उन से (रण्वसन्दृशम्) रमणीय के तुल्य (त्वा) आप को (उप) समीप में अत्यन्त प्रकट करें ॥३७॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जैसे अपने प्रयोजन की प्रिय वाणी हृदय को प्रिय होती है वैसे अन्य जनों के प्रयोजन को भी समझें ॥३७॥

फिर मनुष्यों को क्या प्राप्त करने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

उप च्छायामिव घृणेरगंन्म शर्म्म ते वयम् ।
अग्ने हिरंण्यऽसन्दृशः ॥३८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! (ते) आपके (घृणेः) प्रदीप्त सूर्य्य से (छायामिव) छाया को जैसे वैसे (शर्म) गृह को (हिरण्यसन्दृशः) तेज के सदृश समानदर्शन जिनका ऐसे (वयम्) हम लोग (उप) समीप (अगन्म) प्राप्त होवें ॥३८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे विद्वन् ! हम लोग सब ऋतुओं में हुए सूर्य्य को जैसे वैसे प्रकाशमान आप के गृह को प्राप्त होकर छाया के सदृश सेवन करें ॥३८॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

य उग्र इव शर्य्यहा तिग्मशृंङ्गो न वंसंगः । अग्ने पुरों रुरोजिथ ॥३९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के सदृश तेजस्वी (यः) जो आप (वंसगः) सेवन करने योग्य व्यवहार को प्राप्त होने और (शर्य्यहा) मारने योग्य को मारने वाले (तिग्मशृङ्गः) तीव्र शृंगों के सदृश किरणों वाले सूर्य्य के (न) समान शत्रुओं के (पुरः) आगे (उग्र इव) तेजस्वी जन जैसे वैसे (रुरोजिथ) भग्न करते हो उन आप का हम लोग सत्कार करें ॥३९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो राजा आदि अधिकारी जन सूर्य्य के सदृश वैसे तेजस्वी होवें वे शत्रुओं के जीतने को समर्थ होवें ॥३९॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ यं हस्ते न खादिनं शिशुं जातं न बिभ्रति ।

विशामग्निं स्वध्वरम् ॥४०॥

पदार्थः—जो (यम्) जिस को (हस्ते) हाथ में (खादिनम्) भक्षण करने वाले के (न) समान और (जातम्) उत्पन्न हुए (शिशुम्) बालक के (न) समान (विशाम्) मनुष्यादि प्रजाओं के (स्वध्वरम्) सुन्दर यज्ञ जिससे हों उस (अग्निम्) प्रकाशमान अग्नि को (आ, बिभ्रति) सब ओर से धारण करते हैं वे उस से कृतकृत्य होते हैं ॥४०॥

भावार्थः– इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जो हाथ में आंवले को जैसे वैसे गोदी में लड़के को जैसे वैसे अग्निविद्या को जानते हैं वे प्रजा के स्वामी होते हैं ॥४०॥

फिर मनुष्यों को क्या प्राप्त करने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् ।

आ स्वे योनौ नि षीदतु ॥४१॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो आप लोग (देववीतये) श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति के लिए (वसुवित्तमम्) अतिशय धन को जानने और (देवम्) देने वाले को (स्वे) अपने (योनौ) गृह में (प्र, आ, भरता) उत्तमता से अच्छे प्रकार धारण करिये वा हरिये जिससे मनुष्य सुख से (नि, षीदतु) निरन्तर स्थिर होवे ॥४१॥

भावार्थः– हे मनुष्यो ! आप श्रेष्ठ गुणों की प्राप्ति के लिये अग्नि आदि पदार्थों को जानिये ॥४१ ।

विद्वानों को चाहिए कि श्रेष्ठ गृहस्थों का सत्कार करें इस विषय को कहते हैं ॥

आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् ।

स्योन आ गृहपतिम् ॥४२॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो (जातवेदसि) प्राप्त हुई विद्या जिसमें उस में (आ, जातम्) अच्छे प्रकार प्रसिद्ध (प्रियम्) प्रिय (अतिथिम्) अतिथि के समान वर्त्तमान को (स्योने) सुख में (गृहपतिम्) गृह के स्वामी को (आ, शिशीत) अच्छे प्रकार तीक्ष्ण करिये ॥४२॥

भावार्थः—जो व्याप्त बिजुली को प्रज्वलित कराते हैं वे सब स्थानों में विजय आदि को प्राप्त होते हैं ॥४२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अग्ने॑ युक्ष्वा हि ये तवाश्वा॑सो देव साधवः॑ ।

अरं वह॑न्ति मन्यवे॑ ॥४३।

पदार्थः हे (देव) श्रेष्ठ सुख के देने और (अग्ने) शिल्प क्रिया की कुशलता को जानने वाले विद्वन् (ये) जो (साधवः) श्रेष्ठ गमन वाले (तव) आप के (अश्वासः) वेग आदि गुण (मन्यवे) क्रोध के लिए (अरम्) समर्थ को (वहन्ति) प्राप्त होते हैं उन को (हि) ही आप वाहनों में (युक्ष्व) संयुक्त करिये ॥४३॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन अग्नि आदि का योजन वाहनों में करत हैं वे पूर्ण मनोरथ वाले होते हैं ॥४३॥

मनुष्यों को किस का सत्कार करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

अच्छा॑ नो याह्या व॑हाभि प्रयां॑सि वीतये॑ ।

आ देवान्त्सोम॑पीतये ॥४४॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप (नः) हम लोगों को (अच्छा) उत्तम प्रकार (सोमपीतये) सोमलता रूप ओषधि के रस के पान के लिए (आ, याहि) सब ओर से प्राप्त होओ और (प्रयांसि) अत्यन्त प्रिय वस्तुओं को (अभि) चारों ओर से (आ) सब प्रकार (वह) प्राप्त होओ और (वीतये) ज्ञान के लिये (देवान्) विद्वानों को सब ओर से प्राप्त होओ ॥४४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सत्कार के लिये विद्वानों का आह्वान करें ॥४४॥

फिर मनुष्यों का क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

उद॑ग्ने भारत द्युमदज॑स्रेण दवि॑द्युतत् । शोचा वि भा॑ह्यजर ॥४५॥

पदार्थः—हे (भारत) धारण करने वाले (अजर) जरा दोष से रहित (अग्ने) विद्वन् आप (अजस्रेण) निरन्तर से (द्युमत्) प्रकाश वाले को (दविद्युतत्) प्रकाशित करते हो उस के लिए आप (उत्, शोचा) अत्यन्त प्रकाशित हूजिये और (वि, भाहि) विशेष कर के प्रकाशित करिये ॥४५॥

भावार्थः—जैसे ब्रह्माण्ड में सूर्य्य निरन्तर प्रकाशित होता है वैसे ही विद्वान् जन सत्य व्यवहार में प्रकाशित हों ॥४५॥

मनुष्यों को किस की उपासना करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

वीती यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान् ।
होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसाऽऽविवासेत ॥४६॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो (यः) जो (हविष्मान्) बहुत दान करने वाला (उत्तानहस्तः) ऊपर स्थित हस्त जिसके ऐसा (मर्त्तः) मनुष्य (वीती) कामना से (अध्वरे) अहिंसा आदि लक्षणयुक्त योग में जिस (होतारम्) दान करने वाले (सत्ययजम्) सत्य प्राप्त कराने वाले (देवम्) मनोहर (अग्निम्) अग्नि के सदृश स्वयं प्रकाशित परमात्मा का (दुवस्येत्) सेवन करे और (रोदस्योः) अन्तरिक्ष और पृथिवी के (नमसा) सत्कार से (आ, विवासेत्) अच्छे प्रकार सेवन करे उस परमात्मा की आप लोग (ईळीत) प्रशंसा करो ॥४६॥

भावार्थः- हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर की योगी जन उपासना करते हैं उस की आप लोग भी उपासना करो ॥४६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि ।
ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥४७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) जगदीश्वर ! जिन (ते) आप के (हविः) अन्तःकरण और (तष्टम्) अत्यन्त शुद्ध किये गए स्वरूप को हम लोग (ऋचा) प्रशंसारूप ऋग्वेद आदि से और (हृदा) हृदय से (आ, भरामसि) अच्छे प्रकार पोषण करते हैं उन (ते) आपकी कृपा से हमारे और (ते) आपके सम्बन्धी (उक्षणः) सेचन करने वाले (ऋषभासः) उत्तम (उत) भी (वशाः) कामना करते हुए (भवन्तु) होवें ॥४७॥

भावार्थः—जो सत्यभाव से और अन्तःकरण से जगदीश्वर की आज्ञा का सेवन करते हैं वे सब प्रकार से उत्कृष्ट होते हैं ॥४७॥

अब ईश्वरविषय को कहते हैं ॥

अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम् ।
येना वसून्याभृता तृळ्हा रक्षांसि वाजिना ॥४८॥

पदार्थः – हे मनुष्यो जैसे (देवासः) विद्वान् जन (वृत्रहन्तमम्) मेघ के अत्यन्त नाश करने वाले और (अग्रियम्) आगे प्रकट हुए (अग्निम्) अग्नि को

(इन्धते) प्रकाशित करते हैं और (येना) जिन (वाजिना) वेग वा विज्ञान से (आभृता) चारों ओर से धारण किये गए (वसूनि) धनों को प्रकाशित करते हैं और (रक्षांसि) दुष्ट जनों को ((वृत्रहा) हिंसित करते हैं वैसे ही दोषों का नाश कर के परमात्मा को प्रकाशित करते हैं इस प्रकार आप लोग भी करो ॥४८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० - जैसे यज्ञ करने वाले जन यज्ञ में वेदी पर अग्नि को प्रज्वलित कर के हवन की सामग्री छोड़ के संसार का उपकार करते हैं वैसे ही योग से युक्त संन्यासी जन परमात्मा को सब के हृदय में अच्छे प्रकार प्रकाशित कर के दोषों का नाश करते हैं ॥४८॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान् और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

इस अध्याय में अग्नि, विश्वेदेव, सूर्य्य, इन्द्र, वैश्वानर, वायु, यज्ञ, राजधर्म्म, विद्वान् और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इस अध्याय के अर्थ की इससे पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में सोलहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

* ओ३म् *

अथ षष्ठाऽध्यायारम्भः ॥

—:०:०:०:०:—

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

अथ पञ्चदशर्चस्य सप्तदशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ३ । ४ । ११ त्रिष्टुप् । ५ । ६ । ८ विराट्त्रिष्टुप् । ७ । ९ । १० । १२ । १४ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १५ आर्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब चतुर्थ अष्टक में छठे अध्याय और छठे मंडल में पन्द्रह ऋचा वाले सत्रहवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

पिबा सोमम॒भि यमु॑ग्र तर्द॑ ऊ॒र्वं गव्यं॒ महि॑ गृणा॒न इ॑न्द्र । वि यो धृ॑ष्णो॒ वधि॑षो वज्रहस्त॒ विश्वा॑ वृ॒त्रम॑मि॒त्रिया॒ शवो॑भिः ॥१॥

पदार्थः—हे (वज्रहस्त) शस्त्र है हस्त में जिन के ऐसे (धिष्णो) अत्यन्त दृढ़ (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले (यः) जो (शवोभिः) बलों से (वृत्रम्) मेघों को सूर्य्य जैसे वैसे (विश्वा) सम्पूर्ण (अमित्रिया) शत्रुओं को आप (वि) विशेष करके (वधिषः) नाश करिये और हे (उग्र) तेजस्विन् (महि) बड़े (गव्यम्) गौओं के घृत की (गृणानः) स्तुति करते हुए (यम्) जिस (ऊर्वम्) हिंसा करने योग्य की (अभि) (तर्दः) हिंसा करिये उस के सम्बन्ध में वह आप (सोमम्) महोषधि के रस को (पिबा) पीजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य, विद्या और सत्कर्म्म से दुष्टों को दूर करके श्रेष्ठों का स्वीकार करते हैं वे शत्रुओं का नाश करते हैं ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स ईं॑ पाहि॒ य ऋ॑जी॒षी तरु॑त्रो॒ यः शिप्र॑वान् वृष॒भो यो म॑ती॒नाम् । यो गो॑त्र॒भिद्व॑ज्र॒भृद्यो ह॑रि॒ष्ठाः स इ॑न्द्र चि॒त्राँ अ॒भि तृ॑न्धि॒ वाजा॑न् ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुष्टों के विदीर्ण करने वाले (यः) जो (ऋजीषी) सरलस्वभाव (तरुत्रः) सम्पूर्ण दुःख से उत्तीर्ण हुए आप हैं (सः) वह आप (ईम्) प्राप्त वस्तु का (पाहि) पालन करिये और (यः) जो (शिप्रवान्) सुन्दर ठुड्डी और नासिका वाले (वृषभः) बलिष्ठ और (यः) जो (मतीनाम्) मनुष्यों के मध्य में बलिष्ठ (यः) जो (वज्रभृत्) वज्र को धारण करने वाले (गोत्रभित्) गोत्र के नाश करने वाले हैं (यः) जो (हरिष्ठाः) अतिशय हरने वाले हैं (सः) वह आप (चित्रान्) अद्भुत (वाजान्) हिंसकों का (अभि, तृन्धि) सब ओर से नाश करिये ॥२॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो प्रजा के रक्षक, दुष्टों के हिंसक जन होवें उनका आप सत्कार करिये ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुष्टों के नाश करने वाले (प्रत्नथा) प्राचीन जन जैसे वैसे आप (ब्रह्म) वेद की (पाहि) रक्षा कीजिए और जो वेद (त्वा) आप की (मन्दतु) प्रशंसा करे उस को आप (श्रुधि) सुनिये उससे (वावृधस्व) बढ़िये और (उत) भी (गीर्भिः) वाणियों से (सूर्य्यम्) परमेश्वर का (आविः) प्राकट्य (कृणुहि) करिये तथा (इषः) अन्न का (पीपिहि) पान करिये और (शत्रून्) शत्रुओं का (अभि, तृन्धि) सब प्रकार से नाश करिये और दोषों का (जहि) त्याग करिये और (गाः) पृथिवियों को (एवा) ही प्राप्त हूजिये ॥३॥

भावार्थः—जो श्रद्धा से परमेश्वर की उपासना करके विद्यार्थियों की परीक्षा करते हैं वे जगत् के प्रिय होते हैं ॥३॥

फिर राजा और प्रजा जन परस्पर कैसा वर्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम् ।
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ॥४॥

पदार्थः—हे (स्वधावः) बहुत अन्न से युक्त और (इन्द्र) ऐश्वर्य्ययुक्त जो (इमे) ये (पीताः) पान किये गये (मदाः) आनन्द और (मत्सरासः) आनन्द करते हुए जन (द्युमन्तम्) बहुत मनोरथों से युक्त (महाम्) बड़े (अनूनम्) न्यूनता से रहित (तवसम्) बलिष्ठ (विभूतिम्) बड़े ऐश्वर्य्य से युक्त (प्रसाहम्) अत्यन्त सहने-वाले को (बृहत्) बहुत (उक्षयन्त) सेचन करते हैं और (जर्हृषन्त) अत्यन्त प्रसन्न हों (ते) वे (त्वा) आप का सत्कार करें ॥४॥

भावार्थः—जिन सज्जनों का राजा सत्कार करें वे राजाओं को भी प्रसन्न करें ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत् ।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात् ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् (मन्दसानः) कामना करते हुए आप (येभिः) जिन से (सूर्य्यम्) सूर्य्य और (उषसम्) प्रातर्वेला को जैसे वैसे (गाः) पृथिवियों को (परि, अवासयः) सब प्रकार बसाइये तथा (दृळ्हानि) दृढ़

पदार्थों को (अप, वव्रंत्) पुष्ट करिये उन से (महाम्) बड़े (अद्रिम्) मेघ के समान (सन्तम्) वर्त्तमान (अच्युतम्) नाश से रहित को (स्वात्) अपने से (सदसः) सभा से (परि) चारों ओर (नुत्थाः) प्रेरित करिये ॥५॥

भावार्थः—वही राजा श्रेष्ठ होता है जो दुष्टों को विदीर्ण करके श्रेष्ठों की सभा से सम्पूर्ण प्रजाओं का शासन करता है ॥५॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तव क्रत्वा तव तद्दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः ।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्होदूर्वाद्गा असृजो अङ्गिरस्वान् ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वन् (तव) आप की (क्रत्वा) बुद्धि से और (तव) आप के (दंसनाभिः) कर्म्मों से हम लोग (आमासु) नहीं पाकदशा को प्राप्त हुओं में (तत्) उस (पक्वम्) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त विज्ञान को प्राप्त होवें और आप इस को (शच्या) बुद्धि वा प्रजा से (नि, दीधः) धारण कराते हो और जो (उस्रियाभ्यः) किरणों से (दुरः) गृहद्वारों को (और्णोः) आच्छादित करे तथा (ऊर्वात्) हिंसन से (गाः) भूमियों को (उत्, असृजः) अच्छे प्रकार रचे और (अङ्गिरस्वान्) बहुत प्रकार के प्राण विद्यमान जिसमें वह (दृळ्हा) दृढ़ों को (वि) विशेष करके रचे उस का हम लोग सत्कार करें ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों से शिक्षा को प्राप्त हो कर सब का सत्कार करते हैं वे राज्य को प्राप्त होकर सूर्य्य के सदृश प्रकाशित होते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

पप्राथ क्षां महि दंसो व्यु१ र्वीमुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः ।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश ऐश्वर्य्य करने वाले जैसे सूर्य्य (महि) बड़े (दंसः) कर्म्म को (उर्वीम्) विस्तृत (क्षाम्) भूमि को और (द्याम्) प्रकाश को (वि, उप, पप्राथ) विशेष कर समीप में पूरित करता है और (ऋष्वः) बड़ा महात्मा जन (बृहत्) बड़े को (स्तभाय) स्तम्भित करता है वैसे आप पूरित कीजिये और जैसे यह सूर्य्य (ऋतस्य) सत्य कारण के समीप से प्रकट हुए (देवपुत्रे) विद्वानों के पुत्र के समान वर्त्तमान (प्रत्ने) प्राचीन (मातरा) माता के सदृश आदर करने वाले (यह्वी) बड़े (रोदसी) भूमि और सूर्य्य लोक को धारण करता है वैसे आप (अधारयः) धारण करते हो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य भूगोलों को धारण करके पिता के सदृश संपूर्ण प्रजाओं का पालन करता है वैसे ही आप लोग यहां वर्त्ताव करो ॥७॥

फिर मनुष्यों को कौन उपासना करने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

अधं त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय ।
अदेवो यद्भ्यौहिष्ट देवान्त्स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ॥८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले स्वामिन् जगदीश्वर जो (विश्वे) सम्पूर्ण (देवाः) विद्वान् जन (भराय) पालन के लिए (त्वा) आप (एकम्) जिन के समान दूसरा नहीं उन (तवसम्) बल आदि के बढ़ाने वाले को (पुरः) आगे (दधिरे) धारण करते हैं उनको आप विज्ञान से धारण करते हो और (यत्) जो विद्वान् जन और जो (स्वर्षाताः) सुखों का विभाग करनेवाला (अदेवः) प्रकाश से रहित (देवान्) विद्वानों के (अभि) सन्मुख (औहिष्ट) विशेष करके तर्कित करता और संज्ञान को नहीं प्राप्त होता है और जो (अत्र) इस संसार में (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त का (वृणते) स्वीकार करते हैं वे (अध) इस के अनन्तर सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमात्मा ही की उपासना करते हैं वे अत्यन्त ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं और जो विद्या से हीन होकर विद्वानों के साथ कुतर्क करता है वह कुछ भी यहां नहीं पाता है ॥८॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अध द्यौश्चित्ते अप सा नु वज्राद्द्वितानमद्भियसा स्वस्य मन्योः ।
अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसानं नि चिद्विश्वायुः शयथे जघान ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (इन्द्रः) सूर्य्य (ओहसानम्) तर्क से जानने योग्य (अहिम्) मेघ का (अभि) सब ओर से (जघान) नाश करता है वैसे जो (चित्) कोई (विश्वायुः) सम्पूर्ण अवस्था से युक्त (नि) निरन्तर (शयथे) शयन करता है (अध) इसके अनन्तर जो (द्यौः) कामना करती हुई (चित्) भी (वज्रात्) विजुली के प्रहार से (भियसा) भय से (द्विता) दो प्रकार (अनमत्) नमती है वैसे हे विद्वन् (स्वस्य) अपने (मन्यो.) क्रोध से (सा) वह (नु) निश्चय से (ते) आप का दुःख (अप) दूर करे ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग सूर्य्य और मेघ के सदृश वर्त्ताव करके परस्पर पालन करो ॥९॥

अब राजपुरुष कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अध॒ त्वष्टा॑ ते म॒ह उ॑ग्र॒ वज्रं॑ स॒हस्र॑भृष्टिं ववृत॒च्छता॑श्रिम् ।

निका॑म॒मर॑मणसं॒ येन॒ नव॑न्त॒महिं॒ सं पि॑ण॒गृजी॑षिन् ॥१०॥

पदार्थः—हे (ऋजीषिन्) सरल स्वभाव वाले (उग्र) तेजस्विन् (ते) आप के हस्त में (महः) बड़े (सहस्रभृष्टिम्) हजारों का छेदन करने और (शताश्रिम्) सैकड़ों का आश्रयण करने वाले और (निकामम्) नित्य कामना किये जाते (अरमणसम्) जिसमें नहीं रमते हैं शत्रु उस (वज्रम्) शस्त्रविशेष को धारण करता हूं (अध) इसके अनन्तर (येन) जिससे (त्वष्टा) छेदन करने वाले आप (नवन्तम्) स्तुति करते हुए नम्र के सदृश को (अहिम्) मेघ को जैसे सूर्य्य वैसे (सम्, पिणक्) अच्छे प्रकार पीसते हैं तथा (ववृतत्) वर्त्ताव करते हैं उन आपको हम लोग भी धारण करें ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे वीरपुरुषो ! जैसे धनुर्वेद के जाननेवाले वीरपुरुष शस्त्रों को धारण करें वैसे आप लोग भी धारण करो ॥१०॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वर्धा॒न्यं विश्वे॑ म॒रुतः॑ स॒जोषाः॒ पच॑च्छ॒तं म॑हि॒षाँ इ॑न्द्र॒ तुभ्य॑म् ।

पू॒षा विष्णु॒स्त्रीणि॒ सरां॑सि धाव॒न्वृ॑त्र॒हणं॑ मदि॒रमं॒शुम॑स्मै ॥११॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य्य के समान वर्त्तमान राजन् (सजोषाः) तुल्य प्रीति के सेवने वाले (विश्वे) सम्पूर्ण (मरुतः) मनुष्य (यम्) जिन आप की (वर्धान्) वृद्धि करें और जो (पूषा) पुष्टि करने वाला (धावन्) दौड़ता हुआ (विष्णुः) व्यापक बिजुली रूप (त्रीणि) तीन(सरांसि) चलते हैं जिन में उन अन्तरिक्ष आदिकों को व्याप्त होता है वैसे दौड़ते हुए (अस्मै) इस के लिए (मदिरम्) आनन्द करने वाले (अंशुम्) विभक्त (वृत्रहणम्) मेघ को जैसे सूर्य्य वैसे शत्रुओं को मारता है और जो (तुभ्यम्) आप के लिये (शतम्) सौ (महिषान्) बड़े पदार्थों को देता है और जो परोपकार के लिये (पचत्) पाक करे उसको आप लोग जानिये ॥११॥

भावार्थः—जैसे प्रजाजन राजा और राज्य को बढ़ावें वैसे राजा इनकी निरन्तर वृद्धि करे ॥११॥

अब राजा आदि क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

आ क्षोदो॒ महि॑ वृ॒तं न॒दीनां॒ परि॑ष्ठितमसृज ऊ॒र्मिम॒पाम् ।

तासा॒मनु॑ प्र॒वत॑ इन्द्र॒ पन्थां॒ प्रार्द॑यो॒ नीची॑र॒पसः॑ समु॒द्रम् ॥१२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य्य के समान वर्त्तमान राजन् जैसे सूर्य्य (नदीनाम्) नदियों के (महि) बड़े (वृतम्) स्वीकार किये गए (परिष्ठितम्) सब ओर से वर्त्तमान (क्षोदः) जल को और (अपाम्) जलों की (ऊर्मिम्) तरंग को (असृजः) उत्पन्न करता है (तासाम्) उन के (प्रवतः) नीचे स्थान से (अनु) पश्चात् (पथ्याम्) मार्ग को (अपसः) कर्म्म की (नीचीः) नीचली भूमियों को और (समुद्रम्) अन्तरिक्ष वा बड़े समुद्र को (प्र, आ, आर्दयः) प्राप्त कराता है वैसे आप सेना और प्रजा को सुख प्राप्त करा के शत्रुओं को नीची दशा को प्राप्त कराइये ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा आदि जन सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान हैं वे प्रजापालन और शत्रु के निवारण करने को समर्थ होते हैं ॥१२॥

फिर राजा और प्रजाजन कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्य्यं सहोदाम् ।
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ॥१३॥

पदार्थः—हे राजन् जो (ता) उन (विश्वा) सम्पूर्णों को और (चकृवांसम्) करते हुए (महाम्) बड़े (उग्रम्) तेजस्वी (अजुर्य्यम्) नहीं जीर्ण हुए (सहोदाम्) बल के देनेवाले (स्वायुधम्) उत्तम शस्त्र के चलाने में चतुर (सुवज्रम्) प्रशस्त वज्ररूप अस्त्र के चलाने में समर्थ (सुवीरम्) उत्तम वीरों से युक्त (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले शत्रु के नाशक (त्वा) आप को (एवा) ही (अवसे) रक्षण आदि के लिये और न्याय करने के लिये (आ, ववृत्यात्) सब ओर से वर्त्ताव करे वह (नव्यम्) नवीनों में हुए (ब्रह्म) बड़े धन वा अन्न को बढ़ाने को समर्थ होवे ॥१३॥

भावार्थः—पिता के सदृश प्रजाओं के पालक, धनुर्वेद, राजनीति और युद्धविद्या में कुशल राजा की सब लोग वृद्धि करें और इन लोगों की यह राजा निरन्तर वृद्धि करे ॥१३॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान् ।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र ॥१४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के प्राप्त कराने वाले (सः) वह राजा आप (द्युमतः) विज्ञान के प्रकाश से युक्त (नः) हम लोगों (विप्रान्) बुद्धिमान्

विद्वानों को (वाजाय) वेग वा विज्ञान के लिए (श्रवसे) श्रवण के लिये (इषे) अन्न के लिये और (राये) धन के लिये (च) भी (धेहि) धारण करिये और हे (इन्द्र) दुःख और दारिद्र्य के विनाशक आप (सुवतः) अच्छे मनुष्यों से युक्त हम (सूरीन्) विद्वानों को (भरद्वाजे) राज्य के पुष्ट करने वा पालन करने वाले व्यवहार में और (दिवि) सुन्दर न्याय के प्रकाश में (च) भी धारण करिये और हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य के बढ़ाने वाले आप (पार्य्ये) पार करने योग्य में भी (नः) हम लोगों के बढ़ाने वाले (स्म) ही (एधि) होओ ॥१४॥

भावार्थः—राजाओं को योग्य है कि सम्पूर्ण अधिकारों में सम्पूर्ण विद्याओं में चतुर, धार्म्मिक, कुलीन और राजभक्तों को संस्थापित कर के सब प्रकार से राज्य की उन्नति करें ॥१४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ।

अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१५॥

पदार्थः—हे राजन् (अया) इस नीति से (शतहिमाः) सौ वर्ष पर्य्यन्त जीवन वाले (सुवीराः) उत्तम वीर जनों से युक्त हुए हम लोग (देवहितम्) विद्वानों के लिये हितकारी (वाजम्) विज्ञान का (सनेम) विभाग करें और (मदेम) आनन्द करें ॥१५॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि विद्वानों का संग और विनय से राज्य पालन के लिये उत्तम वीर जनों को अधिकृत करें ॥१५॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान्, राजा, मन्त्री और प्रजा के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में सत्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चदशर्चस्याष्टादशस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ४ । ६ । १४ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ८ । ११ । १३ त्रिष्टुप् । ७ । १० विराट्त्रिष्टुप् । १२ भुरिक्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । १५ भुरिक्पंक्तिः । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ६ ब्राह्म्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले अठारहवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मंत्र में फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः ।
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥१॥

पदार्थः—हे राजन् (यः) जो (अभिभूत्योजाः) अभिभव अर्थात् शत्रुओं के पराजय करने के लिए पराक्रम से युक्त (अवातः) नहीं हिंसित (पुरुहूतः) बहुतों से प्रशंसित (वन्वन्) विभाग करता हुआ (इन्द्रः) दुःख को विदीर्ण करने वाला है (तम्) उस (अषाळ्हम्) नहीं सहने योग्य (उग्रम्) तीव्र स्वभाव वाले और (चर्षणीनाम्) मनुष्यों में (वृषभम्) अतिश्रेष्ठ और (सहमानम्) शत्रुओं के वेग को सहने वाले की (आभिः) इन (गीर्भिः) वाणियों से (स्तुहि) स्तुति करिये (उ) और उससे (वर्ध) वृद्धि को प्राप्त हूजिये ॥१॥

भावार्थः—हे राजन्! आप सदा स्तुति करने योग्य की स्तुति करिये, निन्दा करने योग्य की निन्दा करिये, तथा सत्कार करने योग्य का सत्कार करिये और दण्ड देने योग्य को दण्ड दीजिये ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी ।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा ॥२॥

पदार्थः—हे राजन् जो (युध्मः) युद्ध करने वाला (सत्वा) बलवान् (समद्वा) अच्छे प्रकार स्वादु भोजन करने वाला (तुविम्रक्षः) बहुत स्नेहयुक्त (नदनुमान्) बहुत शब्द विद्यमान जिस में ऐसा और (ऋजीषी) सरल चलने वाला (बृहद्रेणुः) बड़ी धूलि जिस में वह (च्यवनः) जाने वाला (मानुषीणाम्) मनुष्यसम्बन्धिनी सेनाओं और (कृष्टीनाम्) मनुष्यों के मध्य में (एकः) सहाय रहित (सहावा) सहनशील (खजकृत) संग्राम करने वाला वीर (अभवत्) होवे (सः) वही आप से राज्य की रक्षा के निमित्त नियुक्त करने योग्य है ॥२॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि राजकर्म्मचारी को उत्तम प्रकार परीक्षा कर के राज्य-व्यवहार में नियुक्त करे जिससे प्रजा के सुख की वृद्धि हो ॥२॥

फिर राजा को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय ।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं१ तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् जो (ते) आप का (वीर्य्यम्) बल (अस्ति) है (स्वित्) क्या ? (नु) शीघ्र जो (न) नहीं (अस्ति) हैं और (स्वित्) भी (ऋतुथा) ऋतु जैसे वैसे जो (वि, वोचः) कहते हो (तत्) उसका (त्वम्) आप (अवनोः) सेवन करिये (तत्) वह मेरा हो और (दस्यून्) दुष्ट चोरों को (एकः) सहायरहित हुए आप (अदमयः) दमन करिये वह आप (ह) निश्चय (कृष्टीः) मनुष्यों को (आर्य्याय) द्विज के लिये (नु) शीघ्र उत्तम प्रकार सेवन करिये (त्यत्) उसको हम लोग भी ऐसे करें ॥३॥

भावार्थः—राजाओं का यह मुख्य कर्म्म है कि सम्पूर्ण दुष्ट चोरों का निवारण करके प्रजाओं का पालन करें ॥३॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य ।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥४॥

पदार्थः—हे (सहिष्ठ) अतिशय सहने वाले (तुविजातस्य) बहुतों में प्रसिद्ध जिन (ते) आप का जो (हि) निश्चित (सहः) बल है उस को (सत्) नित्य होने वाला पदार्थ मैं (मन्ये) मानता हूं तथा (तुरतः) शीघ्र करने वाले (तुरस्य) शीघ्र आरम्भ करने वाले (उग्रस्य) तीव्र और (अरध्रस्य) नहीं हिंसा करने वाले के (तवसः) बल से (उग्रम्) तीव्र (तवीयः) अतिशय बल को मैं मानता हूं वह आप (रध्रतुरः) हिंसकों के हिंसक (इत्) ही (बभूव) होवें ॥४॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि जिसमें जैसे गुण कर्म्म और स्वभाव होवें वैसे ही मानें ॥४॥

फिर मनुष्यों को परस्पर कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः ।
हन्नच्युतच्युद्दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥५॥

पदार्थः—हे न्यायकारी राजा आदि जनो आप लोगों के साथ (नः) हम लोगों की जैसे (तत्) वह (प्रत्नम्) प्राचीन (सख्यम्) मित्रता (अस्तु) हो (इत्था) इस से जैसे वैसे (युष्मे) आप लोगों के (वदद्भिः) कहते हुओं के साथ हम लोगों की मित्रता हो और जैसे (अङ्गिरोभिः) पवनों के साथ (अच्युतच्युत्) नहीं चञ्चल अर्थात् स्थिर को चञ्चल करने वाला सूर्य्य (वलम्) मेघ का (हन्) नाश करता है वैसे हे (दस्म) दुःख के नाश करने वाले (इषयन्तम्) प्राप्त हुए वा जाते हुए को

आप (ऋणोः) सिद्ध करिये और जैसे (अस्य) इस जगत् के (दुरः) द्वारों को सूर्य्य प्रकाशित करता है वैसे आप (विश्वाः) सम्पूर्ण (पुरः) नागरिकों को (वि) विशेष करके सिद्ध करिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिये कि यथाशक्ति उत्तमों के साथ मित्रता ही करें, वह कभी नष्ट न होवे ऐसा प्रयत्न करें और जैसे सूर्य्य सब को प्रकाशित करता है वैसे राजा न्याय से सम्पूर्ण राज्य को प्रकाशित करे ॥५॥

फिर राजा को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

स हि धीभिर्हव्यो अस्त्युग्र ईशानकृन्महति वृत्रतूर्य्ये ।
स तोकसाता तनये स वज्री वितन्तसाय्यो अभवत्समत्सु ॥६॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे (सः) वह (धीभिः) ज्ञान वा बुद्धियों से (हव्यः) ग्रहण करने योग्य (महति) बड़े (वृत्रतूर्य्ये) संग्राम में (ईशानकृत्) ईश्वरता करने वालों को पुरुषार्थी करने वाला (अस्ति) है और (सः) वह (तोकसाता) सन्तानों के विभाग होने में (तनये) पुत्र के लिए (उग्रः) तेजस्वी और (सः) वह (हि) ही (वितन्तसाय्यः) [अत्यन्त विस्तार करने योग्य (वज्री) शस्त्र हैं बाहुओं में जिसके ऐसा (समत्सु) संग्रामों में (अभवत्) होता है वैसे आप करिये ॥६॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—राजा को चाहिये कि सब कर्म्मचारियों को योग्य सिद्ध करे जिससे सर्वदा विजय होवे ॥६॥

फिर राजा को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

स मज्मना जनिम मानुंषाणाममर्त्येन नाम्नाति प्र सर्स्रे ।
स द्युम्नेन स शवसोत राया स वीर्य्येण नृतमः समोकाः ॥७॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे यह सेवक (मज्मना) बल से (सः) वह (द्युम्नेन) धन वा यश से (सः) वह (शवसा) विशेष बल से (सः) वह (राया) धन से और (उत) भी (सः) वह (वीर्य्येण) पराक्रम से (मानुषाणाम्) मनुष्यों के (अमर्त्येन) मरणधर्म्म से रहित कारण से और (नाम्ना) संज्ञा से (जनिम) जन्म अर्थात् प्रकट होने को (अति, प्र, सर्स्रे) अत्यन्त प्राप्त होता है वह (समोकाः) एक स्थानवाला (नृतमः) मनुष्यों के मध्य में अतिशय उत्तम होवें वैसे आप करिये ॥७॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि जैसे प्रजा और राजा के जन प्रसिद्धि, बल, धन, यश और पराक्रम को प्राप्त होवें वैसे प्रयत्न करे ॥७॥

फिर मनुष्य कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

स यो न मुहे न मिथू जनो भूत्सुमन्तुनामा चुमुरिं धुनिं च । वृणक् पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां च्यौत्नाय शयथाय नू चित् ॥८॥

पदार्थः हे विद्वन् जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य (चुमुरिम्) भोजन करने (प्रिप्रुम्) व्याप्त होने (धुनिम्) शब्द करने (शुष्णम्) सुखाने और (शम्बरम्) सुख को स्वीकार कराने वाले मेघ को (पुराम्) पूर्ण धनों के (च्यौत्नाय) गमन और (शयथाय) शयन के लिये (नू) शीघ्र (वृणक्) काटता है वैसे (च) और (यः) जो (सुमन्तुनामा) उत्तम प्रकार जानने योग्य नाम जिस का वह (जनः) मनुष्य (न) नहीं (मुहे) मोह को प्राप्त होता और (न) न (मिथू) परस्पर (भूत्) होता है (सः) वह (चित्) भी सत्कार करने योग्य है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य्य मेघ का निर्म्माण करके और वर्षाय के वद्ध नहीं होता है वैसे ही मनुष्य धर्म्मयुक्त कार्य्यों को करके सज्जनों के साथ वर्त्ताव करके मोहित नहीं होते किन्तु सुखी होते हैं ॥८॥

फिर राजजन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

उदावता त्वक्षसा पन्यसा च वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ । धिष्व वज्रं हस्त आ दक्षिणत्राभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः ॥९॥

पदार्थः—हे (पुरुदत्र) बहुत दान करने वाले (इन्द्र) राजन् आप (उदावता) ऊर्ध्वगमन और (पन्यसा) शुद्ध व्यवहार तथा (त्वक्षसा) सूक्ष्मीकरण से (वृत्रहत्याय) संग्राम के लिए (रथम्) रथ पर (आ) सब प्रकार से (तिष्ठ) स्थित हो और (दक्षिणत्रा) दहिने (हस्ते) हाथ में (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्र को (धिष्व) धारण करिये (मायाः) बुद्धियों को (च) और प्राप्त होकर (अभि, प्र, मन्द) सब प्रकार से प्रशंसा करिये ॥९॥

भावार्थः—जो उत्कृष्टता से सम्पूर्ण विषयों को जानने वाली बुद्धियों को प्राप्त होकर शस्त्र और अस्त्रों को धारण करके युद्ध के लिये जाते हैं वे विजय को प्राप्त होते हैं ॥९॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

अग्निर्न शुष्कं वनमिन्द्र हेती रक्षो नि धक्ष्यशनिर्न भीमा । गम्भीरय ऋष्वया यो रुरोजाध्वानयद्दुरिता दम्भयच्च ॥१०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुष्टता के नाशक राजन् (यः) जो (अग्निः) अग्नि जैसे (शुष्कम्) सूखे (वनम्) वनको (न) वैसे (रक्षः) दुष्ट जन को (धक्षि) जलाते हो और जिन आप का (हेतिः) वज्र (अशनिः) बिजुली (न) जैसे वैसे (भीमा) जिस से जन भय करते वह सेना है उस (ऋष्वया) बड़ी (गम्भीरया) अथाह बलयुक्त सेना से आप शत्रुओं को (दरोज) रोगयुक्त करते हो उस को (अध्वानयत्) कंपाते हो और (दुरिता) दुष्ट आचरणों को (च) भी (बम्भयत्) नष्ट करते हो उस से जिस कारण दुष्टजन को (नि) अत्यन्त जलाते हो इससे अपराजित हो ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे राजा आदि जनो ! जैसे अग्नि ज्वाला से सूखे और गीले भी वन को जलाता है वैसे उत्तम प्रकार शिक्षित तथा बड़ी सेना से शत्रुओं को भय करिये और शत्रुओं को जलाइये ॥१०॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक् ।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः ॥११॥

पदार्थः—हे (तुविद्युम्न) बहुत प्रशंसा से युक्त (पुरुहूत) बहुतों से आह्वान किये गये (सहसः) बलवान् के (सूनो) पुत्र (इन्द्र) दुष्टता के नाशक राजन् आप (पथिभिः) मार्गों (राया) धन और (तुविवाजेभिः) बहुत वेग वा बहुत संग्रामों के साथ (अर्वाक्) पीछे से (सहस्रम्) अनेकों को (आ) सब ओर से (याहि) प्राप्त हूजिये और (यस्य) जिस (योतोः) मिश्रित और अमिश्रित करने वाले का (चित्) भी (अदेवः) विद्वान् से भिन्न जन (ईशे) इच्छा करता है उसको (नू) शीघ्र प्राप्त होओ ॥११॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप विद्या और विनय के मार्ग से प्रजाओं का पिता के सदृश पालन करके यशस्वी होकर सत्य और असत्य का यथावत् निर्णय करिये ॥११॥

फिर कौन शत्रुवाला होता है इस विषय को कहते हैं ॥

प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः ।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस (तुविद्युम्नस्य) बहुत प्रशंसारूप धन से युक्त (स्थविरस्य) विद्या और अवस्था से वृद्ध (घृष्वेः) दुष्टों के घिसने वाले (दिवः)

सुन्दर (पुरुमायस्य) बहुत श्रेष्ठ कर्म्मों में बुद्धि जिसकी उस (सह्योः) सहनशील का (महिमा) महत्त्व (पृथिव्याः) भूमि से (प्र, ररप्शे) अलग फैलता है (अस्य) इसका (न) न (शत्रुः) वैरी (न) (प्रतिमानम्) मान वा सादृश्य और (न) न (प्रतिष्ठिः) प्रतिष्ठित (अस्ति) है ॥१२॥

भावार्थः—जो विद्या में वृद्ध, अमित प्रशंसा और महिमा वाले, सत्य की कामना करते हुए, बहुत बुद्धिमान् और शम दम आदि गुणों से युक्त होवें उनका कोई भी शत्रु न बराबर और न उनसे अधिक प्रतिष्ठित होता है ॥१२॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र तत्तें अ॒द्या कर॑णं कृ॒तं भूत्कुत्सं॒ यदा॒युम॑ति॒थि॒ग्वम॑स्मै ।

पु॒रू स॒हस्रा॒ नि शि॑शा अ॒भि क्षामु॒त्तूर्व॑याणं धृष॒ता नि॑नेथ ॥१३॥

पदार्थः—हे राजन् ! (यत्) जिस (कुत्सम्) वज्र के सदृश दृढ़ (अतिथिग्वम्) अतिथियों को प्राप्त होने वाले (आयुम्) जीवन को (अस्मै) इस के लिए आप (उत्) (निनेथ) उन्नति प्राप्त करिये जिस (धृषता) दृढ़त्व से (तूर्वयाणम्) शीघ्रगामी वाहन जिसका उस (क्षाम्) पृथिवी को (पुरू) बहुत (सहस्रा) हजारों की (अभि) चारों ओर से (नि, शिशाः) शिक्षा दीजिये (तत्) वह (ते) आप का (अद्या) आज (करणम्) साधन (कृतम्) किया गया (प्र, भूत्) होवे ॥१३॥

भावार्थः—जहां राजा आदि जन अधिक अवस्था वाले, अतिथि जनों के सेवक, पक्षपात का त्याग करके प्रजा के पालक हैं वहां सम्पूर्ण कार्य्य सिद्ध होते हैं ॥१३॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अनु॑ त्वाहिघ्ने॒ अध॑ देव दे॒वा मद॒न्विश्वे॑ क॒वित॑मं क॒वीना॑म् ।

क॒रो॒ यत्र॒ वरि॑वो बाधि॒ताय॑ दि॒वे जना॑य त॒न्वे॑ गृणा॒नः ॥१४॥

पदार्थः—हे (देव) विद्वन् (यत्र) जहां (बाधिताय) विलोडित हुए (दिवे) कामना करते हुए (जनाय) जन के और (तन्वे) शरीर के लिए (वरिवः) सेवन को (गृणानः) स्तुति करता हुआ जन (करः) कार्य्यों को करने वाला है वहां (अहिघ्ने) मेघ को नष्ट करने वाले सूर्य के लिए जैसे वैसे जिस (कवीनाम्) विद्वानों के मध्य में (कवितमम्) अत्यन्त विद्वान् (त्वा) आप को (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् जन (अनु, मदन्) आनन्दित करते हैं उन आप का आश्रयण करके (अध) इसके अनन्तर हम लोग सुखी होवें ॥१४॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो मनुष्य उत्तम, यथार्थवक्ता, विद्वानों का उत्तम प्रकार सेवन कर विद्याओं को प्राप्त होकर अन्यों को जनाते हैं वे प्रसन्न होते हैं ॥१४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥१५॥

पदार्थः – हे (कृत्नो, करने वाले (इन्द्र) राजन् (ते) आप के समीप से जो (अमर्त्याः) साधारण मनुष्यों के स्वभाव से विलक्षण स्वभाव वाले (देवाः) विद्वान् जन (यत्) जो (अकृतम्) नहीं किया गया कर्म और (नवीयः) अतिशय नवीन वचन (उक्थम्) कहने योग्य (अस्ति) है (तत्) उस (ते) आप के वचन को (जिहते) प्राप्त होते और (द्यावापृथिवी) भूमि और सूर्य्य को (अनु) पश्चात् प्राप्त होते हैं उनको आप (यज्ञैः) मेल करनेरूप व्यवहारों से (जनयस्व) प्रकट कीजिये और (ओजः) पराक्रम को (कृष्वा) करिये ॥१५॥

भावार्थः– हे मनुष्यो ! आप लोग भूमि और विजुली आदि की विद्या से नवीन नवीन कार्य को सिद्ध करिये ॥१५॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान् और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में अठारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्रयोदशर्चस्यैकोनविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३ । १३ भुरिक्पङ्क्तिः । ९ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ४ । ६ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ । १० । ११ । १२ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । ८ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तेरह ऋचावाले उन्नीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में अब सूर्य कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (महान्) बड़ा (इन्द्रः) सूर्य (चर्षणिप्राः) मनुष्यों

में विजुलीरूप से व्याप्त होने (उत) और (द्विबर्हाः) अन्तरिक्ष और वायु से बढ़ने और (अमिनः) नहीं हिंसा करने वाला (अस्मद्र्यक्) हम लोगों के सम्मुख हुआ (उरुः) बहुत (पृथुः) विस्तीर्ण (सुकृतः) उत्तम प्रकार उत्पन्न किया गया (भूत्) हो तथा (सहोभिः) बलों और (कर्तृभिः) कर्म करनेवालों के साथ (वीर्याय) पराक्रम के लिए (नृवत्) मनुष्य जैसे वैसे (आ, वावृधे) सब ओर से बढ़ता है उस को जान कर इष्टसिद्धि करिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जैसे मित्र मित्र के साथ कार्य की सिद्धि के निमित्त प्रयत्न करता है वैसे ही ईश्वर से निर्मित बिजुली वा सूर्य्य सम्पूर्ण कर्मकारियों का सहयोगी होता है ॥१॥

मनुष्यों को किस प्रकार से उन्नति करनी चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद्बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि ॥२॥

पदार्थः—(यः) जो (धिषणा) बुद्धि वा कर्म से (सातये) संविभाग के लिए (बृहन्तम्) पृथिवी के समीप से अतिविस्तीर्ण (ऋष्वम्) जाने वाले (अजरम्) वृद्धावस्था से रहित (युवानम्) युवाजन को जैसे वैसे (अषाळ्हेन) शत्रुओं से नहीं सहने योग्य (शवसा) बल से (शूशुवांसम्) व्याप्तिमान् (इन्द्रम्) सूर्य्य के सदृश अत्यन्त ऐश्वर्य वाले को (धात्) धारण करता है वह (एव) ही (सद्यः) शीघ्र (असामि) अत्यन्त (चित्) निश्चित (वावृधे) वृद्धि को प्राप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—जैसे बड़े मित्र को प्राप्त होकर मनुष्य वृद्धि को प्राप्त होते हैं वैसे ही बिजुली की विद्या को प्राप्त होकर अतुल वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं ॥

पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्य१क्सं मिमीहि श्रवांसि ।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ॥३॥

पदार्थः - हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले न्याय के ईश ! जो आप के (पृथू) विस्तीर्ण (करस्ना) जो करने वालों को शुद्ध करने वाले (बहुला) जिन से बहुतों को ग्रहण करते वे (गभस्ती) दोनों हाथ वर्त्तमान हैं उन दोनों से (पशुपाः) पशुओं के रखने वाले (पश्वः) पशु के (यूथेव) समूह जैसे वैसे (अस्मद्र्यक्) हम लोगों की सेवा करने वाले होते हुए (श्रवांसि) अन्नों वा श्रवणों का (सम्, मिमीहि) उत्तम प्रकार ग्रहण करिये और (दमूनाः) इन्द्रियों का निग्रह करने वाले हुए (आजौ)

सङ्ग्राम में (अस्मान्) हम लोगों के (अभि) चारों ओर से (आ, ववृत्स्व) अच्छे प्रकार वर्त्ताव करिये ॥३॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—वे ही लक्ष्मीवान् होते हैं जो आलस्य का त्याग करके सदा सत्कर्म्म के लिये प्रयत्न करते हैं और जैसे पशुओं के पालने वाले पशुओं का पालन करके समृद्ध अर्थात् धनवान् होते हैं वैसे ही पुरुषार्थी जन दारिद्र्य का विनाश करके धन के स्वामी होते हैं ॥३॥

फिर मनुष्य कैसे होवें इस विषय को कहते हैं ॥

तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैरिह नूनं वाजयन्तो हुवेम ।
यथा चित्पूर्वे जरितार आसुरनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यथा) जैसे (इह) इस संसार में (पूर्वे) प्राचीन (अनेद्याः) नहीं निन्दा करने योग्य (अनवद्याः) प्रशंसनीय (अरिष्टाः) नहीं हिंसित (जरितारः) स्तुति करने वाले (आसुः) होते हैं वैसे (चित्) भी (अस्य) इस के (शाकैः) सामर्थ्यविशेषों से (तम्) उस (चतिनम्) आनन्द और (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले को तथा (वः) तुम लोगों को (नूनम्) निश्चित (वाजयन्तः) जनाते हुए हम लोग (हुवेम) ग्रहण करें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जैसे प्रशंसा करने योग्य यथार्थवक्ता पुरुष धर्मयुक्त कर्मों में वर्ताव करके कृतकृत्य होते हैं वैसे ही वर्ताव करके सब मनुष्य कृतकार्य होवें ॥४॥

फिर मनुष्यों को कैसा होना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः ।
सं जग्मिरे पथ्या३ रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वानो जिस को (अस्मिन्) इस व्यवहार में (यादमानाः) चारों ओर से जाती हुई (सिन्धवः) नदियां (समुद्रे) समुद्र में (न) जैसे वैसे (पथ्याः) मार्ग में श्रेष्ठ (रायः) धन (सम्, जग्मिरे) प्राप्त होते हैं (सः, हि) वही (धृतव्रतः) धारण किये कर्म जिसने वह (सोमवृद्धः) ऐश्वर्य वा ओषधि से बढ़ा हुआ (धनदाः) धन का देने वाला (पुरुक्षुः) बहुत अन्न से युक्त (वामस्य) प्रशंसा करने योग्य (वसुनः) धन का स्वामी होता है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे नदियां वेग से समुद्र को

प्राप्त होकर स्थिर होती हैं वैसे ही धार्मिक तथा उद्योगी पुरुष की लक्ष्मी सेवा करती हैं ॥५॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम् ।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ॥६॥

पदार्थः—हे (हरिवः) प्रशंसनीय मनुष्यों वाले (शूर) भयरहित (अभिभूते) दुष्टों के अभिभव करने वाले आप (नः) हम लोगों को और (शविष्ठम्) अतिशय बलिष्ठ (उग्रम्) तीव्र (ओजः) प्राणधारण को और (ओजिष्ठम्) अत्यन्त पराक्रम-युक्त (शवः) बल को (आ, भर) सब प्रकार से धारण करो और इससे (मानुषाणाम्) मनुष्य जाति में वर्त्तमानों के सम्बन्ध में (विश्वा) सम्पूर्ण (वृष्ण्या) उत्तम जनों के लिये हितकारक (द्युम्ना) प्रकाशित यशों वा धनों को (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिए (मादयध्यै) आनन्द देने को (दाः) दीजिये ॥६॥

भावार्थः- हे राजन् ! आप राज्य के पालने योग्य गुणों को धारण कर के न्याय से राज्य का पालन करिये ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यस्ते मदः पृतनाषाळमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम् ।
येन तोकस्य तनयस्य सातौ मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् (ते) आप का (यः) जो (अमृध्रः) नहीं हिंसा करने और (पृतनाषाट्) सेनाओं को सहने वाला (मदः) आनन्द है (येन) जिस से (जिगीवांसः) जीतने वाले (त्वोताः) आप से रक्षित हम लोग (तोकस्य) सन्तान (तनयस्य) सुकुमार के (सातौ) संविभाग में रक्षा और विद्यादान को (मंसीमहि) जानें और आप (तम्) उस (शूशुवांसम्) श्रेष्ठ गुणों से व्याप्त को (नः) हम लोगों के लिए (आ, भर) सब प्रकार से धारण करिये ॥७॥

भावार्थः— हे प्रजाजनो ! आप लोग राजा के प्रति यह कहो कि हम लोगों के सन्तान जिस प्रकार उत्तम शिक्षित हों वैसे नियमों को करिये जिससे विजय और आनन्द बढ़ें ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ॥८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुष्टों के बलनाशक आप (नः) हम लोगों के लिए (वृषणम्) शत्रुओं के सामर्थ्य को रोकने वाली (शुष्मम्) सेना और (धनस्पृतम्) धन को पूरण करते जिससे उस (शूशुवांसम्) शुभ गुण व्यापिनी (सुदक्षम्) उत्तम बल की चतुराई को (आ) सब ओर से (भर) धारण करिये (येन) जिस से हम लोग (तव) आपके (ऊतिभिः) रक्षण आदिकों से (जामीन्) सम्बन्धी बन्धु आदिकों का (उत) और (अजामीन्) असम्बन्धी दुष्ट (शत्रून्) शत्रुओं का (पृतनासु) मनुष्यों की सेनाओं में (वंसाम) विभाग करें ॥८॥

भावार्थः—राजाओं को चाहिये कि ऐसा प्रयत्न करें जिससे मित्र और शत्रु पृथक्-पृथक् प्रतीत होवें और वैसी ही सेना रखनी चाहिये जिससे शत्रु नष्ट होवें ॥८॥

फिर सम्पूर्ण जनों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

आ ते॒ शुष्मो॑ वृष॒भ ए॑तु प॒श्चादोत्त॒राद॑ध॒रादा पु॒रस्ता॑त् ।
आ वि॒श्वतो॑ अ॒भि समे॑त्व॒र्वाङिन्द्र॑ द्यु॒म्नं स्व॑र्व॒द्धे॑ह्य॒स्मे ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के करने वाले जैसे (अस्मे) हम लोगों के लिए (पश्चात्) पीछे से (स्वर्वत्) बहुत प्रकार सुख विद्यमान जिस में उस (द्युम्नम्) प्रकाशस्वरूप यश वा धन को (एतु) प्राप्त हूजिये और (उत्तरात्) बाईं ओर से बहुत प्रकार सुख जिस में उस प्रकाशस्वरूप यश वा धन को (आ) सब ओर से प्राप्त हूजिये और (अधरात्) नीचे से बहुविध सुख वाले प्रकाशस्वरूप यश वा धन को (आ) सब ओर से प्राप्त हूजिये तथा (विश्वतः) सब ओर से प्रकाशस्वरूप यश वा धन के (आ) सब प्रकार से (अभि, एतु) सम्मुख हूजिये और (अर्वाङ्) नीचे से बहुत सुखवाले सम्पूर्ण प्रकाशस्वरूप यश वा धन को (सम्) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिये तथा (पुरस्तात्) आगे से बहुत प्रकार सुख जिस में उस प्रकाशस्वरूप यश वा धन को अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये वैसे (ते) आप का (शुष्मः) उत्तम बलयुक्त (वृषभः) बलिष्ठ (आ) सब ओर से प्राप्त होवे और आप हम लोगों के लिए इसको (धेहि) धारण करिये ॥९॥

भावार्थः—हे राजा और प्रजाजनो ! जैसे सब दिशाओं से सम्पूर्ण जनों को सुख और यश प्राप्त होवें वैसे यत्न का अनुष्ठान करिये ॥९॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

नृ॒वत्त॑ इन्द्र॒ नृत॑माभिरू॒ती वं॑सी॒महि॑ वा॒मं श्रोम॑तेभिः ।
ईक्षे॒ हि वस्व॑ उ॒भय॑स्य राजन्धा॒ रत्नं॒ महि॑ स्थू॒रं बृ॒हन्त॑म् ॥१०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले (राजन्) विद्या और विनय से प्रकाशमान जैसे हम लोग (ते) आप के (नृतमाभिः) अति उत्तम मनुष्य विद्यमान जिन में उन (ऊती) रक्षण आदिकों से (नृवत्) मनुष्यों के तुल्य (वामम्) प्रशंसा करने योग्य कर्म का (वंसीमहि) विभाग करें और (श्रोमतेभिः) सुनाने योग्य वचनों से (उभयस्य) दोनों राजा और प्रजा में वर्तमान (वस्वः) धन का (ईक्षे) मैं दर्शन करता हूं वैसे आप (बृहन्तम्) बड़े (महि) आदर करने योग्य (स्थूरम्) स्थिर (रत्नम्) सुन्दर धन को (हि) ही (धाः) धारण करिये ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—राजजनों तथा प्रजाजनों और राजा को चाहिये कि प्रयत्नों से प्रशंसित विद्या और वहुत धन की निरन्तर वृद्धि करें ॥१०॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो हम लोग (इह) इस राज्यकर्म में जिस को (नूतनाय) नवीन (अवसे) रक्षण आदि के लिए (मरुत्वन्तम्) श्रेष्ठ मनुष्य विद्यमान जिस के उस (वृषभम्) अतिश्रेष्ठ पूर्णबल वाले (वावृधानम्) अत्यन्त वृद्धि को प्राप्त होते हुए (अकवारिम्) नहीं विद्यमान हैं शब्द करते हुए शत्रु जिस के उस (दिव्यम्) सुन्दर (शासम्) पक्षपात का त्याग करके शासन करने वाले (विश्वासाहम्) सम्पूर्ण कष्ट को सहने वाले (उग्रम्) तेजस्वी (सहोदाम्) बल देने वाले (इन्द्रम्) शरीर आत्मा और राजशोभा से अत्यन्त शोभित का (हुवेम) हम स्वीकार करें (तम्) उसका आप लोग भी आह्वान कर स्वीकार कीजिये ॥११॥

भावार्थः—राजजनों और प्रजाजनों को चाहिये कि सब के रक्षण के लिये सब से उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले राजा का स्वीकार करें और वह राजा सब की सम्मति से सत्य न्याय का निरन्तर आचरण करे ॥११॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

जनं वज्रिन्महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि ।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥१२॥

पदार्थः—हे (वज्रिन्) अच्छे शस्त्र और अस्त्र के धारण करने वाले राजन्

आप (एभ्य.) इन (नृभ्यः) उत्तम प्रकार शिक्षित अग्रणी मनुष्यों के लिए उस (महि) महान् (मन्यमानम्) अभिमान करने वाले (जनम्) मनुष्य का (रन्धया) नाश करिये और (अधा) इस के अनन्तर (येषु) जिन के निमित्त (शूरसातौ) शूर वीर विभक्त होते हैं जिस संग्राम में उस में (अस्मि) हूं उसकी रक्षा कीजिये (हि) जिससे (पृथिव्याम्) विस्तीर्ण भूमि में (गोषु) पृथिवियों वा धनों में और (अप्सु) जलों वा प्राणों में (तनये) सन्तान के लिये जिन (त्वा) आपको (हवामहे) स्वीकार करते हैं वह आप (चित्) भी हम लोगों का सत्कार कीजिये ॥१२॥

भावार्थः—हे राजसम्बन्धी जनो ! जो मिथ्या अभिमान करने वाला जन श्रेष्ठ पुरुषों को पीड़ा देवे उसको दण्ड दीजिये और युद्धविद्या से सम्पूर्ण जनों का रक्षण करिये जिससे भूमि में आप लोगों की प्रशंसा प्रसिद्ध होवे ॥१२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वयं त एभिः पुरुहूत सख्यैः शत्रोःशत्रोरुत्तर इत्स्याम ।
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर राया मदेम बृहता त्वोताः ॥१३॥

पदार्थः—हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसित (शूर) वीर राजन् (वयम्) हम लोग (ते) आपके (एभिः) इन वर्त्तमान पहिले कहे गये और उत्तरों से प्रतिपादित (सख्यैः) मित्र के कर्मों से (शत्रोःशत्रोः) शत्रु शत्रु की सेनाओं का (घ्नन्तः) नाश करते हुए (उत्तरे) विजय के अनन्तर समय में (स्याम) प्रकट होवें और (उभयानि) राजा और प्रजाजन में वर्त्तमान (वृत्राणि) धनों को प्राप्त होकर आपकी (बृहता) बड़ी (राया) राज्यलक्ष्मी से तथा (त्वोताः) आप से पालना किये हुए (इत्) ही (मदेम) आनन्द को प्राप्त होवें ॥१३॥

भावार्थः—जो राजा और राजप्रजाजन मित्र के सदृश होवें तो सम्पूर्ण शत्रुओं को जीत कर बड़ी राज्यलक्ष्मी से प्रकाशित होवें ॥१३॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा और प्रजाजनों के कृत्य वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में उन्नीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्रयोदशर्चस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ आर्च्यनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ । ३ । ७ । १२ पङ्क्तिः । ४ । ६ भुरिक्पङ्क्तिः । १३ स्वराट्पङ्क्तिः । १० निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५ । ८ । ९ । ११ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तेरह ऋचा वाले बीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मंत्र में अब मनुष्यों को किस की इच्छा करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

द्यौर्न य इ॑न्द्रा॒भि भूमा॒र्यस्त॒स्थौ र॒यिः शव॑सा पृ॒त्सु जना॑न् ।
तं नः॑ स॒हस्र॑भरमुर्व॒रा॒सां द॒द्धि सू॑नो सहसो वृत्र॒तुर॑म् ॥१॥

पदार्थः—हे (सहसः) बल से (सूनो) श्रेष्ठ पुत्र (इन्द्र) अत्यन्त श्रेष्ठ धन से युक्त (यः) जो (द्यौः) बिजुली वा सूर्य के (न) समान प्रकाशित (रयिः) धन है इसका (अर्यः) स्वामी (शवसा) बल से (पृत्सु) संग्रामों में (जनान्) मनुष्यों के प्रति (अभि) सन्मुख (तस्थौ) वर्त्तमान होवे (तम्) उस (सहस्रभरम्) असंख्य को धारण करने वाले (वृत्रतुरम्) जैसे मेघों को वैसे शत्रुओं का नाश करता है जिससे उस तथा (उर्वरासाम्) बहुत श्रेष्ठ भूमियों में श्रेष्ठ विजय को (नः) हम लोगों के लिये (दद्धि) दीजिये जिससे हम लोग लक्ष्मीवान् (भूम) होवें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य बिजुली के सदृश पराक्रमी और सूर्य के सदृश प्रतापयुक्त हुए संग्रामों में साहसिक होवें वे विजयवान् होवें ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दि॒वो न तुभ्य॒मन्वि॑न्द्र स॒त्रासु॒र्यं॑ दे॒वेभि॑र्धायि॒ विश्व॑म् ।
अहिं॒ यद्वृ॒त्रम॒पो व॑व्रि॒वांसं॒ हन्नृ॑जीषि॒न् विष्णु॑ना सचा॒नः ॥२॥

पदार्थः—हे (ऋजीषिन्) सरल धर्म से युक्त (इन्द्र) राजन् जैसे सूर्य (विष्णुना) व्यापक जगदीश्वर वा बिजुली से (सचानः) मिलने वाला (यत्) जिसको (अपः) जलों के (वव्रिवांसम्) विभाग करते हुए (वृत्रम्) आच्छादन करने वाले (अहिम्) मेघ को (हन्) नाश करता है वैसे (देवेभिः) विद्वानों से (तुभ्यम्) आप के लिये (सत्रा) सत्य से (दिवः) कामना करते हुए (न) जैसे वैस (विश्वम्) सम्पूर्ण (असुर्यम्) मूर्ख पापी जनों का ऐश्वर्य (अनु, धायि) पीछे धारण किया जाता है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य आठ

महीने में जल के रसों को आकर्षण के द्वारा हरण करके चातुर्मास्य में वर्षाता है वैसे ही राजा आठ महीने करों को ग्रहण कर अभय की वृष्टि करके प्रजा का पालन करे ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तुर्वन्नोजीयान् तवसस्तवीयान् कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः ।

राजाभवन् मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो शत्रुओं का (तुर्वन्) नाश करता हुआ (ओजीयान्) अतिशय पराक्रमयुक्त जन (तवसः) बल का (तवीयान्) अत्यन्त प्रशंसित (कृतब्रह्मा) किया धन वा अन्न जिसने वह (वृद्धमहाः) बड़े सहायक जिसके ऐसा (इन्द्रः) ऐश्वर्य का बढ़ाने वाला (राजा) प्रकाशमान राजा (अभवत्) होवे और (सोम्यस्य) रस आदिकों में हुए (मधुनः) मधुर आदि गुणों से युक्त और (विश्वासाम्) सम्पूर्ण (पुराम्) नगरियों के (दर्त्नुम्) नाश करने वाले की (आवत्) रक्षा करे उसी को राजा करिये ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो पराक्रमी, बली जनों में बली, विद्वानों में विद्वान्, वृद्ध जनों में वृद्ध और जीतते हुए भृत्यों का सत्कार करने वाला होवे उसी को राज्य में अभिषिक्त करके सुखी हूजिये ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ ।

वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत्किं चन प्र ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अन्न देने वाले राजन् आप जो (पणयः) व्यवहारों के जानने वाले (शतैः) सौ संख्या से परिमित वा असंख्य (वधैः) वधों से (अत्र) इस राजव्यवहार में (अपद्रन्) नहीं द्रवित होते हैं और (अर्कसातौ) अन्न आदि के विभाग में (दशोणये) दश न्यून जिससे उस (कवये) विद्वान् के लिये (अशुषस्य) शोषण से रहित (शुष्णस्य) बलिष्ठ की (मायाः) बुद्धियों को (पित्वः) अन्न आदि (किम्, चन) कुछ भी (न) नहीं (प्र, अरिरेचीत्) अच्छे प्रकार अलग करता है उनका सत्कार करिये अर्थात् प्रशंसा करिये ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो धर्ममार्ग का त्याग करके उन्मार्ग में चलते हैं उनको राजा नित्य दण्ड देवे और जो दश इन्द्रियों से अधर्म का त्याग करके धर्म का आचरण करते हैं उनका निरन्तर सत्कार करे ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ।।

महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्णः ।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ।।५।।

पदार्थः—हे राजन् आप से (वज्रस्य) शस्त्र और अस्त्रविशेष के (पतने) गिरने में जो (द्रुहः) द्रोह करने वालों को (अप, पादि) दूर करे जिससे (महः) अत्यन्त (विश्वायु) सम्पूर्ण जीवन (धायि) धारण किया जाय और (यत्) जो (इन्द्रः) शत्रुओं का नाशक सेना का स्वामी (सारथये) वाहन चलाने वाले के लिये (सरथम्) वाहन के सहित वर्त्तमान को (सूर्यस्य) सूर्य के (सातौ) उत्तम प्रकार विभाग में (कुत्साय) वज्र के प्रहार के लिये (उरु) बहुत (कः) करे (सः) वह (शुष्णः) बलिष्ठ का सम्बन्धी सत्कार करने योग्य है ।।५।।

भावार्थः—राजा को चाहिये कि द्रोह आदि दोषों का त्याग करके ब्रह्मचर्य आदि से सम्पूर्ण जनों को अधिक अवस्था वाले करके रथ आदि सेना के अंगों को सूर्य के तुल्य प्रकाशित करके सत्य और असत्य के विभाग से प्रजाजों का पालन करे ।।५।।

फिर राजा को किसका निषेध करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ।।

प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ।।६।।

पदार्थः—जो राजा (मदिरम्) मादक द्रव्य और (अंशुम्) वैद्यकविद्या की रीति से विभाग किये गये का सेवन करते हुए और (नमुचेः) नहीं करने वाले (दासस्य) सेवक के (शिरः) मस्तक को (श्येनः) बाज पक्षी (न) जैसे वैसे (प्र, मथायन्) अत्यन्त मथन करता हुआ (अस्मै) इसके लिये कठिन शिष्य को (नमीम्, नम्र (साप्यम्) कर्म के अन्त करने वाले को (ससन्तम्) सोते हुए को करके (प्र, आवत्) रक्षा करे और (राया) धन से (स्वस्ति) सुख को (सम्, पृणक्) उत्तम प्रकार पूर्ण करता है तथा (इषा) अन्न आदि से सुख को (सम्) अच्छे प्रकार पूर्ण करता है वह सम्राट् होने के योग्य होवे ।।६।।

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—राजाओं का यह उचित कर्म है कि जो मादक द्रव्य का सेवन करें उनको अत्यन्त दण्ड देके यथायोग्य सत्कार से अप्रमादियों का सत्कार करें, वे साम्राज्य करने को योग्य होवें ।।६।।

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

वि पिप्रोरहिंमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः ।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥७॥

पदार्थः – हे (वज्रिन्) शस्त्र और अस्त्रों को धारण करने वाले (सुदामन्) उत्तम प्रकार से दाता राजन् आप (अहिमायस्य) मेघ का ढांप लेना जैसे वैसे कपटता जिसकी उस (पिप्रोः) व्यापक की (दृळ्हाः) दृढ़ (पुरः) नगरियों को (शवसा) बल से (न) नहीं (वि, दर्दः) विशेष नष्ट कीजिये और जो (अप्रमृष्यम्) नहीं सहने योग्य (दात्रम्) दान को (ऋजिश्वने) सरलता आदि गुणों के बढ़ानेवाले (दाशुषे) दान देने योग्य पुरुष के लिए (दाः) दीजिये (तत्) उस (रेक्णः) धनदान को हम लोगों के लिये भी दीजिये ॥७॥

भावार्थः—राजा को चाहिये कि छल आदि का त्याग कर और अपने नगरों को दृढ़ करके कभी छेदन न करे और सुपात्र के लिये दान दे और कुपात्र का तिरस्कार करे ॥७॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः ।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥८॥

पदार्थः—हे राजन् जो (स्वभिष्टिसुम्नः) उत्तम प्रकार अभीष्ट सुखवाले (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त राजा (सः) वह आप (द्योतनाय) प्रकाश के लिये (वेतसुम्) व्यापनशील (दशमायम्) दश अंगुलियों के तुल्य प्रमाण जिस का उस (दशोणिम्) दश प्रकार से परित्याग जिसका और (तूतुजिम्) बल से युक्त (तुग्रम्) ग्रहण करने वाले (इभम्) हाथी को (इयध्यै) प्राप्त होने के लिये (मातुः) माता से (न) जैसे वैसे (सीम्) सब ओर से (शश्वत्) निरन्तर (आ, उप, सृजा) समीप प्रकट कीजिये ॥८॥

भावार्थः—वही राजा धनवान् होवे कि जो दश इन्द्रियों से उत्तम कर्म और विज्ञान को बढ़ा के अभीष्ट सुख की निरन्तर उन्नति करे और माता के सदृश प्रजाओं का पालन करे ॥८॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् ॥९॥

पदार्थः—(सः) वह प्रताप से युक्त राजा (वृत्रहणम्) जिस से मेघ का नाश करता है उस (वज्रम्) वज्र को (गभस्तौ) किरण में सूर्य जैसे वैसे (बिभ्रत्) धारण करता हुआ (अप्रतीतः) शत्रुओं से नहीं जाना गया (स्पृधः) स्पर्द्धा करते हैं जिनमें उनका और (ईम्) जल का (वनते) सेवन करता है और (हरी) घोड़े जैसे धारण और आकर्षण को वैसे वा (अस्तेव) प्रेरणा करने वाला सारथि जैसे वैसे (गर्त्ते) गृह में (अधि, तिष्ठत्) स्थित होता है वैसे आप जो (वचोयुजा) वचन से युक्त करते वे दोनों (ऋष्वम्) बड़े (इन्द्रम्) विजुली के सदृश राजा को (वहतः) पहुंचाते हैं उन को वाहनों में युक्त करिये ॥९॥

भावार्थः—राजा सदा ही अपने विचार को छिपावे जब कार्य सिद्ध होवे तभी लोग प्रकट जानें और शस्त्रों को धारण कर सेनाओं को उत्तम प्रकार शिक्षा देकर बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त होवे ॥९॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः ।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥१०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य और सुख के देनेवाले (ते) आप के (अवसा) रक्षण आदि से हम लोग (सप्त) सात (पुरः) नगरियों का (सनेम) विभाग करें और जैसे (पूरवः) मनुष्य (एना) इस (अवसा) रक्षण आदि से और (यज्ञैः) श्रेष्ठ व्यवहाररूप यज्ञों से (स्तवन्ते) स्तुति करते हैं इससे (नव्यः) नवीनों में हुए आप उनसे स्तुति करिये और (यत्) जो (शर्म) गृह और (शारदीः) शरत्काल में हुई (दासीः) सेविकाओं को प्राप्त होके (पुरुकुत्साय) बहुत शस्त्रवाले के लिए (शिक्षन्) शिक्षा देता हुआ दुःखों को (प्र, दर्त्) नष्ट करता है और शत्रुओं को (हन्) मारता है वह सब से सत्कार करने योग्य है ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे राजा विनय से वर्त्तमान है वैसे ही सब वर्त्तमान होवें और पुरुषार्थ से सुन्दर पुरों का निर्माण करके उन सब ऋतुओं में सुख देने वालों में निवास करते हुए दुःखों को दूर फेकें ॥१०॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय ।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ॥११॥

पदार्थः हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त (पूर्व्यः) प्राचीनों से किये गए विद्वान् (त्वम्) आप (वृधः) वृद्धि करनेवालों की (वरिवस्यन्) सेवा करते

हुए (उशने) कामना करते हुए (काव्याय) विद्वानों से उत्तम प्रकार शिक्षित के लिए दाता (भूः) हूजिये (स्वम्) अपने (नपात्म्) पतन से रहित (अनुदेयम्) पश्चात् देने योग्य (नववास्त्वम्) नवीन निवास को (महे) बड़े (पित्रे) पालन करने वाले के लिये (ददाथ) दीजिये और नहीं (परा, पीछे लीजिये अर्थात् न लौटाइये ॥११॥

भावार्थः—जो राजा सब का यथायोग्य सत्कार करता है वह पिता के तुल्य होता है ॥११॥

फिर वह क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीॠणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥१२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सब के पालन करने वाले (धुनिः) शत्रुओं के कम्पाने वाले (त्वम्) आप (धुनिमतीः) शब्द करती हुई प्रजायें (सीराः) नाड़ियें तथा (अपः) जल और (स्रवन्तीः) नदियां (समुद्रम्) समुद्र वा अन्तरिक्ष को (न) जैसे वैसे (स्वस्ति) सुख को (ऋणोः) प्रसिद्ध कीजिये और हे (शूर) वीर (यत्) जो आप (तुर्वशम्) शीघ्र वश को प्राप्त होने वाले (यदुम्) यत्नशील मनुष्य का (प्र, अति, पर्षि) प्रसिद्ध अत्यन्त पालन करते हो वह आप हम लोगों को (पारया) दुःख से पार कीजिये ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे राजन्! आप मंगल और सुख के देने वाले शब्दों से युक्त और आनन्दित प्रजाओं को करें और जैसे नदियां समुद्र को प्राप्त होकर स्थिर होती हैं वैसे प्रजायें आपको प्राप्त होकर निश्चल होवें ऐसा करिये ॥१२॥

फिर वह क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप् ।
दीदयदित्तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्य१र्कैः ॥१३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुख के धारण करने वाले (तव) आपके (या) जो (धुनीचुमुरी) शब्द और भोग (आजौ) संग्राम में (विश्वम्) सम्पूर्ण का पालन करते हैं और जो (सस्तः) शयन करता हुआ (ह) निश्चय से (सिष्वप्) सोता हुआ (दीदयत्) प्रकाश करता है और जो (दभीतिः) हिंसा करने और (इध्मभृतिः) काष्ठ का धारण करने वाला (पक्थी) पाचक (अर्कैः) अन्नों से और (सोमेभिः) ऐश्वर्य और ओषधि आदिकों से (सुन्वन्) उत्पन्न करता हुआ (तुभ्यम्) आपके लिए

(इत्) ही सुख को देवे (त्यत्) उसको (ह) निश्चय से और उन सबों का सदा सत्कार करिये ॥१३॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप बहुत बोलने वाले, भोक्ता, वीर जनों का सत्कार करके सेनाओं को प्रबल करिये ॥१३॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छठे मण्डल में बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्यैकविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ९ । १० । १२ विराट् त्रिष्टुप् । ४ । ५ । ६ । ११ त्रिष्टुप् । ३ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ८ स्वराड् बृहतीच्छन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब बारह ऋचावाले इक्कीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में फिर उस राजा का किस अर्थ आश्रय करें इस विषय को कहते हैं ॥

इमा उं त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते ।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या ॥१॥

पदार्थः- हे (वीर) भय से रहित जो (पुरुतमस्य) अतिशय बहुत गुणों से विशिष्ट (कारोः) कारीगर के (हव्यम्) देने योग्य को (हवन्ते) ग्रहण करते हैं और जो (इमाः) ये वर्तमान प्रजायें (हव्याः) देने योग्य (धियः) बुद्धियों को और जो (रथेष्ठाम्) रथ में स्थित होने वाले (नवीयः) अतिशय नवीन (अजरम्) वृद्धावस्था से रहित शरीर को (रयिः) धन और (वचस्या) वचन में हुआ (विभूतिः) ऐश्वर्य (ईयते) प्राप्त होता है उनसे युक्त (त्वा) आपका (उ) तर्क वितर्क से हम लोग सत्कार करें ॥१॥

भावार्थः—जो पुरुष प्रशंसा करने योग्य बुद्धि का स्वीकार करके उससे वृद्धावस्था और रोग से रहित अत्यन्त लक्ष्मी और ऐश्वर्य को प्राप्त होता है उस शिल्पीजनप्रिय राजा का सत्कार करना चाहिये ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

तमु स्तुष इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम् ।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥२॥

पदार्थः—हे राजन् (यः) जो (विद्वान्ः) जानता हुआ (गीर्भिः) वाणियों से (गिर्वाहसम्) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी के प्राप्त कराने वाले (यज्ञवृद्धम्) यज्ञ में आदर करने योग्य विद्वान् और (विवम्) कामना करते हुए (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यप्रद जन को प्राप्त होकर (पृथिव्याः) पृथिवी और (यस्य) जिस (पुरुमायस्य) बहुत कपट से युक्त दुष्ट जन की (मह्ना) महिमा से (महित्वम्) महिमा को (अति, रिरिचे) बढ़ाता है और जिसकी आप (उ) तर्क वितर्क से (स्तुषे) प्रशंसा करते हो (तम्) उस जन का हम लोग स्वीकार करें ॥२॥

भावार्थः– जो मनुष्य अत्यन्त ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले सूर्य के सदृश प्रकाशमान राजा को सत्य का उपदेश करें वे महिमा को प्राप्त होकर दुःख से अतिरिक्त होते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार ।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥३॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर जो आप (सूर्येण) सूर्य से (तमः) रात्रि जैसे वैसे ज्ञानप्रकाश से (अवयुनम्) अज्ञानान्धकार को नष्ट (चकार) करते हैं और (वयुनवत्) बुद्धि के सदृश और बुद्धि का (ततन्वत्) विस्तार करते हुए हैं (सः) (इत्) वही सेवा करने योग्य हैं । हे (स्वधावः) बहुत अन्न से युक्त (मर्ताः) मनुष्य (अमृतस्य) मरणरहित जगदीश्वर के (ते) आप के सम्बन्ध में (धाम) धारण करते जिससे उसको मिलाने की इच्छा करते हुए (कदा) कब (न) नहीं (मिनन्ति) नष्ट करते हैं अर्थात् दोष के कारण को दूर करते हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य अहिंसा धर्म का स्वीकार कर और विज्ञान बढ़ाय के परमेश्वर की प्राप्ति की चिकीर्षा करते हैं वे विस्तीर्ण सुख को प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर मनुष्यों को विद्वानों के प्रति क्या क्या पूंछना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु ।
कस्ते यज्ञो मनसे शं वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुःखविदारक विद्वन् (यः) जो (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य का करने वाला (कुह) (स्वित्) कहीं (ता) उन को (चकार) करता है और (कासु) किन (विक्षु) प्रजाओं में (सः) वह (कम्) सुख को और (जनम्) मनुष्य को (आ, चरति) आचरण करता अर्थात् प्राप्त होता है और (ते) आपके (वराय)

श्रेष्ठ (मनसे) विचारशील चित्त के लिए (कः) कौन (यज्ञः) मेल करना रूप यज्ञ (शम्) सुख को करता है और (कः) कौन (अर्कः) आदर करने योग्य और (कतमः) कौन सा (सः) वह (होता) दाता होता है इन के उत्तरों को कहिये ॥४॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! उन बुद्धि की वृद्धियों को कौन कर सके, उपकार के लिये बुद्धियों में कौन चलता है, कौन आदर करने योग्य और कौन दाता होता है इन प्रश्नों के समाधानों को कहिये ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

इ॒दा हि त॑ वेवि॑षतः पुरा॒जाः प्र॒त्नास॑ आ॒सुः पु॑रुकृ॒त्सखा॑यः ।
ये म॑ध्य॒मास॑ उ॒त नूत॑नास उ॒ताव॒मस्य॑ पुरुहूत बोधि ॥५॥

पदार्थः—हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसा किये गए (पुरुकृत्) बहुतों को करने वाले प्रतापयुक्त राजन् (ये) जो (हि) निश्चित (राजाः) पूर्व प्रकट हुए (प्रत्नासः) प्राचीन (मध्यमासः) मध्य अवस्था में हुए और (उत) भी (नूतनासः) नवीन (ते) आपके (सखायः) मित्र (आसुः) हैं उनको (इदा) इस समय तथा (वेविषतः) व्याप्त हुए और (उत) भी (अवमस्य) आधुनिक के सम्बन्धियों को आप (बोधि) चेतन करिये ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो आप लोगों के साथ मैत्री का आचरण करते हैं वे वृद्ध, वृद्धतर तथा मध्यम और भी तुल्य अवस्थावाले होवें उनमें मित्रता की निश्चय रक्षा करिये ऐसा होने पर निश्चित राज्य की वृद्धि होती है, यह ही पूर्वमन्त्र में कहे हुए प्रश्नों का उत्तर है ॥५॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

तं पृ॒च्छन्तोऽव॑रासः॒ परा॑णि प्र॒त्ना त॑ इन्द्र॒ श्रुत्यानु॑ येमुः ।
अर्चा॑मसि वीर ब्रह्मवाहो॒ यादे॒व वि॒द्म तात्त्वा॑ म॒हान्त॑म् ॥६॥

पदार्थः—हे (वीर) शूरता आदि गुणों से युक्त (इन्द्र) विद्वन् जो (अवरासः) आधुनिक जिज्ञासु अर्थात् ब्रह्म को जानने की इच्छा करने वाले जन (तम्) उन (महान्तम्) महाशय (त्वा) आपको (पृच्छन्तः) पूंछते हुए हैं (ते) वे (पराणि) उत्तर काल में वर्त्तमान और (प्रत्ना) पूर्वकाल में स्थित (श्रुत्या) वेद में प्रतिपादित विषयों को (अनु, येमुः) अनुकूल नियम में लाते हैं उनका हम लोग (अर्चामसि) सत्कार करते हैं और हे (ब्रह्मवाहः) धन और धान्य को प्राप्त कराने वाले विद्वान् हम लोग

(यावत्) जितनों को (विप्र) जानें (तावत्) उतनों (एव) ही को आप लोग जानिये ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोगों को मित्रतापूर्वक मेल कर तथा पूर्व और पर विज्ञानों को प्राप्त होकर अत्यन्त सुख को प्राप्त होना चाहिये ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अभि त्वा पाजो रक्षसो वि तस्थे महि जज्ञानमभि तत्सु तिष्ठ ।
तव प्रत्नेन युज्येन सख्या वज्रेण धृष्णो अप ता नुदस्व ॥७॥

पदार्थः—हे (धृष्णो) दृढ़ राजन् (तव) आपका जो (महि) बड़ा (जज्ञानम्) सुखजनक (पाजः) बल (रक्षसः) दुष्ट मनुष्यों के (अभि, वि, तस्थे) सन्मुख विशेषकर स्थित होता है (तत्) वह (त्वा) आपको प्राप्त होवे और आप उसके (अभि, सु, तिष्ठ) सम्मुख स्थित हूजिये उस (प्रत्नेन) प्राचीन (युज्येन) युक्त करने के योग्य (सख्या) मित्र और (वज्रेण) शस्त्र और अस्त्रों के समूह से आप (ता) उन शत्रु-सेनाओं को (अप, नुदस्व) दूर करिये ॥७॥

भावार्थः—हे राजजन ! जो राजपुरुष दुष्टों के लिये दण्ड देते और श्रेष्ठों का पालन करते हैं उनका आप सत्कार करिये ॥७॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

स तु श्रुधीन्द्र नूतनस्य ब्रह्मण्यतो वीर कारुधायः ।
त्वं ह्या३पिः प्रदिवि पितॄणां शश्वद्बभूथ सुहव एष्टौ ॥८॥

पदार्थः—हे (वीर) दुष्टों के नाश करने और (कारुधायः) शिल्पी विद्वानों के धारण करने वाले (इन्द्र) न्याय के स्वामी विद्वन् (त्वम्) आप (नूतनस्य) नवीन की (एष्टौ) सब प्रकार से यज्ञक्रिया में (सुहवः) उत्तम प्रकार ज्ञान और विज्ञान वाले (शश्वत्) निरंतर (बभूथ) हूजिये (सः) वह आप (तु) तो (हि) निश्चय से (पितॄणाम्) अर्थात् पालकों की (प्रदिवि) प्रकृष्ट कामना में (आपिः) व्याप्त होनेवाले हुए (ब्रह्मण्यतः) धनप्राप्ति की इच्छा करते हुओं का सत्कार करिये और उनके वचनों को (श्रुधि) सुनिये ॥८॥

भावार्थः—वही उत्तम विद्वान् है जो ज्ञानवृद्ध जनों से विद्यासम्बन्धी वचनों को सुन के उत्तम शिल्पिजनों की रक्षा करके सदा अपेक्षित पदार्थ की प्राप्ति से सुखी होता है ॥८॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रोतये वरुणं मित्रमिन्द्रं मरुतः कृष्वावसे नो अद्य ।
प्र पूषणं विष्णुमग्निं पुरंधिं सवितारमोषधीः पर्वताँश्च ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप (अद्य) इस समय (नः) हम लोगों को (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (वरुणम्) उदान और (मित्रम्) प्राण वायु (इन्द्रम्) बिजुली को (मरुतः) पवनों को (प्र, कृष्व) अच्छे प्रकार करिये और (अवसे) ज्ञान आदि के लिये (पूषणम्) पुष्टि करनेवाले समान वायु (विष्णुम्) व्यापक व्यान और धनञ्जय वायु को वा हिरण्यगर्भ परमात्मा को और (अग्निम्) प्रसिद्ध अग्नि (पुरन्धिम्) सब को धारण करनेवाले सूत्रात्मा (सवितारम्) सूर्यमण्डल (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधियों और (पर्वतान्, च) मेघों वा पर्वतों को (प्र) अच्छे प्रकार करिये ॥९॥

भावार्थः—हे विद्वान् जनो ! हम लोगों के लिये जैसे पृथिवी आदि पदार्थ सुखकारक होवें वैसे करिये ॥९॥

फिर मनुष्यों को किसकी उपासना करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

इम उं त्वा पुरुशाक प्रयज्यो जरितारो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
श्रुधी हवमा हुवतो हुवानो न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति ॥१०॥

पदार्थः—हे (प्रयज्यो) यत्न से मेल करने को योग्य (पुरुशाक) बहुत सामर्थ्य से युक्त परमेश्वर जो (इमे) ये (जरितारः) विद्या के लाभ की स्तुति करनेवाले जन (अर्कैः) सत्कारों से (त्वा) आपका (अभि, अर्चन्ति) सब ओर से सत्कार करते हैं । हे (अमृत) नाशरहित जिन (त्वत्) आप से (त्वावान्) आपके सदृश (अन्यः) अन्य दूसरा (न) नहीं (अस्ति) है वह (हुवानः) प्रशंसा करते हुए आप उन (हुवतः) स्तुति करते हुओं को और (हवम्) उच्चारित शब्द को (आ) सब प्रकार (श्रुधि) सुनिये (उ) और उनका स्वीकार करिये ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन परमात्मा की स्तुति और प्रार्थना करके उपासना करते हैं वैसे आप लोग भी उपासना करो और उसके सदृश वा उससे अधिक कोई भी नहीं है ऐसा जानो ॥१०॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

नू म आ वाचमुप याहि विद्वान् विश्वेभिः सूनो सहसो यजत्रैः ।
ये अग्निजिह्वा ऋतसाप आसुर्ये मनुं चक्रुरुपरं दसाय ॥११॥

पदार्थः—हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) सन्तान (विद्वान्) विद्यायुक्त जन आप (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को (उप, आ, याहि) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये और (ये) जो (अग्निजिह्वाः) अग्नि के समान तीव्र प्रज्वलित जिह्वा जिनकी (ऋतसापः) सत्य से युक्त होने वाले (आसुः) होते हैं उन (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (यजत्रैः) मिलने योग्यों के साथ (नु) शीघ्र मेरे उपदेश को प्राप्त हूजिये और (ये) जो (उपरम्) मेघ को जैसे वैसे (दसाय) शत्रुओं के नाश होने के लिये (मनुम्) विचारशील मनुष्य को (चक्रुः) करते हैं उनका सदा सत्कार करिये ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्य सदा ही [सत्यवादी विद्वानों को उत्तम प्रकार मिलें और प्रतिज्ञा से सत्य का आचरण करें ॥११॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स नो॑ बोधि पुर ए॒ता सु॒गेषू॒त दु॒र्गेषु॑ पथि॒कृद्वि॒दा॑नः ।
ये अश्र॑मास उ॒रवो॒ वहि॑ष्ठा॒स्तेभि॑र्न इन्द्रा॒भि व॑क्षि॒ वाज॑म् ॥१२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुख और ऐश्वर्य के प्राप्त करानेवाले (सः) वह आप (पुरएता) अग्रगामी (सुगेषु) सुगम व्यवहारों में (उत) और (दुर्गेषु) दुःख से प्राप्त होने योग्यों में (पथिकृत्) मार्ग को करने वाले (विदानः) जानते हुए (नः) हम लोगों को (बोधि) जानें और (ये) जो (अश्रमासः) थकावट से रहित (उरवः) बहुत (वहिष्ठाः) अतिशय पहुंचानेवाले हैं (तेभिः) उनके साथ (नः) हम लोगों के वा हम लोगों के लिये (वाजम्) विज्ञान को (अभि, वक्षि) प्राप्त कराइये ॥१२॥

भावार्थः—वही विद्वान् है जो सबका मङ्गलकारी, स्वयं धर्ममार्ग को प्राप्त होकर औरों को धर्ममार्ग में चलनेवाले करे, जो सदा सत्संग करता है वही सब से उत्तम होकर विज्ञान देने को योग्य होता है ॥१२॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, ईश्वर और राजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में इक्कीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकादशर्चस्य द्वाविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ७ भुरिक्पङ्क्तिः । ३ स्वराट् पङ्क्तिः । १० पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ४ । ५ त्रिष्टुप् । ६ । ८ विराट्त्रिष्टुप् । ९ । ११ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले बाईसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मंत्र में अब मनुष्यों को किसकी उपासना करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।

यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के मध्य में (एकः) अकेला (इत्) ही (हव्यः) स्तुति करने और ग्रहण करने योग्य है (तम्) उस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य को देनेवाले का (आभिः) इन (गीर्भिः) वाणियों से मैं (अभि, अर्चे) सब प्रकार से सत्कार करता हूं और (यः) जो (वृषभः) श्रेष्ठ (वृष्ण्यावान्) बल आदि बहुत प्रियगुणों से युक्त (सत्यः) तीनों कालों में अबाध्य (सत्वा) सर्वत्र स्थित (पुरुमायः) बहुतों को रचने वाला (सहस्वान्) अत्यन्त बल से युक्त हुआ (पत्यते) स्वामी के सदृश आचरण करता है उसका सत्कार करता हूं उस परमेश्वर का आप लोग सत्कार करिये ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अद्वितीय, सबसे उत्तम, सच्चिदानन्द-स्वरूप, न्यायकारी और सब का स्वामी है उसका त्याग करके अन्य की उपासना कभी न करो ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।

नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस (नक्षद्दाभम्) प्राप्त दोषों के नाश करने और (ततुरिम्) दुःख से पार करने वाले (पर्वतेष्ठाम्) मेघ में वर्त्तमान बिजुली के समान शुद्धस्वरूप और (अद्रोघवाचम्) द्रोहरहित वाणी वाले (शविष्ठम्) अत्यन्त बल से युक्त परमात्मा का (नः) हम लोगों के (पूर्वे) पहिले (नवग्वाः) नवीन गमन वाले (विप्रासः) बुद्धिमान् और (सप्त) सात संख्या से युक्त अर्थात् पांच प्राण और मन बुद्धि इनके सदृश वर्त्तमान (पितरः) पितृजन (अभि) सन्मुख (वाजयन्तः) बुद्धि को देते हुए उपदेश देते हैं (उ) और (तम्) उसकी आप लोग उपासना करो और (मतिभिः) मननशील मनुष्यों से यही सेवा करने योग्य है ।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम योगीजन जिसकी योग से उपासना करते हैं उसी का योगाभ्यास से ध्यान करो ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तमींमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयुरजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥३॥

पदार्थः—हे (हरिवः) अच्छे मनुष्यों के सहित वर्त्तमान विद्वान् (यः) जो (अस्कृधोयुः) व्यापक (अजरः) जरा आदि रोग से रहित (स्वर्वान्) बहुत सुख विद्यमान जिसमें वह वर्त्तमान है (तम्) उसको (मादयध्यै) आनन्दित करने के लिये (आ, भर) सब प्रकार से धारण करिये और (तम्) उसको (अस्य) इस (पुरुवीरस्य) बहुत वीरों को प्राप्त कराने वाले (नृवतः) अच्छे मनुष्य विद्यमान जिसमें उस (पुरुक्षोः) बहुत ध्यान से युक्त (रायः) धन के (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य के देनेवाले की हम लोग (ईमहे) याचना करते हैं ॥३॥

भावार्थः—सब मनुष्य विज्ञान आदि की प्राप्ति के लिये परमात्मा से ही याचना करें ॥३॥

फिर विद्वान् क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥४॥

पदार्थः—हे (दुध्र) दुःख से धारण करने योग्य और (पुरुहूत) बहुतों से सत्कार किये गये (पुरूवसो) बहुत धनों से युक्त (इन्द्र) विद्या और उपदेश के करने वाले (यदि) जो आप (नः) हम लोगों के लिये (तत्) उसको (वि, वोचः) विशेष कहिये जिसको (चित्) निश्चित (ते) आपके (पुरा) पहिले भी (जरितारः) विद्या और गुणों की स्तुति करने वाले (सुम्नम्) सुख का (आनशुः) भोग करते हैं (ते) आपका (कः) कौन (असुरघ्नः) दुष्ट कर्मकारियों का नाश करने वाला (भागः) अंश (खिद्वः) दीन और (किम्) कौन (वयः) जीवन है इसको आप कहिये ॥४॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! आपको वह विज्ञान हम लोगों के लिये देने योग्य है जिससे विद्वान् जन आनन्द करते हैं ॥४॥

फिर स्त्री कैसे पति का ग्रहण करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यस्य) जिसके (इषे) अन्न आदि के लिये (गीः) वाणी

(तुविग्राभम्) बहुतों को ग्रहण करने (तुविकूर्मिम्) बहुत कामों के करने और (रभोदाम्) वेग से युक्त बल के देनेवाले (तुम्रम्) ग्लानि से युक्त जन को और (गातुम्) भूमि को (अच्छ) अच्छे प्रकार (नक्षते) प्राप्त होती है (तम्) उस (वज्रहस्तम्) शस्त्र और अस्त्रों से युक्त हाथों वाले (रथेष्ठाम्) रथ में स्थित होते हुए (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवान् पुरुष को (पृच्छन्ती) पूछती हुई (वेपी) बुद्धिवाली और (वखरी) वचन शक्तिवाली स्त्री (नू) निश्चय होवे उसका हम लोग भी आश्रयण करें ॥५॥

भावार्थः– कन्या को चाहिये कि सब बातों को पूंछकर हृदयप्रिय पति का स्वीकार करे ॥५॥

फिर स्त्री और पुरुष परस्पर कैसे वर्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥६॥

पदार्थः—हे (स्वतवः) अपना बल जिसके ऐसे (विरप्शिन्) महागुणों से युक्त (स्वोजः) उत्तम पराक्रमयुक्त प्रतापी आप (अया) इस (मायया) बुद्धि से जैसे वैसे स्त्री से रमण करिये वह स्त्री (वावृधानम्) बढ़े हुए (त्यम्) उस पति को प्राप्त होकर (मनोजुवा) मन के सदृश वेगयुक्त (पर्वतेन) मेघ से बिजुली जैसे वैसे रमण करे और ये दोनों (धृषता) ढीठपन से (रुजः) रोगों का नाश करके (ह) निश्चय से युक्त (अच्युता) अविनाशी से (वीळिता) स्तुतिरूप (वि) विशेष करके (दृळ्हा) दृढ़ (चित्) भी कर्म्मों को करें ॥६॥

भावार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों प्रेम से मिल के गृहाश्रम के कृत्यों में हर्ष से, रोग निवृत्ति तथा प्रीति से मेल करके सन्तानों को उत्पन्न करो ॥६॥

फिर मनुष्यों को किसका नित्य ध्यान करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत् परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥७॥

पदार्थः– हे मनुष्यो जो (अनिमानः) परिमाण से रहित (सुवह्मा) उत्तम प्रकार चलाने वाला (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त जगदीश्वर (नव्यस्या) अतिशय नवीन (धिया) बुद्धि वा कर्म से (वः) आप लोगों और (नः) हम लोगों के लिये (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुर्गहाणि) दुःख से प्राप्त होने योग्यों को नाश करने वाले धर्मयुक्त कर्मों को (परितंसयध्यै) चारों ओर से सुशोभा करने के लिए (अति, वक्षत्)

अत्यन्त प्राप्त करावे (तम्) उस (शविष्ठम्) अत्यन्त बलवान् (प्रत्नम्) पुरातन को (प्रत्नवत्) प्राचीन के सदृश मान कर हम लोग सेवा करें और (सः) वह भी हम लोगों का गुरु हो ॥७॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा हम सब लोगों के सम्पूर्ण दुःखों को बुद्धिदान से दूर करके अधर्माचरण से संकोचित करता है उस परमात्मा का आत्मा से निरन्तर ध्यान करो ॥७॥

फिर विद्वान् जनों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।

तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान् ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥८॥

पदार्थः—हे (वृषन्) बलिष्ठ विद्वन् आप (शोचिषा) प्रकाश से (विश्वतः) सब ओर से (दिव्यानि) श्रेष्ठ गुण कर्म और स्वभाव वाले वस्तुओं (अन्तरिक्षा) अन्तरिक्ष के सहचारी (पार्थिवानि) पृथिवी में हुए पदार्थों को (आ, दीपयः) सब प्रकार से प्रकाशित कीजिए और (ब्रह्मद्विषे) ईश्वर वा वेद से द्वेष करने वाले और (द्रुह्वणे) द्रोह करने वाले (जनाय) जन के लिये सब प्रकार से (तपा) सन्ताप करिये और जो सज्जनों को सन्तापयुक्त करते हैं (तान्) उनको (शोचय) शोक कराइये तथा (क्षाम्) पृथिवी को (अपः, च) और जलों को प्रकाशित करिये ॥८॥

भावार्थः—हे विद्वान् जनो ! आप लोग पृथिवी आदि पदार्थों को जानकर अन्यों को जनाइये और दुष्ट जनों को उपदेश से पवित्र करिये ॥८॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसन्दृक् ।

धिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥९॥

पदार्थः—हे (अजुर्य) जीर्ण अवस्था से रहित (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले (राजा) प्रकाशमान आप (भुवः) पृथिवी और (पार्थिवस्य) पृथिवी में हुए (जगतः) संसार और (दिव्यस्य) शुद्ध कामना करने योग्य सुन्दर (जनस्य) मनुष्य के (त्वेषसन्दृक्) न्यायप्रकाश को देखने वा दिखानेवाले होते हुए (दक्षिणे) दाहिने (हस्ते) हाथ में (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्र को (धिष्व) धारण करिये और (विश्वाः) सम्पूर्ण (मायाः) बुद्धियों को (वि, दयसे) विशेष करके दीजिये ॥९॥

भावार्थः—वही राजा उत्तम है कि जो न्यायशील, धार्मिक, जितेन्द्रिय

होकर सम्पूर्ण जगत् का पिता के समान पालन करके सम्पूर्ण विद्याओं को अच्छे प्रकार देता है ॥९॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ संयतमिन्द्र णः स्वस्तिं शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥१०॥

पदार्थः—हे (वज्रिन्) शस्त्र और अस्त्र के धारण करने वाले (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के करने वाले आप (यया) जिससे (दासानि) शूद्र के कुलों को (आर्याणि) द्विजकुल और (सुतुका) उत्तम प्रकार बढ़ने वाले (नाहुषाणि) मनुष्यसम्बन्धी (वृत्रा) धनों को (आ) सब प्रकार (करः) करती है उस (अमृध्राम्) नहीं हिंसा करने वाली (बृहतीम्) बड़ी सेना को (शत्रुतूर्याय) शत्रुओं के नाश के लिए करिए और उससे (नः) हम लोगों के लिए (संयतम्) किया है संयम जिसके निमित्त उस (स्वस्तिम्) सुख को करिये ॥१०॥

भावार्थः—हे राजन्! आप सत्यविद्या के दान और उपदेश से शूद्र के कुल में उत्पन्न हुओं को भी द्विज करिये और सब प्रकार से ऐश्वर्य को प्राप्त कराय तथा शत्रुओं का निवारण करके सुख की वृद्धि कीजिये ॥१०॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥११॥

पदार्थः—हे (प्रयज्यो) अत्यन्त यज्ञ करने वाले (पुरुहूत) बहुतों से आदर किए गए (वेधः) बुद्धियुक्त (सः) वह आप (देवः) विद्वान् के (न) समान (विश्ववाराभिः) सब से स्वीकार करने योग्य गमनों से और (आभिः) इन (नियुद्भिः) निश्चित गमन वाले घोड़ों से जैसे वैसे (नः) हम लोगों को (आ, गहि) प्राप्त हूजिए और (याः) जिन रीतियों को (अदेवः) विद्वान् जन से भिन्न (न) नहीं (आ, वरते) अच्छे प्रकार स्वीकार करता है (मद्र्यद्रिक्) मेरे सन्मुख हुए आप (तूयम्) शीघ्र (आ, याहि) प्राप्त हूजिए ॥११॥

भावार्थः—जो रीति विद्वानों की है उस को अविद्वान् जन नहीं स्वीकार करते हैं इससे विद्वानों और अविद्वानों का पृथक् प्रस्थान है यह जानना चाहिए ॥११॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, ईश्वर, राजा और प्रजा के धर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छठे मण्डल में बाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३ । ८ । ९ निचृत्त्रिष्टुप् ५ । ६ । १० त्रिष्टुप् । ७ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब दश ऋचावाले तेईसवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मंत्र में इन्द्रविषय को कहते हैं ॥

सुत इत्त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।
यद्वा युक्ताभ्यां मघवन्हरिभ्यां विभ्रद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाशक जो (त्वम्) आप (स्तोमे) प्रशंसा निमित्त (ब्रह्मणि) धन में (निमिश्लः) अत्यन्त मिले हुए (सोमे) ऐश्वर्य के (सुते) उत्पन्न होने पर (शस्यमाने) प्रशंसा करने योग्य और (उक्थे) सुनने वा कहने यो[ग्य] में (युक्ताभ्याम्) जुड़े हुए (हरिभ्याम्) हरणशील मनुष्यों से (बाह्वोः) भुजाओं [में] (वज्रम्) वज्र को (बिभ्रत्) धारण करते हुए (यासि) जाते हो और (यत्) [जो] (वा) वा हे (मघवन्) बहुत धनों से युक्त (इन्द्र) परमैश्वर्य्यप्रद आप प्राप्त होते [हो] वह आप (इत्) ही सत्कार करने योग्य हैं ॥१॥

भावार्थः—जो राजा नहीं प्रमाद करते, पिता के सदृश प्रजाओं [का] पालन करते और शस्त्रों का धारण करते हुए तथा दुष्टों का निवारण कर[ते] हुए हैं उनका राज्य स्थिर होता है ॥१॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

यद्वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ ।
यद्वा दक्षस्य विभ्युषो अविभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥२॥

पदार्थः हे (इन्द्र) दुष्ट जनों के नाश करने वाले (यत्) जो आप (पार्ये) पार में हुए (दिवि) कामना करने योग्य के निमित्त (वृत्रहत्ये) मेघ के हनन [में] वा (शूरसातौ) शूर जनों से विभाग करने योग्य संग्राम में (सुष्विम्) उत्तम प्र[जा] उत्पन्न करने वाले की (अवसि) रक्षा करते हो और (यत्) जो (वा) वा (दक्षस्य) बली (विभ्युषः) भय करने वाले का (अविभ्यत्) भय करते हैं वह

हे (इन्द्र) प्रतापी जन (शर्धतः) बलयुक्त से (दस्यून्) हठ से दूसरे के पदार्थ ग्रहण करने वालों का (अरन्धयः) नाश करिये ॥२॥

भावार्थः—वही राजा होने को योग्य होवे कि जो युद्ध में अपनी सेना की रक्षा करे और शत्रु तथा चोरों का नाश करे ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती ।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (प्रणेनीः) अत्यन्त न्याय करने और (पाता) रक्षा करने वाला (उग्रः) तेजस्वी (इन्द्रः) ऐश्वर्यकारी राजा (सुतम्) उत्पन्न किए गए (सोमम्) सोमलता आदि ओषधियों के रस को और (जरितारम्) स्तुति करने वाले को करता है वह हम लोगों का राजा हो और जो (उ) तर्क वितर्क से (वीराय) पराक्रमयुक्त (सुष्वये) उत्तम प्रकार अच्छे पदार्थों के उत्पन्न करने वाले (स्तुवते) स्तुति करते हुए (कीरये) स्तुति करनेवाले के लिए (दाता) दाता और (कर्ता) कार्य करने वाला (लोकम्) लोक को (वसु) और धन को (चित्) भी करता है वह हम लोगों का अग्रणी (अस्तु) हो ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! उसी को राजा मानो जो सम्पूर्ण शास्त्रों का जानने वाला, पुरुषार्थी, धार्मिक और इन्द्रियों को वश में रखने वाला होवे ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः ।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥४॥

पदार्थः—हे (स्तोमवाहाः) समूहों को धारण करने वाले मनुष्यो जो (हरिभ्याम्) अध्यापक और उपदेशक मनुष्यों के साथ (इयन्ति) इतने (सवना) ऐश्वर्यकारक कर्म्मों को (गन्ता) प्राप्त होने वाला (वज्रम्) अस्त्रविशेष को (बभ्रिः) पुष्ट करने वा धारण करने तथा (सोमम्) सोमलता के रस का (पपिः) पान करने और (गाः) गौओं को (ददिः) देने वाला (गृणतः) स्तुति करते हुओं को और (हवम्) प्रशंसा करने योग्य को (श्रोता) सुनने वाला (सर्ववीरम्) सम्पूर्ण वीर जिससे उस (नर्यम्) मनुष्यों में श्रेष्ठ (वीरम्) वीरजन को (कर्त्ता) करने वाला होवे उसको राजा मानो ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सम्पूर्ण राजकर्मों में निपुण हो उसको राजा करके न्याय से राज्य का पालन करो ॥४॥

फिर मनुष्यों को परस्पर कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषयको कहते हैं ॥

अस्मै वयं यद्वावान तद्विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थेन्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्या (यः) जो (प्रदिवः) अत्यन्तपन से कामना करते हुओं (नः) हम लोगों और (अपः) कर्म को (कः) करता है और (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त जन के लिये (उक्था) प्रशंसा करने योग्य कर्मों को (शंसत्) कहे और (यथा) जैसे (ब्रह्म) धन (वर्धनम्) बढ़ता है जिस से वह (असत्) होवे और (अस्मै) पूर्व मन्त्र में कहे हुए (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिये (वयम्) हम लोग (यत्) जिसको (विविष्मः) व्याप्त होते हैं (तत्) उसका जो (वावान) उत्तम प्रकार सेवन करता है वैसे उसको (सुते) उत्पन्न किये गए (सोम) ऐश्वर्य में हम लोग (स्तुमसि) स्तुति करते हैं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो धन के सदृश सब के बढ़ानेवाले हैं वे अत्यन्त ऐश्वर्य को प्राप्त होकर प्रयत्न करते हैं ॥५॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत्त इन्द्र मतिभिर्विविष्मः ।
सुते सोमे सुतपाः शन्तमानि रान्द्र्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) प्रतापयुक्त ! जितने (वर्धनानि) वृद्धि करनेवाले (ब्रह्माणि) धनों को आप (चकृषे) करते हो (तावत्) उतने (ते) आपके लिये (मतिभिः) उत्तम मनुष्यों के साथ हम लोग (विविष्मः) व्याप्त होवें तथा (सुतपाः) पदार्थों की रक्षा करने वाला तथा (हि) निश्चय कर हम लोग (सुते) उत्पन्न हुए (सोमे) ऐश्वर्य में (यज्ञैः) धनप्रापक व्यवहारों से निश्चय कर (शन्तमानि) अत्यन्त सुखकारक (रान्द्र्या) रमण करने योग्यों को (वक्षणानि) प्राप्त कराने वाले (क्रियास्म) करें ॥६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि उत्तम आचरण को देख के वैसा ही आचरण करें और सब मिल के ऐश्वर्य को प्राप्त होकर न्याय से प्रजा की रक्षा करें ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स नो॑ बोधि पुरो॒ळाशं॒ ररा॑णः पिबा॒ तु सोमं॒ गोऋ॑जीकमिन्द्र ।

एदं ब॒र्हिर्यज॑मानस्य सीदो॒रुं कृ॑धि त्वाय॒त उ॑ लो॒कम् ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य के धारण करने वाले (सः) वह आप (पुरोळाशम्) उत्तम प्रकार संस्कारयुक्त अन्न को (रराणः) देते हुए (गोऋजीकम्) इन्द्रिय सरल जिससे उस (सोमम्) बड़ी ओषधियों के रस को (पिबा) पीजिये और (नः) हम लोगों को (बोधि) जानिये और (यजमानस्य) यजमान के (इदम्) इस (बर्हिः) उत्तम आसन पर (आ, सीद) सब प्रकार से विराजिये तथा (उरुम्) बहुत (लोकम्) देखने योग्य को (उ) और (त्वायतः) आपकी कामना करते हुओं को (तु) तो (कृधि) करिये ॥७॥

भावार्थः—जो लोग रोग के हरनेवाले भोजनों और जलपानादि को देते हैं और परोपकार करते हैं वे यहां प्रशंसा करने योग्य हैं ॥७॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

स म॑न्दस्वा॒ ह्यनु॒ जोष॑मुग्र॒ प्र त्वा॑ य॒ज्ञास॑ इ॒मे अ॑श्नुवन्तु ।

प्रेमे ह॒वासः॑ पुरुहू॒तम॒स्मे आ त्वे॒यं धीरव॑स इन्द्र यम्याः ॥८॥

पदार्थः—हे (उग्र) तेजस्विन् (इन्द्र) विद्या और क्रिया में कुशल जिस बुद्धि से (इमे) ये (यज्ञासः) सम्पूर्ण धर्मयुक्त व्यवहार (त्वा) आप को (अश्नुवन्तु) प्राप्त हों और जो (इमे) ये (हवासः) दान, आदान और अदन नामक अर्थात् देना लेना खाना (पुरुहूतम्) बहुतों से प्रशंसित (त्वा) आपको (प्र) प्राप्त हों सो (इयम्) यह (धीः) बुद्धि (अस्मे) हम लोगों की वा हम लोगों में (अवसे) रक्षा के लिए हो आप उसको (आ, यम्याः) अच्छे प्रकार विस्तारिये तथा हम लोगों में (प्र) अच्छे प्रकार दीजिए उनके साथ (हि) जिससे (जोषम्) प्रीति को (अनु) अनुकूल (सः) वह आप (मन्दस्वा) आनन्द करिये ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिन कर्मों और जिस बुद्धि से विज्ञान और आनन्द बढ़ते हैं उनकी आप लोग वृद्धि करिये ॥८॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

तं वः॑ सखायः॒ सं यथा॑ सु॒तेषु॒ सोमे॑भि॒रीं पृणता भो॒जमिन्द्र॑म् ।

कु॒वित्तस्मा॒ असति नो॒ भरा॑य॒ न सुष्वि॒मिन्द्रो॒ऽव॑से मृधाति ॥९॥

पदार्थः—हे (सखायः) मित्र जनो (यथा) जैसे (सोमेभिः) ऐश्वर्य की प्रेरणा

आदि क्रियाओं से (सुतेषु उत्पन्न हुओं में (वः) आप लोग और (नः) हम लोगों के (भराय) पालन के लिए (अवसे, रक्षण आदि के लिए जो (इन्द्रः) राजा (न) नहीं (मृधाति) हिंसा करे (तम्) उस (भोजम्) पालन करने वाले (सुष्विम्) उत्पन्न करने वा ऐश्वर्य करने वाले (इन्द्रम्) शत्रु के विनाश करने वाले राजा को आप लोग (सम्, पृणता) उत्तम प्रकार सुखी करिये (तस्मै) उसके लिए (ईम्) जल से (कुवित्) बड़ा (असति, होवे ॥९॥

भावार्थः— जो मनुष्य राग और द्वेष का त्याग करके परस्पर रक्षण करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥९॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यथा) जैसे (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य वाला जन (सुते) उत्पन्न हुए इस संसार में (सोमे) ऐश्वर्य में (इत्) निश्चय (भरद्वाजेषु) विज्ञान को धारण किए हुओं में (अस्तावि) स्तुति किया जाता है और जैसे (सूरिः) विद्वान् और (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त जन (जरित्रे) स्तुति करने वाले जन के लिए (विश्ववारस्य) सम्पूर्ण स्वीकार जिसमें उस (रायः) धन का (दाता) देने वाला (उत) निश्चय से (क्षयत्) निवास करे और (इत्) निश्चय कर (मघोनः) धन से युक्त जनों की रक्षा करता हुआ हो वह (एव) ही उस प्रकार का सुखी (असत्) होवे ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य इस संसार में धर्म-युक्त कर्म्म करते हैं वे सर्वदा स्तुति किये जाते हैं, जैसा देना प्रियकारक होता है वैसा लेना नहीं प्रियकारक होता है ॥१०॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में तेईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य चतुर्विंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ भुरिक् पङ्क्तिः । ३ । ५ । ६ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४ । ७ । निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप् । १० विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ९ ब्राह्मी बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः ॥

अब दस ऋचा वाले चौवीसवें सूक्त का प्रारम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में अब राजा को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।
अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थैर्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (इन्द्रे) ऐश्वर्य्यवान् पदार्थ में (श्लोकः) वाणी (वृषा) बलिष्ठ (मदः) आनन्दित (सचा) मेल किये हुए (सुतपाः) अच्छा तपस्वी (ऋजीषी) सरल गुण कर्म स्वभाव वाला (मघवा) न्याय से इकट्ठे किये हुए धन से युक्त (अक्षितोतिः) नित्य रक्षित (द्युक्षः) दीप्तिमान् (राजा) प्रकाश करता हुआ (उक्थैः) प्रशंसनीय कर्म्मों से (सोमेषु) ऐश्वर्य्यों में (उक्था) प्रशंसित कर्मों को (गिराम्) न्याय और विद्यायुक्त वाणियों के संबन्ध में (नृभ्यः) मनुष्यों के लिए जो (अर्चत्र्यः) सत्कार करती हुई प्रजा हैं उनका सुनने वाला हो वही राज्य करने योग्य हो यह जानो ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो उत्तम कामों को करके सत्यवादी, इन्द्रियों को जीतने वाला, पिता के समान प्रजापालक वर्त्तमान हो वही सर्वत्र प्रकाशित कीर्त्तिवाला हो ॥१॥

फिर राजा और प्रजाजनों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (ततुरिः) शत्रुओं का मारने वाला (वीरः) वीरता आदि गुणों से युक्त (नर्यः) मनुष्यों में श्रेष्ठ (विचेताः) अनेक प्रकार की बुद्धिवाला और (हवम्) प्रशंसा करने योग्य व्यवहार की (गृणतः) प्रशंसा करते हुओं के (श्रोता) विवाद विषयक वचनों का सुनने वाला (उर्व्यूतिः) पृथिवी की रक्षा जिससे (नराम्) मनुष्यों का अग्रणी (वसुः) वास कराने और (शंसः) प्रशंसा करने वाला (कारुधायाः) कारीगर धारण किये जावें जिससे वह (वाजी) विज्ञानवाला (स्तुतः) प्रशंसित हुआ (विदथे) संग्राम में (वाजम्) विज्ञान को (दाति) देता है उसकी आप लोग सेवा करो ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग जो मनुष्यों में उत्तम, अधिक बल और बुद्धियुक्त, यथार्थ का सुनने वाला तथा संग्राम में युद्धविद्या को देने वाला है उस ही का सदा सत्कार करो ॥२॥

फिर सूर्य और पृथिवी का कैसा वर्त्ताव है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः ।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यू३तयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥ ३॥

पदार्थः—हे (शूर) वीर पुरुष (पुरुहूत) बहुतों से आदर किये गये (इन्द्र) राजन् जैसे (ते) आपके (मह्ना) महत्त्व से (रोदस्योः) अन्तरिक्ष और पृथिवी के मध्य में (पूर्वीः) प्राचीन (वि, ऊतयः) विविध रक्षण आदि क्रियायें (चक्र्योः) पहियों की (अक्षः) धुरी के (न) समान (प्र, रुरुहुः) अच्छे प्रकार प्रकट होवें और हे (बृहन्) महान् (वृक्षस्य) वृक्ष की बढ़वार (नु) जैसे वैसे (ते) आपकी (वयाः) अवस्था (रिरिचे) प्रकट होती है उसको सब लोग जानें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जैसे पहियों की धारण करने वाली धुरी वृक्ष की शाखाओं के समान बढ़ती हैं और अन्तरिक्ष में स्थित होती हैं वैसे सूर्य के चारों ओर सम्पूर्ण भूगोल घूमते हैं और वैसे ही न्याय के मार्ग से प्रजायें चलती हैं ॥३॥

फिर राजा और प्रजा को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः संचरणीः ।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥४॥

पदार्थः—हे (पुरुशाक) बहुत सामर्थ्यवान् (इन्द्र) दुःख के नाश करने वाले (शचीवतः) बुद्धि और प्रजा से युक्त (ते) आपकी (गवामिव, स्रुतयः) गौओं की गतियों के सदृश (सञ्चरणीः) अच्छे प्रकार चलने वाली भूमियां (शाकाः) और सामर्थ्यवाली (वत्सानाम्) बछड़ों की (तन्तयः) विस्तृत पंक्तियों के (न) सदृश (ते) आप की प्रजा हैं, हे (सुदामन्) अच्छे नियमों में बंधे हुए जो (दामन्वन्तः) बहुत बन्धनों वाले होवें वे आप से (अदामानः) बन्धनरहित करने योग्य हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—वे ही राजाजन प्रशंसित प्रताप-वाले होते हैं जो अन्याय और पीड़ा आदि के बन्धन से प्रजाओं को छुड़ा कर धर्ममार्ग में चलाते हैं और जैसे बछड़ों की बढ़ानेवाली गौ होती हैं वैसे ही प्रजा के बढ़ानेवाले राजपुरुष हों ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अन्यद्द्य कर्वरमन्यदु श्वोऽसच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः ।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषार्यो वशस्य पर्येतास्ति ॥५॥

पदार्थः—जो (इन्द्रः) राजा (अद्य) आज (अन्यत्) अन्य (उ) और (श्वः) आने वाले दिन में (अन्यत्) अन्य (कर्वरम्) करने योग्य कर्म को (आचक्रिः) सब प्रकार से करने वाला (सत्) हुआ (मुहुः) वारं वार (असत्) होवे वह (च) और (अत्र) इस संसार में (नः) हम लोगों का (मित्रः) मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ (पूषा) पुष्टि करने वाला (अर्यः) स्वामी (च) और (वशस्य) वशवर्त्ती का (पर्येता) सब ओर से प्राप्त जन (अस्ति) है वह पूर्ण सुख वाला होता है ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो राजा प्रतिदिन वार वार सत्य कर्म का आचरण करता है वह सब के न्याय करने में पक्षपात का त्याग करके मित्र के सदृश होता है और सब इसके वश में होते हैं ॥५॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः ।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जंग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् जो (त्वत्) आप से रक्षित हुए (पर्वतस्य) पर्वत के (पृष्ठात्) पीठ से (आपः) जल (न) जैसे वैसे (उक्थेभिः) प्रशंसा करने योग्य कर्मों के अनुष्ठानों से और (यज्ञैः) अच्छे कर्मों के अनुष्ठानों से जिन (त्वा) आपको (गिर्वाहः) वाणियों को प्राप्त कराने वाले (अश्वाः) बड़े विद्वान्जन (वि) विशेष करके (अनयन्त) पहुंचाते हैं (तम्) उन आपको (आभिः) इन प्रत्यक्ष (सुष्टुतिभिः) उत्तम स्तुतियों से (वाजयन्तः) प्रसन्न कराते हुए शूरवीर जन (आजिम्) सङ्ग्राम को (न) जैसे वैसे (जग्मुः) प्राप्त होवें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे राजन् ! जैसे पर्वत के ऊपर वर्तमान जल शीघ्र जाकर जलाशय को प्राप्त होता है वैसे जो आपकी प्रजाओं के हित के चाहने वाले जन आपको प्राप्त होते हैं उनके सहित ही आप सदा उन्नत हूजिए ॥६॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो जिस (अस्य) इस जीव (वृद्धस्य) वृद्ध विद्वान् का (तनूः) शरीर (स्तोमेभिः) स्तुति करने के योग्यों और इन (उक्थैः) कहने के योग्य पदार्थों से (च) भी (शस्यमाना) प्रशंसा करने योग्य (चित्) भी (वर्धताम्) बढ़े

और (यम्) जिस (इन्द्रम्) परमात्मा को (शरदः) शरद् आदि ऋतुयें (न) नहीं (जरन्ति) जीर्ण करती हैं और (मासाः) चैत्र आदि महीने (न) नहीं जीर्ण करते हैं तथा (द्यावः) सूर्य आदि (न) नहीं (अवकर्शयन्ति) दुर्बल कर सकते हैं उस विद्वान् और परमात्मा का आप लोग सेवन करिये ॥७॥

भावार्थः—वही विद्वान् वृद्ध होकर वृद्धि को प्राप्त होता है जो सब को अच्छे बुद्धिमान्, सुशील तथा धर्म्माचरण करने वाले करता है और जो निर्विकार और जन्म मरण बुढ़ापा आदि दोषों से रहित परमात्मा की उपासना करते हैं वे प्रशंसा करने योग्य होते हैं ॥७॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न वीळवे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।

अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिदृष्वा गंभीरे चिद्भवति गाधमस्मै ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वानो जो (दस्युजूताय) दुष्टों के संग के लिये (वीळवे) प्रशंसा करने योग्य बल के लिए (न) नहीं (नमते) नम्र होता (स्थिराय) स्थिर गंभीर पुरुष के लिए (न) नहीं नम्र होता तथा (शर्धते) बल के लिए (न) न (स्तवान्) स्तुति करे जिस (इन्द्रस्य) बिजुली के (ऋष्वाः) बड़े (अज्राः) फेंकने वाले गुण (गिरयः) मेघों के (चित्) सदृश हैं (अस्मै) इस के लिए (गाधम्) ग्रहण किया परिमाण (गम्भीरे) गुरुपन में (चित्) भी (भवति) होता है उसकी प्रशंसा करिये ॥८॥

भावार्थः–जैसे बिजुलियां अथाह गुणवाली हैं वैसे ही परमात्मा के असंख्य गुण हैं और जो परमात्मा और यथार्थवक्ता जनों का त्याग करके दुष्टों का संग करते हैं वे सब काल में सुखी होते हैं ॥८॥

फिर उस ही विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतपावन्वाजान् ।

स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ॥९॥

पदार्थः—हे (अमत्रिन्) बहुत बल से युक्त और (सुतपावन्) उत्पन्न पदार्थों के पवित्र करने वाले आप (गम्भीरेण) गम्भीर और (उरुणा) बहुत से (नः) हम लोगों को (इषः) अन्न आदिक (यन्धि) दीजिए (उ) और (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (ऊर्ध्वः) ऊपर वर्तमान (अरिषण्यन्) नहीं हिंसा करते हुए (अक्तोः) रात्रि से (व्युष्टौ) प्रभातकाल में और (परितक्म्यायाम्) रात्रि में (वाजान्) विज्ञान आदिकों को (सु, प्र) अति उत्तम प्रकार (स्थाः) स्थित हूजिए ॥९॥

भावार्थः—जो यम और नियमों से युक्त हुए कार्य की सिद्धि के लिए दिन-रात्रि प्रयत्न करें वे उत्तम होते हैं ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सचंस्व नायमवंसे अभीकं इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चैनमरंण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥१०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् वा विद्वन् आप (अवसे) रक्षण आदि के लिए (अभीके) समीप में (नायम्) न्याय को (सचस्व) प्राप्त हूजिए (इतः) यहां से (वा) वा (रिषः) हिंसा करने वाले से (पाहि) रक्षा कीजिए और (एनम्) इसकी (अमा) गृह में और (अरण्ये) वन में (पाहि) रक्षा कीजिए (रिषः, च) और दुष्ट आचरण से भी, जिससे (सुवीराः) सुन्दर वीर जिन के ऐसे हम लोग (शतहिमाः) सौ वर्ष पर्यन्त (मदेम) आनन्द करें ॥१०॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन हैं वे दूर वा समीप में वर्त्तमान हुए न्यायाचरण और योगाभ्यास से वृद्धि को बढ़ाए हुए वस्ती और जङ्गलों में पुरुषार्थ से प्रजाजनों की रक्षा करें ॥१०॥

इस सूक्त में राजा, विद्वान् और ईश्वर के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में चौबीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ५ पङ्क्तिः । भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ७ । ८ । ९ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ । ६ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले पच्चीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अब राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

या तं ऊतिरंवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति ।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान्न उग्र ॥१॥

पदार्थः—हे (शुष्मिन्) प्रशंसित बल से युक्त (उग्र) तेजस्विन् (इन्द्र) न्यायाधीश राजन् (ते) आपकी (या) जो (अवमा) निकृष्ट-खराब और (या) जो (मध्यमा) मध्यम और (या) जो (परमा) उत्तम (ऊतिः) रक्षा (अस्ति) है

(ताभिः) उनसे (वृत्रहत्ये) मेघ के नाश के समान नाश जिसमें उस संग्राम में (नः) हम लोगों की (सु) उत्तम प्रकार (अवीः) रक्षा कीजिये (ऊ) और (एभिः) इन (वाजैः) वेग आदि उत्तम गुणों से (च) भी (महान्) बड़े हुए (नः) हम लोगों की रक्षा कीजिए ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! जो आप प्रजाओं की सब प्रकार से रक्षा करें तो प्रजा भी आपकी सब प्रकार से रक्षा करेगी ॥१॥

फिर सेना का स्वामी क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेना के स्वामी आप (आभिः) इन रक्षाओं वा सेनाओं से (मिथतीः) शत्रुओं की सेनाओं का नाश करते हुए (स्पृधः) संग्रामों की (अरिषण्यन्) नहीं हिंसा करते हुए (अमित्रस्य) शत्रु की सेनाओं को (मन्युम्) क्रोध करके (व्यथया) पीड़ा दीजिये और (आभिः) इन रक्षा और सेनाओं से (आर्याय) उत्तम जन के लिये (विश्वाः) सम्पूर्ण (अभियुजः) अभियुक्त होने और (विषूचीः) व्याप्त होने वाली (दासीः) सेविकाओं को और (विशः) प्रजाओं को (अव, तारीः) दुःख से पार करिए ॥२॥

भावार्थः—वे ही सेना के स्वामी सत्कार करने योग्य हैं जो अपनी सेना को उत्तम प्रकार शिक्षा दे तथा उत्तम प्रकार रक्षा कर और सत्कार करके युद्ध विद्या में चतुर करके डाकुओं और अन्यायकारी शत्रुओं को निवारण करके अच्छी प्रजाओं की निरन्तर रक्षा करें ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे ।
त्वमेषां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेना के स्वामी (त्वम्) आप (ये) जो (अर्वाचीनासः) इस काल में हुए (जामयः) पतिव्रता स्त्रियों के सदृश और (उत) भी (अजामयः) सौतियां जैसे वैसे शत्रु जन (वनुषः) संविभाग करने वालों को (युयुज्रे) युक्त होते अर्थात् मिलते हैं (एषाम्) इन शत्रुओं की (विथुरा) पीड़ा देने वाली (शवांसि) सेनाओं को (त्वम्) आप (जहि) नष्ट कीजिए और अपनी सेनाओं को (वृष्ण्यानि)

बलिष्ठ (कृणुहि) करिये और शत्रुओं को (पराचः) पराङ्मुख कीजिये अर्थात् हटाइये ॥३॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—वे ही मंत्री उत्तम हैं जो धार्मिक प्रजाओं की पुत्र के सदृश रक्षा करते हैं और दुष्टों को दण्ड देते हैं और अपनी सेनाओं को बढ़ाय के शत्रुओं की सेना को पराजित करते हैं ॥३॥

फिर राजा और मन्त्रीजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शूरो॑ वा॒ शूरं॑ वनते॒ शरी॑रैस्तनू॒रुचा॒ तरु॑षि॒ यत्कृ॒ण्वैते॑ ।
तो॒के वा॒ गोषु॒ तन॑ये॒ यद॒प्सु वि क्रन्द॑सी उ॒र्वरा॑सु॒ ब्रवै॑ते ॥४॥

पदार्थः—हे राजजनो जैसे (शूरः) शूरवीर पुरुष (तनूरुचा) शरीरों में हुई प्रीति से और (शरीरैः) शरीरों से (तरुषि) दुःख से पार करने वाले सङ्ग्राम में (शूरम्) शूरवीर जन का (वनते) आदर करता है (वा) वा दोनों (यत्) जिसको (कृण्वैते) करें और (क्रन्दसी) कोशते हुए (यत्) जो (तोके) शीघ्र उत्पन्न हुए (तनये) सुकुमार बालक के होने पर (उर्वरासु) पृथिवी आदि कारणों में (गोषु) वाणियों में (वा) अथवा (अप्सु) जलों में (वि, ब्रवैते) कहें वैसे आप लोग भी हूजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! जैसे सङ्ग्राम में शूरजन शूरवीरों का विभाग करके युद्ध करते हैं वैसे ही राजा और अमात्य श्रेष्ठ और अधमों का विभाग करके अधिकारों में युक्त करके आज्ञा देवे और जैसे खेती की विद्या से खेतीहारों को जनावे वैसे ही अपने सन्तानों को उत्तम शिक्षा से विद्या ग्रहण के लिये ब्रह्मचर्य में प्रवृत्त करावे ॥४॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न॒हि त्वा॒ शूरो॒ न तु॒रो न धृ॒ष्णुर्न त्वा॑ यो॒धो मन्य॑मानो यु॒योध॑ ।
इन्द्र॒ नकि॑ष्ट्वा॒ प्रत्य॑स्त्येषां॒ विश्वा॑ जा॒तान्य॒भ्य॑सि॒ तानि॑ ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेना के स्वामिन्! जैसे (त्वा) आपको (मन्यमानः) मानता हुआ (शूरः) शूरवीर जन (त्वा) आपसे (नहि) नहीं (युयोध) युद्ध करता और (न) न (तुरः) हिंसा वा शीघ्र करने वाला (न) न (धृष्णुः) ढीठ (न) और न (योधः) प्रतियोधा (त्वा) आप से (अभि) सब प्रकार से युद्ध करता है, किन्तु आप के (प्रति) प्रति कोई भी (नकिः) नहीं (अस्ति) है और (एषाम्) इन की जो (विश्वा) सम्पूर्ण (जातानि) प्रसिद्ध सेना हैं जिस कारण (तानि) उनको आप जीत कर जीतते हुए (असि) हैं इससे प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥५॥

भावार्थः—राजा और राजपुरुषों को चाहिये कि विशेष करके सेनाजनों से ऐसा पराक्रम और विज्ञान बढ़ावें जिससे कोई भी युद्ध करने की इच्छा न करे ॥५॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।

वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥६॥

पदार्थः—हे राजन् जो आप (उभयोः) दोनों अर्थात् प्रजा और सेना के मध्य में (पत्यते) स्वामी के सदृश आचरण करते हो (सः) वह आप (यदी) यदि (नृम्णाम्) मनुष्य रमते हैं जिसमें उस धन को (अयोः) मिलावें वा अलग करें और (वृत्रे) धन (वा) वा (महः) बड़े (नृवति) प्रशंसायुक्त नर विद्यमान जिसमें उस (क्षये) गृह में (व्यचस्वन्ता) व्याप्त होने वाले (वितन्तसैते) अत्यन्त युद्ध करें तो दोनों अर्थात् प्रजा और सेना के मध्य में एक विजय को प्राप्त होवे और (यदि, वा) अथवा जो (वेधसः) बुद्धिमान् के (समिथे) सङ्ग्राम में (हवन्ते) स्पर्द्धा करते हैं वे अवश्य विजय को प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो राजा पक्षपात का त्याग करके शत्रु और मित्र का सत्य न्याय करता है और सब अधिकारियों में धार्मिक, बुद्धिमान् जनों को रखता है और सब प्रकार से सेना में कुलीन, दृढ़, राजभक्तों को नियुक्त करता है वही सर्वदा विजयी होता है ॥६॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अध स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।

अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले राजन् (ये) जो (ते) आप के (अस्माकासः) हमारे (नृतमासः) अतिशय मुखिया और (सूरयः) विद्वान् जन (चर्षणयः) सम्पूर्ण व्यवहारों में चतुर मनुष्य (नः) हम लोगों के (पुरः) नगरों को (दधिरे) धारण करें और उनके (अर्यः) स्वामी होते हुए (अध) अनन्तर (त्राता) रक्षा करने वाले (भव) हूजिये और हे (इन्द्र) दुष्टों के नाश करने वाले (यत्) जिससे आप (एजान्) भयभीतों को कम्पाने वाले करिये और (उत) भी (वरूता) श्रेष्ठ (स्मा) ही हूजिए ॥७॥

भावार्थः—हे राजन् ! विश्वासयुक्त, कुलीन, मुख्य राज्य में हुए

जनों को इस राज्य और सेना के मध्य में रक्षा के निमित्त नियुक्त करिये और उनकी रक्षा निरन्तर करिये ॥७॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥८॥

पदार्थः—हे (यजत्र) अत्यन्त श्रेष्ठ (इन्द्र) शत्रुओं के नाश करने वाले राजन् आपको चाहिए कि (नृषह्ये) मनुष्यों से सहने योग्य संग्राम में (देवेभिः) विद्वानों के साथ (महे) बृहत् को (अनु, दायि) देवें और (ते) आपके (इन्द्रियाय) धन के लिए (ते) आपके (सत्रा) सत्य से (विश्वम्) सम्पूर्ण जगत् को (अनु) पश्चात् देवें और (वृत्रहत्ये) मेघ के नाश करने के समान सङ्ग्राम में (क्षत्रम्) राज्य वा धन को (अनु) पश्चात् देवें और (सहः) बल को (अनु) पश्चात् देवें और (ते) आपके मनुष्यों से सहने योग्य सङ्ग्राम में सुख को (अनु) पश्चात् देवें ॥८॥

भावार्थः—हे क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए जन ! आप उत्तम कर्मों को करिये और उनके साथ अनुकूल हुए उनका धन आदि से निरन्तर सत्कार करिए और सदा ही सत्य के उपदेशक विद्वानों के संग से सम्पूर्ण राजविद्या को जानकर निरन्तर प्रचार करिए ॥८॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सम्पूर्ण सुखों के देने वाले आप (स्पृधः) ईर्षा करते हुए (नः) हम लोगों को (समत्सु) संग्रामों में (एवा) ही (सम्, अजा) विशेष करके जनाइये और (अदेवीः) श्रेष्ठ गुणों से नहीं विशिष्ट (मिथतीः) नाश करती हुई शत्रुओं की सेनाओं को संग्रामों में (रारन्धि) नष्ट करिये और हे (इन्द्र) शत्रुओं के बल को दूर करने वाले (ते) आपकी (अवसा) रक्षा आदि से (वस्तोः) दिन के मध्य में (नूनम्) निश्चय से (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (उत) भी (भरद्वाजाः) शुद्ध विज्ञान को धारण किए हुए हम लोग विजय को (विद्याम) जानें ॥९॥

भावार्थः—जो राजा अच्छे योद्धा वीरों को प्रथम ही उत्तम प्रकार शिक्षा देकर युद्धों में प्रेरणा करता है उस सब प्रकार से रक्षा करने वाले राजा का सब शूरवीर जन आश्रय करते हैं ॥९॥

इस सूक्त में इन्द्र, शूरवीर, सेनापति और राजा के कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छठे मण्डल में पच्चीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य षड्विंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ पङ्क्तिः । २ । ४ भुरिक्पङ्क्तिः । ३ निचृत्पङ्क्तिः । ५ स्वराट्-पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ६ विराट्त्रिष्टुप् । ७ त्रिष्टुप् । ८ निचृत्त्रिष्टुप्-छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले छब्बीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

श्रुधी नं इन्द्र ह्वयांमसि त्वा महो वाजस्य सातौ वांवृषाणाः ।
सं यद्विशोऽयन्त शूरंसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहंन्दाः ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् (वावृषाणाः) बल को करते हुए (विशः) मनुष्य आदि प्रजा हम लोग (महः) बड़े (वाजस्य) वेग आदि गुणों से युक्त के (सातौ) शूरों का विभाग जिसमें उस सङ्ग्राम में (यत्) जिससे (त्वा) आपको (ह्वयामसि) जनावें तिस से आप (नः) हम लोगों के लिए वचनों को (श्रुधी) सुनिये और जो (शूरसातौ) शूरों का विभाग जिसमें उस सङ्ग्राम में (नः) हम लोगों को (सम्, अयन्त) प्राप्त होते हैं उस (पार्ये) पालन करने योग्य (अहन्) दिन में (उग्रम्) तेजस्वी को (अवः) रक्षण (दाः) दीजिये ॥१॥

भावार्थः—राजाओं को यह अति योग्य है कि प्रजा कहे उसको ध्यान से सुनें जिससे राजा और प्रजाजनों का विरोध न होवे और प्रतिदिन सुख बढ़े ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वां वाजी हंवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यंस्य सातौ ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुंत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यंन् ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुष्टों के नाश करने वाले जैसे (वाजिनेयः) ज्ञानवती का सन्तान और (वाजी) वेगयुक्त ज्ञानी जन (गध्यस्य) सबसे प्राप्त होने योग्य (वाजस्य) विज्ञान के (सातौ) उत्तम प्रकार विभाग में (त्वाम्) आपको (हवते) सुनावे वैसे (वृत्रेषु) धनों में (सत्पतिम्) श्रेष्ठों के पालन करने वाले (त्वाम्) आपको

में (महः) बड़ा (चष्टे) कहता हूँ और (गोषु) प्राप्त होने योग्य भूमियों में (युध्यन्) युद्ध करता हुआ (मुष्टिहा) मुष्टि से मारने वाला मारता हुआ घनों में (त्वाम्) आपको मैं (तरुत्रम्) पार करने वाला कहता हूं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! जहां-जहां प्रजाजन आपको प्राप्त होने की इच्छा करते हैं वहां-वहां आप उपस्थित हूजिये ॥२॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं क॒विं चो॑दयो॒ऽर्कसा॑तौ॒ त्वं कुत्सा॑य॒ शुष्णं॑ दा॒शुषे॑ वर्क् ।
त्वं शिरो॑ अम॒र्मणः॒ परा॑हन्नतिथि॒ग्वाय॒ शंस्यं॑ करि॒ष्यन् ॥३॥

पदार्थः—हे तेजस्विराजन् (त्वम्) आप (अर्कसातौ) अन्न आदि के विभाग में (कविम्) विद्वान् की (चोदयः) प्रेरणा करिये और (त्वम्) आप (कुत्साय) वज्र के लिए और (दाशुषे) दान करने वाले के लिए (शुष्णम्) बल को (वर्क्) काटते हो और (त्वम्) आप (अमर्मणः) नहीं विद्यमान मर्म जिसमें उसके (शिरः) शिर को (परा, अहन्) दूर करिये और (अतिथिग्वाय) अतिथियों को प्राप्त होने वाले के लिए (शंस्यम्) प्रशंसा करने योग्य कर्म को (करिष्यन्) करते हुए वर्तमान हो इससे आप सत्कार करने योग्य हो ॥३॥

भावार्थः—राजा विद्या और विनय आदि श्रेष्ठ गुणों से युक्त जनों को राजकार्यों से युक्त करे और उन्नति को करता हुआ विद्या आदि का दाता होकर प्रशंसा को प्राप्त होवे ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं रथं॒ प्र भ॑रो यो॒धमृ॒ष्वमावो॒ युध्य॑न्तं वृष॒भं दश॑द्युम् ।
त्वं तुग्रं॑ वेत॒सवे॒ सचा॑ह॒न्त्वं तुजिं॑ गृ॒णन्त॑मिन्द्र तूतोः ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेना के स्वामिन् (त्वम्) आप (रथम्) सुन्दर वाहन को (प्र, भरः) धारण करिये तथा (वृषभम्) बलिष्ठ (दशद्युम्) दश अंगुलियों से प्रकाश देने वाले और (योधम्) युद्ध करने वाले से (युध्यन्तम्) युद्ध करते हुए (ऋष्वम्) बड़े की (आवः) रक्षा करिये और (त्वम्) आप (वेतसवे) व्याप्त ऐश्वर्य वाले में (सचा) सम्बन्ध से (तुग्रम्) तेजस्वी को (अहन्) दूर करिये और (त्वम्) आप (गृणन्तम्) स्तुति करते हुए (तुजिम्) बलिष्ठ को (तूतोः) बढ़ाइये ॥४॥

भावार्थः—जो राजा रथ और युद्धकुशल वीरों को बढ़ाता है वह अत्यन्त सुख को प्राप्त होता है ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि ।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुख के देने वाले राजन् जिससे (त्वम्) आप (चित्राभिः) अद्भुत (ऊती) रक्षाओं से (तत्) उस (उक्थम्) प्रशंसनीय वचन को (बर्हणा) बढ़ने से (कः) करें और हे (शूर) शत्रुओं के नाश करने वाले (शता) सैकड़ों और (सहस्रा) हजारों का (प्र, दर्षि) नाश करते हो और (गिरेः) मेघ के (दासम्) सेवक और (शम्बरम्) कल्याण करने वाले का (अव, हन्) नाश करते हो और सूर्य जैसे वैरी नाश करते हो वह आप (दिवोदासम्) प्रकाश के समान उत्पन्न दानशील अर्थात् दान देने वाले की (प्र, आवः) रक्षा करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! आप सर्वदा प्रजा की वृद्धि, दुष्टों का नाश और विद्वानों की सेवा करो जिससे असंख्य सुख होवे ॥५॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् (त्वम्) आप (श्रद्धाभिः) सत्य की धारणाओं से और (सोमैः) ऐश्वर्यों से (मन्दसानः) आनन्द करते हुए (दभीतये) दुःख के नाश के लिए (चुमुरिम्) भोजन करने वाले को (सिष्वप) सुलाइये और (त्वम्) आप (शच्या) बुद्धि वा कर्म के (सचा) साथ (पिठीनसे) पिठी के सदृश नासिका जिसकी उसके लिए (रजिम्) पङ्क्ति (षष्टिम्) साठ (सहस्रा) हजार (दशस्यन्) देता हुआ जैसे सूर्य मेघ का (अहन्) नाश करता है वैसे शत्रुओं का हनन कीजिए ॥६॥

भावार्थः—हे राजन् ! सदा ही पूर्ण प्रीति और न्याय से प्रजापालन करो और हजारों धार्मिक विद्वानों को अधिकारों में स्थापित करके यश बढ़ाओ ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अहं चन तत्सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।
त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ॥७॥

पदार्थः—हे (शविष्ठ) बलिष्ठ और (सधवीर) तुल्य स्थान में वर्त्तमान वीर जन (इन्द्र) सुख के देने वाले (वीराः) वीर (नहुषा) मनुष्य विद्वान् (यत्) जिसकी (स्तवन्ते) प्रशंसा करते हैं (तत्) उसको (त्रिवरूथेन) तीन प्रकार के शीत उष्ण और वर्षा में सुखकारक गृह जिनके उन (त्वया) आपके और (सूरिभिः) विद्वानों के साथ (अहम्) मैं (आनश्याम्) प्राप्त होऊं और (चन) भी (तव) आपका जो (ज्यायः) प्रशंसा करने योग्य (सुम्नम्) सुख और (ओजः) पराक्रम है उसको प्राप्त होऊं ॥७॥

भावार्थः—जो विद्वानों के संग से पुरुषार्थी होकर प्रशंसा करने योग्य, धर्मयुक्त कर्म को करते हैं वे बली होकर उत्तम सुख को प्राप्त होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः ।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम् ॥८॥

पदार्थः—हे (महिन) बड़े श्रेष्ठ (इन्द्र) सब के सुख देने वाले (वयम्) हम लोग (ते) आपकी (अस्याम्) इस (द्युम्नहूतौ) धन वा यश से आह्वान जिसमें उसमें (प्रेष्ठाः) अतिशय प्रिय (सखायः) मित्र (स्याम) होवें और आप (प्रातर्दनिः) प्रातःकाल में देना जिनका वह (वृत्राणाम्) धर्म के आवरण करने वालों के (घने) नाश करने में (धनानाम्) धनों के (सनये) विभाग के लिये (श्रेष्ठः) अत्यन्त प्रशंसनीय (क्षत्रश्रीः) राज्य लक्ष्मीवान् (अस्तु) होवें ॥८॥

भावार्थः—जो राजा गुणग्राही, पुरुषार्थी, श्रेष्ठ जनों का पालन करने और दुष्ट जनों का निवारण करने वाला तथा सबका मित्र होवे उसके साथ सज्जनों को चाहिये कि मित्रता करें ॥८॥

इस सूक्त में इन्द्र, परीक्षक, श्रेष्ठ, राजा और प्रजा के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में छब्बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । १–७ इन्द्रः । ८ अभ्यावर्त्तिनश्चायमानस्यदानस्तुतिर्देवता । १ । २ स्वराट् पङ्क्तिः । ३ । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ । ७ । ८ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले सत्ताईसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में प्रश्नों को कहते हैं ॥

किम॑स्य॒ मदे॒ किम्व॑स्य पी॒ताविन्द्रः॒ किम॑स्य स॒ख्ये च॒कार ।
रणा॑ वा॒ ये नि॒षदि॒ किं ते अ॑स्य पु॒रा वि॑वि॒द्रे किमु॒ नूत॑नासः ॥१॥

पदार्थः—हे वैद्यराज (इन्द्रः) दुःख के नाश करने वाले ने (अस्य) इसके (मदे) आनन्द में (किम्) क्या (चकार) किया (अस्य) इसके (पीतौ) पान करने में (किम्) क्या (उ) ही किया (अस्य) इसके (सख्ये) मित्रपने में क्या किया और (ये) जो (वा) वा (निषदि) बैठते हैं जिसमें उस गृह में (रणाः) रमते हुए (अस्य) इसके (पुरा) सन्मुख (किम्) क्या (विविद्रे) जानते हैं और (किम्) क्या (उ) और (नूतनासः) नवीन जन जानते हैं वे (किम्) क्या अनुष्ठान करते हैं ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में सोमलता आदि के रस के पानविषयक प्रश्न हैं उनके उत्तर अगले मन्त्र में जानने चाहियें ॥१॥

अब किस-किस द्रव्य का सेवन करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सद॑स्य॒ मदे॒ सद्व॑स्य पी॒ताविन्द्रः॒ सद॑स्य स॒ख्ये च॑कार ।
रणा॑ वा॒ ये नि॒षदि॒ सत्ते अ॑स्य पु॒रा वि॑वि॒द्रे सदु॒ नूत॑नासः ॥२॥

पदार्थः—हे जिज्ञासु जनो (इन्द्रः) पूर्ण विद्यावाला वैद्य (अस्य) इस सोमलता आदि बड़ी ओषधिसमूह के (मदे) आनन्द में (सत्) प्रमाद से रहित सत्य ज्ञान (चकार) करे और (अस्य) इसके (पीतौ) पान करने में (सत्) प्रमाद से रहित सत्य ज्ञान को (उ) भी करे और (अस्य) इस के (सख्ये) मित्रपन में (सत्) प्रमादरहित सत्य ज्ञान को करे (ये, वा) अथवा जो (निषदि) बैठते हैं जिसमें उस गृह अर्थात् बैठक में (रणाः) रमते हुए (अस्य) इसके (सत्) प्रमादरहित सत्य ज्ञान को (विविद्रे) प्राप्त होते हैं (ते) वे (पुरा) पहिले (नूतनासः) नवीन जन (सत्) प्रमादरहित सत्यज्ञान को (उ) ही प्राप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थः—मनुष्य लोग मादक द्रव्य के सेवन का त्याग करके सर्वदा बुद्धि, बल, आयु और पराक्रम के बढ़ाने वालों का सेवन करें जिससे सदा ही सुख बढ़े ॥२॥

फिर मनुष्यों को किसका ध्यान करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन्मघवत्त्वस्य विद्म ।
न राधसोराधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते ॥३॥

पदार्थः—हे (मघवन्) न्याय से इकट्ठे किये हुए धन से युक्त (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले जिन (ते) आपकी (महिमनः) महिमा का और (समस्य) तुल्यता का कोई (नु) भी (नहि) नहीं (ददृशे) देखा जाता है तथा हम लोग (मघवत्त्वस्य) बहुत धन से युक्तपने के तुल्य कुछ भी (न) नहीं (विद्म) जानें और (नूतनस्य) नवीन (राधसोराधसः) धन धन के तुल्य (नकिः) नहीं देखा जाता है और (ते) आपका (इन्द्रियम्) इन्द्रिय (न) नहीं देखा जाता है उनकी उपासना को हम लोग करें ॥३॥

भावार्थः–हे मनुष्यो ! जिसकी महिमा के समान महिमा, ऐश्वर्य-सामर्थ्य के समान सामर्थ्य और स्वरूप नहीं विद्यमान है उसी सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, जगदीश्वर का निरन्तर ध्यान करो ॥३॥

फिर राजा और प्रजा को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एतत्त्यत्त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः ।
वज्रस्य यत्ते निहतस्य शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य के समान राजन् (परमः) श्रेष्ठ आप (यत्) जिसको (ददार) विदीर्ण करते हैं (त्यत्) उस (एतत्) इसको (ते) आपकी (वज्रस्य) बिजुली के समीप से (निहतस्य) गिराये गए का (इन्द्रियम्) मन (अचेति) जनाता है (येन) जिससे (वरशिखस्य) श्रेष्ठ शिखा वाले (ते) आपका (शेषः) शेष है और आप (अवधीः) नाश करें और बिजुली (चित्) जैसे (शुष्मात्) बल और शोषण से (स्वनात्) शब्द से भय देती है वैसे ही आप दुष्टों को भयभीत करिये ॥४॥

भावार्थः–इस मन्त्र में उपमालं०—जो राजा बिजुली के समान पराक्रमी, विज्ञान को बढ़ाने वाला, न्याय के व्यवहार में सूर्य के सदृश प्रकाशित होता है वही राजाओं में शिरोमणि समझना चाहिये ॥४॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन् ।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन् पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (शेषः) अवशिष्ट (इन्द्रः) सूर्य (वृचीवतः) अविद्या का छेदन प्रशंसित जिसके उस (वरशिखस्य) श्रेष्ठ शिखा वाले के समान मेघ के (अभ्यावर्तिने) चारों ओर घूमने वाले के लिए जैसे वैसे (चायमानाय) सत्कार करने वाले के लिए (शिक्षन्) विद्या देता हुआ (भियसा) भय से (हरियूपीयायाम्) विचारशील मनुष्यों की इच्छा करते हुओं की पानक्रिया में (पूर्वे) सन्मुख (अर्धे) अर्द्धभाग में (हन्) नाश करता वा (वधीत्) नाश करे (अपरः) अन्य बिजुलीरूप अग्नि उसको (दर्त्) विदीर्ण करता है वैसे वर्त्तमान उपदेशक का हम लोग सत्कार करें ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य पूर्व अवस्था में विद्वानों से विद्या ग्रहण करके बुरे व्यसनों का त्याग करके उत्तमस्वभावयुक्त होते हैं वे अधर्माचरण से डरते हैं ॥५॥

फिर राजा को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या ।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन् ॥६॥

पदार्थः—(पुरुहूत) बहुतों से स्तुति किये गए (इन्द्र) सेना के स्वामिन् (त्रिंशच्छतम्) तीस सैकड़े (वर्मिणः) कवच को धारण किये हुए (वृचीवन्तः) रोग से आच्छादित करते हुए (शरवे) हिंसन के लिए (पात्रा) शत्रुओं के वाहनों को (भिन्दानाः) विदीर्ण करते और (पत्यमानाः) पति के सदृश आचरण करते हुए (साकम्) साथ (यव्यावत्याम्) यवों से बने पदार्थों के पाक जिसमें उस सेना में सब लोग (श्रवस्या) अन्न में होने वाले (न्यर्थानि) निश्चित अर्थ जिनमें उन प्रयोजनों को नहीं (आयन्) प्राप्त होते हैं उनका आप सत्कार करिये ॥६॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो वीर पुरुष, राजविद्या में निपुण, कार्यों के आरम्भ में दृढ़ प्रयोजन, सिद्ध वस्त्रों वाले होवें वे आप से सेना में सत्कारपूर्वक रखने योग्य हैं ॥६॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा ।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद्वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥७॥

पदार्थः—हे राजन् (यस्य) जिसके (अरुवा) चारों ओर से रक्त (सुयवस्यू) अपने उत्तम यवों की इच्छा करतीं और (रेरिहाणा) आस्वादन करती हुई (गावो) किरणों के सदृश सेना और राजनीति प्रजा के (अन्तः) मध्य में (सु, चरतः) उत्तम प्रकार चलती हैं (सः) वह (दैववाताय) श्रेष्ठ वायु के विज्ञान और (सृञ्जयाय) उत्पादन के लिए (वृचीवतः) छेदन वाले के (तुर्वशम्] मनुष्य को (शिक्षन्) शिक्षा देता (उ) और दुर्गुण को (परा, अदात्) दूर करे और अखण्डित राज्य को प्राप्त होवे ॥७॥

भावार्थः—जो राजा नीति और सेना की वृद्धि करता है वह अखण्डित राज्य को प्राप्त होता है ॥७॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

द्व॒याँ अ॑ग्ने र॒थिनो॑ विंश॒तिं गा व॒धूम॑न्तो म॒घवा॒ मह्यं॑ स॒म्राट् ।
अ॒भ्या॒व॒र्ती चा॑यमा॒नो द॑दाति दू॒णाशे॒यं दक्षि॑णा पार्थ॒वाना॑म् ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्तमान जो (वधूमन्तः) अच्छी श्रेष्ठ वधुयें और (रथिनः) श्रेष्ठ रथों वाले होवें जिन (द्वयान्) प्रजा और सेना के जनों को (मघवा) प्रशंसित धन वाले (सम्राट्) उत्तम प्रकार से शोभित और (अभ्यावर्ती) जीतने को चारों ओर से वर्त्तमान (चायमानः) आदर किये गये आप (विंशतिम्) बीस (गाः) गौओं को जैसे वैसे (ददाति) देते वह आप (मह्यम्) मेरे लिये जो (पार्थवानाम्) राजाओं की (इयम्) यह (दूणाशा) दुर्लभ नाश जिसका ऐसी (दक्षिणा) आप से दी गई है उससे उनको प्रसन्न करिये ॥८॥

भावार्थः—जो राजा कुलीन, विद्या और व्यवहार में निपुण, धार्मिक राजा और प्रजाजनों को भयरहित करता है वह अतुल प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है ॥८॥

इस सूक्त में इन्द्र, ईश्वर, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छठे मण्डल में सत्ताईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्याष्टाविंशतितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । १ । ३-७३ गावः । २ । ८ गाव इन्द्रो वा देवता । १ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् २ स्वराट्त्रिष्टुप् । ५ । ६ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । ४ जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ८ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब मनुष्य किरणों के गुणों को जानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥१॥

पदार्थः—हे (मनुष्यो) जैसे (इह) यहां (अस्मे) हम लोगों के लिए (गावः) किरणें (आ, अग्मन्) प्राप्त होती हैं (उत) और (रणयन्तु) शब्द करावें तथा (भद्रम्) कल्याण को (अक्रन्) करती हैं वे (गोष्ठे) गौओं के बैठने के स्थान में (सीदन्तु) प्राप्त हों और जैसे (पुरुरूपाः) बहुत रूपवाली (पूर्वीः) प्राचीन (दुहानाः) मनोरथ को पूर्ण करती हुई (उषसः) प्रभात वेलाएं (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त के लिए (प्रजावतीः) बहुत प्रजाओं वाली (स्युः) होवें वैसे आप लोगों के लिए भी हों ॥१॥

भावार्थः—जो वृक्षों के लगाने और सुगन्ध आदि से युक्त धूम से पवन के किरणों को शुद्ध करें तो ये सब को सुखयुक्त करते हैं ॥१॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद्ददाति न स्वं मुषायति ।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (इन्द्रः) राजा (अस्य) इस संसार के मध्य में (रयिम्) विद्यारूप धन को (इत्) (वर्धयन्) बढ़ाता हुआ (अभिन्ने) इकट्ठे हुए व्यवहार में और (खिल्ये) टुकड़ों में हुए के बीच (च) भी (देवयुम्) विद्वानों की कामना करते हुए विद्वान् को (भूयोभूयः) वारं वार (नि, दधाति) निरन्तर धारण करता है और (स्वम्) अपने ज्ञान को (न) नहीं (मुषायति) चुराता है और (यज्वने) यज्ञ के करने वाले के लिए (उप, शिक्षति) विद्या देता है और (पृणते) सुखयुक्त करता है (च) और (ददाति) देता है वह (इत्) ही सबको बढ़ा सकता है ॥२॥

भावार्थः—वे ही विद्वान् यथार्थवक्ता हैं जो निष्कपटता से वार वार प्रतिदिन विद्याकोश को योग्य के लिए देते हैं ॥२॥

अब कौन उत्तम दान है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (याभिः) जिन विद्याओं से यजमान (देवान्) विद्वानों

को (यजते) मिलता और (ददाति) देता (च) भी है तथा (ज्योक्) निरन्तर (इत्) ही (ताभिः) उन विद्याओं के (सह) साथ (गोपतिः) गौओं का स्वामी (सचते) मिलता है (न) न (आसाम्) इनका (अमित्रः) शत्रु और (व्यथिः) पीड़ा (च) भी (आ, दधर्षति) तिरस्कार करती है (ताः) वे विद्याएं (न) नहीं (नशन्ति) नष्ट होती हैं तथा (तस्करः) चोर उनका (न) नहीं (दभाति) नाश करता है उन विद्याओं को आप लोग ब्रह्मचर्यादि से ग्रहण करिये ॥३॥

भावार्थः– हे मनुष्यो ! सब के लिए अधिक सुख करने, नहीं नष्ट होने और निरन्तर बढ़ने वाले और चोर आदिकों से हरने के अयोग्य विद्या-दान ही है यह जानो ॥३॥

वह विद्या किस को प्राप्त होती और किस को नहीं प्राप्त होती है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ताः) उन विद्याओं को (रेणुककाटः) रेणुकाओं के कूप के समान अन्धकार हृदय वाला (अर्वा) घोड़े के समान बुद्धिहीन विषयासक्त जन (न) नहीं (अश्नुते) प्राप्त होता है और मूढ़जन (संस्कृतत्रम्) संस्कारयुक्त की रक्षा करने वाले को प्राप्त होकर (ताः) उनके (न) नहीं (अभि) सन्मुख (उप, यन्ति) समीप प्राप्त होते हैं किन्तु वे (उरुगाय) बहुतों से प्रशंसनीय (अभयम्) निर्भय जन के सन्मुख समीप प्राप्त होती हैं और (ताः) वे विद्यायें (गावः) किरणों के समान (तस्य) उस (यज्वनः) विद्वानों के सेवक और प्राप्त होते हुए (मर्त्तस्य) विचारशील मनुष्य के (अनु, वि, चरन्ति) पश्चात् चलती हैं तथा विशेष करके प्राप्त होती हैं ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अशुद्ध आहार और विहार करने वाले, लम्पट, चुगुल और कुसंगी हैं उनको विद्या कभी नहीं प्राप्त होती है । और जो पवित्र आहार और विहार करने वाले, जितेन्द्रिय, यथार्थवक्ता, सत्संगी, पुरुषार्थी हैं उन को विद्या प्राप्त होती है ऐसा जानिये ॥४॥

मनुष्यों को चाहिए कि अवश्य विद्या की प्राप्ति की इच्छा करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥५॥

पदार्थः—हे (जनासः) विद्वान् मनुष्यो जैसे (प्रथमस्य) पहिले (सोमस्य) ऐश्वर्य की सेवने वाली (गावः) गोएं बछड़ों को दुग्ध देती हैं वैसे (गावः) किरणों के समान जन और (भगः) ऐश्वर्य की इच्छा करने वाला (गावः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों को और (इन्द्रः) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त (भक्षः) सेवा करने योग्य जन (मे) मेरे लिए (अच्छान्) देवें और (याः) जो (इमाः) ये (गावः) वाणियां जिसकी हैं (सः) वह (इन्द्रः) विद्या और ऐश्वर्य से युक्त मुझ को शिक्षा देवे और मैं (हृदा) आत्मा तथा (मनसा) विज्ञान से (चित्) भी (इन्द्रम्) ऐश्वर्य-युक्त जन की (इत्) ही (इच्छामि) इच्छा करता हूं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य आत्मा और अन्तः-करण से विद्या की प्राप्ति की इच्छा करते हैं वे सब सुख का भोग करते हैं ॥५॥

फिर मनुष्यों का क्या अवश्य कर्त्तव्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यूयम्) आप लोग जो (गावः) वाणियां हैं उन को (मेदयथा) मधुर करिये (चित्) और (अश्रीरम्) अमङ्गलस्वरूप और अधर्माचरण करने वाले को (कृशम्) क्षीण (कृणुथा) करिये और (चित्) भी (सुप्रतीकम्) उत्तम प्रतीति कराने वाले द्वार आदि जिसमें उस (भद्रम्) कल्याण करने शुद्ध वायु जल और वृक्ष वाले (गृहम्) गृह को (कृणुथ) करिये और (सभासु) आप्त विद्वानों से प्रकाशमान सभाओं में (भद्रवाचः) जो कल्याण करने वाली सत्यभाषण से युक्त वाणियां उनको स्वीकार करिए और जो (वः) आप लोगों का (बृहत्) बड़ा (वयः) जीवन (उच्यते) कहा जाता है उसको करिये ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य कोमल, सत्य, धर्मयुक्त वाणी तथा सर्व ऋतुओं में सुख करने वाले घर को, सभा को और अधिक अवस्था को करते हैं वे संसार में कल्याण करने वाले होते हैं ॥६॥

अब प्रजाओं का कैसे पालन करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥७॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे गौओं का पालन करने वाला (सूयवसम्) सुन्दर घास आदि को (रिशन्तीः) भक्षण करती हुई (सुप्रपाणे) सुन्दर जल पान के स्थान में

(शुद्धाः) निर्मल (अपः) जलों को (पिबन्तीः) पीती हुई (प्रजावतीः) श्रेष्ठ सन्तान वाली गौवों का पालन करता है वैसे आप प्रजाओं का पालन करिए और जैसे (वः) आप लोगों की प्रजाओं को (स्तेनः) चोर और (अघशंसः) पाप करने वाला डाकू (मा) नहीं (ईशत) मारने में समर्थ होवे वैसे (वः) आप लोगों के सम्बन्ध में (रुद्रस्य) रौद्र कर्म के करने वाले का (हेतिः) वज्र इनको (मा) मत (परि, वृज्याः) परिवर्जन करे ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पिता के सदृश प्रजाओं का पालन करते और शुद्ध भोजन और विहार वाली करके पुरुषार्थ करते और चोर आदि दुष्टों का छेदन करते हैं वे राजा, अमात्य और भृत्य प्रशंसा करने योग्य होते हैं ॥७॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम् ।

उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के करने वाले (ऋषभस्य) श्रेष्ठ (तव) आपके (वीर्ये) पराक्रम में प्रजाओं के साथ (उप, पृच्यताम्) संबन्ध करिए तथा (रेतसि) पराक्रम में आपको (उप) संबन्ध करना चाहिए और (आसु) इन (गोषु) पृथिवियों वा वाणियों में (उपपर्चनम्) समीप संबंध (उप) सम्बन्ध करना चाहिए और (इदम्) इस राजनीति का (उप) संबंध करना चाहिए ॥८॥

भावार्थः—जो राजा आदि मनुष्य विद्वान् होकर सभा में परस्पर की एक सम्मति करके विरोध के नाश करने से एकता में प्रयत्न करते हैं वे अखण्डित सामर्थ्यवाले होते हैं ॥८॥

इस सूक्त में गो, इन्द्र, विद्या, प्रजा और राजा के धर्म का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

इस अध्याय में इन्द्र, सोम, सूर्य, प्रातःकाल, राज्य, विश्वेदेव, योधा, मित्रत्व, जगदीश्वर, अग्नि, अन्तरिक्ष, पृथिवी, राजा, प्रजा, पवन, कारीगर, न्यायेश, उपदेशक, वाणी और विद्या के गुण वर्णन करने से इस अध्याय के अर्थ की इससे पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में अट्ठाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चर्चस्यैकोनत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३ । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ भुरिक्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ६ ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले उनतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को कैसा वर्ताव करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः ।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥१॥

पदार्थः—हे (नरः) नायक जनो जो (महः) बड़े विज्ञान को (यन्तः) प्राप्त होते और (सुमतये) उत्तम बुद्धि के लिए (चकानाः) कामना करते हुए (वः) आप लोगों के (सख्याय) मित्रपने के लिए (इन्द्रम्) ऐश्वर्य के करने वाले को (सेपुः) शपथ करते हैं तथा (हि) जिस कारण जो (महः) बड़े विज्ञान का (दाता) देनेवाला और (वज्रहस्तः) शस्त्र और अस्त्रों से युक्त हाथों वाला (अस्ति) है उस (रण्वम्) रमणीय उपदेशक (महाम्) महान् महाशय सर्वाध्यक्ष का (ऊ) ही (अवसे) रक्षण आदि के लिए (यजध्वम्) मिलिये वा सत्कार करिये ॥१॥

भावार्थः - हे मनुष्यो ! जो आप लोगों के साथ मित्रत्व के लिये दृढ़ शपथ करके तन, मन और धनों से उपकार के लिये प्रयत्न करते हैं उनका आप लोग सर्वदा सत्कार करिये तथा इनके साथ मित्रपन में वर्ताव करिये ॥१॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ यस्मिन्हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः ।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! ऐश्वर्य करने वाले के (यस्मिन्) जिस (हस्ते) हस्त में (रश्मयः) किरणों के समान (आ) सब ओर से (मिमिक्षुः) सिञ्चन करते सम्बन्ध करते हैं तथा (नर्याः) मनुष्यों के लिये हितकारक शस्त्र और अस्त्र जिस के (हिरण्यये) तेज के विकार से बने हुए (रथे) रथ में और (रथेष्ठाः) रथ पर स्थित होने वाले जन और (स्थूरयोः) स्थूल (गभस्त्योः) बाहुओं के मध्य में शस्त्र और अस्त्र हैं तथा जिसके वाहनों में (वृषणः) बलिष्ठ (अश्वासः) घोड़ों के समान बड़े बिजुली आदि पदार्थ (आ) सब ओर से (युजानाः) युक्त (अध्वन्) मार्ग में यानों को (आ) लाते हैं वे सुखों से जनों का (आ) अच्छे प्रकार सम्बन्ध करते हैं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा शस्त्र और अस्त्र के जानने वाले, श्रेष्ठ, धार्मिक, शूर तथा विमान आदि वाहनों के बनाने वाले शिल्पियों और विजुली आदि की विद्याओं और विद्वानों का सत्कार करके रक्षा करता है उसी के सूर्य के किरणों के समान यश बढ़ते हैं ॥२॥

फिर वह राजा कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

श्रिये ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान् ।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नृतविषिरो बभूथ ॥३॥

पदार्थः—हे (नृतो) नायक अग्रणी जन जिन (ते) आपके (पादा) पाद (दुवः) कार्य सेवन को (श्रिये) लक्ष्मी के लिये (आ, मिमिक्षुः) चारों ओर सींचते हैं और (शवसा) बल से (धृष्णुः) ढीठ (वज्री) शस्त्र और अस्त्रों को धारण करने वाले (दक्षिणावान्) उत्तम दक्षिणावान् (दृशे) देखने के लिये (कम्) सुख करने वाले सुन्दर (सुरभिम्) सुगन्ध को और (अत्कम्) व्याप्तिशील वस्त्र को (वसानः) धारण करते हुए (स्वः) सुख को (न) जैसे (इषिरः) ज्ञानवान् वैसे जो आप (बभूथ) प्रसिद्ध हो उन आपकी हम लोग सेवा करें ॥३॥

भावार्थः—हे राजन् ! जिन आपके आश्रय से अत्यन्त लक्ष्मी, वास, ओढ़ना, वाहन, सुख और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है वह आप हम लोगों से कैसे नहीं सेवन करने योग्य हैं ॥३॥

फिर वह कैसा होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्यस्मिन्पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः ।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥४॥

पदार्थः—हे (नरः) विद्वानों में अग्रणी जनो (यस्मिन्) जिस राजा के होने पर (पक्तिः) पाक (पच्यते) पकाया जाता है (धानाः) भूंजे हुए अन्न हैं (आमिश्लतमः) चारों ओर से अत्यन्त मिला हुआ (सुतः) उत्पन्न (सोमः) ऐश्वर्य का योग वा ओषधि का रस (भूत्) होता है और जिस (इन्द्रम्) ऐश्वर्यकारक को (स्तुवन्तः) प्रशंसा करते हुए (ब्रह्मकाराः) धन वा अन्न को करने वाले (देववाततमाः) अतिशय विद्वानों वा पदार्थों को प्राप्त होने वाले (उक्था) कहने योग्य वचनों का (शंसन्तः) उपदेश देते हुए (सन्ति) हैं (सः) वह आप हम लोगों के राजा हूजिये ॥४॥

भावार्थः—जो वह धार्मिक राजा न होवे तो सब व्यवहार लोप होवें

कि जिसके होने पर धन धान्य और ऐश्वर्य को धारण करती हैं वे धर्मयुक्त प्रजायें होती हैं ॥४॥

अब ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु बाबधे रोदसी महित्वा ।
आ ता सूरिः पृणति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥५॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर जिस (अस्य) इस (ते) आप ईश्वर के (शवसः) बल की (अन्तः) सीमा किसी से भी (न) नहीं (धायि) धारण की जाती है (तु) और जो (महित्वा) बड़प्पन से (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (वि, बाबधे) बांधता है और जिन आपके (ता) उन कर्मों को (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (समीजमानः) उत्तम प्रकार मिलता हुआ (तूतुजानः) शीघ्र कार्य करने वाला (सूरिः) विद्वान् (अप्सु) प्राणों वा जलों में (यूथेव) समूह के सदृश सब को (आ, पृणति) सुखी करता है वह आप लोगों से स्तुति करने योग्य हैं ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अनन्त गुण कर्म और स्वभावयुक्त और सब का प्रबन्ध करने वाला, उपासना किया हुआ सुख का देने वाला ईश्वर है वही सब से उपासना करने योग्य है ॥५॥

अब ईश्वरत्व में राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवेदिन्द्रः सुहवः ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा ।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (सुहवः) सुन्दर पुकारना जिसका ऐसा (ऋष्वः) बड़ा (हिरिशिप्रः) हरे रंग की ठुड्ढी और नासिका युक्त (सत्वा) परिश्रम से पुरुषार्थ करने और (इन्द्रः) ईश्वर की उपासना करने वाला राजा (ऊती) रक्षा वा (अनूती) अरक्षा से सुख करने वाला (जातः, च) और प्रसिद्ध (अस्तु) हो वह (एव) ही (इत्) निश्चय से आनन्द देने वाला होवे और जो (हि) निश्चय से (असमात्योजाः) नहीं तुल्य पराक्रम जिसका वह (पुरू) बहुत (वृत्रा) धनों की वृद्धि करता है और (दस्यून्) दुष्ट चोरों का (नि, हनति) नित्य नाश करता है वह (एवा) ही चक्रवर्ती राजा होने के योग्य है ॥६॥

भावार्थः—वही बड़ा राजा है जो नीति के जानने वालों की रक्षा करके धर्मिष्ठ प्रजाओं का पालन करके चोर आदि पापियों को नहीं ग्रहण करता है वही सज्जनों से सेवन करने योग्य है ॥६॥

इस सूक्त में इन्द्र, मित्रपन, देने वाले और युद्ध करने वाले तथा ईश्वर के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये

यह छठे मण्डल में उनतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५ ब्राह्मी उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं ॥

भूय इद्वावृधे वीर्याय एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्द्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (इन्द्रः) सूर्य के समान वर्त्तमान जन (दिवः) प्रकाशमान पदार्थान्तर और (पृथिव्याः) भूमि से (अर्द्धम्) भूगोल का अर्द्ध भाग (उभे) दोनों (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवीभूगोल के (प्रति) प्रति अर्द्धभाग प्रकाशित होता है और सब से (प्र, रिरिचे) समर्थ होता है तथा (अस्य) इसके (इत्) ही आकर्षण से सम्पूर्ण लोक वर्त्तमान हैं उस (इत्) ही प्रकार से जो राजा (वीर्याय) पराक्रम के लिए (भूयः) फिर (वावृधे) बढ़ता और (एकः) सहायरहित (अजुर्य्यः) युवा हुआ (वसूनि) धनों को (दयते) देता है वही श्रेष्ठ होता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा सूर्य के समान श्रेष्ठ गुणों श्रेष्ठ सहायों और उत्तम सामग्री से प्रकाशमान यशस्वी होता है और जैसे सूर्य सम्पूर्ण भूगोलों के सन्मुख स्थित भूगोलों के अर्द्धभागों का प्रकाश करता है वैसे ही न्याय और अन्याय के बीच में से न्याय का ही प्रकाश करे और सब के लिए दोनों को देवे ॥१॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति ।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥२॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे (दर्शतः) देखने वा पूछने योग्य (सुक्रतुः) शुभ कर्म करने वाला (सूर्यः) सूर्य (दिवेदिवे) प्रतिदिन जो (अस्य) इसके (बृहत्) बड़े

(असुर्यम्) मेघ के सम्बन्धी का और (यानि) जिन वायुदलों का (दाधार) धारण करता है और इसको (नकिः) नहीं (आ, मिनाति) नष्ट करता है और (उर्विया) पृथिवी के साथ (सद्मानि) स्थानों को (धात्) धारण करता है वैसे आप (वि, भूत्) होते हैं (अधा) इसके अनन्तर ऐसे हुए आपको राजा मैं (मन्ये) मानता हूं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे सूर्य प्रतिदिन मेघ को धारण करके वर्षा के पृथिवी और पृथिवीस्थ पदार्थों का नाश नहीं करके धारण करता है वैसे ही राज्य को धारण करके सुख को वर्षा के प्रजा के साथ न्यायकर्मों को राजा धारण करे ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अद्या चिन्नू चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि ॥३॥

पदार्थः—हे (सुक्रतो) श्रेष्ठ कर्मों को उत्तम प्रकार जानने वाले (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान (चित्) जैसे सूर्य (गातुम्) भूमि का (अरदः) आकर्षण करता है तथा (नदीनाम्) नदियों के समीप से (अपः) जलों का आकर्षण करता है और (यत्) जो (आभ्यः) इन नदियों से खींचता (तत्) वह (चित्) भी वर्षता है वैसे (अद्या) आज आप (नू) शीघ्र करिये और जैसे सूर्य से (रजांसि) लोकविशेष (दृळ्हानि) धारण किये गये वैसे आज (अद्मसदः) उत्तम प्रकार खाने योग्यों में स्थित होने वाले (पर्वताः) मेघ (न) जैसे वैसे (त्वया) रक्षक वा स्वामी आपसे प्रजा और राजजन (नि, सेदुः) स्थित होते हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—हे राजन्! जैसे सूर्य सम्पूर्ण पदार्थों से आठ महीने रस धारण करके मेघमण्डल में स्थापित करके वर्षाओं में वर्षाके प्रजाओं को सुखी करता है वैसे आप आठ मासों में प्रजाओं से कर लेकर वर्षाकाल में देवें ॥३॥

फिर ईश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सत्यमित्तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश अपने से प्रकाशमान जगदीश्वर जिससे आप से बनाया गया सूर्य्य (परिशयानम्) चारों ओर से सोते हुए से (अहिम्) व्याप्त होने वाले मेघ का (अहन्) नाश करता है और (अर्णः) भ्रमर पड़ते जल वा अन्य

(अपः) जलों और (समुद्रम्) सागर वा अन्तरिक्ष को (अच्छा) उत्तम प्रकार (अव, असृजः) उत्पन्न करता है इससे (अन्यः) और (त्वावान्) आपके सदृश कोई भी दूसरा (ज्यायान्) बड़ा नहीं है (न) न (देवः) विद्वान् वा प्रकाशमान और (न) न (मर्त्यः) साधारण मनुष्य (अस्ति) है (तत्) वह (सत्यम्) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ (इत्) ही है ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस जगदीश्वर ने जगत् के पालन के लिये आकर्षण करने और वृष्टि तथा प्रकाश करने वाला सूर्य्य और मेघ बनाया इस कारण से जगदीश्वर के तुल्य कोई भी नहीं है फिर अधिक कहां से हो यह सत्य जानिए ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन्द्यामुषासम् ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले जगदीश्वर जैसे सूर्य्य (पर्वतस्य) मेघ के (दृळ्हम्) दृढ़ भाग को भंग करता और (विषूचीः) व्याप्त (दुरः) द्वारों को प्रकाशित करता हुआ (अपः) जलों वा प्राणों को (वि) विशेष कर वर्षाता है तथा (जगतः) संसार के (चर्षणीनाम्) मनुष्यों का (राजा) राजा होता है वैसे (त्वम्) आप (सूर्य्यम्) सूर्य्य और (द्याम्) प्रकाश को और (उषासम्) दिन के मुख प्रभात को (जनयन्) उत्पन्न करते हुए सब के (साकम्) साथ व्याप्त हुए दुःख को (अरुजः) नष्ट कीजिये और संसार के मनुष्यों के राजा (अभवः) हूजिए ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो सूर्य आदि का उत्पन्न करने वाला, प्रकाशक और धारण करने वाला तथा सम्पूर्ण पदार्थों में व्याप्त जगदीश्वर है उसकी आत्मा के साथ निरन्तर उपासना करो ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा, सूर्य्य और ईश्वर के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य सुहोत्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । ५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १ निचृत्त्रिष्टुप् । २ स्वराट् पंक्तिः । ३ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ४ निचृदतिशक्वरी छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले इकतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में ईश्वर कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

अभूरेको रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः ।
वि तोके अप्सु तनये च सूरेऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः ॥१॥

पदार्थः—हे (रयीणाम्) द्रव्यों के बीच (रयिपते) धन के स्वामिन् (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के देने वाले राजन् आप जो (विवाचः) अनेक प्रकार की विद्या और शिक्षा से युक्त वाणियों वाले (चर्षणयः) मनुष्य (अप्सु) प्राणों वा अन्तरिक्ष तथा (तोके) शीघ्र उत्पन्न हुए सन्तान (तनये, च) और ब्रह्मचारी कुमार और (सूरे) सूर्य्य में विद्याओं को (वि, अवोचन्त) विशेष कहते हैं उन (कृष्टीः) मनुष्य आदि प्रजाओं को (हस्तयोः) हाथों में आंवले के सदृश (आ, अधिथाः) अच्छे प्रकार धारण करिये और (एकः) सहायरहित हुए प्रजा के पालन करने वाले (अभूः) हूजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—परमेश्वर का स्वभाव है कि जो सत्य का उपदेश देते हैं उनको सदा उत्साहित करता और रक्षा में धारण करता और ऐश्वर्य्य को प्राप्त कराता है और जैसे विनय से युक्त एक भी राजा राज्यपालन करने को समर्थ होता है वैसे ही सर्वशक्तिमान् परमात्मा सम्पूर्ण सृष्टि की सदा रक्षा करता है ॥१॥

फिर मनुष्य क्या जानें इस विषय को कहते हैं ॥

त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि ।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळ्हं भयते अज्मन्ना ते ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) बिजुली के सदृश वर्त्तमान (ते) आपके (भिया) भय से (विश्वा) सम्पूर्ण (अच्युता) नाश से रहित (पार्थिवानि) पृथिवी में विदित जन्तु विशेष (रजांसि) लोकों को (चित्) निश्चित (च्यावयन्ति) चलाते हैं तथा जैसे सूर्य्य से (द्यावाक्षामा) अन्तरिक्ष और पृथिवी तथा (पर्वतासः) पर्वत और (वनानि) जंगल (विश्वम्) सम्पूर्ण जगत् को चलाते हैं वैसे (त्वत्) आप से (दृळ्हम्) दृढ़ विश्व (अज्मन्) मार्ग में (आ, भयते) अच्छे प्रकार भय करता है ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे न्यायकारी वीर पुरुष से कायर जन डरते हैं वैसे ही बिजुली से सब प्राणी डरते हैं ॥२॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले राजन् (त्वम्) आप (शुष्णम्) बल और (अशुषम्) शुष्करहित को (कुत्सेन) वज्र से (गविष्टौ) किरणों के समागम में (कुयवम्) कुत्सित यव जिसमें उसको (अभि, युध्य) अभियोधन करो (अध) इसके अनन्तर (प्रपित्वे) प्राप्ति में (दश) दश (रपांसि) हिंसनों को (मुषायः) चुराओ और (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (चक्रम्) चक्र को (अविवेः) व्याप्त होओ ॥३॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप अधर्मी शत्रु के साथ ही युद्ध करिये धर्मात्मा के साथ न करिये ऐसा करने पर जिस प्रकार सूर्य्य के चारों ओर भूगोल चक्र के समान घूमते हैं वैसे ही प्रजाजन आपको देखकर पुरुषार्थ से चलेंगे ॥३॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः । अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥४॥

पदार्थः—हे (शचीवः) उत्तम बुद्धि वाले (सुतक्रे) उत्तम प्रकार प्रसन्न अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले राजन् (त्वम्) आप जैसे सूर्य्य (शम्बरस्य) मेघ के समान शत्रु के (शतानि) सैकड़ों (पुरः) नगरों का (अव, जघन्थ) नाश करते हो वैसे (दस्योः) दूसरे के द्रव्य चुराने वाले दुष्टजन के (अप्रतीनि) नहीं जाने गये भी सैकड़ों नगरों का नाश करिये और (शच्या) उत्तम शिक्षायुक्त वाणी वा उत्तम कर्म्म से इनको (अशिक्षः) शिक्षा दीजिये और (यत्र) जहां (दिवोदासाय) विज्ञान के देने तथा (सुन्वते) सार के निकालने वाले (गृणते) स्तुति करते हुए (भरद्वाजाय) विज्ञान के धारण करने वाले के लिये (वसूनि) द्रव्यों को दीजिए वहां इससे विद्या का प्रचार कराइये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा सूर्य्य के सदृश न्याय

का प्रकाश करने वाला और मेघ के सदृश विद्या आदि के प्रचार के लिये बहुत धन का देने वाला होता है वही सर्वत्र विजय को प्राप्त होता है ॥४॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स सत्यसत्वन्महते रणाय रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीमम् ।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक् प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः ॥५॥

पदार्थः—हे (सत्यसत्वन्) शुद्ध अन्तःकरण आदि इन्द्रियों युक्त (प्रपथिन्) उत्तम मार्ग वाले और (तुविनृम्ण) बहुत धन से युक्त (सः) वह आप (महते) बड़े (रणाय) संग्राम के लिए (रथम्) सुन्दर वाहन पर (आ, तिष्ठ) स्थित हूजिए और (अवसा) रक्षण आदि से (भीमम्) भयंकर संग्राम को (उप, याहि) प्राप्त हूजिए तथा (मद्रिक्) मेरे सम्मुख हुए विद्वानों से (श्रुत) सुनिये (चर्षणिभ्यः, च) और मनुष्यों के लिए (प्र, श्रावय) सुनाइये ॥५॥

भावार्थः—जो राजा सत्यवादियों से राजनीति के कृत्य को सुनकर अन्यों को सुना कर शुद्धचित्त वाला सब के रक्षण के लिये दुष्टों का पराजय करता है वही बहुत लक्ष्मीवाला होता है ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र और राजा के कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में इकतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य द्वात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य सुहोत्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ भुरिक्पङ्क्तिः । २ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ । ५ त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले बत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है उस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे मैं (आसा) मुख से (अस्मै) इस (महे) बड़े (वीराय) बल पराक्रम तथा विद्यायुक्त के लिए और (तवसे) बल के लिए (तुराय)

शीघ्र कार्य्य करने वाले तथा (विरप्शिने) प्रशंसित (वज्रिणे) प्रशंसित शस्त्र और अस्त्रों से युक्त (स्थविराय) वृद्धजन के लिये (अपूर्व्या) नहीं विद्यमान है पूर्व जिससे उस में हुए (पुरुतमानि) अतिशय बहुत (शन्तमानि) अतीव कल्याण करने वाले (वचांसि) वचनों का (तक्षम्) उपदेश करूं वैसे आप लोग भी अन्यों को उपदेश दीजिये ॥१॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्वानों को चाहिये कि सदा ही सब के लिये सत्य उपदेश करें जिससे अतुल सुख होवे ॥१॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः ।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (सूर्य्येण) सूर्य्य के सहित बिजुली रूप अग्नि (अद्रिम्) मेघ को (रुजत्) स्थिर करता और (कवीनाम्) विद्वानों के (मातरा) माता पिता को (अवासयत्) वसाता है वैसे ही जो राजा (स्वाधीभिः) सुन्दर स्थान जिनके उन नीतियों और (ऋक्वभिः) प्रशंसा के योग्य व्यवहारों के साथ (गृणानः) स्तुति करता और (वावशानः) कामना करता हुआ जैसे सूर्य्य (उस्रियाणाम्) किरणों के (निदानम्) निश्चय को वैसे निश्चय को (उत्, असृजत्) उत्पन्न करता है (सः) वह राजा सब से सत्कार करने योग्य है ॥२॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलु०— हे राजन् ! जैसे सूर्य्य किरणों से सबको प्रकाशित करता है वैसे ही विनय आदिकों से सम्पूर्ण राज्य को प्रकाशित करिये और जैसे श्रेष्ठ पुत्र माता पिता की सेवा करते हैं वैसे ही राजधर्म का सेवन करिये ॥२॥

राजा कैसे जनों के साथ मित्रता करे इस विषय कहते हैं ॥

स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय ।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन् ॥३॥

पदार्थः—हे सज्जनो ! जो (मितज्ञुभिः) संकुचित जांघ वाले बैठे हुए विद्वानों और (ऋक्वभिः) प्रशंसित (वह्निभिः) धारण करने वाले (कविभिः) विद्वानों से (कविः) विद्वान् (सन्) हुआ और (सखिभिः) मित्रों से (सखीयन्) मित्र के सदृश आचरण करता हुआ (पुरोहा) नगरों का नाश करने वाला (दृळ्हाः) कम्पन क्रिया से रहित (पुरः) शत्रुओं के नगरों का (रुरोज) भंग करता है और (गोषु) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों में (शश्वत्) निरन्तर (पुरुकृत्वा)

बहुत करके शत्रुओं को (जिगाय) जीतता है (सः) वही आप लोगों से मानने योग्य है ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रशंसित, बलिष्ठ, थोड़े बोलने वाले, विद्वान् मित्रों के साथ मित्रता कर राज्य को प्राप्त होकर दुष्टों का नाश करके धार्मिकों की रक्षा करते हैं वे कृतकृत्य होते हैं ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुविताय प्र याहि ॥४॥

पदार्थः—हे (वृषभ) बलयुक्त (गिर्वणः) उत्तम वाणियों से सेवा किये गए अत्यन्त ऐश्वर्य्य के करने वाले राजन् (सः) वह आप (नीव्याभि.) प्राप्त कराने योग्य पदार्थों में होने वाली तथा (वाजेभिः) वेग और विज्ञान आदि गुण वालों तथा (महद्भिः) महाशयों और (शुष्मैः) प्रशंसित बलवालों से युक्त (पुरुवीराभिः) बहुत वीर जिनमें उन सेनाओं के साथ (क्षितीनाम्) मनुष्यों की (सुविताय) प्रेरणा के लिए (प्र, आ, याहि) अच्छे प्रकार यात्रा करिये और (महः) बड़े (जरितारम्, च) और स्तुति करने वाले को (अच्छा) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिये ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य धार्मिक, बलिष्ठ और उत्तम प्रकार से शिक्षित पुरुषों की सेनाओं से विजय के लिये प्रयत्न करे वह निश्चय कर विजय को प्राप्त होवे ॥४॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट् ।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥५॥

पदार्थः—हे (राजन्) (सः) वह आप जैसे सूर्य्य (आपः) जलों को प्रकट करता है वैसे (तक्तः) प्रसन्न (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले (अत्यैः) घोड़ों के समान वेग वाले पदार्थों से और (दक्षिणतः) दहिने पसवाड़े से (सर्गेण) उत्तम प्रकार प्रकट करने योग्य (शवसा) बल से (तुराषाट्) हिंसकों को सहने वाले तथा (अनपावृत्) असत्य को नहीं स्वीकार करने वाले हुए आप (दिवेदिवे) प्रतिदिन (अप्रमृष्यम्) नहीं विचारने योग्य (अर्थम्) द्रव्य का सब ओर से स्वीकार करिये और जैसे (सृजानाः) उत्तम प्रकार शिक्षितजन कृत्य को (विविषुः) व्याप्त होते हैं (इत्था) इस हेतु से कर्त्तव्य कर्म्मों में प्रविष्ट हूजिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य अधर्म्म से करने योग्य को अनर्थ नहीं करता है वह सूर्य्य के सदृश प्रकाशित यश वाला होता है और जैसे सूर्य्य वृष्टि करके सब को हर्षित करता वैसे ही राजा शुभ गुणों की वर्षा करके सब को आनन्दित करे ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान् और राजा के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छठे मण्डल में बत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य त्रयस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य शुनहोत्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ३ निचृत्पङ्क्तिः । ४ भुरिक्पङ्क्तिः । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले तेंतीसवें सूक्त का आरम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में राजा क्या करके क्या करावै इस विषय को कहते हैं ॥

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान् ।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥१॥

पदार्थः—हे (वृषन्) तेजस्वी (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के देने वाले (यः) जो (ओजिष्ठः) अतिशय बली (मदः) हर्षित हुए (स्वभिष्टिः) अच्छी संगति वाले (दास्वान्) दाता वह आप (नः) हम लोगों के लिये (सौवश्व्यम्) सुन्दर घोड़ों और बड़े पदार्थों में हुए को (सु) उत्तम प्रकार (दाः) दीजिये और (यः) जो (स्वश्वः) अच्छे घोड़ोंवाला हुआ (वृत्रा) धनों की (वनवत्) याचना करता है तथा (समत्सु) संग्रामों में (अमित्रान्) शत्रुओं को (सासहत्) अत्यन्त सहता है (तम्) उसका हम लोग सत्कार करें ॥१॥

भावार्थः—जो अभय देने वाला और संग्रामों में जीतने वाला तथा दिन रात अपने बल को बढ़ाता है वही सब को सुखी करने को योग्य है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

त्वां हीइन्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्वि पणीँरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्वा ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुःख के नाश करने वाले राजन् जो (हि) जिससे

(अर्वा) घोड़े के समान श्रेष्ठ गुणों के ग्रहण करने वाले वेग वाले (सनिता) विभाग करने वाले (त्वोतः) आप से रक्षित जन (वाजम्) विज्ञान को प्राप्त होता है उसके सहित (त्वम्) आप (विप्रेभिः) मेधावी जनों के साथ (पणीन्) प्रशंसितों को (वि, अशायः) सुलाइये उस (इव) ही (त्वाम्) आपकी (अवसे) रक्षा आदि के लिये (शूरसातौ) शूर वीर जनों के विभागरूप संग्राम में (विवाचः) अनेक प्रकार की विद्या से युक्त वाणियों वाले (चर्षणयः) विद्वान् जन (हवन्ते) स्तुति करते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो राजा धार्मिक विद्वानों के साथ राज्य का पालन करे तो उस की कौन नहीं प्रशंसा करे ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

त्वं ताँ इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।

वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥३॥

पदार्थः—हे (नृणाम्) मुखियाजनों में (नृतम) अत्यन्त मुखिया (शूर) दुष्टों के नाशक (इन्द्र) राजन् (त्वम्) आप (तान्) उन (अमित्रान्) दुष्ट सब को पीड़ा देने वाले और (आर्य्या) धर्मिष्ठ उत्तम जनों को (च) और (उभयान्) दो प्रकार के विभाग करके दुष्ट और पीड़ा देने वालों का (पृत्सु) संग्रामों में (वनेव) अग्नि जैसे वनों का वैसे (वधीः) नाश करिये और (सुधितेभिः) उत्तम प्रकार से तृप्त किये गये (अत्कैः) घोड़ों से (आ, दर्षि) विदीर्ण करते हो और धर्म्मिष्ठ उत्तम जनों की रक्षा करते हो तथा (दासा) देने योग्य (वृत्राणि) धनों को प्राप्त होते हो इससे विवेकी हो ॥३॥

भावार्थः—जो राजा उत्तम, अनुत्तम, धार्मिक और अधार्मिकों का परीक्षा से विभाग करके उत्तमों की रक्षा करता और दुष्टों को दण्ड देता है वही सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य को प्राप्त होता है ॥३॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को कहते हैं ॥

स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।

स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥४॥

पदार्थः—हे (शूर) शूरवीर शत्रुजनों के नाश करने और (इन्द्र) सुख के देने वाले (यत्) जो (त्वम्) आप (अकवाभिः) नहीं निन्दा करने वालों और (ऊती) रक्षाओं से (नः) हमारे (सखा) मित्र (विश्वायुः) सम्पूर्ण अवस्था से युक्त (अविता) रक्षक (वृध) वृद्धि के लिये (भूः) होवें (सः) वह आप (स्वर्षाता) सुख के देने वाले

हुए जीतने वाले हूजिये उन (त्वा) आपको (नेमधिता) धार्मिक और अधार्मिक के मध्य में धार्मिकों के ग्रहण करने वाले (पृत्सु) संग्रामों वा सेनाओं में (युध्यन्तः) युद्ध करते हुए हम लोग (ह्वयामसि) पुकारें ॥४॥

भावार्थः—हे राजन् ! जैसे मित्र, मित्र के लिये प्रिय आचरण करता है वैसे ही प्रजा के लिये हित आचरण करिये और जहां जहां प्रजायें आपको पुकारें वहां वहां उपस्थित हूजिये और शत्रुओं के जीतने में प्रयत्न करिये ॥४॥

फिर वह राजा कैसा वर्त्ताव करे इस विषय को कहते हैं ॥

नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन्दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुःखों के नाश करने वाले आप (नः) हम लोगों के (मृळीकः) सुखकारक (भवा) हूजिये और (उत) भी (अपराय) अन्य के लिये (नूनम्) निश्चय कर सुखकारक (स्याः) हूजिए और (नः) हम लोगों के (अभिष्टौ) अपेक्षित सुख में (च) भी प्रवृत्त हूजिए (इत्था) इस कारण से (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (गोषतमाः) वाणियों को अत्यन्त सेवने वाले हम लोग (महिनस्य) बड़े आपके (पार्य्ये) पूर्ण करने और (दिवि) कामना करने योग्य (शर्म्मन्) गृह में (स्याम) होवें ॥५॥

भावार्थः—जो राजा अपने और दूसरे का पक्षपाती न होकर प्रजा के रक्षण में यत्न करने वाला होवे तो सम्पूर्ण प्रजा प्रेम के स्थान में बंधी हुई होकर राजा की दिनरात स्तुति करें ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिए ॥

यह छठे मण्डल में तेंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य चतुस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य शुनहोत्र ऋषिः । इन्द्रो देवता । त्रिष्टुप् छन्द । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले चौतीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

सं च॒ त्वे ज॒ग्मुर्गिर॑ इन्द्र पू॒र्वीर्वि च॒ त्वद्य॑न्ति वि॒भ्वो॑ मनी॒षाः ।
पु॒रा नू॒नं च॑ स्तु॒तय॒ ऋषी॑णां पस्पृ॒ध्र इन्द्रे॒ अध्यु॑क्था॒र्का ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्या के देने वाले जो (त्वे) कोई (त्वत्) आपके समीप से (पूर्वीः) प्राचीन (गिरः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों को (च) भी (यन्ति) प्राप्त होते हैं (च) और श्रेष्ठ गुणों से (सम्) उत्तम प्रकार (जग्मुः) मिलते हैं तथा (विभ्वः) श्रेष्ठ गुणों से व्याप्त (मनीषाः) गमन करने वाले हुए परस्पर (वि) विशेष करके प्राप्त होते हैं और (ऋषीणाम्) वेद के मन्त्रों के अर्थ जानने वालों और यथार्थ उपदेश करने वालों के (पुरा) आगे (स्तुतयः, च) प्रशंसाओं की भी (नूनम्) निश्चय से (पस्पृध्रे) स्पर्द्धा करते हैं और (इन्द्रे) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले के लिए (उक्थार्का) प्रशंसित और आदर करने योग्य वचनों की (अधि) अधिक स्पर्धा करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं ॥१॥

भावार्थः—हे राजन् ! इस संसार में कोई योग्य, कोई अयोग्य जन होते हैं उनमें प्रशसा करने योग्य सज्जनों के साथ मेल करके उत्तम सहाय वाले हुए धर्म्म से राज्यपालन निरन्तर करिये ॥१॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं ॥

पु॒रु॒हू॒तो यः पु॑रुगू॒र्त ऋभ्वाँ॒ एकः॑ पुरुप्रश॒स्तो अस्ति॑ य॒ज्ञैः ।
रथो॒ न म॒हे शव॑से युजा॒नो॒३॒॑ऽस्माभि॒रिन्द्रो॑ अनु॒माद्यो॑ भूत् ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वज्जनो (यः) जो (पुरुहूतः) बहुतों से सत्कार किया गया (पुरुगूर्त्तः) बहुतों से उद्यम कराया गया (पुरुप्रशस्तः) बहुतों में उत्तम (एकः) सहायरहित (रथः) विमान आदि वाहन (न) जैसे वैसे (महे) बड़े (शवसे) बल के लिए (यज्ञैः) विद्वानों के सत्कार और सङ्ग तथा दानों से और (ऋभ्वा) बड़े बुद्धिमान् से (युजानः) युक्त हुआ (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य का देनेवाला (अस्माभिः) हम लोगों के साथ (अनुमाद्यः) पीछे से प्रसन्न होने योग्य (भूत्) होवे वह हम लोगों का आनन्दकारक (अस्ति) है उस राजा को आप लोग भी मानिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जैसे घोड़ों और अग्नि आदिकों से युक्त रथ अभीष्ट कार्य्यों को करता है वैसे ही उत्तम सहायों के सहित राजा राज्य के कार्य्यों को पूर्ण करने को समर्थ होता है ॥२॥

फिर वह राजा कैसा होता है इस विषय को कहते हैं ॥

न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीद॒भि व॒र्धयन्तीः ।
यदि स्तोतारः श॒तं यत्स॒हस्रं गृ॒णन्ति॒ गिर्वणसं॒ शं तद॑स्मै ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यम्) जिस (इन्द्रम्) पूर्ण विद्या वाले और अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले राजा को (इत्) ही (धीतयः) अङ्गुलियां (न) नहीं (हिंसन्ति) नष्ट करती हैं और जिस पूर्णविद्या और अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाले राजा को (वाणीः) वाणियां (न) नहीं नष्ट करती हैं और जिस पूर्णविद्या वाले और अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त राजा को (वर्धयन्तीः) बढ़ाती हुई अङ्गुलियां और वाणियां (अभि, नक्षन्ति) प्राप्त होती हैं और (यदि) जो उस (गिर्वणसम्) वाणियों से सेवा करने और मांगने वाले पूर्ण विद्या और अत्यन्त ऐश्वर्य्ययुक्त राजा की (स्तोतारः) स्तुति करने वाले जन (गृणन्ति) स्तुति करते हैं तो (यत्) जो (अस्मै) इस स्तुति करने वाले के लिए (शतम्) सैकड़ों और (सहस्रम्) असंख्य प्रकार का (शम्) सुख प्राप्त होता है (तत्) वह लोगों को भी प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस को शत्रु से की हुई विरुद्ध क्रियायें और निन्दित वाणियां नहीं पीड़ित करती हैं उस हर्ष और शोक से रहित राजा को अतुल सुख प्राप्त होता है ॥३॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

अस्मा॑ ए॒तद्दि॒व्य१॒॑र्चेव॑ मा॒सा मि॑मि॒क्ष इन्द्रे॒ न्य॑यामि॒ सोमः॑ ।
जनं॒ न धन्व॑न्न॒भि सं यदापः॑ स॒त्रा वा॑वृधु॒र्हव॑नानि य॒ज्ञैः ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वन् जिस (दिवि) सुन्दर शुद्ध व्यवहार में (इन्द्रे) दुष्टों के नाश करने वाले राजा के होने पर (मासा) चैत्र आदि महीने (वावृधुः) बढ़ते हैं और (यज्ञैः) विद्वानों के सत्कारों से (अर्चेव) सत्क्रिया के समान (सत्रा) सत्य कारण से (यत्) जो (हवनानि) दान आदि कर्म्म बढ़ते हैं तथा (धन्वन्) बालुका से युक्त स्थान में (आपः) जल (जनम्) मनुष्य को (न) जैसे वैसे (सम्, अभि) उत्तम प्रकार चारों ओर से बढ़ते हैं (एतत्) यह (अस्मै) इस के लिए (सोमः) उत्पन्न करने वाला मैं जैसे (नि, अयामि) निरन्तर प्राप्त होता हूं वैसे आप इसको (मिमिक्षः) सींचिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जैसे सत्कार करने योग्य का सत्कार और निर्जल स्थान में हुए को जल का मिलना सुखकारक

होता है वैसे ही यज्ञ का अनुष्ठान और श्रेष्ठ ऐश्वर्य्य सब के आनन्दकारक होते हैं ॥४॥

फिर विद्वानों का कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ।।

असा॑ एतन्मह्या॑ङ्गूषम॑स्मा इन्द्रा॑य स्तोत्रं म॒तिभि॑रवाचि ।

अस॒द्यथा॑ मह॒ति वृ॑त्र॒तूर्य॒ इन्द्रो॑ वि॒श्वायु॑रवि॒ता वृ॒धश्च॑ ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यथा) जैसे (मतिभिः) विचारशील मनुष्यों से (अस्मै) इस उपदेशक के लिए (एतत्) यह (महि) बड़ा (आंगूषम्) प्राप्त होने योग्य (स्तोत्रम्) स्तोत्र (अवाचि) कहा जाता है और जैसे (अस्मै) इस (इन्द्राय) ऐश्वर्य्य के करने वाले राजा के लिए यह बड़ा प्राप्त होने योग्य स्तोत्र कहा जाता है और जैसे (इन्द्रः) शत्रुओं का नाश करने वाला योद्धा (महति) बड़े (वृत्रतूर्ये) सङ्ग्राम में (वृधः) बढ़ाने और (अविता) रक्षा करने वाला (विश्वायुः, च) और पूर्ण अवस्था युक्त (असत्) होवे वैसे आप लोगों को भी करना चाहिये ॥५॥

भावार्थः—जो अविद्वान् हों वे विद्वानों के अनुकरण से अपना वर्त्ताव उत्तम करें ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में चौंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य पञ्चत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य नर ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ विराट्त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४, ५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले पैंतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा के प्रति कैसा उपदेश करें इस विषय को कहते हैं ॥

क॒दा भु॑वन्रथ॒क्षया॑णि॒ ब्रह्म॑ क॒दा स्तो॒त्रे स॑हस्रपो॒ष्यं॑ दाः ।

क॒दा स्तोमं॑ वासयो॒ऽस्य रा॒या क॒दा धियः॑ करसि॒ वाज॑रत्नाः ॥१॥

पदार्थः—हे राजन् ! आपके (कदा) कब (रथक्षयाणि) वाहन के रहने के स्थान (भुवन्) होते हैं और (कदा) कब (स्तोत्रे) प्रशंसा के साधन में (सहस्रपोष्यम्) असंख्य जनों के पुष्ट करने योग्य (ब्रह्म) धन को (दाः) दीजिये और (कदा)

कब (अस्य) इसके (राया) धन से (स्तोमम्) प्रशंसा को (वासयः) बसाइए और आप (कदा) कब (वाजरत्नाः) धन और धान्य की बढ़ाने वाली (धियः) उत्तम बुद्धियों वा उत्तम कर्म्मों को (करसि) करें ॥१॥

भावार्थः—सब सभा में बैठने वाले, विद्वान् जन और उपदेशक जन राजा से यह कहें कि आप कब सेना के अंगों और पुष्टि करने वाले ऐश्वर्य्य और उत्तम बुद्धियों को करें ॥१॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यन्नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्नीळयासे जयाजीन् ।
त्रिधातु गा अधि जयासि गोष्विन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सेना के धारण करने वाले आप (कर्हि) किस समय में (स्वित्) कहिए (वीरैः) शूरता और बल आदि से युक्त (नृभिः) उत्तम मनुष्यों से (वीरान्) धृष्टता आदि गुणों से युक्त (नॄन्) श्रेष्ठ मनुष्यों की (नीळयासे) प्रशंसा कीजिए और (गाः) पृथिवियों को कब (अधि) (जयासि) जीतिए और हे (इन्द्र) प्रतापी और सेना के धारण करने वाले आप (गोषु) पृथिवियों में और (अस्मे) हम लोगों में (यत्) जो (स्ववंत्) बहुत सुख से युक्त (त्रिधातु) सोना चांदी और तांबा ये तीन धातु जिसमें ऐसा (द्युम्नम्) धन वा यश है (तत्) उसको हम लोगों में (धेहि) धारण करिए सो ऐसा करके (आजीन्) संग्रामों को (जय) जीतिए ॥२॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप विद्वानों के साथ विद्वानों का तथा शूर-वीर जनों के साथ शूरवीरों का अच्छे प्रकार ग्रहण करके तथा संग्रामों को जीतकर और पृथिवी के राज्य को प्राप्त कर न्यायाचरण से प्रजाओं का पालन करके बड़े यश वा धन को बढ़ाइये ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

कर्हि स्वित्तदिन्द्र यज्जरित्रे विश्वप्सु ब्रह्म कृणवः शविष्ठ ।
कदा धियो न नियुतो युवासे कदा गोमघा हवनानि गच्छाः ॥३॥

पदार्थः—हे (शविष्ठ) अतिशय बली (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् आप (कर्हि) कब (स्वित्) कहिए ! (जरित्र) स्तुति करने वाले के लिए (यत्) जो (विश्वप्सु) अनेक रूप (ब्रह्म) धन (कृणवः) करेंगे (तत्) उसको इसके लिए हम लोग भी करें तथा (नियुतः) अत्यन्त श्रेष्ठ गुणों से युक्त (न) जैसे वैसे (धियः) बुद्धियों को (कदा) कब (युवासे) मिलाइएगा और (गोमघा) पृथिवी के

राज्य से सत्कृत धनों तथा (हवनानि) ग्रहण करने योग्यों को (कदा) कब (गच्छाः) प्राप्त हूजिएगा ॥३॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप सम्पूर्ण धन, पूर्ण वृद्धियां और उत्तम क्रियाओं को कब करियेगा ? अर्थात् शीघ्र इनको करिये ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स गोमंघा जरि॒त्रे अश्वंश्चन्द्रा॒ वाजंश्रवसो॒ अधि॑ धेहि॒ पृक्षः॑ ।
पी॒पि॒हीषः॑ सु॒दुघा॑मिन्द्र धे॒नुं भ॒रद्वा॑जेषु सु॒रुचो॑ रुरुच्याः ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य के देनेवाले राजन् (सः) वह आप (जरित्रे) विद्या और गुण के प्रकाश करने वाले के लिए जो (गोमघाः) पृथिवी के राज्यरूप धन वाले (अश्वश्चन्द्राः) घोड़े हैं सुवर्ण जिनके वे (वाजश्रवसः) अन्न और विद्या श्रवण युक्त (पृक्षः) सम्बन्ध करने योग्य हैं उनको हम लोगों में (अधि, धेहि) धारण करिए और (इषः) प्राप्त होने योग्य रसों को (पीपिहि) पीजिए और (भरद्वाजेषु) धारण किया विज्ञान जिन्होंने उन विद्वानों में (सुदुघाम्) उत्तम प्रकार कामना पूर्ण करने वाली (धेनुम्) विद्या और शिक्षा से युक्त वाणी को (सुरुचः) तथा उत्तम प्रीति वालों को (रुरुच्याः) प्रीतियुक्त करिए ॥४॥

भावार्थः—हे राजन् ! अपनी प्रजाओं में पूर्ण विद्या और सम्पूर्ण धन को धारण कर और शरीर के आरोग्यपन को बढ़ा के धर्म्म में रुचि करिये ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तमा नू॒नं वृ॒जन॑म॒न्यथा॑ चि॒च्छूरो॒ यच्छ॑क्र॒ वि दुरो॑ गृणी॒षे ।
मा निर॑रं शुक्र॒दुघ॑स्य धे॒नोरा॑ङ्गिर॒सान् ब्रह्म॑णा विप्र जिन्व ॥५॥

पदार्थः—हे (विप्र) बुद्धिमान् जन (शक्र) सामर्थ्य और अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् (यत्) जो (वृजनम्) चलते हैं जिससे वा जिसमें उसकी (नूनम्) निश्चित (आ, गृणीषे) प्रशंसा करते हो (तम्) उसकी (चित्) भी (निः) निरन्तर प्रशंसा करते हो और (शूरः) भयरहित और शत्रुओं के मारने वाले आप (दुरः) द्वारों को (जिन्व) पुष्ट करिए तथा (शुक्रदुघस्य) शीघ्र पूर्ण करने वाली (धेनोः) वाणी के (आङ्गिरसान्) प्राणों में श्रेष्ठों को (ब्रह्मणा) बड़े धन वा अन्न से (अरम्) अच्छे प्रकार से (वि) प्रसन्न कीजिए और कभी (अन्यथा) अन्यथा (मा) न करिए ॥५॥

भावार्थः—जो राजा आदि जन प्रजाओं को सुख से शोभित कर अन्याय से अन्यथा आचरण नहीं करते वे सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य से युक्त होते हैं ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, राजा और प्रजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छठे मण्डल में पैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य षट्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य नर ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ । ५ भुरिक् पङ्क्तिः । ३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले छत्तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा कैसा होकर क्या धारण करे इस विषय को कहते हैं ॥

सत्रा मदा॑सस्तव॑ वि॒श्वज॑न्याः स॒त्रा रायोऽध॒ ये पार्थि॑वासः ।
स॒त्रा वाजा॑नामभवो विभ॒क्ता यद्दे॒वेषु॑ धा॒रय॑था असु॒र्य॑म् ॥१॥

पदार्थ—हे राजन् (तव) आपके (ये) जो (विश्वजन्याः) सम्पूर्ण जन्य सुख जिन में वे (सत्रा) सत्य (मदासः) आनन्द देने वाले और (सत्रा) सत्य (रायः) धन (सत्रा) सत्य (पार्थिवासः) पृथिवी में विदित और (वाजानाम्) अन्न आदिकों के सत्य (विभक्ता) विभागों को प्राप्त हुए हैं उनके आप धारण करने वाले (अभवः) हूजिए (अध) इसके अनन्तर (यत्) जो (देवेषु) विद्वानों में (असुर्य्यम्) अविद्वानों में हुआ है उसको (धारयथाः) धारण कराइए ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो इस संसार में वृद्धि और आनन्द के बढ़ानेवाले, विद्या और धनादि से युक्त और विद्वानो के साथ सत्सग करने वाले हैं उनको धारण करके सत्य और असत्य के विभाग करने वाले हूजिये ॥१॥

फिर मनुष्य कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

अनु॑ प्र ये॑जे॒ जन॒ ओजो॑ अस्य स॒त्रा द॑धिरे॒ अनु॑ वी॒र्या॑य ।
स्यू॒म॒गृभे॑ दु॒धये॒ऽर्वते च॒ क्रतुं॑ वृञ्ज॒न्त्यपि॑ वृत्र॒हत्ये॑ ॥२॥

पदार्थः—हे राजन् जो (जनः) मनुष्य जैसे शूरवीर जन (अस्य) इस संसार के मध्य में (सत्रा) सत्य (ओजः) बल को (दधिरे) धारण करते हैं और

(वृत्रहत्ये) संग्राम में (स्यूमगृभे) एक दूसरे को मिले हुए के ग्रहण करने वाले (वीर्य्याय) पराक्रम के लिए (क्रतुम्) बुद्धि को (अनु) पीछे धारण करते हैं (च) और (वृधये) मारने वाले (अर्वते) प्राप्त हुए के लिए बुद्धि का (अपि) भी (वृञ्जन्ति) त्याग करते हैं वैसे (अनु, प्र, येजे) यज्ञ करता है उसको और उनको आप ग्रहण करिये और हिंसकों को वर्जिये ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य न्याय और दया से युक्त बुद्धि को धारण कर, धर्म्मयुक्त कर्म्मों को कर, दुष्टता को दूर कर और युद्ध में विजय प्राप्त करके श्रेष्ठों की संगति करते हैं वे दिन रात्रि बुद्धि को बढ़ा सकते हैं ॥२॥

फिर उस उत्तम मनुष्य को क्या प्राप्त होता है इस विषय को कहते हैं ॥

तं सध्रीचीरूतयो वृष्ण्यानि पौंस्यानि नियुतः सश्चुरिन्द्रम् ।
समुद्रं न सिन्धव उक्थशुष्मा उरुव्यचसं गिर आ विशन्ति ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वानो जिस (उरुव्यचसम्) बहुत श्रेष्ठ गुणों में व्यापक (इन्द्रम्) सत्य धर्म और न्याय के धारण करने वाले को (उक्थशुष्माः) कहे बल जिनसे वे (गिरः) वाणियां (समुद्रम्) समुद्र को (सिन्धवः) नदियां (न) जैसे वैसे (आ, विशन्ति) सब प्रकार से प्राप्त होती हैं (तम्) उसको (सध्रीचीः) एक साथ गमन करने वाली (नियुतः) वायु की निश्चित गतियों के समान क्रिया और (ऊतयः) रक्षण आदि क्रियायें (वृष्ण्यानि) दुष्टों के सामर्थ्य को रोकने वाले (पौंस्यानि) वचन भी (सश्चुः) प्राप्त होवें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे नीचे चलने वाली नदियां समुद्र को सब ओर से प्राप्त होती हैं वैसे ही धार्मिक राजा को सम्पूर्ण बल, सब रक्षायें और उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियां भी प्राप्त होती हैं ॥३॥

फिर राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं ॥

स रायस्खामुप सृजा गृणानः पुरुश्चन्द्रस्य त्वमिन्द्र वस्वः ।
पतिर्बभूथासमो जनानामेको विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) धन के स्वामिन् राजन् जैसे (विश्वस्य) सम्पूर्ण (भुवनस्य) संसार का स्वामी (असमः) जिसके समान और नहीं (सः) वह (एकः) सहायरहित (राजा) प्रकाशमान राजा है वैसे आप (जनानाम्) धार्मिक मनुष्यों और (पुरुश्चन्द्रस्य) बहुत सुवर्ण जिसमें उसके (रायः) लक्ष्मी के (वस्वः) धन के

(पतिः) स्वामी (बभूथ) हूजिये और (गृणानः) स्तुति करते हुए (त्वम्) आप (खाम्) नदी के समान धन के कोश को (उप, सृजा) बनाइये ॥४॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे राजा लोगो ! जैसे ईश्वर पक्षपात का त्याग करके सब का न्याय से पालन करने वाला है वैसे ही होकर आप लोग धन के स्वामी हूजिये ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुर्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः ।
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ॥५॥

पदार्थः—हे ऐश्वर्य से युक्त (यः) जो (द्यौः) प्रकाश (न) जैसे वसे (दुवोयुः) सेवा की कामना करता हुआ (अर्यः) स्वामी (शवसा) बल से (चकानः) कामना करता हुआ (युगेयुगे) प्रतिवर्ष (वयसा) अवस्था से (चेकितानः) जानता हुआ (श्रुत्या) श्रवण से (यथा) जैसे (नः) हम लोगों के समाचार को सुनता है और जैसे (सः) वह (असः) हो तथा (रायः) धनों को प्राप्त हुए हम लोग प्रकाश जैसे वैसे (भूम) होवें वैसे (तु) तो आप सब की बात को (अभि, श्रुधि) सुनें ॥५॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे परीक्षक विद्यार्थियों के अध्ययन की परीक्षा करके विद्वान् करता है वैसे ही राजा यथार्थ न्याय को करके प्रजाओं को प्रसन्न करे ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान् और राजा के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में छत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य सप्तत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ४ । ५ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ निचृत्पङ्क्तिः । ३ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले सैंतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥१॥

पदार्थः—हे (उग्र) तेजस्विन् (इन्द्र) प्रजा के स्वामिन् जो (युक्तासः) नियुक्त किये गए (हरयः) घोड़ों के तुल्य शिल्पी मनुष्य (ते) आपके (विश्ववारम्) सम्पूर्ण सुख स्वीकार करने वाले (रथम्) सुन्दर वाहन को (वहन्तु) प्राप्त करावें और जो (स्वर्वान्) बहुत सुख विद्यमान जिसमें वह (कीरिः) स्तुति करने वाला विद्वान् (हि) ही (त्वा) आपको (हवते) पुकारता है उनके (सधमादः) तुल्य स्थान वाले हम लोग (ऋधीमहि) समृद्ध होवें। और जिन (ते) आपके (अर्वाक्) पीछे (अद्य) इस समय जो सुख को प्राप्त होते हैं वे (चित्) भी इस समय सुखों से भूषित होते हैं ॥१॥

भावार्थः—जो राजा धार्मिक और अनुकूल मनुष्यों का सत्कार करता है उस की सब धर्मिष्ठ विद्वान् सदा सेवा करते हैं ॥१॥

फिर मनुष्य परस्पर कैसा वर्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्रो द्रोणे हर॑यः कर्मा॑ग्मन्पुना॒नास॒ ऋज्य॑न्तो अभूवन् ।
इन्द्रो॑ नो अ॒स्य पू॒र्व्यः प॑पीयाद् द्यु॒क्षो मद॑स्य सो॒म्यस्य॒ राजा॑ ॥२॥

पदार्थः—जो (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्यवाला (अस्य) इस (सोम्यस्य) ऐश्वर्य्य में हुए (मदस्य) आनन्द का (द्युक्षः) अन्तरिक्ष के सदृश भूमि जिस की वह (पपीयात्) बढ़े और (पूर्व्यः) पूर्वजनों से उत्पन्न किया गया (नः) हम लोगों का (राजा) प्रकाशमान राजा होवे और जो (पुनानासः) पवित्र (ऋज्यन्तः) सरल के सदृश आचरण करते हुए (हरयः) मनुष्य (द्रोणे) परिमाण में (कर्म्म) कर्म्म को (प्रो) अच्छे प्रकार (अग्मन्) प्राप्त होते हैं और (अभूवन्) प्रसिद्ध होते हैं वे अन्यों को भी पवित्र करते हैं ॥२॥

भावार्थः—जो राजा आदि श्रेष्ठ जन स्वयं पवित्र और श्रेष्ठ स्वभाव वाले और सरल होकर श्रेष्ठ कर्म्मों को करके न्याय से हम लोगों की रक्षा करते हैं वे हम लोगों से सत्कार करने योग्य हैं ॥२॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

आ॒स॒स्रा॒णासः॑ शवसा॒नमच्छेन्द्रं॑ सुच॒क्रे र॒थ्या॑सो॒ अश्वाः॑ ।
अ॒भि श्र॒व ऋज्य॑न्तो वहेयु॒र्नू चि॒न्नु वा॒योर॒मृतं॒ वि द॑स्येत् ॥३॥

पदार्थः—जो (आसस्राणासः) चारों ओर से गमन करने वाले (रथ्यासः) वाहनों में श्रेष्ठ (अश्वाः) घोड़े जैसे वैसे (अभि, श्रवः) चारों ओर से सुनने वाले (ऋज्यन्तः) सरल के समान आचरण करते हुए विद्वान् जन (शवसानम्) बलयुक्त

(इन्द्रम्) राजा को (नू) शीघ्र (वहेयुः) प्राप्त होवें और जो (चित्) भी इन को (अच्छ) अच्छे प्रकार (सुचक्रे) सुन्दर करता है वह (वायोः) पवन के (अमृतम्) नाशरहित स्वरूप को प्राप्त होकर दुःखों की (नु) शीघ्र ही (वि, दस्येत्) उपेक्षा करे ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे प्रजाजनो ! जैसे राजा आप लोगों की वृद्धि करे वैसे आप लोग भी इस की वृद्धि करिये और सब योगाभ्यास करके प्राणों में वर्त्तमान परमात्मा को जान कर दुःखों का नाश करो ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

वरिंष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः ।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥४॥

पदार्थः—हे (वज्रिवः) प्रशंसित शस्त्र और अस्त्र से तथा (धृष्णो) दृढ़ उत्साह से युक्त (यया) जिस दक्षिणा से आप (अंहः) अपराध का (परियासि) सब प्रकार से परित्याग करते हो (सूरीन्) विद्वानों (मघा, च) और धनों को (वि) विशेष करके (दयसे) देते हो उस (अस्य) इस राज्य के (मघोनाम्) बहुत धनों से युक्तों की (दक्षिणाम्) बढ़ाने वाली दक्षिणा को (तुविकूर्मितमः) अत्यन्त बहुत करने और (वरिष्ठः) अत्यन्त स्वीकार करने वाले (इन्द्रः) राजा हुए आप (इयर्त्ति) प्राप्त होते हैं इससे सत्कार करने योग्य हैं ॥४॥

भावार्थः—वही राजा स्थिर राज्य करने योग्य है जो विद्वानों और धार्मिक जनों पर दया करता और दुष्ट व्यसनों का त्याग करता है तथा पुरुषार्थी होकर दूतरूप चक्षुवाला हुआ प्रजा के पालन में यत्नवाला होता है ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः ।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तूतुजानः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (इन्द्रः) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त और (स्थविरस्य) स्थूल (वाजस्य) अन्न आदि का (दाता) देने वाला और जो (इन्द्रः) विद्या और ऐश्वर्य्य से युक्त राजा (गीर्भिः) वाणियों से (वर्धताम्) बढ़े और (वृद्धमहाः) वृद्धों से सत्कार किया (इन्द्रः) सूर्य्य (वृत्रम्) मेघ का जैसे वैसे शत्रुओं का

(हनिष्ठः) अत्यन्त मारने वाला (अस्तु) हो और जो (तूतुजानः) शीघ्र करने वाला (सत्वा) सतोगुण से युक्त (सूरिः) विद्वान् (ता) उन धनों को (आ, पृणति) अच्छे प्रकार सुखयुक्त करता है उसका तुम सब लोग सत्कार करो ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अभय का देने वाला, विद्या में वृद्धों और आप्तों का सेवक, दुष्टों का मारने वाला, शीघ्रकर्त्ता, विद्वान् मनुष्य हो उसी को तुम लोग राजा मानो ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा और प्रजा के कर्म्मों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छठे मण्डल में सैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्याष्टत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ३ । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले अड़तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को कैसे विद्वान् की सेवा करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अपा॑दि॒त उदु॑ नश्चि॒त्रत॑मो म॒हीं भ॑र्षद् द्यु॒मती॒मिन्द्र॑हूतिम् ।
पन्य॑सीं धी॒तिं दैव्य॑स्य याम॒ञ्जन॑स्य रा॒तिं व॑नते सु॒दानुः॑ ॥१॥

पदार्थः—जो (अपात्) पैरों से रहित (इतः) प्राप्त हुआ (चित्रतमः) अत्यन्त अद्भुत गुण कर्म्म और स्वभाव वाला (सुदानुः) उत्तम दान वाला (नः) हम लोगों के लिये (द्युमतीम्) विद्या के प्रकाशवाली (इन्द्रहूतिम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य की प्रकाशिका (पन्यसीम्) प्रशंसा करने योग्य (दैव्यस्य) श्रेष्ठ गुण अथवा विद्वानों में हुए (जनस्य) मनुष्य की (धीतिम्) धारणा से युक्त बुद्धि को और (महीम्) महती वाणी को तथा (यामन्) चलते हैं जिसमें उस मार्ग में (रातिम्) दान को (उत्, भर्षत्) धारण करता (उ) और (वनते) सेवन करता है वह विद्वान् मंगल करने वाला होता है ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस यथार्थवक्ता विद्वान् की सब के ऊपर दया, विद्यादान, निष्कपटता और उत्तम दृष्टि वर्त्तमान है वही सब से सत्कार करने योग्य होता है ॥१॥

फिर मनुष्य क्या ग्रहण करके सेवा करें इस विषय को कहते हैं ॥

दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।

एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्य१गिन्द्रमियमृच्यमाना ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस (अस्य) इस (इन्द्रस्य) राजा के (दूरात्) दूर से (चित्) भी (वसतः) निवास करते हुए के (कर्णा) दोनों कान (घोषात्) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी से जो (आ, तन्यति) अच्छे प्रकार शब्दित करता है और जो (देवहूतिः) विद्वानों से प्रशंसा की गई (इयम्) यह वाणी (एनम्) इस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य्य से युक्त विद्वान् को (आ) चारों ओर से (ववृत्यात्) वर्त्तित करे और (इयम्) यह (ऋच्यमाना) स्तुति की गई और जो (मद्र्यक्) मुझ सरीखा (ब्रुवाणः) उपदेश करता हुआ है उसको वर्त्तें उसकी और उसकी आप लोग सेवा करो ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस का आत्मा श्रोत्रों के द्वारा विद्या से तृप्त होवे और जिसको सम्पूर्ण विद्या से युक्त वाणी प्राप्त होवे उसी का उत्तम प्रकार सेवन करके पूर्ण विद्या को प्राप्त हूजिये ॥२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः ।

ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महांश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वानो जैसे तुम (ब्रह्मा) वेद की और (वः) आप लोगों की (परमया) अत्यन्त उत्तम (धिया) बुद्धि वा कर्म से (तम्) उस (पुराजाम्) पहिले प्रकट हुए (अजरम्) जीर्ण होने से रहित (इन्द्रम्) बिजुली की भी प्रशंसा करो वैसे (अर्कैः) सूर्य्यों से मैं इसकी (अभि, अनूषि) स्तुति करता हूं और जैसे (च) भी (अस्मिन्) इस (इन्द्रे) अत्यन्त ऐश्वर्य्य में (च) भी (महान्) बड़ा (स्तोमः) प्रशंसा करने योग्य गुण कर्म्म और स्वभाव वाला (अधि, वर्धत्) बढ़ता है और जैसे आप विद्वानों की (गिरः) वेदवाणियों को (सम्) (दधिरे) उत्तम प्रकार धारण करते हैं वैसे हम लोग अनुष्ठान करें ॥३॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है– जो मनुष्य विद्वानों के उपदेश और पुरुषार्थ से बिजुली आदि की विद्यायुक्त बुद्धि को स्वीकार करते हैं वे यहां स्तुति करने योग्य होते हैं ॥३॥

अब मनुष्य क्या बढ़ावें इस विषय को कहते हैं ॥

वर्धाद्यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद् ब्रह्म गिरं उक्था च मन्म ।

वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यम्) जिस (इन्द्रम्) बिजुली आदि की विद्या को (यज्ञः) श्रेष्ठों की संगति आदि स्वरूप और (उत) भी (सोमः) प्रेरणा करने वाला विद्वान् (वर्धात्) बढ़ावे और (ब्रह्म) धन को (वर्धात्) बढ़ावे तथा (उक्था) प्रशंसा करने योग्य वचनों और (मन्म) विज्ञानों और (गिरः) वाणियों को (च) भी (वर्धं) बढ़ावे और (अह) इसके अनन्तर (एनम्) इस (उषसः) प्रभात से और (अक्तोः) रात्रि से (यामन्) चलते हैं जिस में उस मार्ग में (मासाः) महीने (शरदः) ऋतुयें और (द्यावः) प्रकाशयुक्त दिन वा प्रकाश (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य को (वर्धान्) बढ़ावें वे हम लोगों को बढ़ावें ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वानों का सत्कार और संगतिस्वरूप व्यवहार, बिजुली आदि की विद्या को तथा अत्यन्त ऐश्वर्य्य और पूर्ण आयु को बढ़ाता है वैसे ही आप लोग सम्पूर्ण श्रेष्ठ व्यवहारों को दिनरात्रि बढ़ाइये ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय ।

महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥५॥

पदार्थः—हे (विप्र) बुद्धियुक्त (असामि) उपमारहित को (सहसे) बल के लिए (जज्ञानम्) विद्या और विनयों में प्रकट हुए को (राधसे) असंख्य धनयुक्त के लिए (श्रुताय) सम्पूर्ण विद्याओं का किया श्रवण जिसने उसके लिए (च) भी (वावृधानम्) बढ़ते हुए को (वृत्रतूर्य्येषु) शत्रुओं से हिंसा करने योग्य संग्रामों में (अवसे) रक्षण आदि के लिए (महाम्) बड़े (उग्रम्) तेजस्वी की हम लोग (नूनम्) निश्चित (आ) सब प्रकार से (विवासेम) नित्य सेवा करें उस (एवा) ही की आप भी सेवा करो ॥५॥

भावार्थः—जब मनुष्य सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुण कर्म्म और स्वभावों में वर्त्तमान शूरवीर विद्वान् की सेवा कर और विद्या को ग्रहण करके बल आदि को बढ़ावें तो वे कौनसा उत्तम कार्य्य न सिद्ध कर सकें ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, उत्तम बुद्धि और वाणी के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में अड़तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकोनचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ । ५ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले उनतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

मन्द्रस्य॑ क॒वेर्दि॒व्यस्य॒ वह्ने॒र्विप्र॑मन्मनो वच॒नस्य॒ मध्वः॑ ।
अपा॑ न॒स्तस्य॑ सच॒नस्य॑ दे॒वेषो॑ युवस्व गृण॒ते गोअ॑ग्राः ॥१॥

पदार्थः – हे (देव) अत्यन्त विद्वन् आप (वह्नेः) सम्पूर्ण विद्याओं के धारण करने वाले अग्नि के सदृश (कवेः) विद्वान् और (दिव्यस्य) सुन्दर इच्छाओं में श्रेष्ठ (मन्द्रस्य) आनन्दित होते और आनन्दित करते हुए (विप्रमन्मनः) विद्वान् का विज्ञान जिस में उस (मध्वः) माधुर्य आदि गुण से युक्त (वचनस्य) वचन के व्यवहार का (अपाः) पालन करिये और (तस्य) उस (सचनस्य) सम्बद्ध हुए की (गृणते) स्तुति करते हुए के लिए (गोअग्राः) वाणी उत्तम जिनमें उन (इषः) अन्न आदि वा इच्छाओं को (नः) हम लोगों के लिए (युवस्व) संयुक्त कीजिये ॥१॥

भावार्थः– हे विद्वन् ! आप ऐसा प्रयत्न करिये जिससे हम लोगों को दिव्य सुख, दिव्य विद्या और दिव्य ऐश्वर्य्य प्राप्त होवे ॥१॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अ॒यमु॑शा॒नः पर्यद्रि॑मु॒स्रा ऋ॒तधी॑तिभिर्ऋ॒त॒युग्यु॑जा॒नः ।
रु॒जद॑रु॒ग्णं वि व॒लस्य॒ सानुं॑ प॒णीँर्वचो॑भिर॒भि यो॑ध॒दिन्द्रः॑ ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (अयम्) यह (ऋतधीतिभिः) जल के धारण करने वाले गुणों से (उस्राः) किरणों को (युजानः) धारण करता हुआ (इन्द्रः) सूर्य्य (अद्रिम्) मेघ को (परि, रुजत्) विभाग करता है और (वलस्य) मेघ के (सानुम्) शिखर के आकार मेघ को नाश करने को (अभि, वि, योधत्) सब ओर से विशेष कर युद्ध करता है वैसे (ऋतयुक्) सत्य से युक्त होनेवाला (उशानः) कामना करता

हुआ (वचोभिः) वचनों से उत्तम जन को (अरुणम्) रोगरहित और (पणीन्) प्रशंसा करने योग्य व्यवहारों को सिद्ध कीजिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वान् जनो ! जैसे सूर्य्य अपनी किरणों से भूमि से जलका आकर्षण कर धारण कर और मेघ के आकार का नाश करके पृथिवी के ऊपर गिराय सम्पूर्ण व्यवहारों को सिद्ध करता है वैसे ही विद्वानों से श्रेष्ठ विद्याओं का आकर्षण कर धारण करके उत्तम विद्यार्थियों में वर्षाय और अविद्या का नाश करके विज्ञान से धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष के व्यवहारों को सिद्ध करो ॥२॥

फिर विद्वान् जन कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

अयं द्योतयदद्युतो व्य१'क्तून् दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र ।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान विद्वन् जैसे (अयम्) यह (इन्दुः) गीला करनेवाला सूर्य्य (अद्युतः) नहीं प्रकाश करने वाले भूमि आदिकों को और (अक्तून्) रात्रियों को (दोषा) प्रभातकालों को (वस्तोः) दिन को (शरदः) शरद् आदि ऋतुओं को (वि, द्योतयत्) प्रकाशित करता है और (अह्नाम्) दिनों के (चित्) भी (शुचिजन्मनः) सूर्य्य से जन्म जिसका उस (उषसः) प्रभात वेला की प्रकटता को (चकार) करता है वैसे (इमम्) इस (केतुम्) बुद्धि को प्रकाशित कीजिये और जैसे इस प्रकाशस्वरूप सूर्य्य को प्रभात वेलायें (अदधुः) धारण करें वैसे (नू) शीघ्र विद्या के प्रकाश को धारण करिये ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वान् जनो ! आप लोग जैसे सूर्य्य अप्रकाशक भूमि आदि का प्रकाश करने और आनन्द करने वाला पवित्रक्षण आदि समयों का निम्मर्णि करता है वैसे मनुष्यों के आत्माओं के प्रकाशक हुए विद्या की वृद्धि करने वाले कर्मों को निष्पन्न कीजिये और कर्मों का प्रचार कराइये ॥३॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अयं रोचयदरुचो रुचानो३'यं वासयद्व्यृ१'तेन पूर्वीः ।
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो जैसे (अयम्) यह (अरुचः) प्रकाश से रहित चन्द्र आदिकों को (रुचानः) प्रकाशित करता हुआ सूर्य्य सम्पूर्ण जगत् को (रोचयत्) प्रकाशित करता है वैसे विद्या से सब मनुष्यों को प्रकाशित करिये जैसे (अयन्) यह

सूर्य्य (ऋतेन) जल के सदृश सत्य से (पूर्वीः) पहिले उत्पन्न हुई प्रजाओं को (वि, वासयत्) विशेष बसाता है वैसे सम्पूर्ण प्रजाओं को सत्य विज्ञान से संयुक्त करिये और जैसे (अयम्) यह सूर्य्य (ऋतयुग्भिः) जल के युक्त करने वालों से (अश्वैः) महान् शीघ्रगामी किरणों और (स्वर्विदा) सुख को जानते हैं जिससे उस (नाभिना) मध्य के आकर्षण आदि बन्धन से (चर्षणिप्राः) विद्या आदि गुणों से मनुष्यों के प्रति व्याप्त होने वाला हुआ (ईयते) जाता है वैसे सत्य के युक्त कराने वाले बड़े गुणों से सुख देने वाले आत्मा के आकर्षण से और वक्तृत्व से श्रोताओं को व्याप्त होते हुए जहां तहां जाइये ॥४॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन सूर्य्य के सदृश प्रकाशात्मा होकर अविद्या का विनाशकर और मनुष्यों को विद्या से प्रकाशित करते हैं और सत्य आचरण के प्रति आकर्षित करते हैं वे धन्य हैं ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू गृ॑णानो गृ॑ण॒ते प्र॑त्न रा॒ज॒न्निषः॑ पिन्व वसु॒देया॑य पू॒र्वीः।
अप ओष॑धीरवि॒षा वना॑नि॒ गा अर्व॑तो॒ नॄनृ॒चसे॑ रिरीहि ॥५॥

पदार्थः—हे (राजन्) विद्या और विनय से प्रकाशमान (प्रत्न) प्राचीन तथा दीर्घ आयुयुक्त आप (गृणते) स्तुति करते हुए के लिए (गृणानः) स्तुति करते हुए (वसुदेयाय) द्रव्य देने योग्य जिससे उसके लिए (पूर्वीः) पूर्ण सुखवाले (इषः) अन्न आदिकों को (अपः) जलों को (ओषधीः) यव आदिकों को (अविषा) नहीं विद्यमान विष जिनमें उन (वनानि) जंगलों को (गाः) धेनु आदिकों को (अर्वतः) अश्व आदिकों को और (नॄन्) मनुष्य आदिकों को (ऋचसे) प्रशंसित कर्म्म के लिए (पिन्व) सेवन करिए और (नू) शीघ्र (रिरीहि) याचना करिये ॥५॥

भावार्थः—जो राजा सत्यवादी है और सत्य बोलने वालों को प्रसन्न करता है और विद्वानों से विद्या और विनय को प्राप्त होकर सदा ही प्रजा के सुख को चाहता है तथा यज्ञ और उत्तम सुगन्धित फल पुष्प से युक्त वृक्षों से और लता आदिकों से सब को सुखयुक्त करता हुआ, जल ओषधि वृक्ष गौ घोड़ा और मनुष्यों के सुख की वृद्धि के लिए परमेश्वर वा विद्वानों से याचना करता है वही इस लोक और परलोक के अनन्त आनन्द को प्राप्त होता है ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, सूर्य और राजा के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये

यह छठे मण्डल में उनतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ भुरिक् पङ्क्तिः । ५ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले चालीसवें सूक्त का प्रारम्भ किया जाता है उसके प्रथम मन्त्र में राजा को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाव स्य हरी वि मुचा सखाया ।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् जो (तुभ्यम्) आपके लिए (मदाय) हर्ष के अर्थ (सुतः) उत्पन्न किया गया सोमलता का रस है उसको (पिब) पीजिए उस से (अव, स्य) विनाश को अन्त करिये अर्थात् निश्चित रहिए और (उत) भी (हरी) संयुक्त घोड़ों के सदृश वर्त्तमान राजा और प्रजाजन (वि, मुचा) जो कि दुःख का त्याग करने वाले (सखाया) मित्र होते हुए हैं उनकी (प्र, गाय) स्तुति करिये और (गणे) गणना करने योग्य विद्वानों के समूह में (निषद्य) स्थित होकर (अथा) इस के अनन्तर (गृणते) सत्यविद्या को धारण करने वाले की नहीं प्रशंसा करने वाले के लिए तथा (यज्ञाय) सत्य से संयुक्त होने वाले के लिए (वयः) कामना करने योग्य अवस्था को (आ) सब प्रकार से (धाः) धारण करिये ॥१॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप सोमलता आदि बड़ी ओषधियों के रस का पान कर, रोगरहित होकर, सत्य और असत्य का निर्णय कर, सब मित्रों की स्तुति करके, विद्वानों की सभा में स्थित होकर और सत्य न्याय का प्रचार करके, दीर्घ ब्रह्मचर्य्य से विद्याग्रहण के लिए सम्पूर्ण बालिका और बालकों को प्रवृत्त कराके सम्पूर्ण प्रजाओं को अधिक अवस्थावाली करिये ॥१॥

अब मनुष्यों को क्या खाना और क्या पीना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन् ।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दुं समह्यन्पीतये समस्मै ॥२॥

पदार्थः—हे (विरप्शिन्) बड़े गुण से विशिष्ट (इन्द्र) राजन् (यस्य) जिस (अस्य) इसके (मदाय) आनन्द देने वाले (क्रत्वे) प्रज्ञान के लिए रस को (अपिबः) पान किया उस रस को आप फिर (जज्ञानः) प्रसिद्ध होते हुए (पिब) पान करिये और जिन (ते) आप के (गावः) किरणों के सदृश (नरः) मनुष्य और (आपः) जल

और (अद्रिः) मेघ (इन्दुम्) जल को जैसे वैसे (तम्, उ) उसको ही प्राप्त होते हैं और (अस्मै) इस (पीतये) पान के लिए (सम्, अह्मन्) अच्छे प्रकार व्याप्त होते हुए आप (सम्) उत्तम प्रकार पान करिए ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! जिस भोजन और पान से वुद्धि और बल बढ़े उसका भोजन और उसका पान करिये और उसका भोजन कराइये और पान कराइये तथा उसका भोजन और पान न करिये और न कराइए जिससे वुद्धिभ्रंश होवे ॥२॥

फिर राजा और राजा के जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः ।
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुवितायं महे नः ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देनेवाले (वहिष्ठाः) अतिशय प्राप्त कराने वाले (हरयः) घोड़ों के सदृश मनुष्य (समिद्धे) उत्तम प्रकार प्रदीप्त (अग्नौ) अग्नि में और (सुते) उत्पन्न हुए (सोमे) बड़ी ओषधि के रस में (त्वा) आपको (आ, वहन्तु) सब प्रकार से प्राप्त करावें और हे (इन्द्र) दुःख दारिद्रय के विदारने वाले जिन (त्वायता) आपको प्राप्त हुए (मनसा) विज्ञान से मैं आप को (जोहवीमि) अत्यन्त पुकारता हूं वह आप (महे) बड़ी (सुविताय) प्रेरणा के लिए (नः) हम लोगों को (आ, याहि) सब प्रकार से प्राप्त हूजिए ॥३॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप उत्तम मनुष्यों के साथ वैद्यों की उत्तम प्रकार परीक्षा कर, उत्तम रसों और अन्नों को सम्पन्न कर, उनका भोजन कर, एकमत कर और प्रजाजनों की रक्षा करके अत्यन्त ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर हम लोगों को भी धनयुक्त करिये ॥३॥

फिर राजा आदिकों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम् ।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे३ वयो धात् ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त धन के देने वाले जो (यज्ञः) सद्विद्या और व्यवहार को बढ़ाने वाला व्यवहार (नः) हम लोगों के और (ते) आप के (तन्वे) शरीर के लिए (वयः) जीवन को (धात्) धारण करता है उससे (अथा) इसके अनन्तर (इमा) इन (ब्रह्माणि) धनों को वा वेदों को आप (महा) बड़े (मनसा) विज्ञानयुक्त चित्त से (उशता) कामना करते हुए विद्वान् के साथ (शृणवः) सुनिए और

(शश्वत्) निरन्तर (ययाथ) प्राप्त हूजिए तथा (सोमपेयम्) पीने योग्य सोमलता के रस को पीने के लिए (उप, आ, याहि) समीप प्राप्त हूजिए ॥४॥

भावार्थः—हे विद्वान् राजा आदि जनो ! आप लोग विद्वानों के साथ मेल कर, वुद्धि और वल के वढ़ाने वाले आहार और विहार को कर, परस्पर विचार करके ब्रह्मचर्य्य आदि से अवस्था को बढ़ायें जिससे सब महाशय आप्त होवें ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्यद्वा स्वे सदने यत्र वासि ।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्त्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ॥५॥

पदार्थः—हे (गिर्वणः) उत्तम शिक्षित वाणी से स्तुति किये गए (इन्द्र) विद्वन् (यत्) जो (पार्य्ये) पालन करने योग्य राज्य में (दिवि) कामना करने योग्य में (यत्) जो (ऋधक्) यथार्थ और (यत्) जो (वा) वा (स्वे) अपने (सदने) स्थान में (यत्र) जहां (वा) वा आप (असि) हो (अतः) इस कारण से (नः) हम लोगों के (अवसे) रक्षण आदि के लिये (नियुत्वान्) नियत करने वाले ईश्वर के सदृश (सजोषाः) तुल्य प्रीति के सेवन करने वाले हुए (मरुद्भिः) उत्तम मनुष्यों के साथ (यज्ञम्) सत्कार करने योग्य न्याय व्यवहार की (पाहि) रक्षा कीजिये ॥५॥

भावार्थः—हे राजन् ! आपको चाहिये कि सदा ही राज्य का उत्तम प्रकार रक्षण, सत्य का प्रचार और अपने सदृश सब का ज्ञान और ईश्वर के सदृश पक्षपात का त्याग करके महाशय धार्म्मिक श्रेष्ठ जनों के साथ प्रजा का पालन निरन्तर करें ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, सोम ओषधि, राजा और प्रजा के कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में चालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ विराट् त्रिष्टुप् । २ । ३ । ४ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचावाले इकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः ।
गावो न वज्रिन्त्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥१॥

पदार्थः—हे (वज्रिन्) शस्त्र और अस्त्र को धारण करने और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले (यज्ञियानाम्) यज्ञ का पालन करने के योग्यों में (प्रथमः) पहिला (अहेळमानः) सत्कार किया गया जिस (यज्ञम्) आहार विहार नामक यज्ञ को (तुभ्यम्) आपके लिये और (सुतासः) उत्पन्न किये गए (इन्दवः) सोमलता आदि के जल (पवन्ते) पवित्र करते हैं उसके (उप, याहि) समीप आइये और (गावः) गौवें (न) जैसे (स्वम्) अपने (ओकः) निवास स्थान को वैसे (अच्छ, आ, गहि) अच्छे प्रकार सब ओर से प्राप्त हूजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! प्रजाजनों से उत्तम गुणों के योग के कारण सब से सत्कार किये गए राज्य के पालन नामक व्यवहार को यथावत् प्राप्त हूजिये और जैसे गौवें अपने बछड़े और स्थानों को प्राप्त होती हैं वैसे प्रजा के पालन के लिये विनय को प्राप्त हूजिये ॥१॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

या ते काकुत्सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत्पिबसि मध्व ऊर्मिम् ।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रो वर्त्ततामिन्द्र गव्युः ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) धर्म्म के धारण करने वाले मनुष्यों के स्वामिन् (ते) आपकी (या) जो (सुकृता) सत्य भाषण आदि उत्तम क्रिया से युक्त और (या) जो (वरिष्ठा) अतिशय उत्तम (काकुत्) उत्तम प्रकार शिक्षा की गई वाणी (यया) जिससे आप (ऊर्मिम्) तरंग को जैसे वैसे (मध्वः) मधुर आदि गुणों से युक्त के रस को (शश्वत्) निरन्तर (पिबसि) पान करते हो और जिससे (ते) आपका (अध्वर्युः) अपने अहिंसारूप व्यवहार की कामना करते हुए अच्छे प्रकार से (प्र, अस्थात्) स्थित होते हो और जिससे (ते) आपका (वज्रः) शस्त्र और अस्त्रों का समूह (सम्, वर्त्तताम्) उत्तम प्रकार वर्त्तमान होवे (तया) उससे (गव्युः) पृथिवी-राज्य की इच्छा करने वाले हुए सम्पूर्ण प्रजाओं का (पाहि) पालन करिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—राजा और राजा के सभासद् उत्तम प्रकार संस्कार की विद्या से युक्त सत्यभाषण से उज्ज्वलित वाणियों को प्राप्त होकर उन से प्रजापालन आदि व्यवहारों को निरन्तर सिद्ध करें ॥२॥

फिर वे किसके लिये क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः ।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम् ॥३॥

पदार्थः—हे (हरिवः) अच्छे मनुष्यों से युक्त (स्थातः) स्थित होने वाले (उग्र) तेजस्विन् राजन् (यस्य) जिस (ते) आपका (एषः) यह (द्रप्सः) दुष्टों का विमोह करना (वृषभः) सुख का वर्षाने वाला (विश्वरूपः) अनेक प्रकार के स्वरूप वाला (सोमः) बड़ी-बड़ी ओषधियों से उत्पन्न हुआ रस (वृष्णे) वल आदि गुण के करने और (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्य को प्राप्त कराने वाले के लिये (सम्, अकारि) किया जाता है (यः) जो (प्रदिवि) अच्छे प्रकार सुन्दर व्यवहार में (अन्नम्) भोजन करने योग्य पदार्थ को प्राप्त कराता (एतम्) इस का आप (पिब) पान करिये और इसके (ईशिषे) स्वामी हूजिये ॥३॥

भावार्थः—जिस राजा के अनेक प्रकार के उत्तम प्रबन्ध, उत्तम ओषधियाँ, उत्तम सेना और धार्मिक विद्वान् अधिकारी हैं वही सम्पूर्ण प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है ॥३॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यानयं श्रेयाञ्चिकितुषे रणाय ।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व ॥४॥

पदार्थः—हे (तितिर्वः) शत्रुओं के वल को उल्लङ्घन करने वाले (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त जो (अयम्) यह (चिकितुषे) विचार करने को इष्ट (रणाय) संग्राम के लिये (श्रेयान्) अतिशय कल्याण को प्राप्त (वस्यान्) अतिशय वास करनेवाला (असुतात्) नहीं उत्पन्न किये गए पदार्थों से (सोमः) बड़े ऐश्वर्य्यों का योग (सुतः) उत्पन्न किया गया है (एतम्) इस (यज्ञम्) उत्तम प्रकार प्राप्त होने योग्य के आप (उप, याहि) समीप प्राप्त हूजिये (तेन) उससे (विश्वाः) सम्पूर्ण (तविषीः) बलयुक्त सेनाओं को (आ, पृणस्व) सब प्रकार से सुखी करिये ॥४॥

भावार्थः—जो राजा छोटे भी संग्राम के लिये बड़ी सामग्री को इकट्ठी करते हैं वे शत्रुओं को जीतते हुए सम्पूर्ण प्रजाओं को निरन्तर सुखी करने के योग्य हैं ॥४॥

फिर वह कैसा हुआ क्या करे इस विषय को कहते हैं॥

ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङरं ते सोमस्तन्वे भवाति।

शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु॥५॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) असंख्य बुद्धियुक्त तथा उत्तम कर्म्म करने और (इन्द्र) सब प्रकार से रक्षा करने वाले (ते) आपके (तन्वे) शरीर के लिये जो (सोमः) बड़ी ओषधि आदि का रस (अर्वाङ्) नीचे चलने वाला (प्र, भवाति) प्रभाव को प्राप्त होता है उसको आप (याहि) प्राप्त हूजिये और जिन (त्वा) आपको हम लोग (आ, ह्वयामसि) पुकारते हैं वह आप (सुतेषु) उत्पन्न हुए ऐश्वर्य्यों में (अस्मान्) हम लोगों की (प्र अव) उत्तम प्रकार रक्षा करो और (पृतनासु) मनुष्यों वा सेनाओं में और (विक्षु) प्रजाओं में (अरम्) अच्छे प्रकार (मादयस्वा) आनन्द करो वा आनन्द कराओ॥५॥

भावार्थः—जो राजा अपने ऐश्वर्य्य से सम्पूर्ण प्रजाओं की न्याय से रक्षा करता है वह प्रशंसित, अधिक अवस्था वाला और आनन्दयुक्त वा आनन्द कराने वाला भी होता है॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा और सोम के रस का गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह छठ मण्डल में इकतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ॥

अथ चतुर्ऋचस्य द्विचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ स्वराडुष्णिक्छन्दः। ऋषभः स्वरः। २ निचृदनुष्टुप्। ३ अनुष्टुप्। ४ भुरिगनुष्टुप् छन्दः। गान्धारः स्वरः॥

अब चार ऋचा वाले बयालीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं॥

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर।

अरंगमाय जग्मयेऽपश्चाद्दध्वने नरे॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् राजन् आप (जग्मये) विज्ञान की अधिकता के लिये (अपश्चाद्दध्वने) उत्तम व्यवहारों में आगे चलने तथा (अरङ्गमाय) विद्या के पार जाने और (पिपीषते) पान करने की इच्छा करने वाले (विदुषे) यथार्थवक्ता विद्वान् के लिये और (अस्मै) इस (नरे) अग्रणी मनुष्य के लिए (विश्वानि) सम्पूर्ण उत्तम

वस्तुओं को (भर) धारण करिये और यह भी आपके लिए इनको (प्रति) धारण करे ॥१॥

भावार्थः—जो राजा विद्वानों के लिये सम्पूर्ण धन वा सामर्थ्य को धारण करता है और जो विद्वान् राजा आदि के हित के लिए प्रयत्न करते हैं वे सर्वदा उन्नत होते हैं ॥१॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

एवेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आप लोग (सुतेभिः) उत्पन्न किये गए (सोमेभिः) ऐश्वर्यों वा ओषधियों के समूहों से (इन्दुभिः) आनन्दकारक जलों से तथा (अमत्रेभिः) उत्तम पात्रों से (सोमपातमम्) अतिशय सोमरस के पीनेवाले (ऋजीषिणम्) सरल धार्मिक जनों की इच्छा करने के स्वभाव वाले (एनम्) इस (इन्द्रम्) ऐश्वर्य के देनेवाले राजा की (ईम्) सब ओर से (आ) सब प्रकार से (प्रत्येतन) प्रतीति करिये ॥२॥

भावार्थः—हे राजा और प्रजाजनो ! आप लोग यथार्थवक्ता तथा राजा आदि विद्वानों में विश्वास करिये और वे आप लोगों में विश्वास करें इस प्रकार दोनों ओर आनन्द बढ़े ॥२॥

फिर वे परस्पर क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

यदीं सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो जो जो (विश्वस्य) सम्पूर्ण राज्य का (मेधिरः) मेल करने और (धृषत्) दुष्टों का दबाने वाला (आ, ईषते) प्राप्त होता और राजा के व्यवहार को (वेदा) जानता है (तन्तम्, इत्) उसी उसको (यदी) जो (सुतेभिः) उत्पन्न किये (इन्दुभिः) आनन्दकारक (सोमेभिः) ऐश्वर्यों से आप लोग (प्रतिभूषथ) सुशोभित कीजिये तो यह भी आप लोगों को उत्तम प्रकार शोभित करे ॥३॥

भावार्थः—जो उत्तम-उत्तम मनुष्यों का सत्कार करते हैं वे सबको श्रेष्ठ गुणों से शोभित करते हैं ॥३॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत् ॥४॥

पदार्थः—हे (अध्वर्यो) नहीं हिंसा करने वाले आप (अस्माअस्मै) इस इसके लिए (अन्धसः) अन्न आदि के (समस्य) तुल्य (जेन्यस्य) जीतने योग्य (शर्धतः) बल के और (अभिशस्तेः) चारों ओर से प्रशंसित (कुवित्) महान् (सुतम्) उत्पन्न किये गए को (प्र, भरा) धारण करिये इससे (इत्) ही हम लोगों का आप (अवस्परत्) पालन करते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो विद्वान् सब के लिये सम्पूर्ण उत्तम पदार्थों को समर्पित करते हैं और जितने सामर्थ्य का धारण करते हैं उतना सब औरों के रक्षण के लिए करते हैं उस सब को भाग्यशाली गिनना चाहिये ॥४॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा, विद्वान् और प्रजा के कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में बयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य त्रिचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ३ । ४ उष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब चार ऋचा वाले तेंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के प्राप्त कराने वाले (सः) वह (अयम्) यह (सोमः) बुद्धि और बल का बढ़ाने वाला रस (ते) आपके लिए (सुतः) उत्पन्न किया गया है उसका आप (पिब) पान करिये और (शम्बरम्) मेघ को सूर्य्य जैसे वैसे (मदे) आनन्दकारक (दिवोदासाय) विज्ञान के देनेवाले के लिये दुःख के देने वाले दुष्ट का (रन्धयः) नाश करिये और (यस्य) जिसकी कुकर्म के अनुष्ठान में इच्छा होवे (त्यत्) उसका नाश करिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजा आदि जनो ! आप धार्म्मिक जनों को पीड़ा देने वाले मनुष्यों को यथावत् दण्ड दीजिये और

वैद्यकशास्त्र में कही हुई रीति से बड़ी ओषधियों के रस को निकाल कर उसका सेवन कर रोगरहित होकर सम्पूर्ण प्रजाओं को रोगरहित करिये ॥१॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

यस्यं तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे ।
अयं स सोमं इन्द्र ते सुतः पिबं ॥२॥

पदार्थः – हे (इन्द्र) बल के देने वाले (यस्य) जिसके (तीव्रसुतम्) तेजस्वियों से कर्म्मोंद्वारा उत्पन्न किये (मदम्) आनन्द के देने वाले (मध्यम्) मध्य में हुए (अन्तम्) और अन्त में वर्त्तमान की (च) भी (रक्षसे) रक्षा करते हो (सः) वह (अयम्) यह (सोमः) उत्तम ओषधियों का रस (ते) आपके लिए (सुतः) उत्पन्न किया उसका आप (पिब) पान करिये ॥२॥

भावार्थः - हे विद्यायुक्त राजन् ! आप वैसी ही ओषधियों को प्रकट करिये जिन से सब का सुख बढ़े ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

यस्य गा अन्तरश्मनो मदें दृळ्हा अवासृजः ।
अयं स सोमं इन्द्र ते सुतः पिबं ॥३॥

पदार्थः — हे (इन्द्र) सम्पूर्ण रोगों के नाश करने वाले (यस्य) जिस (अश्मनः) मेघ के (अन्तः) मध्य में (दृळ्हाः) दृढ़ (गाः) किरणों को (मदे) आनन्द के लिए (अवासृजः) उत्पन्न करता है उसके सम्बन्ध से (सः) वह (अयम्) यह (सोमः) रोगों को नाश करने वाला ओषधियों का रस (ते) आपके लिये (सुतः) निर्म्माण किया गया उसको आप (पिब) पीजिये ॥३॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जिसके परमाणु मेघमंडल में भी वर्त्तमान हैं ओषधियों से उसका निर्म्माण वैद्यक रीति से कर और उसका सेवन करके रोगरहित हूजिये ॥३॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

यस्यं मन्दानो अन्धंसो माघोनं दधिषे शवंः ।
अयं स सोमं इन्द्र ते सुतः पिबं ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) वैद्यराज ! (यस्य) जिस (अन्धसः) अन्न आदि की

(मन्दानः) स्तुति करते हुए आप (माघोनम्) बहुधनयुक्त को और (शवः) बल का हेतु उसको (दधिषे) धारण करते हो (सः) वह (अयम्) यह (सोमः) ऐश्वर्य्य करनेवाला रस (ते) आपके लिये (सुतः) उत्पन्न किया गया उसको आप (पिब) पीजिये ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिससे बल, वृद्धि और सुख बढ़ें उसी रस और अन्न का निरन्तर सेवन करो ॥४॥

इस सूक्त में इन्द्र, सोम और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में तेंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्विंशत्यृचस्य चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३ । ४ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ । ५ स्वराडुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ६ आसुरी पङ्क्तिः । ७ भुरिक्पङ्क्तिः । ८ निचृत्पंक्तिः । ९ । १२ । १६ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १० । ११ । १३ । २२ विराट् त्रिष्टुप् । १४ । १५ । १७ । १८ । २० । २४ निचृत्त्रिष्टुप् । १९ । २१ । २३ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब चौबीस ऋचा वाले चवालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा आदि को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

यो र॑यिवो र॒यिन्त॑मो॒ यो द्यु॒म्नैर्द्यु॒म्नव॑त्तमः ।

सोम॑ः सु॒तः स इ॑न्द्र॒ तेऽस्ति॑ स्वधापते॒ मद॑ः ॥१॥

पदार्थः—हे (स्वधापते) अन्न के स्वामिन् (रयिवः) अच्छे धनों वाले (इन्द्र) धन के धारण करने वाले (यः) जो (रयिन्तमः) अत्यन्त धनाढ्य और (यः) जो (द्युम्नैः) धनों वा यशों से (द्युम्नवत्तमः) अत्यन्त यशोधन युक्त (सुतः) निर्म्माण किया गया (सोमः) ऐश्वर्य्य (मदः) आनन्द देने वाला (ते) आपका (अस्ति) है (सः) वह आपसे सत्कार करके स्वीकार करने योग्य है ॥१॥

भावार्थः—हे राजा आदि जनो ! आप लोगों को चाहिए कि अपने राज्य में बहुत धनाढ्य विद्वानों का सत्कार करके रक्षा करें जिससे निरन्तर लक्ष्मी बढ़े ॥१॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

यः शग्मस्तुविशग्म ते रायो दामा मतीनाम् ।

सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥२॥

पदार्थः—हे (तुविशग्म) अनेक प्रकार के सुखों वाले (स्वधापते) अन्न आदिकों के स्वामिन् (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त (यः) जो (ते) आपका (शग्मः) सुखयुक्त (रायः) धनों को (मतीनाम्) विचारशीलों को (दामा) देने योग्य (सुतः) उत्पन्न किया गया (मदः) आनन्दकारक (सोमः) ऐश्वर्यों का समूह (अस्ति) है (सः) वह (ते) आपके धर्म्म की कीर्ति करने वाला हो ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य धन आदि ऐश्वर्य्य से धर्म्म और विद्या की उन्नति करते हैं वे ही बहुत सुख और धन वाले होते हैं ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वाभिरूतिभिः ।

सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥३॥

पदार्थः- हे (स्वधापते) अपने पदार्थों के धारण करने वाले (इन्द्र) राजन् आप (येन) जिस ऐश्वर्य से और (शवसा) बल से (वृद्धः) वृद्ध (न) जैसे वैसे वा (तुरः) हिंसक (न) जैसे वैसे (स्वाभिः) अपनी (ऊतिभिः) रक्षाओं से (मदः) आनन्द देनेवाला (सः) वह (सोमः) ओषधियों का रस (सुतः) उत्पन्न किया गया (ते) आपका (अस्ति) है उसकी आप वृद्धि कीजिये ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस पुरुषार्थ से विद्वान् होकर युवा भी वृद्ध होते हैं उसको निरन्तर संचित कीजिए अर्थात् संग्रह कीजिए ॥३॥

फिर मनुष्यों को किसकी स्तुति करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

त्यमु वो अप्रहणं गृणीषे शवसस्पतिम् ।

इन्द्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो मैं (वः) आप लोगों और (त्यम्, उसको (उ) वितर्कपूर्वक (अप्रहणम्) अन्याय से नहीं किसी को मारने वाले (शवसः) सेना के (पतिम्) स्वामी (विश्वासाहम् संपूर्ण शत्रुओं की सेनाओं को सहने वाले (मंहिष्ठम्) अत्यन्त महान् और (विश्वचर्षणिम्) धार्मिक मनुष्य काम देखने वाले जिसके उस (नरम्) अग्रणी (इन्द्रम्) दुष्टाचार शत्रुओं के विनाशक मनुष्य की (गृणीषे) प्रशंसा करता हूं जिसकी आप स्तुति करते हो ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोगों को उसकी प्रशंसा करनी चाहिए जो नित्य न्यायकारी, सबका सहने वाला, महाशय, युद्ध आदि राजकर्म्मों में निपुण, दुष्टों का विदारक, दृढ़ उत्साही, मनुष्य होवे ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

यं वर्धयन्तीद्गिरः पतिन्तुरस्य राधसः ।
तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यम्) जिस (तुरस्य) दुःख के नाश करने वाले (राधसः) धन के (पतिम्) स्वामी ऐश्वर्य्य से युक्त को (इत्) ही (गिरः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियां (वर्धयन्ति) बढ़ाती हैं और (अस्य) इसके (देवी) सुन्दर प्रकाशमान (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी (शुष्मम्) बल का (नु) शीघ्र (सपर्य्यतः) सेवन करते हैं (तम् इत्) उसी की आप लोग वृद्धि करके सेवा करो ॥५॥

भावार्थः—जो मनुष्य श्रेष्ठ गुण कर्म्म और स्वभावों में वृद्धि को प्राप्त जन की वृद्धि करते हैं वे पञ्चतत्त्वमय राज्य का भोग करते हैं ॥५॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

तद्व उक्थस्य बर्हणेन्द्रायोपस्तृणीषणि ।
विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्ति सक्षितः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यस्य) जिसके (सक्षितः) तुल्यनिवास और (ऊतयः) रक्षण आदि कर्म (विपः) बुद्धिमान् जन (न) जैसे वैसे (यत्) जिसको (वि) विशेष करके (रोहन्ति) जमाते हैं (तत्) उसको (वः) आप लोगों के (उक्थस्य) प्रशंसित कर्म्म के (बर्हणा) बढ़ाने से (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के लिए (उपस्तृणीषणि) ढांपने योग्य को हम लोग बढ़ावें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जो विद्वानों के सदृश प्रजा के रक्षण से ऐश्वर्य्य को बढ़ाते हैं वे सब प्रकार से बढ़ते हैं ॥६॥

फिर राजा क्या करके क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

अविंदद्दक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत् ।
ससवान्स्तौलाभिर्धौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः ॥७॥

पदार्थः हे राजन् जो (नवीयान्) अतिशय थोड़ी अवस्था वाला ((पपानः) पालन करता हुआ (मित्रः) सब का मित्र (ससवान्) अच्छे अन्न वाला (पायुः) रक्षक

हुआ (स्तोलाभिः) स्थूल में हुई (धोतरीभिः) शत्रुओं को कम्पाने वाली सेनाओं से (देवेभ्यः) विद्वानों के और (सखिभ्यः) मित्रों के लिए (वस्यः) अत्यन्त वास का कारण (अर्चत्) बटोरे और (उरुष्या) रक्षा करे और सब का मित्र (अभवत्) हो वह अतुल (दक्षम्) बल को (अविवत्) पाता है ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सब का मित्र, युवा, धन धान्य आदि से युक्त, सब का रक्षक, बड़ी सेनावाला, विद्वान् राजा होवे वही धार्म्मिकों के रक्षण के लिए सत्य बल को प्राप्त होवे ॥७॥

अब मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करके क्या प्राप्त करके क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

ऋतस्यं पथि वेधा अंपायि श्रिये मनांसि देवासों अक्रन् ।
दधानो नामं महो वचोंभिर्वपुर्दृशयें वेन्यो व्यांवः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (वेधाः) बुद्धिमान् (ऋतस्य) सत्य के (पथि) मार्ग में (श्रिये) लक्ष्मी के लिये (अपायि) रक्षा करता है और (देवासः) विद्वान् जन (मनांसि) मनों को (अक्रन्) करते हैं और (वचोभिः) वचनों से (महः) कीर्ति के योग से बड़ी (नाम) प्रसिद्धि को (दृशये) दिखाने के लिए (वपुः) अच्छे रूपवाले शरीर को (दधानः) धारण करता (वेन्यः) सुन्दर होता और (वि, आवः) रक्षा करता है वैसे आप लोग भी यत्न करो ॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—मनुष्यों को चाहिए कि सर्वदा धर्ममार्ग में चलकर धन की उन्नति के लिए मनों को निश्चित करें और धन से प्राप्त हुए धन से अनाथों का पालन, विद्या और धन की वृद्धि तथा औषधदान और मार्गशुद्धि करके सब दिशाओं में प्रशंसा विस्तारें ॥८॥

अब राजा और प्रजाजन परस्पर का हित कैसे करें इस विषय को कहते हैं ॥

द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररांतीः ।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचींभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥९॥

पदार्थः—हे राजन् आप (शचीभिः) बुद्धियों का कर्मों वा प्रजाओं के साथ (अस्मे) हम लोगों में (द्युमत्तमम्) प्रशंसित अत्यन्त विद्या के प्रकाश से युक्त (दक्षम्) बल को (धेहि) धारण करिये और कार्य्य को (सेधा) सिद्ध कीजिये और (जनानाम्) मनुष्यों की (पूर्वीः) प्राचीन (अरातीः) नहीं दान करने की क्रियाओं को दूर कीजिए तथा (वर्षीयः) अतिशय श्रेष्ठ (वयः) सुन्दर अवस्था को (कृणुहि) करिये और

(धनस्य) धन के (सातौ) संविभाग में (अस्मान्) हम लोगों का (अविड्ढि) प्रवेश कराइए ॥९॥

भावार्थः – प्रजाजनों को राजा की ऐसी प्रार्थना करनी चाहिए कि हे राजन् ! आप जो हम लोगों को बलयुक्त, कृपणता से रहित और ब्रह्मचर्य्य आदि से दीर्घ अवस्था वाले पुरुषार्थी और सब प्रकार से रक्षा करके भयरहित करके धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष के साधन में प्रवेश कराइए तो आपकी हम लोग सर्वदा वृद्धि करें ॥९॥

अब राजा और प्रजाजन परस्पर कहां प्रेरणा करें इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्र॒ तुभ्य॒मिन्म॑घवन्नभूम व॒यं दा॒त्रे ह॑रिवो॒ मा वि वे॑नः ।
नकि॑रा॒पिर्द॑दृशे मर्त्य॒त्रा किम॒ङ्ग र॑ध्र॒चोद॑नं त्वाहुः ॥१०॥

पदार्थः—हे (अंग) अंग के तुल्य वर्त्तमान (हरिवः) प्रशंसित मनुष्यों से और (मघवन्) बहुत धनों से युक्त (इन्द्र) पूर्णविद्या वाले राजन् (दात्रे) दान करने के स्वभाव वाले (तुभ्यम्) आपके लिए (इत्) ही देने वाले (वयम्) हम लोग (अभूम) होवें आप हम लोगों की (मा) मत (वि, वेनः) कामना करिये और (आपिः) व्याप्त होने वाला हुआ मैं आपको विरुद्ध दृष्टि से (नकिः) नहीं (ददृशे) देखता हूं तथा (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में आप (किम्) किस की इच्छा करते हो जिससे (रध्रचोदनम्) धन की प्राप्ति के लिए प्रेरणा करने वाले आपको विद्वान् जन (आहुः) कहते हैं इससे हम लोग आपका आश्रयण करें ॥१०॥

भावार्थः—हे राजा और प्रजा जनो ! जैसे आप लोग आपस के लिए धन आदि से और सुख दान से सबको श्रेष्ठ कर्म्मों में प्रेरणा करें वैसे मिल के सत्य न्यायपालन का अनुष्ठान करें ॥१०॥

मनुष्यों को क्या नहीं करके क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

मा जस्व॑ने वृषभ नो ररीथा॒ मा ते॑ रे॒वतः॑ स॒ख्ये रि॑षाम ।
पू॒र्वीष्ट॑ इन्द्र नि॒ःषिधो॒ जने॑षु ज॒ह्यसु॑ष्वी॒न्प्र वृ॒हापृ॑णतः ॥११॥

पदार्थः—हे (वृषभ) बलयुक्त (इन्द्र) दुःखों के नाश करने वाले राजन् आप (जस्वने) अन्याय से दूसरे के धन को अन्यत्र प्राप्त कराने वाले दुष्ट राजा के लिए (नः) हम लोगों को (मा) मत (ररीथाः) दीजिये और हम लोग (ते) आप (रेवतः) बहुत धन वाले के (सख्ये) मित्रपने के लिए (मा) नहीं (रिषाम) क्रुद्ध होवें और जो (ते) आपके (जनेषु) मनुष्यों में (पूर्वीः) प्राचीन (निःषिधः) सुखकारक क्रियायें हैं

उनको दीजिये (असुष्वीन्) उत्पत्ति के नहीं करने वालों का (जहि) त्याग करिए और (अपृणतः) दुःख के देने वाले दुर्ज्जन से हम लोगों को (प्र, वृह) पृथक् करिये ॥११॥

भावार्थः हे राजन् ! जो हम लोगों को पीड़ा देवें उनके आधीन मत करिए और कल्याण में क्रियाओं को प्राप्त कराइए वैसे हम लोग भी इस सब को आपके लिए करें इस प्रकार मित्र होकर अभीष्ट मनोरथों को हम सब लोग प्राप्त होवें ॥११॥

फिर वह राजा किसके सदृश क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

उदभ्राणीव स्तनयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या ।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन्मघोनः ॥१२॥

पदार्थः—हे राजन् जिससे (स्तनयन्) शब्द करता हुआ (कारुधायाः) विद्वान् शिल्पी जनों का धारण करने वाला (इन्द्रः) बिजुली के सदृश वा (अभ्राणीव) वायु के दलों के सदृश (अश्व्यानि) घोड़ों में हितकारक (गव्या) गौओं में हितकारक (राधांसि) सम्पूर्ण सुखों के करने वाले धनों को (उत्) भी (इयर्त्ति) प्राप्त होता है और (प्रदिवः) अत्यन्त सुन्दर (मघोनः) धन से युक्त जनों को वह ग्रहण करने वाला है और (अदामानः) अदाता जन (त्वा) आपकी (मा) मेरी (आ, दभन्) हिंसा करें और धन से युक्त जनों की मत हिंसा करें वैसे (त्वम्) आप जो कर चुके (असि) हैं तो आप में कौन नम्र होता है ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जिस की मेघों की घटाओं के समान बलवती सेना, बिजुली के समान पराक्रमयुक्त वर्त्तमान है और जिससे सब गुणी संग्रह किये जाते हैं वही धन धान्य राज्य और पशु आदि पदार्थों को प्राप्त होता है ॥१२॥

कौन इस पृथिवी पर राजा होने के योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानामिन्द्राय भर स ह्यस्य राजा ।
यः पूर्व्याभिरुत नूतनाभिर्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम् ॥१३॥

पदार्थः—हे (अध्वर्य्यो) नहीं हिंसा करने वाले (वीर) दुष्टों की हिंसा करने वाले (यः) जो (राजा) राजा (गृणताम्) प्रशंसा करने वाले (ऋषीणाम्) मन्त्रों के अर्थ जानने वालों की (पूर्व्याभिः) पूर्व जनों से सेवित (उत) भी (नूतनाभिः) नवीन वर्त्तमान (गीर्भिः) वाणियों से (वावृधे) वृद्धि को प्राप्त होता है (सः, हि) वही (अस्य) इस राज्य का राजा होने को योग्य हो वैसे आप (सुतानाम्) उत्पन्न

हुए पदार्थों के (महे) बड़े (इन्द्राय) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के लिए इनको (प्र, भर) धारण करिये ॥१३॥

भावार्थः—वही राज्यपालन करने और बढ़ाने को समर्थ होता है जो यथार्थ वक्ताओं के सहित, उत्तम प्रकार शिक्षित और न्यायेश होवे और वही विद्वान् होता है जो शिष्ट जनों से नित्य उपदेश सुनता है ॥१३॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अस्य मदे॑ पु॒रु वर्पां॑सि वि॒द्वानिन्द्रो॑ वृ॒त्राण्य॑प्र॒ती ज॑घान ।
तमु॒ प्र हो॑षि॒ मधु॑मन्तमस्मै॒ सोमं॑ वी॒राय॑ शि॒प्रिणे॒ पिब॑ध्यै ॥१४॥

पदार्थः—जो (विद्वान्) विद्यायुक्त जैसे (इन्द्रः) सूर्य्य (वृत्राणि) मेघों का (जघान) नाश करता है वैसे (अस्य) इस ओषधियों के समूह के (मदे) आनन्द-कारक रस में (अप्रती) नहीं विश्वास किये गए (पुरु) बहुत (वर्पांसि) सुन्दर रूपों का निर्म्माण करके स्वीकार करे (तम्) उसके प्रति (उ) भी (मधुमन्तम्) मधुर आदि गुणों से युक्त द्रव्य के साथ (सोमम्) बड़ी ओषधियों के रस को (अस्मै) इस (शिप्रिणे) उत्तम ठुड्ढी और नासिका वाले (वीराय) भयरहित जन के लिये (पिबध्यै) पीने को आप (प्र, होषि) देते हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सूर्य्य के सदृश न्याय और विजय के प्रकाशक, युक्त आहार और विहार वाले और महौषधियों के रस को पीने वाले हैं वे अनेक प्रकार के पदार्थों को प्राप्त होकर इस जगत् में आनन्द करते हैं ॥१४॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

पाता॑ सु॒तमिन्द्रो॑ अस्तु॒ सोमं॑ ह॒न्ता वृ॒त्रं वज्रे॑ण मन्दसा॒नः ।
गन्ता॑ य॒ज्ञं प॑रा॒वत॑श्चिद॒च्छा वसु॑र्धी॒नाम॑वि॒ता का॒रुधा॑याः ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य का देने वाला (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) ओषधिरस को (पाता) पान करनेवाला (वज्रेण) शस्त्र और अस्त्रों के समूह से (मन्दसानः) कामना करता हुआ (वृत्रम्) मेघ को सूर्य्य जैसे वैसे शत्रुओं को (हन्ता) मारने (यज्ञम्) श्रेष्ठ क्रियास्वरूप व्यवहार को (गन्ता) प्राप्त होने (परावतः) दूर देश से (चित्) भी (कारुधायाः) शिल्पी जनों का धारण करने वाला और (वसुः) बसाने वाला होता हुआ (धीनाम्) उत्तम कर्म्मों की (अच्छा) अच्छे प्रकार (अविता) रक्षा करने वाला है वह अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त (अस्तु) हो उसका आप लोग निरन्तर सत्कार करो ॥१५॥

भावार्थः—जो राजा आदि मनुष्य वैद्यक शास्त्र की रीति से उत्पन्न किये ओषधियों के रस को पीते हैं तथा शस्त्र और अस्त्र की विद्या से दुष्टों का निवारण करके न्यायप्रचार नामक कर्म्म का प्रचार करके सत्-कर्म्म के करने और शिल्पविद्या के जानने वालों को सङ्ग्रह करके आलस्य का त्याग करके श्रेष्ठ कर्म्मों में प्रवृत्त होते वे ही यहां प्रशंसनीय होते हैं ॥१५॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

इदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।

मत्सद्यथा सौमनसाय देवं व्य१स्मद् द्वेषो युयवद्व्यंहः ॥१६॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप (सौमनसाय) अच्छे मन के होने के लिये (यथा) जैसे (इदम्) इस (त्यत्) उस (इन्द्रपानम्) ओषधियों के रस वा ऐश्वर्य्य के पान वा रक्षण को (इन्द्रस्य) इन्द्रियों के स्वामी जीव के (प्रियम्) प्रीतिकारक (अमृतम्) अच्छे प्रकार स्वादिष्ट (पात्रम्) जिससे पान करता वा रक्षा करता है उसको (अपायि) पीता है । और जिससे (मत्सत्) आनन्दित होता है तथा (देवम्) श्रेष्ठगुण-कर्मयुक्त वस्तु का पान करता है और (अस्मत्) हम लोगों से (द्वेषः) द्वेष आदि से युक्त कर्म्म वा शत्रु को (वि, युयवत्) वियुक्त करता है और हम लोगों से (अंहः) पापाचरण को (वि) पृथक् करता है वैसा आचरण करो ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जिससे मन में प्रमाद और द्वेष न होवे उसी का पान करना चाहिये और जैसे अपने आत्मा की सब रक्षा करते हैं वैसे अन्य सभी की रक्षा करें ॥१६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।

अभिषेणाँ अभ्या३देदिशानान्पराच इन्द्र प्र मृणा जही च ॥१७॥

पदार्थः—हे (शूर) दुष्टों को मारने वाले (मघवन्) बहुत धनों से युक्त (इन्द्र) दुष्टों के विदारक आप (एना) इससे (मन्दानः) प्रशंसित हुए (जामिम्) जवाई आदि को (अजामिम्) दूसरी सम्बन्ध रहित को (शत्रून्) धर्म्म के विरोधियों (अमित्रान्) मित्रभाव रहित वैरियों का (जहि) त्याग करो (अभिषेणान्) सन्मुख सेना जिनकी उन (आदेदिशानान्) अत्यन्त आज्ञा करने वाले (पराचः) पश्चिम की ओर अर्थात् पीछे मुख किये हुओं की (अभि, प्र, मृणा) बाधा करो (च) और अविद्या आदि दोषों का (जहि) त्याग करो ॥१७॥

भावार्थः—हे राजन् सेना के स्वामिन् ! आप ब्रह्मचर्य और सोमलता के रस के पान आदि के स्वयं आनन्दित हुए वीरों को आनन्द देकर सम्पूर्ण शत्रुओं को जीतो ॥१७॥

फिर राजा और प्रजाजनों को निरन्तर क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्व१स्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।

अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन् कृणुहि स्मा नो अर्द्धम् ॥१८॥

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुत धन से युक्त (इन्द्र) दुष्टों के मारने वाले आप (आसु) इन (पृत्सु) वीर मनुष्यों की सेनाओं में (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (महि) बड़े (सुगम्) उत्तम प्रकार चलते हैं जिसमें उस (वरिवः) सेवन को (कः) करें (नः) हम लोगों को (स्मा) ही विजयी करें और हे (इन्द्र) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों के देने वाले आप (अपाम्) प्राणों के (तोकस्य) शीघ्र उत्पन्न हुए अपत्य के और (तनयस्य) सुकुमार के बोध के लिये और शत्रुओं को (जेषे) जीतने के लिए (नः) हम लोगों को (सूरीन्) युद्ध विद्या में कुशल विद्वान् और (अर्द्धम्) अच्छे प्रकार समृद्धि को (स्मा) ही (कृणुहि) करिये ॥१८॥

भावार्थः—राजा वैसा यत्न करे जैसे अपनी सेनायें उत्तम प्रकार शिक्षित, जीतने वाली और बलयुक्त होवें और सम्पूर्ण बालक और कन्यायें ब्रह्मचर्य्य से विद्यायुक्त होकर समृद्धि को प्राप्त हुए सत्य न्याय और धर्म का निरन्तर सेवन करें ॥१८॥

फिर राजा और मन्त्रीजन कैसे होवें इस विषय को कहते हैं ॥

आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।

अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ॥१९॥

पदार्थः—हे अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् जैसे (वृषणः) बलयुक्त (युजानाः) जिनके सावधान आत्मा और (वृषरथासः) बलयुक्त सेना के अंग जिन के वे (वृषरश्मयः) किरणों के सदृश विजय सुख के वर्षाने वाले तेजस्वी (अत्याः) सम्पूर्ण श्रेष्ठगुण और कर्म्मों में व्यापी (अस्मत्राञ्चः) शत्रुओं से हम लोगों की रक्षा करने वालों को प्राप्त होने और (वृषणः) शत्रुशक्ति के रोकनेवाले (वज्रवाहः) शस्त्र और अस्त्रों की विद्या को धारण करने तथा (सुयुजः) उत्तम प्रकार युक्त होने वा युक्त कराने वाले (हरयः) उत्तम प्रकार शिक्षित घोड़ों के सदृश मनुष्य (वृष्णे) बलकारक (मदाय) आनन्द के लिए (त्वा) आप को (वहन्तु) प्राप्त हों वा प्राप्त करावें वैसे इनको आप प्रीति से (आ) प्राप्त हूजिये ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—राजा को चाहिये कि उत्तम प्रकार परीक्षा करके उत्तम गुण कर्म्म और स्वभाव वाले मनुष्यों को राज्य कर्म्म के अधिकारों में नियुक्त करे तथा आप भी श्रेष्ठ गुण कर्म्म और स्वभाव वाला होवे ॥१९॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ ते॑ वृषन् वृष॑णो द्रोण॑मस्थुर्घृतप्रुषो॒ नोर्मयो॒ मद॑न्तः ।
इन्द्र॒ प्र तुभ्यं॒ वृष॑भिः सुतानां॒ वृष्णे॑ भ॑रन्ति वृषभाय॒ सोम॑म् ॥२०॥

पदार्थः—हे (वृषन्) बल से युक्त (इन्द्रः) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों से सम्पन्न जो (ते) आपके (वृषणः) बलिष्ठ (घृतप्रुषः) जल को पूर्ण करने वाले (ऊर्म्मयः) समुद्र आदि के जल के तरंग (न) जैसे वैसे आपको (मदन्तः) आनन्द देते हुए (वृषभिः) बलिष्ठ वैद्यों से (सुतानाम्) उत्पन्न किये हुए (सोमम्) बड़ी ओषधियों के रस को (वृष्णे) बल के और (वृषभाय) बल की इच्छा करने वाले (तुभ्यम्) आपके लिए (प्र, भरन्ति) अच्छे प्रकार धारण करते हैं तथा (द्रोणम्) जाते हैं जिस विमान आदि वाहन से उस पर (आ) सब प्रकार से (अस्थुः) स्थित होते हैं उनको आप प्रसन्न करिये ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे राजन् ! जो सत्यभाव से आपके राज्य के हित करने की इच्छा करते हैं उनको आप सुखी रखिये और जैसे वायु से जल के तरंग उठते हैं वैसे ही सत्संग से वृद्धियाँ बढ़ती हैं ऐसा जानो ॥२०॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं ॥

वृषा॑सि दि॒वो वृ॑ष॒भः पृ॑थि॒व्या वृषा॒ सिन्धू॑नां वृष॒भः स्तिया॑नाम् ।
वृष्णे॑ त॒ इन्दु॑र्वृषभ पीपाय स्वा॒दू रसो॑ मधुपेयो॒ वरा॑य ॥२१॥

पदार्थः—हे (वृषभ) शत्रुओं के सामर्थ्य के प्रतिबंधक ऐश्वर्य्य से युक्त जिससे आप (दिवः) सूर्य्य के (वृषभः) बलिष्ठ और श्रेष्ठ (पृथिव्याः) भूमि से (वृषा) वर्षाने वाले और (सिन्धूनाम्) नदियों वा समुद्रों के (वृषा) वर्षाने वाले और (स्तियानाम्) मिले हुए नहीं चलने और चलने वाले प्राणी और अप्राणियों के (वृषभः) अत्यन्त करने वाले (असि) हैं (ते) आप (वराय) उत्तम (वृष्णे) सुख के वर्षाने वाले के लिए (पीपाय) पान को (स्वादुः) स्वादु से युक्त (इन्दुः, रसः) सोमलता का रस (मधुपेयः] सहत के साथ पीने योग्य हो ॥२१॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो आप बिजुली, भूमि, नदी, समुद्र, अन्तरिक्ष, स्थावर और जंगम पदार्थों की विद्या और उपयोग को जानिये तो आपको बड़ा आनन्द प्राप्त होवे ॥२१॥

फिर वह राजा किसका सत्कार करे इस विषय को कहते हैं ॥

अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत् ।
अयं स्वस्य पितुरायुधानीन्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः ॥२२॥

पदार्थः हे राजन् जो (अयम्) यह (इन्द्रेण) अत्यन्त ऐश्वर्य से (युजा) युक्त होने वाले राजा से (सहसा) बल से (जायमानः) उत्पन्न हुआ (देवः) श्रेष्ठ गुणवाला विद्वान् (पणिम्) स्तुति करनेयोग्य व्यवहार को (अस्तभायत्) स्थिर करता है और जो (अयम्) यह (इन्दुः) आनन्दकारक (स्वस्य) अपने (पितुः) पिता के (आयुधानि) शस्त्र और अस्त्रों को स्थिर करता है और (अशिवस्य) अमंगल की (मायाः) बुद्धियों को (अमुष्णात्) चुराता है उसका आप गुरु के सदृश सत्कार करिये ॥२२॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो धर्म्मयुक्त व्यवहार को स्वयं करके सर्वत्र प्रचार करते हैं और युद्धविद्या में और उपदेश में कुशल हुए अमंगल का सब प्रकार नाश करके कल्याण को उत्पन्न करते हैं वे आपसे सत्कार को प्राप्त हों ॥२२॥

फिर विद्वान् कैसे होवें इस विषय को कहते हैं ॥

अयमकृणोदुषसः सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम् ॥२३॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो जैसे (अयम्) यह सूर्य्य (उषसः) प्रातःकालवेलाओं को (सुपत्नीः) सुन्दर भार्य्याओं के सदृश (अकृणोत्) करता है वैसे एक स्त्री के ग्रहणरूप व्रतधारी आप लोग हों और जैसे (अयम्) यह परमात्मा (सूर्य्ये) सूर्य्य के (अन्तः) मध्य में (ज्योतिः) प्रकाश को (अदधात्) धारण करता है वैसे आत्माओं में विद्या के प्रकाश को धारण करिये और जैसे (अयम्) यह ईश्वर (दिवि) प्रकाश में (त्रितेषु) प्रसिद्ध बिजुली और सूर्य में (रोचमानेषु) प्रकाशमानों में (अमृतम्) नाश से रहित (निगूळ्हम्) अत्यन्त लुप्त अतीन्द्रिय (त्रिधातु) सत्व रज और तमःस्वरूप जगत् को (विन्दत्) प्राप्त होता है वैसे प्रकृति आदि जगत् को जानिये ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो इस जगत् में विवाहित एक स्त्री के ग्रहणरूप व्रतधारी, विद्या और अविद्या के प्रकाशक, कार्य्य कारण स्वरूप गुप्त पदार्थों की विद्या के जानने वाले होवें वे सूर्य्य, ईश्वर और यथार्थवक्ता जन के सदृश मन्तव्य होवें ॥२३॥

विद्वान् जन ईश्वर के सदृश वर्त्तमान करें इस विषय को कहते हैं ॥

अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक् सप्तरश्मिम् ।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥२४॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो जैसे (अयम्) यह ईश्वर (द्यावापृथिवी) प्रकाश और भूमि को (वि) विशेष करके (स्कभायत्) धारण करता है और (अयम्) यह सब को धारण करने वाला ईश्वर (सप्तरश्मिम्) सात प्रकार की विद्यारूप किरणें जिसमें उस (रथम्) सुन्दर सूर्य्यलोक को (अयुनक्) युक्त करता है और (अयम्) यह धारण और नहीं धारण करने वाला परमात्मा (सोमः) सब जगत् को उत्पन्न करने वाला (शच्या) सत्य कर्म्म से (गोषु) पृथिवियों वा धेनु आदि के (अन्तः) मध्य में (उत्सम्) कूप के सदृश जल से खेदित को जैसे वैसे (दशयन्त्रम्) सूक्ष्म और स्थूल दश प्रकार के भूत प्राणी यन्त्रित जिस में उस (पक्वम्) पके हुए को (दाधार) धारण करता है वैसे आप लोग भी धारण कीजिये ॥२४॥

भावार्थः—हे विद्वान् जनो ! जो सूर्य्य के सदृश न्याय को, पृथिवी के सदृश क्षमा को, सब के धारण और दुग्ध आदि रसों को और सब जगत् को यथावत् निर्माण करके धारण करता है वैसे आप लोग भी इस सब को धारण करिये ॥२४॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान् और ईश्वर के गुण कर्मों के वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में चवालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यस्त्रिंशदृचस्य पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । १—३० इन्द्रः । ३१—३३ बृबुस्तक्षा । १ । २ । ३ । ८ । १४ । २० । २१ । २२ । २३ । २४ । २८ । ३० । ३२ । गायत्री । ४ । ७ । ९ । १० । ११ । १२ । १३ । १५ । १६ । १७ । १८ । १९ । २५ । २६ । २९ निचृद्गायत्री । ५ । ६ । २७ विराड्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः । ३१ आर्च्युष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । ३३ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब तेंतीस ऋचा वाले पैंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

य आनयत्परावतः सुनीती तुर्वशं यदुम् ।

इन्द्रः स नो युवा सखा ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (युवा) शरीर और आत्मा के बल से युक्त (इन्द्रः) सम्पूर्ण ऐश्वर्य्यों का देने वाला राजा (सुनीती) सुन्दर न्याय से (परावतः) दूर देश से भी (तुर्वशम्) हिंसकों को वश में करने वाले (यदुम्) यत्न करते हुए मनुष्य को (आ) सब प्रकार से (अनयत्) प्राप्त करावे (सः) वह (नः) हम लोगों का (सखा) मित्र हो ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम उस राजा के साथ मैत्री करो जो सत्य न्याय से दूर देश में स्थित भी विद्या, विनय और परोपकार में कुशल, श्रेष्ठ मनुष्य को सुनकर अपने समीप लाता है उस राजा के साथ मित्र हुए वर्त्ताव करो ॥१॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

अविप्रे चिद्वयो दधदनाशुना चिदर्वता । इन्द्रो जेता हितं धनम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (इन्द्रः) शत्रुओं का नाश करने वाला (अविप्रे) बुद्धिरहित में (चित्) भी (वयः) सुन्दर जीवन वा विज्ञान को (दधत्) धारण करता है तथा (अनाशुना) घोड़े से रहित शीघ्र जानेवाले वाहन से (अर्वता) घोड़े से (चित्) भी (हितम्) सुखकारक (धनम्) द्रव्य को (जेता) जीतने वाला धारण करता है वह यशस्वी होता है यह जानना चाहिये ॥२॥

भावार्थः—जो विद्वान् राजा बालकों और अज्ञों में अध्यापन और उपदेश के प्रचार से विद्या को धारण करता है वह यशस्वी होकर विना सेना के भी राज्य को प्राप्त होता है ॥२॥

फिर उस ही विषय को कहते हैं ॥

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः । नास्य क्षीयन्त ऊतयः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (अस्य) इस राजा की (महीः) बड़ी (उत) और (पूर्वीः) प्राचीन वेदों में कही हुई (प्रणीतयः) उत्तम नीति और (ऊतयः) रक्षण आदि क्रियायें हैं (अस्य) इस की (प्रशस्तयः) श्रेष्ठ कीर्तियां (न) नहीं (क्षीयन्ते) क्षीण होती हैं ॥३॥

भावार्थः— जो राजाजन नित्य बड़ी राजधर्म्मनीति को धारण करके पुत्र के सदृश प्रजाओं का पालन करते हैं उनका नाशरहित यश होता है ॥३॥

फिर मनुष्यों को किसका सत्कार करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

सखा॑यो ब्रह्म॑वाहसेऽर्च॑त प्र च॑ गायत। स हि नः॒ प्रम॑तिर्म॒ही ॥४॥

पदार्थः—हे (सखायः) मित्रो ! आप लोग (ब्रह्मवाहसे) वेद और ईश्वर के विज्ञान प्राप्त कराने के लिए जिसका (प्र, अर्चत) अत्यन्त सत्कार करो (गायत, च) और प्रशंसा करो जिससे (नः) हम लोगों के लिए (प्रमतिः) अच्छी बुद्धि (मही) और बड़ी वाणी दी जाती है (सः, हि) वही जगदीश्वर और विद्वान् हम लोगों से उपासना और सेवा करने योग्य है ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग परस्पर मित्र होकर परमेश्वर और सब के कल्याण के लिए प्रवृत्त यथार्थवक्ता तथा उपदेशक का सदा ही सत्कार करो जिससे हम लोगों को उत्तम बुद्धि और वाणी प्राप्त होवे ॥४॥

फिर राजा और मन्त्रियों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

त्वमेक॑स्य वृत्रहन्नवि॒ता द्वयो॑रसि। उ॒तेदृशे॑ यथा॑ व॒यम् ॥५॥

पदार्थः - हे (वृत्रहन्) मेघ को नाश करने वाले सूर्य्य के समान शत्रुओं के मारने वाले राजन् (यथा) जैसे (वयम्) हम लोग (ईदृशे) ऐसे व्यवहार में (एकस्य) सहायरहित के (उत) और (द्वयोः) राजा और प्रजाजनों के रक्षक होते हैं वैसे जिससे (त्वम्) आप (अविता) रक्षक (असि) हो इससे सत्कार करनेयोग्य हो ॥५॥

भावार्थः—हे राजन् जैसे हम लोग पक्षपात का त्याग करके अपने और अन्य जन का यथावत् न्याय करें वैसे ही आप करिये ऐसे धर्म्मयुक्त व्यवहार में वर्त्तमान हम लोगों की सदा ही वृद्धि और मोक्ष होते हैं ॥५॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

नय॒सीद्व॒ति द्विषः॑ कृणोष्यु॑क्थशं॒सिनः॑। नृभिः॑ सु॒वीर॑ उच्यसे ॥६॥

पदार्थः—हे राजन् जिससे आप (द्विषः) द्वेष करने वालों को (उक्थशंसिनः) वेद की प्रशंसा करने वाले (कृणोषि) करते हो और उपाय का उल्लङ्घन करके धर्म्म को (अति, नयसि) अत्यन्त प्राप्त होते वा प्राप्त करते हो (उ) और (नृभिः) नायक अग्रणी मनुष्यों से (सुवीरः) श्रेष्ठ वीरों से युक्त हुए सब के प्रति (उच्यसे) उपदेश किये जाते हो इससे (इत्) ही आदर करनेयोग्य हो ॥६॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो आप नम्रतायुक्त, विद्वान् होवें तो वेद में कहे हुए धर्म्म से द्वेष करनेवालों को भी वेदोक्त धर्म्म में प्रीति करनेवाले उपदेश वा विनय से कर सकते हो ॥६॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

ब्रह्माणं ब्रह्मवाहसं गीर्भिः सखायमृग्मियम् । गां न दोहसे हुवे ॥७॥

पदार्थः—हे राजन् जैसे मैं (गीर्भिः) सुशिक्षायुक्त, मधुर सत्यवाणियों से (दोहसे) दोहने पूरण करने को (गाम्) गौ के (न) समान (सखायम्) सब के मित्र (ऋग्मियम्) स्तुतियों से स्तुति करने योग्य (ब्रह्मवाहसम्) वेदों के शब्दार्थ संबन्ध और स्वरों के प्राप्त कराने वाले (ब्रह्माणम्) चतुर्वेदवेत्ता विद्वान् को (हुवे) बुलाता और उसकी प्रशंसा करता हूं वैसे इसको आप बुला और उसकी प्रशंसा करो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन वेदपारगन्ता, आप्त, विद्वान् का आश्रय लेकर सभ्य विपश्चित् होते हैं वैसे इन के सग से तुम भी विद्वान् वा चतुर होओ ॥७॥

फिर क्या करके राजा ऐश्वर्य्य को प्राप्त होवे इस विषय को कहते हैं ॥

यस्य विश्वानि हस्तयोरूचुर्वसूनि नि द्विता । वीरस्य पृतनाषहः ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो ! (यस्य) जिस राजादि विद्वान् (वीरस्य) शत्रु के बल को दवाने वाले के (हस्तयोः) हाथों में (विश्वानि) सम्पूर्ण (वसूनि) द्रव्यों को (पृतनाषहः) शत्रुओं की सेना को सहनेवाले (नि) निश्चित (ऊचुः) कहते हैं उसके साथ (द्विता) दोनों—राजा और प्रजा तथा उपदेश देने वाले और उपदेश देने योग्य-पने की रक्षा करो ॥८॥

भावार्थः—जो राजा विद्या और विनय से पुत्र के सदृश प्रजाओं की पालना करे तो सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य और सम्पूर्ण सुख उसके आधीन ही होवे जिससे उत्तम मन्त्री और प्रशंसित सेना को प्राप्त होकर राजा प्रजाजनों के कल्याण को कर सकता है ॥८॥

फिर मनुष्य किसका निवारण करके किसको प्राप्त होवें इस विषय को कहते हैं ॥

वि दृळ्हानि चिदद्रिवो जनानां शचीपते । वृह माया अनानत ॥९॥

पदार्थः—हे (अद्रिवः) मेघों के करने वाले सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान (अनानत) शत्रुओं के समीप में नम्रता से रहित (शचीपते) प्रजा के स्वामिन् आप (मायाः) कपटों को (वृह) काटो और (चित्) भी (जनानाम्) मनुष्यों की (दृळ्हानि) निश्चित सेनाओं को करके शत्रुओं का (वि) विशेष करके नाश करिये ॥९॥

भावार्थः—वह राजा आचार्य्य वा अध्यापक उत्तम होवे जो छल आदि दोषों का निवारण करके मनुष्यों को धर्म्म के आचरण से युक्त निरन्तर करे ॥९॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

तमु॑ त्वा सत्य सोमपा इन्द्र॑ वाजानां पते ।

अहू॑महि श्रवस्यवः ॥१०॥

पदार्थः—हे (सत्य) श्रेष्ठों में श्रेष्ठ (सोमपाः) ऐश्वर्य की रक्षा करने तथा (वाजानाम्) विज्ञान और अन्न आदिकों के (पते) पालने और (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले (श्रवस्यवः) अपने अन्न आदि की इच्छा करने वाले हम लोग (त्वा) आपकी (अहूमहि) प्रशंसा करें वैसे (तम्, उ) उन्हीं को सब लोग पुकारें ॥१०॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे राजन् वा विद्वन्! आप श्रेष्ठ गुण कर्म्म और स्वभाव से युक्त होकर प्रजा के पालन में तत्पर सुशील और इन्द्रियों के जीतनेवाले जब तक होंगे तबतक हमलोग आपको मानेंगे ॥१०॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

तमु॑ त्वा यः पु॒रासि॑थ यो वा॑ नू॒नं हि॒ते धनें ।

ह॒व्यः स श्रु॑धी हवम् ॥११॥

पदार्थः—हे राजन् (यः) जो आप (हिते) सुखकारक (धने) धन में (पुरा) प्रथम से (आसिथ) थे और (यः) जो (वा) वा (नूनम्) निश्चित सुखकारक धन में (हव्यः) पुकारने के योग्य हो (तम्, उ) उन्हीं (त्वा) आपको हम लोग सुनावें (सः) वह आप हम लोगों की (हवम्) बात को (श्रुधी) सुनिये ॥११॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो राजा सब के हित की इच्छा करे और सब को धन और ऐश्वर्य्य से युक्त करता है वह बलिष्ठ और निर्बलों की बातों को प्रीति से सुन कर यथार्थ न्याय करता है उसी का सब लोग निरन्तर सत्कार करें ॥११॥

फिर राजा आदि को क्या प्राप्त करके क्या प्राप्त करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

धीभिरर्वद्भिरर्वतो वाजाँ इन्द्र श्रवाय्यान् ।
त्वया जेष्म हितं धनम् ॥१२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाश करने वाले जैसे हम लोग (धीभिः) बुद्धियों वा कर्म्मों से (अर्वद्भिः) शब्द करते हुए घोड़ों से (वाजान्) वेगयुक्त (श्रवाय्यान्) सुनने को इष्ट (अर्वतः) घोड़ों के सदृश प्राप्त होकर (त्वया) आप के साथ (हितम्) सुखकारक (धनम्) धनको (जेष्म) जीतें वैसे आप हम लोगों के साथ सुख से वर्त्ताव करो ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जब राजा आदि जन एक सम्मति कर उत्तम सेना के अंगों को सम्पादन कर और अन्यायकारी दुष्टों को जीत कर न्याय से प्राप्त हुए धन से सब का हित करें तभी अपने हित की सिद्धि से युक्त होवें ॥१२॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

अभूरु वीर गिर्वणो महाँ इन्द्र धने हिते । भरे वितन्तसाय्यः ॥१३॥

पदार्थः—हे (गिर्वणः) वाणियों से याचना किये गये (वीर) शूरता आदि गुणों से युक्त (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य्य के देने वाले आप (महान्) महाशय (वितन्तसाय्यः) अत्यन्त विजय में होने वाले हुए (हिते) सुखकारक (धने) धन में (उ) और (भरे) संग्राम में जीतने वाले (अभूः) हूजिये ॥१३॥

भावार्थः—जो राजा सब के हित के प्राप्त होने की इच्छा करता हुआ पुरुषों में ज्ञानी, किये हुए को जानने वाला और योद्धाओं का प्रिय होवे उसके सदा ही विजय से प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य्य बढ़ें ॥१३॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

या त ऊतिरमित्रहन्मक्षूजवस्तमासति । तया नो हिनुही रथम् ॥१४॥

पदार्थः—हे (अमित्रहन्) शत्रुओं के मारने वाले (या) जो (ते) आपकी (मक्षूजवस्तमा) शीघ्र अतिशय वेग से युक्त (ऊतिः) रक्षा आदि क्रिया (असति) होवे (तया) उससे (नः) हम लोगों की (रथम्) विमान आदि वाहन को प्राप्त कराके (हिनुहि) वृद्धि कीजिये ॥१४॥

भावार्थः—जो राजा वेग आदि गुणों से युक्त रक्षा से प्रजाओं को प्रसन्न करके उन्नति करे वही निरन्तर वृद्धि को प्राप्त होवे ॥१४॥

फिर वह राजा किससे किस को जीते इस विषय को कहते हैं ॥

स रथेन रथीतमोऽस्माकेनाभियुग्वना ।

जेषि जिष्णो हितं धनम् ॥१५॥

पदार्थः—हे (जिष्णो) जीतने वाले (सः) वह (रथीतमः) अतिशय करके बहुत रथों वाले आप (अभियुग्वना) विभक्त होने वाले (अस्माकेन) हमारे (रथेन) वाहन से (हितम्) प्रवृद्ध (धनम्) धन को (जेषि) जीतते हो इससे प्रशंसा करने योग्य होते हो ॥१५॥

भावार्थः—जो राजा प्रशंसनीय वाहन आदि से बहुत धन को जीतता है वह प्रशंसनीय होता है ॥१५॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं ॥

य एक इत्तमु ष्टुहि कृष्टीनां विचर्षणिः । पतिर्जज्ञे वृषक्रतुः ॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्य (यः) जो (एकः) सहायरहित (इत्) ही (कृष्टीनाम्) मनुष्यों का (पतिः) स्वामी (विचर्षणिः) देखने वाला (वृषक्रतुः) बलयुक्त बुद्धिवाला (जज्ञे) होता है (तम्) उस वीर पुरुष की (उ) ही (स्तुहि) प्रशंसा करिये ॥१६॥

भावार्थः—हे प्रजाजनो ! जो सम्पूर्ण विद्या और श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभाववाला निरन्तर न्याय से प्रजाओं के पालन में तत्पर होवे उसको राजा मानो दूसरे क्षुद्राशय को नहीं ॥१६॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं ॥

यो गृणतामिदासिथापिरूती शिवः सखा ।

स त्वं न इन्द्र मृळय ॥१७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुःखों के नाश करने वाले राजन् (यः) जो (गृणताम्) प्रशंसा करने वाले (नः) हम लोगों के (आपिः) श्रेष्ठ गुणों से व्यापक (शिवः) मंगलकारी (सखा) मित्र (आसिथ) होते हो (सः, इत्) वही (त्वम्) आप (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से हम लोगों को (मृळय) सुखी करो ॥१७॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो आप शत्रुरहित और संसार के मित्र, सब के मंगल करने वाले प्रजाओं में हूजिये तो शीघ्र धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष को सिद्ध करिये ॥१७॥

फिर राजा आदि क्या ध्यान करके क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

धिष्व वज्रं गभस्त्यो रक्षोहत्याय वज्रिवः ।

सासहीष्ठा अभि स्पृधः ॥१८॥

पदार्थः—हे (वज्रिवः) प्रशंसित शस्त्र और अस्त्रों के चलाने में चतुर और अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् आप (रक्षोहत्याय) दुष्टों के मारने के लिए (गभस्त्योः) हाथों के मध्य में (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्रों के समूह को (धिष्व) धारण करिये तथा (स्पृधः) स्पृहा करने योग्य सङ्ग्रामों के (अभि) सन्मुख (सासहीष्ठाः) अत्यन्त सहिये ॥१८॥

भावार्थः—हे राजन् वा सेना के जनो ! आप लोग शस्त्र और अस्त्रों के चलाने में चतुर होकर डाकू आदि शत्रुओं का नाश करके सहनशील हूजिये ॥१८॥

मनुष्य कैसे जन की प्रशंसा करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्रत्नं रयीणां युजं सखायं कीरिचोदनम् । ब्रह्मवाहस्तमं हुवे ॥१९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (रयीणाम्) धनों के (युजम्) युक्त करानेवाले (कीरिचोदनम्) विद्यार्थियों के प्रेरक (ब्रह्मवाहस्तमम्) अतिशय वेद और ईश्वर की जो विद्या उसके प्राप्त करानेवाले (प्रत्नम्) प्राचीन (सखायम्) सब के मित्र की (हुवे) स्तुति करता हूं वैसे इस की आप लोग भी प्रशंसा करो ॥१९॥

भावार्थः—जो सम्पूर्ण जनों के हितकारक, अत्यन्त विद्वान्, सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग के लिये अध्यापन और उपदेश से प्रेरणा करने वाले, स्थिर मित्र का सत्कार करके प्रशंसा करते हैं वे ही गुणग्राहक होते हैं ॥१९॥

फिर मनुष्यों को कैसा राजा करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

स हि विश्वानि पार्थिवाँ एको वसूनि पत्यते ।

गिर्वणस्तमो अध्रिगुः ॥२०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (सः) वह (हि) जिससे (एकः) सहायरहित (गिर्वणस्तमः) अतिशयित वाणियों से प्रशंसा करने योग्य (अध्रिगुः) सत्यगमनवाला राजा (विश्वानि) समस्त (पार्थिवा) पृथिवी में जाने हुए (वसूनि) द्रव्यों को (पत्यते) स्वामी के सदृश आचरण करता है इससे हम लोगों से सत्कार करने योग्य है ॥२०॥

भावार्थः– हे मनुष्यो ! जो विलक्षण बुद्धि और विद्या से युक्त, पृथिवी आदि पदार्थों की विद्या का जानने वाला, प्रशंसा करने योग्य गुण कर्म और स्वभावयुक्त और सत्य आचरण करने वाला जन होवे उसी को राजा करो ॥२०॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर किसकी शोभा करें इस विषय को कहते हैं ॥

स नो॑ नि॒युद्भि॒रा पृ॑ण॒ काम॒ं वाजे॑भिर॒श्विभिः॑ ।

गोम॑द्भि॒र्गोपते धृ॒षत् ॥२१॥

पदार्थः—हे (गोपते) इन्द्रियों के स्वामिन् (सः) वह (धृषत्) ढीठपर्पण करने वाले आप (वाजेभिः) विज्ञान और अन्न आदि के करने वाले (नियुद्भिः) निश्चित कारण तथा (गोमद्भिः) प्रशंसित भूमि, गौ और वाणी से युक्त (अश्विभिः) सूर्य्य और चन्द्रमा आदिकों से (नः) हम लोगों के (कामम्) मनोरथ की (आ) सब प्रकार से (पृण) पूर्त्ति करिये ॥२१॥

भावार्थः—हे राजन् जो आप हम लोगों के मनोरथ की पूर्त्ति करें तो हम लोग भी आपकी इच्छा की पूर्त्ति करें ॥२१॥

फिर मनुष्य किसके लिए क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

तद्वो॑ गाय सु॒ते सचा॑ पुरुहू॒ताय॒ सत्व॑ने । शं यद्गवे॒ न शा॒किने॑ ॥२२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (वः) आप लोगों के लिये प्रशंसा करते हैं (तत्) वे (शाकिने) सामर्थ्ययुक्त (गवे) स्तुति करने वाले के लिए (न) जैसे वैसे (सुते) उत्पन्न हुए इस संसार में (सचा) संयुक्त सत्य से (पुरुहूताय) बहुतों से प्रशंसित (सत्वने) शुद्ध अन्तःकरण वाले के लिए हों उनकी हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य से युक्त आप (शम्) सुखपूर्वक (गाय) स्तुति कीजिये ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है– जैसे सम्पूर्ण विद्याओं के पार जाने वाले के अध्यापन और उपदेशरूप कर्म्म से सब का मंगल बढ़ता है वैसे ही उत्तम राजा से प्रजा का सुख उन्नत होता है ॥२२॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

न घा॒ वसु॒र्नि य॑मते दा॒नं वाज॑स्य॒ गोम॑तः ।

यत्सी॒मुप॒ श्रव॒द्गिरः॑ ॥२३॥

पदार्थः—(यत्) जो जन (गोमतः) प्रशंसित वाणी से युक्त (वाजस्य) विज्ञान का (वसुः) वास दिलाने वाला (दानम्) दान को (नि) अत्यन्त (यमते)

देता है (गिरः) वाणियों को (सीम्) सब प्रकारसे (उप, श्रवत्) सुने वह (न, घा) नहीं मारा जाता है ॥२३॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या और अभयदान देता और सम्पूर्ण विद्वानों से सत्य सुनता है वह इस संसार में विघ्नों से नहीं मारा जाता है ॥२३॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं ॥

कुवित्संस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् ।

शचीभिरप नो वरत् ॥२४॥

पदार्थः—जो (दस्युहा) दुष्ट चोरों को मारने वाला राजा (शचीभिः) बुद्धि वाले कर्मों से (कुवित्सस्य) अत्यन्त विभाग करने वाले के (गोमन्तम्) प्रशंसित गौवें विद्यमान और (व्रजम्) चलते हैं जिसमें उसको (अप, गमत्) प्राप्त होता है वह (हि) ही (नः) हम लोगों को (प्र, वरत्) स्वीकार करे ॥२४॥

भावार्थः—जो राजा दुष्टजनों को दूर करके न्यायव्यवहार के प्रचार के लिए उत्तम जनों का स्वीकार करता है वह बड़े सत्य और असत्य का विचार करनेवाला होता है ॥२४॥

फिर धर्म्मात्मा राजा की सब प्रशंसा करें इस विषय को कहते हैं ॥

इमा उं त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः ।

इन्द्रं वत्सं न मातरः ॥२५॥

पदार्थः- हे (शतक्रतो) अथाह बुद्धि वाले (इन्द्र) आदर देने वाले (वत्सम्) बछड़े की माता (न) जैसे वैसे जो (इमाः) ये प्रजायें और (गिरः) वाणियां (त्वा) आप की (प्र, नोनुवुः) अत्यन्त प्रशंसा करें उनकी (उ) वितर्क के साथ आप (अभि) सब प्रकार से स्तुति करिये ॥२५॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालं०—हे राजन्! जैसे गौवें प्रेम से अपने बछड़ों को प्रसन्न करती हैं वैसे ही उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियां सब को आनन्द देती हैं ऐसा जानो ॥२५॥

किन की मित्रता नहीं जीर्ण होती है इस विषय को कहते हैं ॥

दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते । अश्वो अश्वायते भव ॥२६॥

पदार्थः—हे (वीर) धीरता आदि गुणों से युक्त राजन् वा विद्वान् जो आप (गव्यते) गौ के सदृश आचरण करते हुए के लिए (गौः) गाय जैसे वैसे (अश्वायते)

घोड़ों के सदृश आचरण करते हुए के लिए (अश्वः) घोड़ा जैसे वैसे (असि) हैं और जिन (तव) आपका प्रेम के आस्पद में बन्धा हुआ (दूणाशम्) दुर्लभ नाश जिसका वह (सख्यम्) मित्रपन है वह आप हम लोगों के मित्र (भव) हूजिये ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे गौओं में बैल और घोड़ियों में घोड़ा प्रसन्न सदा ही होता है वैसे ही सज्जनों की मित्रता अविनाशिनी होती है ऐसा सब लोग जानें ॥२६॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं ॥

स मंन्दस्वा ह्यन्धसो राधंसे तन्वा मुहे । न स्तोतारं निदे करः ॥२७॥

पदार्थः—हे विद्वन् (हि) जिससे आप (तन्वा) शरीर से (महे) बड़े (राधसे) धन के लिए (अन्धसः) अन्न आदि से (मन्दस्वा) आनन्दित हूजिये वा आनन्दित करिये और (निदे) निन्दा करने वाले के लिए (स्तोतारम्) स्तुति करने वाले को (न) नहीं (करः) करिये इससे (सः) वह आप जनों को प्रिय हैं ॥२७॥

भावार्थः—हे राजा और प्रजाजनो ! आप लोग अन्न आदि से सब को आनन्दित करिये । और निन्दा न करने योग्यों की मत निन्दा करिये तथा ऐश्वर्य्य की वृद्धि के लिए निरन्तर प्रयत्न करिये ॥२७॥

अब किसके लिए कहाँ क्या प्राप्त होवे इस विषय को कहते हैं ॥

इमा उं त्वा सुतेसुंते नक्षंन्ते गिर्वणो गिरंः ।
वत्सं गावो न धेनवंः ॥२८॥

पदार्थः—हे (गिर्वणः) वाणियों से प्रशंसा करने योग्य (सुतेसुते) उत्पन्न उत्पन्न हुए इस संसार में (इमाः) ये (गिरः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियां (वत्सम्) बछड़े को (धेनवः) दुग्ध की देने वाली (गावः) गौयें (न) जैसे वैसे (त्वा) आपको (नक्षन्ते) व्याप्त हों वे (उ) और हम लोगों को भी प्राप्त हों ॥२८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो श्रेष्ठ आचरण करने वाले हैं उनको गौ जैसे बछड़े को वैसे सम्पर्ण विद्या और वाणियां प्राप्त होती हैं ॥२८॥

फिर कौन उत्तम है इस विषय को कहते हैं ॥

पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवांचि । वाजेभिर्वाजयताम् ॥२९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो वाणियां (वाजेभिः) अन्न आदिकों से (वाजयताम्) प्राप्त कराने वाले (पुरूणाम्) बहुत (स्तोतॄणाम्) विद्वानों के (विवाचि) अनेक

प्रकार की सत्य अर्थ को प्रकाश करने वाली वाणियां जिसमें उस व्यवहार में (पुरूतमम्) अतिशय बहुत विद्यायुक्त व्यवहार को प्राप्त होती हैं वे हम लोगों को निश्चित प्राप्त हों ॥२९॥

भावार्थः—वे ही बहुतों में उत्तम हैं जो विद्या, विनय और अधर्म्मा-चरण को प्राप्त हुए हैं ॥२९॥

राजा और प्रजाजन एकमति करें इस विषय को कहते हैं ॥

अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।
अस्मान् राये महे हिनु ॥३०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) धन के देने वाले (अस्माकम्) हम लोगों का (वाहिष्ठः) अतिशय धारण करने वाला (अन्तमः) समीप में वर्त्तमान (स्तोमः) प्रशंसास्वरूप व्यवहार (ते) आपका बढ़ाने वाला (भूतु) होवे और जो आपके समीप में वर्त्तमान अतिशय धारण करने वाला प्रशंसारूप व्यवहार हो वह (अस्मान्) हम लोगों को (महे) बड़े (राये) धन के लिये (हिनु) बढ़ावे ॥३०॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो ऐश्वर्य्य आपका वह प्रजा का, और जो प्रजा का वह आपका हो ऐसा करने के विना राजा और प्रजा की उन्नति का नहीं सम्भव है ॥३०॥

अब व्यापार-विषय को कहते हैं ॥

अधि बृबुः पणीनां वर्षिष्ठे मूर्धन्नस्थात् । उरुः कक्षो न गाङ्ग्यः ॥३१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (उरुः) बहुत (कक्षः) जलका उल्लंघन करने वाला टापू वा तट आदि (गाङ्ग्यः) पृथिवी को प्राप्त होने वाले के समीप में वर्त्तमान (न) जैसे वैसे (पणीनाम्) प्रशंसा करने योग्य व्यवहार करने वालों के (वर्षिष्ठे) अतिशय वृद्ध (मूर्द्धन्) मस्तक में (बृबुः) काटने लाला (अधि) ऊपर (अस्थात्) स्थित होता है वह आप लोगों से कार्य्य में उत्तम प्रकार संयुक्त करने योग्य है ॥३१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे पृथिवियों में जाती हुई नदी के मध्यस्थ टापू और तट समीप में वर्त्तमान हैं वैसे ही व्यापारियों के समीप में शिल्पीजन वर्त्तमान होवें ॥३१॥

श्रेष्ठविद्या आदि के दान से क्या होता है इस विषय को कहते हैं ॥

यस्य वायोरिव द्रवद्भद्रा रातिः सहस्रिणी ।
सद्यो दानाय मंहते ॥३२॥

पदार्थः हे मनुष्यो (यस्य) जिसकी (सहस्रिणी) असंख्य पदार्थ दिये जाते हैं जिसमें वह (भद्रा) मङ्गल करने वाली (रातिः) दान-क्रिया (वायोरिव) वायु के सदृश (प्रवत्) प्राप्त होती वा शीघ्र जाती है वह (सद्यः) शीघ्र (दानाय) दान के लिए (मंहते) बढ़ता है ऐसा जानना चाहिये ॥३२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो विद्या आदि के दान में प्रिय जन होवें वे वायु के सदृश पूर्ण अभीष्ट सुख को प्राप्त होते हैं और जो शिल्पविद्या की वृद्धि करते हैं वे असंख्य धन को प्राप्त होते हैं ॥३२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

तत्सु नो विश्वे अर्य आ सदा गृणन्ति कारवः ।
बृबुं सहस्रदातमं सूरिं सहस्रसातमम् ॥३३॥

पदार्थः—जो (नः) हम लोगों के (विश्वे) सब (कारवः) कारीगरजन (सहस्रदातमम्) अतिशय असंख्य देने वाले (बृबुम्) मुख्य शिल्पी (सहस्रसातमम्) अतिशय असंख्य पदार्थ बाँटने वाले (सूरिम्) विद्वान् को (सु) उत्तमता से (आ) सब प्रकार (गृणन्ति) स्वीकार करते हैं वे (तत्) उस अतुल ऐश्वर्य्य को (सदा) सर्वकाल में प्राप्त होते हैं और जो इन में (अर्यः) स्वामी वा वैश्य होवे वह इन का उत्तम प्रकार सत्कार कर रक्षा करे ॥३३॥

भावार्थः—जो जन क्रिया में निपुण विद्वानों और कारीगरों की प्रशंसा करते हैं वे असंख्य धन को प्राप्त होकर असंख्य धन देने योग्य होते हैं ॥३३॥

इस सूक्त में राजनीति, धन के जीतने वाले, मित्रपन, वेद के जानने वाले, ऐश्वर्य्य से युक्त, दाता, कारीगर और स्वामी के कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में पैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्दशर्चस्य षट्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रः प्रगाथं वा देवता । १ निचृदनुष्टुप् । ५ । ७ स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ स्वराड्बृहती । ३ । ४ भुरिग्बृहती । ८ । ९ विराड्बृहती । ११ निचृद्बृहती । १३ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । ६ ब्राह्मी गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । १० पंक्तिः । १२ । १४ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब चौदह ऋचावाले छयालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर शिल्पविद्या को कहते हैं ॥

त्वामिद्धि हवामहे साता वाजस्य कारवः ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं नरस्त्वां काष्ठास्ववतः ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त जन (कारवः) कारीगर (नरः) जन हम लोग (त्वाम्) आपको (हि) ही (वाजस्य) विज्ञान के (साता) विभाग में (हवामहे) ग्रहण करें और (वृत्रेषु) धनों में (सत्पतिम्) श्रेष्ठों के पालने वाले (त्वाम्) आपको पुकारें तथा (अर्वतः) घोड़ों को जैसे सारथी वैसे (त्वाम्) आपको (काष्ठासु) दिशाओं में (इत्) ही पुकारें ॥१॥

भावार्थः—हे धन से युक्त ! जो आप हम लोगों के सहायक होवें तो आपके धन से हम लोग शिल्पविद्या से अनेक पदार्थों को रचकर आपको बड़ा धनी करें ॥१॥

फिर मनुष्य शिल्पविद्या से क्या पाते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

स त्वं नश्चित्र वज्रहस्त धृष्णुया मह स्तवानो अद्रिवः ।
गामश्वं रथ्यमिन्द्र सं किर सत्रा वाजं न जिग्युषे ॥२॥

पदार्थः—हे (अद्रिवः) मेघ से युक्त सूर्य्य के समान वर्त्तमान (चित्र) अद्भुत विद्या वाले (वज्रहस्त) हाथ में शस्त्र और अस्त्र को धारण किये हुए (इन्द्र) ऐश्वर्य्य से युक्त (सः) वह (त्वम्) आप (धृष्णुया) निश्चयपने वा ढिठाई से (महः) बड़े की (स्तवानः) प्रशंसा करते हुए (सत्रा) सत्य विज्ञान से (वाजम्) सङ्ग्राम को (न) जैसे वैसे (जिग्युषे) जीतने वाले (नः) हम लोगों के लिये (गाम्) गौ को (रथ्यम्) और वाहन के लिये हितकारक (अश्वम्) घोड़ों को (सम्, किर) संकीर्ण करो—इकट्ठा करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे जीतने वाले योद्धा जन सङ्ग्राम में विजय को प्राप्त होकर धन और प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं वैसे ही शिल्पविद्या में चतुर जन बड़े ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर मनुष्य सङ्ग्राम में कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

यः सत्राहा विचर्षणिरिन्द्रं तं हूमहे वयम् ।
सहस्रमुष्क तुविनृम्ण सत्पते भवा समत्सु नो वृधे ॥३॥

पदार्थः -- हे (सहस्रमुष्क) असंख्य पराक्रम वाले (तुविनृम्ण) बहुत धनों से युक्त (सत्पते) विद्वानों के पालनेवाले अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त (यः) जो (विचर्षणिः) विद्वान् मनुष्य (सत्राहा) सत्य दिनों में (इन्द्रम्) अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त को पुकारता है वैसे (तम्) उसकी (वयम्) हम लोग (हूमहे) प्रशंसा करते हैं और आप (समत्सु) संग्रामों में (नः) हम लोगों की (वृधे) वृद्धि के लिए (भवा) हूजिये ॥३॥

भावार्थः—उसी की हम लोग प्रशंसा करते हैं जो प्रतिदिन हम लोगों की रक्षा करता है और उसी की हम संग्राम में रक्षा करें ॥३॥

फिर राजा और प्रजाजन किसकी प्रतिज्ञा करें इस विषय को कहते हैं ॥

बाधसे जनान्वृषभेव मन्युना घृषौ मीळ्ह ऋचीषम ।

अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥४॥

पदार्थः—हे (ऋचीषम) ऋचा के सदृश प्रशंसा करने योग्य अत्यन्त ऐश्वर्य से युक्त राजन् जो (मन्युना) क्रोध से (वृषभेव) बलयुक्त बैल जैसे वैसे (घृषौ) दुष्टों के घर्षण में (मीळ्हे) सङ्ग्राम में (जनान्) मनुष्यों की बाधा करते हैं जिससे आप उनकी (बाधसे, बाधा करते हो और (अस्माकम्) हम लोगों के (तनूषु) शरीरों में और (अप्सु) प्राणों में (महाधने) सङ्ग्राम में (अविता) रक्षा करने वाले हुए (सूर्य्ये) सूर्य्य में प्रकाश जैसे वैसे हम लोगों को (बोधि) जनाइये इससे आप आदर करने योग्य हैं ॥४॥

भावार्थः— इस मन्त्र में उपमालं०—हे राजन् ! हम लोग दुष्टों के बाधने के लिये और सङ्ग्राम में अपने लोगों की रक्षा के लिये आपका स्वीकार करें तथा आप हमलोगों को सत्य न्यायकृत्य सदा ही जनाइये ॥४॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।

येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥५॥

पदार्थः—हे (सुशिप्र) सुन्दर ठुड्ढी और नासिकायुक्त (चित्र) अद्भुत गुण कर्म्म और स्वभाव वाले (वज्रहस्त) शस्त्र और अस्त्र हाथ में जिसके ऐसे और (इन्द्र) श्रेष्ठ गुणों के धारण करनेवाले आप (ज्येष्ठम्) अतिशय प्रशंसित (ओजिष्ठम्) अतिशय बल के देने (पपुरि) पालन करने और पुष्टि करने वाले (श्रवः) अन्न वा श्रवण को (नः) हम लोगों के लिये (आ, भर) धारण करो (येन) जिससे

(उभे) दोनों (इमे) इन (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (आ) सब प्रकार से (प्राः) व्याप्त होओ ॥५॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप ऐसे गुण कर्म्म और स्वभाव का स्वीकार करें जिससे न्याय, भूमि, राज्य, सेना और विजय को धारण करने को समर्थ होवें ॥५॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं ॥

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन्देवेषु हूमहे ।

विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्त्सुषहान्कृधि ॥६॥

पदार्थः—हे (वसो) सुख में वसाने वाले (राजन्) विद्या और विनय से प्रकाशमान हम लोग (विश्वा) सम्पूर्ण कार्य्यों के प्रति और (देवेषु) विद्वानों में (अवसे) रक्षण आदि के लिए (उग्रम्) तेजस्वी और (चर्षणीसहम्) शत्रुओं की सेना के सहने वाले (त्वाम्) आपको (सु, हूमहे) पुकारें और आप (नः) हम लोगों के (अमित्रान्) शत्रुओं को (सुसहान्) सुख के सहने योग्य (कृधि) करिये और (पिब्दना) पीसने योग्य शत्रु सैन्यों को (विथुरा) व्यथायुक्त करिये ॥६॥

भावार्थः—जो राजा मन्त्री और प्रजाजनों के सुख और दुःख को अपने सदृश जान कर जैसे शत्रुओं का पराभव होवे वैसा उपाय करने वाला होवे उसी को सब लोग पिता के सदृश मानें ॥६॥

फिर राजा को कहां क्या धारण करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।

यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) प्रजा के प्रिय को धारण करने वाले आप (कृष्टिषु) मनुष्यों में और (नाहुषीषु) मनुष्य सम्बन्धी प्रजाओं में (यत्) जो (ओजः) बलकारक अन्न आदि नृम्णम्) धन (च) और होवे उसको (आ, भर) धारण करिये (वा) वा (पञ्च) पांच तत्वों और (क्षितीनाम्) राज सम्बन्धिनी भूमियों के मध्य में (यत्) जो (द्युम्नम्) शुद्ध यश है अथवा (सत्रा) सत्य (विश्वानि) सम्पूर्ण (पौंस्या) पुरुषार्थ से उत्पन्न हुए बल वर्त्तमान हैं उनको (आ) धारण करिये ॥७॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो आप सम्पूर्ण प्रजाओं को धन धान्य और विद्या से युक्त करिये तो पञ्चतत्त्व नामक राज्य को प्राप्त होकर ववलित यश को प्राप्त हूजिये ॥७॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

यद्वा तृक्षौ मघवन्द्रुह्यावा जने यत्पूरौ कच्च वृष्ण्यम् ।

अस्मभ्यं तद्रिरीहि सं नृषाह्येऽमित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥८॥

पदार्थः—हे (मघवन्) न्याय से धन इकट्ठा करने वाले आप (तृक्षौ) विद्या और श्रेष्ठ गुण से प्राप्त (द्रुह्यौ) द्रोह करने योग्य (जने) मनुष्य में (यत्) जो (रिरीहि) प्राप्त कराइये और (पूरौ) पूर्ण बलवाले मनुष्य में (यत्) जो (वृष्ण्यम्) उत्तमों में हितकारक जो बल उसको प्राप्त कराइये (तत्) वह (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (च) और (कत्) कब प्राप्त कराइये और कब (वा) वा हम लोगों के (अमित्रान्) शत्रुओं को (नृषाह्ये) मनुष्यों से सहनेयोग्य सङ्ग्राम में (पृत्सु) सेनाओं में (तुर्वणे) हिंसन के लिए (सम्) अच्छे प्रकार (आ) सब ओर से प्राप्त कराइये ॥८॥

भावार्थः—हे राजन् ! जब आप उत्तम मनुष्यों में प्रतिष्ठा और दुष्टों में तिरस्कार धारण करें तभी शत्रुओं के विजय के लिये योग्य होवें ॥८॥

मनुष्य कैसे गृह को बनावें इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।

छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्यों से युक्त आप (त्रिधातु) तीन सुवर्ण चांदी और तांबा ये धातु जिसमें उस (त्रिवरूथम्) शीत उष्ण और वर्षा ऋतु में उत्तम (शरणम्) आश्रय करने योग्य (स्वस्तिमत्) बहुत सुख से युक्त (छर्दिः) गृह को (यच्छ) ग्रहण करिये वा दीजिये और जिन (मघवद्भ्यः) बहुत धनवालों के और (मह्यम्) मुझ धनयुक्त के लिए (च) भी ग्रहण करिये वा दीजिये (एभ्यः) इन वर्त्तमानों के लिए (दिद्युम्) सुप्रकाश को (च) भी (यावया) संयुक्त कराइये ॥९॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि जो सब ऋतुओं में सुखकारक, धन धान्य से युक्त, वृक्ष, पुष्प, फल, शुद्ध वायु, जल तथा धार्मिक और धनाढ्यों से युक्त गृह उसको बना कर वहां निवास करें जिससे सर्वदा आरोग्य से सुख बढ़े ॥९॥

फिर वह राजा किन का क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।

अधं स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥१०॥

पदार्थः—हे (गिर्वणः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों से सेवा किये गए (मघवन्) बहुत धन से युक्त (इन्द्र) शत्रुओं को नाश करने वाले (ये) जो (धृष्णुया) ढीठपन आदि से (गव्यता) वाणी के सदृश आचरण करते हुए (मनसा) मन से (शत्रुम्) शत्रु का (आदभुः) सब प्रकार से नाश करते हैं (अध) इसके अनन्तर इसकी सेना का (अभिप्रघ्नन्ति) सन्मुख अत्यन्त नाश करते हैं उनके साथ (स्मा) ही (नः) हम लोगों के (तनूपाः) अपने और अन्यों के शरीरों के रक्षक (अन्तमः) समीप में स्थित (भव) हूजिये ॥१०॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो ठग आदि दुष्टों और शत्रुओं के बांधने वाले तथा प्रजाओं के पालन में तत्पर धार्मिक जन हों उनके विश्वास से राज्य के कृत्यों को शोभित करिये ॥१०॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

अधं स्मा नो वृधे भवेन्द्र नायमवा युधि ।

यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्द्धानः ॥११॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) ऐश्वर्य्य के बढ़ाने वाले सेना के स्वामी (यत्) जो (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (पर्णिनः) पक्षियों के समान (दिद्यवः) प्रकाशमान (तिग्ममूर्द्धानः) ऊपर वर्त्तमान योद्धा जन (युधि) सङ्ग्राम में (पतयन्ति) जाते हैं (अध) इसके अनन्तर विजय को (नायम्) प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं उनके साथ (नः) हम लोगों की (वृधे) वृद्धि के लिए (भव) प्रसिद्ध हूजिये और सङ्ग्राम में हम लोगों की (स्मा) ही निरन्तर (अवा) रक्षा कीजिये ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! आप विमान आदि वाहनों को स्थापित कर पक्षियों के सदृश अन्तरिक्ष मार्ग से गमन और आगमन करके तथा उत्तम पुरुषों के साथ विजय को प्राप्त होकर सब से श्रेष्ठ हूजिये ॥११॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ।

यत्र शूरासस्तन्वो वितन्वते प्रिया शर्म्म पितृणाम् ।

अधं स्मा यच्छ तन्वे३ तने च छर्दिरचित्तं यावय द्वेषः ॥१२॥

पदार्थः—हे ऐश्वर्य्य के बढ़ाने वाले (यत्र) जहां (शूरासः) युद्ध में चतुर जन (पितृणाम्) अपने पिता और स्वामियों के (तन्वः) शरीरों को (वितन्वते) बढ़ाते हैं और (प्रिया) प्रिय (शर्म्म) गृहों को बढ़ाते हैं (अध) इस के अनन्तर (तन्वे) शरीर के लिए (तने) बढ़े हुए व्यवहार में (च) भी (अचित्तम्) चेतनता से रहित (छर्दिः) गृह को आप (यच्छ) ग्रहण करिये वहां (द्वेषः) शत्रुओं को (स्म) ही (यावय) पृथक् कराइये ॥१२॥

भावार्थः—हे राजन् शूर धार्मिक जनों की सत्कारपूर्वक उत्तम प्रकार रक्षाकर शत्रुओं का निवारण कर उत्तम गृहों में पितरों और स्वामी जनों के लिये सुन्दर भोगों को देकर अपने यश का विस्तार करो ॥१२॥

फिर मनुष्यों को कैसे गमनादिक करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

यदिन्द्र सर्गे अर्वतश्चोदयासे महाधने ।
असमने अध्वनि वृजिने पथि श्येनाँ इव श्रवस्यतः ॥१३॥

पदार्थः- हे (इन्द्र) वीर शत्रुओं के नाश करने वाले (यत्) जहां (सर्गे) मिलने योग्य (महाधने) बड़े धन जिससे उस और (असमने) नहीं विद्यमान सङ्ग्राम जिसमें ऐसे (वृजिने) बलकारक (अध्वनि) मार्ग में और (पथि) आकाशमार्ग में (श्येनानिव) बाजों को जैसे वैसे (श्रवस्यतः) सुख की इच्छा करते हुए (अर्वतः) घोड़े आदि को (चोदयासे) प्रेरणा करिये वहां आपका दूर भी स्थित स्थान निकट-सा होवे ॥१३॥

भावार्थः—हे राजन् युद्ध के विना भी जब-जब कार्य्य के लिए गमन आप करें तब-तब शीघ्र ही जाना चाहिये और शिथिलता पैरों से वा वाहन से जाने में नहीं करनी चाहिये ॥१३॥

फिर वे राजा आदि क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

सिन्धूँरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि ।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि ॥१४॥

पदार्थः—हे राजन् आप (यदि) जो (प्रवणे) नीचे स्थान में (सिन्धूनिव) नदियों को जैसे वैसे (आशुया) शीघ्र चलने वाले घोड़ों से वा (स्वनि) शब्द के होने और (आमिषि) मांस के देखने पर (वयः) पक्षी (न) जैसे वैसे (गवि) पृथिवी में (क्लोशम्) कोश को (अनु, वर्वृतति) अत्यन्त वा वारम्वार प्राप्त होते हैं वा (बाह्वोः) बाहुओं में (गृभीताः) ग्रहण की गई किरणें वा कलायें यथावत् जाती हैं

तो दूसरे स्थान में प्राप्त होना दुर्लभ नहीं है (ये) जो (यतः) जहां से जाते (आ) आते हैं वे भी ऐसा करें ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो तुम जैसे जल ऊंचे स्थान से नीचे के स्थान को शीघ्र जाता है और जैसे बाज आदि पक्षी मांस के लिये शीघ्र जाते हैं वैसे भूमि अन्तरिक्ष वा जल में वाहनों से शीघ्र जाओ ॥१४॥

इस सूक्त में राजा वीर संग्राम गृह शूरवीर और यान कृत्य के वर्णन से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्तार्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में छयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकत्रिंशदृचस्य सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—३१ गर्ग ऋषिः । १—५ सोमः । ६—१९—२०[२]·२१—३१[२]· इन्द्रः । २०[१]·लिङ्गोक्ता देवताः । २२—२५ प्रस्तोकस्य सार्जयस्य दानस्तुतिः । २६—२८ रथः । १९—३१ [१]· दुन्दुभिर्देवता ॥ १ । ३ । ५ । २१ । २२ । २८ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ । ८ । ११ विराट् त्रिष्टुप् । ६ । ७ । १० । १५ । १६ । १८ । २० । २९ । ३० त्रिष्टुप् । २७ स्वराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ९ । १२ । १३ । २६ । ३१ भुरिक्पङ्क्तिः । १४ । १७ स्वराट् पङ्क्तिः । २३ आसुरीपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १९ बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । २४ । २५ विराड् गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब एकतीस ऋचा वाले सैंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में क्या करके राजा शत्रुओं से नहीं सहने योग्य होवे इस विषय को कहते हैं ॥

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।
उतो न्व१स्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥१॥

पदार्थः—हे शूरवीर जनो जो (अयम्) यह (स्वादुः) सुन्दर स्वाद से युक्त (किल) निश्चय करके (उत) और (अयम्) यह (मधुमान्) मधुरादि गुणों से युक्त (किल) निश्चय करके (अयम्) यह (तीव्रः) तेजस्वी और वेगयुक्त (उत) और (अयम्) यह (रसवान्) बड़ी ओषधि का प्रशंसित रसयुक्त सार है (अस्य) इसके (उतो) भी (पपिवांसम्) पीने वाले (इन्द्रम्) राजा आदि शूरवीर को (आहवेषु) संग्रामों में (नु) शीघ्र (कः) (चन) कोई भी (न) नहीं (सहते) सहता है ॥१॥

भावार्थः—जो ब्रह्मचर्य्य, जितेन्द्रियत्व और युक्त आहार-विहारों से

शरीर और आत्मा के बल से युक्त होते हैं उनको सङ्ग्रामों में सहने को शत्रु समर्थ नहीं हो सकते हैं ॥१॥

फिर मनुष्य किसका सेवन करके क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्यो३ हन् ॥२॥

पदार्थः—(यः) जो (इन्द्रः) सूर्य के सदृश प्रतापी राजा और जो (अयम्) यह (इह) इस संसार में (स्वादुः) अच्छे स्वाद से युक्त (मदिष्ठः) अतिशय आनन्द देने वाला (आस) होता और (यस्य) जिसके पान करने से (ममाद) प्रसन्न होता है उसका पान करके जैसे (इन्द्रः) सूर्य के समान प्रतापयुक्त (शम्बरस्य) मेघ के (नव, च) नव (नवतिम्) नब्बे प्रकार की मेघगतियों का (वि, हन्) नाश करता है उस प्रकार से (देह्यः) वृद्धि करने के योग्य हुआ (वृत्रहत्ये) सङ्ग्राम में शत्रुओं की (पुरूणि) बहुत (च्यौत्ना) सेनाओं का नाश करे वही विजयी होवे ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जिसका उत्तम स्वाद और जिससे बल बुद्धि तथा पराक्रम बढ़ते हैं उसके सेवन से शत्रुओं को जीत कर निष्कण्टक राज्य का सेवन करो ॥२॥

फिर सोम ओषधि क्या करती है इस विषय को कहते हैं ॥

अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अयम्) यह (पीतः) पान किया गया सोमलता का रस (मे) मेरी (वाचम्) वाणी को (उशतीम्) कामना करती हुई (मनीषाम्) बुद्धि को (उत्, इयर्त्ति) बढ़ाता है जिससे (अयम्) यह जन कामना को (अजीगः) प्राप्त होता है जिससे (अयम्) यह (षट्) छः प्रकार की (उर्वीः) भूमियों को (धीरः) ध्यान करने वाला बुद्धिमान् जन (न) जैसे (अमिमीत) निर्म्माण करता है और (याभ्यः) जिनसे (आरे) दूर वा समीप में (कत्) कभी (चन) भी (भुवनम्) संसार को रचता है यह वैद्यकशास्त्र की रीति से बनाने योग्य है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जिस पिये हुए से वाणी, बुद्धि, शरीर बढ़ें और जिससे शास्त्र उत्तम प्रकार ग्रहण किये जायं इसका ही सेवन करना चाहिये न कि बुद्धि आदिकों के नाश करने वाले का ॥३॥

फिर वह सोम क्या करता है इस विषय को कहते हैं ॥

अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्व१न्तरिक्षम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (अयम्) यह (सोमः) सोमलता का रस (तिसृषु) तीन भूमि आदिकों (प्रवत्सु) नीचे के स्थलों में (पीयूषम्) अमृत को (दाधार) धारण करता है और जो (अयम्) यह (पृथिव्याः) पृथिवी से (वरिमाणम्) श्रेष्ठपने को और (दिवः) सूर्य्य के प्रकाश से (वर्ष्माणम्) वृष्टि करने वाले को (अकृणोत्) करता है (सः) वह सब मनुष्यों से उत्तम प्रकार ग्रहण करने योग्य और जो (अयम्) यह (उरु) बहुत (अन्तरिक्षम्) मध्य में नहीं नष्ट होने वाले को धारण करता है (सः) वह इस सब का सुख करने वाला है ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सोमलतारूप ओषधि का रस वायु के साथ भूमि को, किरणों के साथ सूर्य्य को धारण करता है उसको ग्रहण और सेवन करके सब रोगरहित होओ ॥४॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान्महता स्कम्भनेनोद्द्यामस्तभ्नाद् वृषभो मरुत्वान् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अयम्) यह (वृषभः) वृष्टि करनेवाला (मरुत्वान्) बहुत वायु विद्यमान जिसमें ऐसा सूर्य्य (शुक्रसद्मनाम्) शुद्धस्थानों और (उषसाम्) प्रभातवेलाओं की (अनीके) सेना में (चित्रदृशीकम्) आश्चर्य्ययुक्त दर्शन जिसका ऐसे (अर्णः) जल को (विदत्) प्राप्त होता है और जो (अयम्) यह (महान्) बड़ा (महता) बड़े (स्कम्भनेन) धारण से (द्याम्) प्रकाश को (उत्, अस्तभ्नात्) ऊपर को उठाता है उसको कार्य्य का उपयोगी करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वान् जनो ! आप लोग सूर्य्य के सदृश प्रातःकाल से लेकर प्रयत्न से विद्याओं को प्रकाशित करके सुख को प्राप्त होओ ॥५॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं ॥

धृषत्पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यन्दिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥६॥

पदार्थः—हे (शूर) भय से रहित (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश वर्त्तमान सेना के स्वामिन् जैसे (वृत्रहा) मेघ का नाश करने वाला (माध्यन्दिने) मध्य दिन में की गई (सवने) प्रेरणा में (वसूनाम्) पृथिवी आदिकों के मध्य से जल को अत्यन्त पीता है वैसे (समरे) सङ्ग्राम में (धृषत्) ढीठ हुए (कलशे) पात्र में (सोमम्) बड़ी ओषधियों के रस को (पिब) पीजिये और (रयिस्थानः) धनों से युक्त हुए (आ, वृषस्व) बलिष्ठ हूजिये और (अस्मासु) हम लोगों में (रयिम्) धन को (धेहि) धारण करिये ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन्! जैसे मध्याह्न में वर्त्तमान सूर्य्य सम्पूर्ण समीप में वर्त्तमान जगत् को प्रकाशित करता है वैसे न्याय में वर्त्तमान हुए आप वादी और प्रतिवादी जनों की व्यवस्था करके राजनीति से न्याय को प्रकाशित कीजिये ॥६॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्र॒ प्र णः॑ पुरए॒तेव॑ पश्य॒ प्र नो॑ नय प्रत॒रं वस्यो॒ अच्छ॑ ।
भवा॑ सुपा॒रो अ॑तिपार॒यो नो॒ भवा॒ सुनी॑तिरु॒त वा॒मनी॑तिः ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुष्टों के नाश करने वाले राजन् आप (पुरएतेव) आगे चलने वाले के सदृश (नः) हम लोगों को (प्र, पश्य) अच्छे प्रकार देखिये और (नः) हम लोगों के (प्रतरम्) शत्रुओं के बल उल्लंघन को (अच्छ) अच्छे प्रकार (प्र, नय) प्राप्त करिये और (नः) हम लोगों के शत्रुओं के बल का उल्लंघन और (वस्यः) अतिशय धन को अच्छे प्रकार प्राप्त कराइये और हम लोगों का (सुपारः) सुन्दर पार जिनसे ऐसे (अतिपारयः) अत्यन्त पार करने वाले (भवा) हूजिये तथा (सुनीतिः) अच्छे न्यायवाले और (उत) भी (वामनीतिः) प्रशंसित नीतिवाले (भव) हूजिये ॥७॥

भावार्थः—जो राजा मनुष्यों की परीक्षा लेने वाला और सब को न्याय मार्ग से ऐश्वर्य्य को प्राप्त कराने और दुःख से और सङ्ग्राम से पार पहुंचाने वाला और सदा धर्मपूर्वक नीतियुक्त होवे वही इस संसार में प्रशंसा को पावे ॥७॥

राजा अपने आश्रितों के प्रति कैसा वर्त्ताव करे इस विषय को कहते हैं ॥

उ॒रुं नो॑ लो॒कमनु॑ नेषि वि॒द्वान्त्स्व॑र्वज्ज्योति॒रभ॑यं स्व॒स्ति ।
ऋ॒ष्वा त॑ इन्द्र॒ स्थवि॑रस्य बा॒हू उप॑ स्थेयाम शर॒णा बृ॒हन्ता॑ ॥८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) न्याय को प्राप्त कराने वाले राजन् जिस (स्थविरस्य) विद्या और विनय से वृद्ध (ते) आपके (शरणा) शत्रुओं के नाश करने वाले (वृहन्ता) बड़े (ऋष्वो) श्रेष्ठ (बाहू) बल और वीर्य्य से युक्त भुजाओं को हम लोग (उप, स्थेयाम) प्राप्त होवें वह (विद्वान्) विद्वान् आप जिससे (नः) हम लोगों को (उरुम्) बहुत (स्ववंत्) अत्यन्त सुख से युक्त (ज्योतिः) ज्ञान का प्रकाश और (अभयम्) भय से रहित (स्वस्ति) सुख (लोकम्) दर्शन वा वृद्धि को (अनु, नेषि) प्राप्त कराते हो इससे हम लोगों से आदर करने योग्य हो ॥८॥

भावार्थः—राजा बड़े प्रयत्न से अपने आधीन प्रजाओं को विद्या और अभय सुख से युक्त करे जिससे सब प्रजा अनुकूल होवें ॥८॥

फिर वह राजा किन के प्रति कैसा वर्त्ताव करे इस विषय को कहते हैं ॥

वरि॑ष्ठे न इन्द्र व॒न्धुरे॑ धा॒ वहि॑ष्ठयोः शताव॒न्नश्व॑योरा ।
इष॒मा व॑क्षीषां॒ वर्षि॑ष्ठां॒ मा न॑स्तारीन्मघव॒न्रायो॑ अ॒र्यः ॥९॥

पदार्थः—हे (शतावन्) सेनाओं से युक्त (मघवन्) बहुत धन वाले (इन्द्र) ऐश्वर्य्यवान् राजन् (रायः) धन के (अर्य्यः) स्वामी आप (वहिष्ठयोः) अतिशय ले चलने वाले (अश्वयोः) शीघ्र पहुंचाने वालों के (वरिष्ठे) अतिशय श्रेष्ठ (वन्धुरे) प्रेम बन्धन में वाहन से (नः) हम लोगों को (आ, धाः) सब प्रकार से धारण करिये तथा (इषम्) अन्न को (आ, वक्षि) प्राप्त हूजिये और (नः) हम लोगों को (वर्षिष्ठाम्) अतिशय वृद्ध (इषाम्) अन्न आदिकों को (मा) नहीं (तारीत्) अलग करिये ॥९॥

भावार्थः—प्रजा और सेना के जनों को चाहिये कि राजा से ऐसी प्रेरणा करें कि आप हम लोगों को उत्तम वाहनों में उत्तम प्रकार बैठाकर अधिक धन प्राप्त कराइये जिससे हम लोगों के वञ्चन को कभी मनुष्य न करें अर्थात् हम लोगों को कभी न ठगें ॥९॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्र॑ मृ॒ळ मह्यं॑ जी॒वातु॑मिच्छ चो॒दय॒ धिय॒मय॑सो॒ न धारा॑म् ।
यत्कि॒ञ्चाहं त्वा॒युरि॒दं वदा॑मि॒ तज्जु॑षस्व कृ॒धि मा॑ दे॒ववन्तम् ॥१०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सबके लिये सुख धारण करने वाले आप (मा) मुझको (मृळ) सुखी करिये और (मह्यम्) मेरे लिये (जीवातुम्) जीवन की (इच्छ) इच्छा करिये और (अयसः) सुवर्ण के (न) समान (धियम्) बुद्धि वा धर्म्मयुक्त

कर्म्म को और (धाराम्) प्रगल्भ वाणी को (चोदय) प्रेरणा करिये और (त्वायुः) आपकी कामना करता हुआ (अहम्) मैं (यत्) जो (किम्) कुछ (च) भी (वदामि) कहता हूं (तत्) उस (इदम्) इसको (जुषस्व) सेवन करिये और (देववन्तम्) विद्वान् जिसके सम्बन्ध में ऐसा मुझको (कृधि) करिये ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे राजन् ! जैसे सब जन सुवर्ण आदि धन की इच्छा करते हैं वैसे ही आप अपनी प्रजा के पालन की इच्छा करिये और सम्पूर्ण प्रजायें जैसे उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी, यथार्थ ज्ञान, अवस्था और विद्वानों के संग को प्राप्त होवें वैसे करिये ॥१०॥

फिर वह राजा क्या करे और प्रजायें उसका किस लिए आश्रयण करें इस विषय को कहते हैं ॥

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (मघवा) अत्यन्त श्रेष्ठ धन से युक्त (इन्द्रः) अत्यन्त ऐश्वर्य्य वाला (नः) हम लोगों के लिये (स्वस्ति) सुख को (धातु) धारण करे उसको (हवेहवे) संग्राम संग्राम में (त्रातारम्) पालन करने वाले (अवितारम्) ज्ञानादि के देने और (इन्द्रम्) अविद्या से दुष्ट जन के नाश करने वाले (सुहवम्) सुन्दर पुकारना वा संग्राम जिसका उस (शूरम्) निर्भयत्व आदि गुणों से युक्त (इन्द्रम्) श्रेष्ठ गुणों के धारण करने वाले (शक्रम्) समर्थ (पुरुहूतम्) बहुतों से पुकारे गए (इन्द्रम्) सेना के धारण करने वाले को (ह्वयामि) पुकारता हूं वैसे इसको आप लोग भी पुकारो ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य जैसे सर्वत्र सहायक परमेश्वर को पुकारते हैं वे वैसे ही राजा का भी सर्वत्र आश्रयण करें ॥११॥

फिर वह कैसा हो और उसकी रक्षा कौन करें इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (सुत्रामा) उत्तम प्रकार रक्षा करने वाला (स्ववान्) बहुत अपने जन विद्यमान जिसके ऐसा (विश्ववेदाः) सम्पूर्ण विज्ञान को जानने वाला (इन्द्रः) दुष्टता का नाश करने वाला (अवोभिः) रक्षण आदि से हम लोगों का (सुमृळीकः) उत्तम प्रकार सुख करने वाला (भवतु) हो तथा (द्वेषः) द्वेष आदि

दोषों से युक्त जनों का (बाधताम्) निवारण करे और (अभयम्) निर्भयपन (कृणोतु) करे उस (सुवीर्य्यस्य) सुन्दर पराक्रम वा ब्रह्मचर्य्य वाले के हम लोग (पतयः) पालन करने वाले स्वामी (स्याम) होवें उसके रक्षक आप लोग भी हूजिये ॥१२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो जो राजा सम्पूर्ण विद्या और किये हुए पूर्ण ब्रह्मचर्य्य से युक्त बहुत मित्रों वाला और अपने सदृश श्रेष्ठ का रक्षक, दुष्टों को दण्ड देने वाला, सब प्रकार से निर्भयता करता है उसकी रक्षा सब को चाहिये कि सब प्रकार से करें ॥१२॥

फिर राजा और प्रजाजन कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

तस्य॑ व॒यं सु॑म॒तौ य॒ज्ञिय॒स्यापि॑ भ॒द्रे सौ॑मन॒से स्या॑म ।
स सु॒त्रामा॒ स्ववाँ॒ इन्द्रो॑ अ॒स्मे आ॒राच्चि॒द्द्वेषः॑ सनु॒तर्यु॑योतु ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (वयम्) हम लोग (तस्य) उस पहिले प्रतिपादन किये विद्या और विनय से युक्त राजा के और (यज्ञियस्य) विद्वानों की सेवा संग और विद्या के दान करने के योग्य की (सुमतौ) सुन्दर बुद्धि में (सौमनसे) उत्तम धर्म से युक्त मानस व्यवहार में (भद्रे) कल्याण करने वाले में (अपि) भी निश्चय से वर्त्तमान (स्याम) होवें और जो (स्ववान्) अपने सामर्थ्य से युक्त (इन्द्रः) विद्या देने वाला (अस्मे) हम लोगों की (सुत्रामा) उत्तम प्रकार पालना करने वाला होता हुआ हम लोगों के (आरात्) समीप वा दूर से (चित्) भी (द्वेषः) धर्म से द्वेष करने वालों को (सनुतः) सदा ही (युयोतु) पृथक् करे (सः) वह हम लोगों से सदा सत्कार करने योग्य है ॥१३॥

भावार्थः—हे राजा और प्रजाजनो ! जिस शुद्ध न्याय और श्रेष्ठ गुणों में राजा वर्त्ताव करे वैसे इस विषय में हम लोग भी वर्त्ताव करें और सब मिलकर मनुष्यों से दोषों को दूर करके गुणों को संयुक्त करके सब काल में न्याय और धर्म्म के पालन करने वाले होवें ॥१३॥

फिर उस राजा का सेवन कौन गुण करते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

अव॒ त्वे इ॑न्द्र प्र॒वतो॒ नोर्मिर्गिरो॒ ब्रह्मा॑णि नि॒युतो॑ धवन्ते ।
उ॒रू न राधः॒ सव॑ना पु॒रूण्य॒पो गा व॑ज्रिन्युव॒से समिन्दू॑न् ॥१४॥

पदार्थः—हे (वज्रिन्) शस्त्र और अस्त्रों से युक्त (इन्द्र) राजन् जो (त्वे) आप में (नियुतः) निश्चित सत्यवाद जिन में ऐसी (गिरः) श्रेष्ठ वाणियां (ब्रह्माणि) धनों वा अन्नों को और (प्रवतः) नम्रों को (ऊर्मिः) लहर (न) जैसे वैसे

(अव, धवन्ते) चलाती हैं और (उरू) बहुत (राधः) धनों को (न) जैसे वैसे (पुरूणि) बहुत (सवना) प्रेरणायें प्राप्त होती हैं और जिस कारण (अपः) जलों (गाः) भूमि वा वाणियों को और (इन्दून्) आनन्दों को (सम्) (युवसे) संयुक्त करते हो इससे आप श्रेष्ठ हो ॥१४॥

भावार्थः– इस मन्त्र में उपमालं०—जो ब्रह्मचर्य्य आदि श्रेष्ठ कर्म्मों को करते हैं उनको नीचे के स्थान को जल जैसे और पुरुषार्थी को लक्ष्मी जैसे वैसे सम्पूर्ण विद्या, सम्पूर्ण ऐश्वर्य और सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त होते हैं ॥१४॥

फिर कौन किनसे पूछें और समाधान करें इस विषय को कहते हैं ॥

क ईं स्तवत्कः पृणात्को यंजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत् ।
पादाविव प्रहरंन्नन्यमंन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥१५॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो इस संसार में (कः) कौन (ईम्) प्राप्त होने योग्य परमात्मा की (स्तवत्) स्तुति करे और (कः) कौन सबका (पृणात्) पालन करे (कः) कौन सत्य का (यजाते) यजन करे कि (यत्) जो (मघवा) बहुत धन वाला (शचीभिः) कर्म्मों से (विश्वाहा) सब दिन (उग्रम्) तेजस्वी (इत्) ही की (अवेत्) रक्षा करे तथा (पादाविव) चरणों को जैसे वैसे (अन्यमन्यम्) दूसरे दूसरे को (प्रहरन्) मारता हुआ (पूर्वम्) पहिले वाले को (अपरम्) पीछे (कृणोति) करता है ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे विद्वान् जनो ! हम लोग आप लोगों से पूंछते हैं कि इस संसार में कौन ईश्वर की प्रशंसा करता, कौन सब का न्याय से पालन करता और कौन विद्वानों का सत्कार करता है, इन प्रश्नों का क्रम से उत्तर—जो विद्या के योग से धन से युक्त है वह सर्वदा परमेश्वर ही की स्तुति करता है और जो न्यायकारी राजा पक्षपात का त्याग कर अपराधी को दण्ड देता और धार्मिक का सत्कार करता है वह सर्वरक्षक है और जो स्वयं विद्वान् गुण और दोषों का जानने वाला है वही विद्वानों का सत्कार करने योग्य है ये उत्तर हैं ॥१५॥

फिर वह राजा कैसा होवे इस विषय को कहते हैं ॥

शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमंन्यमतिनेनीयमानः ।
एधमानद्विळुभयंस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥१६॥

पदार्थः—हे मन्त्रीजनो जो (वीरः) शूरता आदि गुणों से युक्त जन (उग्रमुग्रम्) तेजस्वी तेजस्वी जन को (दमायन्) इन्द्रियों का निग्रह कराता हुआ और (अन्यमन्यम्) दूसरे दूसरे को (अतिनेनीयमानः) अत्यन्त न्याय की व्यवस्था को प्राप्त कराता हुआ (एधमानद्विट्) वृद्धि को प्राप्त होते हुओं से द्वेष करने वाला और (उभयस्य) राजा तथा प्रजाजन समुदाय का (राजा) न्याय और विनय से प्रकाशमान राजा (इन्द्रः) विद्या और विनय को धारण करने वाला (विशः, मनुष्यान्) प्रजाजनों को (चोष्कूयते) निरन्तर पुकारता है उसको मैं न्यायेश (शृण्वे) सुनता हूं ॥१६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो मनुष्य दुष्टों दुष्टों को ताड़न करता, श्रेष्ठों श्रेष्ठों का सत्कार करता, अन्य की वृद्धि देख कर द्वेष करने वालों को दण्ड देता और प्रसन्नों का सत्कार करता हुआ सम्पूर्ण वादी और प्रतिवादी के वचनों को यथावत् सुन के सत्य न्याय को करता है वही राजा होने के योग्य है ॥१६॥

फिर वह राजा क्या नहीं करके क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥१७॥

पदार्थः—जो सूर्य्य के सदृश (इन्द्रः) राजा (पूर्वेषाम्) पूर्वजनों के (सख्या) मित्र से (वितर्तुराणः) विशेष करके अत्यन्त हिंसा करता और (अनानुभूतीः) अनुभव से रहित जनों को (अवधून्वानः) नीचे को कम्पाता हुआ (परा, वृणक्ति) त्यागता है और (अपरेभिः) अन्यों के साथ (एति) जाता है वह जैसे सूर्य्य (पूर्वीः) प्राचीन (शरदः) शरद् आदि ऋतुओं को वैसे वर्षों के (तर्तरीति) अत्यन्त पार होता है ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा वृद्ध जनों के मित्रपन का त्याग करके नीच मित्रों को प्राप्त होता है वह कल्याण से च्युत होता है और जो अनभिज्ञ मित्रों का त्याग करके अभिज्ञों को मित्र करता है वही पूर्ण आयु भर सुख से पार होता है ॥१७॥

फिर यह जीवात्मा कैसा होता है विषय को कहते हैं ॥

रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥१८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (इन्द्रः) जीव (मायाभिः) बुद्धियों से (प्रतिचक्षणाय) प्रत्यक्ष कथन के लिये (रूपंरूपम्) रूप रूप के (प्रतिरूपः) प्रतिरूप अर्थात् उसके स्वरूप से वर्त्तमान (बभूव) होता है और (पुरुरूपः) बहुत शरीर धारण करने से अनेक प्रकार का (ईयते) पाया जाता है (तत्) वह (अस्य) इस शरीर का (रूपम्) रूप है और जिस (अस्य) इस जीवात्मा के (हि) निश्चय करके (दश) दश संख्या के विशिष्ट और (शता) सौ संख्या से विशिष्ट (हरयः) घोड़ों के समान इन्द्रिय अन्तः-करण और प्राण (युक्ताः) युक्त हुए शरीर को धारण करते हैं वह इसका सामर्थ्य है ॥१८॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे बिजुली पदार्थ पदार्थ के प्रति तद्रूप होती है वैसे ही जीव शरीर शरीर के प्रति तत्स्वभाव वाला होता है और जब बाह्य विषय के देखने की इच्छा करता है तब उसको देख के तत्स्वरूपज्ञान इस जीव को होता है और जो जीव के शरीर में बिजुली के सहित असंख्य नाड़ी हैं उन नाड़ियों से यह सब शरीर के समा-चार को जानता है ॥१८॥

फिर वह जीव इस देह में कैसा वर्त्ताव करे इस विषय को कहते हैं ॥

युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥१९॥

पदार्थः—जैसे (कः) कोई भी सारथी (रथे) सुन्दर वाहन के सदृश शरीर में (हरिता) ले चलने वाले घोड़ों को (युजानः) जोड़ता हुआ (भूरि) बहुत (राजति) प्रकाशित होता है वैसे (त्वष्टा) सूक्ष्म करने वाला जीव (इह) इस शरीर में (राजति) प्रकाशित होता है और (कः) कौन (इह) इस शरीर में (विश्वाहा) सब दिन (द्विषतः) द्वेष से युक्त का (पक्षः) ग्रहण करता (आसते) है और (उत) भी (आसीनेषु) स्थित (सूरिषु) विद्वानों में मूर्ख का आश्रय कौन करता है ॥१९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! सदा ही मूर्खों का पक्ष त्याग के विद्वानों के पक्ष में वर्त्ताव करिये और जैसे अच्छा सारथी घोड़ों को अच्छे प्रकार जोड़ कर रथ में, सुख से गमन आदि कार्यों को सिद्ध करता है वैसे जितेन्द्रिय जीव सम्पूर्ण अपने प्रयोजनों को सिद्ध कर सकता है और जैसे कोई दुष्ट सारथी घोड़ों से युक्त रथ में स्थित होकर दुःखी होता है वैसे ही अजित इन्द्रियाँ जिसमें ऐसे शरीर में स्थित होकर जीव दुःखी होता है ॥१९॥

फिर मनुष्य कैसे आरोग्य को प्राप्त होवें इस विषय को कहते हैं ॥

अगव्यूति क्षेत्रमागंन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूंत् ।
बृहंस्पते प्र चिंकित्सा गविंष्टावित्था सते जंरित्र इंन्द्र पन्थाम् ॥२०॥

पदार्थः—हे (बृहस्पते) बड़ों के पालन करने (चिकित्सा) रोगों की परीक्षा करने और (इन्द्र) रोग और दोषों के दूर करने वाले वैद्यराज आपके सहाय से (उर्वी) बहुत फल आदि से युक्त (सती) वर्त्तमान (अंहूरणा) चलने वालों का संग्राम जिसमें वह (भूमिः) पृथिवी (अभूत्) होती है और जहां (अगव्यूति) दो कोस के परिमाण से रहित (क्षेत्रन्) निवास करते हैं जिस स्थान में ऐसा स्थान होता है उसको (देवाः) विद्वान् हम लोग (आ, अगन्म) सब प्रकार से प्राप्त होवें (इत्था) इस प्रकार से वा इस हेतु से (गविष्टौ) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणी की संगति में (सते) वर्त्तमान (जरित्रे) स्तुति करने वाले के लिये (पन्थाम्) मार्ग को (प्र) अच्छे प्रकार प्राप्त होवें ॥२०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो श्रेष्ठ वैद्य होवें उनके साथ मित्रता से रोग रहित, अधिक अवस्था वाले, बलिष्ठ, विद्वान् हो और भूमि के राज्य को प्राप्त होकर जहां कहीं विमान आदि वाहनों से जा, आ, कर विद्वानों के मार्ग का आश्रयण करो ॥२०॥

फिर वे राजा और प्रजाजन कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

दिवेदिंवे सदृशीरन्यमर्द्धं कृष्णा अंसेधदप सद्मंनो जाः ।
अहन्दासा वृंषभो वंस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शंबरं च ॥२१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (जाः) प्रकट हुआ सूर्य्य (दिवेदिवे) प्रतिदिन (सदृशीः) तुल्य स्वरूपयुक्त (कृष्णाः) खराब वर्ण वाली वा खोदी गई पृथिवियों और (अन्यम्) अन्य (अर्द्धम्) आधे को (च) भी (असेधत्) अलग करता है और (सद्मनः) निवास करते हैं जिसमें उस गृह के अन्धकार को (अप) अलग करता है तथा (वृषभः) वृष्टि करने वाला (उदव्रजे) जल जाते हैं जिसमें उसमें (वर्चिनम्) प्रकाशमान (शम्बरम्) मेघ का (अहन्) नाश करता है वैसे (वस्नयन्ता) निवास करते हुए के समान आचरण करते हुए राजा और प्रजाजन (दासा) उपेक्षा करने वाले हुए वर्त्ताव करें ॥२१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य और मेघ समस्त पृथिवी का आकर्षण कर प्रकाश और जलयुक्त करते हैं। वा जैसे सूर्य इस पृथिवी के अर्द्ध भाग को प्रकाशित करता और वर्षा को करता है तथा अन्धकार का

निवारण कर सबको सुखी करता है वैसे ही राजा और प्रजाजन सत्य को खेंच असत्य को त्याग कर अन्याय का निवारण कर न्याय का प्रचार कर और उत्तम विद्या के उपदेशों की वृष्टि कर सब मनुष्यों को सुखी करें ॥२१॥

फिर वे राजा और प्रजाजन परस्पर कैसा वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इन्द्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात् ।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्बरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥२२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य्य के सदृश अत्यन्त ऐश्वर्य्य से युक्त जो (ते) आपके (वाजिनः) बहुत अन्नों से युक्त (राधसः) धन की (दश) दश (कोशयीः) कोशों खजानों को प्राप्त होने वाली भूमियों की (प्रस्तोकः) स्तुति करने वाला (अदात्) देता है और (दश) दशगुनी सम्पादित करता और जिस (अतिथिग्वस्य) अतिथियों को प्राप्त होने वाले के (दिवोदासात्) प्रकाश देने वाले से प्राप्त हुए (राधः) धन को (शाम्बरम्) और मेघ में हुए (वसु) जल नामक द्रव्य को हम लोग (प्रति, अग्रभीष्म) ग्रहण करें उसको (इत्) ही (नु) शीघ्र आप हम लोगों के लिये दीजिये उसको ही शीघ्र हम लोग आपके लिये देवें ॥२२॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो आपके राज्य में असंख्य धनों को देने, वृष्टि करने तथा अतिथियों के संग का सेवन करने वाला जन होवे उसकी रक्षा को आप करिये और जो हम लोगों को धन प्राप्त होवे उसको आपके लिये हम लोग देवें और जो आपको प्राप्त होवे उसको हम लोगों के लिये दीजिये ॥२२॥

फिर मन्त्रीजन राजा से क्या प्राप्त करें इस विषय को कहते हैं ॥

दशाश्वान्दश कोशान्दश वस्त्राधिभोजना ।
दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ॥२३॥

पदार्थः—हे ऐश्वर्य्य से युक्त राजन् (दिवोदासात्) सुन्दर धन के देने वाले आपसे (दश) दश संख्या से युक्त (अश्वान्) घोड़ों और (दश) दश संख्या से युक्त (कोशान्) दशगुने धन से पूर्ण खजानों और (दश) दश प्रकार के (वस्त्रा) वस्त्रों को और दश प्रकार के (अधिभोजना) अधिक भोजनों को और (दशो) दश प्रकार के (हिरण्यपिण्डान्) सुवर्ण आदि समूहों को मैं (असानिषम्) संविभाग करके प्राप्त होऊं ॥२३॥

भावार्थः—जो धार्मिक, शूरवीर और शत्रुओं के जीतने वाले, राजभक्त और प्रजा के पालन में तत्पर विद्वान् मन्त्रीजन होवें वे घोड़े आदि सम्पूर्ण पदार्थों को दशगुने राजा के समीप से प्राप्त करें ॥२३॥

फिर वह राजा अधिकार किसके लिये देवे इस विषय को कहते हैं ॥

दश रथान्प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः । अश्वथः पायवेऽदात् ॥२४॥

पदार्थः—हे राजन् वा गृहस्थ लोगो ! जैसे (अश्वथः) भोजन करने वाला बुद्धिमान् जन (पायवे) पालन के लिये (अथर्वभ्यः) नहीं हिंसा करने वालों को (प्रष्टिमतः) नहीं इच्छा विद्यमान जिनमें उन (दश) दश संख्या से विशिष्ट (रथान्) वाहनों को और (शतम्) सौ (गाः) गौओं को (अदात्) देवे वैसे आप भी दीजिये ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु० -जो राजा आदि जन पालन करने योग्य के लिये पशु रथ आदि के रक्षण के अधिकार को देते हैं वे अच्छी सामग्री से युक्त होते हैं ॥२४॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

महि राधो विश्वजन्यं दधानान्भरद्वाजान्त्साञ्जयो अभ्ययष्ट ॥२५॥

पदार्थः—जो (साञ्जयः) अनेक प्रकार के न्याययुक्त व्यवहारों को बनानेवाले का सन्तान (महि) बड़े (विश्वजन्यम्) संसार से वा सम्पूर्ण से उत्पन्न होने योग्य वा सम्पूर्ण सुख को उत्पन्न करने वाले (राधः) धन को (दधानान्) धारण करने वाले (भरद्वाजान्) अन्न आदि के धारणकर्त्ताओं के (अभि, अयष्ट) सन्मुख जावे वह राजा चक्रवर्त्ती होवे ॥२५॥

भावार्थः—जो ब्रह्मचर्य्य से शरीर और आत्मा को बलिष्ठ कर और सम्पूर्ण ऐश्वर्य्य को बढ़ाय के उत्तम पुरुषों को ग्रहण करता है वही राजा राज्य के बढ़ाने के योग्य होवे ॥२५॥

फिर वह राजा कैसे मित्रों की इच्छा करे इस विषय को कहते हैं ॥

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः संनद्धो असि वीळयस्वास्थाता ते जयतु जेत्वानि ॥२६॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) किरणों के पालन करने वाले सूर्य्य के समान वर्त्तमान (हि, जिससे (वीड्वङ्गः) बलिष्ठ अङ्ग जिनके वह (प्रतरणः) पार करने वाले (सुवीरः) अच्छे प्रकार वीरों से युक्त (गोभिः) उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों

के साथ (सन्नद्धः) अच्छे प्रकार तैयार हुए आप (असि) हो इससे (अस्मत्सखा) हम लोगों के मित्र (भूयाः) हूजिये और (आस्थाता) स्थिति से युक्त हुए हम लोगों को (वीळयस्व) दृढ़ कराइये (ते) आपकी सेना (जेत्वानि) जीतने योग्य शत्रुओं की सेनाओं को (जयतु) जीते ॥२६॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि धार्मिक बलवान् के साथ मित्रता करें जिससे सर्वदा विजय हो ॥२६॥

फिर मनुष्यों को किन से उपकार ग्रहण करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

दि॒वस्पृ॑थि॒व्याः पर्योज॒ उद्भृ॑तं॒ वन॒स्पति॑भ्यः॒ पर्याभृ॑तं॒ सहः॑ ।
अ॒पामो॒ज्मानं॒ परि॒ गोभि॒रावृ॑त॒मिन्द्र॑स्य॒ वज्रं॑ ह॒विषा॒ रथं॑ यज ॥२७॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप (दिवः) बिजुली से वा सूर्य्य से (पृथिव्याः) भूमि वा अन्तरिक्ष से (वनस्पतिभ्यः) वट आदि वनस्पतियों से (ओजः) बल (उद्भृतम्) उत्तम रीति से धारण किया गया वा (सहः) बल (परि) सब प्रकार से (आभृतम्) सन्मुख धारण किया गया और (गोभिः) किरणों से (अपाम्) जलों के (ओज्मानम्) बलकारी (परि) सब ओर से (आवृतम्) ढांपे गये (इन्द्रस्य) बिजुली के (वज्रम्) प्रहार को और (रथम्) विमान आदि वाहन विशेष को (हविषा) सामग्री के दान से (परि, यज) उत्तम प्रकार प्राप्त हूजिये ॥२७॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब ओर से बल को ग्रहण करके जलों के बलकारी मेघ को जैसे वैसे सुख को वर्षाते हैं वे सब प्रकार से सत्कृत होते हैं ॥२७॥

फिर राजा को बिजुली से क्या सिद्ध करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्र॑स्य॒ वज्रो॑ म॒रुता॒मनी॑कं मि॒त्रस्य॒ गर्भो॒ वरु॑णस्य॒ नाभिः॑ ।
सेमां नो॑ ह॒व्यदा॑तिं जुषा॒णो देव॑ रथ॒ प्रति॑ ह॒व्या गृ॑भाय ॥२८॥

पदार्थः—हे (देव, रथ) सुन्दर विद्वन् राजन् आप जो (मरुताम्) मनुष्यों की (अनीकम्) सेना के सदृश (इन्द्रस्य) बिजुली की (वज्रः) धमक वा शब्द (मित्रस्य) प्राण के (गर्भः) मध्य में स्थित और (वरुणस्य) श्रेष्ठ वायु का (नाभिः) बन्धन है (सः) वह (नः) हम लोगों की (इमाम्) इस (हव्यदातिम्) देने योग्य दान की क्रिया को (जुषाणः) सेवन करता हुआ (हव्या) ग्रहण करने योग्यों को देता है उसको आप (प्रति, गृभाय) प्रतीति से ग्रहण करिये ॥२८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वान् जनो ! बिजुली आदि

पदार्थों और सम्पूर्ण मूर्त्त द्रव्यों के मध्य में वर्त्तमान कर्म्मों से युक्त सेना को करके विजय से शोभित हूजिये ॥२८॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

उप॑ श्वासय पृथि॒वीमु॒त द्यां पु॑रु॒त्रा ते॑ मनु॒तां विष्ठि॑तं॒ जग॑त् ।
स दु॑न्दुभे स॒जूरिन्द्रे॑ण दे॒वैर्दू॒राद्दवी॑यो॒ अप॑ सेध॒ शत्रू॑न् ॥२९॥

पदार्थः—हे (दुन्दुभे) दुन्दुभि के सदृश गर्जने वाले जैसे (सः) वह जगदीश्वर (पृथिवीम्) भूमि वा अन्तरिक्ष को और (उत) भी (द्याम्) सूर्य्य वा बिजुली को (विष्ठितम्) विशेष करके स्थित (जगत्) व्यतीत होने वाले संसार को (मनुताम्) जाने उस ज्ञान से (पुरुत्रा) सम्पूर्ण पदार्थों में हुए (इन्द्रेण) बिजुलीरूप अस्त्र से और (देवैः) विद्वान् वीरों से (सजूः) संयुक्त आप (शत्रून्) शत्रुओं को (दूरात्) दूर से (दवीयः) अति दूर (अप, सेध) हटाइये और जो (ते) आपके कल्याण को जाने उसकी उपासना करके सब को (उप, श्वासय) समझाइये ॥२९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वानो ! जैसे ईश्वर ने पृथिवी और सूर्यादि सम्पूर्ण संसार को अपनी सत्ता से स्थापित किया वैसे ही बिजुली सम्पूर्ण द्रव्यों में अभिव्याप्त होकर मध्य में प्रविष्ट है, ईश्वर की उपासना और बिजुली आदि के प्रयोगों से दूर पर स्थित भी शत्रुओं को जीत कर सब को जिलाओ ॥२९॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

आ क्र॑न्दय॒ बल॒मोजो॑ न॒ आ धा॒ निः ष्ट॑निहि दुरि॒ता बाध॑मानः ।
अप॑ प्रोथ दुन्दुभे दु॒च्छुना॑ इ॒त इन्द्र॑स्य मु॒ष्टिर॑सि वीळ॒यस्व ॥३०॥

पदार्थः—हे (दुन्दुभे) दुन्दुभी के समान वर्त्तमान आप (नः) हम लोगों के लिए (बलम्) सामर्थ्य को और (ओजः) पराक्रम को (आ, धाः) धारण करिये और शत्रुओं को (आ) सब ओर से (क्रन्दय) रुलाइये और बुलाइये तथा हम लोगों को (निः) अत्यन्त (स्तनिहि) शब्द कराइये और (दुरिता) दुष्ट व्यसनों को (बाधमानः) नष्ट करते हुए (दुच्छुनाः) दुष्ट कुत्तों के समान वर्त्तमान शत्रुओं के (अप, प्रोथ) जीतने को पर्याप्त हूजिये अर्थात् शत्रुओं को असमर्थ करिये जिससे आप (इन्द्रस्य) बिजुली की (मुष्टिः) मुष्टि के समान दुष्टों के मारने वाले (असि) हो इससे हम लोगों को (वीळयस्व) बलयुक्त करिये ॥३०॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप ऐसे बल को धारण करिये जिससे दुष्ट

व्यसन, और दुष्ट शत्रु नष्ट होवें और आप प्रजाओं के पोषण करने को समर्थ होवें ॥३०॥

फिर राजा आदि जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति ।
समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोऽस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु ॥३१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं के विदीर्ण करने वाले राजन् आप जैसे (दुन्दुभिः) नगाड़ा (केतुमत्) प्रशंसायोग्य बुद्धियुक्त (वावदीति) निरन्तर बजता है वैसे (इमाः) यह (अश्वपर्णाः) महान् पक्षों वाली अपनी सेनाएं (प्रत्यावर्त्तय) लौटाइये और उन से (अमूः) यह शत्रुसेनाएं दूर (आ, अज) फेंकिये जो (अस्माकम्) हमारे (रथिनः) प्रशंसित रथ वाले (नरः) नायक वीर हमारे शत्रुओं को (जयन्तु) जीतें और जो विजय के लिए (सम्, चरन्ति) सम्यक् विचरते हैं वे (नः) हम लोगों को सुशोभित करें ॥३१॥

भावार्थः—हे राजा आदि जनो ! तुम लोग दुन्दुभि आदि वाजनों से भूषित, हर्ष वा पुष्टि से युक्त सेनाओं को अच्छे प्रकार रख कर इनसे दूरस्थ भी शत्रुओं को अच्छे प्रकार जीतकर प्रजाओं को धर्मयुक्त व्यवहार से पालन करो ॥३१॥

इस सूक्त में सोम, प्रश्नोत्तर, बिजुली, राजा, प्रजा, सेना और वाजनों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

इस अध्याय में इन्द्र, सोम, ईश्वर, राजा, प्रजा, मेघ, सूर्य, वीर, सेना, यान, यज्ञ, मित्र, ऐश्वर्य्य, प्रज्ञा, बिजुली, बुद्धिमान्, वाणी, सत्य, बल, पराक्रम, राजनीति, संग्राम और शत्रुविजय आदि गुणों का वर्णन होने से इस अध्याय की पूर्वाध्याय के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में सैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥



॥ ओ३म् ॥

अथ चतुर्थाष्टकेऽष्टमाध्यायारम्भः ॥

—:०:०:०:०:—

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ॥१॥

अथ द्वाविंशत्यृचस्याष्टचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य शंयुर्बार्हस्पत्य ऋषिः । तृण-पाणिकं पृश्निसूक्तम् ॥ १—१० अग्निः । ११ । १२ । २० । २१ मरुतः । १३—१५ मरुतो लिंगोक्ता देवता वा । १६—१९ पूषा । २२ पृश्निर्द्यावाभूमी वा । १ । ४ । ५ । १४ बृहती । ३ । १९ विराड्बृहती । १० । १२ । १७ भुरिग्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । २ आर्ची जगती छन्दः । १५ निचृदतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः । ६ । २१ त्रिष्टुप् । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ भुरिक्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ९ भुरिगनुष्टुप् । २० स्वराडनुष्टुप् । २२ अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । ११ । १६ उष्णिक् । १३ । १८ निचृदुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब चतुर्थाष्टक के अष्टमाध्याय का आरम्भ है इसमें बाईस ऋचावाले अड़तालीसवें सूक्त के प्रथम मन्त्र में विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय का वर्णन करते हैं ॥

य॒ज्ञाय॑ज्ञा वो अ॒ग्नये॑ गि॒रागि॑रा च॒ दक्ष॑से ।
प्रप्र॑ व॒यम॒मृतं॑ जा॒तवे॑दसं प्रि॒यं मि॒त्रं न शं॑सिषम् ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो (वः) आप के (यज्ञायज्ञा) यज्ञयज्ञ में (गिरा-गिरा, च) और वाणी वाणी से (अग्नये) अग्नि (दक्षसे) जो कि विचक्षण है उसके लिये (वयम्) हम लोग प्रयत्न करें। और (अमृतम्) नाश से रहित (जातवेदसम्) जात-वेदस् अर्थात् जिससे विद्या उत्पन्न हुई ऐसे अग्नि (प्रियम्) मनोहर (मित्रम्) मित्र के (न) समान तुम लोगों की मैं जैसे (प्रप्र, शंसिषम्) वार वार प्रशंसा करूं वैसे आप भी हम लोगों की प्रशंसा कीजिये ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन आप लोगों की प्रीति उत्पन्न करें वैसे आप भी हमारे कार्य साधने के लिये प्रीति उत्पन्न कीजिये ॥१॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्तें इस विषय को कहते हैं ॥

ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद्वाजेष्वविता भुवद् वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अयम्) यह (अस्मयुः) हम लोगों की कामना करने वाला तथा (हव्यदातये) देने योग्य दान के लिए (अविता) रक्षा करने वाला (भुवत्) होवे और (वाजेषु) संग्रामों में रक्षा करने वाला (भुवत्) हो तथा (वृधः) वृद्धि करने वा रक्षा करने वाला हो (उत) और (तनूनाम्) शरीरों का (त्राता) पालन करनेवाला हो उसको (ऊर्जः) पराक्रम के (नपातम्) नपातन कराने अर्थात् न विनाश कराने वाले की अच्छे प्रकार रक्षा कर हम सुख (दाशेम) देवें (सः, हिन) वही हमारे लिए सुख देवे ॥२॥

भावार्थः—हे प्रजासेनाजनो ! जो राजा संग्राम वा असंग्राम में सबकी रक्षा करने वाला निरन्तर हो तदनुकूल वर्ताव कर हम लोग उसके लिये पुष्कल सुख देवें ॥२॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वृषा ह्यग्ने अजरों महान्विभास्यर्चिषा ।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥३॥

पदार्थः—हे (शुचे) विद्या और विनय से प्रकाशित (अग्ने) पावक के समान वर्त्तमान (हि) जिससे (वृषा) अत्यन्त बलवान् (अजरः) जरा अवस्था से रहित (महान्) बड़े आप (अजस्रेण) निरन्तर (अर्चिषा) सत्कार वा दीप्ति से (शोचिषा) वा प्रकाश से (शोशुचत्) निरन्तर पवित्र करते हुए (सुदीतिभिः) उत्तम दीप्तियों से सबको (विभासि) विशेषता से प्रकाशित करते हैं इससे हम लोगों को (सु, दीदिहि) प्रकाशित कीजिये ॥३॥

भावार्थः—हे राजन् ! आपको चाहिये कि निरन्तर विद्या और विनय के प्रकाश से और दुष्ट व्यसनों के नाश से प्रजा की निरन्तर पालना करो ॥३॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान राजन् आप (अर्वाचः) जो प्राप्त होते उन (महः) महान् अत्युत्तम महात्मा (देवान्) विद्वान्जनों से (यजसि) संगत होते हैं और (आनुषक्) अनुकूलता में (वंसना) कर्मों को (यक्षि) संगत करते हैं उन (तव) आपकी (क्त्वा) प्रज्ञा से हम लोग उनको संगत करें (उत) और (अवसे) रक्षा के अर्थ हम लोगों के लिए (रास्व) दीजिये और (सीम्) सब ओर से सुख (कृणुहि) कीजिये (उत) और (वाजा) अन्नों का (वंस्व) सेवन कीजिए ॥४॥

भावार्थः—जो मूर्खों को विद्वान् करते हैं वे महत् अनुकूल सुख को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यम्) जिस (ऋतस्य) जल के (गर्भम्) गर्भरूप संसार को (आपः) जल (अद्रयः) मेघ और (वना) किरण (पिप्रति) पूरण करते हैं और (यः) जो (नृभिः) नायक मनुष्यों से (सहसा) बल से (मथितः) मथा हुआ (पृथिव्याः) पृथिवी के (अधि) ऊपर (सानवि) पर्वत के शिखर पर (जायते) प्रसिद्ध होता है उस अग्नि को तुम अच्छे प्रकार युक्त करो ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सब में व्याप्त होकर रहने वाले अग्नि को विद्वान् जन प्राप्त होते और मथ के प्रदीप्त करते हैं वे भूमि के राज्य करने में अधिष्ठाता होते हैं ॥५॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि । तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम (यः) जो (भानुना) किरण से (उभे) दोनों (रोदसी) द्यावापृथिवी को (आ, पप्रौ) व्याप्त होता और (धूमेन) धूमसे (दिवि) अन्तरिक्ष में (धावते) दौड़ता है तथा (श्यावासु) काली (ऊर्म्यासु) रात्रियों में जो (तमः) अन्धकार उसको (तिरः) तिरस्कार कर (अरुषः) लाल रंगवाला (वृषा) वर्षा का निमित्त है और जिसकी (श्यावाः) वेगवती किरणें विद्यमान हैं जो (अरुषः) कुछ लाली लिये हुए है वह (वृषा) वर्षा करने वाला सूर्य्य (आ, ददृशे) अच्छे प्रकार देखा जाता है उसे (आ) अच्छे प्रकार जानो ॥६॥

भावार्थः—जिस बिजुलीरूप आग से भूमि और सूर्य्य दिखाते हैं, जिससे अधिक वेगवान् कोई नहीं तथा जो अन्धकार की निवृत्ति करने वाला है उसका अच्छे प्रकार प्रयोग करो ॥६॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषयको कहते हैं ॥

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा । भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥७॥

पदार्थः हे (शुक्र) शीघ्र कर्म करने (पावक) वा पवित्र करने (यविष्ठ्य) वा अतीव युवा अवस्था रखने वा (देव) देने वाले (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान विद्वन् जैसे अग्नि (बृहद्भिः) महान् (अर्चिभिः) तेजों से (भरद्वाजे) विज्ञानादि के धारण करने वाले व्यवहार में (समिधानः) अच्छे प्रकार देदीप्यमान (नः) हमारे लिये (द्युमत्) प्रशस्त प्रकाश वा (रेवत्) प्रशस्त ऐश्वर्य्य से युक्त धन को देता है वैसे (शुक्रेण) शुद्ध (शोचिषा) न्याय के प्रकाश से उसे (दीदिहि) प्रकाशित कीजिए, तथा विद्या और नम्रता (दीदिहि) दीजिये ॥७॥

भावार्थः– इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्वान् जन सूर्य के समान शुभ गुणों में बल वा सुशीलता से लक्ष्मी को प्राप्त होकर प्रकाशित होते हैं वे सत्कार करने योग्य हैं ॥७॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् । शतं पूर्भिर्यविष्ठ । पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥८॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) शरीर और आत्मा के बल से युक्त (अग्ने) दुष्टों के दाह करने वाले (ये) जो (स्तोतृभ्यः) स्तुति करने वाले विद्वानों से (शतम्) सौ (हिमाः) वृद्धि वा हेमन्त आदि ऋतुओं तक (समेद्धारम्) अच्छे प्रकार प्रकाश करने वाले को (ददति) देते (च) और शुभ गुणों को ग्रहण कर दूसरों को देते हैं उनके साथ युक्त (विश्वासाम्) समस्त (मानुषीणाम्) मनुष्यसम्बन्धी (विशाम्) प्रजाजनों के बीच जिससे (त्वम्) आप (गृहपतिः) घर के स्वामी (असि) हैं वा (पूर्भिः) नगरों के साथ इनके लिये (शतम्) सौ पदार्थ देते हैं इस कारण हम लोगों की (अंहसः) दुष्ट आचरण से (पाहि) रक्षा करो ॥८॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो इस प्रजा में विद्या और धर्म आदि शुभ गुणों को ग्रहण कराते हैं उनका तुम निरन्तर सत्कार करो और वे आपका भी सत्कार करें ॥८॥

फिर विद्वान् जन सन्तानों को कैसे शिक्षा दें इस विषय को कहते हैं ॥

त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय ।
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥९॥

पदार्थः— हे (वसो) वास कराने वाले (अग्ने) बिजुली के समान पुरुषार्थी जन (चित्रः) अद्भुत पुरुषार्थ करने वाले (त्वम्) आप (ऊत्या) रक्षा से (नः) हम लोगों के (राधांसि) समृद्ध धनों की रक्षा करो तथा (अस्य) इसके (रायः) धन की (चोदय) प्रेरणा करो जिस कारण आप (विदाः) विज्ञानवान् और (रथीः) बहुत प्रशंसायुक्त रथवाले (असि) हैं इस कारण से (तु) फिर (नः) हम लोगों के (तुचे) सन्तान के लिए (गाधम्) बुद्धि विलोड़ने की प्रेरणा करो ॥९॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! आप जैसे इन हमारे संतानों की बुद्धि के विलोड़ने से विद्या प्राप्ति हो वैसे अनुविधान कीजिये तथा जैसे पुरुषार्थी जन धन और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये प्रेरणा करता है वैसे ही आप शिक्षा दीजिये ॥९॥

फिर मनुष्यों को कौन सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) पढ़ाने वाले जिस कारण (त्वम्) आप (अप्रयुत्वभिः) न मिले हुए अर्थात् अलग अलग विद्यमान (अदब्धैः) हिंसारहित (पर्तृभिः) पालना करने वाले व्यवहारों से (नः) हमारे (तोकम्) शीघ्र उत्पन्न हुए सन्तान वा (तनयम्) सुन्दर कुमार की (पर्षि) पालना करते हो और (अदेवानि) अशुद्ध (दैव्या) विद्वानों में कहे गये (हेळांसि) अनादरों और (ह्वरांसि) कुटिल कर्मों को (च) भी (युयोधि) अलग करते हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥१०॥

भावार्थः—जो अध्यापक वा उपदेशक पढ़ाने तथा उपदेश करने से शुभ गुणों को ग्रहण करा कर सब के दोषों का निवारण कराते हैं वे ही सदा सत्कार करने योग्य होते हैं ॥१०॥

कौन इस संसार में मित्र हैं इस विषय को कहते हैं ॥

आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः ।
सृजध्वमनपस्फुराम् ॥११॥

पदार्थः हे (सखायः) मित्रवर्गो तुम (नव्यसा) अतीव नवीन पढ़ाने वा उपदेश करने से (सबर्दुघाम्) समस्त कामनाओं की पूर्ण करने वाली (अनपस्फुराम्) निश्चल दृढ (धेनुम्) वाणी को (अजध्वम्) प्राप्त करिये तथा (वचः) अर्थात् वचन को (उप, आ, सृजध्वम्) विविध प्रकार की विद्या से युक्त करो ॥११॥

भावार्थः—जो सुहृद् होकर सत्य, सुन्दर शिक्षायुक्त, वाणी और विद्या को विद्यार्थियों को ग्रहण कराते हैं वे संसार के शुद्ध करने वाले होते हैं ॥११॥

अब माता जन सन्तानों को सदा शिक्षा देवें इस विषय को कहते हैं ॥

या शर्धा॑य मारु॑ताय॒ स्वभा॑नवे॒ श्रवोऽमृ॑त्यु॒ धुक्ष॑त ।
या मृ॑ळी॒के म॒रुतां॑ तु॒राणां॒ या सु॒म्नैरे॑व॒याव॑री ॥१२॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो (या) जो विद्या और सुन्दर शिक्षायुक्त विद्या पढ़ाने वा उपदेश करने वाली (मारुताय) मनुष्यों के इस (स्वभानवे) अपनी विशेष बुद्धि के प्रकाश वा (शर्धाय) बल के लिये (अमृत्यु) जिसमें मृत्युभय विद्यमान नहीं उस (श्रवः) श्रवण को (धुक्षत) परिपूर्ण करे वा (या) जो विदुषी स्त्री (मृळीके) सुख करने वाले व्यवहार में (तुराणाम्) शीघ्रकारी (मरुताम्) मनुष्यों के बीच मृत्युभय जिसमें नहीं उस श्रवण को परिपूर्ण करे तथा (सुम्नैः) सुखों से (या) जो शिक्षा करने वा (एवयावरी) दुःख निवारने वाली सन्तानों की शिक्षा करती है वही यहां मानने योग्य होती है ॥१२॥

भावार्थः—वे ही स्त्रियां धन्य हैं जो अपने संतानों को विद्या और सुन्दर शिक्षायुक्त करने व कराने को निरन्तर प्रयत्न करती हैं ॥१२॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

भ॒रद्वा॑जा॒याव॑ धुक्षत द्वि॒ता ।
धे॒नुं च॑ वि॒श्वदो॑हसमि॒षं च॑ वि॒श्वभो॑जसम् ॥१३॥

पदार्थः—जो विदुषी माता (भरद्वाजाय) जिसने विज्ञान धारण किया उसके लिये (विश्वदोहसम्) जिससे समस्त विज्ञान को पूर्ण करती उस (धेनुम्) विद्या युक्त वाणी को (अव, धुक्षत) परिपूर्ण करती है और (विश्वभोजसम्) समस्त मनुष्यमात्र के पालक (इषम्) अन्न वा विज्ञान को (च) भी परिपूर्ण करती है वह (द्विता) दोनों विज्ञान वा अन्न की चेष्टा वाली (च) भी इस प्रचारिणी क्रिया से होती है ॥१३॥

भावार्थः—जो स्त्रीजन सत्यभाषणयुक्त वाणी और सर्वोत्तम सत्य विद्या को सन्तानों के लिये देती हैं वे ही देवी विदुषी स्त्रियां बहुत मान करने के योग्य होती हैं ॥१३॥

फिर मनुष्य किसकी प्रशंसा करें इस विषय को कहते हैं ॥

तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् ।
अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥१४॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप जिस इस (इन्द्रम्) बिजुली के समान तीव्रबुद्धि के (न) समान (सुक्रतुम्) उत्तम बुद्धि वाले (वरुणमिव) वरुण के समान (मायिनम्) कुत्सित बुद्धि वाले वा (अर्यमणम्) न्यायाधिपति के (न) समान (मन्द्रम्) आनन्द देने वाले (विष्णुम्) व्यापक जगदीश्वर के (न) समान (सृप्रभोजसम्) प्राप्त हुए पदार्थों के पालने की (स्तुषे) प्रशंसा करते हैं (तम्) उसको (वः) तुम लोगों के लिये (आदिशे) आज्ञा पालने के अर्थ मैं उसकी प्रशंसा करता हूं ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो मनुष्य सूर्य्य के समान विद्याप्रकाशक, व्याध के समान दुष्टों के मारने वाले, आप्त विद्वान् के समान न्याय के करने वाले, ईश्वर के समान सर्व के पालने वाले, सत्य के उपदेश करने वाले तथा धर्म करने वाले मनुष्य की प्रशंसा करते हैं वे ही इस ससार में परीक्षा करने वाले होते हैं ॥१४॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता । सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसू करत्सुवेदा नो वसू करत् ॥१५॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यथा) जैसे (सुवेदा) सुशोभित विज्ञान जिसका वह (नः) हम लोगों के लिये (त्वेषम्) दीप्तिमत् (तुविष्वणि) बहुत शब्दों वाले (मारुतम्) मनुष्य सम्बन्धी (शर्धः) बल के (न) समान (अनर्वाणम्) अविद्यामान हैं अश्व जिसमें उस पदार्थ को (पूषणम्) पुष्टि करने वाला (करत्) करे वा जैसे (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों के लिये (शता) सैकड़ों वा (सहस्रा) सहस्रों (गूळ्हा) गुप्त (वसू) धनों को (आ, सम्, कारिषत्) सब ओर अच्छे प्रकार सिद्ध करे और गुप्त (वसू) विज्ञान वा धनों को (सम्, आविष्करत्) प्रकट करे वैसे इनको आप करें ॥१५॥

भावार्थः – इस मन्त्र में उपमालंकार है – हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन विज्ञानदान से गुप्त विद्याओं को तुम्हारे लिये प्रकट करते हैं और आपके शारीरिक और आत्मिक बल को बढ़ाते हैं वैसे इनको तुम बढ़ाओ ॥१५॥

फिर मनुष्य परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं ॥

आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे।

अघा अर्यो अरातयः ॥१६॥

पदार्थः—हे (पूषन्) पुष्ट करने वाले (आघृणे) सब ओर से प्रकाशमान जिन (ते) आपके (अपिकर्णे) ढंपे हुए कर्णों में मैं (नु) शीघ्र सत्य की (शंसिषम्) प्रशंसा करूं सो (अर्यः) स्वामी हुए आप (आ) सब ओर से (मा) मेरे (उप, द्रव) समीप आओ और जो (अरातयः) न देने वाले जन हों उन्हें शीघ्र (अघाः) हनिये अर्थात् मारिये ॥१६॥

भावार्थः—हे पालनीय जन ! आप रक्षा के लिये मेरे समीप आओ, मैं सत्योपदेश से तुम्हें विचक्षण करूं तथा हम सब लोग मिलके दुष्टों का विनाश करें ॥१६॥

मनुष्यों को क्या न करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

मा काकम्बीरमुद्वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः।

मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥१७॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप (काकंबीरम्) कौओं की पुष्टि करनेवाले (वनस्पतिम्) वट आदि वृक्ष को (मा, उत, वृहः) मत उच्छिन्न करो तथा (अशस्तीः) और अप्रशंसित (हि) ही कर्मों का (वि, नीनशः) विशेपता से निरन्तर नाश करो और (सूरः) सूर्य (अहः, एवा) दिन में ही जैसे (वेः) पक्षी के (ग्रीवाः) कण्ठों को (चन) निश्चय से (आदधते) अच्छे प्रकार धारण करते हैं वैसे (उत) तो हम लोगों को (मा) मत पीड़ा देओ ॥१७॥

भावार्थः—किसी मनुष्य को श्रेष्ठ वृक्ष वा वनस्पति न नष्ट करने चाहियें किन्तु इनमें जो दोष हों उनको निवारण करके इन्हें उत्तम सिद्ध करने चाहियें, हे मनुष्य ! जैसे श्येन वाज पक्षी और पखेरुओं की गर्दनें पकड़ घोटता है वैसे किसी को दुःख न देओ ॥१७॥

किन की मित्रता नहीं नष्ट होती है इस विषय को कहते हैं ॥

दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् । अच्छिद्रस्य दधन्वतः

सुपूर्णस्य दधन्वतः ॥१८॥

पदार्थः—हे विद्वन् (अच्छिद्रस्य) अखंडित और (दधन्वतः) दृढ़ता से धारण करने वाले (दृतेरिव) मेघ के समान (सुपूर्णस्य) अच्छे प्रकार परिपूर्ण प्रसिद्ध (दधन्वतः) विद्या और शुभगुणों के धारण करने वालों को धारण करने वाले (ते) तुम्हारी (अवृकम्) चोरी से रहित (सख्यम्) मित्रता (अस्तु) हो ॥१८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जैसे मेघ और भूमि का मित्रवत् व्यवहार है वैसे ही धार्मिक विद्वानों की मित्रता अजर अमर वर्त्तमान है ॥१८॥

मनुष्यों को कैसा होना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।

अभि ख्यः पूषन्पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ॥१९॥

पदार्थः—हे (पूषन्) पुष्टि करने वाले (यथा) जैसे (हि) जिस कारण (पुरा) पहिले (त्वम्) आप (नः) हमारी (पृतनासु) मनुष्य सेनाओं में (अभि, ख्यः) सब ओर से अच्छे प्रकार कथन करते हैं वैसे (नूनम्) निश्चित (मर्त्यैः) साधारण मनुष्य वा (देवैः) विद्वान् (उत) और (श्रिया) लक्ष्मी के साथ (परः) उत्कृष्ट अत्युत्तम वा (समः) समान (असि) हैं इससे (अवा) रक्षा कीजिये ॥१९॥

भावार्थः—जो विद्वानों के तुल्य है वह विद्वान्, जो मनुष्यों के तुल्य है वह मध्यम, और जो पशुओं के तुल्य है वह अधम मनुष्य है इसको सब जानें ॥१९॥

फिर मनुष्यों को कैसी नीति धारण करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता ।

देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वेजानस्य प्रयज्यवः ॥२०॥

पदार्थः—हे (धूतयः) कंपन कराने वाले (प्रयज्यवः) उत्तमता से यज्ञसंपादको तुम में (वामस्य) प्रशंसा करने योग्य का सम्बन्धी (वामी) बहुत प्रशंसित कर्मकर्त्ता और (देवस्य) विद्वान् की (वा) वा (मरुतः) मरणधर्मा तथा (ईजानस्य) यज्ञकर्त्ता (वा) वा (मर्त्यस्य) साधारण मनुष्य की (सूनृता) सत्यभाषणादि युक्त (प्रणीतिः) उत्तम नीति (अस्तु) हो ॥२०॥

भावार्थः—आप्त राजा मन्त्रियों को उपदेश देवे कि—आप लोग न्यायकारी तथा धर्मात्मा होकर पुत्र के समान प्रजाजनों को पालें ॥२०॥

किस राजा की पुण्यरूप कीर्त्ति होती है इस विषय को कहते हैं ॥

सद्यश्चिद्यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ॥२१॥

पदार्थः—(यस्य) जिस राजा की (चर्कृतिः) निरंतर उत्तम क्रिया (देवः) देदीप्यमान (सूर्यः) सविता और (द्याम्) प्रकाश के (न) समान (सद्यः) शीघ्र विनय को (परि,एति) सब ओर से प्राप्त होती वा जिसके (मरुतः) प्रजाजन (त्वेषम्) देदीप्यमान (नाम) संज्ञा (यज्ञियम्) यज्ञ संपादक और (शवः) बलको (दधिरे) धारण करते हैं वा (वृत्रहम्) शत्रुओं के नाश करने वाले (शवः) बल वा (ज्येष्ठम्) प्रशंसित (वृत्रहम्) धन प्राप्त कराने वाले (शवः, चित्) बलको भी धारण करते हैं उसका सर्वत्र विजय होता है ॥२१॥

भावार्थः—जो राजा विद्या और विनय से युक्त, पुरुषार्थी, दृढप्रतिज्ञा करनेवाला, जितेन्द्रिय, धार्मिक, सत्यवादी होकर धार्मिक विद्वानों को अधिकार में संस्थापन कर पुत्र के समान प्रजाजनों को पालता है उसकी इस जगत् में सूर्य्य के समान कीर्ति फैलती है ॥२१॥

अब प्रजा के कृत्य को कहते हैं ॥

सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत ।
पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥२२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (ह) निश्चय के साथ (द्यौः) सूर्य (सकृत्) एक वार (अजायत) उत्पन्न होता है तथा (भूमिः) भूमि (सकृत्) एक वार (अजायत) उत्पन्न होती है और (पृश्न्याः) अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाली सृष्टियां (सकृत्) एकवार उत्पन्न होती हैं तथा (दुग्धम्) दूध और (पयः) जल एकवार उत्पन्न होता है (तत्) उससे (अन्यः) और (न) नहीं (अनु, जायते) अनुकरण करता वैसे तुम जानो ॥२२॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जिस ईश्वर ने सूर्य आदि जगत् एक वार उत्पन्न किया वह इस सृष्टि के साथ नहीं उत्पन्न होता किन्तु इस सृष्टि से भिन्न अर्थात् भेद को प्राप्त होकर सबको शीघ्र उत्पन्न करता है उसी का ध्यान तुम लोग करो ॥२२॥

इस सूक्त में अग्नि, मरुत्, पूषा, पृश्नि, सूर्य, भूमि, विद्वान्, राजा और प्रजा के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छठे मण्डल में अड़तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चदशर्चस्यैकोनपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य ऋजिश्वा ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ । ३ । ४ । १० । ११ त्रिष्टुप् । ५ । ६ । ९ । १३ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ । १२ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । १४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ७ ब्राह्म्युष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । १५ अतिजगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले उनचासवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (नव्यसीभिः) अतीव नवीन (गीर्भिः) शीघ्र सुशिक्षित वाणियों से (सुव्रतम्) जिसके शुभ व्रत अर्थात् कर्म हैं उस (जनम्) मनुष्य की और (सुम्नयन्ता) सुखप्राप्ति करानेवाले (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान पढ़ाने और उपदेश करनेवाले की मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूं तथा जो (मित्रः) मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी और (सुक्षत्रासः) जिनका सुन्दर राज्य वा धन है ऐसे वर्त्तमान हैं (ते) वे (इह) यहां (आ, गमन्तु) आवें और (ते) वे (श्रुवन्तु) श्रवण करें ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो तुमको नवीन-नवीन विद्या का उपदेश करते हैं उनको बुलाकर वा उनसे मेलकर उनसे सुनकर विद्याओं को प्राप्त होओ ॥१॥

फिर मनुष्य किसकी स्तुति करें इस विषय को कहते हैं ॥

विशोविश ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः ।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (अध्वरेषु) अहिंसनीय व्यवहारों में (विशोविशः) प्रजा-प्रजा के बीच (अरतिम्) विषयों में विना रमते हुए (अदृप्तक्रतुम्) जिसकी बुद्धि

मोहित नहीं हुई उस (ईडचम्) स्तुति करने योग्य (युवत्योः) युवावस्था को प्राप्त हुए स्त्री पुरुष के (दिवः) मनोहर व्यवहारसंबंधी (शिशुम्) बालक की (सहसः) वा बलवान् के (सूनुम्) उस पुत्र की जो (अग्निम्) अग्नि के समान वर्त्तमान तथा (अरुषम्) कुछ लाल रंग युक्त और (यज्ञस्य) यज्ञादि कर्म का (केतुम्) अच्छे प्रकार समझानेवाला है (यजध्यै) संग करने के लिए स्तुति करो ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो ब्रह्मचर्य्य से युवा अवस्था को प्राप्त स्त्री-पुरुषों के उत्तम बल से उत्पन्न, अग्नि के समान तेजस्वी हो उसको राजा वा अधिकारी करो ॥२॥

अब स्त्री पुरुष कैसे होकर कैसे वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥३॥

पदार्थः—हे स्त्रीपुरुषो वा राजा और प्रजाजनो ! जैसे (अरुषस्य) कुछ लालरंग वाले अग्नि के (विरूपे) विविधरूप वा विरुद्धस्वरूपयुक्त दिन और रात्रि (मिथस्तुरा) परस्पर हिंसा करने वाले (विचरन्ती) विविध गति से प्राप्त होते हुए (ऋच्यमाने) स्तूयमान (पावके) पवित्र (दुहितरा) कन्याओं के समान वर्त्तमान हैं उनमें (अन्या) और अर्थात् दोनों से अलग रात्रिरूप कन्या (स्तृभिः) नक्षत्रादिकों के साथ (पिपिशे) पीसती हुई अंग के समान वर्त्तमान है (अन्या) और दिनरूप कन्या अर्थात् (सूरः) सूर्य्य किरणों से पीसती हुई वर्त्तमान है वे दोनों समस्त जगत को (नक्षतः) व्याप्त होते हैं वैसे मिलकर प्रीति से (श्रुतम्) श्रवण वा (मन्म) विज्ञान को तुम दोनों प्राप्त होओ ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालं०—जैसे सूर्य्यरूप अग्नि के रात्रि दिन पुत्री के समान वर्त्तमान हैं तथा दोनों विलक्षण सदा संबन्ध करने वाले होते हैं, वैसे ही विचित्र वस्त्र और आभूषण वाले, विविध विद्यायुक्त और प्रशंसित होते हुए विद्या विज्ञान और धर्मोन्नति में संबन्ध और प्रीति करने वाले स्त्री-पुरुष हों ॥३॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥४॥

पदार्थः—हे (प्रयज्यो) उत्तमता से यज्ञ करने वाले (पत्यमानः) ऐश्वर्य की इच्छा करते हुए (कविः) विद्वान् आप जो (द्युतद्यामा) जिससे विशेषकर पदार्थ

प्रकाशित होते हैं ऐसी (बृहती) बड़ी (मनीषा) बुद्धि है उससे जो (बृहद्रयिम्) जिससे बहुत धन सिद्ध होता उस (विश्ववारम्) और जो समस्त उत्तम व्यवहार को स्वीकार करता वा (रथप्राम्) रथ को परिपूर्ण करता वा (कविम्) विद्वान् के समान क्रम-पूर्वक बुद्धि प्राप्त होती उस (वायुम्) वायु और इसके (नियुतः) निश्चित गति वाले वेगरूप घोड़ों को (अच्छा) (प्र, इयक्षसि) मिलते हैं तो कौन-कौन चाहे हुए पदार्थ को नहीं प्राप्त होते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य शुद्ध बुद्धि और योगाभ्यास से सर्व सुख देने तथा सर्व जगत् के धारण करनेवाले पवन को प्राणायाम में वश करते हैं वे सर्वसुख को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर मनुष्य किससे किसको प्राप्त होवें इस विषय को कहते हैं ॥

स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान् मनसा युजानः ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यः) जो (अश्विनोः) प्राण और अपान के (विरुक्मान्) विविधदीप्तियुक्त (मनसा) अन्तःकरण से (युजानः) युक्त होता हुआ (रथः) रमणीय व्यवहार (मे) मेरे (वपुः) शरीर वा रूप को (छदयत्) बली करता है तथा (येन) जिससे (तनयाय) सन्तान के लिए (त्मने, च) और अपने लिए (नरा) नायक अग्रगामी (नासत्या) जिन के असत्य विद्यमान नहीं वे अध्यापक और उपदेशक योगीजन (इषयध्यै) चलने के लिए जो (वर्त्तिः) मार्ग है उसको (याथः) प्राप्त होते हैं (सः) वह तुम लोगों को चाहिये कि जानकर अन्तःकरण से आत्मा में निरन्तर युक्त करने योग्य हो ॥५॥

भावार्थ—हे मनुष्यो ! जिस वायु से योगीजन विविध प्रकार के विज्ञान को प्राप्त होते हैं तथा जिससे सब जगत् वा सब प्राणी जीते हैं उसके अभ्यास से परमात्मा को जान कर मुक्तिपथ से आनन्द को प्राप्त होओ ॥५॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् ॥६॥

पदार्थः—हे (वृषभा) वृष्टि कराने वाले यजमान और पुरोहितो ! जैसे (पर्जन्यवाता) मेघस्थ पवन (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष से (अप्यानि) जलों में प्रसिद्ध हुए

(पुरीषाणि) जलों को पहुंचाते हैं वैसे तुम (जिन्वतम्) पहुंचो वा पदार्थ को पहुंचाम्रो ग्रोर (सत्यश्रुतः) जो सत्य को सुनने वाले जन हैं वे (कवयः) विद्वान् होते हुए जलों को (ग्रा, कृणुध्वम्) ग्रच्छे प्रकार सिद्ध करें। हे (स्थातः) स्थिर होने वाले विद्वान् जन (यस्य) जिसकी (गीर्भिः) वाणियों से (जगतः) संसार के बीच (जगत्) जगत् को विशेषता से जानते हो उसका ग्राप सत्कार करें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो मनुष्य पवन के समान जगत् के हित करने वाले तथा सत्य के सुनने वाले हैं वे ही जगत् को जान कर ग्रौरों को इस जगत् का ज्ञान दे सकते हैं ॥६॥

फिर कैसी स्त्री सुख देवे इस विषय को ग्रगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (पावीरवी) शुद्ध करने वाली (चित्रायुः) चित्र विचित्र जिसकी ग्रायु वह (सरस्वती) विज्ञानयुक्त (वीरपत्नी) वीर पतिवाली (कन्या) मनोहर (ग्नाभिः) सुन्दर शिक्षित वाणियों से (धियम्) शस्त्रोत्थ प्रज्ञा उत्तम बुद्धि वा कर्म को (धात्) धारण करती है वा जो (गृणते) स्तुति करने वाले मेरे लिये (ग्रच्छिद्रम्) छेदरहित व्यवहार को तथा जो (सजोषाः) समान प्रीति की सेवने वाली होती हुई स्तुति करने वाले मेरे लिए (शरणम्) ग्राश्रय को वा जो (दुराधर्षम्) दुःख से धृष्टता के योग्य (शर्म) घर वा सुखको (यंसत्) देती है वही मुझसे सदैव सत्कार करने योग्य है ॥७॥

भावार्थः—जो विदुषी शुभगुण कर्म स्वभाव वाली कन्या हो उसी को वीर पुरुष विवाहे, जिसका संग वा प्रीति कभी नष्ट न हों तथा जो सर्वदा सुख दे वह पत्नी पति से सर्वदा सत्कार करने योग्य है ॥७॥

फिर मनुष्यों को किसका सेवन करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो ग्रभ्यानळर्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सीषधाति प्र पूषा ॥८॥

पदार्थः—जो (पूषा) पुष्टि करने वाला (कामेन) कामना से (पथस्पथः) मार्गों मार्गों को (परिपतिम्) स्वामी को छोड़ के वा सब ग्रोर से स्वामी को ग्रौर (वचस्या) वचन में उत्तम व्यवहारों को (कृतः) किये हुए (ग्रर्कम्) सत्कार करने योग्य क्रियामय व्यवहार को (ग्रभि, ग्रानट्) सब ग्रोर से व्याप्त होता है तथा (नः)

हम लोगों के लिये (शुरुधः) शीघ्र रोकनेवाली (चन्द्राग्राः) जिनके तीर सुवर्ण उत्तम विद्यमान उनको (रासत्) देवे तथा (धियंधियम्) प्रज्ञा प्रज्ञा वा कर्म कर्म को (प्र, सीषधाति) अच्छे प्रकार सिद्ध करता है (सः) वह उपदेशकर्त्ता तथा न्याय करने वाला हम लोगों का हो ॥८॥

भावार्थः- हे मनुष्यो ! जो तुमको सन्मार्ग दिखाकर दुष्ट मार्गों का निवारण कर सत्याचरण करने वाले स्वामी का सेवन करा और दुष्टपति का निवारण कराके वृद्धि को बढ़ाता है वही तुम लोगों को सत्कार करने योग्य होता है ॥८॥

फिर मनुष्य किसका सेवन करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अग्निः) पावक के समान वर्त्तमान (विभावा) विशेषता से प्रकाशमान (होता) दानशील जन (त्वष्टारम्) छेदन भेदन करने वाले (सुहवम्) बुलाने योग्य वा (पस्त्यानाम्) घरों के बीच (यजतम्) संग करने योग्य वा (ऋभ्वम्) बुद्धिमान् (सुगभस्तिम्) सुन्दर प्रकाशक (प्रथमभाजम्) अगलों को सेवते हुए (यशसम्) कीर्त्तिमान् तथा (वयोधाम्) जीवन धारण करने वाले तथा (सुपाणिम्) सुन्दर व्यवहार वाले वा शोभन धर्म कर्मकारी हस्त जिसके उस (देवम्) दान करने वाले विद्वान्जन का (यक्षत्) संग करे वही तुमको संग करने योग्य है ॥९॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो मनुष्य विद्यावृद्ध, अग्नि के समान अविद्याजन्य दुःख के जलाने वाले विद्वानों की सेवा करते हैं वे घर में दीपक के समान उपदेश देने योग्यों के आत्माओं के प्रकाश करने को योग्य हैं ॥९॥

फिर मनुष्यों को कौन प्रशंसा करने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्रमक्तौ ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥१०॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (कविना) विद्वान् से (इषितासः) प्रेरणा किये हुए हमलोग (आभिः) इन वर्त्तमान (गीर्भिः) वाणियों से (भुवनस्य) संसार के (पितरम्) पालने वाले (अक्तौ) रात्रि में (रुद्रम्) दुष्टों को रुलाने और (बृहन्तम्) बढ़ाने वाले (ऋष्वम्) बड़े (अजरम्) जरावस्थारहित (सुषुम्नम्) सुन्दर सुखयुक्त (रुद्रम्) रोग

भगाने वाले जन की (ऋधक्) सत्य (हुवेम) स्तुति करें वैसे इस रुद्र को आप (दिवा) कामना वा विद्यादीप्ति से (वर्धया) बढ़ाओ ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालं०—सब मनुष्य विद्वान् से प्रेरणा को पाये हुए विद्या और नम्रता के व्यवहार में वृद्ध होकर सब जगत् के पालने वाले परमात्मा की सत्य व्यवहार से प्रशंसा करें जिससे अविनाशी सुख को सब प्राप्त हों ॥१०॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम् ।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (युवानः) युवा पुरुष (यज्ञियासः) सत्य प्रिय व्यवहार को करने योग्य हैं तथा (कवयः) सर्व शास्त्रवेत्ता (मरुतः) मनुष्य (अङ्गिरस्वत्) प्रशंसित वायुओं के समान (वरस्याम्) स्वीकार करने योग्य प्रशंसा को तथा (गृणतः) सत्य की प्रशंसा करने वाले विद्वानों को (आ, गन्त) प्राप्त हों तथा (अचित्रम्) साधारण (वृधन्तः) बढ़ाते और (इत्था) इस प्रकार से (नक्षन्तः) व्याप्त होते हुए (नरः) नायक मनुष्य (चित्) ही (जिन्वथा) प्राप्त हों वे (हि) ही जगत्‌हितैषी होते हैं ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो मनुष्य विद्वान् तथा युवावस्थावाले होकर और अच्छी क्रिया कर सबको बढ़ाते हैं वे वृद्धियुक्त होते हैं ॥११॥

फिर मनुष्य किसके तुल्य किसको प्राप्त हों इस विषय को कहते हैं ॥

प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम् ।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (विपः) मेधावीजन (स्तृभिः) नक्षत्रों से (नाकम्) जिसमें दुःख नहीं विद्यमान उस अन्तरिक्ष को (न) जैसे (तन्वि) शरीर में (श्रुतस्य) सुने हुए (वचनस्य) वचन का वा (अजा) छाग (यूथेव) समूहों को जैसे वैसे वा (पशुरक्षिः) पशुओं की रक्षा करने वाला (अस्तम्) घर को जैसे वैसे (वीराय) शूरता आदि गुणों से युक्त (तवसे) बढ़ने वाले (तुराय) दुःखनाशक के लिये घर का (प्र, पिस्पृशति) अत्यन्त स्पर्श करता (सः) वह सुखों का (प्र) अच्छे प्रकार अत्यन्त स्पर्श करता है ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—मनुष्य जैसे भेड़ बकरी दौड़ के अपने झुंड को वा जैसे सायंकाल में गोपाल घर को वैसे समस्त विद्या के श्रवण को प्राप्त होता है ॥१२॥

फिर मनुष्यों को क्या जानने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा३ तना च ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (विष्णुः) चराचर में प्रवेश होता वह जगदीश्वर (बाधिताय) पीड़ित (मनवे) मनुष्य के लिये (पार्थिवानि) पृथिवी में सिद्ध हुए (रजांसि) लोकों को (त्रिः) तीन वार (चित्) ही (विममे) रचता है (तस्य) उसके संबन्ध में (ते) आपके (उपदद्यमाने) समीप ग्रहण किये (शर्मन्) घर में (तना) विस्तृत (राया) धन (तन्वा, च) और शरीर के साथ हम लोग (मदेम) आनन्दित हों ॥१३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो जगदीश्वर सब जगत् का निर्माण करके मनुष्यादिकों का उपकार करता है उसके आश्रय से ही हम लोग धनवान् और बहुत आयु वाले हों ॥१३॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात् ।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरन्धिर्जिन्वतु प्र राये ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (अर्कैः) सत्कार साधनों वाले (अद्भिः) जलादिकों के और (ओषधीभिः) सोमलतादि ओषधियों के साथ (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में प्रसिद्ध हुआ (अहिः) मेघ (नः) हम लोगों के लिये (राये) धन के लिये (चनः) अन्नादिक को वा (तत्) उस गृह को (धात्) धारण करता वा (तत्) उसको (पर्वतः) पर्वताकार मेघ धारण करता वा (तत्) उसको (सविता) सूर्य धारण करता वा (तत्) उसको (रातिषाचः) दान करने वाले धारण करते उसको (पुरन्धिः) जगत् का धारणकर्त्ता (भगः) ऐश्वर्यवान् (प्र, जिन्वतु) अच्छे प्रकार प्राप्त करावे उसको (अभि) सब ओर से प्राप्त करावे ॥१४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे परमेश्वर ने प्राणियों के उपकार के लिये जगत् बनाया वैसे इससे तुम लोग पुष्कल उपकार ग्रहण करो ॥१४॥

फिर दाताओं को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

नू नो॑ र॒यिं र॒थ्यं॑ चर्षणि॒प्रां पु॑रु॒वीरं॑ म॒ह ऋ॒तस्य॑ गो॒पाम् । क्षयं॑ दा॒ताज॒रं॒ येन॒ जना॒न्त्स्पृधो॒ अदे॑वीर॒भि च॒ क्रमा॑म॒ विश॒ आदे॑वीर॒भ्य॒१॒॑श्नवा॑म ॥१५॥

पदार्थः—हे विद्वानो (येन) जिससे (स्पृधः) स्पर्द्धा करते हुए (जनान्) मनुष्यों को तथा (अदेवीः) विद्यारहित (विशः) प्रजाओं को हम लोग (अभि, क्रमाम) अनुक्रम से प्राप्त हों वा (आदेवीः) सब ओर से निरन्तर प्रकाशमान विदुषी (च) और प्रजाओं को हम लोग (अभि, अश्नवाम) सब ओर से प्राप्त हों। तथा (रथ्यम्) विमान आदि रथों में हितरूप (चर्षणिप्राम्) मनुष्यों को व्याप्त होने तथा (पुरुवीरम्) बहुत वीरों के कारण (क्षयम्) निवास कराने को (अजरम्) हानि-रहित अर्थात् पुष्ट (महः) और बड़े (ऋतस्य) सत्य की (गोपाम्) रक्षा करने वाले (रयिम्) धन को (नः) हम लोगों के लिये (नू) शीघ्र (दात) दीजिये ॥१५॥

भावार्थः—वे ही देने वाले उत्तम हैं जो धर्म से धनादिकों को संचित कर विद्यादिसद्गुणरूप परोपकार के लिये देते हैं और वही धन है जिससे विदुषी वा अविदुषी प्रजाएं अत्यन्त सुख पाय हर्षित हों ॥१५॥

इस सूक्त में समस्त विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छठे मण्डल में उनचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चदशर्चस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य ऋजिश्वा ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ । ७ त्रिष्टुप् । ३ । ५ । ६ । १० । ११ । १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ । ८ । १३ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ स्वराट्पङ्क्तिः । ९ पङ्क्तिः । १४ भुरिक्पङ्क्तिः । १५ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले पचासवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् जन किसलिये क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

हु॒वे वो॑ दे॒वीमदि॑तिं॒ नमो॑भिर्मृळी॒काय॒ वरु॑णं मि॒त्रम॒ग्निम् । अ॒भि॒क्ष॒दाम॑र्य॒मणं॑ सु॒शेवं॑ त्रा॒तॄन् दे॒वान्त्स॑वि॒तारं॒ भगं॑ च ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (नमोभिः) सत्कार और अन्नादिकों के साथ

(वः) तुम लोगों के (अभिक्षदाम्) जो भिक्षा नहीं देते उनके (मृळीकाय) सुख के लिये (अदितिम्) जो माता नहीं उस (देवीम्) देदीप्यमान विदुषी वा (वरुणम्) उदान के समान सर्वोत्कृष्ट वा (मित्रम्) प्राण के समान प्यारे वा (अग्निम्) अग्नि तथा (अर्य्यमणम्) न्यायकारी और (सुशेवम्) सुन्दर सुख वाले जन को वा (त्रातॄन्) रक्षा करने वाले वा (देवान्) विद्वानों वा (सवितारम्) सत्कर्मों में प्रेरणा देने वाले राजा (भगम्, च) और ऐश्वर्य्य को (हुवे) बुलाता वा देता हूं वैसे इनको हमारे लिये तुम बुलाओ वा देओ ॥१॥

भावार्थः जो विद्वान् जन सुपात्रों के लिये भिक्षा देते और सब को पुरुषार्थी कर उनके लिए विदुषी माता वा वरुण आदि को लेते हैं वे जगत् के हितैषी हैं ॥१॥

अब मनुष्य निरन्तर क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

सुज्योतिषः सूर्य्य दक्षपितॄननागास्त्वे सुमहो वीहि देवान् ।
द्विजन्मानो य ऋतसापः सत्याः स्वर्वन्तो यजता अग्निजिह्वाः ॥२॥

पदार्थः हे (सूर्य) सूर्य के समान वर्त्तमान (ये) जो (अनागास्त्वे) अनपराधिपन में (द्विजन्मानः) उत्पत्ति और विद्याप्राप्ति रूप जन्म वाले (ऋतसापः) सत्य से संबन्ध करते वा (सत्याः) प्रतिज्ञा करते (स्वर्वन्तः) वा बहु सुखयुक्त (यजताः) समस्त विद्याओं का संग करते (अग्निजिह्वाः) वा अग्नि के समान सत्य विद्या से सुन्दर प्रकाशित जिह्वाएं जिनकी वा (सुज्योतिषः) सुन्दर विनय के प्रकाश करने वाले विद्वान् हों उन (सुमहः) श्रेष्ठ महान् महाशय (दक्षपितॄन्) चतुर पिता और विद्या पढ़ाने वाले (देवान्) विद्वानों को आप निरन्तर (वीहि) प्राप्त होओ वा उनकी कामना करो ऐसा होने पर सर्वदा कल्याण प्राप्त होवे ॥२॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो मनुष्य सूर्य के समान विद्या और धर्म के प्रकाश करने वाले अध्यापक, उपदेशक वा विद्वानों की सेवा करते हैं वे भी वैसे ही होते हैं ॥२॥

फिर विद्वान् जन किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

उत द्यावापृथिवी क्षत्रमुरु बृहद्रोदसी शरणं सुषुम्ने ।
महस्करथो वरिवो यथा नोऽस्मे क्षयाय धिषणे अनेहः ॥३॥

पदार्थः हे अध्यापक और उपदेशको ! तुम (यथा) जैसे (रोदसी) बहुत कार्य और (सुषुम्ने) सुन्दर सुख करने वाली (धिषणे) व्यवहारों को धारण करने वाली (द्यावापृथिवी) बिजुली और भूमि (नः) हमारे (उरु) बहुत (बृहत्; महान्

(शरणम्) आश्रय और (क्षत्रम्) धन राज्य वा क्षत्रियकुल को सिद्ध करते हैं वैसे (महः) बड़े (वरिवः) सेवन (उत) और (अनेहः) न नष्ट करने योग्य व्यवहार (अस्मे) हम लोगों में (क्षयाय) निवास करने के लिये (करथः) सिद्ध करो ॥३॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो अध्यापन और उपदेश करने वाले जन सूर्य और भूमि के तुल्य सब को विद्यादान, धारण और शरण देते हैं तथा जो सत्य, यथार्थवक्ता और विद्वानों की सेवा करते हैं वे सर्वथा माननीय होते हैं ॥३॥

फिर विद्वान् कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ नो रुद्रस्य सूनवो नमन्तामद्या हूतासो वसवोऽधृष्टाः ।
यदीमर्भे महति वा हितासो बाधे मरुतो अह्वाम देवान् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (हूतासः) बुलाये हुए (अधृष्टाः) अप्रगल्भ (वसवः) आदि कोटिवाले विद्वान् जन (बाधे) विलोड़न के निमित्त (अर्भे) थोड़ी अवस्था वाले (महति, वा) वा बहुत अवस्था वाले जन में (हितासः) हित करने वाले वा (रुद्रस्य) दुष्टों के रुलाने वाले के (सूनवः) संतान (मरुतः) मनुष्य (नः) हम लोगों को (अद्य) आज (आ, नमन्ताम्) अच्छे प्रकार नमें उन (देवान्) विद्वानों को हम लोग (ईम्) सब ओर से (अह्वाम) चाहें ॥४॥

भावार्थः—जो विद्वान्जन, चक्रवर्ती राजा वा क्षुद्र जन में पक्षपात छोड़ कर हित के लिये वर्त्तमान, वज्र, विद्वानों के प्रिय मनुष्य हैं वे भाग्यशाली होते हैं ॥४॥

फिर विद्वान् जनों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

मिम्यक्ष येषु रोदसी नु देवी सिषक्ति पूषा अभ्यर्धयज्वा ।
श्रुत्वा हवं मरुतो यद्ध याथ भूमा रेजन्ते अध्वनि प्रविक्ते ॥५॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो (येषु) जिन वायु आदि पदार्थों में (रोदसी) प्रकाश और भूमि (देवी) जो कि दिव्यगुणवाली हैं उनको (अभ्यर्द्धयज्वा) मुख्य के आधे में संगत होने वाला (पूषा) पुष्टि करने वाला मेघ (सिषक्ति) सींचता है आप इससे (नु) (मिम्यक्ष) शीघ्र जाइये (यत्) जो (ह) निश्चय कर (भूमा) भूमि में वा (प्रविक्ते) प्रकंपकर चलने योग्य (अध्वनि) मार्ग में (रेजन्ते) कांपते वा जाते हैं उनके (हवम्) शब्द को (श्रुत्वा) सुनकर उनको तुम (याथ) प्राप्त होओ ॥५॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! तुम सूर्य और पृथिवी के तुल्य प्रकाश और

क्षमाशील होकर सबके प्रश्नों को सुनकर समाधान देओ, जैसे भूमि आदि लोक अपने-अपने मार्ग में नियम से जाते हैं वैसे नियम से धर्ममार्ग में जाओ ॥५॥

फिर विद्वानों को क्या उपदेश कर क्या कराना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अभि त्यं वीरं गिर्वणसमर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन ।
श्रवदिद्धवमुप च स्तवानो रासद्वाजाँ उप महो गृणानः ॥६॥

पदार्थः—हे (जरितः) स्तुति करने वाले जन आप (महः) बहुत (वाजान्) अन्नादिकों की (गृणानः) प्रशंसा करते हुए (उप, रासत्) समीप में दें और (स्तवानः) स्तुति करते हुए (हवम्) सत्य की प्रशंसा को (उप, श्रवत्) सुनें (इत्) ही तथा (नवेन) नवीन (ब्रह्मणा) धन वा अन्नादि से (त्यम्) उस (गिर्वणसम्) वाणियों से सेव्यमान (वीरम्) वीरवान् तथा (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् का (च) भी (अभि,अर्च) सब ओर से सत्कार करो ॥६॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! आप सब के प्रश्नों को सुनकर समाधान देते हुए और अन्नादि पदार्थों की प्राप्ति कराते हुए धार्मिक वीरों को और धनाढ्यों को सर्वदा शिक्षा देवें जिससे इनका ऐश्वर्य अन्याय मार्ग में नष्ट न हो ॥६॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

ओमानमापो मानुषीरमृक्तं धात तोकाय तनयाय शं योः ।
यूयं हि ष्ठा भिषजो मातृतमा विश्वस्य स्थातुर्जगतो जनित्रीः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (मातृतमाः) माता के समान अतीव कृपालु (जनित्रीः) उत्पन्न करने वाली (तोकाय) थोड़ी आयु वाले सन्तान वा (तनयाय) सुन्दर कुमार संतान के लिए (शम्) सुख करती हैं वैसे (यूयम्) तुम (आपः) जलों के समान (अमृक्तम्) अशुद्ध जन को वा (ओमानम्) रक्षा आदि करने वाले को और (मानुषीः) मनुष्य संबंधी प्रजाओं को (धात) धारण करो तथा (स्थातुः) स्थावर वा (जगतः) जंगम (विश्वस्य) संसार के (हि) जिस कारण तुम (भिषजः) वैद्य (स्था) हो, वा जैसे न्यायाधीश सबको सुख (योः) पहुंचाता है वैसे यहां वर्तो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे अध्यापक और उपदेशको ! तुम अपवित्र जन को सत्य ग्रहण कराकर शुद्ध करो तथा सब जगत् की रक्षा करने के निमित्त अविद्यारूपी रोग के निवारण करने वाले होते हुए सब को माता के तुल्य पालो ॥७॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

आ नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता त्राय॑माणो॒ हिर॑ण्यपाणिर्यज॒तो ज॑गम्यात् ।
यो दत्र॑वाँ उ॒षसो॒ न प्रती॑कं व्यूर्णु॒ते दा॒शुषे॒ वार्या॑णि ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (दत्रवान्) दान देने वाला (हिरण्यपाणिः) हाथ में सुवर्णादि लिये हुए और (यजतः) संग करने वाला (देवः) दिव्यगुण कर्म स्वभावयुक्त (सविता) सूर्य के तुल्य (त्रायमाणः) रक्षक जन (उषसः) प्रभातवेला के (न) समान समय से (दाशुषे) देने वाले के लिए (प्रतीकम्) प्रतीति करने वाले पदार्थ और (वार्याणि) स्वीकार करने योग्य पदार्थों को (व्यूर्णुते) आच्छादित करता है तथा (नः) हम लोगों को (आ, जगम्यात्) सब ओर से निरन्तर प्राप्त हो उसको हम लोग सदा सुखी करें ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो दानशील प्रभातवेला के समान सुन्दर प्रकाश करने वाले जन सब के लिए विद्या और अभयदान देते हैं वे संसार में श्रेष्ठ गिने जाते हैं ॥८॥

फिर मनुष्यों को किससे क्या प्रार्थना करनी योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

उ॒त त्वं सू॑नो सहसो नो अ॒द्या दे॒वाँ अ॒स्मिन्न॑ध्व॒रे व॑वृत्याः ।
स्या॒मह॑ं ते॒ सद॒मिद्रा॒तौ तव॑ स्या॒मग्ने॑ऽवसा सु॒वीरः॑ ॥९॥

पदार्थः—हे (सहसः) शरीर और आत्मा के बल से युक्त विद्वान् के (सूनो) विद्यासम्बन्धी पुत्र (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशित आत्मा वाले (त्वम्) आप (अद्य) आज (अस्मिन्) इस (अध्वरे) न नष्ट करने योग्य विद्या प्राप्ति के व्यवहार में (नः) हम (देवान्) विद्वानों को वा दिव्य भोगों को (आ, ववृत्याः) अच्छे प्रकार प्रवृत्त कीजिये जिससे (अहम्) मैं (सदम्) प्राप्त होने योग्य पदार्थ को पाकर (ते) आपके (रातौ) दान कर्म में स्थिर (स्याम्) होऊं (उत) और (तव) आपके (अवसा) रक्षा आदि कर्म से (सुवीरः) सुन्दर योद्धाओं वाला मैं (इत्) ही होऊं ॥९॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! यदि आप अब हमको सुख पहुंचाइये तो हम विद्या देने वाले महावीर होकर आपकी सेवा को निरन्तर करें ॥९॥

फिर मनुष्यों को किनके संग से कैसे होना योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

उ॒त त्या मे॒ हव॒मा ज॑ग्म्यातं॒ नास॑त्या धी॒भिर्यु॒वम॒ङ्ग वि॑प्रा ।
अत्रिं॒ न म॒हस्तम॑सोऽमुमुक्तं॒ तूर्व॑तं नरा दुरि॒ताद॒भीके॑ ॥१०॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) मित्र (नासत्या) सत्य आचरण करनेवाले (विप्रा) मेधावी अध्यापक और उपदेशक (नरा) नायक सब में श्रेष्ठजन (त्या) वे (युवम्) तुम दोनों (धीभिः) उत्तम बुद्धि वा कर्मों से (मे) मेरे (अभीके) समीप में (हवम्) लेने योग्य पदार्थ को (आ, जगम्यातम्) सब ओर से प्राप्त होओ (उत) और जैसे (महः) महान् (तमसः) अन्धकार से (अत्रिम्) सूर्य को (न) वैसे (दुरितात्) अधर्माचरण से (अमुमुक्तम्) छुड़ाओ और दुर्गुणों को (तूर्वतम्) नष्ट करो ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जैसे सूर्योदय को प्राप्त होकर सब पदार्थ अन्धकार से छूट जाते हैं वैसे धार्मिक विद्वान् को प्राप्त होकर अविद्या से मनुष्य मुक्त होते हैं ॥१०॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

ते नो रायो द्युमतो वाजवतो दातारो भूत नृवतः पुरुक्षोः ।
दशस्यन्तो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता अप्या मृळता च देवाः ॥११॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वानो ! जो तुम (नः) हमारे (द्युमतः) जिस की प्रशंसायुक्त कामना विद्यमान उस (वाजवतः) बहुत अन्नादि पदार्थयुक्त (नृवतः) बहुत उत्तम मनुष्ययुक्त (पुरुक्षोः) बहुत अन्न वाले पदार्थ के (दशस्यन्तः) देनेवाले और (रायः) धन के (दातारः) देनेवाले (भूत) होओ (ते) वे (च) और जो (दिव्याः) उत्तम (पार्थिवासः) पृथिवी के बीच हुए (गोजाताः) अन्तरिक्ष में प्रसिद्ध (अप्याः) और जलों में प्रसिद्ध हैं वे भी आप हम लोगों को (मृळता) सुखी करो ॥११॥

भावार्थः हे विद्वानो ! तुम निरन्तर प्राप्त होने योग्य विद्या और धनों को प्राप्त होकर सब मनुष्यों को सुखी करो ॥११॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं

ते नो रुद्रः सरस्वती सजोषा मीळ्हुष्मन्तो विष्णुर्मृळन्तु वायुः ।
ऋभुक्षा वाजो दैव्यो विधाता पर्जन्यावाता पिप्यतामिषं नः ॥१२॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको (सरस्वती) बहुत विज्ञानयुक्त (सजोषाः) समान प्रीति सेवने वाले (पर्जन्यावाता) मेघ और वात के समान आप दोनों जैसे (ते) वे अर्थात् (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला (विष्णुः) व्यापक अग्नि (वायुः) पवन (ऋभुक्षाः) मेधावी जन (वाजः) अन्न (दैव्यः) विद्वानों से किया हुआ व्यवहार और (विधाता) विधान करने वाला ये सब (मीळ्हुष्मन्तः) बहुत वीर्य-

सेचक आदि गुणों वाले होते हुए (नः) हम लोगों को (मृळन्तु) सुखी करें वैसे (नः) हम लोगों के लिये (इषम्) अन्नादि पदार्थों को (पिप्यताम्) बढ़ाओ ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे विद्वानो! जैसे ईश्वर से निर्मित किये हुए पृथिवी आदि पदार्थ प्राणियों को सुखी करते हैं वैसे ही तुम विद्यादान से सब को सुखी करो ॥१२॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

उत स्य देवः सविता भगो नोऽपां नपादवतु दानु पप्रिः ।
त्वष्टा देवेभिर्जनिभिः सजोषा द्यौर्देवेभिः पृथिवी समुद्रैः ॥१३॥

पदार्थः—हे विद्वन् आप जैसे (स्यः) वह (देवः) देदीप्यमान (सविता) उत्पत्ति करने वाला सूर्य (भगः) सेवने योग्य प्राण (उत) और (अपाम्) जलों के बीच (नपात्) न गिरने वाला विद्युत् रूप अग्नि तथा (देवेभिः) दिव्य गुणों के और (जनिभिः) जन्म वा जन्म देने वालों के साथ (त्वष्टा) छिन्न भिन्नकर्त्ता (सजोषाः) समान प्रीति का सेवने वाला (देवेभिः) सूर्यादि वा दिव्य पदार्थों के साथ (द्यौः) सूर्य (समुद्रैः) समुद्रों के साथ (पृथिवी) भूमि (दानु) दान को (पप्रिः) पूर्ण करते हुए (नः) हम लोगों की (अवतु) रक्षा करें ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो! जैसे ईश्वर से रचे हुए सूर्यादि पदार्थ सब मनुष्य आदि प्राणियों के कार्य-सिद्धि के निमित्त हैं वैसे आप लोग भी सब की कार्यसिद्धि करने वाले हों ॥१३॥

फिर मनुष्यों को क्या आकांक्षा करने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

उत नोऽहिर्बुध्न्यः शृणोत्वज एकपात्पृथिवी समुद्रः ।
विश्वे देवा ऋतावृधो हुवानाः स्तुता मन्त्राः कविशस्ता अवन्तु ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (एकपात्) जिसका जगत् में एक पाद है (अजः) जो कभी नहीं उत्पन्न होता वह परमात्मा (नः) हमारी उस प्रार्थना को (शृणोतु) सुने जिससे (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में होने वाला (अहिः) मेघ (पृथिवी) भूमि (समुद्रः) अन्तरिक्ष (उत) और (ऋतावृधः) सत्य के बढ़ाने वाले (हुवानाः) और आह्वान करने वाले तथा (विश्वे, देवाः) समस्त विद्वान् (कविशस्ताः) कवि मेधावी जनों से प्रशंसित वा पढ़ाये हुए और (स्तुताः) प्रशंसित (मन्त्राः) वेद की श्रुति वा वेदविचार हम लोगों की (अवन्तु) रक्षा करें ॥१४॥

भावार्थः-- हे मनुष्यो ! तुम—जो जन्म मरणादि व्यवहार से रहित जगदीश्वर है उसकी कृपा और पुरुषार्थ से तथा सम्पूर्ण पृथिवी आदि पदार्थों के विज्ञान से अपनी अपनी उन्नति निरन्तर करो ॥१४॥

फिर जिज्ञासु जन कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

एवा नपातो मम तस्य धीभिर्भरद्वाजा अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
ग्ना हुतासो वसवोऽधृष्टा विश्वे स्तुतासो भूता यजत्राः ॥१५॥

पदार्थः – हे (यजत्रा) संग करने वालो जैसे (मम) मेरी और (तस्य) उसकी (धीभिः) बुद्धि वा कर्मों से (भरद्वाजाः) धारण किया है विज्ञान जिन्होंने वे सज्जन और (नपातः) पातरहित (हुतासः) सत्कार से ग्रहण किये हुए (स्तुतासः) प्रशंसा को प्राप्त (विश्वे) सब विद्वान् मेरी और उनकी बुद्धि वा कर्मों से (अर्कैः) विचारों से (ग्नाः) वाणियों को (अभि, अर्चन्ति) सब ओर से सत्कृत करते हैं वैसे (एवा) ही (अधृष्टाः) धृष्टतारहित (वसवः) विद्यादिकों में वसनेवाले तुम (भूत) होओ ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्यार्थी विद्या और प्रगल्भता की इच्छा करते हैं वे यथार्थवक्ता तथा ईश्वर के गुण कर्म और स्वभावों को धारण कर इष्ट मति और विद्या को प्राप्त होते हैं ॥१५॥

इस सूक्त में विश्वे देवों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में पचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षोडशर्चस्यैकपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य ऋजिश्वा ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ । २ । ३ । ५ । ७ । १० । ११ । १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ । ६ । ९ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १३ । १४ । १५ निचृदुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । १६ निचृदनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सोलह ऋचा वाले इक्यावनवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मंत्र में फिर मनुष्यों को क्या चाहने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोराँ एति प्रियं वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥१॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको ! जो तुम लोगों को (त्यत्) वह उत्तम (महि) वड़ा वस्तु वा (वरुणयोः) उदान के समान वर्त्तमान दो सज्जनों का (प्रियम्) प्रिय पदार्थ वा (मित्रयोः) दो मित्रों का वा अध्यापक और अध्येताओं का वा शरीर के बाहर और भीतर रहने वाले प्राण वायुओं का (अवब्धम्) अविनष्ट व्यवहार वा (ऋतस्य) सत्य का (शुचि) पवित्र (दर्शतम्) देखने योग्य (दिवः) बिजुली की उत्तेजना से (उदिता) सूर्योदयकाल में (रुक्मः) प्रकाशमान सूर्य के (न) समान (अनीकम्) सेना समूह के समान कार्यसिद्धि का पहुंचाने वाला (चक्षुः) जिससे देखते हैं वह (वि, अद्यौत्) विशेषता से प्रकाशित होता हैं (आ, उत्, एति) उत्कृष्टता से प्राप्त होता है तो आप लोग (उ) तर्क वितर्क से विद्वान् होओ ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य धर्म से यान पाने की इच्छा करते हैं वे सूर्य के प्रकाश के तुल्य विज्ञान को प्राप्त होते हैं जो सत्य पदार्थ की विद्या की उन्नति करते हैं वे सर्वत्र सत्कृत होते हैं ॥१॥

फिर मेधावी जन क्या जानें इस विषय को कहते हैं ॥

वेद् यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् । २।

पदार्थः—(यः) जो (अर्यः) स्वामी (विप्रः) बुद्धिमान् (सूरः) सूर्य के समान (एवान्) प्राप्त होने योग्य पदार्थों के तुल्य (एषाम्) इन (देवानाम्) विद्वानों के (सनुतः) सर्वदा (जन्म) उत्पन्न होने वा (त्रीणि) तीन (विदथानि) जानने के योग्य कर्म उपासना और ज्ञानों को (मर्त्तेषु) मनुष्यों में (वृजिना) बलों और (ऋजु, च) सरल व्यवहार को (पश्यन्) देखता हुआ (अभि, आ, चष्टे) सब ओर से प्रकाशित करता है वह (च) भी इन उक्त पदार्थों को (वेद) जानता है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो मनुष्य मनुष्यों के विद्याजन्म को जानते हैं वे मनुष्यों में पूर्ण शरीर और आत्मा के बल को पाय सब पदार्थों के जानने योग्य होते हैं, जो कर्म उपासना और ज्ञानों को प्राप्त होते हैं वे स्वामी होते हैं ॥२॥

फिर मनुष्य किन की प्रशंसा करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्तुष उ वो मह ऋतस्य गोपानदितिं मित्रं वरुणं सुजातान् ।
अर्यमणं भगमदब्धधीतीनच्छा वोचे सधन्यः पावकान् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (सधन्यः) धन्य प्रशंसितों के साथ वर्त्तमान मैं (वः)

तुम्हारे (महः) बड़े (ऋतस्य) सत्य के (गोपान्) पालनेवालों वा (अदितिम्) अखण्डित विद्या वा प्रकृति वा (मित्रम्) मित्र वा (वरुणम्) इच्छा करने योग्य वा (अर्यमणम्) न्यायाधीश वा (भगम्) ऐश्वर्य वा (अदब्धधीतीन्) अविनष्ट अध्ययन व्यवहारवालों वा (सुजातान्) सुन्दर प्रसिद्ध वा (पावकान्) पवित्र करने वाले पदार्थों की (स्तुषे) प्रशंसा करता हूं (उ) और तुम्हारे प्रति (अच्छा) अच्छे प्रकार (वोचे) कहूं उस मुझे तुम अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों की प्रशंसा कर वा विद्वानों का संग कर सकल प्रकृति आदि पदार्थविद्या आदि पदार्थों को जान कर औरों को पढ़ाते हैं वे सबके पवित्र करने वाले हैं ॥३॥

फिर मनुष्य कैसे राजाजनों को मानें इस विषय को कहते हैं ॥

रि॒शाद॑सः॒ सत्प॑तीँ॒रद॑ब्धान्म॒हो राज्ञः॑ सुव॒सन॑स्य दा॒तॄन् ।
यूनः॑ सुक्ष॒त्रान्क्षय॑तो दि॒वो नॄना॑दि॒त्यान्या॒म्यदि॑तिं दुवो॒यु ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (रिशादसः) हिंसक वा नाश करने वाले वा (सत्पतीन्) सत्य के पालने वाले वा (अदब्धान्) विनाश को न प्राप्त हुए उनको वा न हिंसने वाले वा (सुवसनस्य) सुन्दर वास के (दातॄन्) देने वाले वा (सुक्षत्रान्) उत्तम धन और राज्यों को वा (अदितिम्) अखण्डित नीति को (क्षयतः) स्थिर होते हुए (दिवः) कामना करने योग्य और काम करने वा (नॄन्) मनुष्यों वा (आदित्यान्) किया है अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य जिन्होंने उन वा (यूनः) जवान मनुष्यों वा (दुवोयु) सेवन की कामना करने वालों को तथा (महः) महान् (राज्ञः) राजाओं को मैं (यामि) प्राप्त होता हूं वैसे ऐसों को तुम भी प्राप्त होओ ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जो चोर आदि के निकासने और धर्मात्माओं के पालने वाले, हिंसादि दोषों से रहित, सब के लिये सुख से निवास देने वाल, पूर्ण विद्यायुक्त, जितेन्द्रिय, न्याय से पिता के समान प्रजा के पालने वाले, पूर्ण यौवनयुक्त, दुष्ट व्यसनों से रहित, गुणग्राही जन हों उन्हीं को तुम स्वामी मानो और क्षुद्र हृदय वालों को न मानो ॥४॥

पित्रादिकों को संतानों के लिये क्या करना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

द्यौ३॒ष्पित॒: पृथि॑वि॒ मात॒रध्रु॒गग्ने॑ भ्रातर्वसवो मृ॒ळता॑ नः ।
विश्व॑ आदित्या अदिते स॒जोषा॑ अ॒स्मभ्यं॒ शर्म॑ बहु॒लं वि य॑न्त ॥५॥

पदार्थः—हे (पितः) पालनेवाले (द्यौः) सूर्य्य के समान तुम हे (मातः) माता (पृथिवी) भूमि के समान तुम हे (अग्ने) अग्नि के समान प्रकाशात्मा (भ्रातः) भ्राता तुम (अध्रुक्) द्रोहरहित होते हुए (वसवः) सुख वास के देने वाले तुम सब (नः) हमको (मृळता) सुखी करो हे (अदिते) अखण्डित ज्ञान और ऐश्वर्य्यवती पंडिता स्त्री जैसे (विश्वे) सब (आदित्याः) पूर्ण की है ब्रह्मचर्य से विद्या जिन्होंने वे सज्जन (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (बहुलम्) बहुत पदार्थयुक्त (शर्म) सुख करने वाले घर को (वि, यन्त) देते हैं वैसे (सजोषाः) समान एकसी प्रीति की सेवने वाली तू बहुत सुख और विद्या को दे ॥५॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। जिनका सूर्य के समान सुन्दर शिक्षा से पालने वाला पिता पृथिवी के समान सहनशीलता आदि गुण और विद्यायुक्त माता, अग्नि के समान प्रकाशमान भ्राता वर्त्तमान है वही सुखी होता है तथा जैसे पूर्ण विद्यावान् जन सन्मार्ग को पूंछते हैं वैसे ही विद्या पढ़ने वाले पढ़ाने वालों का निरन्तर सत्कार करते हैं ॥५॥

फिर मनुष्यों को किसकी इच्छा नहीं करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

मा नो वृका॑य वृक्ये॑ समस्मा अघाय॒ते री॑रधता यजत्राः ।
यू॒यं हि ष्ठा र॒थ्यो॑ नस्त॒नूनां॑ यू॒यं दक्ष॑स्य॒ वच॑सो बभू॒व ॥६॥

पदार्थः—हे (यजत्राः) संग करने वालो (यूयम्) तुम (वृकाय) चोर के लिये वा (वृक्ये) चोरों में उत्पन्न हुए व्यवहार के निमित्त (समस्मै, अघायते) अघ की इच्छा करने वाले सर्वजन के लिये (नः) हम लोगों को (मा, रीरधता) मत नष्ट करो तथा (नः) हमारे (तनूनाम्) शरीरों के (दक्षस्य) बलयुक्त (वचसः) वचन का (रथ्यः) रथों में साधु उत्तम जो व्यवहार उसके समान (यूयम्) तुम (स्था) हो (हि) जिससे सुख करने वाले (बभूव) होओ ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—सब मनुष्यों को चोर आदि दुष्टों का व्यवहार कभी नहीं कर्त्तव्य है और जो धर्मात्मा, अजातशत्रु अर्थात् जिन के शत्रु नहीं हुआ तथा सबकी रक्षा करने वाले हों उनको तुम निरन्तर सेवा करो ॥६॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

मा व॒ एनो॑ अ॒न्यकृ॑तं भुजेम॒ मा तत्क॑र्म वसवो॒ यच्चय॑ध्वे ।
विश्व॑स्य॒ हि क्षय॑थ विश्वदेवाः स्व॒यं रि॒पुस्त॒न्वं॑ रीरिषीष्ट ॥७॥

पदार्थः—हे (वसवः) वास के हेतु (विश्वदेवाः) सब विद्वानो ! तुम (विश्वस्य) संसार के बीच (यत्) जो (चयध्वे) इकट्ठा करो और (हि) जिससे जिसको (क्षयथ) निवास करो जैसे (रिपुः) शत्रु (तन्वम्) अपने शरीर को (स्वयम्) आप (रीरिषीष्ट) निरन्तर मारे वैसे उस (वः) तुम्हारे (अन्यकृतम्) और से किये हुए (एनः) अपराध को हम लोग (मा, भुजेम) मत भोगें (तत्) उस दुष्ट कर्म को (मा) मत (कर्म) करें ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वानो तुम किसी दुष्ट का अनुकरण मत करो, अपने शरीर को नष्ट मत करो तथा और के किये हुए अपराध के संगी मत होओ ॥७॥

मनुष्य सदैव नम्र हों इस विषय को कहते हैं ॥

नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (नमः) नमस्कार करने योग्य ब्रह्म (पृथिवीम्) भूमि (उत) और (द्याम्) सूर्य को (दाधार) धारण करते उस (उग्रम्) तीव्र (नमः) नमस्कार करने योग्य ब्रह्म का मैं (आ, विवासे) सेवन करूं (देवेभ्यः) विद्वानों के लिये (नमः) अन्न की सेवा करूं (नमः) सत्कार वा (नमः) अन्न की (ईशे) इच्छा करूं उस (नमसा) सत्कार से (एषाम्) इन के (कृतम्) किये उत्तम कर्म (चित्) और (एनः) अनुत्तम कर्म का (इत्) ही (आ, विवासे) योग्य सेवन करूं ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! सब से नमस्कार करने योग्य परमेश्वर के सहायरूप से हम लोग उत्तम क्रिया को धारण कर और दुष्टता को निवार विद्वानों के लिये हित सिद्ध कर सबका उपकार सदैव करें ॥८॥

फिर सबको कौन नमस्कार करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षानृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान् ।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो नॄन्विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः ॥९॥

पदार्थः हे (यजत्राः) अच्छे व्यवहार का संग करते हुए सज्जनो (रथ्यः) रथों में उत्तम व्यवहार वर्त्तने वाला मैं (ऋतस्य) सत्य के (पूतदक्षान्) पवित्र बलों वा (ऋतस्य) यथार्थ धर्मयुक्त व्यवहार के (पस्त्यसदः) जो घरों में स्थिर होते उन (अदब्धान्) अविनष्ट कार्यों वा नष्ट न करने वाले पदार्थों वा (उरुचक्षसः) बहुत दर्शनों वा (विश्वान्) समग्र (महः) महाशय (नॄन्) उत्तम विद्वान् (वः) आप लोगों को

(आ, नमे) अच्छे प्रकार नमस्कार करता हूं जो हम लोगों को सत्य बोध कराते हैं (तान्) उन (वः) आप लोगों का (नमोभिः) बहुत सत्कारों से हम लोग निरन्तर (आ) अच्छे प्रकार सत्कार करें ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम सब से उत्कृष्ट विद्या वाले, धर्मिष्ठ, परोपकारी जनों ही को सदा नमो, तथा इन से विनय (नम्रता) को प्राप्त होओ ॥९॥

फिर कौन सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

ते हि श्रेष्ठवर्चसस्त उं नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति ।
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निर्ऋतधीतयो वक्मराजसत्याः ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (हि) जिससे (ते) वे (श्रेष्ठवर्चसः) श्रेष्ठ पढ़ने वाले (सुक्षत्रासः) उत्तम राज्य वा धनयुक्त (वरुणः) श्रेष्ठजन (मित्रः) मित्र (अग्निः) अग्नि के समान शुद्धान्तःकरण पुरुष, इनके समान वर्त्तमान (ऋतधीतयः) सत्य के धारण करने वाले (वक्मराजसत्याः) कहने वाले राजाओं में सत्य के प्रतिपादन करने वाले सज्जन (नः) हम लोगों के (विश्वानि) समस्त (दुरिता) दुष्टाचरणों को (तिरः) तिरस्कार को (नयन्ति) पहुंचाते हैं उस कारण से (उ) ही (ते) वे मान करने योग्य हैं ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जिससे विद्वान् धर्मात्मा जन निष्कपटता से औरों के हित साधने वाले, विद्यादान और उपदेश द्वारा सब दुष्ट आचरणों को निवार के सत्य आचरण में प्रवृत्त करने वाले हैं इसी से सत्कार करने योग्य हैं ॥१०॥

फिर किसके तुल्य कौन मानने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

ते न इन्द्रः पृथिवी क्षाम वर्धन् पूषा भगो अदितिः पञ्चजनाः ।
सुशर्माणः स्ववसः सुनीथा भवन्तु नः सुत्रात्रासः सुगोपाः ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिससे (ते) वे (इन्द्रः) बिजुली (पृथिवी) अन्तरिक्ष (क्षाम) भूमि (पूषा) वायु (भगः) ऐश्वर्यवान् जन और (अदितिः) जन्म देने वाली माता के समान (सुशर्माणः) प्रशंसित घरों वाले (स्ववसः) जिन की सुन्दर रक्षा और (सुनीथाः) न्याय विद्यमान वे (पञ्च, जनाः) पांच प्राणों के समान उत्तम मनुष्य हैं इससे (नः) हमको (वर्धन्) बढ़ावें और (नः) हमारे (सुगोपाः) सुन्दर गौ वा पृथिव्यादिकों के रक्षा करने वाले तथा (सुत्रात्रासः) उत्तमता से पालना करने वाले (भवन्तु) हों ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जिससे विद्वान् जन बिजुली, भूमि, अन्तरिक्ष, प्राण, ऐश्वर्य और माता के तुल्य सब के बढ़ाने वा पालनेवाले हैं इसीसे पूज्य होते हैं ॥११॥

फिर कौन धन्यवाद के योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

नू सद्मा॑नं दि॒व्यं नंशि॑ देवा॒ भार॑द्वाजः सुम॒तिं या॑ति॒ होता॑ ।
आ॒सा॒नेभि॒र्यज॑मानो मि॒येधै॑र्दे॒वानां॒ जन्म॑ वसू॒युर्व॑वन्द ॥१२॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वानो जो (भारद्वाजः) विज्ञान को धारण किये (होता) देनेवाला (सुमतिम्) शोभन बुद्धि को (याति) प्राप्त होता है वह (नू) शीघ्र (दिव्यम्) मनोहर (सद्मानम्) जिसमें स्थिर होता उस घर को (नंशि) व्याप्त होता है। जो (वसूयुः) द्रव्यों की कामना करने और (यजमानः) यज्ञ करनेवाला (मियेधैः) प्रेरणा देनेवाले (आसानेभिः) बैठे हुए ऋत्विजों के साथ (देवानाम्) विद्वानों के (जन्म) उत्पन्न होने की (ववन्द) प्रशंसा करता है उसका तुम सत्कार करो ॥१२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो राजा के विद्या और जन्म की प्रशंसा करते हैं वे शुद्ध सुख को प्राप्त होते हैं जैसे बहुत विद्वानों के साथ यज्ञ करने वाला यज्ञ को सुभूषित कर समस्त जगत् का उपकार करता है वैसे ही विद्वान् जन पढ़ाने और उपदेशों से सब को प्राज्ञ (उत्तम ज्ञाता) कर प्रशंसा को प्राप्त होते हैं ॥१२॥

फिर कौन दूर करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

अप॒ त्यं वृ॑जि॒नं रि॒पुं स्ते॒नम॑ग्ने दुरा॒ध्य॑म् ।
द॒वि॒ष्ठम॑स्य सत्पते कृ॒धी सु॒गम् ॥१३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (त्यम्) उस (दविष्ठम्) अतीव दूर (वृजिनम्) त्यागने योग्य (दुराध्यम्) वा दुःख से वश करने योग्य (रिपुम्) विद्याशत्रु (स्तेनम्) चोर को (सुगम्) सुगम (कृधी) करो, हे (सत्पते) सत्य के पालने वाले आप (अस्य) इसका (अप) दूरीकरण करो ॥१३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम विद्या का अभ्यास कर शरीर और आत्मा के बल से युक्त होते हुए दुःसाध्य भी शत्रुओं को सुसाध्य अर्थात् उत्तमता से सूधे करो जिससे वे दूर स्थित ही भय से सद्धर्म के अनुष्ठान करने वाले हों ॥१३॥

फिर किससे मित्रता कर कौन दूर करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं॥

ग्रावाणः सोम नो हि कं सखित्वनाय वावशुः।
जही न्य१'त्रिणं पणिं वृको हि षः॥१४॥

पदार्थः—हे (सोम) प्रेरणा देने वाले जो (ग्रावाणः) मेघों के समान (सखित्वनाय) मित्रपन के लिये (नः) हम लोगों को (हि) ही (वावशुः) चाहते हैं वे (कम्) सुख को प्राप्त हों जो (अत्रिणम्) दूसरे का सर्वस्व हरनेवाला (पणिम्) व्यवहारकर्त्ता का संबन्ध करता है (सः, हि) वही (वृकः) चोर है इस हेतु से इसे आप (नि, जही) निरन्तर मारो॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—यदि धर्मात्मा विद्वान् जन धर्मिष्ठ विद्वानों के साथ मित्रता रखते हैं तो वे निरन्तर सुख को प्राप्त होकर मेघ के समान सबको बढ़ाके दुष्ट आचरण करने वाले छलियों को शीघ्र मारते हैं॥१४॥

कौन इस संसार में आनन्द के देने वाले हैं इस विषय को कहते हैं॥

यूयं हि ष्ठा सुदानव इन्द्रज्येष्ठा अभिद्यवः।
कर्ता नो अध्वन्ना सुगं गोपा अमा॥१५॥

पदार्थः—हे (सुदानवः) उत्तम गुणों के देने वाले विद्वानो (इन्द्रज्येष्ठाः) सूर्यलोक महान् ज्येष्ठ जिन लोकों का उनके समान वर्त्तमान (अभिद्यवः) पदार्थज्ञान के भीतर प्रकाशमान (गोपाः) रक्षा करने वाले (अध्वन्) मार्ग में (नः) हम लोगों को तथा (सुगम्) सुन्दरता से जिसमें जाते (अमा) ऐसे घर को (आ, कर्त्त) प्रकट करो उस (हि) ही घर में (यूयम्) तुम (स्था) स्थित होओ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो मनुष्य दुर्गम मार्गों को सुगम करते हैं और उत्तम घरों को बनाकर आप तथा औरों को निवास करते कराते हैं वे ही जगत् में सुख करने वाले होते हैं॥१५॥

फिर कैसे मार्ग सिद्ध करने चाहियें इस विषय को कहते हैं॥

अपि पन्थामगन्महि स्वस्तिगामनेहसम्।
येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (येन) जिससे वीर जन (विश्वाः) सब (द्विषः) शत्रुओं को (परि, वृणक्ति) सब ओर से दूर करता और (वसु) धन को (विन्दते) प्राप्त

होता है उस (अनेहसम्) न नष्ट करने योग्य और (स्वस्तिगाम्) जिसमें सुख को प्राप्त होते उस (पन्थाम्) मार्ग को हम लोग (अपि) भी (अगन्महि) प्राप्त हों ॥१६॥

भावार्थः—राजादि मनुष्य ऐसे मार्गों को बनावें जिन में जाते हुओं को चोरों का भय न हो और द्रव्य का लाभ भी हो ॥१६॥

इस सूक्त में विश्वेदेवों के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में इक्यावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तदशर्चस्य द्विपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य ऋजिश्वा ऋषिः । विश्वेदेवाः देवताः । १ । ४ । १५ । १६ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ३ । ६ । १३ । १७ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पंचमः स्वरः । ७ । ८ । ११ गायत्री । ९ । १० । १२ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । १४ विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब सत्रह ऋचावाले बावनवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में किस से अधिक सुख होता है इस विषय को कहते हैं ॥

न तद्दिवा न पृथिव्यानु मन्ये न यज्ञेन नोत शमीभिराभिः ।
उब्जन्तु तं सुभ्वः पर्वतासो नि हीयतामतियाजस्य यष्टा ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (सुभ्वः) जो अच्छे होते हैं वे (पर्वतासः) मेघ (तम्) उसको (उब्जन्तु) कुटिल करें वैसे (अतियाजस्य) जो अतीव यज्ञ करने के योग्य है उसका (यष्टा) संग करने वाला वर्त्तमान है वह (तत्) उस कारण से (दिवा) दिन में (न) न (नि, हीयताम्) छोड़ने योग्य है (न) न (पृथिव्या) भूमि से (न) न (यज्ञेन) होम आदि कर्म से (न) न (उत) और (आभिः) क्रियाओं से वा (शमीभिः) कर्मों से छोड़ने योग्य है उसे मैं (अनु, मन्ये) अनुकूलता से मानता हूं ॥१॥

भावार्थः—जो सुख मेघों से उत्पन्न होता है वह सुख न दिवस में, न पृथिवी, न सगति, न कर्म से होता है इससे यज्ञ करने वाला ही सुखभागी होता है ॥१॥

फिर कौन मनुष्य निन्दा करने और वर्जने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

अति वा यो मरुतो मन्यते नो ब्रह्म वा यः क्रियमाणं निनित्सात् ।
तपूंषि तस्मै वृजिनानि सन्तु ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः ॥२॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो (यः) जो (नः) हम लोगों को (अति, मन्यते) अत्यन्त मानता है (वा) वा (यः) जो (क्रियमाणम्) क्रियमाण (ब्रह्म) धन को अत्यन्त मानता है (वा) वा (निनित्सात्) निन्दा करने को चाहे (तम्) उस (ब्रह्मद्विषम्) धनके द्वेषीजन को (द्यौः) कामना करता हुआ विद्वान् (अभि, शोचतु) सब ओर से शोचे (तस्मै) इसके लिए (तपूंषि) तेजोमय व्यवहार (वृजिनानि) बाधक (सन्तु) हों ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जो मनुष्य अतिमान, धनादिकों से द्वेष और अच्छे सज्जनों की निन्दा करते है वे दण्ड देने, निन्दा करने और शोच करने योग्य होते हैं ॥२॥

फिर मनुष्य कैसे परीक्षक हों इस विषय को कहते हैं ॥

किमङ्ग त्वा ब्रह्मणः सोम गोपां किमङ्ग त्वाहुरभिशस्तिपां नः ।
किमङ्ग नः पश्यसि निद्यमानान् ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य ॥३॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) मित्र (सोम) ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले जन (किम्) क्या (त्वा) तुझे (ब्रह्मणः) धनका (गोपाम्) रक्षा करनेवाला (आहुः) कहें, हे (अङ्ग) मित्र (किम्) क्या (त्वा) तुझे (अभिशस्तिपाम्) सामने प्रशंसा रखने वाला कहते हैं। हे (अङ्ग) मित्र तू (नः) हमलोगों को (किम्) क्या (पश्यसि) देखता है। हे मित्र तू (निद्यमानान्) निन्दा प्राप्त (नः) लोगों को क्या देखता है (ब्रह्मद्विषे) वेद-विद्याद्वेषी जनके लिए (तपुषिम्) अति तपे हुए (हेतिम्) वज्र को क्या नहीं देखता (अस्य) इस पर वज्र प्रहार कर ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम इस धन के रक्षक क्यों नहीं होते हो, स्तुति (प्रशंसा) करने वाले हम लोगों को निन्दा करने वाले भ्रम से मत देखो, जो निश्चय धनपति तथा वेदविद्या से द्वेष करते हैं उनका संग युद्ध विना मत करो ॥३॥

फिर मनुष्यों को कैसा आचरण करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अवन्तु मामुषसो जायमाना अवन्तु मा सिन्धवः पिन्वमानाः ।
अवन्तु मा पर्वतासो ध्रुवासोऽवन्तु मा पितरो देवहूतौ ॥४॥

पदार्थः—हे उपदेश करने वालो तुम (देवहूतौ) दिव्यगुण वा विद्वानों के संग्रहण में जैसे (जायमानाः) उत्पद्यमान (उषसः) प्रभात वेलाएं (माम्) मेरी (अवन्तु) रक्षा करें तथा (पिन्वमानाः) सेचन करती हुई (सिन्धवः) नदियां (मा)

मेरी (अवन्तु) रक्षा करें और (ध्रुवासः) निश्चल (पर्वतासः) शैल पहाड़ (मा) मेरी (अवन्तु) रक्षा करें और (पितरः) पिता वा पढ़ाने वाले वा ऋतु वसंत आदि (मा) मेरी (अवन्तु) रक्षा करें वैसी शिक्षा करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! तुम इस प्रकार युक्त आहार विहार करो जिससे सब सृष्टिस्थ पदार्थ दुःख देने वाले न हों और शुभ गुणों को तुम लोग प्राप्त होओ ॥४॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

विश्वऽदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्य्यमुच्चरन्तम् ।
तथा करद्वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानोऽवसागमिष्ठः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वन् (अवसा) रक्षा आदि के साथ (आगमिष्ठः) अतीव आने और (वसूनाम्) वसुओं के बीच (वसुपतिः) पदार्थों की पालना करने वाले और (ओहानः) रक्षक आप जैसे हम लोगों को (देवान्) विद्वान् (करत्) करें वैसे हम लोग (विश्वदानीम्) सर्वदा (सूर्य्यम्) सूर्यमण्डल जो (उच्चरन्तम्) ऊपर को चढ़ता है उसे (पश्येम) देखें और (नु) शीघ्र (सुमनसः) प्रसन्नचित्त (स्याम) होवें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जैसे प्रीति से अध्यापक और उपदेशक विद्यार्थियों को और उपदेश सुनने वालों को विद्वान् करके सुखी करते हैं वैसे ही पढ़ने वालों और उपदेश सुनने वालों को चाहिये कि विद्वान् होकर भी इनका सदा सत्कार करें ॥५॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रो नेदिष्ठमवसागमिष्ठः सरस्वती सिन्धुभिः पिन्वमाना ।
पर्जन्यो न ओषधीभिर्मयोभुरग्निः सुशंसः सुहवः पितेव ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अवसा) रक्षा आदि से (नेदिष्ठम्) अतीव समीप को (आगमिष्ठः) अतीव आने वाला वा (सिन्धुभिः) नदियों से (पिन्वमाना) संयुक्त (सरस्वती) प्रशंसित सरस् वेग जिसका उस नदी के समान (सुशंसः) शोभन प्रशंसा तथा (सुहवः) शोभन सत्कार वाले (अग्निः) अग्नि के समान (ओषधीभिः) ओषधियों से युक्त (पर्जन्यः) मेघ (मयोभुः) सुख हुवाने तथा (पितेव) जन्म देने वाले पिता के समान (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् राजा (नः) हम लोगों की पालना करता है वह राजा हम लोगों से निरन्तर सत्कार करने योग्य है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो राजा न्याय और पुरुषार्थ से प्रजा की निरन्तर रक्षा करता है उसकी पिता के समान प्रजाजन पालना करते हैं ॥६॥

फिर पढ़ने वालों को क्या करना चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

विश्वे देवास आ गत शृणुता म इमं हवम् । एदं बर्हिर्नि षीदत ॥७॥

पदार्थः—हे (विश्वे देवासः) सब विद्वानो ! तुम हमारे अति समीप (आ, गत) आओ तथा (इदम्) इस (बर्हिः) उत्तम आसन पर (नि, सीदत) निरन्तर स्थिर होओ तथा (मे) मुझ विद्यार्थी के (इमम्) इस (हवम्) सुने पढ़े विषय को (आ, शृणुता) अच्छे प्रकार सुनो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में "नेदिष्ठम्" यह पद पिछले मंत्र से अनुवृत्ति में आता है। विद्यार्थियों को चाहिये कि परीक्षा करने वाले विद्वानों की प्रार्थना कर परीक्षा में सुनाने योग्य समस्त सुना और पढ़ा विषय उसके समीप में निवेदन करें तथा वे परीक्षक भी अच्छे प्रकार परीक्षा कर गुण और दोषों का उपदेश दें ऐसा करने पर पढ़ना निर्दोष हो ॥७॥

फिर अध्यापक और अध्ययन करने वाले परस्पर कैसे वर्त्ताव करें इस विषय को कहते हैं ॥

यो वो देवा घृतस्नुना हव्येन प्रतिभूषति । तं विश्व उप गच्छथ ॥८॥

पदार्थः—हे (देवाः) पढ़ाने और उपदेश करने वाले विद्वानो (यः) जो (घृतस्नुना) घृत के समान शुद्ध (हव्येन) लेने देने योग्य वा प्रशंसित पढ़ने और सुनने से (वः) तुम लोगों को (प्रतिभूषति) प्रत्यक्षता से सुभूषित करता है (तम्) उसके (विश्वे) सब तुम लोग (उप, गच्छथ) समीप प्राप्त होओ ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सत्य विद्यादान से तुम सब लोगों को सुभूषित करता है उसे तुम सब प्रतिभषित करो अर्थात् बदले में सुशोभित करो ॥८॥

फिर मनुष्यों को कैसा नियम करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्त्वमृतस्य ये । सुमृळीका भवन्तु नः ॥९॥

पदार्थः—हे राजन् वा विद्वानो (ये) जो (नः) हमारे (सूनवः) सन्तान हों वे (अमृतस्य) नाशरहित विज्ञान की (गिरः) विद्यायुक्त वाणियों को (उप, शृण्वन्तु) समीप में सुनें तथा (सुमृळीकाः) सुन्दर सुख वाले होकर (नः) हमारी सेवा करने वाले (भवन्तु) हों ॥९॥

भावार्थः—पितृजनों को राजनीति वा अपने कुल में यह दृढ़ नियम करना चाहिए कि जितने हमारे सन्तान हैं वे ब्रह्मचर्य्य से समस्त विद्याओं के ग्रहण के लिए ब्रह्मचर्य्य आश्रम को करें, जो इसका विनाश करे उसे राजा वा कुलीन निरन्तर दण्ड देवें ॥९॥

फिर मनुष्य क्या कामना कर विद्याओं को प्राप्त होवें इस विषय को कहते हैं ॥

विश्वे देवा ऋतावृध ऋतुभिर्हवनश्रुतः । जुषन्तां युज्यं पयः ॥१०॥

पदार्थः—हे (ऋतावृधः) सत्यविद्या के बढ़ाने वालो (हवनश्रुतः) जो अध्ययन को सुनते हैं वे (विश्वे, देवाः) सब विद्वान् आप लोग (ऋतुभिः) वसन्तादिकों के साथ (युज्यम्) समाधान करने योग्य (पयः) दूध, जल वा अन्न को (जुषन्ताम्) सेवें ॥१०॥

भावार्थः—जो अध्ययन करने और परीक्षा कराने को चाहें वे मद करने, कुत्सित बुद्धि वा नाश करने वाले पदार्थों को छोड़ के दुग्ध आदि बुद्धि के बढ़ाने वाले उत्तम पदार्थों को सेवें ॥१०॥

फिर मनुष्य किसके साथ क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणस्त्वष्टृमान्मित्रो अर्यमा ।
इमा हव्या जुषन्त नः ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो आप जो (मरुद्गणः) जिसके उत्तम मनुष्यों का समूह और (त्वष्टृमान्) उत्तम शिल्पीजन विद्यमान हैं तथा (मित्रः) जो कि सबका मित्र (अर्यमा) न्याय करने वाला और (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् राजा हो उसके साथ (नः) हमारे (स्तोत्रम्) उस स्तोत्र को जिससे स्तुति करते हो और (इमा) इन (हव्या) लेने देने योग्य अन्नादि पदार्थों को (जुषन्त) सेवो ॥११॥

भावार्थः—वेही मनुष्य चाहे हुए पदार्थों को पा सकते हैं जो सब से श्रेष्ठ पुरुष को अधिष्ठाता करते हैं ॥११॥

फिर मनुष्य कैसे राजा को करें इस विषय को कहते हैं ॥

इमं नो अग्ने अध्वरं होतर्वयुनशो यज । चिकित्वान्दैव्यं जनम् ॥१२॥

पदार्थः—हे (होतः) देने वाले (अग्ने) अग्नि के समान वर्त्तमान राजन् आप (वयुनशः) उत्तम ज्ञान से (नः) हमारे (इमम्) इस (अध्वरम्) न नष्ट करने योग्य न्याय व्यवहार को (चिकित्वान्) जानने वाले आप (दैव्यम्) विद्वानों से

सत्कार को प्राप्त हुए (जनम्) शुभाचरणों से प्रसिद्ध जन को (यज) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥१२॥

भावार्थः—हे राजा प्रजाजन ! आप जो हमारे बीच शुभ गुणकर्म स्वभाव युक्त हो उसी को राज्य करने में अच्छे प्रकार युक्त करो ॥१२॥

फिर मनुष्यों को कौन बुला कर सत्कार करनेयोग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ । ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वम् ॥१३॥

पदार्थः—हे (विश्वे, देवाः) सब विद्वानो (ये) जो (अन्तरिक्षे) भीतर अविनाशी आकाश में (ये) जो (द्यवि) प्रकाश में (ये) जो (अग्निजिह्वाः) सत्य से प्रकाशमान जिह्वा जिन की (उत, वा) अथवा (यजत्राः) संग करने योग्य हों उन सब के साथ (मे) मेरे (इमम्) इस (हवम्) सुने पढ़े और जाने हुए विषय को (उप, शृणुत) समीप में सुनो और समीप में (स्थ) स्थिर होओ तथा (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) उत्तम आसन वा स्थान में (आसद्य) बैठ के हम लोगों को (मादयध्वम्) आनन्दित करो ॥१३॥

भावार्थः—मनुष्यों को सदैव जो विमानस्थ अन्तरिक्ष में, वा जो बिजुली की विद्या में कुशल हैं और जो पढ़ाने वा परीक्षा करने में निपुण, धर्मिष्ठ, आप्त, विद्वान् हों उनके निकट जाकर और उनको अपने समीप बुलाकर सत्कार कर उनसे सुनना चाहिये और सुना हुआ सुनाना चाहिये जिससे सुनने में वा विज्ञान में श्रम न हो ॥१३॥

फिर कौन संग करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म । मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥१४॥

पदार्थः—हे (विश्वे, देवाः) सब विद्वानो आप (उभे) दोनों (रोदसी) आकाश और पृथिवी के तुल्य सब की रक्षा करने वाले (यज्ञियाः) सज्जनों का संग करने वाले होते हुए (मम) मेरे (वचांसि) वचनों को (शृण्वन्तु) सुनिये तथा (वः) आपके (अपाम्) प्राणों के (नपात्) न विनाश करने वाले (मन्म) विज्ञान के विरुद्ध में (मा, वोचम्) मत कहूं (परिचक्ष्याणि, च) और सब ओर से कहने के योग्यों की प्रशंसा करूं, इस प्रकार वर्त्तमान हम लोग (वः) आपके (अन्तमाः) समीप स्थिर होते हुए (सुम्नेषु) सुखों में (इत्) सर्वदैव (मदेम) आनन्दित हों ॥१४॥

भावार्थः- इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है-हे मनुष्यो ! जिन विद्वानों का वचन असत्य नहीं होता तथा जिनका संग सर्वदा सुख और विज्ञान का बढ़ाने वाला है और जो भूमि और सूर्य के तुल्य सब के पालने वाले और विवाद सुनकर पक्षपात को छोड़ न्याय करने वाले हों उनके निकट स्थिर होकर सदैव आनन्द को प्राप्त होओ ॥१४॥

फिर मनुष्यों से कौन नित्य सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे ।

ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ये) जो (के, च) कोई भी (महिनः) महान् जैसे (ज्मा) पृथिवी के बीच (अहिमायाः) मेघ की कुटिल गतियां (दिवः) सूर्य्य के प्रकाश से (अपाम्) जलों के (सधस्थे) समानस्थान वाले मेघमंडल में (जज्ञिरे) उत्पन्न होती हैं वैसे वर्त्तमान (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (इषये) अन्न वा विज्ञान के अर्थ (क्षपः) रात्रि (उस्राः) दिन और (विश्वम्) पूर्ण (आयुः) जीवन को (वरिवस्यन्तु) सेवें (ते) वे (देवाः) दिव्यगुण वा विद्वान्जन हम लोगों से निरन्तर सेवने योग्य हैं ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जो इस वर्त्तमान समय में दिन रात्रि मनुष्यों के आरोग्य, आयु और विज्ञान के बढ़ाने और मेघ के समान पुष्टि करने वाले हों वे ही सब से सत्कार करने योग्य हैं ॥१५॥

फिर वे विद्वान् कैसे क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अग्नीपर्जन्याववतं धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः ।

इळामन्यो जनयद्गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे ॥१६॥

पदार्थः—हे (सुहवा) सुन्दर प्रशंसित अध्यापक और उपदेशको तुम (अग्नीपर्जन्यौ) बिजुलीरूप अग्नि और मेघ के तुल्य (अस्मिन्) इस (हवे) प्रशंसनीय धर्मयुक्त व्यवहार में तुम दोनों (मे) मेरी (धियम्) बुद्धि की (अवतम्) रक्षा करो तथा (नः) हमारी (सुष्टुतिम्) शोभन प्रशंसा की रक्षा करो जैसे अग्नि और मेघ के बीच (अन्यः) और बिजुलीमय अग्नि (इळाम्) महान् वाणी को (अन्यः) और मेघ (गर्भम्) गर्भरूप (जनयत्) उत्पन्न करता है वैसे (अस्मे) हमारी (प्रजावतीः) बहु प्रशंसित प्रजायुक्त (इषः) अन्नादि पदार्थों की इच्छाओं को (आ, धत्तम्) सब ओर से धारण करो ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जो वह्नि और मेघ के समान सब की वुद्धि के बढ़ाने वाले वा रक्षा करने वाले, सब प्रजाजनों को सुख में धारण करते हैं वे जैसे मेघ पृथिवी पर गर्भ को धारण कर ओषधियों को उत्पन्न करता और जैसे अग्नि वाणी को विधान करता अर्थात् बिजुलीरूप होकर तड़कता है वैसे वे सुखों का विधान करने वाले होते हैं यह आप जानो ॥१६॥

फिर कौन इस संसार में आनन्द देने वाले होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।
अस्मिन्नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥१७॥

पदार्थः—हे (यजत्राः) संग कराने वालो (विश्वे, देवाः) सब विद्वानो तुम (अद्य) आज के दिन (अस्मिन्) इस (विदथे) विज्ञानमय यज्ञ में जैसे मैं (सूक्तेन) वेदमन्त्र समूह से (महा, नमसा) अन्नादि समूह से (स्तीर्णे) इन्धनादि से आच्छादित (बर्हिषि) यज्ञकुण्ड में (समिधाने) प्रदीप्त (अग्नौ) अग्नि के बीच (आ, विवासे) सब ओर से सेवन करूं वैसे (नः) हम लोगों को (हविषि) देने वा भोजन करने योग्य अन्नादि पदार्थों में (मादयध्वम्) सुखी करो ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जैसे इन्धनों से प्रदीप्त अग्नि में वेदमन्त्रों से सुगन्ध्यादियुक्त होम किया पदार्थ सब जगत् को सुखी करता है वैसे सुपात्रों में विद्वानों की बोई हुई विद्या सब जगत् को आनन्दित करती है ॥१७॥

इस सूक्त में विश्वेदेवों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में बावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य त्रिपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । पूषा देवता । १ । ३ । ४ । ६ । ७ । १० गायत्री । २ । ५ । ९ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ८ निचृदनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब दश ऋचा वाले त्रेपनवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य किसके लिए किनका सेवन करें इस विषय को कहते हैं ॥

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये । धिये पूषन्नयुज्महि ॥१॥

पदार्थः- हे (पूषन्) पुष्टि करने वाले (पथः) मार्ग के (पते) स्वामिन् (वयम्) हम लोग (उ) ही (वाजसातये) संग्राम का विभाग करने वाली (धिये) प्रज्ञा के लिए (त्वा) आपको (रथम्) विमान आदि यान के (न) समान (प्रयुज्महि) प्रयुक्त करते हैं ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं—जो मनुष्य उत्तम बुद्धि पाने के लिये विद्वानों की सेवा करते हैं वे वेगवान् रथ से एक स्थान से दूसरे स्थान के समान एक विद्या से दूसरी विद्या को शीघ्र प्राप्त होते हैं ॥१॥

अब स्त्रीपुरुषों को क्या चाहने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

अभि नो नर्यं वसुं वीरं प्रयतदक्षिणम् । वामं गृहपतिं नय ॥२॥

पदार्थः—हे पुष्टि करने वाले आप (नः) हम लोगों को (प्रयतदक्षिणम्) जिससे प्रयत्नपूर्वक दक्षिणा दी गई उस (नर्य्यम्) मनुष्यों में उत्तम (वसु) धन और (वामम्) प्रशंसित (वीरम्) शुभलक्षणयुक्त पुरुष को (गृहपतिम्) गृहस्वामी को भी (अभि, नय) सब ओर से पहुंचाओ ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वन् वा विदुषी ! आप हम लोगों के लिए उत्तम पति, उत्तम भार्या, प्रशंसित धन की प्राप्ति करा के उत्तम शिक्षा से धर्म्म-आचरण की प्राप्ति कराइये ॥२॥

फिर विद्वान् जन किसके लिए क्या प्रेरणा करें इस विषय को कहते हैं ॥

अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय ।

पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥३॥

पदार्थः—हे (आघृणे) सब ओर से प्रकाशात्मन् (पूषन्) पुष्टि करने वाले विद्वन् आप (अदित्सन्तम्) देने की अनिच्छा करते हुए (चित्) भी देने वाले को (दानाय) देने के लिये (चोदय) प्रेरणा देओ (चित्) फिर भी देने वाले को और अपने (मनः) मन को भी प्रेरणा देओ और (पणेः) जुआं खेलने वाले के भी अन्तः-करण को (वि, म्रदा) विशेषता से मर्दो अर्थात् दण्ड देओ ॥३॥

भावार्थः—हे अध्यापक, उपदेशक वा राजन् ! विद्यादि शुभगुणों की प्रवृत्ति के लिये न देनेवालों को भी दान करने के लिए प्रेरणा देओ और जुआ खेलने वाले पाखण्डियों को मारो अर्थात् ताड़ना देओ ॥३॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि ।

साधन्तामुग्र नो धियः ॥४॥

पदार्थः—हे (उग्र) तेजस्वी सेनापति आप (वाजसातये) विज्ञान वा धन की प्राप्ति वा संग्राम के लिये (पथः) मार्ग से (वि, चिनुहि) संचय करो तथा (मृधः) संग्रामों में प्रवृत्त दुष्टों को (वि, जहि) विशेषता से मारो जिससे (नः) हमारी (धियः) बुद्धियां कार्यों को (साधन्ताम्) सिद्ध करें ॥४॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप उत्तम निर्भय मार्गों को बनाओ उनमें विपथगामियों को मारो जिससे सब की बुद्धि उत्तम कर्मों की उन्नति करने के लिये प्रवृत्त हों ॥४॥

फिर राजा से कौन पीड़ा देने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥५॥

पदार्थः—हे (कवे) विद्वन् राजन् आप (आरया) उत्तम कोड़ा से (पणीनाम्) द्यूत आदि व्यवहार करने वाले पुरुषों के (हृदया) हृदयों को (परि, तृन्धि) सब ओर से मारो (अथ) इसके अनन्तर (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (ईम्) सब ओर से दुष्टों को (रन्धय) पीड़ित करो और हमारे लिये सुख देओ ॥५॥

भावार्थः—जो अपवित्र शिक्षा देने वाले और छली पुरुष अपने राज्य में हों उनको अच्छे प्रकार दण्डो जिससे न्यायमार्ग के बीच वर्तमान हम लोग सुखी हों ॥५॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम् । अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥६॥

पदार्थः—हे (पूषन्) पुष्टि करने वाले आप दुष्टों को (ईम्) सब ओर से (रन्धय) अति पीड़ित करो तथा (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (हृदि) हृदय में (प्रियम्) प्यारे पदार्थ की (इच्छ) इच्छा करो (अथ) इसके अनन्तर (आरया) कोड़ा से बैलों के समान (पणेः) प्रशंसित व्यवहार करने वाले के असंबन्धी जनों को (वि, तुद) विशेषता से पीड़ा देओ ॥६॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप दुष्टों को दण्ड देकर श्रेष्ठों का सत्कार कर सब को श्रेष्ठ कर्मों में प्रेरणा देओ ॥६॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे ।

अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥७॥

पदार्थः—हे (कवे) विद्वन् आप (पणीनाम्) व्यवहार करने वालों के (किकिरा) व्यवस्थापत्रों को (आ, रिख) सब ओर से लिखो तथा दुष्टों के (हृदया) हृदयों को (रन्धय) अति पीड़ा देओ (अथ) इसके अनन्तर (अस्मभ्यम्) हम लोगों के लिये (ईम्) सुख (कृणु) करो ॥७॥

भावार्थः—राजा वादी और प्रतिवादी अर्थात् झगड़ालू प्रति-झगड़ालुओं का लिखापढ़ीपूर्वक न्याय करे ॥७॥

फिर विद्वान् को कैसे किसके लिये प्रेरणा करनी योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे ।

तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥८॥

पदार्थः—हे (पूषन्) पुष्टि करने वाले (आघृणे) सब ओर से न्याय के प्रकाश करने वाले आप (याम्) जिस (ब्रह्मचोदनीम्) विद्या और धन की प्राप्ति के लिये प्रेरणा करने तथा (आराम्) काष्ठ के विभाग करने वाली आरी को (बिभर्षि) धारण करते हो (तया) उससे (समस्य) तुल्य के समान अर्थात् जो सब में बुद्धि वाला है उसके (हृदयम्) हृदय को (आ, रिख) अच्छे प्रकार लिखो और (किकिरा) उत्तम गुणों को विकीर्ण (कृणु) करो, फैलाओ ॥८॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप विद्या और धन की प्राप्ति की प्रेरणा के समान राजनीति को धारण करो जिससे सब की न्यायव्यवस्था हो ॥८॥

मनुष्यों को क्या बढ़ा कर किसकी प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी । तस्यास्ते सुम्नमीमहे ॥९॥

पदार्थ—हे (आघृणे) सब ओर से पशुविद्या के प्रकाश करने वाले (या) जो (ते) आपकी (अष्ट्रा) व्याप्त होने वाली (गोओपशा) जिसमें गोएं परस्पर सोती हैं और (पशुसाधनी) जिससे पशुओं को सिद्ध करते हैं वह क्रिया वर्त्तमान है (तस्याः) उससे (ते) आपके (सुम्नम्) सुख को हम लोग (ईमहे) याचते अर्थात् मांगते हैं ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस क्रिया से पशु बढ़ें उस क्रिया को बढ़ा-कर सुख को मांगो ॥९॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं॥

उत नो॒ गोष॒णिं धिय॑मश्व॒सां वा॑ज॒सामु॒त। नृ॒वत्कृ॑णुहि वी॒तये॑॥१०॥

पदार्थः—हे पशु पालने वाले विद्वन् आप (नः) हम लोगों के लिये (वीतये) प्राप्ति के अर्थ (गोषणिम्) गौओं को अलग-अलग करने वाली (उत) और (अश्वसाम्) घोड़ों का विभाग करने वाली (उत) और (वाजसाम्) अन्नादि पदार्थों का विभाग करने वाली (धियम्) उत्तम बुद्धि को (नृवत्) मनुष्यों के तुल्य (कृणुहि) करो॥१०॥

भावार्थः—मनुष्यों को गौ, अश्व और धन धान्य की वृद्धि के लिए पुरुषार्थी जनों के समान महान् पुरुषार्थ करना योग्य है॥१०॥

इस सूक्त में राजमार्ग, डाकुओं का निवारण, उत्तम दक्षिणा देने वालों को प्रेरणा, दुष्टों को मारना, श्रेष्ठों की पालना और पशुओं का बढ़ाना कहा है इस कारण इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी योग्य है॥

यह छठे मण्डल में त्रेपनवां सूक्त समाप्त हुआ॥

अथ दशर्चस्य चतुःपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। पूषा देवता। १। २। ४। ६। ७। ८। ९ गायत्री। ३। १० निचृद्गायत्री। ५ विराड्-गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः॥

अब दश ऋचावाले चौवनवें सूक्त का प्रारम्भ है उस के प्रथम मंत्र में मनुष्यों को किसका संग चाहने योग्य है इस विषय को कहते हैं॥

सं पू॑षन्वि॒दुषा॑ नय॒ यो अञ्ज॑सानु॒शास॑ति। य ए॒वेदमिति॒ ब्रव॑त्॥१॥

पदार्थः—हे (पूषन्) पुष्टि करने वाले विद्वन् (यः) जो (इदम्) यह (एव) इसी प्रकार है (इति) ऐसा (ब्रवत्) उपदेश करे (यः) जो सत्य के (अनुशासति) अनुकूल शिक्षा दे उस (विदुषा) विद्वान् के साथ हम लोगों को (अञ्जसा) साक्षात् (सम्, नय) अच्छे प्रकार उन्नति को पहुंचाओ॥१॥

भावार्थः—हे विद्वन्! हम लोगों को जो सत्य विद्या का उपदेश करें उनका सत्कार कर उनके संग से हम लोग विद्वान् होकर उपदेशकर्त्ता हों॥१॥

मनुष्यों को किसका संग निरन्तर करना चाहिये इस विषय को कहते हैं॥

सम् पूष्णा गमेमहि यो गृहाँ अभिशासति ।
इम एवेति च ब्रवत् ॥२॥

पदार्थः—(यः) जो विद्वान् (इमे) ये पदार्थ (एव) इसी प्रकार हैं (इति) ऐसा (ब्रवत्) कहे (उ) और (च) भी (गृहान्) गृहस्थों को (अभिशासति) सन्मुख होकर शिक्षा दे उस (पूष्णा) पुष्टि करने वाले वैद्य विद्वान्जन के साथ हम लोग (सम्, गमेमहि) संग करें ॥२॥

भावार्थः—जो विद्वान्जन निश्चय से पृथिव्यादि पदार्थों की विद्या के अध्यापन और उपदेश से तथा हस्तक्रिया से साक्षात् कर सके तथा राजनीति आदि व्यवहारों की अनुकूलता से शिक्षा दे उसी विद्वान् का संग हम लोग सदा करें ॥२॥

किसका कर्त्तव्य नष्ट नहीं होता इस विषय को कहते हैं ॥

पूष्णश्चक्रं न रिष्यति न कोशोऽव पद्यते ।
नो अस्य व्यथते पविः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिस (अस्य) इस (पूष्णः) पुष्टि करने वाले शिल्पी विद्वान् का (चक्रम्) कलायंत्रादि (न, रिष्यति) हिंसन नहीं करता तथा (कोशः) धनसमूह (न, अव, पद्यते) अप्राप्त नहीं होता अर्थात् प्राप्त ही होता है और (पविः) शस्त्रास्त्रविद्या (नो) नहीं (व्यथते) व्यथित होती अर्थात् शत्रुजन जिस को नहीं मथते उसी का संग हम लोग करें ॥३॥

भावार्थः—जिस विद्वान् का पूर्ण बल है, जिसका एकच्छत्र राज्य है, जिसका कोश सब ओर से पूरा होता और शत्रुओं में जिसका शस्त्र नहीं नष्ट होता है उसके राज्य में सब जन निर्भय होकर वसें ॥३॥

कौन महान् श्रीमान् होता है इस विषय को कहते हैं ॥

यो अस्मै हविषाविधन्न तं पूषापि मृष्यते । प्रथमो विन्दते वसु ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यः) जो (हविषा) देने वा लेने से (अस्मै) इस के लिए (वसु) बहुत धन का (अविधत्) विधान करता है वा (प्रथमः) पहिला कारक धन (विन्दते) पाता है (तम्) उसको (पूषा) पुष्टि करनेवाला (अपि) भी (न) नहीं (मृष्यते) सहता है ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो पहिले से शिल्प विद्या को पाकर क्रिया से

पदार्थों का निर्माण करता है वह बहुत धन को प्राप्त होता है उसके सदृश पुष्ट कोई नहीं होता है ॥४॥

कौन राज्य को पाता है इस विषय को कहते हैं ॥

पूषा गा अन्वेतु नः पूषा रक्षत्वर्वतः । पूषा वाजं सनोतु नः ॥५॥

पदार्थः—जो (पूषा) पुष्टि करने वाला विद्वान् (नः) हमारे लिए (वाजम्) धन को (सनोतु) देवे जो (पूषा) पुष्टि करने वाला (अर्वतः) घोड़ों के समान अग्न्यादि पदार्थों की (रक्षतु) रक्षा करे वह (पूषा) शिल्पिजनों की पुष्टि करने वाला (नः) हम लोगों को तथा (अनु, गाः) अनुकूल पृथिवी और वाणियों को (एतु) प्राप्त हो ॥५॥

भावार्थः—जो पहिले औरों का उपकार करता वा पदार्थों को इकट्ठा करता है वह सब के सहाय से भूमि के राज्य आदि को प्राप्त होता है ॥५॥

किन के संग से विद्या और राज्य को प्राप्त होवे इस विषय को कहते हैं ॥

पूषन्ननु प्र गा इहि यजमानस्य सुन्वतः । अस्माकं स्तुवतामुत ॥६॥

पदार्थः—हे (पूषन्) पुष्टि करने वाले आप (सुन्वतः) यज्ञ के संपादन करने वाले (यजमानस्य) यज्ञकर्त्ता के (उत) और (स्तुवताम्) विद्या की प्रशंसा करने वाले (अस्माकम्) हम लोगों की (गाः) सुन्दर शिक्षित वाणी वा भूमियों को (अनु, प्र, इहि) अनुकूलता से प्राप्त होओ ॥६॥

भावार्थः—हे शिल्पी विद्वान् जन ! आप राजधनादि के सहाय से हम से वा शिक्षा देने वालों से विद्याओं को पाकर भूमिराज्य को प्राप्त होओ ॥६॥

किसी को हिंसा नहीं करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

माकिर्नेशन्माकीं रिषन्माकीं सं शारि केवटे ।
अथारिष्टाभिरा गहि ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वन् जो कभी (माकिः) न (नेशत्) नष्ट हो तथा किसी को (माकीम्) न (रिषत्) नष्ट करे (अथ) इसके अनन्तर (केवटे) कुए में (माकीम्) न (सम्, शारि) नष्ट करे वा कुए के निमित्त किसी को न नष्ट करे उसको पाकर (अरिष्टाभिः) अहिंसित क्रियाओं से आप हम लोगों को (आ, गहि) प्राप्त हूजिये ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो नष्ट कर्म नहीं करता न किसी को नष्ट करता है तथा कुए के जल से भी किसी को नहीं पीड़ा देता वही सब से संग करने योग्य और न हिंसा करनेवाला होता है ॥७॥

मनुष्यों को किससे धन पाना योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

शृण्वन्तं पूषणं वयमिर्यमनष्टवेदसम् । ईशानं राय ईमहे ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (वयम्) हम लोग (इर्यम्) प्रेरणा देने योग्य (अनष्टवेदसम्) अक्षतविज्ञानधन तथा (ईशानम्) ईश्वरता का शील रखने और (शृण्वन्तम्) सुनने और (पूषणम्) पुष्टि करनेवाले सज्जन विद्वान् को प्राप्त होकर (रायः) धनों को (ईमहे) मांगते हैं वैसे इसको प्राप्त होकर तुम सब धन को मांगो ॥८॥

भावार्थः—जो सुपात्र और कुपात्र, विद्वान् और अविद्वान् तथा धार्मिक और अधार्मिक की परीक्षा करने वाला हो उसी के सकाश से पुरुषार्थ से धन पाना चाहिये ॥८॥

कौन किसमें अहिंसक हों इस विषय को कहते हैं ॥

पूषन्तव व्रते वयं न रिष्येम कदा चन । स्तोतारस्त इह स्मसि ॥९॥

पदार्थः—हे (पूषन्) पालन करने वाले धर्मात्मन् जिस (ते) आपके (इह) इस संसार में (स्तोतारः) विद्या की स्तुति करने वाले (वयम्) हम लोग (स्मसि) हैं उस (तव) आपके (व्रते) कर्म में (कदा, चन) कभी भी हम लोग (न, रिष्येम) नष्टकर्त्ता न होवें ॥९॥

भावार्थः—जो सत्यविद्याओं की प्रशंसा करने वाले मनुष्य हों वे विद्वानों के काम में हिंसा करने वाले न हों ॥९॥

किन गुणों से कैसे मनुष्य होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणम् । पुनर्नो नष्टमाजतु ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (पूषा) पुष्टि करने वाला दानशील (दक्षिणम्) दहिने (हस्तम्) हाथ को धारण करे वह (पुनः) फिर (नष्टम्) नष्ट हुई भी वस्तु को (परस्तात्) पीछे से (परि, दधातु) सब ओर से धारण करे (नः) हम लोगों को फिर (आ, अजतु) अच्छे प्रकार दे वा प्राप्त हो ॥१०॥

भावार्थः—इस लोक में जो देने वाला है वही उत्तम है, जो लेने वाला है वह अधम है और जो चोरी से प्राप्त करने वाला है वह निकृष्ट है यह जानना चाहिये ॥१०॥

इस सूक्त में विद्वानों का संग, शिल्पियों की प्रशंसा, उत्तम गुणों की याचना, हिंसा छोड़ना और दान की प्रशंसा कही है इससे इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में चौवनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडर्चस्य पञ्चपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । पूषा देवता । १ । २ । ५ । ६ गायत्री । ३ । ४ विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले पचपनवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में किसका संग करना योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहै । रथीर्ऋतस्य नो भव ॥१॥

पदार्थः—हे (आघृणे) सब ओर से देदीप्यमान (नपात्) जो नहीं गिरते वह आप (नः) हमारे लिए (ऋतस्य) सत्य के संबन्धी (रथीः) बहुत रथोंवाले (भव) हो तथा आप हम लोगों को (आ, इहि) प्राप्त होओ । हे अध्यापक और उपदेशको (वाम्) तुम दोनों को हे उक्त विद्वन् आप (विमुचः) छोड़ो तथा आप और मैं (सम्, सचावहै) संबन्ध करें ॥१॥

भावार्थः—जो विद्वान् सत्य की पालना करने वाला, सत्य का उपदेशक हो वह और सुनने वाला, मित्र होकर तथा सत्य विद्या को प्राप्त होकर औरों को भी विद्या को प्राप्त करावें ॥१॥

फिर कैसे पुरुष से धन प्राप्त करना चाहिये इस विषय को कहते हैं

रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः । रायः सखायमीमहे ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! हम लोग जिस (महः) महान् (राधसः) धन के वा (रायः) साधारण धनके (ईशानम्) ऐश्वर्य्य से युक्त (रथीतमम्) जिसके बहुत रथ विद्यमान (कपर्दिनम्) जो जटाजूट ब्रह्मचारी (सखायम्) मित्र विद्वान् उसकी (ईमहे) याचना करते हैं उसकी तुम भी याचना करो ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो ब्रह्मचारी होकर विद्या पढ़ा हुआ पुरुषार्थी तथा बहुत धन का स्वामी है उसी से विद्या पढ़कर धन को प्राप्त होओ ॥२॥

अब कौन सब को सुख देने वाला होता है इस विषय को कहते हैं ॥

रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व । धीवतोधीवतः सखा ॥३॥

पदार्थ—हे (अजाश्व) अविनाशी विजुलीरूप घोड़े वाले (आघृणे) विद्या से प्रकाशमान विद्वान् जिससे आप (वसोः) वास कराने वाले (रायः) धन की (राशिः) ढेरी के समान वा (धारा) प्राप्ति कराने वाली वाणी के समान (धीवतोधीवतः) प्राज्ञ प्राज्ञ के (सखा) मित्र (असि) हो इससे सत्कार करने योग्य हो ।।३।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो मनुष्य प्राज्ञ पुरुषों के मित्र, पदार्थविद्याओं के जानने वाले तथा धनाढच हों वे सबके सुख देनेवाले होते हैं ।।३।।

फिर किन गुणों से उत्कृष्ट होता है इस विषय को कहते हैं ।।

पूषणं न्व१'जाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम् । स्वसुर्यो जार उच्यते ।।४।।

पदार्थः—(यः) जो (स्वसुः) वहिन के समान वर्त्तमान उषा का (जारः) जीर्ण कराने वाला (उच्यते) कहा जाता है उस (वाजिनम्) ज्ञान और बल का देने वाला (अजाश्वम्) जिसमें बकरी और घोड़े विद्यमान (पूषणम्) जो पुष्टि करने वाला है उस आदित्य की हम (नु) शीघ्र (उप, स्तोषाम) प्रशंसा करें ।।४।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे राजा आदि मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य रात्रि का निवारण करने वाला है वैसे ही प्रजाजनों में जारकर्म में वर्त्तमान मनुष्यों का निवारण करो ।।४।।

फिर मनुष्य क्या जानें इस विषय को कहते हैं ।।

मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः । भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ।।५।।

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (इन्द्रस्य) बिजुली के (भ्राता) भ्राता के समान (मम) मेरा (सखा) मित्र (नः) हम लोगों के (दिधिषुम्) धारण करने वाले को (शृणोतु) सुने और जो (स्वसुः) भगिनी के समान उषा का (जारः) निवारण करने वाला (मातुः) माता का धारण करने वाला है उसको मैं (अब्रवम्) कहूं और उसको सब जानें ।।५।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि का मित्र वायु है, और रात्रि का निवारण करने वाला सूर्य भी है वैसे ही धार्मिक मेरे मित्र और मैं भी उनका मित्र होकर रात्रि के समान वर्त्तमान अविद्या का हम सब निवारण करें ।।५।।

फिर मनुष्य क्या जानके किसको प्राप्त होते हैं इस विषय को कहते हैं ।।

आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम् ।
देवं वहन्तु बिभ्रतः ।।६।।

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (निशृम्भाः) नित्यसंबन्ध करने वाले (अजासः) पुष्टिकर्त्ता सूर्य्य के किरणरूप अश्व (पूषणम्) पुष्टि करनेवाले सूर्य्य वा (जनश्रियम्) जिसके मनुष्यों की शोभा विद्यामान उस (देवम्) दिव्यगुणवाले विद्वान् के (बिभ्रतः) धारक अर्थात् पुष्टि करने वालों और धारण करनेवालों को (रथे) रमणीय जगत् में (आ, वहन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त करें (ते) वे सर्व चाही हुई वस्तु को प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! तुम शरीर और आत्मा की पुष्टि करने वाले पदार्थों को जानकर और उनसे उपयोग लेकर ऐश्वर्य्य को प्राप्त होओ ॥६॥

इस मन्त्र में पूषा और आदित्य के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में पचपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्य षट्पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । पूषा देवता । १ । ४ । ५ गायत्री । २ । ३ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ६ स्वराडुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले छप्पनवें सूक्त का प्रारम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में किसको किसके लिये क्या उपदेश करना योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम् । न तेन देव आदिशे ॥१॥

पदार्थः—(यः) जो (करम्भात्) करम्भ करमन्हा नामक अन्न को खाने वाला (देवः) विद्वान् (एनम्) बिजुली आदि रूप वाले (पूषणम्) पुष्टि करने वाले को (आदिदेशति) सब ओर से अच्छे प्रकार उपदेश करता है (इति) इस प्रकार (तेन) उसके साथ मैं अन्यथा (न, आदिशे) नहीं सब ओर से प्रशंसा करता हूं ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य सत्य का उपदेश करते हैं वे सब आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥१॥

फिर वह कैसा होता है इस विषय को कहते हैं ॥

उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा ।
इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (युजा) युक्त (सख्या) मित्र के साथ (सत्पतिः)

सज्जनों की पालना करनेवाला (उत) और (रथीतमः) अतीव रथयुक्त (इन्द्रः) सूर्य के समान राजा जैसे सूर्य (वृत्राणि) मेघों को मारता है वैसे (जिघ्नते) शत्रुओं को मारता है (सः) वह (घा) ही कृतकृत्य होता है ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सत्य तथा सत्पुरुषों से साथ मित्रता तथा दुष्टों के साथ उदासीनता करते हैं वे दुष्टों को निवारकर श्रेष्ठों का स्वीकार कर सकते हैं ॥२॥

फिर मनुष्यों को कैसा भाषण करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् । न्यैरयद्रथीतमः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (रथीतमः) अतीव रथादि पदार्थों से युक्त (सूरः) वीर पुरुष (अदः) उस (हिरण्ययम्) सुवर्णादि युक्त वा तेजोमय (चक्रम्) चक्र को (नि, ऐरयत्) निरन्तर प्रेरित करे वह (उत) निश्चय से (परुषे) कठोर व्यवहार में और (गवि) वाणी में नहीं प्रवृत्त हो ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य कठोर भाषण को छोड़ कोमल भाषण करता है वह सदा आनन्दी होता है ॥३॥

फिर विद्वान् क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः । तत्सु नो मन्म साधय ॥४॥

पदार्थः—हे (पुरुष्टुत) बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त (दस्र) दुःख को नष्ट करने वाले (मन्तुमः) प्रशस्त विज्ञानयुक्त (अद्य) आज हम (यत्) जिस ज्ञान को (त्वा) तुझ को (ब्रवाम) कहें वह तू (नः) हमारे लिये (तत्) उस (मन्म) विज्ञान को (सु, साधय) अच्छे प्रकार सिद्ध कर ॥४॥

भावार्थः—मनुष्यों को सर्वदा सन्मुख या अन्यत्र सत्य ही कहना चाहिये जिससे सत्य ज्ञान सर्वत्र बढ़े ॥४॥

फिर विद्वान् क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् । आरात्पूषन्नसि श्रुतः ॥५॥

पदार्थः—हे (पूषन्) पुष्टि करने वाले जिससे आप (आरात्) समीप वा दूर से (श्रुतः) सुने हुए (असि) हो इससे (सातये) संविभाग करने के लिए (नः) हमारे (इमम्) इस (गवेषणम्) वाणी आदि पदार्थों की प्रेरणा करने वाले को तथा (गणम्) अन्य पदार्थों के समूह को (च) भी (सीषधः) साधो ॥५॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! जिससे आप आप्त विद्वानों के गुणों से युक्त हैं इससे हम मनुष्यों के संघों को विद्वान् करो ॥५॥

फिर सब को विद्वानों के लिये क्या इच्छा करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

आ ते स्वस्तिमीमह आरेअघामुपावसुम् ।

अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वन् (सर्वतातये) सम्पूर्ण सुख सिद्ध करने वाले यज्ञ के लिये (ते) तेरे लिये (अद्या) आज (च) और (श्वः) आगामी दिन (च) भी (सर्वतातये) सर्वसुख करने वाले और पदार्थ के लिये (आरेअघाम्) जिस में पाप दूर पहुंचे तथा (उपावसुम्) वा समीप धन आदि पदार्थ विद्यमान उस (स्वस्तिम्) सुख को हम (आ, ईमहे) अच्छे प्रकार मांगते हैं ॥६॥

भावार्थः—हे विद्वन् ! जिससे आप पापाचरण से अलग तथा सब के कल्याण करने वाले हैं इससे आपके लिए सदैव सुख की इच्छा हम लोग करें ॥६॥

इस सूक्त में उपदेशक, श्रोता और पूषा शब्द के अर्थ का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में छप्पनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य सप्तपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रापूषणौ देवते । १ । ६ विराड्गायत्री । २ । ३ निचृद्गायत्री । ४ । ५ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले सत्तावनवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को किसके साथ मित्रता करनी चाहिये इस विषय का वर्णन करते हैं ॥

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥१॥

पदार्थः—(इन्द्रा, पूषणा) परम ऐश्वर्य्ययुक्त को तथा सबको पुष्टि करने वाले को (वयम्) हम लोग (सख्याय) मित्रता तथा (स्वस्तये) सुख वा (वाजसातये) अन्नादिकों का जिसमें विभाग है उसके लिये (नु) शीघ्र (हुवेम) स्वीकार करें ॥१॥

भावार्थ—जो सबमें मित्रता विधान कर सबके सुख की चाहना करते हैं उन्हीं को हम लोग स्वीकार करें ॥१॥

फिर विद्वान् जन किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

सोमंमन्य उपासदत्पातवे चम्वोंः सुतम् । करम्भमन्य इंच्छति ॥२॥

पदार्थः— हे परमैश्वर्य्ययुक्त और सब की पुष्टि करने वाले तुम दोनों में से (अन्यः) एक जन (चम्वोः) आकाश और पृथिवी के बीच (सुतम्) उत्पन्न हुए (सोमम्) ऐश्वर्य्य के (पातवे) पीने को (उप, असदत्) दूसरे के समीप बैठता है (अन्यः) और दूसरा (करम्भम्) भोगने योग्य पदार्थ को (इच्छति) चाहता है उन दोनों को हम लोग मित्रता आदि के लिये स्वीकार करते हैं ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वान् जनो ! जैसे सूर्य और चन्द्रमा द्यावा और पृथिवी के बीच वर्त्तमान होते हुए हैं, इन दोनों में से सूर्य्य रस को लेता है और चन्द्रमा रस को देता है वैसे ही तुम सब वर्त्तो ॥२॥

फिर इन दोनों से मनुष्यों को क्या प्राप्त होना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य सम्भृता ।
ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! उन दोनों के बीच जिस (अन्यस्य) भूमि के सम्बन्धी (वह्नयः) पदार्थ को एक स्थान से दूसरे स्थान में पहुंचाने वाले (अजाः) नित्य अर्थात् जो नष्ट नहीं होते वा जिस (अन्यस्य) और दूसरे बिजुलीरूप अग्नि के (हरी) हरणशील (सम्भृता) अच्छे प्रकार धारण किये हुए धारण और आकर्षण गुण वर्त्तमान हैं (ताभ्याम्) उनसे जो (वृत्राणि) धनों को (जिघ्नते) प्राप्त होता है उसका तुम सत्कार करो ॥३॥

भावार्थः हे मनुष्यो ! मिले हुए भूमि और बिजुली की उत्तेजना से तुम धनों को प्राप्त होओ ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या जानना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

यदिन्द्रो अनंयद्रितों महीरपो वृषन्तमः । तत्रं पूषाभंवत्सचां ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (वृषन्तमः) अतीव वर्षा करने वाला (इन्द्रः) बिजुली रूप अग्नि (रितः) अपनी कक्षाओं में घूमने वाली (महीः) भूमि और (अपः) जलों को (अनयत्) पहुंचाता है (तत्र) वहां (पूषा) भूमि (सचा) संयुक्त (अभवत्) होती है उसको तुम लोग जानो ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्य ! जो बिजुली पृथिवी और जल के बीच स्थिर हुई सबको समय-समय पर प्रतिस्थान पहुंचाती है जिसके साथ पृथिवी

वर्त्तमान है उसको जान कलायन्त्रों से उसे उठा कर सब कामों को सिद्ध करो ॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या जान कर क्या आरम्भ करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव । इन्द्रस्य चा रभामहे ॥५॥

पदार्थः - हे मनुष्यो (वयम्) हम लोग जिस (पूष्णः) पृथिवी संबन्धिनी (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को (वृक्षस्य) काटने योग्य पदार्थ को (वयामिव) वृक्ष की दृढ़ विस्तीर्ण शाखा के समान वा (इन्द्रस्य) बिजुलीरूप अग्नि सम्बन्धिनी उत्तम मति का (च) भी (प्र, आ, रभामहे) आरम्भ करें (ताम्) उसको तुम भी प्रारम्भ करो ॥५॥

भावार्थः– इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है हे मनुष्यो ! तुम भूगर्भविद्या और विद्युद्विद्या को प्राप्त होकर कार्यसिद्धि के लिये क्रिया का आरम्भ करो ॥५॥

फिर मनुष्यों को क्या प्राप्त होने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः । मह्या इन्द्रं स्वस्तये ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (मह्यै) पृथिवी और (स्वस्तये) सुख के लिए (सारथिः) नियन्ता अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुंचाने वाला (अभीशूनिव) रश्मियों के समान (पूषणम्) भूमि को और (इन्द्रम्) विद्युद्रूप अग्नि को (उत् युवामहे) उत्तमता से अलग करते हैं वैसे ही तुम भी करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा०—यदि मनुष्य भूमि और बिजुली का विभाग करें तो बहुत सुख पावें ॥६॥

इस सूक्त में भूमि और बिजुली के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में सत्तावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्याष्टपञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । पूषा देवता । १ त्रिष्टुप् । ३ । ४ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब चार ऋचावाले अट्ठावनवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर मनुष्य क्या करके क्या पाते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

शु॒क्रं ते॑ अ॒न्यद्य॑ज॒तं ते॑ अ॒न्यद्वि॑षु॑रूपे॒ अह॑नी॒ द्यौरि॑वासि ।
विश्वा॒ हि मा॒या अव॑सि स्वधावो भ॒द्रा ते॑ पूषन्नि॒ह रा॒तिर॑स्तु ॥१॥

पदार्थः—हे (स्वधावः) बहुत अन्नवाले और (पूषन्) पुष्टिकर्त्ता जन (ते) आपका (अन्यत्) और (शुक्रम्) शुद्धरूप तथा (ते) आपका (अन्यत्) रूप है सो तुम दोनों (विषुरूपे) व्याप्तरूप (अहनी) रात्रि दिन में (यजतम्) मिलो और (द्यौरिव) सूर्य्य प्रकाश के समान (विश्वाः) संपूर्ण (मायाः) बुद्धियों को तुम (अवसि) रक्खो जिन (ते) आपकी (भद्रा) कल्याण करने वाली (रातिः) दानक्रिया (इह) यहां (अस्तु) हो वह (हि) ही आप सत्कार करने योग्य (असि) हैं ॥१॥

भावार्थः- हे मनुष्यो ! जो पुरुष दिन-रात्रि के समान क्रम से कामों को सिद्ध करते हैं वे सब सामग्री को पाकर सूर्य्य के प्रकाश के समान उत्तम कीर्त्ति वाले होते हैं ॥१॥

फिर विद्वान् जन क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

अ॒जाश्वः॑ पशु॒पा वाज॑पस्त्यो धियंजि॒न्वो भुव॑ने॒ विश्वे॒ अर्पि॑तः ।
अष्ट्रां॑ पू॒षा शि॑थि॒रामु॒द्वरी॑वृजत्सं॒चक्षा॑णो॒ भुव॑ना दे॒व ईय॑ते ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (अजाश्वः) भेड़ बकरी और घोड़ों को रखने वाला (पशुपाः) जो पशुओं की रक्षा करने वाला तथा (वाजपस्त्यः) घर में अन्नों को रखने वाला (धियंजिन्वः) बुद्धि को तृप्त करता है वह (विश्वे) समग्र (भुवने) संसार में (अर्पितः) स्थापन किया हुआ (पूषा) पुष्टि करने वाला (शिथिराम्) शिथिल और (अष्ट्राम्) पदार्थों में व्याप्त बुद्धि और (भुवना) गृहों को (सञ्चक्षाणः) अच्छे प्रकार कामना वा उनका उपदेश करता हुआ (देवः) विद्वान् (ईयते) प्राप्त होता वा जाता है तथा (उद्वरीवृजत्) उत्तमता से वर्जता है उसका तुम लोग सेवन करो ॥२॥

भावार्थः- जो मनुष्य भुवनस्थ सब पदार्थों को मिले वा न मिले जान कर कार्यों को करते हैं वे बुद्धिमान् होते हैं ॥२॥

फिर विद्वान् किसको बना कहां जाकर क्या पावे इस विषय को कहते हैं ॥

यास्ते॑ पूषन्ना॒वो॑ अ॒न्तः स॑मु॒द्रे हि॑र॒ण्ययी॑र॒न्तरि॑क्षे॒ चर॑न्ति ।
ताभि॑र्यासि दू॒त्यां सूर्य॑स्य॒ कामे॑न कृत॒ श्रव॑ इ॒च्छमा॑नः ॥३॥

पदार्थः—हे (कृत) किये हुए विद्वन् (पूषन्) भूमि के समान पुष्टियुक्त (याः) जो (ते) आपकी (हिरण्ययीः) तेजोमयी सुवर्णादिकों से सुभूषित (नावः) प्रशंसनीय

नौकायें (समुद्रे) समुद्र वा (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्ष में (अन्तः) भीतर (चरन्ति) जाती हैं (ताभिः) उनसे (कामेन) कामना करके (श्रवः) अन्नादिक की (इच्छमानः) इच्छा करते हुए (सूर्य्यस्य) सूर्य्य के (दूत्याम्) दूत की क्रिया के समान कामना को (यासि) प्राप्त होते हो इससे धन्य हो ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य सुदृढ़ नावें और भूविमानों को भूमि पर और अन्तरिक्ष में चलने वाले यानों को अन्तरिक्ष में चलने को रचते और उन से देश-देशान्तरों को जाय आकर अपनी इच्छा को पूरी करते हैं वे ही सूर्य्य के समान प्रकाशित कीर्ति वाले होते हैं ॥३॥

फिर कौन विद्या को प्राप्त होने के योग्य होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यम्) जिसको (देवासः) विद्वान् जन (कामेन) कामना से (कृतम्) किये हुए (तवसम्) बलिष्ठ (स्वञ्चम्) सुन्दरता से जाते हुए अर्थात् शरीर और आत्मा के बल से युक्त युवा मनुष्य को (सूर्यायै) सूर्य के समान शुभ गुण और स्वभावों से प्रकाशित कन्या के लिए (अददुः) देते हैं वह (सुबन्धुः) सुन्दर भ्राता वा मित्रों वाला (मघवा) बहुत ऐश्वर्य्ययुक्त (दस्मवर्चाः) नष्ट होते हुए पदार्थों में प्रकाश रखने वाला (पूषा) भूमि के समान पुष्ट वा पुष्टि करने वाला (दिवः) बिजुली और (पृथिव्याः) भूमि तथा (इळः) वाणी का (पतिः) स्वामी होता हुआ सुख को (आ) ग्रहण करता है ॥४॥

भावार्थः—जो ब्रह्मचर्य्य से पूर्ण युवावस्था को प्राप्त हुए अपने सदृश वधुओं को प्राप्त होकर ऋतुगामी अर्थात् ऋतुकाल में स्त्रीभोग करने वाले होकर सुन्दर पुष्ट अंग और बुद्धि बल विद्या और शिक्षा को प्राप्त हों वे ही भूगर्भ वा विद्युदादि विद्या को प्राप्त हो सकते हैं और क्षुद्राशय नहीं ॥४॥

इस सूक्त में विद्वानों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में अट्ठावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्यैकोनषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। इन्द्राग्नी देवते। १। ३। ४। ५ निचृद्बृहती। २ विराड्बृहती छन्दः। मध्यमः स्वरः। ६। ७। ९ भुरिगनुष्टुप्। १० अनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः। ८ उष्णिक् छन्दः। ऋषभः स्वरः॥

अब दश ऋचा वाले उनसठवें सूक्त का प्रारम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य क्या करके बलिष्ठ हों इस विषय को कहते हैं

प्र नु वो॑चा सु॒तेषु॑ वां वी॒र्या॑३॒॑ यानि॑ च॒क्रथुः॑।
ह॒तासो॑ वां पि॒तरो॑ दे॒वश॑त्रव॒ इन्द्रा॑ग्नी॒ जीव॑थो यु॒वम् ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली के समान अध्यापक और उपदेशको (युवम्) तुम दोनों (यानि) जिन (सुतेषु) उत्पन्न हुए पदार्थों में (वीर्या) पराक्रमों को (चक्रथुः) किया करते हो उनसे (वाम्) तुम दोनों के जो (देवशत्रवः) विद्वानों से द्वेष करने वाले शत्रु (हतासः) नष्ट हों और तुम दोनों बहुत समय तक (जीवथः) जीवते हो यह (वाम्) तुम दोनों को मैं (नु) शीघ्र (प्र, वोचा) उपदेश देता हूं जिससे तुम दोनों के (पितरः) पालने वाले भी ऐसा (वाम्) तुम दोनों को उपदेश दें ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य उत्पन्न हुए मनुष्यों में पराक्रम की उन्नति करते हैं उन के शत्रु विलय (नाश) को प्राप्त होते हैं ॥१॥

फिर अध्यापक और उपदेशक कैसे हों इस विषय को कहते हैं॥

बळि॒त्था म॑हि॒मा वा॒मिन्द्रा॑ग्नी॒ पनि॑ष्ठ॒ आ।
स॒मा॒नो वां॑ जनि॒ता भ्रात॑रा यु॒वं य॒मावि॒हेह॑मातरा ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) पवन और अग्नि के तुल्य राजप्रजाजनो जो (वाम्) तुम दोनों का (पनिष्ठः) अतीव प्रशंसित (बट्) सत्य (महिमा) प्रताप वा (वाम्) तुम दोनों का (समानः) तुल्य (जनिता) उत्पादन करने वाला पिता (इहेहमातरा) यहां यहां जिनकी माता वे (यमौ) नियन्ता अर्थात् गृहस्थी के चलाने वाले (भ्रातरा) भाई वर्त्तमान हैं उनको (इत्था) इस प्रकार से (युवम्) तुम (आ, जीवथः) जिलाते हो ॥२॥

भावार्थः—जो अध्यापक और उपदेशक बिजुली और सूर्य्य के तुल्य विद्याओं में व्याप्त तथा परोपकारी हैं वे सत्य महिमा वाले होते हैं ॥२॥

फिर विद्वान् जन क्या जानकर कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने ।
इन्द्रान्व१ग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (देवाः) विद्वान् (वयम्) हम लोग (अवसा) रक्षा आदि से (इह) इस संसार में (सुते) निष्पन्न हुए व्यवहार में (सचा) अच्छे प्रकार युक्त (अश्वाः) और व्याप्त हुए (वज्रिणा) प्रशंसित शस्त्र अस्त्र वाले (ओकिवांसा) संग और सम्बन्ध को प्राप्त हुए (सप्तीइव) जैसे दो घोड़े (आदने) भक्षण करने योग्य घास अदन के निमित्त वर्त्तमान वैसे (इन्द्राग्नी) पवन और बिजुली की (नु) शीघ्र (हवामहे) प्रशंसा करते हैं वैसे इनकी तुम भी प्रशंसा करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमावाचकलुप्तोपमालंकार है—जो विद्वान् जन सदा मिले हुए वायु और विजुली इन दोनों पदार्थों को जानते हैं वे इस संसार में अद्भुत क्रियाओं को कर सकते हैं ॥३॥

फिर विद्वान् जन कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

य इंन्द्राग्नी सुतेषुं वां स्तवत्तेष्वृंतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसर्थश्चन ॥४॥

पदार्थः—हे (पज्रहोषिणा) प्राप्त हुई वाणी वा घोषयुक्त (ऋतावृधा) सत्य बढ़ाने वाले (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली के समान अध्यापक और उपदेशको (यः) जो (तेषु) उन (सुतेषु) उत्पन्न हुए पदार्थों में (वाम्) तुम दोनों की (स्तवत्) प्रशंसा करे वा जो (देवा) विद्वान् जन (चन) भी (न) नहीं (भसथः) व्यर्थ वाद करते हैं, उस सर्वजन के प्रति तुम दोनों (जोषवाकम्, प्रीति करने वाले वचन (वदतः) कहते हो वह सर्वजन भी तुम्हारे प्रति कहे ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! सर्व पदार्थों में प्रविष्ट वायु और विजुली को जानकर ऐश्वर्य्य को प्राप्त होकर रूखी असत्य क्रिया और लोकविद्वेषी जनों को जान सबके उपकार के लिए सत्य प्रिय वाक्य सर्वदा कहो ॥४॥

कौन मनुष्य पदार्थ विद्या को जानने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रांग्नी को अस्य वां देवौ मर्त्तश्चिकेतति ।
विषूंचो अश्वान् युयुजान ईयत एकः समान आ रथें ॥५॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको (कः) कौन (अस्य) इस जगत् के बीच वर्त्तमान (मर्त्तः) मनुष्य (विषूचः) व्याप्त (अश्वान्) शीघ्रगामी बिजुली आदि पदार्थों को (समाने) समान (रथे) विमान आदि यान में (युयुजानः) युक्त करता हुआ (एकः) एक विद्वान् (देवौ) दिव्यगुण कर्म स्वभावयुक्त (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली को (चिकेतति) जानता है वह (वाम्) तुम दोनों को (आ, ईयते) प्राप्त होता है ॥५॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! कौन यहां पदार्थ विद्या का जानने वाला, विमान आदि यानों का निर्माण करने वाला शीघ्रगामी हो, इसका उत्तर पीछे दिया यह तुम सुनो ॥५॥

बिजुली का जानने वाला क्या कर सकता है इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।

हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥६॥

पदार्थः—जो (जिह्वया) वाणी से (वावदत्) निरन्तर कहता है और जो (इयम्) यह (अपात्) पैररहित (पूर्वा) पूर्ण वा अग्रस्थ (पद्वतीभ्यः) पैरों से की हुई गतियों से (शिरः) शिर से तुल्य मुख्य वचन को (हित्वी) त्याग कर बिजुली (आ, अगात्) प्राप्त होती है तथा (त्रिंशत्) आकाश और प्रकाश को छोड़ कर सब भूमि आदि पदार्थ रूपी (पदा) स्थानों को (नि, अक्रमीत्) क्रम-क्रम से पहुँचती और शीघ्र (चरत्) चलती है इससे (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली को जानता है वही मनुष्य बिजुली की विद्या को जानने वाला होता है ॥६॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप यदि बिजुली की विद्या को अच्छे प्रकार ग्रहण करो तो सब यानों से शीघ्र जाने को तथा और काम सिद्ध कर सकते हो ॥६॥

कौन विजयी होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वोः ।

मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (नरः) नायक मनुष्य (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली को (आ, तन्वते) विस्तारते हैं और (बाह्वोः) भुजाओं में (हि) ही (धन्वानि) धनुषों को धारण कर (अस्मिन्) इस (महाधने) संग्राम में हम सब को विस्तारते हैं और (गविष्टिषु) किरणों की जिनमें मिलावटें हैं उन क्रियाओं में प्रवीण होते हुए

जैसे वायु और बिजुली (नः) हम लोगों को (मा, परा, वर्क्तम्) मत छोड़ें वैसा करते हैं उनको हम लोग मिलें ॥७॥

भावार्थः—जो राजा प्रजाजन बिजुली आदि से आग्नेयादि अस्त्रों को बनाय संग्राम के जीतने वाले होते हैं वे इस संसार में राज्यैश्वर्य्य से सुख बढ़ा सकते हैं ॥७॥

फिर विद्वान् जन किस-किस से बिजुली का संग्रह करें इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्राग्नी तपन्ति माघा अर्यो अरातयः ।

अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥८॥

पदार्थः—हे सभा सेनाधीशो जो (अरातयः) शत्रुजन (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली को (तपन्ति) तपाते हैं उनके (द्वेषांसि) द्वेषयुक्त कामों को (अप, कृतम्) नष्ट करो और (सूर्य्यात्) सवितृमण्डल से (अधि) ऊपर जाने वाली बिजुली को (आ, युयुतम्) अलग करो । हे राजन् (अर्यः) स्वामी आप इन शिल्पीजनों को (मा, अघाः) मत करो ॥८॥

भावार्थः—हे राजसहित राजप्रजा जनो ! जो आप लोग सूर्यादिकों से बिजुली ग्रहण करना जानो तो शत्रुजनों को जीतकर द्वेषीजनों के दूर करने को समर्थ होओ ॥८॥

कौन उत्तम धनको प्राप्त होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा ।

आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली के समान सभासेनाधीशो तुम यदि (इह) यहां (नः) हमारी (विश्वायुपोषसम्) समस्त आयु के पुष्ट करने वाले (रयिम्) धन को (प्र, आ, यच्छतम्) अच्छे प्रकार देओ तो (युवोः) तुम्हारे (अपि) भी (दिव्यानि) अतीव उत्तम (पार्थिवा) पृथिवी में उत्पन्न हुए (वसु) धन आधीन हों ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सभा सेनापति बिजुली की विद्या को जान कर तुम्हारे लिये देते हैं वे पूर्ण आयु करने वाले धर्म से प्राप्त समग्र ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥९॥

मनुष्य क्या करके बिजुली की विद्या जानें इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गंतमस्य सोमस्य पीतये ॥१०॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली के समान पदार्थों को जानते हुए (उक्थवाहसा) प्रशंसित विद्या की प्राप्ति कराने और (हवनश्रुता) हवनों को सुनने वालो ! तुम (स्तोमेभिः) प्रशंसाओं से और (विश्वाभिः) समस्त (गीर्भिः) विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वाणियों के साथ (अस्य) इस (सोमस्य) महौषधियों के रस के (पीतये) पीने को (आ, गतम्) आओ ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार हैं—वे ही बिजुली की विद्या को जानने योग्य होते हैं जो विद्वानों से विद्या पाने को प्रयत्न करते हैं ॥१०॥

इस सूक्त में इन्द्र और अग्नि के गुणों का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में उनसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चदशर्चस्य षष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्राग्नी देवते । १ । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ । ६ । ७ विराड्गायत्री । ५ । ९ । ११ निचृद्गायत्री । ८ । १० । १२ गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । १३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १४ निचृदनुष्टुप् । १५ विराडनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचावाले साठवें सूक्त का प्रारम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में कौन ऐश्वर्य को पाता है इस विषय को कहते हैं ॥

श्नथंद्वृत्रमुत संनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुंरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यंस्य भूरेः सहंस्तमा सहंसा वाजयन्ता ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो विद्वान् (सहुरी) सहनशील (इरज्यन्ता) ऐश्वर्य को सिद्ध करते हुए वा (सहस्तमा) अतीव सहन करने वाले (सहसा) बल से (वाजयन्ता) अन्नादिकों की इच्छा करते हुए (इन्द्रा, अग्नी) पवन और बिजुली को (श्नथत्) ताड़ता है (उत) और (सनोति) प्राप्त होता है तथा (वसव्यस्य) धनादि पदार्थों में हुए (भूरेः) बहुत सुख से (वृत्रम्) धन को प्राप्त होता है और (वाजम्) अन्न को (सपर्यात्) सेवे वही ऐश्वर्य को पावे ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो आप वायु और बिजुली की विद्या को जानो तो महान् ऐश्वर्य वाले होकर महान् राज्य के स्वामी होओ ॥१॥

मनुष्य क्या करके सुख पाते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः ।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥२॥

पदार्थ—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (अग्ने) विद्वान् वा आप (स्वः) आदित्य (उषसः) प्रभात वेलाओं को जैसे वैसे (गाः) पृथिवी और (नूनम्) निश्चय से (अपः) कर्म को (युवसे) संयुक्त करते हो और जिनसे (दिशः) दिशायें (ऊळ्हाः) प्राप्त हुई (ता) उनको जानकर तुम दोनों (अभि, योधिष्टम्) सब ओर से युद्ध करो। हे (इन्द्र) दुःखविदारक [दुःख के नाश करने वाले] वा (अग्ने) विद्वान् जन (नियुत्वान्) ईश्वर के समान न्यायाधीश आप (स्वः) आदित्य (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान (चित्राः) चित्र विचित्र (अपः) उदक (गाः) और वाणियों को संयुक्त करते हो इससे ईश्वर के समान न्यायकर्त्ता हो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो मनुष्य वायु और बिजुली के तुल्य पराक्रमी होकर युद्ध का आचरण करें वे उषाकाल को जैसे सूर्य उसी के समान प्रजाओं को न्याय से प्रकाश को प्राप्त कराय कर और सर्व दिशाओं में कीर्ति वाले हो अद्भुत वाणी, बलों और भूमि के राज्य को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर राजा जन कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) बिजुली के समान राजजन वा (अग्ने) अग्नि के समान सभ्यजन वायु और बिजुली के समान वर्त्तमान दोनों पुरुषो ! जैसे (वृत्रहणा) मेघ को हनने वाले बिजुली के दो भाग (वृत्रहभिः) उन कर्मों से जिन से मेघ को मारते वा (शुष्मैः) बलों से वा (नमोभिः) अन्नादि पदार्थों से (अर्वाक्) पीछे जाते हैं वैसे (युवम्) तुम दोनों (अकवेभिः) असंख्य (राधोभिः) धनों से हम लोगों को (आ, यातम्) प्राप्त होओ। हे (इन्द्र) दुष्टविदारक वा (अग्ने) पापियों को संतप्त करने वाले (उत्तमेभिः) श्रेष्ठ कर्मों से (अस्मे) हम लोगों के लिए सुख करने वाले (भवतम्) होओ ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो राजा और उसके राजमन्त्री वायु और विजुली के समान उपकारी हों वे असंख्य धन को प्राप्त हों ॥३॥

मनुष्यों को चाहिये कि वायु और विजुली को यथावत् जानें इस विषय को कहते हैं ॥

ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥४॥

पदार्थः—(ययोः) जिनका (इदम्) यह (विश्वम्) समस्त जगत् वा (पप्ने) जिन से प्रवृत्त हुए व्यवहार में जो(इन्द्राग्नी) वायु और विजुली (पुरा) पहिले (कृतम्) किये हुए इस विश्व को (न) नहीं (मर्धतः) नष्ट करते हैं (ता) उनको मैं (हुवे) ग्रहण करता हूं ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिन वायु और विजुली से सब जगत् व्यवहार करता है तथा जो ससार में स्थिर हो किसी को नष्ट नहीं करते हैं और विकार को प्राप्त हुए वे नष्ट करते हैं, मनुष्यों को चाहिये कि उनको जान कर यथावत् उपकार करें ॥४॥

फिर वायु और विजुली कैसे हैं इस विषय को कहते हैं ॥

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृळात ईदृशे ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो हम लोग (उग्रा) तेजस्वी (विघनिना) विशेष हनने वाले (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली को (हवामहे) ग्रहण करते हैं उनसे (मृधः) सग्रामों को जीतते हैं जो (ईदृशे) ऐसे युद्धप्रकारक व्यवहार में (नः) हम लोगों को (मृळातः) सुखी करते हैं (ता) उन दोनों को तुम भी जानो ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को वायु और बिजुली यथावत् जान और उनका संप्रयोग कर संग्रामों को जीत सुख पाना चाहिये ॥५॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को कहते हैं ॥

हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती । हतो विश्वा अप द्विषः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (आर्या) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त (सत्पती) सज्जन पुरुषों के व्यवहारों के पालने वाले सूर्य्य और विजुली (वृत्राणि) मेघ के अवयवों को जैसे वैसे (विश्वा) समस्त (द्विषः) शत्रुजनों को (अप, हतः) मारते हैं वा (दासानि) दानों को (हतः) नष्ट करते हैं वा दुःखों को (हतः) दूर करते हैं वे सत्कार करने योग्य हैं ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो श्रेष्ठ गुणकर्मस्वभाव वाले मनुष्य, सत्य

धर्मनिष्ठ, आप्त सज्जनों के पालने और दुष्टों को हरने वाले हों, उनका सदा सत्कार करो ॥६॥

फिर वे दोनों कैसे हैं इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्राग्नी युवामिमे३'भि स्तोमा अनूषत । पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥७॥

पदार्थः—हे (शम्भुवा) सुख की भावना कराने वाले (इन्द्राग्नी) सूर्य्य और बिजुली के समान सभासेनाधीशो (युवाम्) आप दोनों जो (इमे) ये (स्तोमाः) प्रशंसायें (अभि, अनूषत) प्रशंसा करती हैं उनसे (सुतम्) सब ओर से उत्पन्न किये हुए दूध आदि रस को (पिबतम्) पिओ ॥७॥

भावार्थः—हे सभासेनाधीशो ! आप लोग पथ्य आचार से सदा ओषधियों के रस को पीके अरोगी होकर प्रशंसित कर्मों को करो ॥७॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को कहते हैं ॥

या वां सन्ति पुरुस्पृहों नियुतों दाशुषें नरा ।
इन्द्राग्नी ताभिरा गंतम् ॥८॥

पदार्थः हे (नरा) नायक (इन्द्राग्नी) विद्या और ऐश्वर्य्ययुक्त अध्यापक और उपदेशको ! (वाम्) तुम दोनों की (या) जो (पुरुस्पृहः) बहुतों की चाहना करते जिनसे वे (नियुतः) निश्चित (सन्ति) हैं (ताभिः) उन इच्छाओं के (दाशुषे) दान देने वाले के लिये (आ, गतम्) आओ ॥८॥

भावार्थः—जो मनुष्य परोपकार करने की इच्छा करते हैं वे ही सत्पुरुष होते हैं ॥८॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

ताभिरा गंच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥९॥

पदार्थः—हे (नरा) नायक (इन्द्राग्नी) बिजुली और वायु के समान सज्जनो तुम दोनों (ताभिः) उन इच्छाओं से (सोमपीतये) सोमपान के लिये (इदम्) इस (सुतम्) अच्छे प्रकार संस्कार किये हुए (सवनम्) जिससे उत्पन्न करते हैं उसके (उप, आ, गच्छतम्) समीप प्राप्त होओ ॥९॥

भावार्थः—यजमान जन विद्वानों को बुलाकर सदैव सत्कार करें और सत्कार पाये हुए वे लोग भी यजमानों को धर्मपथ को प्राप्त करावें ॥९॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को कहते हैं ॥

तमींळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।

कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥१०॥

पदार्थः—हे विद्वान् जन जैसे सूर्य्य (अर्चिषा) सत्कार से (विश्वा) समस्त (वना) किरणों का (परिष्वजत्) सब ओर से संवन्ध करता है तथा (कृष्णा) पदार्थों की खीचों को (कृणोति) करता है वैसे (यः) जो (जिह्वया) जिह्वा से सत्य आचरण का सम्बन्ध करे (तम्) उसकी आप (ईळिष्व) प्रशंसा वा याचना करो ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे सूर्य्य के प्रकाश से सब पदार्थ यथावत् दीखते हैं वैसे ही विद्या से सब पदार्थ प्रकाशित होते हैं ॥१०॥

फिर मनुष्यों को किसके लिये क्या सेवन करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः ।

द्युम्नाय सुतरा अपः ॥११॥

पदार्थः—(यः) जो (मर्त्यः) मनुष्य (इद्ध) प्रदीप्त व्यवहार में (इन्द्रस्य) ऐश्वर्य के (द्युम्नाय) यश वा धन के लिये (सुतराः) सुन्दरता से जिन में तैरें उन (अपः) जलों को और (सुम्नम्) सुख को (आविवासति) सब ओर से सेवता है वह भाग्यवान् होता है ॥११॥

भावार्थः—मनुष्य जैसे प्रदीप्त अग्नि में सुगन्ध्यादि पदार्थों का हवि होमकर सिद्धकाम होते हैं वैसे जो यश से धर्मकीर्त्ति के वा स्वर्ग के लिये प्रयत्न करते हैं वे निरन्तर श्रीमान् होते हैं ॥११॥

फिर मनुष्यों को किससे क्या करने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः । इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जो (नः) हमारे लिये (वाजवतीः) प्रशस्त विज्ञानयुक्त (इषः) अन्नादि पदार्थों और (आशून्) शीघ्रगामी (अर्वतः) घोड़ों को (पिपृतम्) पूर्ण करते हैं (ता) उन (इन्द्रम्) बिजुली रूप अग्नि (अग्निम्, च) और प्रसिद्ध अग्नि को (वोळ्हवे) विमान आदि यानों को वहाने के लिये संग्रह करो ॥१२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम बिजुली आदि पदार्थों से विमान आदि यानों को चलाकर इच्छाओं को पूर्ण करो ॥१२॥

फिर शिल्पीजन उनसे क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

उभा वांमिन्द्राग्नी आहुवध्यां उभा राधंसः सह मांदयध्यैं ।
उभा दातारांविषां रयीणामुभा वाजंस्य सातयें हुवे वाम् ॥१३॥

पदार्थः—हे शिल्पविद्या के अध्यापक और उपदेश करने वालो जैसे (वाम्) तुम्हारे समीप स्थिर होकर (आहुवध्यै) आह्वान करने को (उभा) दोनों (इन्द्राग्नी) सूर्य्य और बिजुली को (राधसः) धन संबन्धी (मादयध्यै) आनन्द देने को (उभा) दोनों को (सह) एक साथ (उभा) और दोनों को (इषाम्) अन्नादि पदार्थों के वा (रयीणाम्) धनादि पदार्थों के (दातारौ) देने वाले तथा (उभा) दोनों को (वाजस्य) विज्ञान वा संग्राम के (सातये) संविभाग के लिए मैं (हुवे) स्वीकार करता हूं वैसे ही (वाम्) तुम दोनों को इस विद्या का बोध कराऊं ॥१३॥

भावार्थः—जो मनुष्य वायु और बिजुली को यथावत् जान के कार्यों में उनका अच्छे प्रकार प्रयोग करते हैं वे श्रीपति होते हैं ॥१३॥

फिर मनुष्यों को किन के साथ मित्रता करनी चाहिए इस विषय को कहते हैं ॥

आ नो गव्येंभिरश्व्यैर्वसव्यै३'रुपं गच्छतम् ।
सखायौ देवौ सख्यायं शंभुवेन्द्राग्नी ता हंवामहे ॥१४॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको (इन्द्राग्नी) सूर्य और बिजुली के समान वर्त्तमान वा (शम्भुवा) सुख की भावना करने वाले (देवौ) विद्वान् (सखायौ) मित्र (नः) हम लोगों को (सख्याय) मित्रता के लिए (गव्येभिः) गो घृत आदि पदार्थ (अश्व्यैः) अश्वादिकों में हुए गुणों और (वसव्यैः) धनादिकों में हुए सुखों के साथ वर्त्तमान तुम दोनों को हम लोग (हवामहे) बुलाते हैं (ता) वे तुम दोनों हम लोगों के (उप, आ, गच्छतम्) समीप आओ ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो मनुष्य विद्वानों के मित्र होकर पदार्थविद्या सिद्ध करने की इच्छा करते हैं वे अवश्य विज्ञान को प्राप्त होते हैं ॥१४॥

फिर वे दोनों क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजंमानस्य सुन्वतः ।
वीतं हव्यान्या गंतं पिबंतं सोम्यं मधुं ॥१५॥

पदार्थः—हे (इन्द्राग्नी) वायु और बिजुली के समान वर्त्तमान अध्यापक और

उपदेशको तुम दोनों (सुन्वतः) पदार्थविद्या से बहुत पदार्थों को उत्पन्न करते हुए (यजमानस्य) शुभ गुण देने वाले मेरे (हवम्) पढ़े विषय को (शृणुतम्) सुनो और (हव्यानि) उत्तम पदार्थों को (वीतम्) प्राप्त होओ वा व्याप्त होओ उनके समीप (आ, गतम्) आओ और (सोम्यम्) शान्ति शीतलता के जो योग्य है उस (मधु) मधुरादि युक्त रसको (पिबतम्) पिओ ॥१५॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को चाहिये कि आमन्त्रण से विद्वानों को बुलाकर इनका सत्कार कर इनसे अपनी विद्या की परीक्षा कराय अधिक विद्या ग्रहण करें ॥१५॥

इस सूक्त में इन्द्र और अग्नि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में साठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्दशर्चस्यैकषष्टितमस्य सूक्तस्य बार्हस्पत्य ऋषिः । सरस्वती देवता । १ । १३ निचृज्जगती । २ जगती । ३ विराड्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ४ । ९ । ११ । १२ निचृद्गायत्री । ५ । ६ । १० विराड् गायत्री । ७ । ८ गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः । १४ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब चौदह ऋचावाले इकसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मंत्र में यह वाणी क्या देती है इस विषय को कहते हैं ॥

इयमंददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥१॥

पदार्थः- हे (सरस्वति) विदुषी (या) जो (इयम्) यह (वध्र्यश्वाय) बढ़ाने वाले घोड़ों से युक्त (दाशुषे) दानशील के लिए (रभसम्) वेग (ऋणच्युतम्) ऋण से छूटे (दिवोदासम्) विद्या प्रकाश के देने वाले को (अददात्) देती है तथा (शश्वन्तम्) अनादि वेदविद्याविषय जो कि (अवसम्) रक्षक तथा (पणिम्) प्रशंसनीय है उसको (आचखाद) स्थिर करती है वह (ते) आपके (तविषा) बल से (ता) उन (दात्राणि) दानों को देती है यह जानो ॥१॥

भावार्थः जो स्त्री विद्या शिक्षायुक्त वाणी को ग्रहण कराती है वह अनादिभूत वेदविद्या को जानने योग्य होती है वह जिसके साथ विवाह करे उसका अहोभाग्य होता है यह जानने योग्य है ॥१॥

फिर वह क्या करती है इस विषय को कहते हैं ॥

इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानुं गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जो (इयम्) यह (शुष्मेभिः) बलों से (बिसखाइव) कमल के तन्तु को खोदने वाले के समान (तविषेभिः) बलों और (ऊर्मिभिः) तरङ्गों से (गिरीणाम्) मेघों के (सानु) शिखर को (अरुजत्) भङ्ग करती है उस (पारावतघ्नीम्) आरपार को नष्ट करने वाली (सरस्वतीम्) वेगवती नदी को (धीतिभिः) धारण और (सुवृक्तिभिः) छिन्नभिन्न करने वाली क्रियाओं से (अवसे) रक्षा के लिए जैसे हम लोग (आ, विवासेम) सेवें वैसे तुमभी इसको सदा सेवो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जैसे कमलनाल तन्तुओं को खोदने वाला कमलनाल तन्तुओं को प्राप्त करता है वैसे ही पुरुषार्थी मनुष्य उत्तम विद्या को प्राप्त होते हैं और जैसे बिजुली मेघ के अंगों को छिन्न भिन्न करती है वैसे ही सुन्दर शिक्षित वाणी अविद्या के अंगों और सशयों को नाश करती है ॥२॥

फिर वह क्या करती है इस विषय को कहते हैं ॥

सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः ।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥३॥

पदार्थः—हे (वाजिनीवति) विज्ञान, क्रिया और (सरस्वति) विद्यायुक्त स्त्री तू (देवनिदः) जो विद्वानों की निन्दा करते हैं उनको (नि, बर्हय) निकाल (उत) और (विश्वस्य) समग्र (बृसयस्य) अविद्या छेदन करने वाले (मायिनः) प्रशंसित बुद्धियुक्त विद्वान् की (प्रजाम्) प्रजा को (अविन्दः) प्राप्त हो तथा (क्षितिभ्यः) पृथिवियों से (अवनीः) रक्षा करने वाली भूमियों को प्राप्त हो और (एभ्यः, इन भूमि के भीतरी देशों से (विषम्) जल को (अस्रवः) चुआओ—निकालो ॥३॥

भावार्थः—वही पंडिता स्त्री श्रेष्ठ है जो विद्वानों और विद्या के निन्दकों को निकाल विद्या के प्रशंसकों (बड़ाई करनेवालों) का सत्कार करती और जो भूगर्भादि विद्या जानने वाली समस्त प्रजा को विद्याऽभिमुख करती है ॥३॥

फिर वह कैसी रक्षा करने वाली है इस विषय को कहते हैं ॥

प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । धीनामवित्र्यवतु ॥४॥

पदार्थः—हे सन्तानो जो (देवी) विदुषी (वाजेभिः) अन्नादिकों के साथ (वाजिनीवती) प्रशस्तविज्ञान वा क्रिया से युक्त वा (सरस्वती) विज्ञानयुक्त वाणी से युक्त (नः) हमारी (धीनाम्) बुद्धियों की (अवित्री) रक्षा करने वाली (प्र अवतु) अच्छे प्रकार रक्षा करे उसको तुम स्वीकार करो ॥४॥

भावार्थः—माताजनों को चाहिये कि अपने सन्तानों को बाल्यावस्था में अच्छी शिक्षा देकर विद्या से विद्वान् कर उनके साथ अतुल सुख भोगें ॥४॥

फिर वह किसके तुल्य क्या करती है इस विषय को कहते हैं ॥

यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते । इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥५॥

पदार्थः हे (देवि) विदुषी (सरस्वति) विज्ञानयुक्ता भार्या (यः) जो (त्वा) तुझे (वृत्रतूर्ये) मेघ के हिंसन में (इन्द्रम्) बिजुली के (न) समान (हिते) सुख करने वाले (धने) द्रव्य के निमित्त (उपब्रूते) कहता है उस विद्वान् पति की तू सेवा कर ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे पुरुषो ! जैसे पतिव्रता विदुषी स्त्रियां तुम लोगों को सत्य ग्रहण कराकर प्रिय वचन कहती हैं वैसे इनके साथ तुमभी हित कहो ॥५॥

फिर वह क्या करती है इस विषय को कहते हैं ॥

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि । रदा पूषेव नः सनिम् ॥६॥

पदार्थः - हे (देवि) कामना करने वाली (वाजिनि) प्रशस्तविज्ञानयुक्त (सरस्वति) विदुषी स्त्री (त्वम्) तू (नः) हमारी (सनिम्) सत्य और असत्य के विभाग करने वाली बुद्धि को (वाजेषु) प्राप्तव्य पदार्थों में (पूषेव) भूमि के समान (अवा) पालो और (रदा) विशेषता से लिखो ॥६॥

भावार्थः—हे वरानने सुन्दर मुखवाली ! तू पृथिवी के समान सबका धारण कर और प्रज्ञा दे ॥६॥

फिर वह कैसी है इस विषय को कहते हैं ॥

उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्त्तनिः ।
वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (हिरण्यवर्त्तनिः) जिसमें विद्याव्यवहार का वर्त्ताव है वह (घोरा) दुष्टों को दुःख देने वाली (वृत्रघ्नी) मेघ को हनने वाली बिजुली के

समान (सरस्वती) विज्ञान भरी हुई वाणी (नः) हम लोगों को सुखी करती है (स्या) वह (उत) भी हमारी (सुष्टुतिम्) सुन्दर प्रशंसा की (वष्टि) कामना करती है ॥७॥

भावार्थः—जो बिजुली की चमक दमक के समान सुन्दर शोभा वाली विदुषी स्त्री घर के कार्यों का प्रकाश करनेवाली तथा सन्तानों की विद्या की कामना करती है वही यहाँ सौभाग्यवती होती है ॥७॥

फिर वह वाणी कैसी है इस विषय को कहते हैं ॥

यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः । अमश्चरति रोरुवत् ॥८॥

पदार्थः हे मनुष्यो (यस्याः) जिस वाणी का (अह्रुतः) अकुटिल सरल (त्वेषः) प्रकाश वा (चरिष्णुः) जाने वाले (अनन्तः) निःसीम (अर्णवः) समुद्र के तुल्य आकाश (रोरुवत्) निरन्तर शब्द करता वा (अमः) फैलनेवाला (चरति) प्राप्त होता है उसको तुम जानो ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जितना आकाश है उतना ही शब्द अनन्त है जैसे समुद्र में जल पूरा है वैसे आकाश में शब्द है यह जानो ॥८॥

फिर वह कैसी है इस विषय को कहते हैं ॥

सा नो विश्वा अति द्विषः स्वसॄरन्या ऋतावरी ।
अतन्नहेव सूर्यः ॥९॥

पदार्थः— हे मनुष्यो (सा) वह (ऋतावरी) उषा [प्रभातवेला] (नः) हमारे (विश्वाः) समस्त (द्विषः) द्वेषी जनों को (अति) अतिक्रमण [उल्लंघन] कराती है और (सूर्यः) सूर्य (अहेव) दिनों को जैसे (अतन) व्याप्त होता वैसे (अन्याः) और (स्वसॄः) भगिनियों के समान वर्त्तमान गत विगत प्रभातवेलाओं का संयोग करती है ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जो वाणी अच्छे प्रकार प्रयोग की हुई सुख और अन्यथा कही हुई दुःख प्रदान करती है। जो सत्यवादी हैं वे ही मिथ्या कहना नहीं चाहते जैसे सूर्य समस्त मूर्त्तिमान् द्रव्यों को प्रकाशित करता है वैसे ही यह वाणी सब व्यवहारों को प्रकाशित करती है ॥९॥

फिर वह कैसी है इस विषय को कहते हैं ॥

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।
सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (नः) हमारी (सरस्वती) वह सरस्वती जिसको बहुत अन्तरिक्ष का संबन्ध है तथा (प्रियासु) सुख देनेवाली क्रियाओं वा स्त्रियों में (प्रिया) मनोहर (सप्तस्वसा) जिसके सात अर्थात् पांच प्राण मन और बुद्धि बहिन के समान वर्त्तमान तथा (सुजुष्टा) अच्छे प्रकार सेवित की हुई (उत) और (स्तोम्या) स्तुति करने योग्य (भूत्) हो वैसे तुम्हारी भी हो ॥१०॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब ओर से शुद्धि करनेवाली सत्य वाणी को जानते हैं वे ही प्रशंसा करने योग्य होते हैं ॥१०॥

फिर वह कैसी और क्या करती है इस विषय को कहते हैं ॥

आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् । सरस्वती निदस्पातु ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (पार्थिवानि) अन्तरिक्ष में प्रसिद्ध हुए वा विदित हुए (उरु) बहुत (रजः) परमाणु आदि पदार्थों को तथा (अन्तरिक्षम्) आकाश को (आपप्रुषी) सब ओर से व्याप्त (सरस्वती) विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त वाणी हम लोगों को (निदः) निन्दकों से (पातु) बचावे ॥११॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो वाणी सर्वत्र आकाश में व्याप्त है उसको जान के इससे किसी की भी निन्दा अर्थात् गुणों में दोषारोपण और दोषों में गुणारोपण कभी न करो ॥११॥

फिर वह क्या करती है इस विषय को कहते हैं ॥

त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती ।
वाजेवाजे हव्या भूत् ॥१२॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (त्रिषधस्था) तीन समान स्थानों में स्थित (सप्तधातुः) सात प्राण आदि जिसकी धारणा करने वाले (पञ्च) पांच प्राणों से (जाता) प्रसिद्ध (वाजेवाजे) प्रत्येक व्यवहार वा प्रत्येक संग्राम में (हव्या) उच्चारण करने योग्य (वर्धयन्ती) वृद्धि को प्राप्त कराती (भूत्) हो उसका युक्ति के साथ अच्छे प्रकार प्रयोग करो ॥१२॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन वाणी के योग को जानते हैं तो क्या क्या बढ़ा नहीं सकते हैं ॥१२॥

फिर वह कैसी है इस विषय को कहते हैं ॥

प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।
रथइव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥१३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (या) जो (महिम्ना) बड़प्पन से (महिना) बड़ी (अपसाम्) कर्म करने वालों में (अपस्तमा) अतीव कर्म करने वाली और (रथइव) रमणीय आकाश के समान (बृहती) बढ़ती हुई (विभ्वने) विभुत्व के लिये (चिकितुषा) समझाने वाली (उपस्तुत्या) जिससे कि समीप स्तुति करता उससे (कृता) जगदीश्वर ने उत्पन्न किई (सरस्वती) जिसमें विज्ञान वर्त्तमान वह वाणी (द्युम्नेभिः) प्रकाश जो यशरूप हैं उनसे (अन्याः) प्रत्येक प्राणी के प्रति भिन्न भिन्न है अर्थात् नाना प्रकार वाणी हैं (आसु) उनमें जो (प्र, चेकिते) विज्ञान कराती उसको यथावत् जानके सत्य वाणी का अच्छे प्रकार प्रयोग करो ॥१३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! विद्या, सुशिक्षा, सत्संग, सत्यभाषण और योगाभ्यासादिकों से निष्पन्न हुई यह वाणी व्याप्त वा समर्थ है उसको तुम जानो ॥१३॥

फिर वह कैसी है इस विषय को कहते हैं ॥

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो मापं स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्वं नः सख्या वेश्यां च मा त्वत्क्षेत्राण्यरंणानि गन्म ॥१४॥

पदार्थः—हे (सरस्वति) बहुत विद्या से युक्त विदुषी स्त्री जो तू (नः) हमारे (वस्यः) अतीव ओढ़ने योग्य वस्त्र आदि को (अभि, नेषि) सम्मुख लाती है सो तू सुशिक्षित वाणी से हीन हम लोगों को (मा) मत (अप, स्फरी) अवृद्ध करे किन्तु वृद्धियुक्त करे और (पयसा) विशेष रस से अलग कर (नः) हम लोगों को (मा, आ, धक्) मत दाह दे और (वेश्या) समीप प्रवेश करने योग्य (सख्या) मित्रपन से (च) भी (नः) हम लोगों को (जुषस्व) सेवे तथा (त्वत्) तेरे (अरणानि) अरमणीय (क्षेत्राणि) निवासस्थानों को हम लोग (मा, गन्म) मत प्राप्त हों इससे तू सत्कार करने योग्य है ॥१४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो विदुषी स्त्रियां—जैसे विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त वाणी सर्वत्र अच्छे प्रकार रक्षाकर सर्वथा वृद्धि देती है वा जो सत्यभाषण आदि से दुःख को नहीं प्राप्त कराती उसके तुल्य वर्त्तमान हैं वे हम लोगों को शोकादिकों से अलग कर मित्रता से अच्छे प्रकार सेवन करतीं और सर्वदैव आनन्दित करती हैं ॥१४॥

इस सूक्त में वाणी के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में इकसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

* ओ३म् *

अथर्ग्वेदे पञ्चमाऽष्टकारम्भः ॥

—:०॥:०॥:०॥:०॥:—

अब ऋग्वेद में पञ्चमाष्टक का आरम्भ है ॥

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथैकादशर्चस्य द्विषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ । २ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ४ । ६ । ७ । ८ । १० निचृत्त्रिष्टुप् । ५ । ९ । ११ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब बिजुली और अन्तरिक्ष कैसे हैं इस विषय को कहते हैं ॥

स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ताश्विना हुवे जरमाणो अर्कैः ।
या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो अन्तान्युयूषतः पर्युरू वरांसि ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (जरमाणः) स्तुति करता हुआ मैं (अर्कैः) मन्त्रों से (या) जो (व्युषि) विशेष दाह के निमित्त (उस्रा) जिनकी किरणें विद्यमान वे (प्रसन्ता) विभाग करने वाले (नरा) नायक (अश्विना) व्यापनशील बिजुली और अन्तरिक्ष (अस्य) इस (दिवः) प्रकाश के तथा (ज्मः) पृथिवी के (अन्तान्) समीपस्थ पदार्थों को (उरु) बहुत (वरांसि) उत्तम वस्तुओं को (सद्यः) शीघ्र (परि, युयूषतः) अच्छे प्रकार अलग-अलग करते उनकी (स्तुषे) स्तुति करता हूं तथा (हुवे) ग्रहण करता हूं वैसे इनकी स्तुति कर तुम भी ग्रहण करो ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अन्तरिक्ष और विद्युत् सर्वाधिकरण और सब पदार्थों के बीच ठहरे हुए वर्त्तमान हैं उनके बीच बिजुली विभाग करने वाली और अन्तरिक्ष आधार वर्त्तमान है उनके गुणों को सब जानो ॥१॥

फिर वे दोनों कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः ।
पुरू वरांस्यमिता मिमानापो धन्वान्यति याथो अज्रान् ॥२॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको ! तुम जो (शुचिभिः) पवित्र गुणों से (यज्ञम्) सर्वसंगत व्यवहार को (आ, चक्रमाणा) आक्रमण करते हुए (रथस्य) रमणीय जगत् के (भानुम्) प्रकाश करने वाले को प्रकाश करने वाले वा (रजोभिः) परमाणु वा लोकों के साथ (पुरु) बहुत (अमिता) अपरिमित (वरांसि) स्वीकार करने योग्य पदार्थों को (मिमाना) निर्माण करने वाले वा (अपः) जल जो (धन्वानि) अन्तरिक्षस्थ हैं उनको और (अज्रान्) प्रक्षिप्त पदार्थों को (याथः) प्राप्त होते और जिनसे सब (रुरुचुः) रुचते हैं (ताः) उनको (अति) अत्यन्त प्राप्त होते हो ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! यदि तुम वायु और विजुली को यथावत् जानो तो अमित आनन्द को प्राप्त होओ ॥२॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ता ह त्यद्वर्तिर्यदरध्रमुग्रेत्था धियं ऊहथुः शश्वदश्वैः ।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (यत्) जो (उग्रा) तेजस्वी वायु और विजुली (अश्वैः) महान् वेगादि गुणों से वा (इषिरैः) प्राप्त (मनोजवेभिः) मनोवद्वेगवानों से (दाशुषः) दानशील (मर्त्यस्य) मनुष्य के (त्यत्) उस (वर्त्तिः) मार्ग को तथा (अरध्रम्) असमृद्ध व्यवहार और (धियः) बुद्धि वा कर्मों को (शश्वत्) निरन्तर (ऊहथुः) चलाते हैं वा (शयध्यै) सोनेको (व्यथिः) व्यथा को (ह) निश्चय से (परि) पहुंचाते हैं (ता) उनको (इत्था) इस प्रकार के वर्त्तमान जानकर तुम अच्छे प्रकार प्रयुक्त करो अर्थात् कलायंत्रों में जोड़ो ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जब तम वायु और विजुली के गुणों को जानोगे तभी पूर्ण ऐश्वर्य को पाओगे ॥३॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को कहते हैं ॥

ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोप भूषतो युयुजानसप्ती ।
शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग्युवाना ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (युयुजानसप्ती) वेग वा आकर्षणयुक्त होनेवाले हैं वे (युवाना) संयुक्त होने वाले वायु विजुली (नव्यसः) अतीव नवीन (जरमाणस्य) प्रशंसा करनेवाले के (मन्म) विज्ञान को (उप भूषतः) पूर्ण करते हैं वा जो (शुभम्) उदक (पृक्षम्) अन्न (इषम्) इच्छा और (ऊर्जम्) पराक्रम को (वहन्ता) पहुंचाने वालों को (अध्रुक्) किसी से न द्रोह करनेवाला (प्रत्नः) जिसने पहिले विद्या पढ़ी

वह (होता) ग्रहण करनेवाला पुरुष (यक्षत्) प्राप्त हो (ता) उनको तुम भी प्राप्त होओ ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो वायु और बिजुली विज्ञान के विषय, घोड़े के समान शीघ्र जाने वाले और सब उत्तम उत्तम पदार्थों की प्राप्ति कराने वाले हैं उनसे चाहे हुए कार्य्यों को सिद्ध करो ॥४॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को कहते हैं ॥

ता वल्गू दस्रा पुरुशाकंतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे ।
या शंसते स्तुवते शम्भविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्रराती ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे मैं (या) जो (वल्गू) अत्युत्तम (दस्रा) दुःख को नष्ट करने वाले (प्रत्ना) प्राचीन (नव्यसा) अत्यन्त नवीन (वचसा) परिभाषण करने योग्य (पुरुशाकतमा) अतीव सामर्थ्यवाले (चित्रराती) जिनसे अद्भुत दान होता वे (शंसते) प्रशंसा करने वाले (स्तुवते) वा प्रशंसा पाये हुए वा (गृणते) सत्य उपदेश करने वाले के लिये (शम्भविष्ठा) अतीव सुख की भावना कराने वाले (बभूवतुः) होते हैं (ता) उनकी (आ, विवासे) सेवा करता हूं वैसे उनकी तुमभी सेवा करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जो वायु और बिजुली कारणरूप से सनातन और कार्यरूप से नूतन, बहुत शक्तिमान्, वेगादि गुणयुक्त, कल्याणकारी वर्त्तमान हैं उनको यथावत् जानो ॥५॥

फिर उनसे क्या सिद्ध होता है इस विषय को कहते हैं ॥

ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वानो जो बिजुली और वायु (विभिः) पक्षियों के समान (अद्भ्यः) जलों वा (समुद्रात्) सागर वा अन्तरिक्ष वा (अर्णसः) जल के (उपस्थात्) समीप स्थित होनेवाले से (पतत्रिभिः) गमनशीलों के समान (अरेणुभिः) रज जिनमें नहीं उन (योजनेभिः) अनेक योजनों से युक्त (रजोभिः) ऐश्वर्यप्रद मार्गों से (तुग्रस्य) बलिष्ठ की (सूनुम्) संतान के समान वर्त्तमान को (निः, ऊहथुः) निरन्तर पहुंचाते और (भुजन्ता) पालन करने वाले (भुज्युम्) भोगने योग्य आनन्द को पालना करते हैं (ता) उनको तुम जानो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जो बिजुली और वायु विमान आदि यानों को अन्तरिक्ष में पक्षियों के समान चलाने वाले वेग से पहुंचाते हैं उनको समीपस्थ कर अभीष्ट सुखों को प्राप्त होओ ॥६॥

फिर उनसे क्या होता है इस विषय को कहते हैं ॥

वि जयुषा रथ्या यातमाद्रिं श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः ।
दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गामिति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू ॥७॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक सज्जनो ! (वध्रिमत्याः) जिसमें बहुत वर्धन विद्यमान उस भूमि वा अन्तरिक्ष के बीच (जयुषा) जयशील (रथ्या) रथ के लिये हितकारी (वृषणा) वर्षा तथा (दशस्यन्ता) बल कराने वाले (अद्रिम्) मेघ को (वि, यातम्) विशेषता से प्राप्त होते हैं और (सुमतिम्) सुन्दर मति को (च्यवाना) शीघ्र जाने वाले (भुरण्यू) पालना वा धारण कर्त्ता (गाम्) वाणी को (इति) इस प्रकार से (शयवे) सोने के लिये (पिप्यथुः) बढ़ाते हैं उनके (हवम्) विद्या विषयक शब्द को तुम (श्रुतम्) सुनो ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो विमान आदि को चलाने वा संग्राम में जय कराने वा प्रज्ञा और बल के देने, वर्षा करने वाले तथा सोने जागने और वाणी के हेतु हैं उनको जान कार्यसिद्धि के लिये अच्छे प्रकार प्रयोग करो ॥७॥

फिर मनुष्य क्या धारण करें इस विषय को कहते हैं ॥

यद्रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा ।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुरघं दधात ॥८॥

पदार्थः—हे (वसवः) पृथिवी आदि (रुद्रियासः) प्राण वा जीव वा (आदित्याः) काल के अवयवों के समान प्रथम मध्यम और उत्तम विद्वानो ! तुम (यत्) जो (प्रदिवः) उत्तम प्रकाश के वा (देवानाम्) विद्वानों के सम्बन्ध में (उत) और (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में (भूमा) व्यापक (हेळः) अनादर (रोदसी) द्यावापृथिवी को प्राप्त (अस्ति) है और जैसे उक्त प्रकार के विद्वान् जन (तत्) उसको (दधात) धारण करते हैं वैसे (रक्षोयुजे) दुष्टों के युक्त करने वाले के लिये (तपुः) सन्ताप और (अघम्) अपराध को धारण करो ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त, सब को धारण करने वा

सब का नियम करने वाला है उसको धारण कर और अच्छे प्रकार ध्यान कर सुखी होओ और जो ऐसा नहीं करता है उस पर कठोर दण्ड धरो ॥८॥

फिर वह क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

य ईं राजानावृतुथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (यः) जो (मित्रः) मित्र वा (वरुणः) शमादिगुण युक्त जन (गम्भीराय) गम्भीर (आनवाय) सब ओर से नवीन (वचसे) वचन के लिये (चित्) और (द्रोघाय) द्रोह तथा (रक्षसे) दुष्ट आचरण वाले के लिये (अस्य) इसके ऊपर (हेतिम्) वज्र को (रजसः) और लोकजात के (ऋतुथा) ऋतुओं से (राजानौ) प्रकाशमामान सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य सभासेनापति को (विदधत्) विधान करता हुआ (ईम्) सब ओर से (चिकेतत्) जानता है उसको तुम उत्साह देओ ॥९॥

भावार्थः—जैसे सूर्य्य चन्द्रमा ऋतुओं को बांट और अन्धकार निवारण कर जगत् को सुखी करते हैं वैसे ही विद्यादि शुभगुणों का प्रचार संसार में अच्छे प्रकार समर्थन, सत्य और असत्य का विभाग और अविद्यान्धकार का निवारण कर विद्वान् जन सबको आनन्दित करते हैं ॥९॥

फिर सभासेनापति जगत् के उपकार के लिये क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन ।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥१०॥

पदार्थः- जो राजा लोग (अन्तरैः) भिन्न भिन्न (चक्रैः) लोकों के घूमने के लिये परिधियों से वर्त्तमान (द्युमता) प्रकाशमान् (नृवता) जिसमें उत्तम नर विद्यमान उस (रथेन) रमणीय विमानादि यान वा (सनुत्येन) प्रेरणा करने योग्य के साथ वर्त्तमान (त्यजसा) त्याग के साथ (मर्त्यस्य) मनुष्य के (तनयाय) पुत्र के लिये (वर्तिः) मार्ग को (आ, यातम्) प्राप्त होवें और मार्ग का विधान कर (वनुष्यताम्) क्रोध करने वा बाधा वालों के (शीर्षा) शिरों को (अपि) भी (ववृक्तम्) छिन्न भिन्न करें उनका सबको सत्कार करना चाहिये ॥१०॥

भावार्थः—यदि सभासेनापति मनुष्य सन्तानों का ब्रह्मचर्य्य और विद्याभ्यास आदि का प्रबन्ध करें तो सब विद्वान् होकर अनेक उत्तम कार्य करने और दुष्टों तथा शत्रुओं के निवारने को समर्थ हों ॥१०॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

आ पर॒माभि॑रु॒त म॑ध्य॒माभि॑र्नि॒युद्भि॑र्यातमव॒माभि॑र॒र्वाक् ।
दृ॒ळ्हस्य॑ चि॒द् गोम॑तो॒ वि व्र॒जस्य॒ दुरो॑ वर्तं गृण॒ते चि॑त्रराती ॥११॥

पदार्थः- हे (चित्रराती) अद्भुत दान वाले सभासेनाधीशो ! तुम (अवमाभिः) निकृष्ट (मध्यमाभिः) मध्यम (उत) और (परमाभिः) उत्तम (नियुद्भिः) वायु की गतियों से (आ, यातम्) आओ तथा (अर्वाक्) पीछे (दृळ्हस्य) अति पुष्ट के (चित्) भी (गोमतः) बहुत गौयें वा किरणें जिसमें विद्यमान उस (व्रजस्य) मेघ के (दुरः) द्वारों को (गृणते) स्तुति करने वाले के लिये (वि, वर्त्तम्) विशेषता से वर्त्ताओ ॥११॥

भावार्थः—हे राज प्रजाजनो ! जैसे सब भूगोल वायु की गतियों के साथ जाते आते हैं और जैसे शिल्पीजन विमान से मेघमण्डल पर जाते हैं वैसे ही तुम भी अनुष्ठान करो ॥११॥

इस सूक्त में अश्वियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में बासठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकादशर्चस्य त्रिषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । अश्विनौ देवते । १ स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । २ । ४ । ६ । ७ पङ्क्तिः । ३ । १० भुरिक्पङ्क्तिः । ८ स्वराट् पङ्क्तिः । ११ आसुरीपङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५ । ९ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब एकादश ऋचावाले तिरसठवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में सभासेनापति किसको प्राप्त होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

क्व १॑ त्या व॒ल्गू पु॑रुहू॒ताद्य दू॒तो न स्तोमो॑ऽविद॒न्नम॑स्वान् ।
आ यो अ॒र्वाङ् नास॑त्या व॒वर्त॒ प्रेष्ठा॒ ह्यस॑थो अस्य॒ मन्म॑न् ॥१॥

पदार्थः—हे (वल्गू) शोभन वाणी वाले (पुरुहूता) बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त (प्रेष्ठा) अतीव प्रिय (नासत्या) सत्यस्वभावयुक्त सभासेनाधीशो (यः) जो (अर्वाक्) नीचे जाने वाला (अद्य) आज (नमस्वान्) बहुत अन्नयुक्त वा सत्कृत (स्तोमः) स्तुति करने योग्य (दूतः) समाचार पहुँचाने वाले के (न) समान जन (अविदत्) प्राप्त होता

वा (क्व) कहां (अस्य) इसके (मन्मन्) विज्ञान में जो (आ, ववर्त्त) अच्छे प्रकार वर्त्तमान है (त्या, हि) वे ही तुम दोनों (असथः) होते हो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो इस जगत् के विज्ञान के निमित्त प्रयत्न करते हैं वे कहीं भी दुःखित नहीं होते हैं ॥१॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः ।
परि ह त्यद्वर्त्तिर्याथो रिषो न यत्परो नान्तरस्तुतुर्यात् ॥२॥

पदार्थः—हे सभासेनाधीशो तुम (त्यत्) उस (वर्तिः) मार्ग को (परि, याथः) सब ओर से जाते हो (यत्, ह) जिसमें (परः) शत्रुजन (अन्तरः) भिन्न (रिषः) हिंसकों के (न) समान किसी को (न) न (तुतुर्यात्) मारे (यथा) जैसे (मे) मेरे (अस्मै) इस (हवनाय) ग्रहण के लिये (अरम्) पूर्णतया (गन्तम्) जाओ वैसे (गृणाना) स्तुति करने वाले होते हुए (अन्धः) रस को (पिबाथः) पिओ ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—राजजनों से वैसा प्रवन्ध किया जाय जैसे मार्गों में कोई भी चोर और शत्रु किसी को पीड़ा न दे ॥२॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम् ।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ॥३॥

पदार्थः—हे सभासेनाधीशो जो (युवयुः) तुम दोनों की इच्छा करनेवाला (उत्तानहस्तः) ऊपर को हाथ उठाये हुए (वरीमन्) अतीव उत्तम व्यवहार में (वाम्) तुम दोनों से (अन्धसः) अन्न आदि के सम्बन्ध में (सुप्रायणतमम्) उत्तमता से जाते हैं जिसमें वह (बर्हिः) अन्तरिक्ष (अकारि) प्रसिद्ध किया जाता वा दुःख से (अस्तारि) तारा जाता उसको जानके (ववन्द) वन्दना करता है, जो विद्यादि शुभगुणों में (नक्षन्तः) प्राप्त होते हुए (अद्रयः) मेघों के समान (वाम्) तुम दोनों की (आ, आञ्जन्) अच्छे प्रकार कामना करते हैं उनकी तुम दोनों कामना करो ॥३॥

भावार्थः—जो होम से वायु आदि पदार्थों को शुद्धकर विमान आदि यानों से अन्तरिक्ष में जाते तथा सुख और उत्तम गुणों को व्याप्त होते हुए मेघ के समान सबके सुख और उन्नतियों को चाहते हैं वे उत्तम सुख पाते हैं ॥३॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

ऊर्ध्वो वा॑म॒ग्निर॑ध्व॒रेष्व॑स्था॒त्प्र रा॒तिरे॑ति जू॒र्णिनी॑ घृ॒ताची॑ ।
प्र होता॑ गू॒र्तम॑ना उरा॒णोऽयु॑क्त॒ यो नास॑त्या॒ हवी॑मन् ॥४॥

पदार्थः—हे (नासत्या) सत्य व्यवहारयुक्त सभासेनाधीशो (वाम्) तुम दोनों का यदि (यः) जो (गूर्तमनाः) उद्यम करने को मन जिसका वह (उराणः) बहुत पदार्थ सिद्ध करनेवाला (होता) दानशीलजन (अध्वरेषु) अहिंसादि धर्मयुक्त व्यवहारों में (ऊर्ध्वः) ऊपर जाने वाला (अग्निः) अग्नि के समान (अस्थात्) स्थिर होता है और (घृताची) रात्रि के समान (जूर्णिनी) वेगवती (रातिः) दानक्रिया (प्र, एति) प्राप्त होती है वा (हवीमन्) होम कर्म में (प्र, अयुक्त) अच्छे प्रकार प्रयुक्त होता उसका सदा सत्कार करो ॥४॥

भावार्थः—हे सभासेनाधीशो ! जो मनुष्य राजव्यवहार में सत्य और उत्साह से प्रवृत्त होते हैं उनका सत्कार आप लोग करें ॥४॥

फिर वे किसके समान कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

अधि॑ श्रि॒ये दु॑हि॒ता सूर्य॑स्य॒ रथं॑ तस्थौ पुरुभुजा श॒तोति॑म् ।
प्र मा॒याभि॑र्मायिना भूतम॒त्र नरा॑ नृतू॒ जनि॑मन्य॒ज्ञिया॑नाम् ॥५॥

पदार्थः—हे (मायिना) प्राज्ञ (पुरुभुजा) बहुतों की पालना करनेवाले (नृतू) अग्रगन्ता (नरा) नायक राजसभा सेनाधीशो तुम (मायाभिः) बुद्धियों से (अत्र) इस (यज्ञियानाम्) सत्संगति के योग्य मनुष्यों के (जनिमन्) जन्म में जैसे (सूर्य्यस्य) सूर्य की (दुहिता) पुत्री के समान उषा (शतोतिम्) जिससे सैकड़ों रक्षायें होतीं उस (रथम्) रमणीय किरण के (अधि, तस्थौ) ऊपर स्थित होती वैसे (श्रिये) शोभा वा लक्ष्मी के लिये (प्र, भूतम्) समर्थ होओ ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है जो उषा के समान यानादि साधनों से राज्यश्री की प्राप्ति के लिये विद्वानों के विद्याजन्म को कराते हैं वे असंख्य रक्षा को प्राप्त होके इस जगत् में अधिष्ठाता होते हैं ॥५॥

फिर राजादि किसके लिये किसको प्राप्त होके कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

यु॒वं श्री॒भिर्द॑र्श॒ताभि॑रा॒भिः शु॒भे पु॒ष्टिमू॑हथुः सू॒र्याया॑ः ।
प्र वां॒ वयो॒ वपु॒षेऽनु॑ पप्त॒न्नक्ष॒द्वाणी॒ सुष्टु॑ता धिष्ण्या वाम् ॥६॥

पदार्थः—हे (धिष्ण्या) दृढ़ प्रगल्भो जो (वाम्) तुम दोनों जैसे (वयः) पक्षी (पप्तन्) गिरते हैं वैसे (शुभे) कल्याणरूपी (वपुषे) सुरूप के लिए (सुष्टुता) उत्तम प्रशंसा को प्राप्त (वाणी) वेदवाणी (अनु, नक्षत) अनुकूलता से व्याप्त वा प्राप्त हो और जो (युवम्) तुम दोनों (दर्शताभिः) द्रष्टव्य (आभिः) इन (श्रीभिः) राजनीति की शोभाओं से (सूर्यायाः) उषासम्बन्धिनी प्रजा से वाणी की (पुष्टिम्) पुष्टि को (प्र, ऊहथुः) प्राप्त कराते हो वे (वाम्) तुम दोनों निरन्तर पुष्टि करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! यदि तुम लोग राज्य करने की और राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करने की इच्छा करते हो तो प्रयत्न से और समस्त धन आदि से विद्यायुक्त वाणी को प्राप्त होओ और जैसे पक्षी अपने आश्रय को प्राप्त होते इसी प्रकार तुम धर्मयुक्त नीति को प्राप्त होकर जैसे उषाकाल दिन को वैसे यश को प्रकाशित करो ॥६॥

फिर मनुष्य किससे क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु ।
प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ॥७॥

पदार्थः—हे (नासत्या) सत्य आचरण करने वालो जो (वाम्) तुम दोनों के (वहिष्ठाः) अतीव यानों के लेजाने वाले (मनोजवाः) मन के समान जिनकी गति वे (अश्वासः) शीघ्रगामी अग्नि आदि (वयः) पक्षियों के समान (प्रयः) अन्नादि पदार्थ को (आ, अभि, वहन्तु) सन्मुख पहुंचावें जिससे (पृक्षः) अच्छे प्रकार प्राप्त होने योग्य (इषिधः) इच्छा प्रकाश करने वाली (पूर्वीः) प्राचीन (इषः) अन्नादि वस्तुओं में से प्रत्येक (अनु, असर्जि) रची जाती वह (रथः) रथ (वाम्) तुम दोनों को (प्र) पहुंचावे ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है – हे मनुष्यो ! जो आप लोग अग्न्यादि पदार्थों के प्रयोगों को जानो तो विमानादि यानों से पक्षियों के समान अन्तरिक्ष में जा सको, जिससे चाहे हुए पदार्थों को प्राप्त होकर सर्वदा आनन्दित होओ ॥७॥

फिर राजा प्रजाजन कैसे वर्त्ताव कर क्या पावें इस विषय को कहते हैं ॥

पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इषं पिन्वतमसंक्राम् ।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ॥८॥

पदार्थः—हे (पुरुभुजा) बहुतों की पालना करने वालो (वाम्) तुम दोनों

(नः) हमारे लिए (पुरु, देष्णम्) बहुत देने योग्य पदार्थ (धेनुम्) वाणी और (प्रसक्षाम्) सहन को उल्लंघन करने वाले (इषम्, च) अन्न वा विज्ञान को भी (पिन्वतम्) सुखयुक्त करो अर्थात् पुष्ट करो । जो (हि) निश्चित (स्तुतः) प्रशंसा को प्राप्त है (च) वह भी (वाम्) तुम दोनों को पुष्टि देवे जो (वाम्) तुम दोनों के (माध्वी) माधुर्य्यादिगुणयुक्त (सुष्टुतिः) श्रेष्ठ प्रशंसा (रसाः, च) और रस हैं उनसे (रातिम्) दान को (अनु, अग्मन्) प्राप्त होते हैं उनसे हमको युक्त कराइये ॥८॥

भावार्थः—जो राजा प्रजाजन परस्पर के उपकार के लिये प्रयत्न करें तो इनको सर्व प्रशंसा और सकल ऐश्वर्य भी प्राप्त होवे ॥८॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

उत म ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा ।

शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मदिष्टीन्दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ॥९॥

पदार्थः—जो मनुष्य (अभिषाचः) सन्मुख संबन्ध करते वा (वशासः) वश को प्राप्त होते हैं तथा (पुरयस्य) जो पहिले प्राप्त होता उस (मे) मेरे (ऋज्रे) कोमलता से प्रिय (सुमीळ्हे) सुन्दर सेचने योग्य (उत) और (पेरुके) पालन करने वाले व्यवहार में (रघ्वी) छोटी क्रिया (पक्वा, च) और पके फलों को (शाण्डः) सूक्ष्मता करने वाला (दात्) देता है उन (हिरणिनः) हिरण वाले (स्मदिष्टीन्) प्रशंसित दर्शन वाले (ऋष्वान्) बड़े बड़े (दश) दश घोड़े वा रथों को वा (शतम्) और सैकड़ों को मैं प्राप्त होऊं ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो मेरे वशीभूत, प्रीतियुक्त, महान् (बड़े-बड़े) सहायक होते हैं उनके आधीन मैं भी होऊं इस प्रकार परस्पर का वशभाव हुए पीछे उत्तम असंख्य कार्य्य कर सकूं ॥९॥

फिर राजा और सेनापति क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

सं वां शता नासत्या सहस्राश्वानां पुरुपन्था गिरे दात् ।

भरद्वाजाय वीर नू गिरे दाद्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ॥१०॥

पदार्थः—हे (पुरुदंससा) बहुत उत्तम कर्मों वाले (नासत्या) अधर्माचरण रहित जो (वाम्) तुम दोनों का (पुरुपन्थाः) बहुत प्रकार का मार्ग (अश्वानाम्) घोड़े वा अग्नि आदि पदार्थों की (गिरे) वाणी के लिये (शता) सैकड़ों वा (सहस्रा) हजारों प्रकारों को (सम्, दात्) अच्छे प्रकार देता है जो (भरद्वाजाय) धारण किया विज्ञान जिसने उसके लिये वा (गिरे) राजनीतियुक्त वाणी के लिये सैकड़ों और

हजारों प्रकारों को (दात्) देता जिससे (रक्षांसि) राक्षस (हता) नष्ट (स्युः) हों, हे (वीर) वीर उससे आप दुष्टों को (नू) शीघ्र मारो ॥१०॥

भावार्थः— हे राजा और सेनापतियो ! जो धार्मिक न्याय से राज्य की पालना करने और शत्रुओं से अपनी सेना की रक्षा करने के लिये यत्न करे उसके लिए असंख्य धन और प्रतिष्ठा निरन्तर करो ॥१०॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम् ॥११॥

पदार्थः हे राजा और सेनापतियो ! जिस प्रकार मैं (सूरिभिः) अत्यन्त बुद्धिमान् विद्वानों के साथ (वरिमन्) अतीव श्रेष्ठ (सुम्ने) सुख में (आ, स्याम्) सब ओर से होऊं अर्थात् प्रसिद्ध होऊं वैसा (वाम्) आप विधान करो ॥११॥

भावार्थः—राजा और सेनापतियों को सर्वदा धार्मिक विद्वानों का सत्कार करना चाहिये जिससे यह सब के सुख की उन्नति दिलावें ॥११॥

इस सूक्त में अश्वियों का गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छठे मण्डल में त्रेसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य चतुःषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । उषा देवता । १ । २ । ६ विराट्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब स्त्रियां कैसी श्रेष्ठ होती हैं इस विषय को कहते हैं ॥

उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी ॥१॥

पदार्थः—हे पुरुषो जो स्त्रियां (रोचमानाः) दीप्तिमती (उषसः) प्रभात वेलाओं के समान वा (अपाम्) जलों की (रुशन्तः) हिंसती अर्थात् फूलों को विदारती हुई (ऊर्मयः) तरङ्गों के (न) समान (श्रिये) शोभा के लिए (उत्, अस्थुः) उठती हैं वे (उ) ही सुख देने वाली हैं जो (वस्वी) वसुओं की यह (दक्षिणा) दक्षिणा के समान (मघोनी) परमधनयुक्त (अभूत्) होती है वह उषा के समान (उ) ही (विश्वा) समस्त (सुपथा) शुभ मार्ग वाले (सुगानि) जिनमें सुन्दरता से चलें उन कामों को (कृणोति) करती है ॥१॥

भावार्थः– इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं—हे पुरुषो ! जैसे प्रभातवेलायें रुचि करने वाली होती हैं वैसी हुई स्त्रियां श्रेष्ठ हैं वा जैसे जलतरंगें तटों को छिन्नभिन्न करती हैं वैसे ही जो स्त्रियां दुःखों को छिन्नभिन्न करती हैं और जो दिन के तुल्य समस्त गृहकृत्यों को प्रकाशित करती हैं वे ही सर्वदा मंगलकारिणी होती हैं ॥१॥

फिर वह कैसी हो इस विषय को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

भद्रा दंदृक्ष उर्विया वि भास्युत्ते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन् ।
आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥२॥

पदार्थः—हे (उषः) प्रभातवेला के समान वर्त्तमान (देवि) विदुषी जिससे तू (भद्रा) कल्याणकारिणी (ददृक्षे) देखी जाती है तथा (उर्विया) बहुरूप हुई घर के कामों का (उत्, वि, भासि) विशेषकर उत्तम प्रकाश करती है जिस (ते) तेरी (शोचिः) उत्तम नीति का प्रकाश (भानवः) किरणें जैसे (द्याम्) अन्तरिक्ष को (अपप्तन्) जातीं—प्राप्त होतीं वैसे (वक्षः) छाती का (आविः, कृणुषे) प्रकाश करती है वा (महोभिः) महान् शुभ गुणकर्म स्वभावों से (शुम्भमाना) सुन्दर शोभायुक्त और (रोचमाना) विद्या और विनय से प्रकाशित होती हुई सुख देती है इससे अच्छे प्रकार सत्कार करने योग्य है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे स्त्रियो ! तुम चतुरता से सब पति आदि को संतोष देकर, घर के कामों को यथावत् अनुष्ठान कर, अतिविषयासक्ति को छोड़ और सुन्दर शोभायुक्त होकर सदैव पुरुषार्थ से धर्मयुक्त कामों को सूर्य के समान प्रकाशित करो ॥२॥

फिर वे कैसी हों इस विषय को कहते हैं ॥

वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम् ।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून्बाधते तमो अजिरो वोळ्हा ॥३॥

पदार्थः—हे स्त्री तू (अजिरः) जो शीघ्र नहीं जाता उस पुरुष के (न) समान और (वोळ्हा) विवाहित स्त्री (शत्रून्) शत्रुओं को (शूरः) बल वा पराक्रम आदि के योग से निर्भय (अस्तेव) शस्त्र और अस्त्रों को अच्छे प्रकार फेंकने वाले के समान (अप ईजते) दूर करती तथा प्रभातवेला जैसे (तमः) अन्धकार वा रात्रि को (बाधते) नष्टभ्रष्ट करे वा जैसे (अरुणासः) लाल काली पीली धौली आदि (रुशन्तः) पदार्थों को छिन्न भिन्न करती हुई (गावः) किरणें सब पदार्थों को (सीम्)

सब ओर से (वहन्ति) पहुंचाती हैं वैसे (उर्विया) बहुत पुरुषार्थयुक्त हो । हे पुरुष ! उषा को जैसे सूर्य वैसे इस (प्रथानाम्) अत्यन्त सुन्दरता से प्रख्यात भार्या को (सुभगाम्) सौभाग्ययुक्त करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उमपा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं—हे मनुष्यो ! जो प्रभातवेला के समान सुप्रकाश, सुरूपवती, सूर्य किरणों के तुल्य घर के कामों की व्यवस्था का निर्वाह करनेवाली, शूरवीर के समान व्यथा अर्थात् परिश्रम की थकावट न मानने वाली स्त्रियां हों उनका निरन्तर सत्कार कर सौभाग्ययुक्त करो ॥३॥

फिर वह स्त्री कैसी हो इस विषय को कहते हैं ॥

सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो ।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥४॥

पदार्थः—हे (स्वभानो) अपनी दीप्तियुक्त (पृथुयामन्) बहुत पदार्थों की प्राप्ति करानेवाले (ऋष्वे) महान् गुणयुक्त विद्वान् आप इस स्त्री के साथ (रयिम्) लक्ष्मी को (आ, वह) प्राप्त कराइये और (नः) हम लोगों की रक्षा करिये तथा (अपः) जलों के समान दुःखों को (तरसि) तरते अर्थात उनसे अलग होते हो । और (अवाते) निर्वात होने से (पर्वतेषु) पर्वतों में जैसे सुपथ से जाते हो तथा जो (ते) तुम्हारी (सुगा) सुन्दरता से जाने योग्य स्त्री वा है (दिवः) प्रकाश की (दुहितः) कन्या के समान वर्त्तमान स्त्री तू पति को (इषयध्यै) प्राप्त होने को योग्य हो (उत) और तेरा पति मेरे मन का प्रिय हो (सा) सो तू हम लोगों को (सुपथा) अच्छे मार्ग से सुख प्राप्त करा ॥४॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जैसे अच्छी नीति वाले राजजन पर्वतों में भी अच्छे मार्गों को बनाय सब मार्ग चलने वालों को सुखी करते हैं वा जैसे उषा (प्रभातवेला) मार्गों को प्रकाशित करती वैसे ही उत्तम परस्पर प्रसन्न स्त्री पुरुष धर्ममार्ग का संशोधन कर परोपकार का प्रकाश करते हैं ॥४॥

फिर वे स्त्री पुरुष कैसे वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को कहते हैं ॥

सा वह योक्षभिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु ।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥५॥

पदार्थः—हे (दिवः) सूर्य की (दुहितः) कन्या के तुल्य तथा (उषः) उषा

प्रभातवेला के समान वर्त्तमान श्रेष्ठ मुख वाली (या) जो (अवाता) वायुरहित (उक्षभिः) वीर्यसेचकों से युक्त (वरम्) श्रेष्ठ (जोषम्) प्रीति से चाहे हुए पति को (अनु) अनुकूलता से (त्वम्) तू (वहसि) प्राप्त होती (सा) वह मुझ पति को (आ, वह) सब ओर से प्राप्त हो (या) जो (ह) ही (पूर्वहूतौ) पूर्व सत्कार करने योग्यों के आह्वान के निमित्त (मंहना) सत्कार करने और (दर्शता) देखने योग्य (देवी) विदुषी तू (भूः) हो सो मेरी प्रिया स्त्री हो ॥५॥

भावार्थः—जैसे उषा रात्रि के अनुकूल वर्त्तमान नियम से अपने काम को करती है वैसे ही नियमयुक्त स्त्री अपने घर के कामों को करे तथा ब्रह्मचर्य के अनन्तर अपने मन के प्यारे पति को विवाह कर प्रसन्न होती हुई पति को निरन्तर प्रसन्न करे ऐसे ही पति भी उस अनुकूल आचरण करने वाली को सदैव आनन्दित करे ॥५॥

फिर वे स्त्री पुरुष परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं ॥

उत्ते॒ वय॑श्चिद्वस॒तेर॑पप्त॒न्नर॑श्च॒ ये पि॑तु॒भाजो॒ व्यु॑ष्टौ ।
अ॒मा स॒ते व॑हसि॒ भूरि॑ वा॒मम॑ुषो देवि दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ॥६॥

पदार्थः—हे (उषः) उषा के समान वर्त्तमान (देवि) मनोहररूपवती जो तू (व्युष्टौ) विविध गुणों से सेवा करने योग्य प्रभातवेला में (सते) वर्त्तमान (दाशुषे) सुख देने वाले (मर्त्याय) मनुष्य पति के लिए (अमा) घरों को (भूरि) बहुत (वामम्) प्रशंसित कर्म जैसे हों वैसे (वहसि) प्राप्त होती उस (ते) तेरे (ये) जो (पितुभाजः) उत्तम अन्न के सेवनेवाले (नरः) मनुष्य वे (च) भी (वसतेः) निवास के संबन्ध में (वयः) पक्षियों के (चित्) समान तेरे सुरूप को देख (उत्, अपप्तन्) उड़ते हैं उनमें से स्वयंवर विधि से सर्वथा प्रसन्न पति को तू प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—जो वधू और वर स्वयंवर विवाह से परस्पर प्रसन्न होकर विवाह करते हैं वे सूर्य्य और उषा के समान गृहाश्रम को उत्तम आचार से अच्छे प्रकार प्रकाशित कर सर्वदा आनन्दित होते हैं ॥६॥

इस सूक्त में उषा और सूर्य के तुल्य स्त्रियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में चौसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य पञ्चषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । उषा देवता । १ भुरिक्पङ्क्तिः । ५ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ३ विराट्त्रिष्टुप् । ४ । ६ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले पैंसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर वह स्त्री कैसी हो इस विषय को कहते हैं ॥

एषा स्या नो॑ दुहि॒ता दि॑वो॒जाः क्षि॒तीरु॒च्छन्ती॒ मानु॑षीरजीगः ।
या भा॒नुना॒ रुश॑ता रा॒म्यास्वज्ञा॑यि ति॒रस्तम॑सश्चिद॒क्तून् ॥१॥

पदार्थः—हे स्वीकार करने योग्य (या) जो (रुशता) रूप से (भानुना) किरण के साथ वर्त्तमान (राम्यासु) रात्रियों में (अज्ञायि) जानी जाय (तमसः) अन्धकार से (चित्) भी (अक्तून्) रात्रियों को (तिरः) तिरस्कार करती तथा (मानुषीः) मनुष्यसंबन्धी प्रजाओं को (क्षितीः) और पृथिवियों को (उच्छन्ती) विशेष निवास कराती हुई (दिवोजाः) सूर्य से उत्पन्न हुई उषा के समान (अजीगः) जगाती है (नः) हमारी (एषा) सो (स्या) यह (दुहिता) कन्या है तुम ग्रहण करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो कन्या उषा के तुल्य वा बिजुली के तुल्य अच्छे प्रकाश को प्राप्त, विद्या विनय और हाव भाव कटाक्षों से पति आदि को आनन्दित करती है वा जैसे सूर्य्य रात्रि को दूर कर सब प्रजा को प्रकाशित करता है वैसे घर से अविद्या और अन्धकार को निवार विद्या से सब को प्रकाशित करती है वही उत्तम स्त्री होती है ॥१॥

फिर वे स्त्री कैसी हों इस विषय को कहते हैं ॥

वि त॑द्ययुररुण॒युग्भि॒रश्वै॑श्चि॒त्रं भा॑न्त्यु॒षस॑श्च॒न्द्रर॑थाः ।
अग्रं॑ य॒ज्ञस्य॑ बृह॒तो नय॑न्ती॒र्वि ता बा॑धन्ते॒ तम॒ ऊर्म्या॑याः ॥२॥

पदार्थः—हे पुरुषो ! जो कन्यायें जैसे (चन्द्ररथाः) जिनका सुवर्ण के समान रमणीयरूप है वे (उषसः) प्रभातवेलायें (अरुणयुग्भिः) जो अरुण किरणों की योजना करती हैं उन (अश्वैः) बड़ी बड़ी किरणों से (ययुः) प्राप्त होती हैं (तत्, चित्रम्) उस आश्चर्य्य को (वि, भान्ति) विशेषता से प्रकाशित करती हैं तथा (बृहतः) महान् (यज्ञस्य) सग करने योग्य गृहस्थों के व्यवहार के (अग्रम्) अगले भाग को (नयन्तीः) प्राप्त कराती हुई (ऊर्म्यायाः) रात्रि के (तमः) अन्धकार को (वि, बाधन्ते)

नष्ट करती हैं (ताः) उनके समान दुःखान्धकार को दूर करने वाली वधुओं को तुम प्राप्त होओ ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! तुम अपने सदृश गुणकर्मस्वभावयुक्त प्रभातवेलाओं के समान आनन्द देने वाली, विद्या और नम्रता आदि गुणों से सुशील, ब्रह्मचारिणी कन्याओं को प्राप्त होकर उनको निरन्तर आनन्द देकर आप आनन्द को प्राप्त होओ ॥२॥

फिर वे कैसी हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्तीर्नि दाशुषं उषसो मर्त्याय ।
मघोनीर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥३॥

पदार्थः—हे पुरुषो जो (उषसः) प्रभातवेलाओं के समान (दाशुषे) विद्यादि शुभगुण देने वाले (विधते) सेवा करते हुए (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (श्रवः) श्रवण (वाजम्) विज्ञान (इषम्) अन्न और (ऊर्जम्) पराक्रम को (वहन्तीः) प्राप्त कराती तथा (मघोनीः) बहुत उत्तम धन वाली (वीरवत्) वीर के समान (पत्यमानाः) प्राप्त होती हुई स्त्रियां (अद्य) इस समय (रत्नम्) रमणीय (अवः) रक्षा को प्राप्त होवीं उनको तुम (नि, धात) निरन्तर धारण करो ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो उषा के समान वर्त्तमान, सत्यशास्त्र श्रवणादियुक्त, बलिष्ठ, विचक्षण (चित्रविचित्र बुद्धियुक्त) धन और ऐश्वर्य्य की बढ़ाने वाली, रक्षा में तत्पर, विदुषी स्त्रियां हों उनके बीच से अपनी अपनी प्रिया भार्या को सब ग्रहण करें ॥३॥

फिर वे कैसी हों इस विषय को कहते हैं ॥

इदा हि वो विधते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुषं उषासः ।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥४॥

पदार्थः- हे वीर पुरुषो ! जैसे (उषासः) उषाकाल, उन्हीं के समान वर्त्तमान भार्याओं को जो प्राप्त होओ तो (इदा) अब (हि) ही (वः) तुमको (विधते) सेवन करते हुए के लिये (रत्नम्) रमणीय धन (अस्ति) विद्यमान है वा (इदा) अब (दाशुषे) देते हुए (वीराय) बलिष्ठ जन के लिये और (इदा) अब (जरते) स्तुति करने वाले (विप्राय) मेधावी पुरुष के लिये (मावते) जो मेरे सदृश है उसके लिये (पुरा) पहिले (चित) भी (यत) जो (उक्था) कहने के योग्य वचन हैं (स्म) उन्हीं को (नि, वहथा) निवाहो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो! जो उषा के समान वर्त्तमान भार्यायें तुम लोगों को प्राप्त हों तो इसी जन्म में सब सुख तुम लोगों को प्राप्त हों क्योंकि अविरोध से वर्त्तमान स्त्रीपुरुषों को सदैव यश प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर वह कैसी है इस विषय को कहते हैं ॥

इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति ।

व्य१र्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद्देवहूतिः ॥५॥

पदार्थः—(अद्रिसानो) मेघ के बीच शिखर [चोटी] रखने वाली (उषः) प्रभातवेला के समान वर्त्तमान उत्तम स्त्री जैसे (ते) तेरे संबन्धी (अङ्गिरसः) पवनों के तुल्य (अर्केण) सूर्य्य (ब्रह्मणा) परमेश्वर वा वेद से (च) भी सूर्य्य को (गोत्रा) पृथिवी के समान वा (गवाम्) किरणों के संबन्ध को (वि, गृणन्ति) प्रस्तुत करते हैं और (बिभिदुः) विदीर्ण करते हैं वैसे (इदा) अब (हि) ही (देवहूतिः) विद्वान् जन जिससे बुलाते हैं वैसी तू प्रसिद्ध होती है सो तू (नृणाम्) मनुष्यों के बीच (सत्या) विद्यमान पदार्थों में उत्तम (अभवत्) होती है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो! जैसे किरणें प्रभातवेला से सूर्य्यप्रकाश की निमित्त हैं वैसे ही सत्य व्यवहारों को सिद्ध करने और दुष्ट व्यवहारों का निरोध करने वाली उषा है वैसी श्रेष्ठ स्त्री होती है ॥५॥

फिर वह किसके समान क्या करके किसको प्राप्त होती है इस विषय को कहते हैं ॥

उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि ।

सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥६॥

पदार्थः—हे (दिवः) बिजुली की (दुहितः) कन्या के समान वर्त्तमान (मघोनि) परमपूजित धनयुक्त पत्नी तू (नः) हम लोगों का (विधते) विधान करने वाले के लिये (प्रत्नवत्) प्राचीन कारण जिसमें विद्यमान उसके वा (भरद्वाजवत्) कर्ण के तुल्य (उच्छा) विवास कराओ अर्थात् एक देश से दूसरे देश में वास कराओ (गृणते) और प्रशंसा करने वाले तेरे पति के लिए वा (नः) हम लोग जो संबन्धी हैं उनके लिये (उरुगायम्) बहुत अपत्य धन वा गृह जिससे प्राप्त होते हैं उसे और (श्रवः) अन्न वा श्रवण तथा (सुवीरम्) शोभन वीर जिससे उस (रयिम्) धन को (अधि, धेहि) अधिकता से धारण कर और तू मुझ से इस उक्त विषय को (रिरीहि) मांग ॥६॥

भावार्थः—हे वीरपुरुष ! विजुली का प्रकाश और संप्रयोग किया हुआ सत्य, ऐश्वर्य्य को उत्पन्न करता है वैसे ही शुभ आचरण करने वाली पत्नी घर का सौभाग्य बढ़ाती है और जैसे आचार्य प्रति समय सुन्दर शिक्षा और विद्या को विद्यार्थियों को ग्रहण कराते हैं वैसे ही विद्वान् स्त्री पुरुष अपने सन्तानों को विद्या और सुन्दर शिक्षा ग्रहण करावें ॥६॥

इस सूक्त में उषा के तुल्य स्त्री जनों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में पैंसठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकादशर्चस्य षट्षष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । मरुतो देवताः । १ । ६ । ११ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ५ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । ४ निचृत्पङ्क्तिः । ६ । ७ । १० भुरिक्पङ्क्तिः । ८ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले छिआसठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर वह किसके तुल्य क्या करती है इस विषय को कहते हैं ॥

वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम् ।
मर्तेष्वन्यद्दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥१॥

पदार्थः—हे पत्नि जैसे (ऊधः) रात्रि और (पृश्निः) अन्तरिक्ष (सकृत्) एक वार (शुक्रम्) शीघ्र वीर्य करने वाले को (दुदुहे) परिपूर्ण करता है वैसे (धेनु) वाणी के समान तू (मर्त्तेषु) मनुष्यों में (पत्यमानम्) जाते हुए पति को (अन्यत्) और को जैसे वैसे (दोहसे) पूर्ण करने को (पीपाय) बढ़ाओ [वृद्धि देओ] ऐसी हुई जो तू उसका जो (चित्) निश्चित (समानम्) समान [एकसा] (वपुः) सुन्दर रूप और (नाम) नाम है (तत्) वह (चिकितुषे) विज्ञानवान् पति के लिये (नु, अस्तु) शीघ्र हो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे पुरुष ! जैसे रात्रि और समीप में मायारूपी अन्तरिक्ष वर्षा से होता अर्थात् मेघ से ढपा हुआ अन्तरिक्ष अन्धकारयुक्त होता है वैसे ही समान गुणकर्मस्वभावयुक्त स्त्री पति के सुख के लिए समर्थ होती है जैसे गौ बछड़ों को पालती है वैसे विदुषी [विद्या पढ़ी हुई] माता सन्तानों की यथावत् रक्षा कर सकती है ॥१॥

फिर विद्वान् जन कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत्त्रिर्मरुतो वावृधन्त ।

अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥ २॥

पदार्थः- हे मनुष्यो (ये) जो यत्न करते हुए (हिरण्ययासः) बिजुली के तेज से बढ़े हुए (अरेणवः) धूलि जिनमें नहीं वे (मरुतः) पवनों के समान (नृम्णैः) धनों और (पौंस्येभिः) पुरुषार्थ बलों के (साकम्) साथ (भुवन्) हों (एषाम्) इन के संबन्ध में (यत्) जो (द्विः) दो वार वा (त्रिः) तीन वार (वावृधन्त) निरन्तर बढ़ने हैं (च) और (इधानाः) प्रकाशमान (अग्नयः) अग्नियों के (न) समान (शोशुचन्) निरन्तर शुद्ध करते वे भाग्यशाली होते हैं ॥२॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो अग्नि के समान पवित्र हुए पवित्र करने वाले, वृद्धि को प्राप्त हुए बढ़ाने वाले, पवन के समान बलिष्ठ और चक्रवर्त्ती राजा के समान लक्ष्मी के साथ वर्त्तमान विद्वान् हों उन्हीं को तुम सेवो ॥२॥

किन स्त्री पुरुषों के पुत्र उत्तम नहीं होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा याँश्चो नु दाधृविर्भरध्यै ।

विदे हि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्वे३ गर्भमाधात् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ये) जो (मीळ्हुषः) वीर्य सींचने वाले (रुद्रस्य) वायु के समान बलिष्ठ के (पुत्राः) पुत्र (सन्ति) हैं (यान्, चो) और जिनको (भरध्यै) पोषण वा धारण करने के लिए (दाधृविः) धारण करने वाली (मही) जो महान् सत्कार करने योग्य है (सा) वह (माता) मान करने वाली (आ, अधात्) अच्छे प्रकार धारण करती है और सा, इत्, वही (पृश्निः) अन्तरिक्ष के समान विस्तार-वाली (सुभ्वे) जो सुन्दर प्रसिद्ध होता है उस (विदे) जानने वाले के लिए (हि) ही (महः) महान् (गर्भम्) गर्भ को (उ) शीघ्र अच्छे प्रकार धारण करती है उन सबको और उस माता रूप स्त्री को तुम सब भाग्ययुक्त जानो ॥३॥

भावार्थः वे ही मनुष्य कल्याणरूप होते हैं जिनके माता पिता ऐसे हैं कि जिन्होंने पूरा ब्रह्मचर्य किया हो ॥३॥

कौन श्रेष्ठ होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

न य ईषन्ते जनुषोऽया न्वन्तः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः ।

निर्यद्दुह्रे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ये) जो (जनुषः) जन्मों को (न) नहीं (ईवन्ते) नष्ट करते किन्तु (अया) इस नीति से (अन्तः) बीच में (सन्तः) सत्पुरुष हुए (अवद्यानि) निन्द्यकर्मों को (नु) शीघ्र छोड़ के (पुनानाः) शरीर को पवित्र करते हुए होते हैं और (यत्) जो (शुचयः) पवित्र जन (अनु, जोषम्) सेवा के अनुकूल (श्रिया) लक्ष्मी से (तन्वम्) शरीर को (उक्षमाणाः) सेवन करते हुए (अनु, निर्, दुह्रे) अनुक्रम से जन्म पूरा करते हैं वे धन्य होते हैं ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्मचर्यादि व्रतों को छोड़ मूढ़ होकर, शीघ्र विवाह कर, नपुंसक के अर्थात् हीजड़ा के समान होकर, निर्बल, रोगी और लम्पट मनुष्यों के बीच जिनकी कहावत हो रही हो तथा दुष्टव्यसन जिनको होता है ऐसे पुरुष सौ वर्ष से पहिले ही शरीर को नष्ट भ्रष्ट कर मनुष्य शरीर के फल को न पाकर दुर्भाग्यवश निष्फल होते हैं ॥४॥

यहां कै प्रकार के पुरुष होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः ।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित्सुदानुरव यासदुग्रान् ॥५॥

पदार्थः—(येषु) जिन मनुष्यों में (चित्) निश्चय से (दोहसे) कामों के पूरे करने को शक्ति नहीं है वा जो (अयाः) प्राप्त होते हुए (धृष्णु) दृढ़ प्रगल्भ (मारुतम्) मनुष्यों के इस (नाम) प्रसिद्ध व्यवहार को (आ, दधानाः) धारण करते हुए हैं वा (ये) जो (अयासः) चलते हुए (स्तौनाः) चोर (न) नहीं हैं और जो (सुदानुः) उत्तम दान देने वाला उन (उग्रान्) कठिन स्वभाव वालों को (मक्षू) शीघ्र (न) न (अव, यासत्) प्राप्त करे उनका (चित्) शीघ्र (मह्ना) महत्त्व से (नू) शीघ्र सत्कार करे उनको यथावत् सब जानें ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! इस जगत् में दो प्रकार के मनुष्य हैं एक शक्ति और विद्या से हीन, दुष्ट कर्म करने वाले हैं दूसरे शक्तिमान्, श्रेष्ठ कर्म धारण करने वाले हैं । उनमें जो दुष्कर्म करने वालों का सत्कार नहीं करते और श्रेष्ठों का सत्कार करते हैं वे शीघ्र महान् चाहे हुए सुख को पाते हैं ॥५॥

फिर मनुष्य क्या करके कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके ।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥६॥

पदार्थः—जो (घृष्णुषेणाः) दृढ सेना वाले (शवसा) बल से (उग्राः) तेजस्वी (उभे) दोनों (सुमेके) सुन्दर रूपवाले (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (युजन्त) युक्त होते हैं (अध) तदनन्तर (स्म) ही (एषु) इन (अमवत्सु) प्रशंसित गृह वालों में (रोदसी) आकाश और पृथिवी के बीच (स्वशोचिः) अपनी दीप्ति वाला विद्युत् अग्नि (आ, तस्थौ) अच्छे प्रकार स्थित है और (न) नहीं (रोकः) शब्दायमान है (ते) वे सब (इत्) ही सुखी होते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य बिजुली और पृथिवी की विद्या को लेकर दृढ़ सेनावाले होते हैं उनको शत्रुजन रोक नहीं सकते हैं तथा जो उत्तम घरों में निवास करते हैं वे प्रकाशित बुद्धिवाले होते हैं ॥६॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमजत्यरथीः ।
अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥७॥

पदार्थः—हे (मरुतः) मनुष्यो (वः) तुम्हारा चलन (अनेनः) निष्पाप (अस्तु) हो और (यामः) जिसमें जाते हैं उस प्रहर के समान जो (अनश्वः) ऐसा है कि जिसके घोड़े नहीं हैं (अरथीः) रथ नहीं हैं (अनवसः) अन्न जिसके नहीं है और (अनभीशुः) बलयुक्त बाहु नहीं हैं तथा जो (रजस्तूः) जल को बढ़ाता है वह (चित्) निश्चय के साथ (यम्) जिसको (अजति) प्रक्षिप्त करता [फेंकता] है वा (रोदसी) आकाश और पृथिवी के बीच निरन्तर (साधन्) साधता हुआ (पथ्याः) मार्गों में उत्तम गतियों को (वि, याति) विशेषता से जाता है उसको तुम स्वीकार करो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—मनुष्यो ! तुम पक्षपात रूपी पाप को छोड़ के निर्बलों की निरन्तर रक्षा कर भूगर्भविद्या और विद्युत् विद्या को अच्छे प्रकार सिद्ध कर भूमि और उदक तथा अन्तरिक्ष के मार्गों को उत्तम यानों से जाकर आओ ॥७॥

किन से रक्षा किये जाने पर भय नहीं है इस विषय को कहते हैं ॥

नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः ॥८॥

पदार्थः—हे (मरुतः) विद्वानो ! तुम (वाजसातौ) अन्नादि पदार्थों के विभाग में (यम्) जिसको (गोषु) गो आदि पशु वा पृथिवी विभागों वा (अप्सु)

जलों वा (तोके) संतान (वा) वा (तनये) सुकुमार इन सब में (यम्) जिसकी (अवथ) रक्षा करते हो (अस्य) इस व्यवहार का कोई (वर्त्ता, वर्त्ताव कराने और कोई (न) नहीं है और कोई (तवता) उक्त व्यवहार का उल्लंघन कराने वाला (न, अस्ति) नहीं है (सः) वह (अध) इसके अनन्तर (पार्य्ये) पार करने योग्य व्यवहार में (द्योः) प्रकाश के (अजम्) मेघ के समान शत्रुसेना को (दर्त्ता, नु) शीघ्र विदीर्ण करने वाला है ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिन के विद्वान् जन रक्षा करने वाले हों उनको कहीं से भय नहीं प्राप्त होता, जैसे सूर्य से वर्षा होकर जगत् निर्भय होता है वैसे ही धार्मिक विद्वानों के संघ से समस्त राज्य निर्भय होता है ॥८॥

फिर मनुष्य किसके लिये क्या धारण करके क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वानो (ये) जो (सहसा) बल वा उत्साह से (सहांसि) बलों को (सहन्ते) सहते हैं उनके लिये तुम (चित्रम्) अद्भुत (अर्कम्) अन्न वा वज्र को (प्र, भरध्वम्) अच्छे प्रकार धारण करो हे (अग्ने) विद्वान् जैसे (मखेभ्यः) संग्राम आदि जो संग करने योग्य हैं उनके लिए (पृथिवी) भूमि (रेजते) कम्पित होती है तथा (स्वतवसे) अपने बल से युक्त (तुराय) शीघ्रता करने और (मारुताय) मनुष्यों के सहयोगी (गृणते) स्तुति करने वाले विद्वान् के लिए अद्भुत अन्न वा वज्र को धारण करो ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जैसे चलती हुई भूमि यज्ञ सामग्री को उत्पन्न करती है वैसे ही बड़े-बड़े शूरवीर विद्वानों के लिये अन्नादि पदार्थ और अस्त्र-शस्त्रसमूह तथा उनकी विद्या की निरन्तर उन्नति करो ऐसा होने से न सहने योग्य शत्रुओं को सहने और पराजय करने का सामर्थ्य उत्पन्न होता है यह जानो ॥९॥

फिर किसके तुल्य कैसे शूरवीर सिद्ध करने चाहियें इस विषय को कहते हैं ॥

त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत्तृषुच्यवसो जुह्वो३ नाग्नेः ।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥१०॥

पदार्थः—जो अध्वरस्येव अहिंसामय यज्ञ के समान वा (जुह्वः) जिनसे हवन करते उनके (न, समान (तृषुच्यवसः) जो शीघ्र जाने वाले (अग्नेः) अग्नि के

(अर्चत्रयः) सत्कारकर्त्ता (धुनयः) कंपते हुए पदार्थों के (न) समान (त्विषीमन्तः) विद्या विनयादि के प्रकाश से युक्त (भ्राजज्जन्मानः) देदीप्यमान जन्म है जिनका तथा (अधृष्टाः) जो शत्रुओं से धृष्टता को नहीं प्राप्त होते (मरुतः) वे पवन के समान बली (वीराः) वीर (विद्युत्) प्रकाश के समान वर्त्तमान हों उन्हीं से विजय को प्राप्त होओ ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे राजा आदि जनो ! जैसे यज्ञ के बीच वर्त्तमान लपट शीघ्र ही अन्तरिक्ष को जाती है वैसे शिक्षा के बीच वर्त्तमान जन शीघ्र विजय के लिये जा सकते हैं जैसे जुहूओं से अग्नि प्रदीप्त की जाती है वैसे शिक्षा और सत्कार से वीरों की सेना को प्रदीप्त करना चाहिये जैसे अग्नि की लपटें और शब्द होते हैं वैसे ही तुम्हारी सेना के प्रकाश और शब्द बहुत हों ॥१०॥

फिर मनुष्यों को किनके साथ कैसा जन राज्य का अधिकारी करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे ।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥११॥

पदार्थः—जो (शुचयः) पवित्र (मनीषाः) मनस्वी अर्थात् उत्साही मन वाले (उग्राः) तेजस्वी (गिरयः) मेघ और (आपः) जलों के (न) समान (दिवः) मनोहर पदार्थ के (शर्धाय) बल के लिए (अस्पृध्रन्) स्पर्द्धा करें उनके साथ (वृधन्तम्) आप बढ़ते वा दूसरों को बढ़ाते हुए (मारुतम्) पवनों की विद्या जानने वाले (भ्राजदृष्टिम्) प्रकाशमान दृष्टियुक्त (रुद्रस्य) किया है चवालीस वर्ष पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य जिसने उसके (तम्) उस (सूनुम्) पुत्र को (हवसा) लेने के व्यवहार से मैं (आ, विवासे) सेवता हूं ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं—जो मनुष्य मेघ के समान उन्नति करने, प्रजा के पालने, जल के समान पुष्टि करने वाले, पवित्र आशययुक्त, तेजस्वी और मनोहर बल के बढ़ाने वाले हों उनके साथ यदि राजा राज्यशिक्षा करे तो कहीं भी पराजय और अपकीर्ति न हो ॥११॥

इस सूक्त में पवनों के गुणों के समान विद्वानों और वीरों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में छियासठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकादशर्चस्य सप्तषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । मित्रावरुणौ देवते । १ । ६ स्वराट् पङ्क्तिः । २ । १० भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ । ७ । ८ । ११ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ । ५ त्रिष्टुप् । ६ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले सड़सठवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को किनका सत्कार करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै ।
सं या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (विश्वेषाम्) सब (सताम्) सज्जन जो (वः) आप लोग उनमें (या) जो (ज्येष्ठतमा) अतीव ज्येष्ठ (यमिष्ठा) अतीव नियम को वर्त्तने वाले (असमा) अतुल्य अर्थात् सब से अधिक (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान अध्यापक और उपदेशक (वावृधध्यै) अत्यन्त बढ़ने के लिए (जनान्) मनुष्यों को (रश्मेव) किरण वा रज्जु के समान (गीर्भिः) वाणियों से (सम्, यमतुः) नियमयुक्त करते हैं और (द्वा) दोनों सज्जन (स्वैः) अपनी (बाहुभिः) भुजाओं से मनुष्यों को किरण वा रस्सी के समान नियम में लाते हैं उन अध्यापक और उपदेशकों का सदैव सत्कार करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जो विद्या और उत्तम शील आदि गुणों से श्रेष्ठ, अधर्म से निवृत्त कर धर्म के बीच प्रवृत्त कराने वाले, अध्यापन और उपदेश से सूर्य के समान उत्तम बुद्धि के प्रकाश करने वाले हों उन्हीं का सदा सत्कार करो ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इयं मद्वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद्वां वरूथ्यं सुदानू ॥२॥

पदार्थः—हे (सुदानू) सुन्दर दान देने वालो (प्रिया) मनोहर (मित्रावरुणौ) अध्यापक और उपदेशको (वाम्) तुम दोनों की (नमसा) सत्कार वा अन्नादिकों के साथ (इयम्) यह (मनीषा) विद्या और उत्तम शिक्षायुक्त बुद्धि (मत्) मुझ से (प्र, स्तृणीते) अच्छे प्रकार सर्व विषयों को आच्छादित वा प्राप्त करती है तथा (यत्) जो (वाम्) तुम दोनों के (वरूथ्यम्) घर के बीच उत्पन्न हुए (बर्हिः) अतीव विशाल तथा (अच्छ) अच्छे प्रकार (यन्तम्) प्राप्त होते हुए और (नः) हमारे (अधृष्टम्) शत्रुओं

की न धृष्टता को प्राप्त हुए (छर्दिः) घर को (उप) समीप से ढांपती है वह सब को अच्छे प्रकार ग्रहण करने योग्य है ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिनके संग से हमको उत्तम बुद्धि और घर प्राप्त होते हैं उनको सदैव तुम मानो ॥२॥

फिर कौन निरन्तर सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद्यतथो महित्वा ॥३॥

पदार्थः—हे (प्रिया) सब को तृप्त करने वाले (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान प्रिय पुरुषो (नमसा) सत्कार से (हूयमाना) बुलाये हुए तुम दोनों (जनान्) मनुष्य के (उप, आ, यातम्) समीप आओ तथा (सुशस्ति) सुन्दर प्रशंसा को प्राप्त होओ (यौ, चित्) जो निश्चय से (महित्वा) बड़प्पन से (यतथः) यत्न करते हैं वा (श्रुधीयतः) अपने अन्न की इच्छा करते हैं वे दोनों (अप्नः स्थः) सन्तानों में ठहरने वाला (अपसेव) कर्म से जैसे वैसे हम लोगों को (सम्) प्राप्त होवें ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम अध्यापक और उपदेशकों को सदा सत्कार से बुलाकर उनका सत्कार कर विद्या और सत्योपदेश को संसार के बीच विस्तारो । हे अध्यापक और उपदेशको ! तुम प्रयत्न से माता और पिता के समान मनुष्यों को उत्तम शिक्षा देकर विद्यावान् सर्वोपकार करने वालों को सिद्ध करो ॥३॥

फिर सब मनुष्यों को कौन सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद्गर्भमदितिर्भरध्यै ।
प्र या महि महान्ता जायमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि दीधः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (या) जो (अश्वा) घोड़े वा महाशय जनों के (न) समान (वाजिना) बहुत वेग वा विज्ञानयुक्त (पूतबन्धू) पवित्र बन्धु वाले (ऋता) सत्य आचार के रखने वाले (अदितिः) माता के तुल्य (महि) महान् जन (यत्) जिस (गर्भम्) गर्भ को (भरध्यै) धारण करने को प्रवर्त्तमान वा (या) जो (महान्ता) महात्मा (जायमाना) उत्पन्न हुए (रिपवे, मर्त्ताय) शत्रुजन के लिए (घोरा) भयङ्कर (प्र, नि, दीधः) और कारागार में निरन्तर शत्रुजनों को डाल देते हैं उनको अपने आत्मा के तुल्य सत्कार करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जो कुलीन, जिनका महान् पक्ष, विद्वान् माता पिता से उत्पन्न हुए, उत्तम शिक्षायुक्त, महाशय, माता के तुल्य मनुष्यों पर कृपा करते, वा पढ़ाने और उपदेश करने से सब पर उपकार करते, तथा दुष्टों को रोकते हुए विद्वान् होते हैं उन्हीं की सेवा, संग, उन्हीं से उपदेश और विद्या पढ़ना निरन्तर करो ॥४॥

फिर मनुष्यों को कौन सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

विश्वे यद्वां मंहना मन्दमानाः क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः ।
परि यद्भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः ॥५॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको (यत्) जो तुम दोनों (उर्वी) बहुत पदार्थों से युक्त (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी के समान विद्या और क्षमा से युक्त (भूथः) होते हो उन (वाम्) तुम्हारे संग से (यत्) जो (मंहना) सत्कार करने वाले (मन्दमानाः) आनन्द वा सत्कार को प्राप्त वा स्तुति करते (सजोषाः) एकसी प्रीति को सेवने वाले (स्पशः) अविद्यान्धकार का विनाश करने और विद्याप्रकाश का स्पर्श करने वाले (अदब्धासः) हिंसा को न प्राप्त और हिंसा न करने वाले (अमूराः) मूढ़तादि दोषरहित (विश्वे, देवासः) समस्त कामना करते हुए विद्वान् जन (सन्ति) हैं वे ही (चित्) निश्चित (क्षत्रम्) धन वा राज्य को (परि, अदधुः) सब ओर से धारण करते हैं उनका वा उन तुम लोगों का सब हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥५॥

भावार्थः—वे ही आप्त विद्वान् जन हैं जिनका पढ़ाना उपदेश और संग शीघ्र सफल होता है जिन के संग से हिंसा आदि दोषरहित विद्वान् होकर पक्षपात को छोड़ सब प्राणियों को अपने आत्मा के तुल्य सुख देते हैं ॥५॥

फिर कौन यहां संग करने योग्य और सुख के बढ़ाने वाले हैं इस विषय को कहते हैं ॥

ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून् दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान्द्यां धासिनायोः ॥६॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको जो (हि) जिस कारण से हैं (ता) वे तुम दोनों (अनु, द्यून्) प्रतिदिन (क्षत्रम्) राज्य वा धन को (धारयेथे) धारण करते हो तथा (द्योः) सूर्य की (उपमादिव) उपमा से जैसे वैसे (सानुम्) शिखर को (दृंहेथे) बढ़ाते हो जिनके संग से (विश्वदेवः) सब का प्रकाश करने वाला (दृळ्हः) दृढ़ (उत) और (नक्षत्रः) जो नहीं नष्ट होता ऐसा होता हुआ (भूमिम्) भूमि और

(वाम्) मनोहर विद्या को प्राप्त होकर (धासिना) अन्न से (आयोः) जीवन को बढ़ाता है उन पूर्वोक्त दोनों तथा उसको जो (आ, अतान्) सब ओर से प्रकाशित करें वे निरन्तर सुखी होते हैं ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अध्यापक और उपदेशक प्रतिदिन सूर्य के समान विद्याव्यवहार को सम्यक् प्रकाशित कर राज्यधन और आयु को बढ़ाते, सब को सुख की धारणा कराते, जिनको प्राप्त होकर सब जन विद्वान् होते हैं उनका संग निरन्तर करो ॥६॥

फिर कौन किसके समान मेधावी विद्यार्थियों को धारण करते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

ता विप्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत्सद्म सभृतयः पृणन्ति ।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत्पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥७॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको जैसे (अवाताः) पतियों को न प्राप्त हुई (सभृतयः) समान पतियों वाली (युवतयः) युवती स्त्रियां समान पतियों को (भरन्ते) धारण करतीं अर्थात् प्राप्त होतीं वे (न) नहीं (आ, पृणन्ति) पूरे सुख को प्राप्त होतीं क्योंकि और सौतें नहीं (मृष्यन्ते) सहती हैं (यत्) जो (सद्म) घर को सुखयुक्त करती हैं और (यत्) जो (पयः) जल के समान (वि) विविध प्रकार से सुख देती हैं तथा जो तुम दोनों (जठरम्) उदर में ठहरे हुए अग्नि को (पृणध्यै) सुखी करने के लिये (विप्रम्) बुद्धिमान् पुरुष को (धैथे) धारण करते हो । हे (विश्वजिन्वा) संसार की पुष्टि करने वाले आप उन स्त्रियों तथा (ता) उन दोनों को निरन्तर सेवो ॥७॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जैसे समान गुण कर्म स्वभाव रूप स्त्री पुरुष अत्यन्त प्रीति से विवाह कर कभी विरोध नहीं करते हैं वैसे ही विद्वान् जन और विद्यार्थीजन विद्वेष नहीं करते हैं ऐसे प्रेम के साथ वर्त्तमान सब सदैव आनन्दित होते हैं ॥७॥

फिर किनके संग से जन विद्वान् हों इस विषय को कहते हैं ॥

ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद्वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत् ।
तद्वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ॥८॥

पदार्थः—हे (घृतान्नौ) बहुत घृत और अन्न वाले अध्यापक और उपदेशक जनो (वाम्) तुम दोनों के उपदेश से (सुमेधाः) उत्तम जिसकी बुद्धि वह (अरतिः)

सत्य उपदेश को प्राप्त होता हुआ (सत्यः) सज्जनों में उत्तम जन (जिह्वया) वाणी से (आ, इदम्, सदम्) सब ओर से जिसमें विद्वान्‌जन स्थिर होते हैं उस सत्य वचन को पाकर (ऋते) सत्य धर्म में (आ, भूत्) प्रसिद्ध होवे (यत्) जो (युवम्) आप दोनों (दाशुषे) दानशील पुरुष के लिए (अंहः) पाप को (वि, चयिष्टम्) विगत चयन करते हैं (तत्) वह (वाम्) तुम दोनों की (महित्वम्) महिमा (अस्तु) हो (ता) उन तुम दोनों का हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिनकी उत्तेजना से तुम लोग विद्या को प्राप्त होओ वा उपदेश ग्रहण करो उनका धन्यवाद आदि से निरन्तर सत्कार करो, जिनके संग से मनुष्य सत्य आचरण वाले उत्तम ज्ञाता होते हैं वे ही महाशय हैं ॥८॥

कौन विद्वानों के प्रिय वा अप्रिय होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

प्र यद्वां मित्रावरुणा स्पूर्धन् प्रिया धामं युवधिता मिनन्ति ।
न ये देवास ओहंसा न मर्त्ता अयंज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ॥९॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान अध्यापक और उपदेशको (यत्) जो (स्पूर्द्धन्) स्पर्द्धा करते हुए जन (वाम्) तुम दोनों के (प्रिया) प्रिय (धाम) धाम जिनमें स्थापन करते हैं उन (युवधिता) तुम दोनों का हित करने वालों को (न) न (प्र, मिनन्ति) नष्ट करते हैं वा (ये) जो (देवासः) विद्वान् जन (ओहसा) प्राप्त बल वा वेग से और (अयज्ञसाचः) जो यज्ञ से संबन्ध नहीं करते वे (मर्त्ताः) मनुष्य (न) नहीं नष्ट करते हैं वे (अप्यः) कर्मों में प्रसिद्ध के (न) समान और (पुत्राः) पुत्रों के समान होते हैं ॥९॥

भावार्थः—जो मनुष्य अध्यापक और उपदेशकों का अप्रिय आचरण नहीं करते हैं वे सत्पुत्रों के समान होते हैं और जो अप्रिय का आचरण करते हैं वे शत्रुओं के तुल्य होते हैं ॥९॥

फिर कौन तिरस्कार करने योग्य और सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसंन्ति के चिन्निविदो मनानाः ।
आद्वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥१०॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको यदि तुम दोनों (महित्वा) महिमा से (देवेभिः) विद्वानों के साथ विद्यावृद्धि के लिये (नकिः) न (यतथः) यत्न करते हो तो (वाम्) तुम दोनों के प्रति हम लोग (सत्यानि) उत्तम पदार्थों में भी उत्तम (उक्था)

कहने वा सुनने के योग्य विषयों को (आव, अवाम) पीछे कहें (यत्) जो (कीस्तासः) मेघावीजन (वाचम्) वाणी को (वि, भरन्ते) विशेषता से धारण करते हैं और (के, चित्) कोई (मनानाः) विचार करते हुए (निविदः) उत्तम वाणियों की (शंसन्ति) प्रशंसा करते हैं उनको सर्वदा तुम पढ़ाओ ॥१०॥

भावार्थः—राजा और राजजनों को और प्रजास्थ विद्वानों को भी कौन विद्वान् अच्छी शिक्षा देने योग्य हैं जो निष्कपटता से अपनी शक्ति के अनुकूल पढ़ाने से विद्या प्रचार न करें और जो प्रीति के साथ विद्याओं को पाकर सर्वत्र प्रचार करते हैं वे ही सदा सत्कार करने योग्य हैं ॥१०॥

फिर कौन विद्वान् होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद्गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद्रणे वृषणं युनजन् ॥११॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको (यत्) जो (गावः) किरणें वा धेनु हैं उनको (स्फुरान्) स्फूर्ति वाले पदार्थों वा (ऋजिप्यम्) कोमल वा सरल पदार्थों के पालने वालों में हुए (धृष्णुम्) दृढ़ प्रगल्भ (वृषणम्) बलिष्ठ को (रणे) संग्राम में कोई (युनजन्) जोड़ता हुआ विजय को प्राप्त होता है हे (मित्रावरुणौ) वायु और सूर्य्य के समान वर्त्तमान (अवोः) रक्षा करने वाले (वाम्) तुम दोनों के (छर्दिषः) घर के (अभिष्टौ) सन्मुख यज्ञ क्रिया में (यत्) जो प्रयत्न करता है तथा (युवोः) तुम दोनों के संबन्ध में (अस्कृधोयु) जो अपने की लघुता नहीं चाहता (इत्था) इस हेतु से (अनु) अनुकूलता से यत्न करता है उसका सदैव सत्कार करो ॥११॥

भावार्थः हे अध्यापक और उपदेशको ! जो विद्यार्थी जन तुम्हारे काम को अपने काम के समान जानते हैं वे ही दीर्घ आयु वाले, प्रशंसित विद्यायुक्त, धार्मिक परोपकारी होते हैं ॥११॥

इस सूक्त में प्राण और उदान के समान अध्यापक और उपदेशकों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में सड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकादशर्चस्याष्टषष्टितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्रावरुणौ देवते । १ । ४ । ११ त्रिष्टुप् । ६ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ भुरिक् पंक्तिः । ३ । ७ । ८ स्वराट् पङ्क्तिः । ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ९ । १० निचृज्जगतीछन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब ग्यारह ऋचावाले अड़सठवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों को अच्छे प्रकार कौन पढ़ाने चाहियें इस विषय को कहते हैं ॥

श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषां मनुष्वद्वृक्तबर्हिषो यजध्यै ।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत् ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्रावरुणौ) वायु और बिजुली के समान अध्यापक और उपदेशको (यः) जो (उद्यतः) उद्योगी (सजोषाः) अपने आत्मा के तुल्य औरों का प्रीति से सेवन करता (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य (वृक्तबर्हिषः) संक्षोभित किया जल जिसने उसका और (वाम्) तुम्हारा (यज्ञः) संग करने योग्य शिष्य (आ, यजध्यै) अच्छे प्रकार संग करने को (अद्य) आज (महे) महान् (सुम्नाय) सुख वा (महे) बहुत (इषे) विज्ञान वा अन्न के लिये (श्रुष्टी) शीघ्र (आववर्तत्) अच्छे प्रकार वर्त्तमान है उसको तुम दोनों पढ़ाओ ॥१॥

भावार्थः—हे पढ़ाने और उपदेश करने वालो ! जो आप लोगों के सुख के लिए प्रयत्न करते हुए पुरुषार्थी, प्रीतिमान्, शीघ्रकारी वर्त्तमान हैं उन पवित्र, जितेन्द्रिय धार्मिक विद्यार्थियों को निरन्तर सत्य का उपदेश करो ॥१॥

फिर कौन यहां राजजन उत्तम और सत्कार करने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम् ।
मघोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (हि) ही (देवताता) सत्य व्यवहार यज्ञ में (श्रेष्ठा) उत्तम (तुजा) दुष्टों की हिंसा करने वाले (शूराणाम्) निर्भय जनों में (शविष्ठा) अतीव बलवान् (भूतम्) होते हैं और जो (हि) निश्चय के साथ (मघोनाम्) धनाढ्यों के बीच (मंहिष्ठा) अतीव सत्कार करने योग्य (ऋतेन) सत्य आचरण से (तुविशुष्मा) बहुत बल और सेना से युक्त (वृत्रतुरा) जो मेघ के समान बढ़े हुए शत्रुओं का विनाश करने वाले (सर्वसेना) समग्र सेनाओं से युक्त सभा और सेनाधीश वर्त्तमान हैं (ता) वे सत्कार करने योग्य हैं और (ता) वे ही उत्तम अधिकार में स्थापन करने योग्य हैं ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सत्य न्याय से प्रजा की पालना करने में प्रयत्न करते हुए, सब प्रकार की विद्या और सर्वोत्तम सेनाओं से युक्त, दुष्टों की हिंसा से श्रेष्ठ, धनाढ्य और वीर पुरुषों की रक्षा करने वाले होवें वे धन्यवाद के योग्य हैं ॥२॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को कहते हैं ॥

ता गृणीहि नमस्येभिः शूषैः सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना ।
वज्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान् जन (विप्रः) मेधावी बुद्धिमान् आप जिनमें से (अन्यः) सूर्य वा बिजुली (वज्रेण) किरण समूह के समान शस्त्रास्त्र और (शवसा) बल से (वृत्रम्) मेघ के समान शत्रु को (हन्ति) मारती है और जो (अन्यः) वायु के समान (वृजनेषु) मार्ग वा बलों में (सिषक्ति) सींचता है (ता) उन दोनों (इन्द्रावरुणा) वायु और बिजुली के समान (सुम्नेभिः) सुखों से (चकाना) कामना करते हुए (शूषैः) बलों और (नमस्येभिः) अन्नों के बीच सिद्ध हुए पदार्थों से सत्कार को प्राप्त हुओं की (गृणीहि) प्रशंसा करो ॥३॥

भावार्थः—जो सभा सेनापति सूर्य और वायु के समान प्रजा के पालने वाले, उत्तम सेनाजनों से दुष्टों को निवारने वाले, मेघों के समान प्रजाजनों को कामनाओं से पूरित करते हैं वे सब से सत्कार करने योग्य हैं ॥३॥

फिर वे किन के साथ क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

ग्नाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः ।
प्रैभ्य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी ॥४॥

पदार्थः—(यत्) जो (विश्वे, देवासः) समस्त विद्वान् जन (नरः, च) और विद्वानों के बीच अग्रगामी (स्वगूर्ताः) अपने पराक्रम से उद्यमी जन (नराम्) मनुष्यों की (ग्नाः) वाणी तथा अपनी (च) भी वाणियों को प्राप्त होकर (वावृधन्त) सब ओर से बढ़ते हैं (प्र, एभ्यः) उत्कर्षण से इनसे (इन्द्रावरुणा) बिजुली और सूर्य्य के समान वा (उर्वी) विस्तृत (पृथिवि) पृथिवी (द्यौः, च) और प्रकाश के समान वर्त्तमान (महित्वा) महिमा से (भूतम्) प्रसिद्ध होवें । वे सब जन मनुष्यों से सत्कार करने योग्य हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे राजन् ! जो

विद्या, धर्म और विनय से बढ़ते हैं उन उद्यमियों के साथ इन प्रजाजनों की पालना करो ॥४॥

फिर राज सेनाजन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

स इत्सुदानुः स्ववाँ ऋतावेन्द्रा यो वाँ वरुण दाशति त्मन् ।

इषा स द्विषस्तरेद्दास्वान्वंसद्रयिं रयिवतश्च जनान् ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्रा, वरुण) सूर्य्य और वायु के समान वर्त्तमान सभासेनाधीशो (वाम्) तुम दोनों का (यः) जो (सुदानुः) उत्तम देने वाला (स्ववान्) जिसके अपने लाग बहुत विद्यमान हैं (ऋतावा) जो सत्य को भजता है वह (त्मन्) आत्मा में अभयपन (दाशति) देता है जो (दास्वान्) देने वाला होता हुआ (द्विषः) शत्रुजनों को (तरेद) तरे और (रयिवतः) बहुधनवान् (जनान्, च) जनों को भी (रयिम्) धन का (वंसत्) विभाग करे (सः, इत्) वही सर्वोत्तम और (सः) वह राजा होने योग्य है ॥५॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य वर्षा करा कर और वायु प्राण धारण करा कर यह दोनों सब प्राणियों को निर्भय करते हैं वैसे जो संग्राम के बीच अच्छे प्रकार सन्मुख हैं उनसे पाये हुए धन का यथावत् विभाग कर सोलहवां भाग भृत्यों के लिये देते हैं तथा वहां संग्राम में जो योद्धा जीतें उनके लिये उससे भी सोलहवां भाग देते हैं वेही विजयी होकर आपस में प्रसन्न होते हैं ॥५॥

फिर राजजन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।

अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात्प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्रावरुणौ) बिजुली और वायु के समान वर्त्तमान सभा सेनाधीशो (देवा) देने वालो (युवम्) तुम दोनों (दाश्वध्वराय) जिससे अहिंसामय यज्ञ देने योग्य होता है उसके लिए (अस्मे) हम लोगों में (यम्) जिस प्रशस्त (रयिम्) धन (वसुमन्तम्) बहुत ऐश्वर्य्ययुक्त और (पुरुक्षुम्) बहुत अन्न वाले जन को (धत्थः) धारण करो (यः) जो (वनुषाम्) राज्य को मांगने वाले शत्रुओं की (अशस्तीः) अप्रशंसाओं को (प्र, भनक्ति) अच्छे प्रकार मर्दित करता है (सः) सो (अपि) ही अतीव स्थिर (स्यात्) हो ॥६॥

भावार्थः—हे सभासेनाधीशो ! जो तुम लोग उत्तम बुद्धि और अतुल

लक्ष्मी को हम लोगों में धरो तो हम लोग सदैव विजयी होकर विजय, राज्य और ऐश्वर्य को बढ़ावें ॥६॥

फिर कौन राजा योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात् ।

येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान्प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्रावरुणा) वायु और बिजुली के समान वर्त्तमान प्रशंसित राजा (येषाम्, पृतनासु) जिन शूरवीरों की सेनाओं में (शुष्मः) बलवान् (साह्वान्) सहनशील (ततुरिः) उत्तीर्ण होने वाला सेनापति वर्त्तमान है। तथा जो (सद्यः) शीघ्र (द्युम्ना) धन और यशों को (प्र, तिरते) उत्तमता से प्राप्त होता है वा जिसके पराक्रम से (रयिः) लक्ष्मी (स्यात्) हो (उत) और (नः) हम लोग (सूरिभ्यः) जो विद्वान् हैं उनके लिये (सुत्रात्रः) जो अच्छों की रक्षा करने वालों की रक्षा करने वाला (देवगोपाः) विद्वानों का रक्षक हो वही राजा होने योग्य है ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जो सूर्य के समान प्रतापी, पवन के समान बलवान्, विद्यावान् के समान नम्रता और शूरवीरों की रक्षा करने वाले हों वे सर्वत्र शीघ्र शत्रुओं को जीत के यशस्वी होकर धनवान् होते हैं ॥७॥

फिर वे राजप्रजाजन कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं ॥

नू न इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा ।

इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥८॥

पदार्थः—हे (इन्द्रावरुणा) सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य वर्त्तमान (नः) हम लोगों की (गृणाना) प्रशंसा करने और (देवा) देने वाले राजप्रजाजनो जैसे तुम दोनों (सौश्रवसाय) उत्तम यश होने के लिये (रयिम्) धन का (पृङ्क्तम्) संबन्ध करो (इत्था) ऐसे (महिनस्य) बड़े के (शर्धः) बल की (गृणन्तः) प्रशंसा करते हुए हम लोग (नावा) नाव से (अपः) जलों को (न) जैसे वैसे (दुरिता) दुःख से उल्लंघन करने योग्य कष्टों को (नू) शीघ्र (तरेम) तरें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जो राजप्रजाजन आपस में प्रीति वाले होकर अन्नादि पदार्थों के लिए धन इकट्ठा करते हैं वे सूर्य और चन्द्रमा के तुल्य प्रतापी होकर जैसे बड़ी नौका से दुःख से तरने योग्य समुद्रों के जन पार होते हैं वैसे ही बड़े-बड़े दुःख और दारिद्र्यों को शीघ्र तरते हैं ॥८॥

फिर वह राजा कैसा है और उसके लिये क्या उपदेश देना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

प्र स॒म्राजे॑ बृह॒ते मन्म॒ नु प्रि॒यमर्च॑ दे॒वाय॒ वरु॑णाय स॒प्रथः॑ ।
अ॒यं य उ॒र्वी म॑हि॒ना महि॑व्रतः॒ क्रत्वा॑ वि॒भात्य॒जरो॒ न शो॒चिषा॑ ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वन् (यः) जो (अयम्) यह (सप्रथः) सत्कीर्ति से विख्यात और (महिव्रतः) बड़े-बड़े धर्मयुक्त कर्म जिसके विद्यमान वह (क्रत्वा) प्रज्ञा वा कर्म से (महिना) और महिमा वा (शोचिषा) अपने प्रकाश से (अजरः) वृद्धावस्थारूपी रोग से रहित सूर्य जीवात्मा वा परमात्मा के (न) समान (उर्वी) सूर्यमण्डल और पृथिवी को (विभाति) प्रकाशित करता है उस (वरुणाय) सब से उत्तम (देवाय) अभय देने वाले (बृहते) बड़े (सम्राजे) अच्छे सूर्य के समान विद्या और नम्रता से प्रकाशमान के लिये (प्रियम्) प्रीति करने वाले (मन्म) विज्ञान को आप (नु) शीघ्र (प्र, अर्च) सत्कार देवें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे विद्वान्जनो ! जो सूर्य के तुल्य, जीव के तुल्य, वा परमात्मा के तुल्य शुभ गुण कर्म स्वभावों से देदीप्यमान, विद्या और विनय से युक्त, उत्तम यत्न के साथ वाणी, मन और शरीर से पिता के समान प्रजाजनों की पालना करने को प्रयत्न करता है उस चक्रवर्त्ती, सर्वोत्कृष्ट, विद्वान् और सत्कार करने योग्य राजा के लिये राज्य में सत्य नीति को आप लोग समझावें जिससे यह सर्वत्र धर्मयुक्त यश वाला हो ॥९॥

फिर वे राज प्रजाजन क्या कर कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रा॑वरुणा सुतपावि॒मं सु॒तं सोमं॑ पिबतं॒ मद्यं॑ धृतव्रता ।
यु॒वो रथो॑ अध्व॒रं दे॒ववी॑तये॒ प्रति॒ स्वस॑रमु॒प या॑ति पी॒तये॑ ॥१०॥

पदार्थः—हे (इन्द्रावरुणा) बिजुली के समान वर्त्तमान (सुतपौ) सुन्दर ब्रह्मचर्य आदि अनुष्ठान तप जिनका और (धृतव्रता) जिन्होंने उत्तम कर्म धारण किये हैं वे सभा और सेनाधीशो जिन (युवोः) तुम लोगों का (रथः) विमान आदि यान (देववीतये) दिव्यगुणों की प्राप्ति और (पीतये) उत्तमोत्तम रस पीने के लिये (प्रति, स्वसरम्) प्रतिदिन (अध्वरम्) अहिंसामय यज्ञ को (उप, याति) प्राप्त होता है वे (इमम्) इस (सुतम्) उत्पन्न किये हुए (मद्यम्) जिससे जीव आनन्द को प्राप्त होता है उस (सोमम्) बड़ी-बड़ी ओषधियों के रस को (पिबतम्) पिओ ॥१०॥

भावार्थः—हे राजप्रजाजनो ! तुम प्रतिदिन सोमलता आदि से उत्पन्न किये हुए सर्व रोगों के हरने, बल, बुद्धि, पराक्रम बढ़ाने वाले, हिंसारहित, महौषधियों के रस को पीकर धर्मात्मा होओ ॥१०॥

फिर वे क्या करके क्या करावें इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयेथाम् ॥११॥

पदार्थः—हे (इन्द्रावरुणा) बिजुली और वायु के समान वर्त्तमान (वृषणा) बलवान् राजा प्रजाजनो ! तुम (मधुमत्तमस्य) अतीव मधुरादिगुणयुक्त (वृष्णः) बल करने वाले (सोमस्य) बड़ी बड़ी ओषधियों के रसों के सेवने से (आ, वृषेथाम्) बलिष्ठ होओ जिन (वाम्) तुम दोनों का (इदम्) यह (परिषिक्तम्) सब ओर से सींचा हुआ (अन्धः) अन्न है वे तुम (अस्मे) हम लोगों में वा हम को (अस्मिन्) इस (बर्हिषि) अवकाश में (आसद्य) बैठ के (मादयेथाम्) आनन्दित करो ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो सोमलतादि रसयुक्त अन्न वा पान से आप आनन्दित होकर हमको आनन्दित करते हैं वे ही सबसे सत्कार करने योग्य होते हैं ॥११॥

इस सूक्त में इन्द्र वरुण के समान राजप्रजा के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में अड़सठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्यैकोनसप्ततितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । इन्द्राविष्णू देवते । १ । ३ । ६ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ४ । ८ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ ब्राह्म्युष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब आठ ऋचावाले उनहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा और शिल्पी जन क्या करके क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्राविष्णू) सूर्य्य और बिजुली के समान वर्त्तमान महाराज और शिल्पीजनो जिन (वाम्) तुम दोनों को मैं (कर्मणा) अतीव चाहे हुए काम से

(सम्, हिनोमि) अच्छे प्रकार बढ़ाता हूं (अस्य) इस (अपसः) काम के (पारे) पार में (इषा) अन्नादि पदार्थों से (सम्) अच्छे प्रकार बढ़ाता हूं वे (अरिष्टैः) हिंसक-रहित (पथिभिः) मार्गों से (नः) हम लोगों को (पारयन्ता) पार कराते हुए तुम (यज्ञम्) संगतिकरण कार्य (द्रविणम्, च) और धन वा यश को (जुषेथाम्) सेवो और हम लोगों के लिये (धत्तम्) धारण कीजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे अध्यापक और उपदेशको ! जैसे वायु और बिजुली विमानादिकों में अच्छे प्रकार जोड़े हुए गतिरूप कर्म के विषय को स्थान से पार पहुंचाते हैं वैसे उनकी विद्या में तुमको प्रेरणा देकर जिस प्रकार हम लोग बढ़ावें उस प्रकार बढ़कर निर्विघ्न मार्गों से हम लोगों को लेजा के धन और यश की प्राप्ति निरन्तर कराइये उन आप लोगों की सेवा हम लोग निरन्तर करें ॥१॥

फिर वे दोनों कैसे हैं और क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

या विश्वासां जनितारा मतीनामिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना ।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः ॥२॥

पदार्थः—हे राजा और शिल्पीजनो (या) जो (विश्वासाम्) समस्त (मतीनाम्) बुद्धियों के (जनितारा) उत्पन्न करने वाले (सोमधाना) जिन के बीच सोम धरते हैं वे (कलशा) घट के समान वर्त्तमान (इन्द्राविष्णू) सूर्य और बिजुली जिन (वाम्) तुम दोनों में (अर्कैः) मन्त्रों वा सत्कारों से (शस्यमानाः) प्रशंसा को प्राप्त होती हुई (गिरः) वाणी (गीयमानासः) सुन्दरता से गाई हुई तथा (स्तोमासः) जो स्तुति किये जाते हैं वे सब को (प्र, अवन्तु) अच्छे प्रकार पालें उन सबों की तुम लोग (प्र) अच्छे प्रकार रक्षा करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे विद्वानो ! जो वायु और बिजुली बुद्धि बढ़ाने और सब विद्याओं के धारण करने वाले वर्त्तमान हैं उनके अच्छे प्रकार प्रयोग से अर्थात् कार्यों में लाने से विद्या, शिक्षा तथा वाणियों की अच्छे प्रकार रक्षा करो ॥२॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोमं यातं द्रविणो दधाना ।
सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्राविष्णू) वायु और बिजुली के समान सभासेनापतियो

(मदानाम्) आनन्दों के बीच (मदपती) आनन्द के पालने और (द्रविणो) धन वा यश के (दधाना) धारण करने वालो ! तुम दोनों (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (आ, यातम्) प्राप्त होओ (वाम्) तुम दोनों को (मतीनाम्) मनुष्यों के बीच (अक्तुभिः) रात्रियों से और (उक्थैः) वेदस्थ स्तोत्रों से (शस्यमानासः) प्रशंसायुक्त किई जाती (स्तोमासः) स्तुतियां (सम्, अञ्जन्तु) अच्छे प्रकार प्रकट करें जिससे प्रीति के साथ तुम दोनों हम लोगों को (सम्) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो वायु और बिजुली के समान सब के आनन्द के बढ़ाने वाले, मनुष्यों से प्रशस्त किये जाते और विद्या वा धन को अच्छे प्रकार देते हुए प्रयत्न करते हैं वे ही राजकर्म के योग्य होते हैं ॥३॥

फिर उस राजा को कौन प्राप्त होकर क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु ।
जुषेथां विश्वा हवना मतीनामुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे ॥४॥

पदार्थः - हे (इन्द्राविष्णू) वायु और सूर्य के तुल्य वर्त्तमान सभासेनाधीशो (वाम्) तुम दोनों जो (अश्वासः) महात्माजन (अभिमातिषाहः) अभिमानयुक्त शत्रुओं को सह सकते हैं वे (सधमादः) समान स्थान को (आ, वहन्तु) प्राप्त करें उन (मतीनाम्) मनुष्यों के (विश्वा) सब (हवना) देने लेने योग्य (ब्रह्माणि) धनों को (जुषेथाम्) सेवो और (मे) मेरी (गिरः) वाणियों को भी (उप, शृणुतम्) समीप में सुनो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे राजन् ! यदि बुद्धिमान्, अतीव बलवान् और शत्रुओं के बल के सहने वाले मनुष्य आपको प्राप्त होवें तो वे सब ऐश्वर्य्य और विद्या को संसार में विस्तारें ॥४॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्राविष्णू तत्पनयाय्यं वां सोमस्य मद उरु चक्रमाथे ।
अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयोऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि ॥५॥

पदार्थः—हे राजा और प्रजाजनो जो (इन्द्राविष्णू) वायु और सूर्य्य (सोमस्य) ऐश्वर्य्य का (मदे) आनन्द प्राप्त होने पर (तत्) उस (अन्तरिक्षम्) भूमि और सूर्य्य के बीच की पोल को (पनयाय्यम्) प्रशंसा के योग्य करते हैं उनकी (वाम्)

तुम (उरु, चक्रमाथे) बहुत कामना करो और (वरीयः) अत्यन्त श्रेष्ठ को (अप्रथतम्) विख्यात करो उससे (नः) हम लोगों के (जीवसे) जीवन को तथा (रजांसि) ऐश्वर्यों को (अकृणुतम्) सिद्ध करो ॥५॥

भावार्थः—हे राजप्रजाजनो ! जैसे यज्ञ से शोध हुए वायु और बिजुली समस्त चराचर जगत् को प्रशंसा के योग्य और नीरोग करते हैं वैसे विधान कर उससे हमारे ऐश्वर्य्य और जीवन को अधिक करो ॥५॥

फिर उन्हें कैसे सिद्ध कर क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रा॑विष्णू ह॒विषा॑ वावृधा॒नाग्रा॑द्वाना॒ नम॑सा रातहव्या ।
घृता॑सुती॒ द्रवि॑णं धत्तम॒स्मे स॑मु॒द्रः स्थः॑ क॒लशः॑ सोम॒धानः॑ ॥६॥

पदार्थः—हे ऋत्विज् और यजमानो जैसे (हविषा) होमे हुए पदार्थ से (वावृधाना) निरन्तर शुद्धि से बढ़े वा बढ़ाने (अग्राद्वाना) अग्रभाग के भोगने को विभाग करने वाले और (नमसा) अन्नादि पदार्थ से (रातहव्या) देने योग्य देने वाले (घृतासुती) सब ओर से जिन की घी से प्रेरणा होती वे (इन्द्राविष्णू) वायु और सूर्य (अस्मे) हम लोगों में (द्रविणम्) धन और यश को धरते हैं वैसे तुम (धत्तम्) धरो तथा (सोमधानः) और सोमादि ओषधि जिसमें स्थापन की जाती हैं और (समुद्रः) अच्छे प्रकार जल तरंगें लेते हैं जिसमें वह अन्तरिक्ष वा मेघ (कलशः) घट के समान वर्त्तमान है उसके समान (स्थः) होते हो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। हे ऋत्विग् और यजमान आदि जनो ! सुगन्धि और घृतादि पदार्थों के होम से वायु और सूर्य को शुद्ध कर सबके भाग्य की सिद्धि कर सब के सुख के बढ़ाने वाले होओ ॥६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रा॑विष्णू॒ पिब॑तं॒ मध्वो॑ अ॒स्य सोम॑स्य दस्रा ज॒ठरं॑ पृणेथाम् ।
आ वा॒मन्धां॑सि मदि॒राण्य॑ग्म॒न्नुप॒ ब्रह्मा॑णि शृणु॒तं हवं॑ मे ॥७॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको (दस्रा) दुःख के विनाश करने वालो (वाम्) तुम दोनों को जो (मध्वः) मधुरगुणयुक्त (अस्य, सोमस्य) सोम आदि ओषधियों से उत्पन्न हुए इस रस के (मदिराणि) आनन्द करने वाले (अन्धांसि) अन्न (अग्मन्) प्राप्त होवें उनको (इन्द्राविष्णू) वायु और बिजुली के समान (पिबतम्) पिओ और उनसे (जठरम्) उदर को (आ, पृणेथाम्) अच्छे प्रकार भरो

फिर (मे) मेरे (ब्रह्माणि) पढ़े हुए वेदस्तोत्रों को और (हवम्) नित्य के वेदपाठ को (उप, शृणुतम्) समीप में सुनो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो मनुष्य ओषधों से शरीर के रोगों को तथा विद्या, सत्संग और धर्म के अनुष्ठान से आत्मा के रोगों को निवार के वायु और विजुली के समान बलिष्ठ हो विद्याभ्यास करके विद्यार्थियों की परीक्षा करते हैं वे सब के दुःखों को निवृत्त कर आनन्द दे सकते हैं ॥७॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को कहते हैं ॥

उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतरश्चनैनोः ।

इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥८॥

पदार्थः—हे (विष्णो) विजुली के समान व्याप्त होने वाले (इन्द्रः, च) और परमैश्वर्य्यवान् वायु के समान वर्त्तमान तुम दोनों (यत्) जो (सहस्रम्) असंख्य सेना समूह है (तत्) उसे (त्रेधा) तीन प्रकार (अपस्पृधेथाम्) स्पर्द्धा अर्थात् तर्क वितर्क से स्थापित करो और उसे (वि, ऐरयेथाम्) विविध प्रकार से यथास्थान स्थित कराओ ऐसा करो तो तुम (उभा) दोनों (जिग्यथुः) विजय को प्राप्त होते हो (न) नहीं (परा, जयेथे) पराजय को प्राप्त होते हो तथा (एनोः) इनके बीच (कतरः) कोई एक (चन) भी (न) नहीं (परा, जिग्ये) पराजित होता है ॥८॥

भावार्थः—हे सेनाबल के अधीशो ! यदि आप लोग सर्वदा सेना की उन्नति के लिये और युद्धविद्या की वृद्धि के लिये प्रयत्न कीजिये तो सर्वत्र जीतिये, कहीं भी न पराजित हूजिये ॥८॥

इस सूक्त में इन्द्र और विष्णु के समान सभा और सेनेश आदि के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में उनहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्ऋचस्य सप्ततितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । १ । ५ निचृज्जगती । २ । ३ । ४ । ६ जगतीच्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले सत्तरवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में भूमि और सूर्य कैसे वर्त्तमान हैं इस विषय को कहते हैं ॥

घृतवंती भुवंनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मंधुदुघें सुपेशंसा ।
द्यावांपृथिवी वरुंणस्य धर्मंणा विष्कंभिते अजरे भूरिरेतसा ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो तुम (भुवनानाम्) समस्त लोकों सम्बन्धी (अभिश्रिया) सब ओर से कान्तियुक्त (उर्वी) बहुत पदार्थों से युक्त और (पृथ्वी) विस्तार से युक्त (घृतवती) जिन में बहुत उदक वा दीप्ति विद्यमान वे तथा (मधुदुघे) जो मधुरादि रसों से परिपूर्ण करने वाले (सुपेशसा) जिनका शोभायुक्त रूप वा जिन से दीप्तिमान सुवर्ण उत्पन्न होता (भूरिरेतसा) जिन से बहुत वीर्य्य वा जल उत्पन्न होता और (अजरे) जो अजीर्ण अर्थात् छिन्न भिन्न नहीं वे (वरुणस्य) सूर्य वा वायु के (धर्मणा) आकर्षण [खींचने] वा धारण करने आदि गुण से (विष्कभिते) विशेषता से धारण किये हुए (द्यावापृथिवी) भूमि और सूर्य्य हैं उन्हें यथावत् जानो ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप भूगर्भ और बिजुली की विद्या को जानो और जो दो पदार्थ सूर्य्य तथा वायु से धारण किये हुए हैं उनसे बल की वृद्धि और कामना की पूर्णता करो ॥१॥

फिर वे कैसे हैं इस विषय को कहते हैं ॥

असंश्चन्ती भूरिधारे पयंस्वती घृतं दुंहाते सुकृते शुचिंव्रते ।
राजंन्ती अस्य भुवंनस्य रोदसी अस्मे रेतंः सिञ्चतं यन्मनुंर्हितम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (असश्चन्ती) अलग अलग वर्त्तमान (भूरिधारे) जिनकी बहुत धारायें विद्यमान (पयस्वती) जो बहुत जलसे युक्त (सुकृते) जो ईश्वर ने सुन्दर बनाये वा अच्छे कर्म कराने वाले और (शुचिव्रते) पवित्र कर्मयुक्त हैं तथा (अस्य) इस (भुवनस्य) ब्रह्माण्ड के सम्बन्ध में (राजन्ती) प्रकाशमान हैं वे (रोदसी) आकाश और पृथिवी (अस्मे) हम लोगों में (यत्) जो (मनुर्हितम्) मनुष्यों का हित करने वाला है उस (घृतम्) जल को (दुहाते) पूर्ण करते हैं उस (रेतः) जल वा वीर्य्य को (सिञ्चतम्) सींचते हैं उन्हें यथावत् उपकार के लिये प्राप्त होओ ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! सूर्य्य और भूमि ही सब जगत् की रक्षा के निमित्त बहुत उदक आदि पदार्थयुक्त और सब के काम को पूर्ण करते हैं उनको यथावत् जानकर कार्य्य की सिद्धि के लिये अच्छे प्रकार उनका प्रयोग करो ॥२॥

फिर इन को जान कौन कैसा होता है इस विषय को कहते हैं॥

यो वा॑मृ॒जवे॒ क्रम॑णाय रोदसी॒ मर्तो॑ द॒दाश॑ धिषणे॒ स साध॑ति।
प्र प्र॒जाभि॑र्जायते॒ धर्म॑ण॒स्परि॑ यु॒वोः सि॒क्ता विषु॑रूपाणि॒ सव्र॑ता॥३॥

पदार्थः—हे राज प्रजाजनो! जो (धिषणे) प्रज्ञा और प्रगल्भता के कारण (रोदसी) आकाश और पृथिवी (वाम्) तुम लोगों के (ऋजवे) सरलपन के लिये और (क्रमणाय) गमन वा आगमन के लिए होते हैं उनको (यः) जो (मर्त्तः) मनुष्य (ददाश) देता है (सः) वह कार्यों को (प्र, साधति) प्रसिद्ध करता है और (प्रजाभिः) उत्पन्न हुए पदार्थों के साथ (जायते) प्रसिद्ध होता है और (युवोः) तुम्हारे (धर्मणः) धर्म से (विषुरूपाणि) व्याप्तरूप (सव्रता) समान कर्मों को तथा (सिक्ता) वीर्य्य वा उदकों को सींचे हुए करते हैं वे (परि) सब ओर से सिद्ध करने योग्य हैं॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो भूगर्भविद्या और द्यावापृथिवी के कर्मों को जानते हैं वे प्रजा, पशु, विद्या और राज्य से युक्त होते हैं॥३॥

फिर वे कैसे हैं और क्या प्राप्त करावे हैं इस विषय को कहते हैं॥

घृ॒तेन॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॒भीवृ॑ते घृत॒श्रिया॑ घृत॒पृचा॑ घृता॒वृधा॑।
उ॒र्वी पृ॒थ्वी हो॑तृ॒वूर्ये॑ पु॒रोहि॑ते॒ ते इद्विप्रा॑ ईळते सु॒म्नमि॒ष्टये॑॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (विप्राः) मेधावी बुद्धिमान् पुरुष (घृतेन) जल से तथा (उर्वी) बहुत गुण और पदार्थों से युक्त (अभीवृते) सब ओर से वर्त्तमान (घृतश्रिया) अत्यन्त प्रकाश वा अवकाश धन जिन का (घृतपृचा) जो प्रकाश वा जल से अच्छे प्रकार संबन्ध किये हुए और (घृतवृधा) तेज से बढ़ते हैं तथा (होतृवूर्ये) होताजन जिन से स्वीकार होते और (पुरोहिते) आगे से हित को धारण करते हुए (इष्टये) संग के लिये (पृथ्वी) बहुत विस्तारयुक्त जो (द्यावापृथिवी) बिजुली और अन्तरिक्ष हैं उनकी (ईळते) प्रशंसा करते हैं (ते, इत्) वे ही सब से (सुम्नम्) सुख पाते हैं॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जैसे उत्तम बुद्धिमान् जन बिजुली और अन्तरिक्ष की विद्या को जान के कार्यों में लगाते हैं वैसे तुम भी उनका प्रयोग करो॥४॥

फिर उनसे क्या करने योग्य है इस विषय को कहते हैं॥

मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते ।
दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता महि श्रवो वाजमस्मे सुवीर्यम् ॥५॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको जो (मधुश्चुता) मधुर जल के वर्षाने और (मधुदुघे) मधुर जल से काम पूरे करने (मधुव्रते) जिनके मधुर काम (देवता) जो दिव्यरूप (अस्मे) हम लोगों में (यज्ञम्) संगतिमय व्यवहार (द्रविणम्) धन (महि) महान् (श्रवः) अन्न (वाजम्) विज्ञान (सुवीर्यम्, च) और उत्तम पराक्रम को भी (दधाने) स्थापन करते हुए (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि यह दोनों पदार्थ वर्त्तमान हैं उनसे तुम (नः) हमारे लिये (मधु) मधुर जल के (मिमिक्षताम्) सींचने की इच्छा करो ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे भूमि और सूर्य्य सत्य कर्मयुक्त, इच्छा पूरी करने और मधुरादि रस देने, धन, अन्न, बल और विज्ञान के बढ़ाने वाले हों वैसा अनुष्ठान करो ॥५॥

फिर वे कैसे किसके तुल्य और क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा ।
संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयिमस्मे समिन्वताम् ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (विश्वविदा) जिन से सर्व सुख को प्राप्त होते हैं (सुदंससा) जिनसे सुन्दर काम सिद्ध होते हैं (संरराणे) जो अच्छे प्रकार सुख देते हैं और (विश्वशंभुवा) जो सब के लिये सुख की भावना कराते वे (रोदसी) बहु-पदार्थयुक्त द्यावापृथिवी (अस्मे) हम लोगों में (सनिम्) अच्छे प्रकार विभाग को और (वाजम्) विज्ञान वा अन्न तथा (रयिम्) धन को (सम्, इन्वताम्) उत्तमता से व्याप्त हों तथा (पिता) पिता के समान (द्यौः) सूर्य्य वा विद्युत् अग्नि (च) और (माता) माता के समान (पृथिवी) भूमि (च) भी (नः) हमारे लिये (ऊर्जम्) अन्न वा पराक्रम को (पिन्वताम्) सुखपूर्वक परिपूर्ण करें उनको यथावत् जानो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! आप जो सूर्य पिता के समान, जो पृथिवी माता के समान ये दोनों सर्व सुख देने वा धन और ऐश्वर्य्य की प्राप्ति कराने वा मंगल कराने वाले उत्तम क्रिया-युक्त और बल वा पराक्रम देने वाले वर्त्तमान हैं उनको उत्तम यत्न के साथ कैसे न जानो ॥६॥

इस सूक्त में द्यावापृथिवी और उनके समान अध्यापक और उपदेशक वा ऋत्विक् और यजमानों के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह छठे मण्डल में सत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्वस्यैकसप्ततितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः । सविता देवता । १ जगती । २ । ३ निचृज्जगतीच्छन्दः । निषादः स्वरः । ४ त्रिष्टुप् । ५ । ६ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले इकहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में फिर राजा कैसा हो इस विषय को कहते हैं ॥

उदु ष्य देवः सविता हिरण्ययां बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः ।
घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवा सुदक्षो रजसो विधर्मणि ॥१॥

पदार्थः—जो (मखः) यज्ञ के समान सुख करने वाला (विधर्मणि) विशेष धर्म में (सुदक्षः) सुन्दर बल जिसका वह (युवा) जवान (सुक्रतुः) उत्तम बुद्धियुक्त, (सविता) ऐश्वर्य्यवान् (देवः) विद्वान् (सवनाय) ऐश्वर्य के लिये (घृतेन) जल वा घी से युक्त (पाणी) प्रशंसा करने योग्य (हिरण्ययां) सुवर्ण आदि आभूषण युक्त (बाहू) भुजाओं को (उत्, अयंस्त) उठाता है (स्यः, उ) वही (रजसः) लोक के विरोधियों को (अभि, प्रुष्णुते) सब ओर से भस्म करता है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो विद्वान् अति बल से युक्त भुजाओं वाला, अत्यन्त बुद्धिमान्, विशेषता से धर्मात्मा होकर ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये निरन्तर उद्यम करता है वह ऐश्वर्य को प्राप्त होकर फिर सब प्रजा के धर्म में प्रवेश कर जैसे यज्ञ सुख देता है वैसे सुखी करता है ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने ।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वान् राजा (यः) जो (द्विपदः) मनुष्यादि दो पग वाले जीव और (यः) जो (चतुष्पदः) गौ आदि चार पग वाले पशु आदि जीवों के (भूमनः) बहुरूपी (विश्वस्य) समग्र संसार के (प्रसवे) उस उत्पन्न हुए स्थान में (निवेशने)

जिसमें सब निवेश करते हैं अभिव्याप्त होकर विराजमान है उस (सवितुः) सकल जगत् के उत्पन्न करने वाले (देवस्य) अपने आप प्रकाशमान परमेश्वर के (श्रेष्ठे) प्रशंसित व्यवहार में (सवीमनि) उत्पन्न हुए जगत् में (वसुनः, च) धन के भी (दावने) देने में जैसे (वयम्) हम लोग उद्यत (स्याम) हों वैसे तुम (च) भी जिस कारण (असि) हो इससे यहां राजा होओ ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे विद्वानो ! जैसे इस जगत् में जगदीश्वर अभिव्याप्त होकर सब की रक्षा करता है वैसे ही इस जगत् में व्याप्त होकर विद्या और विनय से समस्त राज्य को पुत्र के समान पालो ॥२॥

फिर वह राजा कैसा और किस से क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥३॥

पदार्थः—हे (सवितः) अच्छे कामों में प्रेरणा देने वाले राजन् ! (त्वम्) आप (अद्य) अब (अदब्धेभिः) न नष्ट करने वा नष्ट होने और (शिवेभिः) सुख करने वा मंगल विधान करने वाले (पायुभिः) रक्षा के निमित्तों से (नः) हमारे (गयम्) संतान धन और घर की (परि, पाहि) सब ओर से रक्षा करो तथा (हिरण्यजिह्वः) सुवर्ण के समान सत्य से जिसकी वाणी प्रकाशित है ऐसे होते हुए (नव्यसे) अतीव नवीन (सुविताय) ऐश्वर्य्य के लिए हमारे पुत्रादिकों की (रक्ष) रक्षा करो जैसे (अघशंसः) चोर (नः) हम लोगों के प्रति (माकिः) न (ईशत) विघ्नों के करने को समर्थ हो वैसा करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो राजा प्रयत्न के साथ प्रजाओं की अच्छे प्रकार रक्षा कर डाकुओं को मारे वही नवीन नवीन ऐश्वर्य्य को उत्पन्न कर निरन्तर प्रजाजनों का प्यारा और धार्मिक हो ॥३॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात् ।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (दमूनाः) दमनशील (हिरण्यपाणिः) सुवर्ण आदि हाथ में लिये हुए (अयोहनुः) लोहे के समान दृढ़ ठोढ़ी रखने और (यजतः) संग

करने वाला (मन्द्रजिह्वः) जिसकी आनन्द देने वाली वाणी विद्यमान वह (सविता) ऐश्वर्य्यदाता और (देवः) सुख देनेहारा विद्वान् (प्रतिदोषम्) जैसे रात्रि रात्रि के प्रति सूर्य्य उदय होता है वैसे प्रजा पालन करने के लिये (उत्, अस्थात्) उठता है तथा (दाशुषे) दान करने वाले के लिए (भूरि) बहुत (वामम्) प्रशंसा योग्य कर्म के प्रति (आ, सुवति) उद्योग करने में प्रेरणा देता है (स्यः, उ) वही राजा होने को योग्य होता है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जैसे ईश्वर से नियुक्त किया सूर्यलोक प्रतिक्षण अपनी क्रिया को नहीं छोड़ता वैसे ही जो राजा न्याय से राज्य पालने के लिये प्रतिक्षण उद्योग करता है, एक क्षण भी व्यर्थ नहीं खोता तथा सब मनुष्यों को उत्तम कर्मों के बीच, आप वर्त्ताव कर, उन्हें प्रेरणा देता है वही शम दम आदि शुभ गुणों से युक्त राजा होने योग्य है यह सब जानें ॥४॥

फिर वह राजा किसके तुल्य कैसा हो इस विषय को कहते हैं ॥

उदू अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका ।
दिवो रोहांस्यरुहत्पृथिव्या अरीरमत्पतयत्कच्चिदभ्वम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (सविता) सूर्यमण्डल (दिवः) आकाश की (रोहांसि) चढ़ाइयों को (अरुहत्) चढ़ता है और (पृथिव्याः) अन्तरिक्ष के मध्य में भूमि के समस्त (अभ्वम्) महान् न्याय को (अरीरमत्) वर्त्तावे (चित्) और (पतयत्) पति के समान आचरण करे वैसे जिसकी (सुप्रतीका) सुन्दर प्रतीति करने वाले काम जिनसे होते ऐसे (हिरण्यया) हिरण्य के समान सुदृढ़ सुशोभित (बाहू) भुजा वर्त्तमान हैं वह (उ) ही (उपवक्तेव) समीप कहने वाले के समान (कत्) कब (उत्, अयान्) उदय हो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं—हे राजन् ! आप कब सूर्य के समान न्याय और विनय से प्रकाशित, सुन्दर दृढ़ अङ्गयुक्त, श्रेष्ठ धर्मज्ञ विद्वानों के समान वक्ता होओ । जैसे इस जगत् में सर्वोपकार के लिये ईश्वर ने सूर्य बनाया है वैसे ही सब के सुख के लिये राजा बनाया है ॥५॥

फिर वह प्रजाओं के लिये क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥६॥

पदार्थः—हे (सवितः) ऐश्वर्य्य के देने वाले (देव) दिव्यगुणयुक्त राजन्! जैसे (हि) जिस कारण से आप (अद्य) अब (वामम्) प्रशंसा करने योग्य सुख (उ) और (श्वः) अगले दिन (वामम्) प्रशंसा करने योग्य सुख तथा (दिवेदिवे) प्रतिदिन (वामम्) अति उत्तम सुख (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सावीः) उत्पन्न करो उससे उस (अया) इस (धिया) प्रज्ञा वा कर्म से (भूरेः) बहुत प्रकार के (वामस्य) प्रशंसित (क्षयस्य) घर के (वामभाजः) वामभाज अर्थात् प्रशंसित सुख भोगने वाले हम लोग (स्याम) हों ॥६॥

भावार्थः- हे राजन्! जिससे आप हम प्रजाजनों के लिये प्रशंसनीय सुख को उत्पन्न करते और रक्षा का विधान करते हो वैसे हम लोग सुख से धन, घर और प्रशंसित कामों के सेवने वाले होकर आपकी आज्ञा में नित्य वर्तें ॥६॥

इस सूक्त में सविता, राजा और प्रजा के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में इकहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य द्विसप्ततितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। इन्द्रासोमौ देवते। १ निचृत्त्रिष्टुप्। २। ४। ५ विराट्त्रिष्टुप्। ३ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब बहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अध्यापक और उपदेशक किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं॥

इन्द्रा॑सोमा॒ महि॒ तद्वां॑ महि॒त्वं यु॒वं म॒हानि॑ प्रथ॒मानि॑ चक्रथुः।
यु॒वं सूर्यं॑ विवि॒दथु॑र्यु॒वं स्व१॒॑र्विश्वा॒ तमां॑स्यहतं नि॒दश्च॑ ॥१॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको जैसे (इन्द्रासोमा) बिजुली और चन्द्रमा (सूर्यम्) सूर्य्य को (विविदथुः) प्राप्त होते हैं वैसे (युवम्) तुम न्यायरूपी सूर्य्य को प्राप्त होओ जैसे यह बड़े कामों को करते हैं वैसे (वाम्) तुम्हारा (तत्) वह (महि) महान् (महित्वम्) बड़प्पन है और वैसे (युवम्) तुम (महानि) प्रशंसा योग्य (प्रथमानि) ब्रह्मचर्य्य और विद्या ग्रहण और दान आदि कामों को (चक्रथुः) करो (युवम्) तुम जैसे यह दोनों (विश्वा) समस्त (तमांसि) रात्रि के समान अविद्या आदि अन्धकारों को नष्ट करते हैं वैसे अविद्या और अन्याय से उत्पन्न हुए पापों को

(अहतम्) नष्ट करो और (स्वः) सुख की प्राप्ति करो वा कराओ (निदः, च) और निन्दक तथा पाखण्डियों को निरन्तर नष्ट करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है। हे प्रजाजनो ! जैसे सूर्य को प्राप्त होकर चन्द्र आदि लोक प्रकाशित होते हैं वैसे ही अध्यापक और उपदेशकों का संग कर सब प्रकाशित आत्मा वाले हों ॥१॥

फिर वे किसके तुल्य क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रासोमा वासयथ उषासमुत्सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह ।
उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेनाप्रथतं पृथिवीं मातरं वि ॥२॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको जैसे (इन्द्रासोमा) वायु और बिजुली (उषासम्) प्रभातकाल को (उत्) और (सूर्यम्) सूर्यमण्डल को वसाते हैं वैसे विद्या और न्याय से प्रजाजनों को तुम (वासयथः) बसाओ जैसे दोनों (ज्योतिषा) ज्योति के (सह) साथ (द्याम्) प्रकाश को रोकें वैसे अच्छे व्यवहार को (उप, स्कम्भथुः) व्यवहार करने वाले के समीप रोको जैसे यह दोनों (स्कम्भनेन) रोकने से (मातरम्) माता के समान वर्त्तमान (पृथिवीम्) पृथिवी को विस्तारते हैं वैसे ही राज्य को (वि, अप्रथतम्) विशेषता से विस्तारो और सुख को (नयथः) प्राप्त करो ॥२॥

भावार्थः - इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे अध्यापक और उपदेशको ! जैसे बिजुली और पवन सूर्य्य आदि लोकों का निवास कराते हैं वैसे ही प्रजाजनों को अच्छे उपदेश से सुख में बसाओ ॥२॥

फिर वे किसके तुल्य कैसे वर्त्ताव करावें इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठां हथो वृत्रमनु वां द्यौरमन्यत ।
प्रार्णांस्यैरयतं नदीनामा समुद्राणि पप्रथुः पुरूणि ॥३॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको तुम दोनों जैसे (इन्द्रासोमौ) बिजुली और पवन (परिष्ठाम्) सब ओर से स्थित होने वाले (वृत्रम्) सूर्यावरक (अहिम्) मेघ को (हथः) छिन्नभिन्न करते और (अपः) जलों को (आ, पप्रथुः) व्याप्त होते हैं। वैसे अविद्या को नष्ट भ्रष्ट कर विद्या को विस्तारो। जैसे यह दोनों (नदीनाम्) नदियों के (पुरूणि) बहुत (समुद्राणि) उन स्थानों को जिनमें अच्छे प्रकार जल तरङ्गें लेते हैं तथा (अर्णांसि) जलों को प्रेरणा देते हैं वैसे शास्त्रों के बीच मनुष्यों के अन्तःकरणों को (प्र, ऐरयतम्) प्रेरित करो ऐसे (वाम्) तुम दोनों के बीच एक (द्यौः) प्रकाश के समान (अमन्यत) मानता है दूसरा (अनु) तदनुगामी होता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे अध्यापक और उपदेशको ! जैसे वायु और बिजुली मेघ को नष्ट भ्रष्ट कर जल को वर्षाते हैं वैसे कुत्सित शिक्षा को विनष्ट कर अच्छी शिक्षा की वर्षा करो ॥३॥

फिर वे किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्तर्नि गवामिद्दधथुर्वक्षणासु ।
जगृभथुरनपिनद्धमासु रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ॥४॥

पदार्थः – हे अध्यापक और उपदेशको ! तुम दोनों जैसे (इन्द्रासोमा) पवन और बिजुली (आमासु) न पकी हुई सामग्रियों के (अन्तः) बीच (पक्वम्) पाक को (नि, दधथुः) स्थापन करते हैं और (गवाम्) किरणों के बीच (इत्) निश्चित तथा (आसु) इन (वक्षणासु) नदियों में (अनपिनद्धम्) खुला हुआ (जगृभथुः) ग्रहण करते हैं तथा इन (चित्रासु) अद्भुत (जगतीषु) सृष्टियों के (अन्तः) बीच (रुशत्) सुरूप को धारण करते हैं वैसे तुम वर्तो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो विजुली और सोम के समान सब में दृढ़ ज्ञान स्थापन कर नदी के प्रवाह के तुल्य आगे चलाते हैं वे संसार में कल्याण करने वाले होते हैं ॥४॥

फिर वे किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥५॥

पदार्थः—(अङ्ग) हे मित्र अध्यापक और उपदेशक (युवम्) तुम दोनों (इन्द्रासोमा) वायु और बिजुली के समान वर्त्तमान (तरुत्रम्) दुःख से तारने और (अपत्यसाचम्) सन्तान के बीच व्याप्त होने वाले (श्रुत्यम्) श्रवणों में उत्तम ज्ञान को (रराथे) देओ और (युवम्) तुम दोनों (चर्षणिभ्यः) मनुष्यों के लिए (उग्रा) तेजस्वी होते हुए (पृतनाषाहम्) सेनाओं को सहने वाले (नर्यम्) मनुष्यों में उत्तम (शुष्मम्) बल को (सम्, विव्यथुः) अच्छे प्रकार युक्त करो ॥५॥

भावार्थः—हे अध्यापक वा उपदेशको ! आप लोग पवन और बिजुली के समान सर्वत्र अनुकूलता से संग वाले होते हुए उत्तम सन्तानों को उत्पन्न कर मनुष्यों के हित करने वाले शरीर और आत्मा के बल को उत्पन्न करें जिससे शत्रुओं की सेना को सह सकें ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, सोम, अध्यापक और उपदेशकों के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह छठे मण्डल में वहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ॥

अथ त्र्यृचस्य त्रिसप्ततितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो वार्हस्पत्य ऋषिः। बृहस्पतिर्देवता। १। २ त्रिष्टुप्। ३ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब तीन ऋचावाले तिहत्तरवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा किसके तुल्य कैसा हो इस विषय को कहते हैं॥

यो अ॑द्रि॒भित्प्र॑थम॒जा ऋ॒तावा॒ बृह॒स्पति॑राङ्गिर॒सो ह॒विष्मा॑न्।
द्वि॒बर्ह॑ज्मा प्रा॒घ॒र्म॒सत्पि॒ता न॒ आ रोद॑सी वृष॒भो रो॑रवीति॥१॥

पदार्थः—हे राजन् (यः) जो (प्रथमजाः) प्रथम उत्पन्न हुआ (अद्रिभित्) मेघों का विदीर्ण करने और (ऋतावा) जल को अच्छे प्रकार सेवने वाला (बृहस्पतिः) पृथिवी आदि का रक्षक और (आङ्गिरसः) वायु और बिजुलियों में उत्पन्न हुआ (हविष्मान्) जिसमें हवि होमे हुए विद्यमान जो (द्विबर्हज्मा) दो से बढ़ता है उससे युक्त भूमि जिसकी वह (प्राघर्मसत्) प्रताप का सेवने वाला (नः) हमारा (पिता) पालने वाले के समान (वृषभः) वर्षा कराने वाला मेघों को छिन्न भिन्न करने वाला (रोदसी) आकाश और पृथिवी को प्राप्त हो (आ, रोरवीति) बिजुली आदि के योग से सब ओर से शब्द करता है उसके तुल्य तुम होओ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो राजा मेघ का सूर्य जैसे वैसे शत्रुओं का विदीर्ण करने वाला, ज्येष्ठ, महात्मा, धर्मात्मा जनों की पालना करने वाला, प्रजावान्, पृथिवी पर सुख वर्षानेहारा होकर प्रजाओं में न्याय का निरन्तर उपदेश करे वही पृथिवी के तुल्य क्षमाशील और प्रतापवान् तथा प्रजाजनों में पिता के समान वर्त्ते॥१॥

फिर उस राजा को कैसे सेना के अधिकारी करने चाहियें इस विषय को कहते हैं

जना॑य चि॒द्य ईव॑त उ लो॒कं बृह॒स्पति॑र्दे॒वहू॑तौ च॒कार॑।
घ्नन्वृ॒त्राणि॒ वि पुरो॑ दर्दरीति॒ जय॒ञ्छत्रूँ॑र॒मित्रा॑न्पृ॒त्सु साह॑न्॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (देवहूतौ) विद्वानों के बुलाने में (बृहस्पतिः) बड़ों की पालना करने वाले सूर्यलोक के समान (ईवते) समीप आने वाले (जनाय) मनुष्य के लिये (लोकम्) देखने योग्य सुख वा स्थान को प्रकाशित (चकार) करता है

तथा (पृत्सु) संग्रामों में (साहन्) सहन करता हुआ (अमित्रान्) विरोधी उदासीन जनों को (जयन्) जीतता और (शत्रून्) शत्रुओं को (घ्नन्) मारता हुआ तथा (वृत्राणि) धनों को प्राप्त होता हुआ (पुरः) शत्रुओं के नगरों को (वि, दर्दरीति) निरन्तर विदीर्ण करता है वह (उ, चित्) ही सेनापति होने योग्य है ॥२॥

भावार्थः—हे राजन्! जो न्याय से प्रजा पालने के लिये प्रसन्न, पूर्णशरीरात्मबलयुक्त, वीर विद्वान् होवें वे सेनापति हों जिससे शत्रुओं के जीतने और उनकी सेना के सहने और उसे छिन्न भिन्न करने तथा विजय और धन को पाने को समर्थ हों ॥२॥

फिर वह कैसा हो इस विषय को कहते हैं ॥

बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्व१'रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (महः) महान् (देवः) देदीप्यमान (एषः) यह (बृहस्पतिः) सूर्य के समान वेदवाणी को पालने वाला (गोमतः) बहुत किरणों से युक्त (व्रजान्) मेघों को छिन्न भिन्न कर (अपः) जलों को वर्षाय जगत् की पालना करता है वैसे शत्रुओं से (अप्रतीतः) न प्रतीति को प्राप्त होता हुआ (बृहस्पतिः) बड़े राज्य की यथावत् रक्षा करने वाला राजा (अर्कैः) वज्र आदि के साथ प्रजाजनों के (सिषासन्) काम पूरे करने की इच्छा कर (अमित्रम्) शत्रु को (हन्ति) मारता है तथा शत्रुओं को (सम्, अजयत्) अच्छे प्रकार जीतता है तथा (वसूनि) धनों को प्राप्त होता और (स्वः) अन्तरिक्ष के समान अक्षय सुख को उत्पन्न करता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो राजा सूर्य के समान विद्या, विनय और अच्छे सहाय से प्रकाशमान, प्रजाजनों की पालना करता और सब के लिये अभयदान देता हुआ दुष्टकर्म करने वालों की निवृत्ति करता है वही यहां राजाओं में महान् राजा होता है ॥३॥

इस सूक्त में बृहस्पति के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में तिहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य चतुःसप्ततितमस्य सूक्तस्य भरद्वाजो बार्हस्पत्य ऋषिः। सोमारुद्रौ देवते। १। २। ४ त्रिष्टुप्। ३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब चार ऋचा वाले चौहत्तरवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में राजा और वैद्य कैसे श्रेष्ठ हों इस विषय को कहते हैं॥

सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं१ प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे॥१॥

पदार्थः—हे (सोमारुद्रा) चन्द्रमा और प्राण के तुल्य राजा और वैद्यजनो तुम दोनों (असुर्यम्) मेघ के इस कर्म को (धारयेथाम्) धारण करो जिससे (वाम्) तुम को (इष्टयः) इच्छाओं की प्राप्तियां (अरम्) पूरी (प्र, अश्नुवन्तु) मिलें तथा (दमेदमे) घर घर में (सप्त) सात (रत्ना) रमणीय हीरा आदि को (दधाना) धारण किये हुए (नः) हमारे (द्विपदे) दो पग वाले मनुष्य आदि के लिये (शम्) सुख करने वाले (भूतम्) होओ और (चतुष्पदे) गो आदि चौपाये जीवों के लिये (शम्) सुख करने वाले होओ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे मनुष्यो! जो राजा चन्द्रमा के तुल्य और जो वैद्य प्राण के तुल्य सब को निर्भय और नीरोग करें वे सब सुखों को प्राप्त होते हैं जो प्रजा के घर-घर में धन और आरोग्य को बढ़ावें वे द्विपग वाले और चार पग वालों से बहुत सुखों को प्राप्त होते हैं॥१॥

फिर वे किसको निवारि के क्या करें इस विषय को कहते हैं॥

सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु॥२॥

पदार्थः—हे (सोमारुद्रा) ओषधी और प्राणों के समान सुख उत्पन्न करने वाले राजा और वैद्य जनो! तुम (या) जो (अमीवा) रोग (नः) हमारे (गयम्) घर वा संतान को (आविवेश) प्रवेश करता है उस (विषूचीम्) विषूच्यादि को (वि, वृहतम्) छिन्न भिन्न करो तथा (पराचैः) पराजित हुए दुष्टों की (निर्ऋतिम्) दुःख देने वाली कुनीति को (आरे) दूर (बाधेथाम्) हटाओ, जिस कारण (अस्मे) हम लोगों में (भद्रा) सेवन करने योग्य (सौश्रवसानि) उत्तम अन्नादि पदार्थों में सिद्ध अन्न (सन्तु) हों॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो राजा और

वैद्यवर रोगों को शरीर के प्रवेश से पहिले ही दूर करते हैं तथा कुनीति और कुपथ्य को भी पहिले दूर करते हैं उनके पुरुषार्थ से सब मनुष्य बहुत धनधान्य और आरोग्यपनों को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥३॥

पदार्थः—हे (सोमारुद्रा) यज्ञ से शुद्ध किये हुए सोमलता और वायु के समान राजा और वैद्यो (युवम्) तुम (यत्) जो (नः) हमारे (तनूषु) शरीरों में (कृतम्) किया हुआ और (बद्धम्) लगा हुआ (एनः) कुपथ्यादि वा अपराध (अस्ति) है उसे (अस्मत्) हम से (मुञ्चतम्) छुड़ाओ और हमारे रोगों को (अव, स्यतम्) नष्ट करो तथा (अस्मे) हमारे (तनूषु) शरीरों में (विश्वा) समस्त (एतानि) यह (भेषजानि) ओषधें (धत्तम्) स्थापन करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे राजन् ! आप वैद्य विद्या का प्रचार कर हमारे शरीरों को नीरोग कर और पुरुषार्थ में प्रवेश करा के दुःखों को अलग कर अच्छे वैद्यों का सत्कार करो ॥३॥

फिर वे क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः ।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद् गोपायतं नः सुमनस्यमाना ॥४॥

पदार्थः—हे (सोमारुद्रौ) शुद्ध ओषधी और प्राणों के समान वर्त्तमान (तिग्मायुधौ) तेज आयुधों तथा (तिग्महेती) पैने वज्र वालो (सुशेवौ) अच्छे सुख युक्त वैद्य और राजा जनो तुम (इह) इस संसार में (नः) हम लोगों को (सु, मृळतम्) अच्छे प्रकार सुखी करो तथा (नः) हम लोगों को (वरुणस्य) उदान के समान बलवान् रोग के (पाशात्) बन्धन से (प्र, मुञ्चतम्) छुड़ाओ और (सुमनस्यमाना) सुन्दर विचारवान् होते हुए (नः) हम लोगों की निरन्तर (गोपायतम्) रक्षा करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जैसे महौषधि और बहिःप्राण वायु सबकी सदा पालना करते हैं वैसे उत्तम राजा और वैद्यजन समस्त उपद्रव और रोगों से निरन्तर रक्षा करते हैं ॥४॥

इस सूक्त में ओषधि और प्राण के समान वैद्य और राजा के कामों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में चोहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकोनविंशत्यृचस्य पञ्चसप्ततितमस्य सूक्तस्य पायुर्भारद्वाज ऋषिः । १ वर्म । २ धनुः । ३ ज्या । ४ आर्त्नी । ५ इषुधिः । ६·१ सारथिः । ६·२ रश्मयः । ७ अश्वाः । ८ रथः । ९ रथगोपाः । १० लिङ्गोक्ता देवताः । ११ । १२ । १५ । १६ इषवः । १३ प्रतोदः । १४ हस्तघ्नः । १७—१९ लिङ्गोक्ता देवताः सङ्ग्रामाशिषः (१७ युद्धभूमिर्ब्रह्मणस्पतिरदितिश्च । १८ कवचसोमवरुणाः । १९ देवा ब्रह्म च) १ । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ४ । ५ । ७ । ८ । ९ । ११ । १४ । १८ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ जगती । १० विराड् जगती छन्दः । निषादः स्वरः । १२ । १९ विराडनुष्टुप् । १५ निचृदनुष्टुप् । १६ अनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । १३ स्वराडुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । १७ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब उन्नीस ऋचावाले पिचहत्तरवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में शूरवीर किसे धारण कर क्या क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे ।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥१॥

पदार्थः—हे वीर (यत्) जो (जीमूतस्येव) मेघ के समान (प्रतीकम्) प्रतीति कराने वाला वर्म (भवति) होता है उससे (वर्मी) कवचधारी होकर (समदाम्) अहंकारों के साथ वर्त्तमान संग्रामों के (उपस्थे) समीप (याति) जाता है तथा (अनाविद्धया) शस्त्रास्त्ररहित अर्थात् अनविधे (तन्वा) शरीर से (त्वम्) तुम शत्रुओं को (जय) जीतो (सः) सो (वर्मणः) कवच का (महिमा) महत्त्व (त्वा) तुम्हें (पिपर्तु) पाले ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो मेघ के समान सुन्दर कवचों को धारण कर युद्ध करते हैं वे घाव से रहित शरीर वाले हुए वैरियों को जीत सकते हैं, जिस जिस प्रकार से शरीर में घाव करने वाले नोकदार शस्त्र न प्राप्त हों उन-उन उपायों का वीरजन सदैव आश्रय करें ॥१॥

फिर वीर किससे क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

धन्व॑ना गा धन्व॑नाजिं ज॑येम धन्व॑ना तीव्राः स॒मदो॑ जयेम ।
धनुः॒ शत्रो॑रपका॒मं कृ॑णोति॒ धन्व॑ना॒ सर्वाः॑ प्र॒दिशो॑ जयेम ॥२॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो जो (धनुः) धनुष् (शत्रोः) शत्रु के (अपकामम्) काम का विनाश (कृणोति) करता है जिस (धन्वना) धनुष् से जैसे हम (गाः) भूमियों को (धन्वना) धनुष् से (आजिम्) संग्राम को (जयेम) जीतें (धन्वना) धनुष् से (तीव्राः) कठिन तेज (समदः) संग्रामों को (जयेम) जीतें और (धन्वना) धनुष् से (सर्वाः) सब (प्रदिशः) दिशा प्रदिशाओं में स्थित जो शत्रुजन उनको (जयेम) जीतें वैसे उससे तुम भी उनको जीतो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है - जो मनुष्य धनुर्वेद को पढ़ के पूरा शस्त्र और अस्त्र बनाने का अभ्यास कर प्रयोग करने को जानते हैं वे ही सर्वत्र विजयी होते हैं ॥२॥

फिर ये किससे कौन क्रिया करते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

व॒क्ष्यन्ती॑वेदा ग॑नीगन्ति॒ कर्णं॑ प्रि॒यं सखा॑यं परिषस्वजा॒ना ।
योषे॑व शिङ्क्ते॒ वित॒ताधि॒ धन्व॒न् ज्या इ॒यं सम॑ने पा॒रय॑न्ती ॥३॥

पदार्थः—हे शूरवीर जो (इयम्) यह (ज्या) प्रत्यञ्चा अर्थात् धनुष् की तांति (वक्ष्यन्तीव) जैसे विदुषी कहने वाली होती वैसे (प्रियम्) अपने प्यारे (सखायम्) मित्र के समान वर्त्तमान पति को (परिषस्वजाना) सब ओर से संग किये हुए (योषेव) पत्नी के समान (कर्णम्) कान को (आ, गनीगन्ति) निरन्तर प्राप्त होती है वैसे (अधि) (धन्वन्) धनुष् के ऊपर (वितता) विस्तारी हुई तांति (समने) संग्राम में (पारयन्ती) पार को पहुंचाती हुई (शिङ्क्ते) गूंजती है उस (इव) ही को तुम यथावत् जानकर उसका प्रयोग करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे वीर पुरुषो ! जैसे प्रिय मित्र पति के साथ स्त्री प्यारी संवद्ध अर्थात् प्रेम की डोरी से बंधी हुई है और जैसे विद्यार्थिनी कन्याओं के साथ पढ़ाने वाली विदुषी स्त्री बंधी हुई दुःख से और अविद्या से पार पहुंचाती है वैसे ही यह धनुष् की प्रत्यञ्चा युद्ध से पार पहुंचा कर सदैव सुखी करती है ॥३॥

फिर वे वीर किनसे क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।

अप शत्रून् विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥४॥

पदार्थः—हे वीर पुरुषो (ते) वे दोनों (इमे) ये (संविदाने) प्रतिज्ञा पालने वालियों के समान वा (अमित्रान्) शत्रुजनों को (विस्फुरन्ती) कंपाती (आर्त्नी) वेग से जातीं और (आचरन्ती) सब ओर से प्रिय आचरण करती हुई (योषा) पत्नी स्त्री जैसे (समनेव) समान मन वाली वैसे वा (पुत्रम्) पुत्र को जैसे (मातेव) माता वैसे (उपस्थे) समीप में विजय को (बिभृताम्) धारण करें और (शत्रून्) शत्रुजनों को (अप, विध्यताम्) पीटें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे वीरजनो ! जैसे समान प्रीति की सेवने वाली पत्नी पति को तथा माता पुत्र को निरन्तर सुखी करती है वैसे शस्त्र और अस्त्रों से शत्रुओं को निवारो ॥४॥

फिर वीरों को क्या धारण करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।

इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (बह्वीनाम्) बहुत बाणों की (पिता) पालना करने वाले के समान (अस्य) इसके (बहुः) बहुत (पुत्रः) पुत्र के समान बाण (समना) संग्रामों को (अवगत्य) प्राप्त होकर (इषुधिः) तूणीर (चिश्चा) चीं चीं शब्द (कृणोति) करता है तथा (पृष्ठे) पीठ पर (निनद्धः) नित्य बंधा और (प्रसूतः) उत्पन्न होता हुआ (सर्वाः) समस्त (सङ्काः) संग्रामस्थ वैरियों की टोली (पृतनाः, च) और सेनाओं को (जयति) जीतता है वह तुम लोगों को यथावत् बना कर धारण करना चाहिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे वीरपुरुषो ! यदि तूणीर को तुम धारण करो तो शत्रुओं को विदीर्ण करके पुत्रों के प्रति पिता जैसे वैसे प्रजा-पालन करके समस्त शत्रुसेनाओं को जीत सको ॥५॥

फिर वीरजन किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः पुरो यत्रयत्र कामयते सुषारथिः ।

अभीशूनां महिमानं पनायत मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वान् वीरपुरुषो जैसे (सुषारथिः) अच्छा सारथि (रथे) रथ पर (तिष्ठन्) स्थित होता हुआ (यत्रयत्र) जहां जहां (पुरः) पहिले (कामयते) कामना करता है वहां वहां (वाजिनः) वेग वाले अश्वों को (नयति) प्राप्ति कराता है जैसे (रश्मयः) किरणें सूर्य के (पश्चात्) पीछे (अनु, यच्छन्ति) अनुकूल नियम से जाती हैं वैसे वहां वहां (अभीशूनाम्) बाहुओं की (महिमानम्) महिमा को (मनः) और चित्त को तुम (पनायत) व्यवहार में लाओ वा उसकी स्तुति करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है हे राजा आदि वीरपुरुषो ! तुम जितेन्द्रिय होकर अपने कार्य के पार रथ से अच्छे सारथी के समान जाओ तथा प्रधान के अनुकूल जाने वाले बड़े व्यवहार को करके सुन्दर शिक्षा को भृत्यों को पहुंचा कर काम सिद्धि करो ॥६॥

फिर मनुष्य किन से किन्हें जीतें इस विषय को कहते हैं ॥

तीव्रान् घोषान्कृण्वते वृषपाणयोऽश्वा रथेभिः सह वाजयन्तः ।
अवक्रामन्तः प्रपदैरमित्रान् क्षिणन्ति शत्रूँरनपव्ययन्तः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (प्रपदैः) अति उत्तम गमनों से (अवक्रामन्तः) इधर उधर जाते और (अनपव्ययन्तः) व्यर्थ खर्च को न प्राप्त होते हुए तथा (रथेभिः) रमणीय यानों के (सह) साथ (वाजयन्तः) आप जाते वा दूसरों को ले जाते हुए (वृषपाणयः) वृष के समान व्यवहार जिनका वे (अश्वाः) घोड़े वा अग्नि आदि पदार्थ (तीव्रान्) तीक्ष्ण (घोषान्) शब्दों को (कृण्वते) करते हैं और (अमित्रान्) वैर करते हुए (शत्रून्) शत्रुजनों को (क्षिणन्ति) क्षीण करते हैं उनको तुम क्षीण करो ॥७॥

भावार्थः—हे राजपुरुषो ! तुम घोड़ों को अच्छे प्रकार शिक्षा देकर तथा अग्नि आदि का संप्रयोग और शत्रुओं को आक्रमण कर जीतो ॥७॥

फिर मनुष्य कहां ठहर कर क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म ।
तत्रा रथमुप शग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (सुमनस्यमानाः) सुन्दर विचार करते हुए (वयम्) हम लोग (यत्र) जहां (आयुधम्) शस्त्र (निहितम्) स्थापित किया वा जहां (अस्य) इसका (वर्म) कवच और जिस (अस्य) इसका (हविः) लेने योग्य (नाम) नाम है (तत्रा) वहां इस (रथवाहनम्) जिससे रथ चलाया जाता है उसको वा (शग्मम्) सुख को और (रथम्) रमणीय यान को (विश्वाहा) सब दिनों (उप,सदेम) प्राप्त होवें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! तुम लोग अच्छे विचार के साथ अग्नि आदि के सम्प्रयोग से बनाये हुए आयुधों से युक्त उत्तम यान द्वारा सर्वदैव शत्रुओं को ताड़ना देओ ॥८॥

फिर राजपुरुष कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

स्वादुषंसदः पितरो वयोधाः कृच्छ्रेश्रितः शक्तीवन्तो गभीराः ।
चित्रसेना इषुबला अमृध्राः सतोवीरा उरवो व्रातसाहाः ॥९॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो (स्वादुषंसदः) स्वादिष्ट अन्नों के भोगने को स्थिर होते वा न्याय करने को सभा में स्थिर होते हैं वा (वयोधाः) जो अवस्थाओं को धारण करते हैं वा (कृच्छ्रश्रितः) जो अति दुःख में भी धर्म का आश्रय करते हैं वा (शक्तीवन्तः) प्रशंसित बहुत शक्ति विद्यमान जिनके वा (गभीराः) जो गंभीर आशय वाले हैं वा (चित्रसेनाः) जिनकी चित्रविचित्र सेना है तथा (इषुबलाः) शस्त्र और अस्त्रों से युक्त जिनकी सेना और (अमृध्राः) जो अहिंसा न करने वाले (सतोवीराः) सत्व बल से युक्त (व्रातसाहाः) जो शत्रुसमूहों को सहते हैं वे (उरवः) बहुत पुत्रों की (पितरः) पिता जैसे धर्मिष्ठ वैसे विज्ञान और अवस्था से बढ़े हुए पालने वाले जन प्रजा की पालना करते हुए धर्मिष्ठ मनुष्य हों उनसे तुम प्रजाओं की पालना निरन्तर करो ॥९॥

भावार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो ! तुम सभ्य, पिता के समान प्रजाजनों की पालना करने वाले, बहुत अवस्था से युक्त और दुःख को पाकर न कंपने वाले, सामर्थ्यवान्, गम्भीर आशय, अद्भुत सेना तथा शस्त्र और अस्त्रों की विद्या में कुशल, बल से युक्त, शत्रुसमूह का सहने वाला और बहुत गुण कर्मों से युक्त जो पुरुष उसी का राज्याभिषिचन काम में अभिषेक करो ॥९॥

फिर मनुष्य परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ब्राह्मणासः पितरः सोम्यासः शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा ।
पूषा नः पातु दुरितादृतावृधो रक्षा माकिर्नो अघशंस ईशत ॥१०॥

पदार्थः—हे (पितरः) पिता के समान प्रजाजनों पर कृपा करने वाले (सोम्यासः) शान्तियुक्त गुणों के योग्य (ब्राह्मणासः) वेद और ईश्वर के जानने वाले विद्वानो ! तुम (नः) हम लोगों को अधर्म के आचरण से अलग रक्खो जैसे (अनेहसा) न हिंसा करने वाली (शिवे) मंगलकारिणी (द्यावापृथिवी) सूर्य और पृथिवी (नः) हमारे लिये हों वैसे उपदेश करो जैसे (पूषा) विद्या और विनय से

पुष्टिकारक (ऋतावृधः) सत्य का बढ़ाने वाला (नः) हम लोगों की (दुरितात्) दुष्ट आचरण से (पातु) पालना करे जिससे (अघशंसः) चोर हम लोगों को (माकिः) न (ईशत) मारने के लिये समर्थ हों, हे राजन् तुम इन की निरन्तर (रक्ष) रक्षा करो ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन तुम लोगों को विद्या और विनय देवें तथा बिजुली और भूगर्भ-विद्या से सुख से सम्पन्न करें और अधर्माचरण से अलग रक्खें तथा जो राजा चोर आदि दुष्टों से निरन्तर रक्षा करे उन सब की तुम निरन्तर सेवा करो ॥१०॥

फिर भूमि कैसी वेग वाली है और युद्ध करने वाले युद्ध क्यों करते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

सुपर्णं वस्ते मृगो अस्या दन्तो गोभिः सन्नद्धा पतति प्रसूता ।
यत्रा नरः सं च वि च द्रवन्ति तत्रास्मभ्यमिषवः शर्म यंसन् ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (गोभिः) किरण वा धेनुओं से (सन्नद्धा) अच्छे प्रकार से बंधी और (प्रसूता) उत्पन्न हुई भूमि (मृगः) मृग के समान (पतति) जाती है (अस्याः) इस के बीच (दन्तः) जिससे डसते हैं वह दांत वर्त्तमान है जो (सुपर्णम्) सुन्दर पालना करने वाले को (वस्ते) उढ़ाता है और (यत्रा) जिस संग्राम में (नरः) योद्धा नर (च) भी (सम्, द्रवन्ति) अच्छे प्रकार दौड़ते हैं (वि) विशेष धावन करते हैं (तत्र) वहां (इषवः) बाण (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (शर्म) सुख जैसे (यंसन्) देवें वैसा अनुष्ठान करो ॥११॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो भूमि परमेश्वर ने पालना के लिये बनाई है और मृग के समान शीघ्र जाती है तथा जिसके लिये बहुत संग्राम होता है उसकी प्राप्ति के निमित्त वीरता का संग्रह करो ॥११॥

फिर मनुष्यों को किससे कैसे शरीर करने चाहियें इस विषय को कहते हैं ॥

ऋजीते परि वृङ्धि नोऽश्मा भवतु नस्तनूः ।
सोमो अधि ब्रवीतु नोऽदितिः शर्म यच्छतु ॥१२॥

पदार्थः—हे विद्वान् राजा जो आप (ऋजीते) सीधे चलते हो वह (नः) हम लोगों को (परि, वृङ्धि) सर्व प्रकार वृद्धि देओ और (सोमः) जो ओषधियों का रस निकालने वाला विद्वान् जैसे (नः) हम लोगों का (तनूः) शरीर (अश्मा)

पत्थर के समान दृढ़ (भवतु) हो वैसा (अधि, ब्रवीतु) ऊपर ऊपर उपदेश करे और (अदितिः) माता के समान भूमि (नः) हम लोगों के लिये (शर्म) सुख वा घर (यच्छतु) देवे ॥१२॥

भावार्थः—राजा ऐसा प्रयत्न करे जैसे दीर्घ ब्रह्मचर्य्य से विषयासक्ति के त्याग से और व्यायाम से क्षत्रियों के शरीर पाषाण के तुल्य कठिन हों और उपदेशक भी सबको ऐसा ही उपदेश करें जिससे सब दृढ़ शरीर आत्मा वाले हों ॥१२॥

फिर रानी संग्राम में क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

आ जङ्घन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते ।

अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय ॥१३॥

पदार्थः—हे (अश्वाजनि) घोड़ों को पटकी देने वाली रानी तू जो वीरजन (एषाम्) इन शत्रुओं के (सानु) अङ्गों को (आ, जङ्घन्ति) सब ओर से निरन्तर काटते हैं तथा (जघनान्) नीचकर्म करने वालों को (उप, जिघ्नते) उपस्थित होकर मारते हैं उन (प्रचेतसः) उत्तम विज्ञान वाले (अश्वान्) बड़े बड़े बलवान् शूरवीर पुरुषों को (समत्सु) संग्रामों में (चोदय) प्रेरो ॥१३॥

भावार्थः—संग्राम में राजा के अभाव में रानी सेनापति हो और जैसे राजा युद्ध कराने को वीरों को प्ररणा दे वैसे ही वह भी आचरण करे ॥१३॥

फिर राजा और भृत्य परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को कहते हैं ॥

अहिरिव भोगैः पर्येति बाहुं ज्याया हेतिं परिबाधमानः ।

हस्तघ्नो विश्वा वयुनानि विद्वान् पुमान्पुमांसं परि पातु विश्वतः ॥१४॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो (हस्तघ्नः) हाथों से मारने वाला (ज्यायाः) प्रत्यञ्चा के संबंधी (हेतिम्) वज्र के समान बाण को (परिबाधमानः) सब ओर से रोकता और (विद्वान्) जानने योग्य को जानता हुआ (पुमान्) पुरुषार्थीजन (अहिरिव) मेघ के समान (भोगैः) भोगों के साथ (बाहुम्) अपने स्वामी की भुजा को और (विश्वा) समस्त (वयुनानि) ज्ञानों को (परि, एति) सब ओर से प्राप्त होता है वा (विश्वतः) सब ओर से (पुमांसम्) पुरुषार्थी की (परि, पातु) अच्छे प्रकार पालना करे उसका सर्वदा सत्कार करो ॥१४॥

भावार्थः—हे वीरो ! जो राजा समस्त मेघ के समान भोगवृष्टि

करता है तथा समग्र विद्यायुक्त होता हुआ सब की सब ओर से तृप्ति करता है उसकी सब जन सब ओर से निरन्तर रक्षा करें ॥१४॥

फिर रानी कैसी हो इस विषय को कहते हैं ॥

आलाक्ता या रुरुशीर्ष्ण्यथो यस्या अयो मुखम् ।
इदं पर्जन्यरेतस इष्वै देव्यै बृहन्नमः ॥१५॥

पदार्थः—(या) जो (आलाक्ता) विष से युक्त (रुरुशीर्ष्णी) रुरु जाति के मृग के शिर के समान जिसका शिर और (अथो) इसके अनन्तर (यस्याः) जिसका (इदम्) (अयः) लोहे युक्त (मुखम्) मुख है उस धारण करने वाली (पर्जन्यरेतसे) मेघ के जल के समान वीर्यवती (देव्यै) दिव्य और (इष्वै) गमन करती हुई शूरवीर स्त्री के लिये (बृहत्) बहुत (नमः) अन्न हो ॥१५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो रानी धनुर्वेद जानती हुई शस्त्र अस्त्र फेंकने वाली है उसका वीरों को निरन्तर सत्कार करना चाहिये ॥१५॥

फिर सेनापति सेना को क्या आज्ञा दे इस विषय को कहते हैं ॥

अवसृष्टा परा पत शरव्ये ब्रह्मसंशिते ।
गच्छामित्रान्प्र पद्यस्व मामीषां कं चनोच्छिषः ॥१६॥

पदार्थः—हे (शरव्ये) बाणों को व्याप्त होने वालों में उत्तम (ब्रह्मसंशिते) वेद जानने वाले सेनापति से प्रशंसा पाई हुई सेना तू (अवसृष्टा) शत्रुओं के ऊपर पड़ी हुई (परा) हम लोगों से पराङ्मुख (पत) जाओ तथा (अमित्रान्) शत्रुओं के समीप (गच्छ) पहुँचो (प्र, पद्यस्व) प्राप्त होओ अर्थात् शत्रुजनों पर चढ़ाई करो और (अमीषाम्) परोक्षस्थ शत्रुओं के बीच (कम्, चन) किसी को भी (मा) मत (उत्, शिषः) शेष छोड़ो ॥१६॥

भावार्थ—सेनापति पहिले सेना को अच्छी शिक्षा देकर जब संग्राम में उपस्थित हो तब अपनी सेना को आज्ञा दे कि शत्रुओं के बीच से एक को भी न छोड़ना ॥१६॥

फिर उसी विषय को कहते हैं ॥

यत्र बाणाः सम्पतन्ति कुमारा विशिखा इव ।
तत्रा नो ब्रह्मणस्पतिरदितिः शर्म यच्छतु विश्वाहा शर्म यच्छतु ॥१७॥

पदार्थः—हे राजन् (यत्र) जिस संग्राम में (कुमाराः) कुमार अर्थात् जिनका

मुण्डन हो गया है उन (विशिखाइव) विना चोटी वालों के समान (बाणाः) बाण (सम्पतन्ति) अच्छे प्रकार गिरते हैं (तत्रा) वहां (नः) हमारे लिये जैसे (ब्रह्मणः) धन के (पतिः) पालक धनकोश का ईश (विश्वाहा) सब दिनों (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे और (अदितिः) भूमि (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे वैसे विधान करो ॥१७॥

भावार्थः—हे राजन्! जब संग्राम के लिए सेना जावे तब किसी पदार्थ के विना किसी भृत्य को क्लेश न हो वैसा अनुष्ठान कीजिये ऐसे किये पीछे आपका ध्रुव विजय हो ॥१७॥

फिर योद्धाओं के प्रति अध्यक्ष कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मर्माणि ते वर्मणा छादयामि सोमस्त्वा राजामृतेनानु वस्ताम्।
उरोर्वरीयो वरुणस्ते कृणोतु जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु ॥१८॥

पदार्थः—हे योद्धा वीर मैं (ते) तेरे (मर्माणि) शरीरस्थ जीवन हेतु अंगों को (वर्मणा) कवच से (छादयामि) ढांपता हूं (सोमः) ऐश्वर्य्य संपन्न (राजा) राजा (अमृतेन) जल आदि से (त्वा) तुझे (अनु) अनुकूलता से (वस्ताम्) ढांपे तथा (वरुणः) सेना की पालना करने वाला उतम विद्वान् (उरोः) बहुत (वरीयः) अत्यन्त श्रेष्ठ अन्न आदि (ते) तेरा (कृणोतु) करे तथा (जयन्तम्) शत्रुओं को जीतते हुए (त्वा) तुझे (देवाः) उपदेशक विद्वान् वा अधिष्ठाता जन (अनु, मदन्तु) अनुकूलता से हर्षित करें वा करावें ॥१८॥

भावार्थः—सेनाध्यक्षों को चाहिये कि सब वीरों के शरीरों की रक्षा करने वाले कवचों को यथावत् करें और सर्वाधीश राजा अमृतात्मक अर्थात् अमृत के समान भोग सब के लिये देवे तथा वस्त्र और शस्त्र आदि पदार्थ भी देवे। और युद्ध करते हुए सब को सब अध्यक्ष हर्ष देवें और उत्साहित करें तथा आप भी हर्ष पावें और उत्साह करें ऐसा करने पर क्योंकर हार हो ॥१८॥

फिर सेनाध्यक्ष संग्राम में क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यो नः स्वो अरणो यश्च निष्ट्यो जिघांसति।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरम् ॥१९॥

पदार्थः—हे सेनापति (यः) जो (नः) हमारे (स्वः) अपना (अरणः) संग्राम रहित यथावत् संग्राम नहीं करता (यः, च) और जो (निष्ट्यः) शब्द से ढिठाई

कराने योग्य दूरस्थ होते हुए तथा अपनी सेना को (जिघांसति) मारने की इच्छा करता है (तम्) उसको (सर्वे) सब (देवाः) विद्वान् जन (धूर्वन्तु) मारें तथा (मम) मेरा (अन्तरम्) समीप में रमता हुआ (ब्रह्म) सर्वव्यापक चेतन (वर्म) कवच के समान रक्षा करने वाला हो ॥१९॥

भावार्थः—सेनापति के जो अपने भृत्य उत्साह से युद्ध न करें और जो अपने नौकरों के मारने की इच्छा करें उन सब को विद्वान् और अधीश शीघ्र मारें तथा युद्ध के समय सब वीर परमेश्वर ही को अपना रक्षा करने वाला जानें ॥१९॥

इस सूक्त में वर्म अर्थात् कवच बख्तर आदि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में पचहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

षष्ठं मण्डलं समाप्तम् ॥



* ओ३म् *

ऋग्वेद-भाषाभाष्यम् ॥

—:०❁:❁:०❁०❁०:—

अथ सप्तमं मण्डलम् ॥

—:०❁:०❁:०❁०❁:—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ पञ्चविंशत्यृचस्य प्रथमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १-१८ एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । १९-२५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सातवें मण्डल के प्रथम सूक्त का आरम्भ है, इसके पहिले मन्त्र में मनुष्यों को विद्युत् अग्नि कैसे उत्पन्न करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् ॥१॥

पदार्थः—हे (नरः) विद्वान् मनुष्यो ! जैसे आप (दीधितिभिः) उत्तेजक क्रियाओं से (हस्तच्युती) हाथों से प्रकट होने वाली घुमानारूप क्रिया से (अरण्योः) अरणी नामक ऊपर नीचे के दो काष्ठों में (दूरेदृशम्) दूर में देखने योग्य (अग्निम्) अग्नि को (जनयन्त) प्रकट करें वैसे (अथर्युम्) अहिंसाधर्म को चाहते हुए (गृहपतिम्) घर के स्वामी को (प्रशस्तम्) प्रशंसायुक्त करो ॥१॥

भावार्थः—हे विद्वान् जनो ! जैसे घिसी हुई अरणियों से अग्नि उत्पन्न होता है वैसे सब पार्थिव द्रव्य वा वायुसम्बन्धी द्रव्यों के घिसने से जो सर्वत्र व्याप्त हुई विद्युत् उत्पन्न होती है वह दूर देशों में समाचारादि पहुंचने

कराने योग्य दूरस्थ होते हुए तथा अपनी सेना को (जिघांसति) मारने की इच्छा करता है (तम्) उसको (सर्वे) सब (देवाः) विद्वान् जन (धूर्वन्तु) मारें तथा (मम) मेरा (अन्तरम्) समीप में रमता हुआ (ब्रह्म) सर्वव्यापक चेतन (वर्म) कवच के समान रक्षा करने वाला हो ॥१९॥

भावार्थः—सेनापति के जो अपने भृत्य उत्साह से युद्ध न करें और जो अपने नौकरों के मारने की इच्छा करें उन सब को विद्वान् और अधीश शीघ्र मारें तथा युद्ध के समय सब वीर परमेश्वर ही को अपना रक्षा करने वाला जानें ॥१९॥

इस सूक्त में वर्म अर्थात् कवच बख्तर आदि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह छठे मण्डल में पचहत्तरवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

षष्ठं मण्डलं समाप्तम् ॥



* ओ३म् *

ऋग्वेद-भाषाभाष्यम् ॥

—:०:०:—

अथ सप्तमं मण्डलम् ॥

—:०:०:—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥१॥

अथ पञ्चविंशत्यृचस्य प्रथमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १-१८ एकादशाक्षरपादैस्त्रिपदा विराड्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । १९-२५ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सातवें मण्डल के प्रथम सूक्त का आरम्भ है, इसके पहिले मन्त्र में मनुष्यों को विद्युत् अग्नि कैसे उत्पन्न करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अग्निं नरो दीधितिभिरुरण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् ॥१॥

पदार्थः—हे (नरः) विद्वान् मनुष्यो ! जैसे आप (दीधितिभिः) उत्तेजक क्रियाओं से (हस्तच्युती) हाथों से प्रकट होने वाली घुमानारूप क्रिया से (अरण्योः) अरणी नामक ऊपर नीचे के दो काष्ठों में (दूरेदृशम्) दूर में देखने योग्य (अग्निम्) अग्नि को (जनयन्त) प्रकट करें वैसे (अथर्युम्) अहिंसाधर्म को चाहते हुए (गृहपतिम्) घर के स्वामी को (प्रशस्तम्) प्रशंसायुक्त करो ॥१॥

भावार्थः—हे विद्वान् जनो ! जैसे घिसी हुई अरणियों से अग्नि उत्पन्न होता है वैसे सब पार्थिव द्रव्य वा वायुसम्बन्धी द्रव्यों के घिसने से जो सर्वत्र व्याप्त हुई विद्युत् उत्पन्न होती है वह दूर देशों में समाचारादि पहुंचने

रूप व्यवहारों को सिद्ध कर सकती है। इस विद्युत् विद्या से गृहस्थों का बड़ा उपकार होता है ॥१॥

फिर उस बिजुली को कैसे प्रकट करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (यः) जो (दक्षाय्यः) चतुर विद्वान् के तुल्य (दमे) घर वा इन्द्रियादि के दमन में (नित्यः) सनातन उपयोगी (आस) है जिस (सुप्रतिचक्षम्) मनुष्य जिसके द्वारा अनेक विद्याओं को अच्छे प्रकार देखता है (कुतश्चित्) किसी के (अवसे) रक्षा वा अधिक अन्न के लिए (वसवः) प्रथम कक्षा के विद्वान् (नि, ऋण्वन्) निरन्तर प्रसिद्ध करें (तम्) उस (अग्निम्) विद्युत् को (अस्ते) घर में वा फेंकने में आप लोग उत्पन्न करो ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जो यह नित्यस्वरूप विद्युत् अग्नि स्थूल द्रव्यों को घर बना के नित्य स्वरूप से स्थित है उस अग्नि को विद्या और क्रियाओं से प्रकट कर तथा कलायंत्रों में संयुक्त कर के बहुत अन्न, धन और रक्षा को प्राप्त होओ ॥२॥

फिर उसको कैसे प्रकट करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥३॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अत्यन्त जवान (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशित बुद्धिवाले विद्वान् ! जो (प्रेद्धः) अच्छे प्रकार जलता हुआ अग्नि (अजस्रया निरन्तर प्रवृत्त क्रिया [से] (सूर्म्या) अच्छे छिद्र सहित शरीरादि मूर्त्ति वा कला से (नः) हम को और (त्वाम्) तुम को प्राप्त है जिसको (शश्वन्तः) प्रवाह से नित्य अनादि पृथिव्यादि (वाजाः) प्राप्त होने योग्य पदार्थ (उप, यन्ति) समीप प्राप्त होते हैं उसको (पुरः) पहिले वा सामने विद्या और क्रिया से (दीदिहि) प्रदीप्त कर ॥३॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जो अग्नि अनादिस्वरूप प्रकृति के अवयवों में विद्युत् रूप से व्याप्त है, जिसकी विद्या से बहुत से व्यवहार सिद्ध होते हैं उसको निरन्तर प्रकाशित कर धनधान्यादि ऐश्वर्य्य को प्राप्त होओ ॥३॥

फिर अग्नि किससे प्रकट करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः ।
यत्रा नरः समासते सुजाताः ॥४॥

पदार्थः—जो (सुवीरासः) सुन्दर वीर (नरः) पुरुषार्थ से प्राप्तव्य को प्राप्त कराने हारे विद्वान् हैं (ते) वे (यत्र) जिस व्यवहार में (अग्निभ्यः) अग्नि के परमाणुओं से (सुजाताः) अच्छे प्रकार प्रकट हुए (द्युमन्तः) बहुत दीप्ति वाले (अग्नयः) विद्युत् आदि अग्नि उत्पन्न होते हैं उसमें (निः, शोशुचन्त) निरन्तर शुद्धि करते और उनसे (वरम्) उत्तम व्यवहार को (प्र, समासते) सम्यक् प्राप्त होते हैं वैसे इसको प्रकट करके तुम लोग भी उत्तम सुख को प्राप्त होओ ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्नि से अग्नि को उत्पन्न कर सिद्ध कामना वाले होके सर्वोत्तम सुख पाते हैं वे जगत् में अच्छे प्रसिद्ध होते हैं ॥४॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम् ।
न यं यावा तरति यातुमावान् ॥५॥

पदार्थः—हे (सहस्य) बल में श्रेष्ठ (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् (धिया) बुद्धि वा कर्म से जैसे अग्नि क्रिया से (सुवीरम्) सुन्दर वीर जन (स्वपत्यम्) सुन्दर सन्तान जिससे हों उस (प्रशस्तम्) उत्तम (रयिम्) धन को (नः) हमारे लिये देता है (यम्) जिसको (यातुमावान्) मेरे तुल्य चलता हुआ (यावा) गमनशील (न) नहीं (तरति) उल्लङ्घन करता उस प्रकार की विद्या हमारे लिये बुद्धि से आप (दाः) दीजिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वानो ! जिसे अग्नि-विद्या से सुन्दर सन्तान, उत्तम शूरवीर जन, श्रेष्ठ धन और यानों का बड़ा वेग उत्पन्न हो उस विद्या को उत्तम विचार और अनेक प्रकार की क्रियाओं से प्रकट करो ॥५॥

फिर अग्नि-विद्या किसके तुल्य क्या उत्पन्न करती है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषावस्तोर्हविष्मती घृताची ।
उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जैसे (युवतिः) युवावस्था को प्राप्त कन्या (दोषा, वस्तोः) रात्रि दिन (सुदक्षम्) अच्छे बलयुक्त (यम्) जिस पति को (उप, एति) समीप

से प्राप्त होती है जैसे (हविष्मती) ग्रहण करने योग्य बहुत वस्तुओं वाली (घृताची) रात्री चन्द्रमा को (उप) प्राप्त होती है तथा जैसे (अरमतिः) जिसके गृहस्थ के तुल्य रमणक्रिया नहीं वह (वसूयुः) द्रव्यों की कामना करने वाली (स्वा) अपनी स्त्री (एनम्) इस विवाहित प्रिय पति को प्राप्त होके सुख पाती है वैसे अग्निविद्या को प्राप्त होके तुम लोग निरन्तर आनन्दित होओ ॥६॥

भावार्थः— इस मंत्र में वाचकलु०—जो दिन रात उद्यम और विद्या के द्वारा अग्निविद्या को प्रकट करते हैं वे परस्पर प्रीति रखने वाले स्त्री पुरुषों के तुल्य बड़े आनन्द को प्राप्त होते हैं ॥६॥

फिर अग्नि से उपकार लेना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विश्वा॑ अ॒ग्नेऽप॑ द॒हारा॑ती॒र्येभि॒स्तपो॑भि॒रद॑हो॒ जरू॑थम् ।
प्र नि॑स्व॒रं चा॑तय॒स्वामी॑वाम् ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् ! (येभिः) जिन (तपोभिः) हाथों को तपाने वाले अग्नि के गुणों से अग्नि (जरूथम्) जीर्ण अवस्था को प्राप्त हुए पुराने काष्ठ को (अदहः) जलाता है उन गुणों से (विश्वाः) सब (अरातीः) शत्रुओं की सेनाओं को (अप, दह) जलाइये तथा (अमीवाम्) रोग को (निःस्वरम्) निर्मूल जैसे हो वैसे (प्र, चातयस्व) नष्ट कीजिये ॥७॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जो आप अग्नि के प्रभाव को जान के आग्नेयास्त्र आदिकों को बना के संग्राम में प्रवृत्त हों तो अनेक शत्रुओं की सेनाएँ शीघ्र भस्म होवें जैसे उत्तम वैद्य अपने शरीर को रोग रहित करके अन्यों को रोगरहित करता है वैसे ही आप लोग अग्निविद्या के प्रभाव से रोगरूप शत्रुओं का निवारण करो ॥७॥

फिर विद्वानों को किससे सेना तेजस्विनी करनी चाहिये
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ यस्ते॑ अग्न इ॒धते॒ अनी॑कं॒ वसि॑ष्ठ॒ शुक्र॒ दीदि॑वः॒ पाव॑क ।
उ॒तो न॑ ए॒भिः स्त॒वथै॑रि॒ह स्याः॑ ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान (वसिष्ठ) अतिशय कर वसने और (शुक्र) शीघ्रता करने वाले पराक्रमी (दीदिवः) विजय की कामना करते हुए (पावक) पवित्र (ते) आपकी (अनीकम्) सेना को (यः) जो अग्नि (आ, इधते) प्रदीप्त प्रकाशित करता है उस अग्नि की (एभिः) इन (स्तवथैः) स्तुतियों से (इह)

इस राज्य में (नः) हमारे रक्षक (स्याः) हूजिये (उतो) और भी हम लोग उस अग्नि के बल से ही आपके रक्षक होवें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजपुरुष अग्निविद्या से आग्नेयास्त्रादि को बना के अपनी सेना को अच्छे प्रकार प्रकाशित करके न्याय से प्रजा के पालक हों, वे दीर्घ समय तक राज्य को पाके महान् ऐश्वर्य्य वाले होते हैं ॥८॥

फिर कैसे भृत्यों के साथ राजा प्रजा का पालन करे
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्त्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा ।
उतो न एभिः सुमना इह स्याः ॥९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्युत् के तुल्य प्रकाशमान ! (ये) जो विद्वान् (पित्र्यासः) पितरों के लिये हितकारी (मर्त्ताः) मनुष्य (नरः) नायक हैं (ते) वे (पुरुत्रा) बहुत राजाओं में (अनीकम्) सेना को (वि, भेजिरे) सेवन करते हैं (उतो) और (एभिः) इन प्रत्यक्ष विद्वानों के साथ आप (इह) इस राज्य में (नः) हम पर (सुमनाः) शुद्ध चित्त वाले प्रसन्न (स्याः) हूजिये ॥९॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो अग्निविद्या में कुशल, आपकी सेना के प्रकाशक, वीर पुरुष, धार्मिक, विद्वान् अधिकारी हों उनके साथ आप न्याय से हमारे पालक हूजिये ॥९॥

राजा को कैसे मन्त्री करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः ।
ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम् ॥१०॥

पदार्थः—हे राजन् ! (ये) जो (इमे) वर्त्तमान (शूराः) शूरवीर (नरः) न्याययुक्त पुरुष (वृत्रहत्येषु) संग्रामों में (विश्वाः) समस्त (अदेवीः) अशुद्ध (मायाः) कपट छलयुक्त बुद्धियों को निवृत्त करके (मे) मेरी (प्रशस्ताम्) प्रशंसित (धियम्) उत्तम बुद्धि का (अभि, पनयन्त) सन्मुख स्तुति वा व्यवहार करते हैं वे आपके कार्य्य करने वाले (सन्तु) हों ॥१०॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो शत्रुओं के छलों से ठगे हुए न हों, संग्रामों में उत्साह को प्राप्त, शूरतायुक्त युद्ध करें, सब ओर से गुणों को ग्रहण कर दोषों को त्यागें वे ही आपके मंत्री हों ॥१०॥

फिर ये राजादि क्या न करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा शूने अग्ने नि षदाम नृणां माशेषसोऽवीरता परि त्वा ।
प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य ॥११॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् ! जो (अवीरता) वीरों का अभाव है उससे (नृणाम्) नायकों में (मा, निषदाम) निरन्तर स्थित न हों (शूने) शीघ्रकारिणी सेना में (अशेषसः) संपूर्ण हम (त्वा) तेरे (मा) न (परि) सब ओर से निरन्तर स्थित हों । हे (दुर्य्य) घरों में वर्त्तमान जिस कारण (प्रजावतीषु) प्रशस्त सन्तानों से युक्त (दुर्य्यासु) घरों में हुई रीतियों में सुखपूर्वक निरन्तर स्थित हों वैसा कीजिये ॥११॥

भावार्थः—हे क्षत्रिय-कुल में हुए राजपुरुषो ! तुम कातर मत होओ । विरोध से परस्पर युद्ध करके निःशेष मत होओ । सनातन राजनीति से प्रजाओं का पालन कर कीर्त्ति वाले होओ ॥११॥

फिर वह अग्नि क्या सिद्ध करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः ।
स्वजन्मना शेषसा वावृधानम् ॥१२॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जो (अश्वी) बहुत वेगादि गुणों वाला अग्नि (नः) हमारे (यम्) जिस (प्रजावन्तम्) बहुत प्रजावाले (स्वपत्यम्) सुन्दर बालकों से युक्त (यज्ञम्) संग करने ठहरने योग्य (क्षयम्) घर को वा (स्वजन्मना) अपने जन्म के (शेषसा) शेष रहे भाग से (वावृधानम्) बढ़ते या बढ़ाते हुए के (नित्यम्) नित्य (उपयाति) निकट प्राप्त होता है उसको तुम लोग जानो ॥१२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अग्नि प्रकट हुए द्वितीय जन्म से प्रजा, सुन्दर सन्तानों और घर को प्राप्त कराता है उसको प्रसिद्ध करो ॥१२॥

किस करके किससे किसकी रक्षा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात्पाहि धूर्तेररुषो अघायोः ।
त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ॥१३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्युत् अग्नि के तुल्य वर्त्तमान राजन् वा उपदेशक आप (नः) हमको (रक्षसः) दुष्टाचारी मनुष्यों से (पाहि) बचाइये । हमारी (अजु-

ष्टात्) धर्म का सेवन न करते हुए अधर्मी (धूर्तेः) धूर्त (अररुषः) शीघ्र मारने वाले (अघायोः) आत्मा को पाप की इच्छा करते हुए से (पाहि) रक्षा कीजिये (त्वा, युजा) युक्त हुए तुम्हारे साथ वर्त्तमान मैं (पृतनायून्) सेनाओं को चाहते हुओं के (अभि, ष्याम्) सन्मुख होऊं ॥१३॥

भावार्थः—वही राजा अध्यापक उपदेशक वा कर्म करनेहारा श्रेष्ठ होता है जो आप धर्मात्मा होकर अन्यों को भी धार्मिक करे ॥१३॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सेद॒ग्निर॒ग्नीँरत्य॑स्त्व॒न्यान्यत्र॑ वा॒जी तन॑यो वी॒ळुपा॑णिः ।
स॒हस्र॑पाथा अ॒क्षरा॑ स॒मेति॑ ॥१४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (वाजी) वेगबलादियुक्त (वीळुपाणिः) बलरूप जिस के हाथ हैं (तनयः) पुत्र के तुल्य (अग्निः) अग्नि (यत्र) जहां (अन्यान्) अन्य (अग्नीन्) अग्नियों को प्राप्त (अत्यस्तु) अत्यन्त हो (सः, इत्) वही (सहस्रपाथाः) अतोल अन्नादि पदार्थों वाला (अक्षरा) जलों को (समेति) सम्यक् प्राप्त होता है वहां उसको तुम लोग सिद्ध करो ॥१४॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे सुपुत्र पितरों को प्राप्त होता है वैसे अग्नि अग्नियों को प्राप्त होता है तथा प्रसिद्ध होकर अपने स्वरूप कारण को प्राप्त होकर स्थिर होता है, जो लोग अभिव्याप्त बिजुली के प्रकट करने को जानते हैं वे असंख्य ऐश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥१४॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सेद॒ग्निर्यो व॑नुष्य॒तो नि॒पाति॑ स॒मेद्धार॒मंह॑स उरु॒ष्यात् ।
सु॒जा॒तासः॒ परि॑ चरन्ति वी॒राः ॥१५॥

पदार्थः—हे मनुष्य ! (यः) जो (अग्निः) अग्नि (वनुष्यतः) याचना करते हुओं की (निपाति) निरन्तर रक्षा करता है तथा (समेद्धारम्) सम्यक् प्रकाशित कराने वाले को (अंहसः) दुःख वा दरिद्रता से (उरुष्यात्) रक्षा करे जिसको (सुजातासः) विद्याओं में अच्छे प्रकार प्रसिद्ध और (वीराः) विज्ञान को प्राप्त हुए वीर पुरुष (परि, चरन्ति) सब ओर से जानते वा प्राप्त होते हैं (सः, इत्) वही अग्नि तुम लोगों को अच्छे प्रकार उपयोग में लाना चाहिये ॥१५॥

भावार्थः—जो मनुष्य अच्छी विद्या से अग्नि का सेवन कर कार्यसिद्धि

के लिये सम्प्रयुक्त करते हैं वे दुःख और दरिद्रता से रहित, कीर्त्ति वाले हुए विजय के सुख को निरन्तर प्राप्त होते हैं ॥१५॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान् ।
परि यमेत्यध्वरेषु होता ॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यम्) जिसको (ईशानः) जगदीश्वर (सम्, इन्धे) सम्यक् प्रकाशित करता है और (यम्) जिसको (हविष्मान्) देने योग्य बहुत वस्तुओं सहित (होता) होम करने वाला (अध्वरेषु) हिंसारहित संग्रामादि व्यवहारों में (परि, एति) सब ओर से प्राप्त होता है (सः, अयम् इव) सो वही (अग्निः) विद्युत् अग्नि (आहुतः) सम्यक् स्वीकार किया हुआ (पुरुत्रा) बहुत कार्य्यों को सिद्ध करता है ॥१६॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! ईश्वर ने जिसलिये बनाया है जिस लिये ऋत्विज् और यजमान सेवन करते हैं तदर्थ वह अग्नि तुम लोगों से बहुत व्यवहारों में प्रयुक्त किया हुआ अनेक कार्य्यों का सिद्ध करने वाला होता है ॥१६॥

फिर मनुष्य लोग किसके तुल्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या ।
उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे ॥१७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) सत्यवादी आप्त विद्वन् जैसे (उभा) दोनों (वहतू) प्राप्ति कराने वाले यजमान और पुरोहित (मियेधे) परिमाणयुक्त यज्ञ में (नित्या) नित्य (भूरि) बहुत (आहवनानि) अच्छे दानों को देते हैं वैसे (ईशानासः) समर्थ हम लोग उन दोनों यजमान पुरोहितों को समर्थ (कृण्वन्तः) करते हुए (त्वे) अग्नि के तुल्य तेजस्वि आप स्वामी के होते हुए उन दोनों को (आ, जुहुयाम) अच्छे प्रकार देवें ॥१७॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—जो यजमान और ऋत्विजों के तुल्य सब मनुष्यों का अच्छी शिक्षा से उपकार करते हैं उनकी शिक्षा का सब लोग अनुष्ठान करें ॥१७॥

फिर मनुष्य किससे क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमो अग्ने वीततमानि हव्याऽजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ ।
प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु ॥१८॥

पदार्थः--हे (अग्ने) तेजस्विन् विद्वन् ! जिससे (अजस्रः) निरन्तर (देवतातिम्) उत्तम सुख देने वाले यज्ञ को (अच्छ, वक्षि) अच्छे प्रकार प्राप्त करते हैं इससे (इमो) इन (सुरभीणि) सुगन्धि आदि गुणों के सहित (वीततमानि) अतिशयकर व्याप्त होने को समर्थ (हव्या) देने योग्य वस्तुओं को (नः) हमारे (प्रति) प्रति (ईम्, व्यन्तु) सब ओर से प्राप्त करें ॥१८॥

भावार्थः--मनुष्य जैसे अग्नि में उत्तम हविष्यों का होम कर जल आदि को शुद्ध करके सब के उपकार को सिद्ध करते हैं वैसे वर्त्ताव करना चाहिये ॥१८॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै ।
मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः ॥१९॥

पदार्थः--हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी ! आप (अवीरते) वीरतारहित सेना में (नः) हमको (मा, परा, दाः) पराङ्मुख मत कीजिये (दुर्वाससे) बुरे वस्त्र धारण के लिए तथा (अमतये) मूर्खपन के लिये (नः) हमको (मा) मत नियुक्त कीजिये । (नः) हमको (अस्यै) इस प्यास के लिये (मा) मत वा (क्षुधे) भूख के लिये (मा) मत नियुक्त कीजिये । हे (ऋतावः) सत्य के प्रकाशक ! (रक्षसे) दुष्ट जन के लिये (दमे) घर में (नः) हमको (मा) मत पीड़ा दीजिये (वने) वन में हम को (मा) मत (आ जुहूर्थाः) पीड़ा दीजिये ॥१९॥

भावार्थः--हे विद्वानो ! तुम लोग हमारी कातरता, दरिद्रता, मूढ़ता, क्षुधा, तृषा, दुष्टों के सङ्ग और घर वा जङ्गल में पीड़ा का निवारण कर सुखी करो ॥१९॥

फिर विद्वान् क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२०॥

पदार्थः—हे (देव) विद्वन् (अग्ने) दाताजन ! (त्वम्) आप (मे) मेरे (मघवद्भ्यः) बहुत धनयुक्त धनाढ्यों से (ब्रह्माणि) बड़े बड़े धनों की (उत्, शशाधि) शिक्षा कीजिये तथा दुःखों को (सुषूदः) नष्ट कीजिये जिससे (उभयासः) दोनों विद्वान् अविद्वान् हम लोग (रातौ) दान देने में प्रकट (स्याम) हों जैसे (ते) आपकी रक्षा हम करें वैसे (यूयम्) तुम लोग (नः) हमारी (स्वस्तिभिः) सुखों से (सदा) सब काल में (नु) शीघ्र (आ, पात) अच्छे प्रकार रक्षा करो ॥२०॥

भावार्थः—राजादि पुरुषों को चाहिये कि धनाढ्यों से दरिद्रों को भी अच्छी शिक्षा देके धनाढ्य करें तथा विद्वान् और अविद्वानों का मेल करा के परस्पर उन्नति करावें और परस्पर दुःख का निवारण कर सुखों से संयुक्त करें ॥२०॥

फिर विद्वान् इस जगत् में कैसे वर्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वम॑ग्ने सुहवो॑ र॒ण्वसं॑दृक्सुदी॒ती सू॑नो सहसो दिदीहि ।

मा त्वे सचा॒ तन॑ये॒ नित्य॒ आ ध॒ङ्मा वी॒रो अ॒स्मन्नर्यो॒ वि दा॑सीत् ॥२१॥

पदार्थः—हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) पुत्र (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्या से प्रकाशमान विद्वन् ! (सुहवः) सुन्दर स्तुति युक्त (रण्वसन्दृक्) रमणीय सम्यक् देखने वाला जैसे (नर्य्यः) मनुष्यों में उत्तम (वीरः) वीर (अस्मत्) हम से (मा) मत (वि, दासीत्) दान से रहित हो वा (नित्ये) सब काल में करने योग्य कर्म में (त्वे) आप (तनये) सन्तान में (सचा) सम्बन्ध से (मा, आ, धक्) अच्छे प्रकार मत जलाइये वैसे (त्वम्) आप (सुदीती) उत्तम दीप्ति से हमको (दिदीहि) प्रकाशित कीजिये ॥२१॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलु०—हे विद्वानो ! जैसे हमारे बन्धु लोग हमारे विरोधी नहीं होते हैं, जैसे माता में पुत्र, पुत्र के विषय में माता, प्रेम के साथ वर्त्तती है वैसे ही आप भी हमारे साथ वर्तिये ॥२१॥

फिर मनुष्य सब से किसको ग्रहण करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा नो॑ अग्ने दु॒र्भृत॑ये॒ सचै॒षु दे॒वेद्धे॑ष्व॒ग्निषु॒ प्र वो॑चः ।

मा ते॑ अ॒स्मान्दु॑र्म॒तयो॑ भृ॒माच्चि॑द्दे॒वस्य॑ सूनो सहसो नशन्त ॥२२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् ! आप (सचा) सम्बन्ध से (एषु) इन (देवेद्धेषु) वायु आदि में प्रज्वलित किये हुए (अग्निषु) अग्नियों में (दुर्भृतये) दुष्ट दुःखयुक्त कठिन धारण वा पोषण जिसका उसके लिए (नः) हमको (मा, प्र, वोचः)

मत कठोर कहो । हे (सहसः) बलवान् (देवस्य) विद्वान् के (सूनो) पुत्र ! (भ्रमात्) भ्रान्ति से (चित्) भी (ते) आपके (दुर्मतयः) दुष्टबुद्धि लोग (अस्मान्) हमको (मा) मत (नशन्त) प्राप्त होवें ॥२२॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को योग्य है कि सब से शुभ गुण सुन्दर बुद्धि और उत्तम विद्या का ग्रहण करें । दोषों का कदापि ग्रहण न करें ॥२२॥

फिर मनुष्यों को किसका सेवन करना चाहिए इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स मर्तो॑ अग्ने स्वनीक रे॒वानम॑र्त्ये॒ य आ॑जु॒होति॑ ह॒व्यम् ।
स दे॒वता॑ वसु॒वनिं॑ दधाति॒ यं सू॒रिर॒र्थी पृ॒च्छमा॑न॒ एति॑ ॥२३॥

पदार्थः—हे (स्वनीक) सुन्दर सेना वाले (अग्ने) विद्या और विनयादि से प्रकाशमान जन ! (यः) जो (रेवान्) बहुत धनवाला होता हुआ (अमर्त्ये) मरण-धर्मरहित अग्नि वा परमात्मा में (हव्यम्) देने योग्य घृतादि द्रव्य वा चित्त को (आजुहोति) अच्छे प्रकार छोड़ता वा स्थिर करता है (सः, देवता) दिव्य गुणयुक्त वह (वसुवनिम्) धनों के सेवन को (दधाति) धारण करता है (यम्) जिसको (अर्थी) प्रशस्त प्रयोजन वाला (पृच्छमानः) पूछता हुआ (सूरिः) विद्वान् (एति) प्राप्त होता है (सः) वह (मर्तः) मनुष्य सुखी करता है ॥२३॥

भावार्थः—जो मनुष्य अग्निविद्या को जान के इस अग्नि में सुगन्ध्यादि का होम करते और इससे कार्यों को सिद्ध करते हैं और जो पूछ अच्छे प्रकार विचार और ध्यान कर के परमात्मा को जानते हैं उनको अग्नि, धनाढ्य और परमात्मा विज्ञानवान् करता है ॥२३॥

फिर मनुष्य विद्वानों से क्या ग्रहण करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

म॒हो नो॑ अग्ने सुवि॒तस्य॑ वि॒द्वान्र॒यिं सू॒रिभ्य॒ आ व॑हा बृ॒हन्त॑म् ।
येन॑ व॒यं स॑हसाव॒न्मदे॒मावि॑क्षितास॒ आयु॑षा सु॒वीराः॑ ॥२४॥

पदार्थः—हे (सहसावन्) बल से युक्त (अग्ने) दानशील पुरुष (विद्वान्) विद्वान् ! आप (महः) महान् (सुवितस्य) प्रेरणा किये कर्म के कर्त्ता हुते हुए (सूरिभ्यः) विद्वानों से (बृहन्तम्) बड़े (रयिम्) धन को (नः) हमारे लिये (आ, वह) अच्छे प्रकार प्राप्त कीजिये (येन) जिस से (अविक्षितासः) क्षीणता रहित (सुवीराः) सुन्दर वीरों से युक्त हुए (वयम्) हम लोग (आयुषा) जीवन के साथ (मदेम) आनन्दित रहें ॥२४॥

भावार्थः—जो मनुष्य विद्वानों से बड़ी विद्या को ग्रहण करते हैं वे सब काल में वृद्धि को प्राप्त होते हुए पूर्ण लक्ष्मी और दीर्घ अवस्था को पाते हैं ॥२४॥

फिर विद्वान् कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू मे ब्रह्मांण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यांमोभयांस आ ते यूयं पांत स्वस्तिभिः सदां नः ॥२५॥

पदार्थः—हे (देव) धन की कामना करने वाले (अग्ने) विद्वन् ! (त्वम्) आप (मघवद्भ्यः) बहुत धनयुक्त पुरुषों से (ब्रह्माणि) अन्नों की (मे) मेरे लिये (उत्, शशाधि) उत्कृष्टतापूर्वक शिक्षा कीजिये और (सुषूदः) दीजिये हम लोग (ते) तुम्हारे लिए ही देवें जिससे (उभयासः) देने लेने वाले दोनों हम लोग (रातौ) सुपात्रों को दान देने के लिये प्रवृत्त (स्याम) हों (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हमारी (नु) शीघ्र (सदा) सब काल में, (आ, पात) अच्छे प्रकार रक्षा करो ॥२५॥

भावार्थः—हे राजपुरुष ! आप न्यायपूर्वक हम सब लोगों को शिक्षा कीजिये, हम से यथायोग्य कर लिया कीजिये, पक्षपात छोड़ के सब के साथ वर्तिये, जिससे राजपुरुष और हम प्रजाजन सदा सुखी हों ॥२५॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान्, श्रोता, उपदेशक, ईश्वर और राजप्रजा के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में प्रथम सूक्त समाप्त हुआ ॥



॥ ओ३म् ॥

अथ पञ्चमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ॥

—:०:❁:०:❁:०:❁:०—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

अथैकादशर्चस्य द्वितीयस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । आप्रं देवता । १—६ विराट्त्रिष्टुप् २ । ४ त्रिष्टुप् । ३ । ६—८ । १० । ११ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पञ्चमाष्टक के द्वितीयाऽध्याय का और सातवें मण्डल के द्वितीय सूक्त का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् लोग किसके तुल्य वर्त्तें इस विषय का उपदेश करते हैं ॥

जुषस्वं नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद्यजतं धूममृण्वन् ।
उपं स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततन॒ सूर्यस्य ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! आप जैसे अग्नि (समिधम्) समिधा को वैसे (नः) हमारी प्रजा का (जुषस्व) सेवन कीजिये तथा अग्नि के तुल्य (अद्य) आज (बृहत्) बड़े (यजतम्) सङ्ग करने योग्य व्यवहार को (शोचा) पवित्र कीजिये और (धूमम्) धूम को (ऋण्वन्) प्रसिद्ध करते हुए अग्नि के तुल्य सत्य कामों का (उप, स्पृश) समीप से स्पर्श कीजिये तथा (सूर्यस्य) सूर्य के (स्तूपैः) सम्यक् तपे हुए (रश्मिभिः) किरणों से वायु के तुल्य (दिव्यम्) कामना के योग्य वा शुद्ध (सानु) सेवनयोग्य धन को (सम्, ततनः) सम्यक् प्राप्त कीजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वानो ! जैसे अग्नि समिधाओं से प्रदीप्त होता वैसे हमको विद्या से प्रदीप्त कीजिये । जैसे सूर्य की किरणें सब का स्पर्श करती हैं वैसे आप लोगों के उपदेश हम को प्राप्त होवें ॥१॥

फिर मनुष्यों को किसका सेवन करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियंधाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ।२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (ये) जो (सुक्रतवः) उत्तम प्रज्ञा वाले (शुचयः) पवित्र (धियन्धाः) उत्तम कर्मों के धारण करने वाले (देवाः) विद्वान् लोग (उभयानि) शरीर और आत्मा के पुष्टिकारक (हव्या) भोजन के योग्य पदार्थों को (स्वदन्ति) अच्छे स्वादपूर्वक खाते और (यज्ञैः) सङ्गति के योग्य साधनों से (यजतस्य) सङ्ग करने योग्य (नराशंसस्य) मनुष्यों से प्रशंसा किये हुए तथा अन्न का भोग करने वाले के (एषाम्) इनकी (महिमानम्) महिमा की हम लोग (उप, स्तोषाम) समीप प्रशंसा करें ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम को चाहिये कि सदैव विद्वानों के अनुकरण से शरीर और आत्मा के बल को बढ़ाने वाले खान-पानों का सेवन किया करो जिससे तुम्हारी महिमा बढ़े ॥२॥

फिर मनुष्य किसका सत्कार करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षमन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम् ।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जैसे हम लोग (वः) आपके (अन्तः) बीच में (असुरम्) मेघ के तुल्य वर्त्तमान (सुदक्षम्) सुन्दर बल और चतुराई से युक्त (रोदसी) सूर्य भूमि और (दूतम्) उपताप देने वाले (अग्निम्) कार्य को सिद्ध करने वाले अग्नि को जैसे वैसे (सत्यवाचम्) सत्य बोलने वाले (ईळेन्यम्) प्रशंसा योग्य (मनुष्वत्) मनुष्य के तुल्य (मनुना) मननशील विद्वान् के साथ (अध्वराय) हिंसारहित व्यवहार के लिए (समिद्धम्) प्रदीप्त किये (सदम्) जिसके निकट बैठें उस अग्नि के तुल्य विद्वान् को (सम्, इत्, महेम) सम्यक् ही सत्कार करें वैसे तुम लोग भी इस का सत्कार करो ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो मेघ के तुल्य उपकारक, अग्नि के तुल्य प्रकाशित विद्यावाले, धर्मात्मा, विद्वानों का सत्कार करते हैं वे सर्वत्र सत्कार पाते हैं ॥३॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (अभिज्ञु) विद्वानों के समीप पग पीछे करके सन्मुख घोटूं जिनके हों वे विद्यार्थी विद्वान् होकर (सपर्यवः) सत्य का सेवन करते और (भरमाणाः) विद्या को धारण करते हुए (नमसा) अन्न के साथ (बर्हिः) उत्तम घृत आदि को (अग्नौ) अग्नि में (प्र, वृञ्जते) छोड़ते हैं वैसे (घृतपृष्ठम्) घृत जिसके पीठ के तुल्य है उस अग्नि को (आजुह्वानाः) अच्छे प्रकार होमयुक्त करते हुए (पृषद्वत्) सेवनकर्त्ता के तुल्य (अध्वर्यवः) अहिंसाधर्म चाहते हुए (हविषा) होम सामग्री से मनुष्यों के अन्तःकरणों को तुम लोग (मर्जयध्वम्) शुद्ध करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में [उपमा] वाचकलु०—जो विद्वान् लोग यजमानों के तुल्य मनुष्यों के अन्तःकरण और आत्माओं को अध्यापन और उपदेश से शुद्ध करते हैं वे आप शुद्ध होकर सब के उपकारक होते हैं ॥४॥

फिर विद्वान् लोग कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्वाध्यो३ वि दुरो देवयन्तोऽशिश्रयू रथयुर्देवताता ।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन् ॥५॥

पदार्थः—जो (स्वाध्यः) सुन्दर विचार करते (देवयन्तः) विद्वानों को चाहते हुए जन (देवताता) विद्वानों के अनुष्ठान या सङ्ग करने योग्य व्यवहार में (रथयुः) रथ को चाहने वाले के तुल्य (रिहाणे) स्वाद लेते हुए (पूर्वी) अपने से पूर्व हुए (मातरा) माता पिता (शिशुम्, न) बालक के तुल्य (समनेषु) संग्रामों में (अग्रुवः) आगे चलती हुई [सेनाएं] (न) जैसे वैसे (दुरः) द्वारों का (वि, अशिश्रयुः) विशेष आश्रय करते हैं और (समञ्जन्) चलते हैं वे सुख करने वाले होवें ॥५॥

भावार्थः-इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—जो मनुष्य सम्यक् विचार करते हुए, विद्वानों के सङ्ग में प्रीति रखने वाले, यज्ञ के तुल्य परोपकारी, माता पिता के तुल्य सब की उन्नति करते और संग्रामों को जीतते हुए, न्याय से प्रजाओं का पालन करते हैं वे सदा सुखी होते हैं ॥५॥

फिर विदुषी स्त्रियां कैसी हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जो (नः) हमारे लिये (यज्ञिये) यज्ञ सम्बन्धी कर्म में (मघोनी) बहुत धन मिलने के निमित्त (योषणे) उत्तम स्त्रियों के तुल्य (दिव्ये) शुद्धस्वरूप (मही) बड़ी (धेनः) विद्यायुक्त वाणी वा गौ (सुदुघेव) सुन्दर प्रकार कामनाओं को पूर्ण करने वाली के तुल्य (उत) और (बर्हिषदा) अन्तरिक्ष में रहने वाली (पुरुहूते) बहुतों से व्याख्यान की गई (उषासानक्ता) दिन रात रूप वेला हम को (आ, अयेताम्) आश्रय करें वे दिन रात (सुविताय) ऐश्वर्य के लिये यथावत सेवने योग्य हैं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो स्त्रियां उत्तम विद्या और गुणों से युक्त, रात्रि दिन के तुल्य सुख देने वाली सत्य वाणी के तुल्य प्रिय बोलने वाली हों उन्हीं का तुम लोग आश्रय करो ॥६॥

फिर वे स्त्री पुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विप्रा॑ य॒ज्ञेषु॒ मानु॑षेषु का॒रू मन्ये॑ वां जा॒तवे॑दसा॒ यज॑ध्यै ।
ऊ॒र्ध्वं नो॑ अध्व॒रं कृ॑तं॒ हवे॑षु॒ ता दे॒वेषु॑ वनथो॒ वार्या॑णि ॥७॥

पदार्थः—हे स्त्री पुरुषो ! जो (मानुषेषु) मनुष्यसम्बन्धी (यज्ञेषु) सत्कर्मों में (कारू) वा शिल्पविद्या में कुशल वा पुरुषार्थी (जातवेदसा) विद्या को प्रसिद्ध प्राप्त हुए (विप्रा) बुद्धिमान् तुम दोनों (नः) हमारे (हवेषु) जिन में ग्रहण करते उन घरों में (अध्वरम्) रक्षा करने योग्य गृहाश्रमादि के व्यवहार को (ऊर्ध्वम्) उन्नत (कृतम्) करो (देवेषु) दिव्य गुणों वा विद्वानों में (वार्याणि) ग्रहण करने योग्य पदार्थों को (वनथः) सम्यक् सेवन करो (ता) वे (वाम्) तुम दोनों (यजध्यै) सङ्ग करने के अर्थ में (मन्ये) मानता वैसे तुम दोनों मुझ को मानो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे ब्रह्मचर्यसेवन से विद्या को प्राप्त हुए क्रिया में कुशल विद्वान् स्त्रीपुरुष सब घर के कामों को शोभित करने को समर्थ होते हैं और वे संग करने योग्य होते हैं वैसे तुम लोग भी होओ ॥७॥

फिर स्त्री पुरुष कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ भार॑ती॒ भार॑तीभिः स॒जोषा॒ इळा॑ दे॒वैर्म॑नु॒ष्ये॑भिर॒ग्निः ।
सर॑स्वती सारस्व॒तेभि॑र॒र्वाक् ति॒स्रो दे॒वीर्ब॒र्हिरेदं स॑दन्तु ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जैसे (भारतीभिः) अपने तुल्य विदुषी स्त्रियों के साथ (भारती) शीघ्र शास्त्रों को धारण कर, वाणी के तुल्य सब की रक्षक विदुषी

(सजोषाः) तुल्य प्रीति को सेवने वाली (देवैः) सत्यवादी विद्वानों (मनुष्येभिः) और मिथ्यावादी मनुष्यों से (इळा) स्तुति के योग्य (सारस्वतेभिः) वाणी विद्या में कुशलों से (सरस्वती) विज्ञानयुक्त वाणी (अर्वाक्) पुनः (अग्निः) अग्नि के तुल्य शुद्ध (तिस्रः) तीन प्रकार की (देवीः) उत्तम स्त्रियां (इदम्) इस (बर्हिः) उत्तम घर वा शरीर को (आ, सदन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों वैसे ही तुम लोग विद्वानों के साथ (आ) आओ ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! यदि तुम लोग प्रशंसित वाणी और बुद्धि को प्राप्त हो तो सूर्य के तुल्य प्रकाशित हो कर इस जगत् में कल्याण करने वाले होओ ॥८॥

फिर मनुष्यों को क्या प्राप्त करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।

यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥९॥

पदार्थः—हे (त्वष्टः) विद्या को प्राप्त कराने वाले (देव) विद्वन् ! (वि, रराणः) विशेष विद्या देते हुए (नः) हमारे (तत्) पढ़ाने के आसन को (पोषयित्नु) पुष्ट करने वाले (तुरीपम्) शीघ्र (स्यस्व) विद्या को पार कीजिये (अध) अब (यतः) जिससे (कर्मण्यः) कर्मों में कुशल (सुदक्षः) सुन्दर बल से युक्त (युक्तग्रावा) मेघ को युक्त करने और (देवकामः) विद्वानों की कामना करने वाला (वीरः) वीर पुरुष (जायते) प्रकट होता है ॥९॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को उचित है कि सब लाभों से विद्या लाभ को उत्तम मान के उसको प्राप्त हों, सदैव जो विद्वानों का सङ्ग करके सदा कर्मों का अनुष्ठान करने वाला होता है वह श्रेष्ठ आत्मा के बल वाला होता है ॥९॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वनस्पतेऽव सृजोप देवान॒ग्निर्ह॒विः श॑मि॒ता सू॑दयाति ।

सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१०॥

पदार्थः—हे (वनस्पते) किरणों के पालक सूर्य के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! (शमिता) शान्तियुक्त आप (यथा) जैसे (अग्निः) अग्नि (हविः) हवन किये द्रव्य को (सूदयाति) भिन्न भिन्न करे वैसे (देवान्) दिव्यगुणों को (उप, अव, सृज) फैलाइये जैसे (होता) दाता (यजाति) यज्ञ करे वैसे (इत्) ही (उ) तो (सत्यतरः) सत्य से

दुःख के पार होने वाले हूजिये। जो (देवानाम्) पृथिव्यादि दिव्य पदार्थों वा विद्वानों के (जनिमानि) जन्मों को (वेद) जानता है (सः) वह पदार्थविद्या को प्राप्त होने योग्य है ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—हे विद्वानो! यदि आप लोग, सूर्य जैसे वर्षा को, होता जैसे यज्ञ को, और विद्वान् जैसे विद्या को, वैसे पढ़ाने और उपदेश से सर्वोपकार को सिद्ध करें तो आप के तुल्य कोई लोग नहीं हों यह हम जानते हैं ॥१०॥

फिर विद्वान् लोग क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङिन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्वन्! जैसे (समिधानः) शुभ गुणों से देदीप्यमान अग्नि अर्थात् सूर्य्य का प्रकाश (इन्द्रेण) बिजुली वा सूर्य्य के साथ (अर्वाङ्) नीचे जाने वाला प्राप्त होता है वैसे होकर आप भी (तुरेभिः) शीघ्र करने वाले (देवैः) विद्वानों वा दिव्य गुणों के साथ (नः) हमारे लिये (सरथम्) रथ के साथ वर्त्तमान (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (आ, याहि) आइये और जैसे (स्वाहा) सत्य क्रिया से (सुपुत्रा) सुन्दर पुत्रों से युक्त (अदितिः) माता है वैसे आप भी (आस्ताम्) स्थित होवें और जैसे (अमृताः) मोक्ष को प्राप्त हुए (देवाः) विद्वान् जन सब को आनन्दित करते हैं वैसे आप भी सब को (मादयन्ताम्) आनन्दित कीजिये ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वानो! जैसे सूर्य्य का प्रकाश दिव्य गुणों के साथ नीचे भी स्थित हम सबों को प्राप्त होता है और जैसे सत्य विद्या से युक्त और उत्तम सन्तान वाली माता सुखपूर्वक स्थित होती है वैसे ही अविद्वान् हम सबों को आप प्राप्त होकर अच्छी शिक्षा दीजिये तथा सुखी कीजिये ॥११॥

इस सूक्त में [अग्नि], मनुष्य, बिजुली, विद्वान्, अध्यापक, उपदेशक, उत्तम वाणी, पुरुषार्थ, विद्वानों का उपदेश तथा स्त्री आदि के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये।

यह सप्तम मण्डल में दूसरा सूक्त समाप्त हुआ॥

अथ दशर्चस्य तृतीयस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। १। ६। १० विराट्त्रिष्टुप्। ४। ६। ७। ८ निचृत्त्रिष्टुप्। ५ त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। २ स्वराट् पङ्क्तिः। ३ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब ७वें मण्डल के तृतीय सूक्त का आरम्भ है। इसके प्रथम मन्त्र में विद्युत् कैसी है इस विषय को कहते हैं॥

अग्निं वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम्।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्द्धा घृतान्नः पावकः ॥१॥

पदार्थः- हे मनुष्यो! (यः) जो (वः) तुम्हारा (सजोषाः) एक सी प्रीति को सेवने वाला (मर्त्येषु) मरणधर्म सहित मनुष्यादिकों में (निध्रुविः) निरन्तर स्थित (ऋतावा) सत्य वा जल का विभाग करने वाला (तपुर्मूर्द्धा) शिर के तुल्य उत्कृष्ट वा उत्तम जिसका ताप है (घृतान्नः) अन्न के तुल्य प्रकाशित जिसका घृत है (पावकः) जो पवित्र करने वाला है उस (अध्वरे) सूर्य आदि के साथ (यजिष्ठम्) अत्यन्त संगति, करने वाले (दूतम्) दूत के तुल्य तार द्वारा शीघ्र समाचार पहुंचाने वाले (अग्निम्, देवम्) उत्तम गुण, कर्म और स्वभाव युक्त अग्नि को तुम लोग (कृणुध्वम्) प्रकट करो ॥१॥

भावार्थः—हे विद्वानो! जो विद्युत् सर्वत्र स्थित, विभाग करने वाली, प्रकाशित गुणों से युक्त साधनों से प्रकट हुई वर्त्तमान है उसी को तुम लोग दूत के तुल्य बनाकर युद्धादि कार्य्यों को सिद्ध करो ॥१॥

फिर वह विद्युत् कैसी है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात्।
आदस्य वातो अनुवाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥२॥

पदार्थः-- हे विद्वन्! जो (ते) आपका (कृष्णम्) आकर्षण करने योग्य (व्रजनम्) गमन (अस्ति) है उसके सम्बन्ध में (महः) महान् (संवरणात्) सम्यक् स्वीकार से (शोचिः) प्रदीपन (अध, स्म) और इसके अनन्तर ही (अस्य) इसके सम्बन्ध में (वातः) वायु (यदा) जब (अनु, वाति) अनुकूल चलता है (आत्) अनन्तर तब (यवसे) भक्षण के अर्थ (अविष्यन्) रक्षा करता (प्रोथत्) और शब्द करता हुआ (अश्वः न) घोड़े के समान शीघ्र यह अग्निमार्ग को (व्यस्थात्) व्याप्त होता है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जब मनुष्य लोग अग्नियान

से गमन और विद्युत् से समाचारों को ग्रहण करें तब ये शीघ्र कार्यों को सिद्ध कर सकते हैं ।।२।।

फिर विद्वान् बिजुली से क्या सिद्ध करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

उद्यस्यं ते नवंजातस्य वृष्णोऽग्ने चरंन्त्यजरां इधानाः ।
अच्छा द्यामंरुषो धूम एंति सन्दूतो अंग्न ईयंसे हि देवान् ।।३।।

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्युत् अग्नि के तुल्य गुप्त प्रताप वाले ! (यस्य) जिस (नवजातस्य) नवीन प्रकट हुए (वृष्णः) विद्या से बलवान् (ते) आप विद्वान् के निकटवर्ती जैसे (अग्ने) प्रसिद्ध अग्नि के तुल्य कार्यसाधक (इन्धानाः) प्रकाशमान जलते हुए (अजराः) खर्चरहित अग्नि (उत्, चरन्ति) ऊपर को उठते वा चलते हैं (अरुषः) गर्भस्थ पुरुष (द्याम्) प्रकाश को प्राप्त होकर जिसका (धूमः) धुआं (अच्छा, एति) अच्छा जाता है जो (दूतः) दूत के तुल्य (देवान्) विद्वानों को प्राप्त होता जब उसको (हि) ही आप (समीयसे) प्राप्त होते हो तब कार्य करने को समर्थ होते हो ।।३।।

भावार्थः—हे विद्वन् ! यदि आप विद्युत् की विद्या को जानें तो आप किस-किस कार्य को सिद्ध न कर सकें ।।३।।

फिर वह विद्युत् कैसी है और कैसे प्रकट करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

वि यस्यं ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत्तृषु यदन्ना समवृंक्त जम्भैः ।
सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दंस्म जुह्वा विवेक्षि ।।४।।

पदार्थः—हे (दस्म) दुःखों के नाश करने हारे विद्वन् ! जिस (जुह्वा) होमसाधन से (यवम्) यवों को (न) जैसे वैसे विद्युद्विद्या को (विवेक्षि) व्याप्त होते हो वह (ते) तुम्हारी (सृष्टा) प्रयुक्त क्रिया (प्रसितिः) प्रबल बन्धन होती हुई (सेनेव) सेना के तुल्य (एति) प्राप्त होती है और (यत्) जो (जम्भैः) गात्रविक्षेपों से (अन्ना) अन्नों को (समवृक्त) अच्छे प्रकार वर्जित करता अर्थात् शरीर से छुड़ाता है (यस्य) जिस (ते) उस विद्युत् के (पाजः) बल को (पृथिव्याम्) पृथिवी में (तृषु) शीघ्र (व्यश्रेत्) आश्रय करता है उसको तुम जानो ।।४।।

भावार्थः—जो विद्वान् लोग विद्युत्विद्या को जानते हैं वे उत्तम सेना के तुल्य शत्रुओं को शीघ्र जीत सकते हैं, जैसे घी आदि से अग्नि प्रज्वलित होता वैसे घर्षण आदि से विद्युत् अग्नि प्रकट करना चाहिये ।।४।।

फिर वह विद्युत् कैसे उत्पन्न करनी चाहिये और वह क्या करती है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

तमिद्दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः ।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ॥५॥

पदार्थः—हे (नरः) नायक मनुष्यो ! जो (निशिशानाः) निरन्तर तीक्ष्णता पूर्वक कार्य करते हुए आप (तम्) उस विद्युत् अग्नि को (दोषा) रात्रि में (तम्) उसको (उषसि) दिन में (अत्यम्) घोड़े को (न) जैसे वैसे (यविष्ठम्) अत्यन्त जवान के तुल्य (अग्निम्) विद्युत् अग्नि को (मर्जयन्त) घर्षण आदि से शुद्ध करो (अस्य) इस (आहुतस्य) अभीष्ट सिद्धि के लिए संग्रह किये (वृष्णः) वर्षा के हेतु अग्नि के (योनौ) कारण में (अतिथिम्) अतिथि के तुल्य सेवने योग्य (शोचिः) दीप्तियुक्त विद्युत् को (दीदाय) प्रकाशित (इत्) ही कीजिये । ५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो तीव्र घर्षणादिकों से दिन रात विद्युत् अग्नि को प्रकट करते हैं वे जैसे घोड़े से, वैसे शीघ्र स्थानान्तर के जाने को समर्थ होते हैं ॥५॥

फिर वह विद्युत् अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

सुसन्दृक्ते स्वनीक प्रतीकं वि यद्रुक्मो न रोचस उपाके ।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ॥६॥

पदार्थः—हे (स्वनीक) सुन्दर सेना वाले सेनापते ! जिस (ते) आपका (यत्) जो (प्रतीकम्) विजय का निश्चय कराने वाले (रुक्मः) प्रकाशमान सूर्य्य के (न) तुल्य है जो (उपाके) समीप में (वि, रोचसे) विशेष कर रुचिकारक होते हो । जिस (ते) तुम्हारा (दिवः, न) सूर्य्य के तुल्य (सुसन्दृक्) अच्छे प्रकार देखने का साधन (तन्यतुः) विद्युत् विजय प्रतीतिकारक नियम को (एति) प्राप्त होता है उसका (शुष्मः) बलयुक्त (चित्रः) आश्चर्यस्वरूप (सूरः) सूर्य (न) जैसे वैसे मैं (भानुम्) प्रकाशयुक्त (प्रति) आपके प्रति (चक्षि) कहूं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे राजन् ! यदि आप विद्युत् को जानें तो सूर्य्य के तुल्य सुन्दर सेनादिकों से प्रकाशित हुए सर्वत्र विजय, कीर्ति और राजाओं में सुशोभित होवें ॥६॥

फिर मनुष्य परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

यथा वः स्वाहाऽग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः ।

तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वान् लोगो ! (यथा) जैसे हम लोग (वः) तुम्हारे अर्थ (स्वाहा) सत्यक्रिया से (घृतवद्भिः) घृतादि से युक्त (हव्यैः) होम के योग्य पदार्थों (च) और (इळाभिः) अन्नों के साथ (अग्नये) अग्नि के लिये (शतम्) सैकड़ों प्रकार के हविष्यों को (परि, दाशेम) सब ओर से देवें वैसे (अमितैः) असंख्य (महोभिः) बड़े बड़े कर्मों वा पुरुषों और (तेभिः) उन (आयसीभिः) लोहे से बनी (पूर्भिः) नगरियों के साथ वर्त्तमान (नः) हम लोगों को (अग्ने) हे अग्नि के तुल्य तेजस्वी प्रकाशमान राजन् (नि, पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे ऋत्विक् और यजमान लोग घृतादि से अग्नि को बढ़ाते हैं वैसे ही राजा प्रजाओं को और प्रजाएं राजा को न्याय विनयादि से बढ़ा के अपरिमित सुखों को प्राप्त होते हैं ॥७॥

फिर किन किन से किनकी रक्षा करनी चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं ।

या वा ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः ।

ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत्सूरीञ्जरितृञ्जातवेदः ॥८॥

पदार्थः—हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) पुत्र ! (जातवेदः) प्रकट बुद्धिमानी को प्राप्त हुए (याः) जो (ते) आपकी (अधृष्टाः) न धमकाने योग्य (गिरः) सुशिक्षित वाणी (सन्ति) हैं (वा) अथवा (दाशुषे) दाता पुरुष के लिये हितकारिणी हैं (वा) अथवा (याभिः) जिन वाणियों से आप (नृवतीः) उत्तम मनुष्यों वाली प्रजाओं की (उरुष्याः) रक्षा कीजिये (ताभिः) उनसे (नः) हम (जरितृन्) समस्त विद्याओं की स्तुति प्रशंसा करने वाले (सूरीन्) विद्वानों की (स्मत्) ही (नि, पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये ॥८॥

भावार्थः—मनुष्य लोग जब तक विद्या, शिक्षा, विनयों को ग्रहण कर अन्यों को नहीं ग्रहण कराते तब तक प्रजाओं का पालन करने को नहीं समर्थ होते हैं, जब तक धर्मात्मा विद्वानों के, राज्य में अधिकार न हों, तब तक यथावत् पालन होना दुर्घट है ॥८॥

फिर मनुष्यों को कैसा राजा मानना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

निर्यत्पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात्स्वया कृपा तन्वा३ रोचमानः ।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यत्) जो (पूतेव) पवित्रता के तुल्य (स्वधितिः) वज्र (शुचिः) पवित्र पुरुष (निः, गात्) निरन्तर प्राप्त होता है (यः) जो (स्वया) अपनी (कृपा) कृपा से (तन्वा) शरीर करके (रोचमानः) प्रकाशमान (मात्रोः) जननी और धात्री में (उशेन्यः) कामना के योग्य (पावकः) अग्नि के तुल्य प्रकाशित यश वाला (सुक्रतुः) उत्तम प्रज्ञा वाला (देवयज्याय) बुद्धिमानों के समागम के लिये (आ, जनिष्ट) प्रकट होता है वही इस जगत् में प्रशंसा के योग्य होवे ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमावाचकलु०—हे मनुष्यो ! जिसको वज्र के समान दृढ़, अग्नि के समान पवित्र, कृपालु, दर्शनीय शरीर, विद्वान्, धर्मात्मा जानो उसी को इनमें राजा मानो ॥९॥

राजा भी कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् राजन् ! आप (नः) हमारे (एता) इन (सौभगा) उत्तम ऐश्वर्यों के भावों को (दिदीहि) प्रकाशित कीजिये जिससे (अपि) भी हम लोग (सुचेतसम्) प्रबल विद्यायुक्त (क्रतुम्) बुद्धि का (वतेम) सेवन करें (स्तोतृभ्यः) ऋत्विजों और (विश्वा) सब की (गृणते) स्तुति करने वाले के लिए ये (च) भी सब प्राप्त (सन्तु) हों (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) स्वस्थता करने वाले सुखों वा कर्मों से (नः) हमारी (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ॥१०॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप सब मनुष्यों के सौभाग्यों को बढ़ा के बुद्धि को प्राप्त करो। हे प्रजा पुरुषो ! आप लोग राजा और राज्य की सदैव रक्षा करो ॥१०॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान्, राजा और प्रजा के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये।

यह सप्तम मण्डल में तृतीय सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्य चतुर्थस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः। अग्निर्देवता। १। ३। ४। ७ भुरिक् पङ्क्तिः। ६ स्वराट् पङ्क्तिः। ८। ९ पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २। ५ निचृत्त्रिष्टुप्। १० विराट्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब दश ऋचा वाले चतुर्थ सूक्त का आरम्भ है। इसके प्रथम मंत्र में मनुष्यों को कैसा होना चाहिये इस विषय को कहते हैं।

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम्।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (वः) तुम्हारे (शुक्राय) शुद्ध (भानवे) विद्याप्रकाश के लिए तथा (अग्नये) अग्नि में होम करने के लिए (सुपूतम्) सुन्दर पवित्र (हव्यम्) होमने योग्य पदार्थ के तुल्य (मतिम्) विचारशील बुद्धि को वा (दैव्यानि) विद्वानों के लिये (मानुषा) मनुष्यों से सम्पादित (जनूंषि) जन्मों वा कर्मों को (च) और (विश्वानि) सब (अन्तः) अन्तर्गत (विद्मना) जानने योग्य वस्तुओं को (जिगाति) प्रशंसा करता है उसके लिये तुम लोग उत्तम सुखों का (प्र भरध्वम्) पालन वा धारण करो॥१॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जो तुम्हारे लिये उत्तम द्रव्यों तथा सब के हितकारी जन्मों और विज्ञानों का उपदेश करने को प्रवृत्त होता है उसकी तुम लोग निरन्तर रक्षा करो॥१॥

मनुष्यों को युवावस्था में ही विवाह करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः।
सं यो वना युवते शुचिदन्भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (मातुः) अपनी माता से (अजनिष्ट) उत्पन्न होता (सः) वह (अग्निः) पावक के तुल्य तेज बुद्धि वाला बालक (तरुणः) जवान (चित्) ही (अस्तु) हो (यतः) जिससे वह (गृत्सः) बुद्धिमान् (यविष्ठः) अत्यन्त जवान हो (सद्यश्चित्) शीघ्र ही (अन्ना) अन्नों का (इत्) ही (समत्ति) सम्यक् भोजन करता है (शुचिदन्) पवित्र दांतों वाला (भूरि) बहुत (वना) जैसे सूर्य किरणों को संयुक्त करता वैसे वनों [=तेजों] को (सम्, युवते) संयुक्त करे॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे अपने पुत्र पूर्ण युवावस्था वाले, ब्रह्मचर्य में सम्यक् स्थापन कर विद्यायुक्त, अति बलवान्,

सुरूपवान् सुख भोगने वाले, धार्मिक, दीर्घ अवस्था वाले, बुद्धिमान् होवें वैसा अनुष्ठान करो ॥२॥

फिर कैसे विद्वान् को सभासद् और अध्यक्ष करें इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं ।

अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे ।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (पौरुषेयीम्) पुरुषसम्बन्धी कार्य्यों की रीति का (नि गृभम्) निरन्तर ग्रहण करने को (उवोच) कहता है (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (आयवे) जीवन के लिए (शुशोच) शोच करता है (यम्) जिस (श्येतम्) श्वेत (दुरोकम्) शत्रुओं से दुःख के साथ सेवने योग्य को (अस्य) इस (देवस्य) विद्वान् की (संसदि) सभा वा (अनीके) सेना में (मर्त्तासः) मनुष्य (जगृभ्रे) ग्रहण करते हैं उसी को सभापति सेनापति करो ॥३॥

भावार्थः—विद्वानों को चाहिये कि अच्छे प्रकार परीक्षा कर सभासदों और अध्यक्षों को नियत करें। जो बलवान् और अधिक अवस्था वाले हों वे ही राज्य को अच्छे प्रकार भूषित कर सकते हैं ॥३॥

कौन विद्वान् अधिक कर विश्वास के योग्य हो इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं ।

अयं कविरकविषु प्रचेता मर्त्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥४॥

पदार्थः—हे (सहस्वः) प्रशस्त बलवाले ! जो (अयम्) प्रत्यक्ष आप (अकविषु) न्यून बुद्धि वाले अविद्वानों में (कविः) तीव्र बुद्धियुक्त विद्वान् (मर्त्तेषु) मनुष्यों में (प्रचेता) चेत कराने वाले (अग्निः) विद्युत् अग्नि के तुल्य (अमृतः) अपने स्वरूप से नाशरहित पुरुष को (नि, धायि) धारण करते हैं (सः) सो आप (अत्र) इस व्यवहार में (नः) हमको (मा, जुहुरः) मत मारिये जिससे हम लोग (त्वे) आप में (सुमनसः) सुन्दर प्रसन्न चित्त वाले (सदा) सदा (स्याम) होवें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो यह दीर्घ ब्रह्मचर्य के साथ विद्वानों से विद्या को ग्रहण करता है वही विद्वान् प्रशंसित बुद्धि वाला, मनुष्यों में महान् कल्याणकारी हो उसके प्रति सब मनुष्य यदि मित्रता से वर्त्तें तो अविद्वान् भी बुद्धिमान् होवें ॥४॥

कौन विद्वान् किसके तुल्य करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ यो योनिं देवकृतं ससाद् क्रत्वा ह्य१ग्निरमृताँ अतारीत् ।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (देवकृतम्) विद्वानों ने विद्या पढ़ने के अर्थ बनाये (योनिम्) घर में (आ, ससाद) अच्छे प्रकार निवास करे वह (हि) ही (क्रत्वा) बुद्धि से (अमृतान्) नाश रहित जीवों वा पदार्थों को (अतारीत्) तारता है (च) और जो (भूमिः) पृथिवी के तुल्य सहनशील पुरुष (तम्) उस (विश्वधायसम्) समस्त विद्याओं के धारण करने वाले (गर्भम्) उपदेशक (च) और (ओषधिः) सोमादि ओषधियों (च) और (वनिनः) बहुत किरणों वाले अग्नियों को (च) भी (बिभर्ति) धारण करता है वही अतिपूज्य होता है ॥५॥

भावार्थः - इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अग्नि समिधा और होमने योग्य पदार्थों से बढ़ता है वैसे ही जो पाठशाला में जा आचार्य को प्रसन्न कर ब्रह्मचर्य से विद्या का अभ्यास करते हैं वे ओषधियों के तुल्य अविद्या-रूप रोग के निवारक, सूर्य के तुल्य धर्म के प्रकाशक और पृथिवी के समान सब के धारण वा पोषणकर्त्ता होते हैं ॥५॥

मनुष्यों को कभी कृतघ्न नहीं होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ईशे ह्य१ग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ॥६॥

पदार्थः—हे (सहसावन्) बहुत बलयुक्त विद्वन् पुरुष ! जो (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी आप (अमृतस्य) नाश रहित नित्य परमात्मा को जानने को (ईशे) समर्थ वा इच्छा करते हो (भूरेः) बहुत प्रकार के (सुवीर्यस्य) सुन्दर पराक्रम के निमित्त (रायः) धन के (दातोः) देने को (ईशे) समर्थ हो (तं) उन (हि) ही (त्वा) आपको (अवीराः) वीरता रहित हुए (वयम्) हम लोग [(मा)]. (परि, सदाम) सब ओर से प्राप्त [न] हों (अप्सवः) कुरूप होकर आपको (मा) मत प्राप्त हों (अदुवः) न सेवक होकर (मा) नहीं प्राप्त हों ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अमृत रूप ईश्वर का विज्ञान, विविध सुखों से तृप्त करने वाली परिपूर्ण लक्ष्मी को तुम्हारे लिये देता है उसके समीप वीरता, सुन्दरपन और सेवा को छोड़ के निठुर, कृतघ्नी मत होओ ॥६॥

कौन धन अपना और कौन धन पराया है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।

न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ॥७॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन्! आप (अचेतानस्य) चेतनता रहित मूर्ख के (पथः) मार्गों को (मा) मत (विदुक्षः) दूषित कर (परिषद्यम्) सभा में होने वाले (अन्यजातम्) अन्य से उत्पन्न (हि) ही (रेक्णः) धन को इस प्रकार जानो कि इस की (शेषः) विशेषता वा अपने आत्मा की ओर से शुद्ध विचार कुछ (न, अस्ति) नहीं है आपके सङ्ग वा सहाय से हम लोग (अरणस्य) संग्राम रहित (नित्यस्य) स्थिर (रायः) धन के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! धर्मयुक्त पुरुषार्थ से जिस धन को प्राप्त हो उसी को अपना धन मानो, किन्तु अन्याय से उपार्जित धन को अपना मत मानो। ज्ञानियों के मार्ग को पाखण्ड के उपदेश से मत दूषित करो, जैसे धर्मयुक्त पुरुषार्थ से धन प्रात हो वैसे ही प्रयत्न करो ॥७॥

कौन पुत्र मानने के योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ ।

अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ॥८॥

पदार्थः—हे मनुष्य! जो (अरणः) रमण न करता हुआ (सुशेवः) सुन्दर सुख से युक्त (अन्योदर्य्यः) दूसरे के उदर से उत्पन्न हुआ हो (सः) वह (मनसा) अन्तःकरण से (ग्रभाय) ग्रहण के लिये (नहि) नहीं (मन्तवै) मानने योग्य है (चित्, उ, पुनः, इत्) और फिर भी वह (ओकः) घर को नहीं (एति) प्राप्त होता (अध) इसके अनन्तर जो (नव्यः) नवीन (अभीषाट्) अच्छा सहनशील (वाजी) विज्ञान-वाला (नः) हमको (आ, एतु) प्राप्त हो ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! अन्य गोत्र में अन्य पुरुष से उत्पन्न हुए बालक को पुत्र करने के लिये नहीं ग्रहण करना चाहिये क्योंकि वह घर आदि का दायभागी नहीं हो सकता किन्तु जो अपने शरीर से उत्पन्न वा अपने गोत्र से लिया हुआ हो वही पुत्र वा पुत्र का प्रतिनिधि होवे ॥८॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्रं में कहते हैं ॥

त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।

सन्त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥९॥

पदार्थः—हे (सहसावन्) बहुत बल से युक्त (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् ! (त्वम्) आप (वनुष्यतः) मांगने वालों की (नि, पाहि) निरन्तर रक्षा कीजिये (उ) और (त्वम्) आप (अवद्यात्) निन्दित अधर्माचरण से (नः) हमारी निरन्तर रक्षा कीजिये जिससे (त्वा) आपको (ध्वस्मन्वत्) दोष और विकार जिसके नष्ट हो गये उस (पाथः) अन्न को (समभ्येतु) सब ओर से प्राप्त हूजिये (सहस्री) असंख्य (स्पृहयाय्यः) चाहने योग्य (रयिः) धन भी (सम्) सम्यक् प्राप्त होवे ॥९॥

भावार्थः—हे राजन ! यदि आप आप से रक्षा चाहते हुए प्रजाजनों की निरन्तर रक्षा करें और आप स्वयं अधर्माचरण से पृथक् वर्त्तें तो आप को अतुल धन धान्य प्राप्त होवें ॥९॥

फिर राजा को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एता नो॑ अग्ने॒ सौभ॑गा दिदी॒ह्यपि॒ क्रतुं॑ सु॒चेत॑सं वतेम ।
विश्वा॑ स्तो॒तृभ्यो॑ गृण॒ते च॑ सन्तु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥१०॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि राजन् ! आप (एता) इन (सौभगा) उत्तम ऐश्वर्य्य वाले पदार्थों को (नः) हमारे लिये (दिदीहि) प्रकाशित कीजिये (अपि) और तो (सुचेतसम्) सुन्दर ज्ञानयुक्त (क्रतुम्) बुद्धि को प्रकाशित कीजिये (स्तोतृभ्यः) ऋत्विजों के लिये (च) तथा (गृणते) यजमान के लिये उत्तम ऐश्वर्य्य वाले (सन्तु) हों जिससे (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) स्वस्थता करने वाली क्रियाओं से (नः) हमारी (सदा) सदा (पात) रक्षा करो इसलिये हम लोग पूर्वोक्त बुद्धि और (विश्वा) धनों का (वतेम) सेवन करें ॥१०॥

भावार्थः—हे राजन् ! यदि आप सब मनुष्यों को ब्रह्मचर्य्य के साथ विद्यादान दिलावें, ऋत्विजों और यजमानों की सर्वदा रक्षा करें तो स्वस्थता से पूर्ण राज्य के ऐश्वर्य्य को प्राप्त हों ॥१०॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान्, राजा, वीर और प्रजा की रक्षा आदि कृत्यों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में चौथा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य पञ्चमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । वैश्वानरो देवता । १ । ४ विराट्त्रिष्टुप् । २ । ३ । ८ । ९ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ । ७ स्वराट् पङ्क्तिः । ६ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नौ ऋचा वाले पांचवें सूक्त का आरम्भ है इसके प्रथम मन्त्र में किसकी प्रशंसा और उपासना करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

प्राग्नये॑ त॒वसे॑ भरध्वं॒ गिरं॑ दि॒वो अ॑र॒तये॑ पृथि॒व्याः ।
यो विश्वे॑षाम॒मृता॑नामु॒पस्थे॑ वैश्वान॒रो वा॑वृ॒धे जा॑गृ॒वद्भिः॑ ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (वैश्वानरः) सम्पूर्ण मनुष्यों में प्रकाशमान जगदीश्वर (दिवः) सूर्य वा (पृथिव्याः) पृथिवी के बीच (विश्वेषाम्) सब (अमृतानाम्) नाशरहित जीवात्माओं वा प्रकृति आदि के (उपस्थे) समीप में (वावृधे) बढ़ाता है (जागृवद्भिः) अविद्या निद्रा से उठने वाले ही उसको प्राप्त होते उस (तवसे) बलिष्ठ (अरतये) व्याप्त (अग्नये) परमात्मा के लिये (गिरम्) योग-संस्कार से युक्त वाणी को (प्र, भरध्वम्) धारण करो अर्थात् स्तुति प्रार्थना करो ।१॥

भावार्थः—यदि सब मनुष्य सब के धर्त्ता योगियों को प्राप्त होने योग्य परमेश्वर की उपासना करें तो वे सब ओर से वृद्धि को प्राप्त हों ॥१॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पृ॒ष्टो दि॒वि धाय्य॒ग्निः पृ॑थि॒व्यां ने॒ता सिन्धू॑नां वृष॒भः स्तिया॑नाम् ।
स मानु॑षीर॒भि वि॒शो वि भा॑ति वैश्वान॒रो वा॑वृधा॒नो वरे॑ण ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! योगियों से जो (अग्निः) अग्नि के तुल्य स्वयं प्रकाश-स्वरूप ईश्वर (दिवि) सूर्य (पृथिव्याम्) भूमि वा अन्तरिक्ष में (धायि) धारण किया जाता (सिन्धूनाम्) नदी वा समुद्रों और (स्तियानाम्) जलों के बीच (वृषभः) अनन्त-बलयुक्त हुआ (नेता) मर्यादा का स्थापक (वरेण) उत्तम स्वभाव के साथ (वावृधानः) सदा बढ़ाने वाला (वैश्वानरः) सब को अपने-अपने कामों में नियोजक (मानुषीः) मनुष्य सम्बन्धी (विशः) प्रजाओं को (अभि, वि, भाति) प्रकाशित करता है (सः) वह (पृष्टः) पूछने योग्य है ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सब प्रजा को नियम व्यवस्था में स्थापक, सूर्यादि प्रजा का प्र[काश]क, सब का उपास्य देव, वह पूछने, सुनने, जानने, विचारने और मानने योग्य है ॥२॥

फिर वह परमेश्वर कैसा है इस विषय का अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वद्भि॒या विश॑ आय॒न्नसि॑क्नीरसम॒ना जह॑तीर्भो॒ज॑नानि ।
वैश्वा॑नर पू॒रवे॒ शोशु॑चानः पुरो॒ यद॑ग्ने द॒रय॒न्नदी॑देः ॥३॥

पदार्थः—हे (वैश्वानर) सर्वत्र विराजमान (अग्ने) सूर्य के तुल्य प्रकाशस्वरूप (यत्) जो आप दुःखों को (दरयन्) विदीर्ण करते हुए (पूरवे) मनुष्य के लिये (शोशुचानः) पवित्र विज्ञान को (पुरः) पहिले (अदीदेः) प्रकाशित करें इससे (त्वत्) आपके (भिया) भय (असिक्नीः) रात्रियों के प्रति (असमनाः) पृथक् पृथक् वर्त्तमान (भोजनानि) भोगने योग्य वा पालन और (जहतीः) अपनी पूर्वावस्था को त्यागती हुईं (विशः) प्रजा (आयन्) मर्यादा को प्राप्त हों ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस परमेश्वर के भय से वायु आदि पदार्थ अपने-अपने काम में नियुक्त होते हैं उसके सत्य न्याय के भय से सब जीव अधर्म से भय कर धर्म में रुचि करते हैं। जिसके प्रभाव से पृथिवी सूर्य्य आदि लोक अपनी अपनी परिधि में नियम से भ्रमते हैं, अपने स्वरूप का धारण कर जगत् का उपकार करते हैं वही परमात्मा सब को ध्यान करने योग्य है ॥३॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तव॑ त्रि॒धातु॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौर्वैश्वा॑नर व्र॒तम॑ग्ने सचन्त ।
त्वं भा॒सा रोद॑सी आत॑तन्था॒ऽजस्रे॑ण शो॒चिषा॒ शोशु॑चानः ॥४॥

पदार्थः—हे (वैश्वानर) सब के नायक (अग्ने) सब के प्रकाशक ईश्वर (तव) आपके (व्रतम्) कर्म और (त्रिधातु) धारण करने वाले तीन सत्त्वादि गुणों वाले प्रकृत्यादिरूप अव्यक्त जगत् के कारण को (पृथिवी) भूमि (उत) और (द्यौः) सूर्य (सचन्त) सम्बद्ध करते हैं जो (त्वम्) आप (अजस्रेण) निरन्तर अन्नादि (शोचिषा) अपने प्रकाश से (शोशुचानः) प्रकाशमान हुए (भासा) अपने प्रकाश से (रोदसी) सूर्य्यादि प्रकाशवाले और पृथिव्यादि प्रकाशरहित दो प्रकार के जगत् को (आततन्थ) सब ओर से विस्तृत करते हैं उन्हीं आपका हम लोग निरन्तर ध्यान करें ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस के आधार में पृथिवी सूर्य स्थित होके अपना कार्य करते हैं, कठोपनिषत् में लिखा है कि उस परमात्मा को जानने के लिए सूर्य, चन्द्रमा, बिजुली वा अग्नि आदि कुछ प्रकाश नहीं कर सकते किन्तु उसी प्रकाशित परमेश्वर के प्रकाश से सब प्रकाशित होते हैं ॥४॥

फिर वह कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वाम॑ग्ने ह॒रितो॑ वावशा॒ना गिरः॑ सचन्ते॒ धुन॑यो घृ॒ताचीः॑ ।
पतिं॑ कृष्टी॒नां र॒थ्यं॑ रयी॒णां वै॑श्वान॒रमु॒षसां॑ के॒तुमह्ना॑म् ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) ज्ञानस्वरूप जगदीश्वर जिस (त्वाम्) आपको (हरितः) दिशा (वावशानाः) कामना के योग्य (गिरः) वाणी (घृनयः) वायु और (घृताचीः) रात्री (सचन्ते) सम्बन्ध करती हैं उस (रयीणाम्) धनों के (रथ्यम्) पहुंचाने वाले घोड़े के तुल्य रथों के हितकारी (उषसाम्) प्रभात वेलाओं के बीच (वैश्वानरम्) अग्नि के तुल्य प्रकाशित (अह्नाम्) दिनों के बीच (केतुम्) सूर्य के तुल्य (कृष्टीनाम्) मनुष्यों के (पतिम्) रक्षक स्वामी आपका हम लोग निरन्तर सेवन करें ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस में सब दिशा, वेदवाणी, पवन और रात्रि आदि काल के अवयव सम्बद्ध हैं उसी समग्र ऐश्वर्य के देने वाले सूर्य के तुल्य स्वयं प्रकाशित परमात्मा का नित्य ध्यान करो ॥५॥

फिर वह कैसा है इस विषय को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

त्वे अ॑सु॒र्यं॑१ वस॑वो॒ न्यृ॑ण्व॒न्क्रतुं॒ हि ते॑ मित्रमहो जु॒षन्त॑ ।
त्वं दस्यूँ॒रोक॑सो अग्न आज उ॒रु ज्योति॑र्ज॒नय॒न्नार्या॑य ॥६॥

पदार्थः—हे (मित्रमहः) मित्रों में बड़े (अग्ने) अग्नि के तुल्य सब दोषों के नाशक जिस (त्वे) आप परमात्मा में (वसवः) पृथिवी आदि आठ वसु (असुर्य्यम्) मेघ के सम्बन्धी (क्रतुम्) कर्म को (नि, ऋण्वन्) निरन्तर प्रसिद्ध करते हैं तथा (जुषन्त) सेवते हैं जो (त्वम्) आप (आर्याय) सज्जन मनुष्य के लिए (उरु) अधिक (ज्योतिः) प्रकाश को (जनयन्) प्रकट करते हुए (ओकसः) घर से (दस्यून्) दुष्ट कर्म करने वालों को (आजः) प्राप्त करते हैं उन (ते) आपका (हि) ही निरन्तर हम लोग ध्यान करें ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! योगीजन जिस परमेश्वर में स्थिर होकर इष्ट काम को सिद्ध करते हैं उसी परमात्मा के ध्यान से सब कामनाओं को तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥६॥

फिर वह जगदीश्वर क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स जाय॑मानः पर॒मे व्यो॑म॒न्वायुर्न पाथः॒ परि॑ पासि स॒द्यः ।
त्वं भुव॑ना ज॒नय॑न्न॒भि क्र॑न्न॒पत्या॑य जातवेदो दश॒स्यन् ॥७॥

पदार्थः—हे परमेश्वर जो (परमे) उत्तम (व्योमन्) आकाश के तुल्य व्यापक आप में (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ योगीजन (वायुः, न) वायु के तुल्य (पाथः) पृथिव्यादि को (सद्यः) शीघ्र (एति) प्राप्त होता है (सः) वह आप से उन्नति को प्राप्त होता है। हे (जातवेदः) उत्पन्न हुए सब को जानने वाले जो (त्वम्) आप

(भुवना) सब लोकों को (जनयन्) उत्पन्न करते हुए (अपत्याय) माता जैसे सन्तान के लिए वैसे कामनाओं को (वशस्यन्) पूर्ण करते हुए सब को (अभि, क्रन्) पूर्ण करते हुए (परि, पासि) सब ओर से रक्षा करते हो इससे उपासना के योग्य हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो अपत्य के लिये माता के तुल्य कृपालु, रक्षक, योगी के तुल्य सब काम देने वाला, सब विश्व का कर्त्ता, सब का रक्षक ईश्वर है उसी की नित्य उपासना करो ॥७॥

फिर वह ईश्वर किसको क्या देता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः ।
यया राधः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो दाशुषे मर्त्याय ॥८॥

पदार्थः—हे (वैश्वानर) सब में प्रकाशमान (जातवेदः) उत्पन्न हुए पदार्थों में विद्यमान (विश्ववार) सब से स्वीकार करने योग्य (अग्ने) विज्ञानस्वरूप ईश्वर आप (दाशुषे) विद्या देने वाले (मर्त्याय) मनुष्य के लिए (यया) जिससे (पृथु) विस्तारयुक्त (राधः) धन और (श्रवः) श्रवण को (पिन्वसि) देते हो (ताम्) उस (द्युमतीम्) प्रशस्त कामना वाले (इषम्) अन्नादि को (अस्मे) हमारे लिये (एरयस्व) प्राप्त कीजिये ॥८॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिसकी उपासना से विद्वान् लोग पूर्ण ऐश्वर्य और पूर्ण विद्या को प्राप्त होते हैं । जो उपासना किया हुआ समस्त ऐश्वर्य को देता है उसी की नित्य सेवा करो ॥८॥

फिर वह ईश्वर क्या क्या देता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व ।
वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः ॥९॥

पदार्थ—हे (वैश्वानर) सब को अपने अपने कार्य में लगाने वाले (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशित जगदीश्वर आप (मघवद्भ्यः) बहुत धनयुक्त हमारे लिए (पुरुक्षुम्) बहुत अन्नादि (तम्) उस (श्रुत्यम्) सुनने योग्य (रयिम्) धन को और (वाजम्) विज्ञान को (नि, युवस्व) नित्य संयुक्त करो । हे (अग्ने) प्राण के प्राण (वसुभिः) पृथिवी आदि तथा (रुद्रेभिः) प्राणों के साथ (सजोषाः) व्याप्त और प्रसन्न हुए आप (नः) हमारे लिये (महि) बड़े (शर्म) सुख वा घर को (यच्छ) दीजिये ॥९॥

भावार्थः हे मनुष्यो ! जो परमात्मा धन ऐश्वर्य्य और प्रशंसा के

योग्य विज्ञान और राज्य को पुरुषार्थियों के लिये देता है उसी की प्रीति-पूर्वक निरन्तर उपासना किया करो ॥६॥

इस सूक्त में ईश्वर के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में पांचवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य षष्ठस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । वैश्वानरो देवता । १ । ४ । ५ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ निचृत्पङ्क्तिः । ३ । ७ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले छठे सूक्त का आरम्भ है इसके पहिले मन्त्र में कौन राजा श्रेष्ठ हो इस विषय को कहते हैं ॥

प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्तिं पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (दारुम्) दुःख के दूर करने वाले ईश्वर की (वन्दमानः) स्तुति करता हुआ मैं (कृष्टीनाम्) मनुष्यों के बीच (असुरस्य) मेघ के तुल्य वर्त्तमान (इन्द्रस्य) सूर्य के समान (अनुमाद्यस्य) अनुकूल हर्ष करने योग्य (सम्राजः) चक्रवर्ती (पुंसः) पुरुष की (प्रशस्तिम्) प्रशंसा (प्र, विवक्मि) विशेष कहता हूं (तवसः) बल से (कृतानि) किये हुओं को (प्र, वन्दे) नमस्कार करता हूं वैसे इस की प्रशंसा कर के इस की सदा वन्दना करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो शुभ गुण, कर्म और स्वभावों से युक्त वन्दनीय और प्रशंसा के योग्य हो उस चक्रवर्ती राजा की शुभकर्मों से हुई प्रशंसा करो ॥१॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर्हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः ।
पुरन्दरस्य गीर्भिरा विवासेऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि ॥२॥

पदार्थः—हे राजन् (अग्नेः) अग्नि के समान जिन आपकी (गीर्भिः) वाणियों से (अद्रेः) मेघ के तुल्य वर्तमान (पुरन्दरस्य) शत्रुओं के नगरों को विदीर्ण करने वाले राजा के (महानि) बड़े (पूर्व्या) पूर्वज राजाओं ने किये (व्रतानि) कर्मों को

तथा (कविम्) तीव्र बुद्धि वाले (केतुम्) अतीव बुद्धिमान् विद्वान् को (धासिम्) अन्न के तुल्य पोषक (भानुम्) विद्या विनय और दीप्ति से युक्त (रोदस्योः) प्रकाश और पृथिवी के सम्बन्धी (शम्) सुखस्वरूप (राज्यम्) राज्य को (हिन्वन्ति) प्राप्त करवाते बढ़ाते हैं उनका मैं (आ, विवासे) अच्छे प्रकार सेवन करता हूं ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जिसके उत्तम कर्म राज्य और विद्वानों को बढ़ाते हैं और राज्य को सुखयुक्त करते हैं उसी का सत्कार सबको करना चाहिये ॥२॥

फिर विद्वानों को कौन रोकने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न्य॑क्रतून्ग्रथिनो॑ मृध्रवा॑चः प॒णीँर॑श्र॒द्धाँ अ॑वृ॒धाँ अ॑य॒ज्ञान् ।

प्रप्र॒तान्दस्यूँ॑र॒ग्निर्वि॑वाय॒ पूर्व॑श्चका॒राप॑राँ॒ अय॑ज्यून् ॥३॥

पदार्थः—हे राजन् (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजोमय आप (अक्रतून्) निर्बुद्धि (ग्रथिनः) अज्ञान से बंधे (मृध्रवाचः) हिंसक वाणी वाले (अयज्ञान्) सङ्गादि वा अग्निहोत्रादि के अनुष्ठान से रहित (अश्रद्धान्) श्रद्धारहित (अवृधान्) हानि करने हारे (तान्) उन (दस्यून्) दुष्ट साहसी चोरों को (प्रप्र, विवाय) अच्छे प्रकार दूर पहुंचाइये (पूर्वः) प्रथम से प्रवृत्त हुए आप (अपरान्) अन्य (अयज्यून्) विद्वानों के सत्कार के विरोधियों को (पणीन्) व्यवहार वाले (निश्चकार) निरन्तर करते हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वानो ! तुम लोग सत्य के उपदेश और शिक्षा से सब अविद्वानों को बोधित करो जिससे ये अन्यों को भी विद्वान् करें ॥३॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यो अ॑पाची॒ने तम॑सि॒ मद॑न्तीः॒ प्राची॑श्च॒कार॒ नृत॑मः॒ शची॑भिः ।

तमीशा॑नं॒ वस्वो॑ अ॒ग्निं गृ॑णीषे॒ऽना॑नतं द॒मय॑न्तं पृत॒न्यून् ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (नृतमः) मनुष्यों में उत्तम (शचीभिः) उत्तम वाणियों से (अपाचीने) बुरा चलना जिसमें हो उस (तमसि) अन्धकार में (मदन्तीः) आनन्द करती हुई (प्राचीः) पूर्व को चलने वाली सेनाओं को (चकार) करता है। हे विद्वान् ! जिस (वस्वः) धन के (ईशानम्) स्वामी (अनानतम्) नम्रस्वरूप (पृतन्यून्) अपने को सेना की इच्छा करने वालों को (दमयन्तम्) निवृत्त करते हुए (अग्निम्) अग्नि के तुल्य प्रकाशस्वरूप ईश्वर की (गृणीषे) स्तुति करता है (तम्) उसका हम लोग सत्कार करें ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्यों में उत्तम राजा प्रजाओं के साथ पिता के तुल्य वर्त्तता है, जैसे निद्रा में सुखी होता है वैसे सब प्रजाओं को आनन्द देता हुआ शत्रुओं को निवृत्त करता है। जो युद्ध में भय से शत्रुओं के साथ नम्र नहीं होता और धन का बढ़ाने वाला है, उसी राजा का हम लोग सदा सत्कार करें ॥४॥

फिर कैसा राजा अत्यन्त उत्तम होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यो देह्यो३ अनमयद्वधस्नैर्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (देह्यः) बढ़ाने योग्य (वधस्नैः) मारने से शुद्ध करने वाले न्यायाधीशों से दुष्टों को (अनमयत्) नम्र करावे (यः) जो सूर्य जैसे (उषसः) प्रातःकाल की वेलाओं को सुशोभित करता है वैसे (अर्य्यपत्नीः) स्वामी की स्त्रियों को शोभित (चकार) करता है और जो (नहुषः) सत्य में बद्ध (यह्वः) महान् (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (सहोभिः) सहनशील बलिष्ठों के साथ शत्रुओं को (निरुध्या) रोक के (विशः) प्रजाओं को (बलिहृतः) कर पहुंचाने वाला (चक्रे) करे (सः) वह सब को पिता के तुल्य पूज्य है ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे प्रजाजनो! जो अत्यन्त विद्वान् दुष्टाचारियों और अन्याय के वर्त्ताव को रोक जितेन्द्रिय हो के न्यायपूर्वक प्रजा से कर लेता है वह सब को बढ़ाने योग्य होता है ॥५॥

फिर कौन राजा नित्य बढ़ता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योराग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यस्य) जिसके (शर्मन्) घर में (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि की (भिक्षमाणाः) नित्य याचना करते हुए उन्नतिशील (एवैः) विज्ञानादि से प्राप्त हुए श्रेष्ठ गुणों के साथ वर्त्तमान (विश्वे) सब (जनासः) धर्मात्मा, उत्तम विद्वान् जन (उप, तस्थुः) उपस्थित होते हैं जो (वैश्वानरः) समस्त मनुष्यों के बीच राजमान (रोदस्योः) सूर्य और पृथिवी के बीच (अग्निः) सूर्य के तुल्य स्थित हुए के समान (पित्रोः) उत्तम शिक्षा करने वाले अध्यापक उपदेशक के (उपस्थम्) समीप (वरम्) उत्तम जन को (आ, ससाद) अच्छे प्रकार स्थित करे वही चक्रवर्ती राज्य कर सकता है ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—वही राजा नित्य बढ़ता है जिसके

समीप विद्यावर्धक, विद्वान् मन्त्री सदा रहें । जो सत्यवक्ता के उपदेश को नित्य स्वीकार करता है वह सूर्य के तुल्य भूगोल में प्रकाशमान होकर प्रशस्त राज्य को प्राप्त होता है ॥६॥

कौन राजा प्रशंसित यश वाला होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ देवो ददे बुध्न्या३ वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरादा परस्मादाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ॥७॥

पदार्थः— हे मनुष्यो (वैश्वानरः) सब मनुष्यों का नायक (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (देवः) पूर्ण विद्वान् सुखदाता राजा जैसे (सूर्यस्य) सूर्य के (उदिता) उदय में (बुध्न्या) अन्तरिक्षस्थ (वसूनि) द्रव्य (आ) अच्छे प्रकार प्रकाशित होते हैं वैसे जो न्याय और विद्या के प्रकाश को सब से (आददे) लेता है वा जैसे (परस्मात्) पर (अवरात्) तथा इधर हुए (आ, समुद्रात्) अन्तरिक्ष के जल पर्य्यन्त (दिवः) प्रकाश और (पृथिव्याः) पृथिवी के बीच सूर्य्य प्रकाश को देता है वैसे श्रेष्ठ गुणों का ग्रहण कर प्रजा के लिये हित (आददे) ग्रहण करता है वह (आ) अच्छे सुख से बढ़ता है ॥७॥

भावार्थः—यदि विद्वान् लोग सत्य भाव से न्याय का संग्रह कर प्रजाओं का पुत्र के तुल्य पालन करें तो वे प्रजा में सूर्य के तुल्य प्रकाशित कीर्ति वाले होकर सब के लिये सुख देने को समर्थ होते हैं ॥७॥

इस सूक्त में वैश्वानर के दृष्टान्त से राजा के कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में छठा सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य सप्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ३ त्रिष्टुप् । ४ । ५ । ६ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ भुरिक् पङ्क्तिः । ७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले सातवें सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में कैसे पुरुष को राजा करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र वो देवं चित्सहसानमग्निमश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान्त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे मैं (वः) तुमको (सहसानम्) यज्ञ के साधक (देवम्) दानशील (अग्निम्) विद्या से प्रकाशमान (अश्वम्, न) शीघ्र चलने वाले घोड़े के तुल्य (वाजिनम्) उत्तम वेग वाले (नमोभिः) अन्नादि करके (प्र, हिषे) अच्छी वृद्धि करता हूं वैसे इसको तुम लोग भी बढ़ाओ। हे राजन् (त्मना) आत्मा से जो (देवेषु) विद्वानों में (मितद्रुः) शास्त्रानुकूल पदार्थों को प्राप्त होने वाला (विद्वान्) विद्वान् (विविदे) जाना जाता है उसको प्राप्त होके (नः) हमारे (अध्वरस्य) अहिंसा और न्याययुक्त व्यवहार के (दूतः) सुशिक्षित दूत के तुल्य (भव) हूजिये ॥१॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो प्रजा के किये आक्षेपों को सहता, घोड़े के तुल्य सब कार्य्यों को शीघ्र व्याप्त होता, विद्वानों में विद्वान्, दूत के तुल्य समाचार पहुंचाने वाला हो उसी को राजा करो ॥१॥

फिर कैसा राजा श्रेष्ठ होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ याह्यग्ने पथ्याः३ अनु स्वा मन्द्रो देवानां सख्यं जुषाणः।
आ सानु शुष्मैर्नदयन्पृथिव्या जम्भेभिर्विश्वमुशधग्वनानि ॥२॥

पदार्थ – हे (अग्ने) बिजुली के तुल्य राजविद्या में व्याप्त (देवानाम्) विद्वानों के (सख्यम्) मित्रपन को (जुषाणः) सेवते हुए (मन्द्रः) आनन्ददाता (शुष्मैः) बलों के साथ (पृथिव्याः) पृथिवी के (सानु) शिखर के तुल्य विज्ञान को (आ, नदयन्) अच्छे प्रकार नाद करते हुए विद्युत् के तुल्य (जम्भेभिः) गात्र नमाने से (विश्वम्) समस्त जगत् (वनानि) सूर्य की किरणों के तुल्य धनों की (उशधक्) कामना करते हुए (पथ्याः) धर्ममार्ग को प्राप्त होने वाली (स्वाः) अपनी प्रजाओं को (अनु, आ, याहि) अनुकूल आइये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो बिजुली के तुल्य पराक्रमी, सूर्य के तुल्य प्रतापी अपनी अनुकूल प्रजाओं को न्याय से आनन्दित करता है वही उत्तम राजा होता है ॥२॥

इस जगत् में कौन मनुष्य उत्तम हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ॥३॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ) अतिशय कर युवावस्था को प्राप्त (यतः) जिनसे आप (सुशेवः) सुन्दर सुखयुक्त (जज्ञिषे) होते हो उन (विश्ववारे) सब सुखों के स्वीकार करने वाले दोनों (मातरा) माता पिता की (हुवानः) स्तुति करता हुआ (ईडितः)

प्रशंसित गुणोंवाला (होता) होमकर्ता (न) जैसे वैसे (अग्निः) अग्नि के तुल्य (प्राचीनः) पूर्वकाल सम्बन्धी (यज्ञः) संग करने योग्य पुरुष (सुधितम्) सुन्दर हितकारी (बर्हिः) उत्तम अधिक हविष्य को प्राप्त करने के अर्थ जो (आ, प्रीणीते) अच्छे प्रकार कामना करता है (हि) वही योग्य होता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जैसे होमकर्त्ता वेदविहित यज्ञ और उसकी सामग्री की कामना करता है वैसे ही जो पितृजनों की प्रशंसा करते हुए सेवन करते हैं वे ही इस जगत् में कृतज्ञ होते हैं ॥३॥

फिर कौन मनुष्य योग्य राजा होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सद्यो अध्वरे रथिरं जनन्त मानुषासो विचेतसो य एषाम् ।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणे३ऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ॥४॥

पदार्थः—(विचेतसः) विविध प्रकार की बुद्धि से युक्त (मानुषासः) मनुष्य (अध्वरे) अहिंसारूप व्यवहार में जिस (रथिरम्) रथवालों में रमण करने वाले को (सद्यः) शीघ्र (जनन्त) प्रकट करते हैं (यः) जो (एषाम्) विद्वानों के बीच (दुरोणे) घर में (अग्निः) अग्नि के तुल्य (मन्द्रः) आनन्ददाता (मधुवचाः) कोमल वचनों (ऋतावा) और सत्य का सेवन करने वाला (विशाम्) प्रजाओं का (विश्पतिः) रक्षक विद्वानों से (अधायि) धारण किया जाता है वही राजा होने को योग्य होता है ॥४॥

भावार्थः—[इस मन्त्र में वाचकलु०]– जिसको उत्तम शिक्षा से विद्या ग्रहण कराके विद्वान् लोग पण्डित करते हैं वह योग्य होकर घर में दीप के तुल्य प्रजाओं में न्याय का प्रकाशक होता है ॥४॥

फिर अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

असादि वृतो वह्निराजगन्वानग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता ।
द्यौश्च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (नृषदने) मनुष्यों के स्थान में (ब्रह्मा) चार वेद का जानने वाला होता है वैसे जो (वृतः) स्वीकार किया (आजगन्वान्) अच्छे प्रकार प्राप्त होने वाला (वह्निः) पहुंचाने वाले (अग्निः) अग्नि के तुल्य (विधर्ता) विशेषकर धारणकर्त्ता (असादि) अच्छे प्रकार स्थित होता है (यम्) जिसको (द्यौः) सूर्य (च) और (पृथिवी) भूमि (वावृधाते) बढ़ाते हैं (यम्) जिस (विश्ववारम्) सबको

स्वीकार करने योग्य को (होता) होमकर्त्ता (आ, यजति) अच्छे प्रकार सङ्ग करता है उस को सब लोग जानें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अग्नि यथावत् सम्प्रयोग किया हुआ सब कार्य्यों को सिद्ध करता है वैसे ही सत्कार कर स्वीकार किये वेद के विद्वान् लोग धर्मार्थ काम मोक्ष पदार्थों को सबको प्राप्त कराते हैं ॥५॥

फिर कौन श्रेष्ठ विद्वान् होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।
प्र ये विशस्तिरन्त श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ॥६॥

पदार्थः – हे मनुष्यो (ये) जो (एते) ये (नर्य्याः) मनुष्यों में श्रेष्ठ (द्युम्नेभिः) धन वा कीर्त्ति से (विश्वम्) समस्त (मन्त्रम्) विचार को (आ, अतिरन्त) अच्छे प्रकार पार होते (वा, अरम्) अथवा पूर्ण कार्य्य को (अतक्षन्) तीक्ष्णता से करते (ये) जो (श्रोषमाणाः) सुनते हुए (विशः) प्रजाजनों को (प्र, तिरन्त) अच्छे तरते और (ये) जो (मे) मेरे (अस्य) इस (ऋतस्य) सत्य विज्ञान को (आ, दीधयन्) अच्छे प्रकार प्रकाशित करते हैं वे अभीष्ट को प्राप्त होते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य सुन्दर विचार के साथ स्वीकार करने योग्य पदार्थों को प्राप्त होते और नित्य विद्वानों के वचनों के श्रोता होकर सत्य-झूठ का विवेक कर और असत्य छोड़ सत्य का ग्रहण कर यशस्वी धनाढ्य होते हैं वही इस जगत् में सत्कार के योग्य होते हैं ॥६॥

फिर कौन अच्छा, चतुर, अतिबलवान् तथा प्रशंसित होता है
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—हे (सहसः) अतिबलवान् के (सूनो) सत्पुत्र (अग्ने) विज्ञानस्वरूप (वसूनाम्) पृथिव्यादि तत्त्व साधनों के बीच (ईशानम्) समर्थ बलवान् (त्वाम्) आप को (वसिष्ठाः) अत्यन्त वसने वाले हम लोग (ईमहे) याचना करते हैं (यूयम्) तुम लोग (स्तोतृभ्यः) सब विद्याओं की प्रशंसा करने वाले (मघवद्भ्यः) बहुत धनयुक्त होने के लिए (नः) हमारी (सदा) सदा (पात) रक्षा करो। जो तुमको और (इषम्) अन्नादि को (नु) शीघ्र (आनट्) व्याप्त हो उसकी तुम (स्वस्तिभिः) स्वस्थता कराने वाली क्रियाओं से सदा रक्षा करो ॥७॥

भावार्थः—जो विद्वानों के लिये धन देता है और विद्या की याचना करता है, जिसकी रक्षा आप्त करते हैं वह सदा रक्षा को प्राप्त, बढ़ता हुआ सब ऐश्वर्य्य से युक्त होता है ॥७॥

इस सूक्त में अग्नि के दृष्टान्त से राजादि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में सातवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्याष्टमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ७ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । [२] । ३ । ४ । ६ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि ॥१॥

पदार्थः—जो (नरः) नायक मनुष्य (हव्येभिः) देने योग्य जनों वा (नमोभिः) अन्नादि से होने वाले सत्कारों के साथ (घृतेन) प्रदीप्तिकारक जल वा घी से (यस्य) जिसकी (आहुतम्) स्पर्द्धा ईर्षा को प्राप्त (प्रतीकम्) सेना को निश्चय कराने वाली (ईळते) स्तुति करते हैं वह (समर्यः) युद्ध में कुशल (राजा) प्रकाशमान तेजस्वी मैं उनको (इन्धे) प्रदीप्त करता हूं जैसे (उषसाम्) प्रभात समय होने से (अग्रे) पहिले (सबाधः) बाध अर्थात् संयोग से बने सब संसार के साथ वर्त्तमान (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी जन (आ, अशोचि) प्रकाशित किया जाता है वैसे मैं शत्रुओं के सन्मुख अपनी सेना का प्रकाशक और उत्साह देने वाला होऊं ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो जिस के भृत्य उपकार करने वाले हों, वे उपकार को प्राप्त हुए से सदा सत्कार पाने योग्य हैं ॥१॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
वि भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जैसे (विभाः) प्रकाश करने वाला (यह्वः) बड़ा (अग्निः) अग्नि के तुल्य तेजस्वी (ओषधीभिः) सोमलतादि ओषधियों से (ववक्षे)

प्राप्त करता है वैसे (कृष्णपविः) तीक्ष्ण काट करने वाले शस्त्र अस्त्रों से युक्त (होता) दानशील (मन्द्रः) आनन्द कराने वाला (सुमहान्) शुभ गुणकर्मों से सत्कार करने योग्य (मनुषः) मनुष्य विद्वानों से (अवेदि) जाना जाता है (स्यः) वह (अयम्) यह (उ) ही (पृथिव्याम्) पृथिवी पर सब को सुख से (ससृजानः) संयुक्त करता हुआ सबकी उन्नति (अकः) करता है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सूर्य के तुल्य उपकारक होते हैं वे ही अच्छे प्रकार सत्कार पाने योग्य हैं ॥२॥

फिर वे राजा और प्रजा के जन कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्तिं कामु स्वधामृणवः शस्यमानः ।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ॥३॥

पदार्थ—हे (सुदत्र) सुन्दर दाता (अग्ने) विद्युत् के समान ऐश्वर्य देने वाले राजपुरुष (शस्यमानः) प्रशंसा को प्राप्त हुए आप (कया) किस रीति से (नः) हमको (वि, वसः) प्रवास कराते हैं (काम्, उ) किसी (सुवृक्तिम्) सुन्दर प्रकार जिस में प्राप्त हों उस नीति और (स्वधाम्) अन्न को (ऋणवः) प्रसिद्ध करो (कदा) कब (दुष्टरस्य) दुःख से तरने योग्य (साधोः) सत्पुरुष के (वन्तारः) सेवक (रायः) धन के (पतयः) स्वामी हम लोग (भवेम) होवें ॥३॥

भावार्थः - हे राजन् ! यदि आप हमारा यथावत् पालन कर धनाढ्य करें तो हम भी आप सज्जन की निरन्तर उन्नति करें ॥३॥

फिर कैसा राजा सत्कार के योग्य होता और यह राजा कैसों का सत्कार करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥४॥

पदार्थः—हे राजपुरुष (यत्) जो (अयम्) यह (भरतस्य) धारण वा पोषण करने वाले के (अग्निः) अग्नि के समान वा (सूर्यः,न) सूर्य के समान (वि, रोचते) विशेष प्रकाशित होता है वा जिसको मैं (प्रप्र, शृण्वे) अच्छे प्रकार सुनता हूं (यः) जो (बृहत्) बड़े जगत् वा राज्य को तथा (पूरुम्) पालक सेनापति को (अभि, भाः) सब ओर से प्रकाशित करता है तथा (अतिथिः) जाने आने की तिथि जिसकी नियत न हो उसके तुल्य (दैव्यः) विद्वानों ने किया विद्वान् (द्युतानः) प्रकाशमान (पृतनासु) सेनाओं में (तस्थौ) स्थित हो वह (शुशोच) प्रकाशित होता है उसका आप सदा सत्कार कीजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो राजा लोग सत्कर्म करने वालों का ही सत्कार करें और दुष्टाचारियों को दण्ड देवें वे ही सूर्य के तुल्य प्रकाशमान अतिथियों के समान सत्कार करने योग्य होते हुए सर्वदा विजयी होकर प्रसिद्ध कीर्त्तिवाले होते हैं ॥४॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

असन्निरत्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।
स्तुतश्चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ॥५॥

पदार्थः - हे (सुजात) सुन्दर प्रकार प्रसिद्ध (अग्ने) विद्वन् राजन् (त्वे) आप के निमित्त (भुवः) पृथिवी के सम्बन्ध में (भूरि) बहुत (आहवनानि) सत्कारपूर्वक निमन्त्रण (असन्) होते हैं (विश्वेभिः) सब (अनीकैः) अच्छी शिक्षित सेनाओं के साथ (सुमनाः) प्रसन्न चित्त (स्तुतः) स्तुति को प्राप्त (गृणानः) स्तुति करने वालोंके वाक्यों को (चित्) भी (शृण्विषे) सुनते हैं सो आप (स्वयमित्) स्वयमेव (तन्वम्) शरीर को (वर्धस्व) बढ़ाइये ॥५॥

भावार्थः—हे राजन्! यदि आप प्रशंसित धर्मयुक्त कर्मों को करें तो सर्वत्र विजय को प्राप्त होते हुए आप वृद्धि को प्राप्त होके सब प्रजाओं को बढ़ावें ॥५॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इदं वचः शतसाः संसहस्रमुदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः ।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ॥६॥

पदार्थः—हे राजन् (शतसाः) सौ का विभाग करने (द्विबर्हाः) विद्या और विनय से बढ़ने और (रक्षोहा) दुष्ट राक्षसों के हिंसा करने वाले आप (अग्नये) अग्नि के लिये जैसे वैसे (इदम्) इस (सं, सहस्रम्) सम्यक् सहस्र (वचः) वचन को (जनिषीष्ट) प्रकट कीजिये (यत्) जिस (द्यु मत्) कामना वाले (अमीवचातनम्) रोगनाशरूप (शम्) सुख को (स्तोतृभ्यः) स्तुतिकर्ता विद्वानों के लिये वा (आपये) प्राप्त कराने वाले आप्त के लिये (उद्भवाति) प्रसिद्ध करते हैं उसी को निरन्तर सिद्ध करें ॥६॥

भावार्थः—हे प्रजाजनो! जैसे सभापति राजा सब के लिये मधुर कोमल वचन और उत्तम सुख देकर दुःख दूर करता है वैसे ही तुम लोग भी राजा के लिये असंख्य पदार्थों को देकर प्रमाद और रोग रहित करके अधिकतम धन देओ ॥६॥

कैसे पुरुष को प्रजा लोग राजा मानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।

इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) पुत्र (अग्ने) सत्य मार्ग के प्रकाशक राजन् पुरुष जिससे आप (स्तोतृभ्यः) ऋत्विजों के लिये (इषम्) विज्ञान वा धन को (मघवद्भ्यः) बहुत धन वाले के लिये धन वा विज्ञान को (आनट्) व्याप्त होते हो इस कारण (वसिष्ठाः) अत्यन्त धन वाले हम लोग (वसूनाम्) वास के हेतु पृथिव्यादि के (ईशानम्) अध्यक्ष (त्वाम्) आपको (नु, ईमहे) शीघ्र चाहते हैं और हम जिन तुम लोगों की रक्षा करें वे (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) कल्याणों से (नः) हमारी सदा (पात) रक्षा करो ॥७॥

भावार्थः—हे राजन् ! आप विद्वानों के लिये श्रेष्ठ वस्तु, धनवानों के लिये प्रतिष्ठा देते हो आप और राजपुरुष हमारी निरन्तर रक्षा करें इसलिये आपके हम सेवक होवें ॥७॥

इस सूक्त में अग्नि के दृष्टान्त से राजा के कर्त्तव्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह सप्तम मण्डल में आठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य नवमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १ त्रिष्टुप् । ४ । ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ३ भुरिक् पङ्क्तिः । ६ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले नवम सूक्त का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में फिर कौन विद्वान् सेवने योग्य हैं इस विषय को कहते हैं ॥

अबोधि जार उषसामुपस्थाद्धोता मन्द्रः कवितमः पावकः ।

दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर्हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (जारः) रात्रि का नाश करने वाला सूर्य (उषसाम्) प्रातःकाल की वेलाओं के (उपस्थात्) समीप से (उभयस्य) इस लोक परलोक में जाने आने वाले (जन्तोः) जीवात्मा के (हव्या) होमने योग्य वस्तुओं को (केतुम्) बुद्धि को और (द्रविणम्) धन वा बल को (देवेषु) पृथिव्यादि वा विद्वानों में (दधाति) धारण करता है तथा (होता) दानशील (मन्द्रः) आनन्ददाता (कवितमः)

प्रति प्रवीण (पावकः) पवित्रकर्त्ता विद्वान् जीव के ग्राह्य वस्तुओं को (सुकृत्सु) पुण्यात्मा विद्वानों में धन और बुद्धि का धारण करता स्वयं अज्ञानियों को (अबोधि) बोध कराता उसी अध्यापक विद्वान् की निरन्तर सेवा करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्वान् जैसे रात्रि को सूर्य निवारण कर प्रकाश को उत्पन्न करता वैसे अविद्या का निवारण करके विद्या को प्रकट करते हैं, वे जैसे धर्मात्मा न्यायाधीश राजा पुण्यात्माओं में प्रेम धारण करता है वैसे शमदमादि युक्त श्रोताओं में प्रीति को विधान करें ॥१॥

फिर राज कार्य्यों में कौन लोग श्रेष्ठ होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः ।
होता मन्द्रो विशां दमूनास्तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (पणीनाम्) प्रशस्त व्यवहार करनेहारों के (दुरः) द्वारों को (पुनानः) पवित्र करता हुआ (राम्याणाम्) रात्रियों के (तमः) अन्धकार का (तिरः) तिरस्कार करके सूर्य (ददृशे) दीखता है तथा (सुक्रतुः) सुन्दर बुद्धि वाला (अर्कम्) अन्न वा सत्कार योग्य (पुरुभोजसम्) बहुतों के रक्षक मनुष्य को (वि) विशेष कर पवित्रकर्त्ता (नः) हमारी (विशाम्) प्रजाओं में (मन्द्रः) आनन्ददाता (होता) दानशील (दमूनाः) दमनशील अविद्या का तिरस्कार करता है (सः) वह हमारा राजा हो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सभ्य राजा लोग सूर्य के तुल्य न्याय के प्रकाशक, अविद्यारूप अन्धकार के निवारक, दुष्टों का दमन और श्रेष्ठ धार्मिकों का सत्कार करने वाले होते हुए धर्मसम्बन्धी मार्ग को पवित्र करते हैं वे ही सब को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥२॥

फिर कैसा विद्वान् पूजनीय होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अमूरः कविरदितिर्विवस्वान्त्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रेऽपां गर्भः प्रस्व १ आ विवेश ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (उषसाम्) प्रभात वेलाओं के (अग्रे) पहिले (चित्रभानुः) अद्भुत प्रकाशयुक्त (विवस्वान्) सूर्य के समान (अपाम्) अन्तरिक्ष के बीच (गर्भः) गर्भ के तुल्य वर्त्तमान (प्रस्वः) अपने सम्बन्धी उत्तम जनों वाला हुआ

(भाति) प्रकाशित होता है (सु, संसत्) सुन्दर सभा वाला (मित्रः) मित्र (अमूरः) मूढ़ता रहित (कविः) प्रवृत्त बुद्धि वाला पण्डित (अदितिः) पिता के तुल्य वर्त्तमान (अतिथिः) प्राप्त हुए विद्वान् के तुल्य (नः) हमारा (शिवः) मङ्गलकारी हुआ (आ, विवेश) प्रवेश करता है वही विद्वान् सब को सत्कार करने योग्य होता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जो विद्वानों में मुखिया, सूर्य के तुल्य सत्य न्याय का प्रकाशक, अविद्यादि दोषों से रहित, धर्मात्मा विद्वान्, पुत्र के तुल्य प्रजाओं का पालन करता है वही अतिथि के तुल्य सत्कार करने योग्य होता है ॥३॥

फिर कौन प्रशंसा योग्य होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ईळेन्यो वो मनुषो युगेषु समनगा अशुचज्जातवेदाः ।
सुसंदृशा भानुना यो विभाति प्रति गावः समिधानं बुधन्त ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यः) जो (ईळेन्यः) स्तुति के योग्य (समनगाः) संग्राम को प्राप्त होने वाला (जातवेदाः) विद्या को प्राप्त हुआ (युगेषु) बहुत वर्षों में (वः) तुम (मनुषः) मनुष्यों को (सुसन्दृशा) अच्छे प्रकार दिखाने वाले (भानुना) किरण से सूर्य के समान (विभाति) प्रकाशित करता है और जैसे (समिधानम्) देदीप्यमान के (प्रति) प्रति (गावः) किरण (बुधन्त) बोध के हेतु होते हैं वैसे (अशुचत्) शुद्ध प्रतीति कराता है वही मनुष्यों में उत्तम होता है ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य सूर्य्य के सदृश शुभ गुणों का ग्रहण कराके मनुष्यों को प्रकाशित करते हैं वे प्रशंसा करने योग्य होते हैं ॥४॥

फिर कौन विद्वान् संगति करने योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अग्ने याहि दूत्यं१ मा रिषण्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन ।
सरस्वतीं मरुतो अश्विनाऽपो यक्षि देवान्रत्नधेयाय विश्वान् ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) वह्नि के तुल्य कार्य सिद्ध करनेहारे विद्वन् ! आप (दूत्यम्) दूत के कर्म को (याहि) प्राप्त हूजिये (देवान्) विद्वानों वा शुभ गुणों को (मा) मत (रिषण्यः) नष्ट कीजिये (ब्रह्मकृता) जिससे धन वा अन्न को उत्पन्न करते (गणेन) उस सामग्री के समुदाय से (रत्नधेयाय) रत्नों का जिसमें धारण हो उसके लिए (सरस्वतीम्) विद्याशिक्षायुक्त वाणी का (मरुतः) मनुष्यों का (अश्विना) अध्यापक और उपदेशकों के (अपः) कर्मों का और (विश्वान्) सब (देवान्) विद्वानों

का जिस कारण (अच्छा, यक्षि) अच्छे प्रकार संग करते हैं इससे सत्कार करने योग्य हैं ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् लोग अग्निरूप दूत से बहुत कार्य्यों को सिद्ध करते हैं वैसे कार्य की सिद्धि करके किसी को मत मारो, पदार्थविद्या, धन वा धान्य से कोश को पूर्ण कर सब को सुखी करो ॥५॥

फिर वे विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वामग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन्यक्षि राये पुरंधिम् ।
पुरुणीथा जातवेदो जरस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) विज्ञान को प्राप्त (अग्ने) अग्नि के तुल्य विद्यादि गुणों से प्रकाशित विद्वन् जैसे (समिधानः) सम्यक् प्रकाशमान (वसिष्ठः) अत्यन्त धनी (जरूथम्) शिथिलावस्था से युक्त जीर्ण मेघ को (हन्) हनन करता है वैसे सुन्दर सभा के योग्य (पुरन्धिम्) बहुतों को धारण करने वाले (त्वाम्) आप विद्वान् का (राये) धनप्राप्ति के लिए मैं (यक्षि) सङ्ग करता हूं (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) सुख साधनों से (नः) हमारी (सदा) सदा (पात) रक्षा करो और (पुरुणीथा) बहुतों को प्राप्त होने वाले धर्मयुक्त कर्मों की (जरस्व) प्रशंसा करो ॥६॥

भावार्थः—जो राजा के सहित सभ्य लोग, सूर्य मेघ को जैसे वैसे अविद्या और दुष्टाचारों का नाश करते हैं सब को धर्मयुक्त मार्ग को प्राप्त कराते वे सब के यथावत् रक्षक होते हैं ॥६॥

इस सूक्त में अग्नि के दृष्टान्त से विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में नवमां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य दशमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । २ । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ । ५ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले दशवें सूक्त का प्रारम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में अब विद्वान् किसके तुल्य क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद्दविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः ।
वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वन् जैसे (जारः) जीर्ण करने हारे के (न) तुल्य (शोशुचानः) शुद्ध संशोधक (वृषा) वृष्टिकर्त्ता (हरिः) हरणशील (उशतीः) कामना किये जाते (धियः) कर्मों वा बुद्धियों को (हिन्वानः) बढ़ाता हुआ अग्नि (अजीगः) जगाता है (भासा) दीप्ति से सब को (आ, भाति) प्रकाशित करता है (पृथु) विस्तृत (पाजः) अन्नादि का (अश्रेत्) आश्रय करता है सब को (वविद्युतत्) प्रकट करता है (उषः) प्रभातवेला के तुल्य (शुचिः) पवित्र स्वयं (दीद्यत्) प्रकाशित होता है वैसे आप कीजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जैसे उत्तम शिक्षा को प्राप्त विद्वान् यथावत् कार्य्यों को सिद्ध करते वैसे ही विद्युत् आदि पदार्थ सम्प्रयोग में लाये हुए सब व्यवहारों को सिद्ध करते हैं ॥१॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्व१र्ण वस्तोरुषसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म ।
अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान्द्रवद्दूतो देवयावा वनिष्ठः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (अग्निः) विद्युत् अग्नि (स्वः, न) आदित्य के समान (वस्तोः) दिवस और (उषसाम्) प्रभातवेलाओं के सम्बन्ध में (अरोचि) रुचि करता है वा प्रकाशित होता (यज्ञम्) संगतियोग्य व्यवहार को (तन्वानाः) विस्तृत करते और (उशिजः) कामना करते हुए के (न) तुल्य (देवः) प्रकाशयुक्त कामना करता हुआ (विद्वान्) विद्वान् (मन्म) मानने योग्य विज्ञान और (जन्मानि) जन्मों को (वि, आ, द्रवत्) विशेष कर अच्छा शुद्ध करता हुआ (दूतः) समाचार पहुंचाने वाला (वनिष्ठः) अत्यन्त विभागकर्ता (देवयावा) दिव्य उत्तम गुणों को प्राप्त होने वाला अग्नि के तुल्य श्रेष्ठ व्यवहारों को प्रकाशित करता उस विद्वान् पुरुष की निरन्तर सेवा करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलु०—जो जिज्ञासु विद्वानों से शिक्षा को प्राप्त होके विधि और क्रिया से अग्नि आदि पदार्थों से समस्त व्यवहारों को सिद्ध करते हैं वे प्रसिद्ध धनवान् होते हैं ॥२॥

फिर स्त्रीपुरुष किसके तुल्य होकर कैसे स्वीकार करें
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः ।
सुसन्दृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो कन्या (मतयः) बुद्धि के तुल्य वर्त्तमान (गिरः) विद्यायुक्त वाणियों और (अच्छा, देवयन्तीः) अच्छे प्रकार विद्वान् पतियों की कामना करती हुई (सुसन्दृशम्) अच्छे प्रकार देखने योग्य (सुप्रतीकम्) सुन्दर प्रतीति के साधन (स्वञ्चम्) सुन्दर प्रकार पूजने योग्य (मानुषाणाम्) मनुष्यों के सम्बन्ध से (हव्यवाहम्) होमने योग्य पदार्थों को देशान्तर पहुंचाने वाले (अरतिम्) सर्वत्र प्राप्त होने वाले (द्रविणम्) धन वा यश को (भिक्षमाणाः) चाहती हुई (अग्निम्) विद्युत् की विद्या को (यन्ति) प्राप्त होती हैं वे ही विवाहने योग्य होती हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे कन्या दीर्घ ब्रह्मचर्य के साथ विदुषी हो और अग्नि आदि की विद्या को प्राप्त हो के पुरुषों में से उत्तम उत्तम पतियों को चाहती हुई अपने अपने अभीष्ट स्वामी को प्राप्त होती हैं वैसे पुरुषों को भी अपने अनुकूल स्त्रियों को प्राप्त होना चाहिये ॥३॥

कौन विद्वान् निरन्तर सेवने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम् ।
आदित्येभिरदितिं विश्वजन्यां बृहस्पतिमृक्वभिर्विश्ववारम् ॥४॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् (सजोषाः) तुल्य सेवनकर्त्ता आप (नः) हमारे लिये (वसुभिः) पृथिव्यादि के साथ (इन्द्रम्) विद्युत् अग्नि को (रुद्रेभिः) प्राणों के साथ (बृहन्तम्) बड़े (रुद्रम्) जीवात्मा को (आदित्येभिः) बारह महीनों से (विश्वजन्याम्) संसारोत्पत्ति की हेतु (अदितिम्) अखण्डित काल-विद्या को और (ऋक्वभिः) ऋग्वेदादि से (विश्ववारम्) सब के स्वीकार करने योग्य (बृहस्पतिम्) बड़ी ऋग्वेदादि वाणी के रक्षक परमात्मा को (आ, वहा) अच्छे प्रकार प्राप्त कराइये ॥४॥

भावार्थः—जो ही पृथिव्यादि विद्या के साथ बिजुली की विद्या को, प्राणविद्या के साथ जीवविद्या को, कालविद्या के साथ प्रकृति के विज्ञान को और वेदविद्या से परमात्मा के विज्ञान कराने को समर्थ होता है उसी का सब लोग विद्या प्राप्ति के लिये आश्रय करें ॥४॥

मनुष्य प्रतिदिन किस का खोज करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठमग्निं विश ईळते अध्वरेषु ।
स हि क्षपावाँ अभवद्रयीणामतन्द्रो दूतो यजथाय देवान् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जिसको (अध्वरेषु) अग्निहोत्रादि क्रियारूप व्यवहारों में

(मन्द्रम्) आनन्दकारी (होतारम्) दाता (यविष्ठम्) अतिजवान के तुल्य (अग्निम्) अग्नि की (उशिजः) कामना करते हुए (विशः) प्रजाजन (ईळते) स्तुति वा खोज करते हैं (सः, हि) वही (क्षपावान्) बहुत रात्रियों वाला (अतन्द्रः) आलस्य रहित (दूतः) दूत के समान (रयीणाम्) द्रव्यों की (यजथाय) प्राप्ति के लिये (देवान्) दिव्यगुणों के प्राप्त कराने को समर्थ (अभवत्) होता है ॥५॥

भावार्थः—जो अग्नि, दूत के तुल्य सब विद्याओं का संग कराने वाला होता है उसका सब मनुष्य खोज करें, जिससे सब गुणों की प्राप्ति हो ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान् और विदुषी के कर्त्तव्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में दशवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकादशस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १ स्वराट् पङ्क्तिः । २ । ४ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ विराट् त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते ।
आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर्न्यग्ने होता प्रथमः सदेह ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर आप (इह) इस जगत् में (विश्वेभिः) सब (देवैः) विद्वानों के साथ (प्रथमः) पहिले (होता) विद्यादि शुभगुणों के दाता हमको (सरथम्) रथ सहित (नि, आ, याहि) निरन्तर प्राप्त हूजिये जिस कारण (त्वत्) आप से (ऋते) भिन्न (अमृताः) नाशरहित जीव (न) नहीं (मादयन्ते) आनन्द करते हैं इससे आप (सद) स्थिर हूजिये आप (अध्वरस्य) सब व्यवहार के (महान्) बड़े (प्रकेतः) उत्तमबुद्धि के प्रकाशक (असि) हैं ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिसके विना न विद्या, न सुख प्राप्त होता है जो विद्वानों का सङ्ग, योगाभ्यास और धर्माचरण से प्राप्त होने योग्य है उसी जगदीश्वर की सदा उपासना करो ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वामीळते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः ।
यस्य देवैरासदो बर्हिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य स्वयंप्रकाशस्वरूप ईश्वर (यस्य) जिस आप के (देवैः) विद्वानों से (आ, असदः) प्राप्त होने योग्य (बर्हिः) सुखवर्द्धक विज्ञान प्राप्त होता है (अस्मै) इस विद्वान् के लिये आप के (अहानि) दिन (सुदिना) सुदिन (भवन्ति) होते हैं जैसे (हविष्मन्तः) प्रशस्त सामग्री वाले (मानुषासः) मनुष्य (दूत्याय) दूतकर्म के लिये (सदम्, इत्) स्थिर होने वाले (अजिरम्) फेंकने हारे अग्नि की (ईळते) स्तुति करते हैं वैसे ये लोग (त्वाम्) आपकी निरन्तर स्तुति करें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे सामग्री वाले अग्निविद्या को प्राप्त होके निरन्तर आनन्दित होते हैं वैसे ही ईश्वर को प्राप्त होके निरन्तर श्रीमान् होते हैं ॥२॥

किसके होने पर मनुष्य उत्तम गुण को प्राप्त होते हैं
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्रिश्चिदक्तोः प्र चिकितुर्वसूनि त्वे अन्तर्दाशुषे मर्त्याय ।
मनुष्वदग्न इह यक्षि देवान्भवा नो दूतो अभिशस्तिपावा ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् (त्वे) आपके (अन्तः) बीच (दाशुषे) दानशील (मर्त्याय) मनुष्य के लिये (वसूनि) द्रव्यों को (अक्तोः) रात्रि के सम्बन्ध में (चित्) भी (त्रिः) तीन वार विद्वान् (प्र, चिकितुः) जानते हैं आप (इह) इस जगत् में (मनुष्वत्) मनुष्यों के तुल्य (देवान्) विद्वानों का (यक्षि) सत्कार कीजिये (नः) हमारे (दूतः) दूत के समान (अभिशस्तिपावा) प्रशंसितों के रक्षक पवित्रकारी (भव) हूजिये ॥३॥

भावार्थः—जिसके संग से मनुष्यों को दिव्य गुण और पुष्कल धन प्राप्त होते हैं इस जगत् में उसी की स्तुति कर जो दूत के तुल्य परोपकारी होता है वह सब को सत्य जताने को समर्थ होता है ॥३॥

किसकी विद्या से अभीष्ट प्राप्त करना चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्याग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य ।
क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥४॥

पदार्थः—(अग्निः) विद्युत् अग्नि (बृहतः) बड़े (अध्वरस्य) रक्षा योग्य व्यवहार के करने को (ईशे) समर्थ है (अग्निः) अग्नि (कृतस्य) शुद्ध (विश्वस्य)

सब (हविषः) संग करने योग्य व्यवहार के लिये समर्थ है (अस्य) इस अग्नि के संग से जो (वसवः) चौवीस वर्ष ब्रह्मचर्य्य करने वाले प्रथम कक्षा के (देवाः) विद्वान् जन (क्रतुम्) बुद्धि का (हि) ही (जुषन्त) सेवन करते हैं (अथा) इसके अनन्तर (हव्य-वाहम्) ग्रहण करने योग्य वस्तुओं को प्राप्त करने वाले अग्नि को (दधिरे) धारण करते हैं वे ही जगत् में पूज्य होते हैं ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो विद्युत् बड़े बड़े कार्य्यों को सिद्ध करती जिसके सम्बन्ध से योगाभ्यास कर के मनुष्य बुद्धि को प्राप्त होता उसी अग्नि का सब लोग युक्ति से सेवन करें ॥४॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आग्ने वह हविरद्याय देवानिन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम् ।
इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् आप (अद्याय) भोगने योग्य वस्तु के लिये (देवान्) विद्वानों को (हविः) भोजनं योग्य अन्न को (आ वह) अच्छे प्रकार प्राप्त कराइये उससे (इह) इस समय (इन्द्रज्येष्ठासः) जिन में राजा श्रेष्ठ है वे मनुष्य (मादयन्ताम्) आनन्दित करें आप (इमम्) इस (यज्ञम्) धर्मयुक्त व्यवहार को (दिवि) द्योतनस्वरूप परमात्मा और (देवेषु) विद्वानों में (धेहि) धारण करो, हे विद्वानो (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हमारी (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ॥५॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जैसे अग्नि सूर्यादिरूप से सब को आनन्दित करता है वैसे इस जगत् में तम सब लोगों की रक्षा कर और कर्त्तव्य को कराके अभीष्ट भोगों को प्राप्त कराओ ॥५॥

इस सूक्त में अग्नि और विद्वानों का कृत्य वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में ग्यारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यर्चस्य द्वादशस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १ विराट्-त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब बारहवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में अग्नि कैसा है इस विषय को कहते हैं ॥

अग॑न्म म॒हा नम॑सा॒ यवि॑ष्ठं॒ यो दी॒दाय॒ समि॑द्धः॒ स्वे दु॑रो॒णे ।
चि॒त्रभा॑नुं॒ रोद॑सी अ॒न्तरु॒र्वी स्वा॑हुतं वि॒श्वतः॑ प्र॒त्यञ्च॑म् ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (स्वे) अपने (दुरोणे) घर में (समिद्धः) प्रकाशित है वह (दीदाय) सबको प्रकाशित करता है उसको (उर्वी) बड़ी (रोदसी) सूर्य पृथिवी के (अन्तः) भीतर वर्त्तमान (चित्रभानुम्) अद्भुत किरणों वाले (स्वाहुतम्) सुन्दर प्रकार ग्रहण किये (विश्वतः) सब ओर से (प्रत्यञ्चम्) पीछे चलने और (यविष्ठम्) अतिशय विभाग करने वाले (महा) बड़े अग्नि को (नमसा) सत्कार वा अन्नादि से जैसे हम लोग (अगन्म) प्राप्त हों वैसे इसको तुम लोग भी प्राप्त होओ ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्वानों को उचित है कि सब को ऐसा उपदेश करें कि जैसे हम लोग सब के अन्तःस्थित विद्युत् अग्नि को जानें वैसे तुम लोग भी जानो ॥१॥

फिर प्रेम से उपासना किया ईश्वर क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स म॒ह्ना विश्वा॑ दुरि॒तानि॑ सा॒ह्वान॒ग्निः ष्ट॑वे॒ दम॒ आ जा॒तवे॑दाः ।
स नो॑ रक्षिषद्दुरि॒ताद॑व॒द्याद॒स्मान्गृ॑ण॒त उ॒त नो॑ म॒घोनः॑ ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जगदीश्वर (दमे) घर में (अग्निः) अग्नि के तुल्य (जातवेदाः) उत्पन्न हुए पदार्थों में व्याप्त होकर विद्यमान (स्तवे) स्तुति में (मह्ना) महत्त्व से (साह्वान्) सहनशील (विश्वा) सब (दुरितानि) दुराचरणों को दूर करता है (सः) वह (अवद्यात्) निन्दनीय (दुरितात्) दुष्टाचार से (नः) हमारी (आ, रक्षिषत्) रक्षा करे (गृणतः) शुद्धि करते हुए हम लोगों की रक्षा करे (उत) और (मघोनः) बहुत धन वाले (नः) हमारी (सः) वह रक्षा करे ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे घर में प्रज्वलित किया अग्नि अन्धकार और शीत की निवृत्ति करता है वैसे ही उपासना किया परमेश्वर अज्ञान और अधर्म्माचरण को दूर कर धर्म और विद्या ग्रहण में प्रवृत्ति कराके सम्यक् रक्षा करता है ॥२॥

फिर वह उपासना किया ईश्वर क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य स्वयं प्रकाशस्वरूप ईश्वर जो (वसिष्ठाः) सब विद्याओं में अतिशय कर निवास करने वाले (मतिभिः) बुद्धियों से (त्वाम्) तुमको (वर्द्धन्ति) बढ़ाते हैं उन (त्वे) आप में प्रीति वालों के (सुषणनानि) सुन्दर विभाग किये (वसु) द्रव्य (सन्तु) हों जो (त्वम्) आप (वरुणः) श्रेष्ठ (उत) और (मित्रः) मित्र है सो आप हमारी (सदा) सदा रक्षा करो और हे विद्वानो (यूयम्) तुम लोग ईश्वर के तुल्य (नः) हमारी (स्वस्तिभिः) स्वस्थता-सम्पादक क्रियाओं से (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालं०—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वानों से सम्यक् बढ़ाया हुआ अग्नि दरिद्रता का विनाश करता है वैसे ही उपासना किया परमेश्वर अज्ञान को निवृत्त करता है। जैसे आप्त लोग सब की सदा रक्षा करते हैं वैसे परमात्मा सब संसार की रक्षा करता है ॥३॥

इस सूक्त में अग्नि, ईश्वर और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में बारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यृचस्य त्रयोदशस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । वैश्वानरो देवता । १ । २ स्वराट्पङ्क्तिः । ३ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब तीन ऋचा वाले तेरहवें सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में संन्यासी कैसे होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

प्राग्नये विश्वशुचे धियन्धेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम् ।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (मतीनाम्) मनुष्यों के बीच (वैश्वानराय) सब मनुष्यों के नायक (विश्वशुचे) सब को शुद्ध करने वाले (धियन्धे) बुद्धि को धारण करने हारे (असुरघ्ने) दुष्ट कर्मकारियों को मारने वा तिरस्कार करने वाले (अग्नये) अग्नि के तुल्य विद्यादि शुभ गुणों से प्रकाशमान (यतये) यत्न करने वाले संन्यासी के लिए (बर्हिषि) सभा में (प्रीणानः) प्रसन्न हुआ राजा (भरे) संग्राम में (हविः) भोगने

वा देने योग्य अन्न को जैसे (न) वैसे (मन्म) विज्ञान और (धीतिम्) धर्म की धारणा को तुम लोग (प्र, भरध्वम्) धारण वा पोषण करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में [उपमा] वाचकलु०—हे गृहस्थो ! जो अग्नि के तुल्य विद्या और सत्य धर्म के प्रकाशक, अधर्म के खण्डन और धर्म के मण्डन से सब के शुद्धिकर्त्ता, बुद्धिमान्, निश्चित ज्ञान देने वाले, अविद्वत्ता के विनाशक, मनुष्यों को विज्ञान और धर्म का धारण कराते हुए संन्यासी हों उनके सङ्ग से सब तुम लोग बुद्धि को धारण कर निस्सन्देह होओ। जैसे राजा युद्ध की सामग्री को शोभित करता है वैसे उत्तम संन्यासी जन सुख की सामग्री को शोभित करते हैं ॥१॥

फिर वे संन्यासी किसके तुल्य क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वम॑ग्ने शो॒चिषा॒ शोशु॑चान॒ आ रोद॑सी अपृणा॒ जाय॑मानः ।
त्वं दे॒वाँ अ॒भिश॑स्तेरमु॒ञ्चो वैश्वा॑नर जातवेदो महि॒त्वा ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान तेजस्विन् संन्यासिन् आप जैसे अग्नि (शोशुचानः) शुद्ध करता और (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ (शोचिषा) प्रकाश से (रोदसी) सूर्य भूमि को अच्छे प्रकार पूरित करता वैसे हम लोगों को (त्वम्) आप (आ, अपृणाः) अच्छे प्रकार पूर्ण कीजिये हे (वैश्वानर) सब मनुष्यों के नायक (जातवेदः) विद्या को प्राप्त विद्वन् (त्वम्) आप (महित्वा) अपनी महिमा से (देवान्) हम विद्वानों को (अभिशस्तेः) सन्मुख प्रशंसा करने वाले दम्भी से (अमुञ्चः) छुड़ाइये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे अग्नि आप शुद्ध हुआ सब को शुद्ध करता है वैसे संन्यासी लोग स्वयं पवित्र हुए सबको पवित्र करते हैं ॥२॥

फिर वे संन्यासी कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

जातो यद॑ग्ने॒ भुव॑ना॒ व्यख्यः॑ प॒शून्न गो॒पा इर्यः॒ परि॑ज्मा ।
वैश्वा॑नर॒ ब्रह्म॑णे विन्द गा॒तुं यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥३॥

पदार्थः—हे (वैश्वानर) सब मनुष्यों में प्रकाश करने वाले (अग्ने, अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् संन्यासिन् जैसे (जातः) उत्पन्न हुआ अग्नि (भुवना) लोक-लोकान्तरों को (वि, अख्यः) विशेषकर प्रकाशित करता है वैसे (यत्) जो आप विद्याओं में प्रसिद्ध मनुष्यों के आत्माओं को प्रकाशित कीजिये तथा (पशून्) गौ

आदि को (गोपाः) पशुरक्षकों के (न) तुल्य (इर्य्यः) सत्य मार्ग में प्रेरक और (परिज्मा) सब ओर से प्राप्त होने वाले हूजिये वह आप (ब्रह्मणे) परमेश्वर, वेद वा चार वेदों के ज्ञाता के लिये (गातुम्) प्रशस्त भूमि को (विन्द) प्राप्त हूजिये (यूयम्) तुम संन्यासी लोग सब (स्वस्तिभिः) स्वस्थता के हेतु क्रियाओं और सत्य उपदेशों से (नः) हमारी (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सूर्य के तुल्य, परोपकार, विद्या और उपदेश जिनके प्रसिद्ध हैं वे जैसे गौएं बछड़ों की रक्षा करतीं वैसे विद्यादान से सब की रक्षा करने वाले सर्वदा घूमते हुए वेद, ईश्वर को जानने के लिये राज्यरक्षणार्थ राजा के तुल्य न्यायशील होकर सब मूर्खों को बोध कराते वे सदा सब को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥३॥

इस सूक्त में अग्नि के दृष्टान्त से संन्यासियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में तेरहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यर्चस्य चतुर्दशस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १ निचृद्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तीन ऋचा वाले चौदहवें सूक्त का आरम्भ है । उसके प्रथम मन्त्र में संन्यासी की सेवा कैसे करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

समिधा जातवेदसे देवाय देवहूतिभिः ।
हविर्भिः शुक्रशोचिषे नमस्विनो वयं दाशेमाग्नये ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे ऋत्विज् पुरुष और यजमान लोग (समिधा) दीप्ति के हेतु काष्ठ और (हविर्भिः) होम के साधनों और (देवहूतिभिः) विद्वानों ने प्रशंसित की हुई वाणियों के साथ (अग्नये) अग्नि के लिये प्रयत्न करते हैं वैसे (नमस्विनः) अन्न और सत्कार वाले (वयम्) हम लोग (जातवेदसे) उत्पन्न पदार्थों में विद्यमान (शुक्रशोचिषे) वीर्य्य और पराक्रम से दीप्तिमान् तेजस्वी (देवाय) विद्वान् संन्यासी के लिये अन्नादि पदार्थ (दाशेम) देवें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे दीक्षित लोग अग्निहोत्रादि यज्ञ में घृत की आहुतियों से होम किये अग्नि से जगत् का हित करते हैं

वैसे हम अनियत तिथि वाले संन्यासियों की सेवा से मनुष्यों का कल्याण करें ॥१॥

फिर वे संन्यासी क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वयं ते॑ अग्ने स॒मिधा॑ विधेम व॒यं दा॑शेम सुष्टु॒ती य॑जत्र ।
व॒यं घृ॒तेना॑ध्वरस्य होतर्व॒यं दे॑व ह॒विषा॑ भद्रशोचे ॥२॥

पदार्थः—हे (यजत्र) संग करने योग्य (होतः) होम करने वाले (भद्रशोचे) कल्याण के प्रकाशक (देव) दिव्य गुणयुक्त (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्विन् जैसे (वयम्) हम लोग (समिधा) ईंधन से अग्नि में होम (विधेम) करें वैसे (सुष्टुती) श्रेष्ठ प्रशंसा से (ते) तुम अतिथि के लिये (वयम्) हम (दाशेम) अन्नादिक देवें जैसे ऋत्विज् और यजमान लोग (अध्वरस्य) यज्ञ के बीच (घृतेन) घी तथा (हविषा) होमने योग्य द्रव्य से जगत् का हित करते हैं वैसे (वयम्) हम लोग आप का हित करें। जैसे (वयम्) हम आप की सेवा करें वैसे आप हमको सत्य उपदेश करें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे गृहस्थ लोग प्रीति से संन्यासियों की सेवा करें वैसे ही प्रीति से संन्यासी भी इनके कल्याण के अर्थ सत्य का उपदेश करें ॥२॥

फिर गृहस्थ और यति लोग परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ नो॑ दे॒वेभि॒रुप॑ दे॒वहू॑ति॒मग्ने॑ या॒हि वष॑ट्कृतिं जुषा॒णः ।
तुभ्यं॑ दे॒वाय॒ दाश॑तः स्याम यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य दोषों के जलाने वाले आप (देवेभिः) विद्वानों के साथ (नः) हमारे (देवहूतिम्) विद्वानों से स्वीकार की हुई (वषट्कृतिम्) सत्य क्रिया को (जुषाणः) सेवन करते हुए हमको (उप, आ, याहि) समीप प्राप्त हूजिये हम लोग (तुभ्यम्) तुम (देवाय) विद्वान् के लिए (दाशतः) सेवन करने वाले (स्याम) होवें (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुख क्रियाओं से (नः) हमारी (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ॥३॥

भावार्थः—गृहस्थों को चाहिये कि सदैव पूर्ण विद्या वाले संन्यासियों की निमन्त्रण द्वारा प्रार्थना वा सत्कार करें जिससे वे समीप आये हुए उनकी रक्षा और निरन्तर उपदेश करें ॥३॥

इस सूक्त में अग्नि के दृष्टान्त से यति और गृहस्थ के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में चौदहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चदशर्चस्य पञ्चदशतमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ३ । ७ । १० । १२ । १४ विराड्गायत्री । २ । ४ । ५ । ६ । ९ । १३ गायत्री । ८ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ११ । १५ आर्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः ॥

अब पन्द्रहवें सूक्त का आरम्भ है । इसके प्रथम मन्त्र में अतिथि कैसा हो इस विषय को कहते हैं ॥

उपसद्याय मीळ्हुषं आस्यें जुहुता हविः । यो नो नेदिष्ठमाप्यम् ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (नः) हमारे (नेदिष्ठम्) अति निकट (आप्यम्) प्राप्त होने योग्य को प्राप्त होता है उस (उपसद्याय) समीप में स्थापन करने योग्य (मीळ्हुषे) जल से जैसे वैसे सत्य उपदेशों से सींचने वाले के लिये (आस्ये) मुख में (हविः) देने योग्य वस्तु को (जुहुत) देओ ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो यति समीप प्राप्त हो उसका तुम सब लोग सत्कार करो और अन्नादि का भोजन कराओ ॥१॥

फिर वे संन्यासी और गृहस्थ परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यः पञ्चं चर्षणीर॒भि निं॒षसाद॒ दमेंदमे । क॒विर्गृ॒हप॑ति॒र्युवां ॥२॥

पदार्थः—(यः) जो (कविः) उत्तम ज्ञान को प्राप्त हुआ संन्यासी (दमेदमे) घर घर में (पञ्च) पांच (चर्षणीः) मनुष्यों वा प्राणों को (अभि, निषसाद) स्थिर करे उसका (युवा) पूर्ण ब्रह्मचर्य्य के साथ वर्त्तमान (गृहपतिः) घर का रक्षक युवा पुरुष निरन्तर सत्कार करे ॥२॥

भावार्थः—संन्यासीजन सदा सब जगह भ्रमण करे और गृहस्थ इस विरक्त का सत्कार करे और इससे उपदेश सुने ॥२॥

फिर वे दोनों परस्पर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स नो॒ वेदो॑ अ॒मात्य॑म॒ग्नी र॑क्षतु वि॒श्वतः॑ । उ॒तास्मान्पा॒त्वंह॑सः ॥३॥

पदार्थः—(सः) वह संन्यासी (अग्निः) अग्नि के तुल्य (नः) हम गृहस्थों की

वा (प्रमात्यम्) उत्तम मंत्री की ओर (वेदः) धन की विश्वतः) सब ओर से (रक्षतु) रक्षा करे (उत) और (अस्मान्) हमारी (अंहसः) दुष्टाचरण वा अपराध से (पातु) रक्षा करे ॥३॥

भावार्थः—गृहस्थ लोग ऐसी इच्छा करें कि संन्यासी जन हमको ऐसा उपदेश करे कि जिससे हम लोग धन के रक्षक हुए अधर्म के आचरण से पृथक् रहें ॥३॥

फिर वे संन्यासी लोग कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नवं नु स्तोममग्नये दिवः श्येनाय जीजनम् ।

वस्वः कुविद्वनाति नः ॥४॥

पदार्थः—जो (नः) हमारे (वस्वः) धन के (कुवित्) बड़े भाग को (वनाति) सेवन करे उस (श्येनाय) श्येन के तुल्य पाखण्डियों के विनाश करने वाले (अग्नये) अग्नि के समान पवित्र के लिए (दिवः) कामना की (नवम्) नवीन (स्तोमम्) प्रशंसा को मैं (नु, जीजनम्) शीघ्र प्रकट करूं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो अतिथि लोग श्येन पक्षी के तुल्य शीघ्र चलने वाले, पाखण्ड के नाशक, द्रव्य और विद्या के उपदेशक सन्यासधर्मयुक्त हों उनका गृहस्थ सत्कार करें ॥४॥

किसका धन प्रशंसनीय होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्पार्हा यस्य श्रियो दृशे रयिर्वीरवतो यथा ।

अग्रे यज्ञस्य शोचतः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यस्य) जिस (वीरवतः) वीरों वाले के (स्पार्हाः) चाहना करने योग्य (श्रियः) लक्ष्मी शोभाएं (दृशे) देखने को योग्य हों वह (यथा) जैसे (अग्रे) पहिले (शोचतः) पवित्र (यज्ञस्य) सङ्ग के योग्य व्यवहार का साधक (रयिः) धन है वैसे सत्क्रिया का सिद्ध करने वाला हो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—उसी का धन सफल है जिसने न्याय से उपार्जन किया धन धर्मयुक्त व्यवहार में व्यय किया होवे ॥५॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सेमां वेतु वषट्कृतिमग्निर्जुषत नो गिरः । यजिष्ठो हव्यवाहनः ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (सः) वह (यजिष्ठः) अत्यन्त यज्ञकर्त्ता (हव्यवाहनः) देने योग्य पदार्थों को प्राप्त होने वाला (अग्निः) पावक अग्नि (नः) हमारी (इमाम्)

इस (वषट्कृतिम्) शुद्ध क्रिया को और (गिरः) वाणियों को (वेतु) प्राप्त हो उसको तुम लोग (जुषत) सेवन करो ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अग्नि सम्यक्प्रयुक्त किया हुआ हमारी क्रियाओं का सेवन करता वह तुम लोगों को सेवने योग्य है ॥६॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं देव धीमहि । सुवीरमग्न आहुत ॥७॥

पदार्थः—हे (नक्ष्य) व्याप्त वस्तुओं को उत्तम प्रकार जानने वाले (आहुत) बहुतों से सत्कार को प्राप्त (विश्पते) प्रजारक्षक (देव, अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि विद्वन् जिस (द्युमन्तम्) प्रकाश वाले (सुवीरम्) उत्तम वीर हों जिससे उस अग्नि के तुल्य शुद्ध (त्वा) आपको जैसे (नि, धीमहि) निरन्तर ध्यान करें वैसे आप हमको निरन्तर आनन्द में स्थिर कीजिये ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे हम लोग आपको न्याय से राज्य पालनरूप व्यवहार में सदा स्थित करें वैसे आप हमको धर्मयुक्त व्यवहार में प्रतिष्ठित कीजिये ॥७॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

क्षप उस्रश्च दीदिहि स्वग्नयस्त्वया वयम् । सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥८॥

पदार्थः—हे राजन् (अस्मयुः) हमको चाहने वाले (सुवीरः) सुन्दर वीर पुरुषों से युक्त (त्वम्) आप (क्षपः) रात्रियों (च) और (उस्रः) किरण युक्त दिनों में (अस्मान्) हमको (दीदिहि) प्रकाशित कीजिये (त्वया) आपके साथ (स्वग्नयः) सुन्दर अग्नियों वाले (वयम्) हम लोग प्रतिदिन प्रकाशित हों ॥८॥

भावार्थः—हे राजा और राजपुरुषो ! जैसे प्रतिदिन सूर्य प्रकाशित होता है वैसे तुम लोग सदा प्रकाशित होओ ॥८॥

फिर विद्वान् क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उप त्वा सातये नरो विप्रासो यन्ति धीतिभिः ।

उपाक्षरा सहस्रिणी ॥९॥

पदार्थः—हे विद्यार्थिनि ! जैसे (विप्रासः) बुद्धिमान् (नरः) मनुष्य (धीतिभिः) अंगुलियों से (अक्षरा) अकारादि अक्षरों को (उप, यन्ति) उपाय से प्राप्त करते वे जो कन्या (सहस्रिणी) असंख्य विद्या विषयों को जानने वाली है उसको जानें वैसे (त्वा) आपके (सातये) सम्यक् विभाग के लिये बुद्धिमान् मनुष्य (उप) समीप प्राप्त हों ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अंगूठा और अंगुलियों से अक्षरों को जानकर विद्वान् होता है वैसे ही विद्वान् लोग शोधन कर विद्या के रहस्यों को प्राप्त हों ॥९॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः ।
शुचिः पावक ईड्यः ॥१०॥

पदार्थः—जो (शुक्रशोचिः) शुद्ध तेजस्वी (अमर्त्यः) साधारण मनुष्यपन से रहित (शुचिः) पवित्र (पावकः) शुद्ध पवित्र करने वाला (ईड्यः) स्तुति करने वा खोजने योग्य (अग्निः) अग्नि के तुल्य राजा वा सेनाधीश (रक्षांसि) रक्षा करने योग्य कार्यों को (सेधति) सिद्ध करे वह कीर्ति वाला होता है ॥१०॥

भावार्थः—जैसे राजा अन्याय का निवारण कर न्याय का प्रकाश करता है वैसे विद्युत् दरिद्रता का विनाश कर लक्ष्मी को प्रकट करता है ॥१०॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो । भगश्च दातु वार्यम् ॥११॥

पदार्थः—हे (सहसः) अति बलवान् के (यहो) पुत्र राजन् अग्नि के तुल्य तेजस्वी (ईशानः) समर्थ (भगः) ऐश्वर्यवान् जो आप (नः) हमारे लिए (राधांसि) सुख बढ़ाने वाले धनों को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण वा पोषण करें तथा (वार्यम्) स्वीकार करने योग्य ऐश्वर्य को (च,भी (सः)सो आप (दातु) दीजिये ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अग्निविद्या से धनधान्य सम्बन्धी ऐश्वर्य को मनुष्य प्राप्त होते हैं वैसे ही उत्तम राज्य प्रबन्ध से मनुष्य धनाढ्य और सुखी होते हैं ॥११॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वमग्ने वीरवद्यशो देवश्च सविता भगः ।
दितिश्च दाति वार्यम् ॥१२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वि राजन् ! जैसे (देवः) दानशील वा प्रकाशमान (सविता) प्रेरणा करने वाला वा सूर्य और (दितिः) दुःखनाशक नीति (च) भी (वार्य्यम्) स्वीकार के योग्य (वीरवत्) जिससे उत्तम वीर पुरुष हों (यशः)

उस धन वा कीर्ति (च) और (भगः) ऐश्वर्य को (दाति) देती है। इसको (त्वम्) आप दीजिये ॥१२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो राजा अच्छे प्रकार सम्प्रयुक्त अग्नि आदि के तुल्य प्रजाओं में उद्योग से और अच्छी नीति से ऐश्वर्य कराके दुःख को खण्डित करता है वही यशस्वी होता है ॥१२॥

फिर वह राजा किसके समान क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अग्ने॒ रक्षा॑ णो॒ अंह॑सः॒ प्रति॑ ष्म दे॒व रीष॑तः।
तपि॑ष्ठैर॒जरो॑ दह ॥१३॥

पदार्थः–हे (देव) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त (अग्ने) अग्निवत् तेजस्वी राजन्! जैसे अग्नि (तपिष्ठैः) अत्यन्त तपाने वाले तेजों से काष्ठादि को जलाता है वैसे (अजरः) वृद्धपन वा शिथिलतारहित हुए आप (रीषतः) हिंसक से (नः) हमारी (रक्ष) रक्षा कीजिये और (अंहसः) पापाचरण से (स्म) ही (प्रति) प्रतीति के साथ रक्षा कीजिये और दुष्टाचारियों को तेजों से (दह) जलाइये ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अग्नि शीत और अन्धकार से रक्षा करता है वैसे राजा आदि विद्वान् हिंसादि पापरूप आचरण से सब को पृथक् रखते हैं ॥१३॥

फिर राजा और राणी प्रजा के प्रति क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अधा॑ म॒ही न॒ आय॒स्यना॑धृष्टो॒ नृपी॑तये। पूर्भ॑वा श॒तभु॑जिः ॥१४॥

पदार्थः—हे राणी जैसे तुम्हारा (अनाधृष्टः) किसी से न धमकाने योग्य पति राजा न्याय से मनुष्यों का पालन करता है वैसे (अध) अब (आयसी) लोहे से बनी दृढ़ (पूः) नगरी के समान रक्षिका (मही) महती वाणी के तुल्य (शतभुजिः) असंख्यात जीवों का पालन करने वाली आप (नृपीतये) मनुष्यों के पालन के लिये (नः) हम स्त्री-जनों की रक्षा करने वाली (भव) हूजिये ॥१४॥

भावार्थः–इस मन्त्र में वाचकलु०—जहां शुभ गुणकर्मस्वभावयुक्त राजा पुरुषों और वैसे गुणों वाली राणी स्त्रियों का न्याय और पालन करें वहाँ सब काल में विद्या, आनन्द, अवस्था और ऐश्वर्य बढ़ें ॥१४॥

फिर राणी राजा, प्रजाजनों के प्रति कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं नः॑ पा॒ह्यंह॑सो॒ दोषा॑वस्तरघाय॒तः। दिवा॒ नक्त॑मदाभ्य ॥१५॥

पदार्थः—हे (अदाभ्य) रक्षा करने योग्य राजन्! (त्वम्) आप (दोषावस्तः)

दिन रात (अघायतः) अपने को पाप चाहते हुए दुष्ट के सङ्ग से और (दिवानक्तम्) रात्रि दिन सब समय में (अंहसः) अपराध से (नः) हमको आप (पाहि) रक्षित कीजिये, बचाइये ॥१५॥

भावार्थः जैसे राजा पुरुषों की निरन्तर रक्षा करे वैसे राणी प्रजा की स्त्रियों की नित्य रक्षा करे ॥१५॥

इस सूक्त में अग्नि के दृष्टान्त से राजा और रानी के कृत्यों का वर्णन करने से इस सूक्त की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह सप्तम मण्डल में पन्द्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्य षोडशस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १ स्वराडनुष्टुप् । ५ निचृदनुष्टुप् । ७ अनुष्टुप् । ११ भुरिगनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । २ भुरिग्बृहती । ३ निचृद्बृहती । ४ । ९ । १० । बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । ६ । ८ । १२ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब राजा प्रजा के सुख के लिये क्या क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१॥

पदार्थः—हे प्रजा जनो ! जैसे मैं राजा (वः) तुमको (एना) इस (नमसा) अन्न वा सत्कारादि से (ऊर्जः) पराक्रम के (नपातम्) विनाश को प्राप्त न होने वाले (प्रियम्) चाहने योग्य (चेतिष्ठम्) अतिशय कर सम्यक् ज्ञापक (अरतिम्) सुख प्रापक (स्वध्वरम्) सुन्दर अहिंसादि व्यवहार वाले (अमृतम्) अपने स्वरूप से नाशरहित (विश्वस्य) संसार के (दूतम्) बहुत कार्यों के साधक (अग्निम्) अग्नि के तुल्य तेजस्वी उपदेशक को (आहुवे) स्वीकार करता वैसे तुम भी उसको स्वीकार करो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे राजा सत्योपदेशकों का प्रचार करे वैसे उपदेशक अपने कर्त्तव्य को प्रीति से यथावत् पूरा करें ॥१॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो यदि (सः) वह (स्वाहुतः) सुन्दर प्रकार आह्वान किया

हुआ (सः) वह (सुब्रह्मा) सुन्दर अन्न वा धनों से युक्त वा अच्छे प्रकार चारों वेद का ज्ञाता (यज्ञः) सत्कार के योग्य (सुशमी) सुन्दर कर्मों वाला (वसूनाम्) धनों का (राधः) धन (जनानाम्) मनुष्यों के बीच (देवम्) उत्तम (विश्वभोजसा) विश्व के रक्षक (अरुषा) घोड़ों के तुल्य जल अग्नि को युक्त करता और (द्रवत्) शीघ्र प्राप्त होता हुआ (योजते) युक्त करता है वह इच्छा सिद्धि वाला होता है ॥२॥

भावार्थः—जो राजा प्रजापालन के अर्थ सदा सुस्थिर है उसको जो दुःखनिवारण के लिये बुलावें उनको शीघ्र प्राप्त होकर सुखी करता है उत्तम आचरणों वाला विद्वान् होता हुआ प्रतिक्षण प्रजा के हित की इच्छा करता है वही सब को पूजनीय होता है ॥२॥

फिर वह अग्नि कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उद॑स्य शो॒चिर॑स्थादाजुह्वा॒नस्य॑ मी॒ळ्हुष॑: ।
उद्धू॒मासो॑ अरु॒षासो॑ दिवि॒स्पृश॒: सम॒ग्निमि॑न्धते॒ नर॑: ॥३॥

पदार्थः—जो (नरः) मनुष्य जिस (आजुह्वानस्य) अच्छे प्रकार होम किये द्रव्य को प्राप्त (मीळ्हुषः) सेचक (अस्य) इस अग्नि की (शोचिः) दीप्ति (उदस्थात्) उठती है (दिविस्पृशः) प्रकाश में स्पर्श करने वाले (धूमासः) धूम और (अरुषासः) अरुणवर्ण लपटें (उत्) उठती हैं उस (अग्निम्) अग्नि को (समिन्धते) सम्यक् प्रकाशित करते हैं वे उन्नति को प्राप्त होते हैं ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम लोग ऊर्ध्वगामी धूमध्वजा वाले तेजोमय वृष्टि आदि से प्रजा के रक्षक अग्नि को सम्यक् प्रयुक्त करो जिस से तुम्हारे कार्य्यों की सिद्धि होवे ॥३॥

फिर राजादि मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तं त्वा॑ दू॒तं कृ॑ण्महे य॒शस्त॑मं दे॒वाँ आ वी॒तये॑ वह ।
विश्वा॑ सूनो सहसो मर्त॒भोज॑ना रास्व॒ तद्यत्त्वेम॑हे ॥४॥

पदार्थः- हे (सहसः) बलवान् के (सूनो) पुत्र विद्वन् ! जैसे हम लोग (यशस्तमम्) अतिशय कीर्ति करने वाले (तम्) उस अग्नि को (दूतम्) दूत (कृण्महे) करते वैसे (त्वा) आपको मुख्य करते हैं। आप (वीतये) विज्ञानादि को प्राप्त करने के लिए (देवान्) दिव्य गुणों वा पदार्थों को (आ, वह) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये वा कीजिये (विश्वा) सब (मर्त्तभोजना) मनुष्यों के भोजनों वा पालनों को (रास्व) दीजिये जैसे (यत्) जिस अग्नि को कार्यसिद्धि के लिये प्रयुक्त करते वैसे (तत्) उसको और (त्वा) आपको (ईमहे) याचना करते हैं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो सब कार्य्यों के साधक विद्युत् अग्नि को दूत और राजकार्यों के साधक विद्या वा विनय से युक्त पुरुष को राजा करते हैं वे सब ऐश्वर्य और पालन को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर मनुष्य कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वम॑ग्ने गृहप॑तिस्त्वं होता॑ नो अध्वरे ।
त्वं पोता॑ विश्ववार प्रचे॑ता यक्षि वेषि॑ च वार्यम् ॥५॥

पदार्थः—हे (विश्ववार) सब को स्वीकार करने योग्य (अग्ने) अग्नि के तुल्य प्रकाशमान (गृहपतिः) घर के रक्षक ! (त्वम्) आप (नः) हमारे (अध्वरे) अहिंसादि लक्षणयुक्त धर्म के आचरण में (होता) दाता (त्वम्) आप (पोता) पवित्रकर्त्ता (त्वम्) आप (प्रचेताः) अच्छे प्रकार जताने वाले आप (वार्य्यम्) स्वीकार योग्य धर्मयुक्त व्यवहार को (यक्षि) सङ्गत करते (च) और (वेषि) व्याप्त होते हैं उन आपकी हम लोग याचना करते हैं ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—पूर्व मन्त्र से यहां (ईमहे) पद की अनुवृत्ति आती है । जैसे अग्नि घर का पालक, सुखदाता, यज्ञ में पवित्र-कर्त्ता, शरीर में चेतनता कराने वाला, सब विश्व का संग करता और व्याप्त होता है वैसे ही मनुष्य होवें ॥५॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ।
आ न ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते ॥६॥

पदार्थः—हे (सुक्रतो) उत्तम बुद्धि वा धर्मयुक्त कर्म करने वाले पुरुष (यः) जो (सुशंसः) सुन्दर प्रशंसायुक्त जन (दक्षते) वृद्धि को प्राप्त होता उस (विश्वम्) सब (ऋत्विजम्) ऋतुओं के योग्य काम करने वाले को (च) और (नः) हमको (ऋते) सत्यभाषणादि रूप संगत करने योग्य व्यवहार में (त्वम्) आप (आ, शिशीहि) तीव्र उद्योगी कीजिये (हि) जिस कारण आप (रत्नधाः) उत्तम धनों के धारणकर्त्ता (असि) हैं इस कारण (यजमानाय) परोपकारार्थ यज्ञ करते हुए के लिये (रत्नम्) रमणीय धन को प्रकट (कृधि) कीजिये ॥६॥

भावार्थः—इस संसार में जो पुरुष धनाढ्य हो वह निर्धनों को उद्योग कराके निरन्तर पालन करे । जो सत् श्रेष्ठ कर्मों में बढ़ते उन्नत होते हैं उन को धन्यवाद और धनादि पदार्थों के दान से उत्साहयुक्त करे ॥६॥

फिर वह राजा किन का सत्कार करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वे अ॑ग्ने स्वाहुत प्रि॒यासः॑ सन्तु सू॒रयः॑ ।

य॒न्तारो॒ ये म॒घवा॑नो॒ जना॑नामू॒र्वान्दय॑न्त॒ गोना॑म् ॥७॥

पदार्थः—हे (स्वाहुत) सुन्दर प्रकार सत्कार को प्राप्त (अग्ने) विद्या विनय के प्रकाशक अग्नि के तुल्य तेजस्वि राजन् ! (ये) जो (जनानाम्) मनुष्यों के बीच (गोनाम्) गौ आदि पशुओं के (ऊर्वान्) रक्षकों को (दयन्त) दया करते वा सुरक्षित रखते और (यन्तारः) शुभ कर्मों को प्राप्त होने वाले (मघवानः) बहुत प्रकार के धनों से युक्त (सूरयः) धर्मात्मा विद्वान् (त्वे) आप में (प्रियासः) प्रीति करने वाले (सन्तु) हों उनका आप नित्य सत्कार कीजिये ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे राजा सब में दया का विधान कर और विद्वानों का सत्कार करके अपने राज्य में धनाढ्यों को वसावे वैसे प्रजाजन भी राजा के हितैषी होवें ॥७॥

राजा को किनका पालन वा किनको दण्ड देना चाहिये
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

येषा॒मिळा॑ घृ॒तह॑स्ता दुरो॒ण आँ अपि॑ प्रा॒ता नि॒षीद॑ति ।

ताँस्त्रा॑यस्व सहस्य द्रु॒हो नि॒दो यच्छा॑ नः॒ शर्म॑ दीर्घ॒श्रुत् ॥८॥

पदार्थः—हे (सहस्य) बल से युक्त राजन् ! (येषाम्) जिन के (दुरोणे) घर में (घृतहस्ता) हाथ में घी लेने वाली के तुल्य (प्राता) व्यापक (इळा) प्रशंसा योग्य वाणी (आ, निषीदति) अच्छे प्रकार निरन्तर स्थिर होती (तान्) उनकी आप (त्रायस्व) रक्षा कीजिये (दीर्घश्रुत) दीर्घ काल तक सुनने वाले आप (नः) हमारे (शर्म) घर को (यच्छ) ग्रहण कीजिये जो (द्रुहः) द्रोही (निदः) निन्दक हैं उनको (अपि) भी अच्छे प्रकार ग्रहण कीजिये ॥८॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो सत्यवाणी वाले, वेद ज्ञाता हों उनको नित्य सुख दीजिये और जो द्रोहादि दोषयुक्त आप्तों के निन्दक हैं उनको शीघ्र दण्ड दीजिये ॥८॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स म॒न्द्रया॑ च जि॒ह्वया॒ वह्नि॑रा॒सा वि॒दुष्ट॑रः ।

अग्ने॑ र॒यिं म॒घव॑द्भ्यो न॒ आ व॑ह ह॒व्यदा॑तिं च सूदय ॥९॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य न्याय से प्रकाशित राजन् ! [जो] (वह्निः) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान विद्या और सुख प्राप्त कराने वाले (विदुष्टरः) अत्यन्त विद्वान् हैं (सः) सो आप (मन्द्रया) प्रशंसित आनन्द देने वाली (जिह्वया) सत्य भाषणयुक्त वाणी से (च) और (आसा) मुख से (मघवद्भ्यः) प्रशंसित धन वाले (नः) हम लोगों के लिए (रयिम्) धन को (आ, वह) प्राप्त कराइये (च) और (हव्यदातिम्) होम के वा ग्रहण करने के योग्य वस्तुओं के खण्डन को (सूदय) नष्ट कीजिये ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे अग्नि सब पृथिव्यादि तत्त्वों से हीरा आदि रत्नों को सब ओर से पका के देता है वैसे राजा, धनाढ्यों के सम्बन्ध से निर्धन को धनवान् कराके सुख प्राप्त कराये सत्य मधुर वाणी से प्रजाजनों को शिक्षा करे जिससे ये अयुक्त व्यवहार में धन-हानि न करें ॥९॥

फिर वह राजा प्रजाजनों के प्रति कैसे वर्त्ते इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ये राधांसि दद॒त्यश्व्या॑ म॒घा कामे॑न॒ श्रव॑सो म॒हः ।
ताँ अंह॑सः पिपृहि प॒र्तृभि॒ष्ट्वं श॒तं पू॒र्भिर्य॑विष्ठ्य ॥१०॥

पदार्थः—हे (यविष्ठ्य) अतिशय कर जवानों में श्रेष्ठ राजन् ! (ये) जो (महः) बड़े (श्रवसः) अन्न की (कामेन) कामना से (शतम्) सैकड़ों (मघा) स्वीकार करने योग्य (अश्व्या) महत् लोगों में प्रकट होने वाले (राधांसि) धनों को सब को (ददति) देते हैं (तान्) उनको (पर्तृभिः) रक्षक (पूर्भिः) नगरियों के साथ (त्वम्) आप (अंहसः) दुष्टाचरण से (पिपृहि) रक्षा कीजिये ॥१०॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो धर्मात्मा उद्योगी जनों को उनसे श्रम करा के धन और अन्न देते हैं उन नगरी और पालकों के साथ वर्त्तमानों को अधर्माचरण से पृथक् रक्खो जिससे धर्मपूर्वक उद्योग से पुष्कल धन और अन्न पाकर जगत् के हितार्थ निरन्तर दान करें ॥१०॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दे॒वो वो॑ द्रविणो॒दाः पूर्णां वि॑वष्ट्या॒सिच॑म् ।
उद्वा॑ सि॒ञ्चध्व॒मुप॑ वा पृणध्व॒मादिद्वो॑ दे॒व ओ॑हते ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (द्रविणोदाः) धनदाता (देवः) विद्वान् (वः) तुमको (पूर्णाम्) पूरी (आसिचम्) अच्छे प्रकार सेचन की कान्ति को (विवष्टि)

विशेष कर कामना करता है (वा) अथवा जो (देवः) दिव्यगुणधारी विद्वान् (वः) तुमको (ओहते) वितर्कित करता उसको (उत, सिञ्चध्वम्) ही सींचो (वा) अथवा (आत्, इत्) इसके अनन्तर ही (उप पृणध्वम्) समीप में तृप्त करो ॥११॥

भावार्थः—जो विद्वान् लोग मनुष्यों की कामना पूर्ण करते हैं उनको सब सुखी करें ॥११॥

फिर अध्यापक और अध्येता क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥१२॥

पदार्थः—जो (अग्निः) अग्नि के तुल्य वर्त्तमान विद्वान् (विधते) विधान करते हुए (दाशुषे) दाता (जनाय) जन के लिये (सुवीर्य्यम्) सुन्दर पराक्रम युक्त (रत्नम्) रमणीय धन को (दधाति) धारण करता जिसको (देवाः) विद्वान् लोग (अध्वरस्य) अहिंसारूप यज्ञ के कर्त्ता वा (होतारम्) विद्या के ग्रहीता (वह्निम्) कार्य्यों के चलाने और (प्रचेतसम्) अच्छे प्रकार जताने वाले जन को (अकृण्वत) करें (तम्) उसको सब सुशिक्षित करावें ॥१२॥

भावार्थः- हे विद्वानो ! जो जितेन्द्रिय, तीव्रबुद्धि वाले, विद्या ग्रहण के अर्थ प्रवृत्त विद्यार्थी हों उनको अहिंसाशील, बुद्धिमान्, विद्या और धर्म के धारक करो ॥१२॥

इस सूक्त में अग्नि, विद्वान्, राजा, यजमान, पुरोहित, उपदेशक और विद्यार्थी के कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में सोलहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य सप्तदशस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । अग्निर्देवता । १ । ३ । ४ । ६ । ७ आर्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । २ साम्नी त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ साम्नी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब विद्यार्थी किसके तुल्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बर्हिरुर्विया वि स्तृणीताम् ॥१॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के तुल्य तेजस्वी विद्वन् ! जैसे (सुषमिधा) समिधा के तुल्य शोभायुक्त धर्मानुकूल क्रिया से (समिद्धः) प्रदीप्त अग्नि होता है वैसे

(भव) हूजिये (उत) और जैसे अग्नि (उर्विया) पृथिवी के साथ (बर्हिः) बढ़े हुए जल का विस्तार करता है वैसे प्रकार होकर आप (विस्तृणीताम्) विस्तार कीजिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जैसे इन्धनों से अग्नि प्रदीप्त होता, वर्षा जल से पृथिवी को आच्छादित करता है वैसे ही ब्रह्मचर्य्य, सुशीलता और पुरुषार्थ से विद्यार्थी जन सुप्रकाशित होकर जिज्ञासुओं के हृदयों में विद्या का विस्तार करते हैं ॥१॥

फिर अध्यापक और विद्यार्थी परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

उत द्वारं उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह ॥२॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी जैसे (द्वारः) द्वार (उशतीः) कामना वाली हृदय को प्यारी पत्नियों को विद्वान् (उत) और (उशतः) कामना करते हुए (देवान्) उत्तम गुण कर्म स्वभावयुक्त विद्वान् पतियों को स्त्रियां (वि, श्रयन्ताम्) विशेष कर सेवन करें वा जैसे अग्नि (इह) इस जगत् में सब को प्राप्त होता (उत) और दिव्य गुणों को प्राप्त कराता है वैसे ही आप (आ, वह) प्राप्त करिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो विद्यार्थी विद्या की कामना से आप्त अध्यापकों का सेवन करते जिन उत्तम विद्यार्थियों को अध्यापक चाहते वे परस्पर कामना करते हुए विद्या की उन्नति कर सकते हैं ॥२॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥३॥

पदार्थः—हे (जातवेदः) विद्या को प्राप्त (अग्ने) अग्नि के तुल्य तीव्रबुद्धि वाले विद्यार्थिन् तू विद्युत् के तुल्य (हविषा) ग्रहण किये पुरुषार्थ से विद्याओं को (वीहि) प्राप्त हो (देवान्) विद्वान् अध्यापकों का (यक्षि) संग कर और (स्वध्वरा) सुन्दर अहिंसारूप व्यवहार वाले कामों को (कृणुहि) कर ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—विद्यार्थिजन जैसे विद्युत् मार्ग को शीघ्र व्याप्त होते वैसे पुरुषार्थ से शीघ्र विद्याओं को प्राप्त हों और अध्यापक पुरुष उनको शीघ्र विद्वान् करें ॥३॥

कौन अध्यापक श्रेष्ठ हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद्देवाँ अमृतान्पिप्रयच्च ॥४॥

पदार्थः—जो (जातवेदाः) विद्या में प्रसिद्ध अध्यापक विद्यार्थियों को (देवान्)

विद्वान् और (स्वध्वरा) अच्छे प्रकार अहिंसा स्वभाव वाले (करति) करे (अमृतान्) अपने स्वरूप से मृत्युरहितों को (यक्षत्) संगति करे (च) और इनको (पिप्रयत्) तृप्त करे वह विद्यार्थियों को सेवने योग्य है ॥४॥

भावार्थ—जिन अध्यापकों के विद्यार्थी शीघ्र विद्वान्, सुशील, धार्मिक होते हैं वे ही अध्यापक प्रशंसनीय होते हैं ॥४॥

फिर अध्यापक से विद्यार्थी जन क्या पूछें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवन्त्वाशिषों नो अद्य ॥५॥

पदार्थः—हे (प्रचेतः) उत्तम बुद्धि से युक्त पुरुष आप (विश्वा) सब (वार्याणि) ग्रहण करने योग्य विद्वानों का (वंस्व) सेवन कीजिये जिससे (अद्य) आज (नः) हमारी (आशिषः) इच्छा (सत्याः) सत्य (भवन्तु) होवें ॥५॥

भावार्थः—हे अध्यापक ! आप विवेक से सत्य शास्त्रों को पढ़ाइये और सुशिक्षा करिये जिससे हम लोग सत्य कामना वाले हों ॥५॥

फिर विद्यार्थी किसके तुल्य किसका सेवन करें इस विषय को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

त्वामु ते दधिरे हव्यवाहं देवासों अग्न ऊर्ज आ नपांतम् ॥६॥

पदार्थः—हे (अग्ने) समस्त विद्या से प्रकाशित (ते) आपके (ऊर्जः) पराक्रम-युक्त (देवासः) उत्तम स्वभाव वाले विद्यार्थी जन (नपातम्) जिसका गिरना नहीं विद्यमान उस (हव्यवाहम्) होमे हुए पदार्थों को पहुंचाने वाले अग्नि के समान (त्वाम्) (उ) तुझे ही (आ, दधिरे) अच्छे प्रकार धारण करें ॥६॥

भावार्थः—जैसे अग्निविद्या जानने वाले ऋत्विज् अग्नि की सेवा करते हैं वैसे ही विद्यार्थी जन अध्यापक की सेवा करें ॥६॥

फिर वे परस्पर क्या क्या देवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ते तें देवाय दाशंतः स्याम महो नो रत्ना वि दंध इयानः ॥७॥

पदार्थः—हे अध्यापक ! जो आप (नः) हमारे लिये (इयानः) प्राप्त होते हुए (महः) बड़े-बड़े (रत्नः) रत्नों को (वि, दधः) विधान करते हो (ते) उन (देवाय) विद्वान् अध्यापक आप के लिये (ते) वे हम लोग (दाशतः) देने वाले (स्याम) हों ॥७॥

भावार्थः—जैसे अध्यापक जन प्रीति के साथ विद्यायें देवें वैसे विद्यार्थी जन वाणी, मन, शरीर और धनों से अध्यापकों को तृप्त करें ॥७॥

इस सूक्त में अध्यापक और विद्यार्थियों के कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में सत्रहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चविंशत्यृचस्याऽष्टादशतमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । १–२१ इन्द्रः । २२–२५ सुदासः पैजवनस्य दानस्तुतिर्देवता । १ । १७ । २१ पङ्क्तिः । २ । ४ । १२ । २२ भुरिक् पङ्क्तिः । ८ । १३ । १४ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ३ । ७ विराट्त्रिष्टुप् । ५ । ९ । ११ । १६ । १९ । २० निचृत्त्रिष्टुप् । ६ । १० । १५ । १८ । २३ । २४ । २५ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पच्चीस ऋचा वाले अठारहवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में राजा कैसा श्रेष्ठ होता है इस विषय को कहते हैं ॥

त्वे ह यत्पितरश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन् ।
त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्वं वसु देवयते वनिष्ठः ॥१॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् (त्वे) आपके होते (यत्) जो (नः) हमारे (पितरः) ऋतुओं के समान पालना करने वाले (चित्) और (जरितारः) स्तुतिकर्त्ता जन (विश्वा) समस्त (वामा) प्रशंसा करने योग्य पदार्थों की (असन्वन्) याचना करते हैं (त्वे, ह) आपके होते (सुदुघाः) सुन्दर काम पूरने वाली (गावः) गौएं हैं उनको मांगते हैं (त्वे, हि) आप ही के होते (अश्वाः) जो बड़े-बड़े घोड़े हैं उनको मांगते हैं जो आप (देवयते) कामना करने वाले के लिये (वनिष्ठः) अतीव पदार्थों को अलग करने वाले होते हुए (वसु) धन देते हैं सो (त्वम्) आप सब को सेवा करने योग्य हैं ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—यदि राजा सूर्य के समान विद्या और न्याय का प्रकाशक हो तो सम्पूर्ण राज्य कामना से अलङ्कृत होकर राजा को पूर्ण कामना वाला करे तथा धार्मिक जन धर्म का आचरण करें और अधार्मिक जन भी पापाचरण को छोड़ धर्मात्मा होवें ॥१॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

राजेव हि जनिभिः क्षेष्येवाव द्युभिरभि विदुष्कविः सन् ।
पिशा गिरो मघवन् गोभिरश्वैस्त्वायतः शिशीहि राये अस्मान् ॥२॥

पदार्थः—हे (मघवन्) ऐश्वर्य्यवान् विद्वान् जो आप (जनिभिः) उत्पन्न हुई प्रजाओं से (राजेव) जैसे राजा वैसे (गोभिः) धेनु और (अश्वैः) घोड़ों से (राये) धन के लिये (त्वायतः) तुम्हारी कामना करते हुए (अस्मान्) हम लोगों को (शिशीहि) तेज बुद्धि वाले करो। जो (विदुः) विद्वान् (कविः) कविताई करने में चतुर (सन्) होते हुए (पिशा) रूप से (गिरः) वाणियों को तीक्ष्ण करो (द्युभिः) दिनों से (हि) ही (अभि, अव, क्षेषि) सब ओर से निरन्तर निवास करते हो (एव) उन्हीं आपको हम लोग निरन्तर उत्साहित करें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जैसे सूर्य सब पदार्थों के साथ प्रकाशित होता है वैसे जो राजा प्रकाशमान हो और जो हम लोगों को सत्य के चाहने वालों को प्रसन्न करता है वह भी सदा प्रसन्न हो ॥२॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमा उं त्वा पस्पृधानासो अत्रं मन्द्रा गिरों देवयन्तीरुपं स्थुः ।
अर्वाची ते पथ्यां राय एंतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त राजन् जिन (त्वा) आपको (पस्पृधानासः) स्पर्धा करते अर्थात् अति चाहना से चाहते हुए (इमाः) यह प्रजाजन और (देवयन्तीः) विद्वानों की कामना करती हुई (मन्द्राः) आनन्द देने वाली (गिरः) वाणियां (उप, स्थुः) उपस्थित हों और (ते) आपकी (अर्वाची) नवीन (पथ्या) मार्ग में उत्तम नीति (रायः) धनों को (एतु) प्राप्त हो उन (ते) आपके (अत्र) इस (सुमतौ) श्रेष्ठमति और (शर्मन्) घर में (उ) भी हम लोग सम्मत (स्याम) हों ॥३॥

भावार्थः—हे राजन् ! यदि आप सर्वविद्यायुक्त, सुशिक्षित, मधुर, श्लक्ष्ण, सत्यवाणियों को धारण करो तो तुम्हारी नीति सब को पथ्य हो सब प्रजाजन अनुरागयुक्त होवें ॥३॥

राजा सर्वसम्मति से राजशासन करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुंक्षन्नुप ब्रह्मांणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा न इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छं ॥४॥

पदार्थः—हे राजन् ! जो (वसिष्ठः) अतीव धन (सूयवसे) सुन्दर भक्षण करने योग्य घास के निमित्त (धेनुम्) गौ को (न) जैसे वैसे (त्वा) तुम्हें (दुदुक्षन्) कामों से परिपूर्ण करता हुआ (ब्रह्माणि) बहुत अन्न वा धनों को (उप, ससृजे) सिद्ध करता है (मे) मेरी (गोपतिम्) इन्द्रियों की पालना करने वाले (त्वाम्) तुम्हें

(विश्वः) सब जन जो (आह) कहे (इत्) उसी (नः) हमारी (सुमतिम्) सुन्दर मति को (इन्द्रः) परमैश्वर्य युक्त राजा आप (अच्छ, आ, गन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—यदि आप हम लोगों को विद्वानों की संमति में वर्त्तकर राज्य शासन करें वा जो कोई प्रजा जन स्वकीय सुख दुःख प्रकाश करने वाले वचन को सुनावे उस सब को सुनकर यथावत् समाधान दें तो आप को सब हम लोग गौ दूध से जैसे वैसे राज्यैश्वर्य से उन्नत करें ॥४॥

फिर राजा किसके तुल्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अर्णांसि चित्पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा ।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः ॥५॥

पदार्थः—हे राजा (नव्यः) नवीनों में प्रसिद्ध आप (इन्द्रः) सूर्य वा बिजुली (चित्) के समान (सुदासे) सुन्दर देने योग्य व्यवहार में (पप्रथाना) विस्तीर्ण (अर्णांसि) जल जो (गाधानि) परिमित हैं उनको (सुपारा) सुन्दरता से पार जाने योग्य (अकृणोत्) करते हैं (सिन्धूनाम्) नदियों को (अशस्तीः) अप्रशंसित जलरहित (अकृणोत्) करते हैं (उचथस्य) कहने योग्य (शर्धन्तम्) बल करते हुए (शिम्युम्) अपने को कर्म की कामना करने वाले [के] प्रति (शापम्) शाप अर्थात् जिससे दण्ड देते हैं ऐसे काम को करें ॥५॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे राजा! जैसे सूर्य वा बिजुली समुद्रस्थ जलों को सुख से पार जाने योग्य करता है वैसे ही व्यवहारों को भी परिमाणयुक्त और सुगम कर दुष्टों का नाश और श्रेष्ठों का सन्मान कर दुष्टों की अधर्म-क्रियाओं को निन्दित आप सदा करें ॥५॥

फिर राजा किनका सत्कार करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव ।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद्विषूचोः ॥६॥

पदार्थः—हे राजा (राये) धन के लिये जो (तुर्वशः) शीघ्र वश करने और (पुरोळाः) आगे जाने (यक्षुः) दूसरों से मिलने वाला (इत्) ही (आसीत्) है वा (च) और जो (मत्स्यासः) समुद्रों में स्थिर मछलियों के समान (अपीव) अतीव

(निशिताः) निरन्तर तीक्ष्णस्वभावयुक्त (भृगवः) परिपक्व ज्ञान वाले (द्रुह्यवः) दुष्टों की निन्दा करने वाले (च) भी (श्रुष्टिम्) शीघ्रता (चक्रुः) करते हैं जो (सखा) मित्र (विषूचोः) विद्या और धर्म का सुन्दर शील जिनमें विद्यमान उनके (सखायम्) मित्र को (अतरत्) तरता है उन सबों का आप सदा सत्कार करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे राजन्! जो सब शुभ कर्म्मों में आगे, अच्छे प्रकार सिद्धि की उन्नति करने वाले, बड़े मगरमच्छों के समान गम्भीर आशय वाले, शीघ्रकारी, एक-दूसरे में मित्रता रखने वाले हों उन अतीव बुद्धिमानों का सत्कार कर राज्यकार्यों में नियुक्त करो ॥६॥

फिर राजजन कैसे श्रेष्ठ हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः ।

आ योऽनयत्सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन्युधा नॄन् ॥७॥

पदार्थः—हे राजा जो (पक्थासः) पाकविद्या में कुशल (भलानसः) सब ओर से कहने योग्य (अलिनासः) जिनकी सुभूषित नासिका (विषाणिनः) जिनके सींग के समान तीक्ष्ण नख विद्यमान (शिवासः) और जो मङ्गलकारी आपको (आ, भनन्त) अच्छे प्रकार उपदेश करें (तृत्सुभ्यः) हिंसकों से (युधा) युद्ध से (नॄन्) मनुष्यों को (आ, अजगन्) प्राप्त हों (यः) जो (सधमाः) समान स्थान में मानते हुए (आर्यस्य) उत्तम जन के (गव्या) उत्तम वाणी में प्रसिद्ध हुओं को (आनयत्) अच्छे प्रकार पहुंचाता है उन सब की आप उत्तमता से रक्षा करो ॥७॥

भावार्थः—हे राजा जो तपस्वी पुरुषार्थी वक्ता जन उत्तम रूप वाले मङ्गल जिनके आचरण युद्ध विद्या में कुशल आर्यजन आपको जिस जिस का उपदेश दें उस उस को अप्रमत्त होते हुए सदा ठानो अर्थात् सर्वदैव उसका आचरण करो ॥७॥

कौन इस लोक में भाग्यहीन होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दुराध्यो३ अदितिं स्रेवयन्तोऽचेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीम् ।

मह्नाविव्यक्पृथिवीं पत्यमानः पशुष्कविरशयच्चायमानः ॥८॥

पदार्थः—जैसे (मह्ना) बड़प्पन से (पत्यमानः) पति के समान आचरण करता (चायमानः) वृद्धि को प्राप्त होता हुआ (कविः) प्रत्येक काम में आक्रमण करने वाली बुद्धि जिसकी वह (पशुः) गो आदि पशु (अशयत्) सोता है (परुष्णीम्) पालने वाली (पृथिवीम्) भूमि को (अविव्यक्) विविध प्रकार से आक्रमण करता है वैसे जो (अचेतसः) निर्बुद्धि (दुराध्यः) दुष्टबुद्धि पुरुष (अदितिम्) उत्पत्ति काम

को (स्रेवयन्तः) सेवते हुए (वि, जगृभ्रे) विशेषता से लेते हैं वे वर्त्तमान हैं ऐसा जानो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो! वे ही इस संसार में पशु के तुल्य पामर जन हैं जो स्त्री में आसक्त हैं ॥८॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णीमाशुश्चनेदभिपित्वं जगाम ।
सुदास इन्द्रः सुतुकाँ अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः ॥९॥

पदार्थः—जैसे (सुदासः) सुन्दर दान जिसके विद्यमान वह (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् (अर्थम्) द्रव्य के (न) समान (न्यर्थम्) निश्चित अर्थ वाले को (आशुः) शीघ्रकारी होता हुआ (परुष्णीम्) पालना करने वाली नीति को (चन) भी (अभिपित्वम्) और प्राप्त होने योग्य पदार्थ को (जगाम) प्राप्त होता है (अमित्रान्) मित्रतारहित अर्थात् शत्रुओं को (अरन्धयत्) नष्ट करे और (मानुषे) मनुष्यों के इस संग्राम में (वध्रिवाचः) जिनकी वृद्धि देने वाली वाणी वे (सुतुकान्) सुन्दर जिनके सन्तान हैं उनकी रक्षा करते हैं वैसे और भी मनुष्य (इत्) उसको (ईयुः) प्राप्त हों ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है – हे राजजनो! जैसे न्यायाधीश राजा न्याय से प्राप्त पदार्थ को लेता और अन्याय से उत्पन्न हुए पदार्थ को छोड़ता तथा श्रेष्ठों की सम्यक् रक्षा कर दुष्टों को दण्ड देता है वही उत्तम होता है ॥९॥

फिर जीव अपने अपने किये हुए कर्म के फल को प्राप्त होते [ही] हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ईयुर्गावो न यवसादगोपा यथाकृतमभि मित्रं चितासः ।
पृश्निगावः पृश्निनिप्रेपितासः श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च ॥१०॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! (यवसात्) भक्षण करने योग्य घास आदि से (अगोपाः) जिनकी रक्षा विद्यमान नहीं वे (गावः) गौयें (न) जैसे वा जैसे (अभिमित्रम्) सन्मुख [=सम्मुख] मित्र वैसे (चितासः) संचय अर्थात् संचित पदार्थों से युक्त जीव (यथाकृतम्) जैसे किया कर्म वैसे उसके फल को (ईयुः) प्राप्त हों वा पहुंचें वा जैसे (पृश्निगावः) अन्तरिक्ष के तुल्य किरणों से युक्त (पृश्निनिप्रेपितासः) अन्तरिक्ष में निरन्तर प्रेपित किये हुए (नियुतः) निश्चित गति वाले वायु और (रन्तयः) जिनमें रमते हैं वे वायु (च) (श्रुष्टिम्) शीघ्रता (चक्रुः) करते हैं वे वैसा ही फल पाते हैं ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जैसे चरवाहों से रहित गौयें अपने बछड़ों को और वायु अन्तरिक्षस्थ किरणों को और मित्र मित्र को प्राप्त होता है वैसे ही अपने किये हुए शुभ अशुभ कर्मों को जीव ईश्वरव्यवस्था से प्राप्त होते हैं ॥१०॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान्राजा न्यस्तः ।

दस्मो न सद्मन्नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम् ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (दस्मः) दुःख के विनाश करने वाले के (न) समान (वैकर्णयोः) विविध प्रकार के कानों में उत्पन्न हुए व्यवहारों का (नि, अस्तः) निरन्तर प्रक्षेपण करने अर्थात् औरों के कानों में डालने वाला (राजा) विराजमान (जनान्) मनुष्यों को (सद्मन्) जिसमें बैठते हैं उस घर में (निशिशाति) निरन्तर तीक्ष्ण करता है और (विंशतिम्, च, एकम्, च) बीस और एक भी अर्थात् इक्कीस (श्रवस्या) अन्न में उत्तम गुण देने वालों को (अकृणोत्) सिद्ध करता है वह (एषाम्) इन वीर मनुष्यों के बीच (इन्द्रः) सूर्य (बर्हिः) अच्छे प्रकार बढ़े हुए (सर्गम्) जल को जैसे वैसे (शूरः) निर्भय शत्रुओं को जीतता है ॥११॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार है। जो राजा मनुष्यों को पुत्र के समान पालता, अहिंसक के समान सब को आनन्दित कराता और सूर्य के समान न्याय विद्या और बलों को प्रकाशित कर शत्रुओं को जीतता है वही सब सुखों को प्राप्त होता है ॥११॥

फिर राजा अमात्य और प्रजा पुरुष परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु द्रुह्यं नि वृणग्वज्रबाहुः ।

वृणाना अत्र सख्याय सख्यं त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा ॥१२॥

पदार्थः—हे राजन् ! (ये) जो (अत्र) यहां (सख्याय) मित्रता के लिये (सख्यम्) मित्रपन को (वृणानाः) स्वीकार करते और (त्वायन्तः) तुम्हारी चाह करते हुए धार्मिक विद्वान् पुरुष (त्वा) तुमको (अनु, अमदन्) आनन्दित करते हैं (अध) इसके अनन्तर उनसे जिस कारण (श्रुतम्) सुना इस कारण उनमें से (कवषम्) उपदेश करने वाले (वृद्धम्) अवस्था और विद्या से अधिक को और (द्रुह्युम्) दुष्टों से द्रोह करने वाले को जो (वज्रबाहुः) शस्त्रों को हाथों में रखने

वाला (निवृणक्) निरन्तर विवेक से स्वीकार करता और (अप्सु) जलों में (अनु) अनुकूलता से स्वीकार करता है उन सबको वा उसको सब सत्कार करें ॥१२॥

भावार्थः—हे राजा ! जो आपके अनुकूल वर्त्तमान हैं और जिनके अनुकूल आप हैं वे सब मित्र मित्र होकर न्याय से प्रजाओं का पुत्र के समान पालन कर आनन्द भोगें ॥१२॥

फिर वे राजा आदि कैसा बल करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषामिन्द्रः पुरः सहसा सप्त दर्दः ।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्जेष्म पूरुं विदथे मृध्रवाचम् ॥१३॥

पदार्थः—जैसे (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् राजा (सहसा) बल से (एषाम्) इन शत्रुओं के (सप्त) सातों (पुरः) पुरों को (वि, दर्दः) विशेषता से छिन्न भिन्न करता वा (आनवस्य) सब ओर से नवीन के (गयम्) प्रजा वा घर को (वि, भाक्) विशेषता से सेवता है तथा (पूरुम्) पूरण बुद्धि वाले मनुष्य को और (विदथे) संग्राम में (मृध्रवाचम्) हिंसा करने वाली जिसकी वाणी और (तृत्सवे) दूसरे हिंसक के लिये सन्मुख [=सम्मुख] विद्यमान है उसको हम लोग (जेष्म) जीतें जिससे हमारी (सद्यः) शीघ्र (विश्वा, दृंहितानि) समस्त सेना के जन वृद्धि—उन्नति को प्राप्त हों ॥१३॥

भावार्थः—जो धार्मिक अपने प्रधानों से सहित वा राज्य कार्य्यों में शूरवीर पुरुष अपने से सतगुने अधिक भी दुष्ट शत्रुओं को जीत सकते हैं वे प्रजा पालने को योग्य होते हैं ॥१३॥

राजादि मनुष्यों से कितना बल बढ़वाना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षट् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि ॥१४॥

पदार्थः—जिन्होंने (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य युक्त राजा के (विश्वा) समस्त (इत्) ही (वीर्या) पराक्रम (कृतानि) उत्पन्न किये वे (गव्यवः) अपने को भूमि चाहते (द्रुह्यवः) और दुष्ट अधर्मी जनों को मारने की इच्छा करते हुए (अनवः, षष्टिः, वीरासः) साठ वीर अर्थात् शरीर और आत्मा के बल और शूरता से युक्त मनुष्य (षट् सहस्रा) छः सहस्र शत्रुओं को (अधि) अधिकता से जीतते हैं वे (च) भी (षट्, षष्टिः, शता) छयासठ सैंकड़े शत्रु (दुवोयु) जो सेवन की कामना करता है उसके लिये (निसुषुपुः) निरन्तर सोते हैं ॥१४॥

भावार्थः—जहां राजा और प्रजा सेनाओं में प्रजा और सेना विजुली के समान पूर्ण बल और पराक्रमयुक्त सेना को बढ़वाते हैं वहां साठि [=साठ] योद्धा छः हजार शत्रुओं को भी जीत सकते हैं ॥१४॥

किस के साथ कौन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः ।
दुर्मित्रासः प्रकलविन्मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे ॥१५॥

पदार्थः—जो (एते) ये (इन्द्रेण) परमैश्वर्ययुक्त राजा के साथ (तृत्सवः) शत्रुओं को मारने वाले (वेविषाणाः) शत्रुओं के बलों को व्याप्त होते हुए (आपः) जलों के (न) समान (सृष्टाः) शत्रुओं पर नियम से रक्खे और (विश्वानि) समस्त (भोजना) भोजनों को (मिमानाः) उत्पन्न करते हुए जो (दुर्मित्रासः) दुष्ट मित्रों वाले हों उनकी जो सेना हैं वे (नीचीः) नीचे जाती और (अधवन्त) कम्पती हैं उन पर जो शस्त्र अस्त्रों को (जहुः) छोड़ते हैं और जो परमैश्वर्ययुक्त राजा (सुदासे) श्रेष्ठ देने वाले के निमित्त (प्रकलवित्) अच्छे प्रकार संख्या का जानने वाला है वे सब विजयभागी होते हैं ॥१५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जिनकी समुद्र की तरङ्गों के समान, उत्साहयुक्त, बलिष्ठ सेना हों वे शत्रुओं की सेनाओं को नीचे गिरा शीघ्र उन्हें जीत सकते हैं ॥१५॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अर्द्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम् ।
इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः ॥१६॥

पदार्थः—जो (क्षाम्) भूमि को (पत्यमानः) पति के समान आचरण करता हुआ (इन्द्रः) ऐश्वर्ययुक्त शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला (वीरस्य) शुभ गुणों में व्याप्त राजा (शृतपाम्) पके हुए दूध को पीने वा (अर्द्धम्) बढ़ाने वा (शर्द्धन्तम्) बल करने वाले सेनापति को पाकर (अनिन्द्रम्) अनैश्वर्य को (पराणुनुदे) दूर करता है वा जो (मन्युम्यः) क्रोध को नष्ट करने वाला शत्रुओं पर (मन्युम्) क्रोध को (अभि) सन्मुख [=सम्मुख] से (मिमाय) मानता (पथः) वा मार्गों को और (वर्त्तनिम्) जिसमें वर्त्तमान होते हैं उस न्याय-मार्ग को (भेजे) सेवता है वही राजजनों में श्रेष्ठ और राजराजेश्वर होता है ॥१६॥

भावार्थः—जो राजा वीर जनों की बल वृद्धि करके दुष्टों पर क्रोध

करता और धार्मिकों पर आनन्ददृष्टि हो तथा न्याययुक्त मार्ग का अनुगामी होता हुआ ऐश्वर्य को पैदा करता है वही सर्वदा वृद्धि को प्राप्त होता है ॥१६॥

कौन शत्रुओं के जीतने में योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आध्रेण चित्तद्वेकं चकार सिंह्यं चित्पेत्वेना जघान।
अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्रः प्रायच्छद्विश्वा भोजना सुदासे ॥१७॥

पदार्थः— जो (इन्द्रः) दुष्टों के समूह को विदारने वाला (स्रक्तीः) रची हुई सेनाओं को (वेश्या) सूचना से (अवृश्चत्) छिन्न भिन्न करता (आध्रेण) सब ओर से धारण किये विषय से (चित्) ही (तत्) उस (एकम्, उ) एक को (चकार) सिद्ध करता (सिंह्यम्) सिंहों में उत्पन्न हुए बल के समान (चित्) ही (पेत्वेन) पहुंचाने से (अव, जघान) शत्रुओं को मारता और (विश्वा) समस्त (भोजना) अन्नादि पदार्थों को (प्रायच्छत्) देता है उस (सुदासे) अच्छे देने वाले के होते वीरजन कैसे नहीं शत्रुओं को जीतें ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो वीर जन सिंह के समान पराक्रम कर शत्रुओं को मारते हैं और भूगोल में एक अखण्डित राज्य करने को अच्छा यत्न करते हैं, वे समग्र बल को विधान कर और वीरों का सत्कार कर बुद्धिमानों से राज्य की शिक्षा दिलाने को प्रवृत्त हों ॥१७॥

मनुष्यों को सदा शत्रुपन से युक्त निवारने योग्य हैं
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम्।
मर्ताँ एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र ॥१८॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले ! जो (हि) निश्चय से (शश्वन्तः) निरन्तर (शत्रवः) शत्रु जन हैं (ते) वे (स्तुवतः) स्तुति करते हुए (मर्तान्) मनुष्यों को (रारधुः) मारते हैं जो (भेदस्य, शर्धतः) बलवान् भेद के (रन्धिम्) वश करने को (चित्) ही (विन्द) प्राप्त हों (यः) जो (एनः) पहुंचाने वाला हिंसा (कृणोति) करता है (तस्मिन्) उसके और उन पिछलों के निमित्त भी (तिग्मम्) तीव्र गुण कर्म स्वभाव वाले (वज्रम्) शस्त्र और अस्त्र को (नि, जहि) निरन्तर छोड़ो ॥१८॥

भावार्थः—हे राजा आदि धार्मिक जनो ! जो सर्वदा शत्रुभावयुक्त

और धार्मिक जनों को नष्ट करते हुए विद्यमान हैं उनको शीघ्र मारो जिससे सब जगह सबके अभय और सुख बढ़ें ॥१८॥

जो मनुष्य परस्पर की रक्षा कर न्याय से राज्य को पालते हैं वे ही शिर के समान उत्तम होते हैं ॥

आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत् ।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ॥१९॥

पदार्थः—जो (अजासः) शस्त्र और अस्त्रों के छोड़ने (शिग्रवः) सांकेतिक बोली बोलने (यक्षवश्च) और संग करने वा (यमुना) नियम करने (तृत्सवश्च) और मारने वाले जन (अत्र) इस (सर्वताता) राज्यपालनरूपी यज्ञ में (बलिम्) भोगने योग्य पदार्थ को और (अश्व्यानि) बड़ों के इन (शीर्षाणि) शिरों को (जभ्रुः) धारण करते हैं (च) और जो (भेदम्) विदीर्ण करने वा एक एक से तोड़ फोड़ करने को (प्र, मुषायत्) चुराता छिपाता है वा जो (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यवान् की (आवत्) रक्षा करे वे सब श्रेष्ठ हैं ॥१९॥

भावार्थः—जो राजा आदि जन, सब मनुष्यों को अभयरूपी दक्षिणा जिस के बीच विद्यमान है ऐसे राज्यपालनरूपी यज्ञ में भेदबुद्धि को छोड़, महान् धार्मिक उत्तम जनों के एक मति आदि उत्तम कामों को स्वीकार कर शत्रुओं के जीतने को प्रवृत्त होते हैं वे ही परमैश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥१९॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न त इन्द्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः ।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाव त्मना बृहतः शम्बरं भेत् ॥२०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुख देने वाले (ते) आपके (पूर्वाः) पहिली और (नूत्नाः) नवीन (उषसः) उषा वेलाओं के (न) समान वा (सुमतयः) उत्तम बुद्धिमानों के (न) समान (रायः) धनों को (संचक्षे) अच्छे प्रकार कहने को कोई भी (न) नहीं (जघन्थ) मारता है वा जैसे सूर्य (बृहतः) बड़े से बड़े (शम्बरम्) मेघ दल को (भेत्) विदीर्ण करता वैसे जिसे (त्मना) अपने से आप (अव) नष्ट करते हैं (चित्) उसके समान (मान्यमानम्) मान्यों का सत्कार जिसमें है उस (देवकम्) देव समान वर्त्तमान का सत्कार करें तो प्रजा सब ओर से बढ़ें ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे राजन्! जैसे पिछली

और नई होने वाली प्रभात वेला सर्वथा मंगल करने वाली हैं वैसे यदि न्याय से इकट्ठे किये हुए धन से धार्मिक और उत्तम बुद्धिवाले जनों का सत्कार कर उन उक्त मनुष्यों की रक्षा कर इनसे राज्य के कार्य्यों को साधिये और वहां मेघ को सूर्य के समान दुष्टों को मार श्रेष्ठों को प्रसन्न रखिये तो आपकी सब ओर से वृद्धि हो ॥२०॥

फिर राजा के सहाय से प्रजाजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥२१॥

पदार्थः—हे राजन् (ये) जो (त्वाया) तुम्हारी नीति के साथ (गृहात्) घर से (अममदुः) आनन्दित होते हैं वा (शतयातुः) जो सैकड़ों के साथ जाता है जो (वसिष्ठः) अतीव वसने वाला और जो (पराशरः) दुष्टों का हिंसक आनन्दित होता है (ते) वे (भोजस्य) भोगने और पालन करने की (सख्यम्) मित्रता को (न) नहीं (प्र, मृषन्त) सहते हैं (अध) इसके अनन्तर जो (सूरिभ्यः) विद्वानों से (सुदिना) सुखयुक्त दिनों में (व्युच्छान्) निरन्तर वसें वे तुमको सदा सत्कार करने योग्य हैं ॥२१॥

भावार्थः—जिसकी विद्या, विनय और सुशीलता से सब गृहस्थ आदि मनुष्य आनन्दित हों और जो औरों का उत्कर्ष देखकर पीड़ित होते हैं और जो विद्वानों से सर्वदैव सुन्दर शिक्षा लेते हैं वे सब सुख पाते हैं ॥२१॥

फिर वह राजा किसके तुल्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥२२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् जैसे (अर्हन्) सत्कार करता हुआ (सुदासः) उत्तम दानशील मैं (दानम्) दान (होतेव) देने वाले के समान (सद्म) घर को वा (पैजवनस्य) वेगवान् (नप्तुः) पौत्र के स्थान को (पर्य्येमि) सब ओर से जाता हूं और (देववतः) प्रशंसित गुण वाले विद्वानों से युक्त की (गोः) धेनु वा भूमिसम्बन्धी (द्वे) दो (शते) सौ (वधूमन्ता) प्रशंसायुक्त वधू वाले (द्वा) दो (रथा) जल स्थल में जाने वाले रथों को सब ओर से प्राप्त होता हूं वा जैसे विद्वान् जन (रेभन्) स्तुति करते हैं उनको सब ओर से जाता हूं वैसे आप हूजिये ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं—हे मनुष्यो जैसे देने वाले उत्तम दान देते और पौत्र पर्य्यन्त धन धान्य और पशु आदि की समृद्धि करते हैं वैसे सब की वर्त्तना चाहिये ॥२२॥

फिर वे राजा आदि क्या अनुष्ठान करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके ।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासंस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति ॥२३॥

पदार्थः—हे राजा (पैजवनस्य) क्षमाशील रखने वाले के पुत्र आपके जैसे (चत्वारः) चार ऋत्विज् (दानाः) देनेवाले (स्मद्दिष्टयः) जिनके निश्चित दर्शन (कृशनिनः) वा बहुत हिरण्य विद्यमान (ऋज्रासः) जो सरल स्वभाव (पृथिविष्ठाः) पृथिवी पर स्थित रहते हैं वे विद्वान् जन (निरेके) निःशङ्क राज्यव्यवहार में (मा) मुझे विधान करते हैं, स्थिर करते हैं (श्रवसे) विद्या सुनने के लिये और (तोकाय) सन्तान के अर्थ (तोकम्, मा) मुझ सन्तान को (वहन्ति) पहुँचाते हैं वैसे उनके प्रति आप (सुदासः) सुन्दर दानशील हूजिये ॥२३॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! वेद-वेत्ता ऋत्विज् ब्राह्मण राजसहाय से यज्ञानुष्ठान से सब का निश्चित सुख बढ़ाते हैं और जैसे ब्रह्मचारी सन्तान के लिए ब्रह्मचर्य्य से पहिले विद्या पढ़ने के लिये विवाह कर सन्तान उत्पन्न करते हैं वैसे राजजन और राज-पुरुष सब के हित के लिये ब्रह्मचर्य्य से विद्या ग्रहण कराकर सब के सुख की उन्नति करें ॥२३॥

फिर वे राजा आदि किसके तुल्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णेशीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता ।
सप्तेदिन्द्रं न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके ॥२४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! (यस्य) जिसका (श्रवः) अन्न वा श्रवण (उर्वी) बहु-फलादि पदार्थों से युक्त (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (शीर्ष्णेशीर्ष्णे) शिर के तुल्य उत्तम सुख के लिए (अन्तः) बीच में (विबभाज) विशेषता से भेजता है जिन (इन्द्रम्) इन्द्र के (न) समान (सप्त) सात प्रकार से (विभक्ता) विभाग को प्राप्त हुई [=हुए] आकाश और पृथिवी, सुखों को (इत्) ही (स्रवतः) पहुंचाते हैं जिनकी सब विद्वान् जन (गृणन्ति) प्रशंसा करते हैं उनकी विद्या से जो राजा (अभीके) समीप में (युध्यामधिम्) युद्धरूपी रोग को धारण करते शत्रु को (नि, अशिशात्) निरन्तर छेदे वही राज्य-शिक्षा देने के योग्य हो ॥२४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं—यदि राजादि पुरुष धर्मयुक्त न्याय में वर्त्त कर राज्य को उत्तम शिक्षा दिलावें तो सूर्य के समान प्रजाओं में उत्तम सुखों की उन्नति कर सकते हैं और शत्रुओं को निवार [=निवारण कर] सुख देने वाले सपीपस्थ जनों का सत्कार करना जानते हैं ॥२४॥

फिर मनुष्य कैसे राजा का अच्छे प्रकार आश्रय करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इ॒मं न॑रो मरुतः सश्च॒तानु॒ दिवो॑दासं॒ न पि॒तरं॑ सु॒दासः॑ ।
अ॒वि॒ष्टना॑ पैजव॒नस्य॒ केतं॑ दू॒णाशं॑ क्ष॒त्रम॒जरं॑ दुवो॒यु ॥२५॥

पदार्थः—हे (नरः) नायक (मरुतः) मनुष्यो! जो (सुदासः) उत्तम दान देने वाला हो (इमम्) उस (दिवोदासम्) विद्याप्रकाश देने वाले को (पितरम्) पालने वाले पिता के (न) समान तुम लोग (सश्चत) मिलो, सम्बन्ध करो और (पैजवनस्य) क्षमा शील है जिसका उससे उत्पन्न हुए पुत्र के (दूणाशम्) दुःख से नाश करने योग्य पदार्थ वा दुर्लभ विनाश (केतम्) उत्तम बुद्धि और (अजरम्) विनाश रहित (दुवोयु) सेवन करने के लिए मनोहर (क्षत्रम्) राज्य वा धन को (अनु, अविष्टन) व्याप्त होओ ॥२५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—यदि मनुष्य विद्यादि शुभ गुणों के देने वाले, पिता के समान [पालक] राजा का आश्रय करें तो पूर्ण प्रज्ञा अविनाशि सेवने योग्य ऐश्वर्य और राज्य को स्थिर कर सकें ॥२५॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा, प्रजा, मित्र, धार्मिक, अमात्य, शत्रुनिवारण तथा धार्मिक सत्कार के अर्थ का प्रतिपादन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह सप्तम मण्डल में अठारहवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथैकादशर्चस्यैकोनविंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। १। ५ त्रिष्टुप्। ३। ६ निचृत्त्रिष्टुप्। ७। ९। १० विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः। २ निचृत्पङ्क्तिः। ४ पङ्क्तिः। ८। ११ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब ग्यारह ऋचा वाले उन्नीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में कैसा राजा उत्तम होता है इस विषय को कहते हैं ॥

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः ।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥१॥

पदार्थः—हे राजन् (यः) जो कल्याण करने वाला जन (तिग्मशृङ्गः) तीक्ष्ण किरणों से युक्त (वृषः) वर्षा तथा (भीमः) भय करने वाले सूर्य के (न) समान (एकः) अकेला (विश्वाः) समग्र प्रजा (कृष्टीः) मनुष्यों को (प्र, च्यावयति) अच्छे प्रकार चलाता है और (यः) जो (शश्वतः) निरन्तर (अदाशुषः) न देनेवाले के (गयस्य) संतान के (सुष्विराय) सुन्दर अतीव ऐश्वर्य को निकालने वाले के लिये (वेदः) विज्ञान वा धन को करता है उसके जिससे तुम (प्रयन्ता) उत्तमता से नियम करने वाले (असि) हो इससे अधिक मानने योग्य हो ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य वा बिजुली वर्षा करने से सुख देने वाली और तीव्र ताप से वा पड़जाने से भयंकर है वैसे जो राजा विद्याध्ययन के लिये सन्तानों को जो नहीं देते उनके लिये दण्ड देने वाला वा ब्रह्मचर्य्य से सब की विद्या बढ़ाने वाला राजा हो उसी को सब स्वीकार करें ॥१॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये ।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य के समान प्रतापयुक्त राजा (त्वम्) आप सूर्य के समान (त्यत्) उस (कुत्सम्) बिजुली के तुल्य वज्र को दुष्टों पर प्रहार कर कल्याण करने वाली प्रजा की (आवः) पालना कीजिये (शुश्रूषमाणः) सुनने की इच्छा करने वाले आप (तन्वा) शरीर से (समर्ये) संग्राम में (ह) ही उत्तम सेना की रक्षा कीजिये (यत्) और जिस (शुष्णम्) शुष्क करने वा (कुयवम्) कुत्सित यव आदि अन्न रखने वाले (दासम्) दाता वा सेवक को (नि, अरन्धयः) नहीं मारते (अस्मै) इस (आर्जुनेयाय) सुन्दर रूपवती विदुषी के पुत्र के निमित्त (शिक्षन्) विद्या इकट्ठी कराते हुए अविद्या को हनो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो मनुष्य विद्याप्राप्ति के लिये आप्त, श्रेष्ठ, विद्वान् अध्यापकों की शुश्रूषा करते, शरीर और आत्मा के बल को विधान कर संग्राम में दुष्टों को जीतते और विद्याध्ययन से [रहित] जनों का तिरस्कार करते, विद्याभ्यास करने वालों का सत्कार करते हैं वे स्थिर राज्यैश्वर्य्य को प्राप्त होते हैं ॥२॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं धृष्णो धृषता वीतहंव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासंम् ।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदंस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥३॥

पदार्थः—हे (धृष्णो) दृढ़ पुरुष (त्वम्) आप (धृषता) प्रगल्भ पुरुष के साथ (विश्वाभिः) समग्र (ऊतिभिः) रक्षाओं के साथ (वीतहव्यम्) पाये हुए और पाने योग्य पदार्थ वा (सुदासम्) अच्छे जिसके दास जो (पौरुकुत्सिम्) बहुत शस्त्रास्त्र-विद्याओं के योग रखने वाले का पुत्र (त्रसदस्युम्) जिससे भयभीत दस्यु होते हैं उस जन की निरन्तर (प्रावः) कामना करो और (क्षेत्रसाता) क्षेत्रों के विभाग में (वृत्रहत्येषु) शत्रुओं के मारनेरूप सङ्ग्रामों में (पूरुम्) पालना वा धारण करने वाले की (प्रावः) कामना करो ॥३॥

भावार्थः– जो राजजन धार्मिक, दस्युओं को मारने, शस्त्र अस्त्रों के फेंकने में कुशल और विद्यादि शुभगुणों के देने वाले सज्जनों का सत्कार करते हैं वे सदा सुखी होते हैं ॥३॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि ।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तुं ॥४॥

पदार्थः—हे (हर्यश्व) मनोहर घोड़े से युक्त (नृमणः) और न्यायाधीशों में मन रखने वाले राजा (त्वम्) आप (नृभिः) न्यायप्राप्ति कराने वाले विद्वानों के साथ (देववीतौ) विद्वानों की प्राप्ति जिस व्यवहार में होती उसमें (भूरीणि) बहुत (वृत्रा) शत्रुसैन्यजन वा धनों को (हंसि) नाशते वा प्राप्त होते हैं (त्वम्) आप (धुनिम्) श्रेष्ठों को कंपाने वाले (चुमुरिम्) चोर और (दस्युम्) दुष्ट आचरण करने वाले साहसी जन को (न्यस्वापयः) मार कर सुलाओ तथा (दभीतये) हिंसा के लिये (च) भी दुष्टों को आप (सुहन्तु) अच्छे प्रकार नाशो ॥४॥

भावार्थः - हे राजा ! आप सदैव सत्पुरुषों का संग न्याय से राज्य को पाल के धन की इच्छा और दुष्ट डाकुओं को निवार के प्रजापालना निरन्तर करो ॥४॥

फिर राजा के सेनाजन कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः ।
निवेशने शततमाऽविवेषीरहंन् च वृत्रं नमुंचिमुताहंन् ॥५॥

पदार्थः—हे (वज्रहस्त) साथ में वज्र रखनेवाले जैसे (तव) आपके (तानि) वे (च्यौत्नानि) बल हैं अर्थात् सूर्य (यत्) जो (नवनवतिम्) निन्यानवे (पुरः) मेघरूपी शत्रुओं की नगरी उनको (सद्यः) शीघ्र (अहन्) हनता (च) और (निवेशने) जिसमें निवास करते हैं उस स्थान में (शततमा) अतीव सैंकड़ों को (उत) और (नमुचिम्) जो अपने रूप को नहीं छोड़ता उस (वृत्रम्) आच्छादन करने वाले मेघ को (च) भी (अहन्) मारता वैसे आप (अविवेषीः) व्याप्त हूजिये अर्थात् सेनाजनों को प्राप्त होकर शत्रुबलों को प्राप्त हूजिये ॥५॥

भावार्थः—हे राजन् ! जैसे सूर्य असंख्य मेघ की नगरियों के समान सघन घन घटाघूम बादलों को हनता है वैसे तुम्हारे सेना जन उत्तम होकर समस्त शत्रुओं को मारें ॥५॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥६॥

पदार्थः—हे (पुरुशाक) बहुत शक्तियुक्त (इन्द्र) परम ऐश्वर्य के देने वाले राजा जो (ते) आपके (रातहव्याय) दी है देने योग्य वस्तु जिसने उस (सुदासे) सुन्दर दानशील (वृष्णे) सुखवृष्टि करने (दाशुषे) देने वाले के लिये (सना) सनातन वा विभाग करने योग्य (भोजनानि) भोजन हैं (ता) उनको मैं (युनज्मि) संयुक्त करता हूं तथा जो (ते) आपके (वृषणा) बलयुक्त अश्व (हरी) हरणशील हैं उनको संयुक्त करता हूं जिससे प्रजाजन (वाजम्) वेग और (ब्रह्माणि) धनों को (व्यन्तु) प्राप्त हों ॥६॥

भावार्थः—हे राजजनो ! यदि आप लोग कर देने वालों की पालना न्याय से करें और शरीर से, धन से और मन से प्रजाजनों की उन्नति करें तो कुछ भी ऐश्वर्य अलभ्य न हो ॥६॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा ते अस्यां सहसावन्परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥७॥

पदार्थः—हे (हरिवः) प्रशंसित मनुष्य और (सहसावन्) बहुत बल से युक्त राजा (अस्याम्) इस (परिष्टौ) सब ओर से संग करने योग्य वेला में (ते) आपके (परादै) त्याग करने योग्य (अघाय) पाप के लिये हम लोग (मा, भूम) मत होवें

(अवृकेभिः) और जो चोर नहीं उन (वरूथैः) श्रेष्ठों के साथ (नः) हम लोगों की (त्रायस्व) रक्षा कीजिये जिससे हम लोग (तव) तुम्हारे (सूरिषु) विद्वानों में (प्रियासः) प्रसन्न (स्याम) हों ॥७॥

भावार्थः—हे राजा ! जैसे हम लोग तुम्हारी उन्नति के निमित्त प्रयत्न करें वैसे आप भी प्रयत्न कीजिये, विद्या के प्रचार से सबको विद्वान् कराइये जिससे विरोध न हो ॥७॥

फिर मनुष्य परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥८॥

पदार्थः—(मघवन्) बहुत धन देने वाले (सखायः) मित्र होते हुए (प्रियासः) प्रीतिमान् वा प्रसन्न हुए (नरः) नायक मनुष्य हम लोग (ते) आपके (अभिष्टौ) सब ओर से प्रिय संगति अर्थात् मेल मिलाप में (शरणे) शरणागत की पालना करने के कर्म में (मदेम) आनन्दित हों । आप (तुर्वशम्) निकटस्थ मनुष्य को (नि, शिशीहि) निरन्तर तीक्ष्ण कीजिये और (याद्वम्) जो जाते हैं उन पर जो जाता है उसको (नि) निरन्तर तीक्ष्ण कीजिये और (अतिथिग्वाय) अतिथियों के गमन के लिये (शंस्यम्) प्रशंसनीय को (इत्) ही (करिष्यन्) करते हुए तीक्ष्ण कीजिये ॥८॥

भावार्थः—हे राजा ! जो शुभ गुणों के आचरण से युक्त तुम में प्रीतिमान् हों उन धार्मिक जनों को प्रशंसित कीजिये, जैसे अतिथियों का आगमन हो वैसा विधान कीजिये ॥८॥

फिर पढ़ने और पढ़ाने वाले परस्पर कैसे वर्त्ताव वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पणीँरदाशन्नस्मान्वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥९॥

पदार्थः—हे (मघवन्) प्रशंसनीय विद्या के अध्यापक जो (उक्थशासः) प्रशंसा करने योग्य मन्त्रों के अर्थों की शिक्षा देने वाले (नरः) विद्वान् जन (ते) तुम्हारी (अभिष्टौ) सब ओर से प्रिय वेला में (सद्यः) शीघ्र (चित्) ही (उक्था) प्रशंसित वचनों को (शंसन्ति) प्रबन्ध से कहते हैं और (ये) जो (हवेभिः) हवनों के साथ (ते) आपके (विपणीन्) व्यवहारों को (नु, अदाशन्) ही देते हैं उन्हें और (अस्मान्) हम लोगों को (तस्मै) उस (युज्याय) युक्त करने योग्य व्यवहार के लिये (वृणीष्व) स्वीकार कीजिये ॥९॥

भावार्थः - इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे विद्वान् अध्यापक ! तुम हम लोगों को वेदार्थ शीघ्र ग्रहण कराओ जिससे हम लोग भी अध्यापन करावें ॥९॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥१०॥

पदार्थः—हे (नराम्) नायक मनुष्यों के बीच (नृतम) अतीव नायक (इन्द्र) परम ऐश्वर्ययुक्त राजा जो (एते) ये (अस्मद्र्यञ्चः) हम लोगों को प्राप्त होते हुए (स्तोमाः) प्रशंसनीय विद्वान् और पढ़ने वाले (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (मघानि) विद्या-धनों को (ददतः) देते हैं (तेषाम्) उन (नृणाम्) मनुष्यों के (वृत्रहत्ये) मेघों के हनन करने के समान संग्राम में सूर्य के समान (अविता) रक्षा करने वाले (शिवः) मंगलकारी (सखा, च) और मित्र (शूरः) शत्रुओं के मारने वाले (च) भी आप (भूः) हूजिये ॥१०॥

भावार्थः—हे राजन् ! जो आप विद्वानों की रक्षा करके उनसे उपकार लें तो कौन कौन उन्नति न हो ॥१०॥

फिर राजविषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान्मिमीह्युप स्तीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥११॥

पदार्थः—हे (शूर) निर्भय सेनापति (इन्द्र) शत्रुओं के विदीर्ण करने वाले आप (स्तवमानः) सब युद्ध करने वालों को वीररसयुक्त व्याख्यान से उत्साहित करते हुए और (ब्रह्मजूतः) धन वा अन्न से संयुक्त (ऊती) सम्यक् रक्षा से (तन्वा) शरीर से (वावृधस्व) निरन्तर बढ़ो (स्तीन्) और मिले हुए (वाजान्) बल वेगादियुक्त (नः) हम लोगों का (उपमिमीहि) समीप में मान करो तथा (नू) शीघ्र शत्रुबल को (उप) उपमान करो, हे भृत्य जनो ! (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥११॥

भावार्थः—हे सेनापति ! तुम जैसे अपने शरीर और बल को बढ़ाओ वैसे ही समस्त योद्धाओं के शरीर-बल को बढ़ाओ । जैसे भृत्यजन तुम्हारी रक्षा करें वैसे तुम भी इनकी निरन्तर रक्षा करो ॥११॥

इस सूक्त में इन्द्र के दृष्टान्त से राजसभा, सेनापति, अध्यापक, अध्येता, राजा, प्रजा और भृत्यजनों के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

[इस अध्याय में अग्नि, वाणी, विद्वान्, राजा, प्रजा, अध्यापक, अध्येता, पृथिवी आदि, मेधावी, बिजुली, सूर्य, मेघ, यज्ञ, होता, यजमान, सेना और सेनापति के गुण कर्मों का वर्णन होने से इस अध्याय के अर्थ की इससे पूर्व अध्याय के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥]

यह सप्तम मण्डल में उन्नीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

---

* ओ३म् *

अथ पञ्चमाष्टके तृतीयोऽध्यायः ॥

—:०:०:०:—

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव । यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥

अथ दशर्चस्य विंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ स्वराट्पङ्क्तिः । ७ भुरिक्पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ४ । १० निचृत्त्रिष्टुप् । ३ । ५ विराट्त्रिष्टुप् ६ । ८ । ९ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पञ्चमाष्टक के तीसरे अध्याय तथा दश ऋचा वाले बीसवें सूक्त का आरम्भ है, जिसके पहले मन्त्र में कैसा राजा श्रेष्ठ हो इस विषय को कहते हैं ॥

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरपो नर्यो यत्करिष्यन् ।
जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिस्त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित् ॥१॥

पदार्थः—(यत्) जो (नर्यः) मनुष्यों में साधु उत्तम जन (स्वधावान्) बहुत धन धान्य से युक्त (चक्रिः) करने वाला (उग्रः) तेजस्वी (युवा) जवान मनुष्य

(नृषदनम्) मनुष्यों के स्थान को (अग्मिः) जाने वाला (अवोभिः) रक्षा आदि से पालना (करिष्यन्) करता हुआ (त्राता) रक्षा करने वाला सूर्य जैसे (अपः) जलों को (चित्) वैसे (इन्द्रः) राजा (वीर्याय) पराक्रम के लिये (जज्ञे) उत्पन्न हो और (महः) महान् (एनसः) पापाचरण से (नः) हम लोगों को अलग रखता है वही राजा होने के योग्य है ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो मनुष्यों का हितकारी पिता के समान पालने और उपदेश करने वाले के समान पापाचरण से अलग रखने वाला, सभा में स्थित होकर न्यायकर्ता तथा धन, ऐश्वर्य और पराक्रम को निरन्तर बढ़ाता है उसी को सब मनुष्य राजा मानें ॥१॥

फिर वह कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती ।

कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (इन्द्रः) सूर्य जैसे (वृत्रम्) मेघ को वैसे जो शत्रुओं का (अह) निग्रह कर अर्थात् पकड़ पकड़ (नु) शीघ्र (हन्ता) घात करने वाला राजा (शूशुवानः) निरन्तर बढ़ते हुए (वीरः) शुभ गुण कर्म स्वभावों में व्याप्त (कर्त्ता) दृढ़ कार्य करने वाले और (वसु, दाता) धन के देने वाले (सुदासे) सुन्दर दानशील के लिये ही (ऊती) रक्षा से (जरितारम्) गुणों की प्रशंसा करने वाले (उ) अद्भुत (लोकम्) अन्य जन्म में देखने योग्य वा अन्य लोक को (मुहुः) वार वार (प्रावीत्) उत्तम रक्षा करे (दाशुषे) दानशील के लिये वार वार (आ, भूत्) प्रसिद्ध हो (वा) वही राज्य करने के लिये श्रेष्ठ हो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है- जो शीघ्रकारी, सूर्य के समान विद्या और विनय के प्रकाश से दुष्टों का निवारण करने वाला शूरवीर होता हुआ अच्छे सुपात्रों के लिये यथायोग्य पदार्थ देता हुआ बहुत सुख को प्राप्त हो ॥२॥

फिर वह कैसा होकर क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

युध्मो अनर्वा खजकृत्समद्वा शूरः सत्राषाड् जनुषेमषाळ्हः ।

व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजा अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान ॥३॥

पदार्थः—जो राजा (इन्द्रः) बिजुली के समान (जनुषा) जन्म से (स्वोजाः)

शुभ अन्न वा पराक्रम जिसके विद्यमान (युध्मः) जो युद्ध करने वाला (अनर्वा) जिसके घोड़े विद्यमान नहीं जो (अषाळ्हः) शत्रुओं से न सहने योग्य (खजकृत्) सङ्ग्राम करने वाला (समद्वा) जो मत्त प्रमत्त मनुष्यों को सेवता (शूरः) शत्रुओं को मारता (सत्राषाट्) जो यज्ञों के करने को सहता और (पृतनाः) अपनी सेनाओं को पाले (अध) इसके अनन्तर (वि, आसे) विशेषता से मुख के सन्मुख (विश्वम्, शत्रूयन्तम्) सब शत्रुओं की कामना करने वाले को (ईम्) सब ओर से (जघान) मारे वही शत्रुओं को जीत सके ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो! श्रेष्ठ राजगुणों सहित, दीर्घ ब्रह्मचर्य्य से द्वितीय जन्म अर्थात् विद्या जन्म का कर्त्ता, पूर्ण बल पराक्रमयुक्त, धार्मिक हो वह सूर्य के समान दुष्ट शत्रुओं को अन्याय-रूप अन्धकार को निवारे वही सब का आनन्द देने वाला हो ॥३॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उभे चिदिन्द्र रोदसी महित्वा पप्राथ तविषीभिस्तुविष्मः ।
नि वज्रमिन्द्रो हरिवान्मिमिक्षन्त्समन्धसा मदेषु वा उवोच ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान राजा आप (उभे) दो (रोदसी) आकाश और पृथिवी (चित्) के समान (महित्वा) सत्कार पाके (तविषीभिः) बलिष्ठ सेनाओं से (आ, पप्राथ) निरन्तर व्याप्त होता और (तुविष्मः) बहुत बल-युक्त होता हुआ (हरिवान्) बहुत मनुष्यों से युक्त (अन्धसा) अन्नादि पदार्थ से (सम्, नि, मिमिक्षन्) प्रसिद्ध सुखों से निरन्तर सींचने की इच्छा करता हुआ (वज्रम्) शस्त्र अस्त्रों को धारण कर जो (इन्द्रः) वीर पुरुष राजा (मदेषु) आनन्दों के निमित्त (उवाच) कहे (वै) वही राज्य करने को योग्य हो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जैसे भूमि और सूर्य बड़प्पन से सब को व्याप्त होकर जल और अन्न से सब को और गीले किये हुए जगत् को सुखी करते हैं वैसे ही राजा विद्या और विनय से सत्य का उपदेश कर सब प्रजाजनों की निरन्तर उन्नति करे ॥४॥

उत्पन्न हुआ मनुष्य कैसा होकर सामर्थ्यवान् होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव ।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥५॥

पदार्थः—(यः) जो (वृषा) वर्षा करने (सेनानीः) सेना को पहुंचाने वाला (सत्वा) बलवान् (गवेषणः) और उत्तम वाणी विद्या का ढूंढने वाला (नृभ्यः) सेना नायकों से (धृष्णुः) धृष्ट प्रगल्भ (जज्ञान) उत्पन्न हो (सः) वह (इनः) ईश्वर के समान (रणाय) संग्राम के लिये प्रतापी (अस्ति) है (अध) इसके अनन्तर जिस (उ) ही (नर्यम्) मनुष्यों में (वृषणम्) बलिष्ठ योद्धा पुत्र को वर्षा करने वाला पुरुष और (नारी) स्त्री (प्र, सुसूव) उत्पन्न करते हैं (तम्, चित्) उसी को जन न्यायकारी मानते हैं ॥५॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो! जिसको स्त्री पुरुष दीर्घ ब्रह्मचर्य्य का सेवन कर उत्पन्न करते हैं वह पुरुष जगदीश्वरवत् सब को न्याय से पालने को समर्थ होकर सेनाधिप हुआ शत्रुओं के जीतने को सदा समर्थ होता है ॥५॥

फिर मनुष्य क्या करके कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

नू चित्स भ्रेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात्।

यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः ॥६॥

पदार्थः—(यः) जो (जनः) मनुष्य (अस्य) इसके (घोरम्) घोर (मनः) अन्तःकरण को (न, आविवासात्) न सेवे (सः, चित्) वही (नु, शीघ्र विजय को (भ्रेषते) पाता और वह नहीं (रेषत्) हिंसा करता है (यः) जो (ऋतपाः) जो सत्य की पालना करने और (ऋतेजाः) सत्य में उत्पन्न अर्थात् प्रसिद्ध होने वाला (यज्ञैः) मिले हुए कर्मों से (इन्द्रे) परमैश्वर्ययुक्त परमेश्वर में (दुवांसि) सेवनों को (दधते) धारण करता (सः) वह (राये) धन के लिये निरन्तर (क्षयत्) वसे ॥५॥

भावार्थः—जो रागद्वेषरहित मन वाले, घोर कर्मरहित, परमेश्वर के सेवक, धर्मात्मा जन हों वे कभी नष्ट न हों ॥६॥

फिर विद्वान् अन्यजनों के प्रति कैसे उपकारी हों
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

यदिन्द्र पूर्वो अपराय शिक्षन्नयज्ज्यायान्कनीयसो देष्णम्।

अमृत इत्पर्यासीत दूरमा चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य्य के देने वाले (यत्) जो (पूर्वः) प्रथम (अपराय) और के लिए (ज्यायान्) अतीव वृद्ध वा श्रेष्ठ जन (कनीयसः) अत्यन्त कनिष्ठ से (देष्णम्) देने योग्य की (शिक्षन्) शिक्षा अर्थात् विद्या ग्रहण कराता हुआ (अयत्) प्राप्त होता वा (चित्र) हे अद्भुत कर्म करने वाले जो (अमृतः, इत्) नाश-

रहित ही आत्मा से नित्य योगी (दूरम्) दूर (पर्यासीत) सब ओर से स्थित हो उसके साथ आप (नः) हम लोगों के लिए (चित्र्यम्) अद्भुत अद्भुत कर्मों में हुए (रयिम्) धन को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये ॥७॥

भावार्थः—हे राजा ! जो पहिले विद्वान् होकर विद्यार्थियों को शिक्षा देते हैं वा जो ज्येष्ठ कनिष्ठों के प्रति पिता के समान वर्त्ताव रखते हैं वा जो योगी जन परमात्मा को समाधि से अपने आत्मा में अच्छे प्रकार आरोप के औरों को उपदेश देते हैं उनके लिये तुम शरीर, मन और धन को धारण करो ॥७॥

फिर राजा, भृत्य और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्ताव करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यस्त॑ इन्द्र प्रि॒यो जनो॒ ददा॑श॒दस॑न्निरे॒के अ॑द्रिवः॒ सखा॑ ते ।
व॒यं ते॑ अ॒स्यां सु॑म॒तौ चनि॑ष्ठाः॒ स्याम॒ वरू॑थे॒ अघ्न॑तो॒ नृपी॑तौ ॥८॥

पदार्थः—हे (अद्रिवः) मेघों वाले सूर्य के समान वर्त्तमान (इन्द्र) विद्वान् (यः) जो (प्रियः) प्रसन्न करने वाला (जनः) मनुष्य (सखा) मित्र (निरेके) निःशंक व्यवहार में (असत्) हो और सुख (ददाशत्) दे जिन (ते) आपके (अस्याम्) इस (नृपीतौ) मनुष्यों से जो रक्षा की जाती उसमें और (सुमतौ) अच्छी सम्मति में (वयम्) हम लोग (चनिष्ठाः) अत्यन्त अन्नादि ऐश्वर्ययुक्त (स्याम) हों और (अघ्नतः) अहिंसक जो (ते) तुम उनके (वरूथे) घर में प्रसिद्ध हों उन मान करने योग्य दो को हम सत्कारयुक्त करें ॥८॥

भावार्थः—हे राजन् ! जिस नीतिज्ञ आपके जो नीतिमान् जन हैं वे ही प्रिय हों और आप भी उन्हीं के प्रिय हूजिये, ऐसे परस्पर सुहृद् होकर एक सम्मति कर निरन्तर आप उन्नति कीजिये ॥८॥

फिर मनुष्य क्या करके किसको प्राप्त हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ए॒ष स्तोमो॑ अचिक्रद॒द्वृषा॑ त उ॒त स्ता॒मुर्म॑घवन्नक्रपिष्ट ।
रा॒यस्कामो॑ जरि॒तारं॑ त॒ आग॒न्त्वम॒ङ्ग श॑क्र॒ वस्व॒ आ श॒को नः॑ ॥९॥

पदार्थः—हे (शक्र) शक्तिमान् (अङ्ग) मित्र पुरुषार्थी राजन् जो (एषः) यह (ते) आपका (स्तोमः) प्रशंसा करने योग्य (उत) और (वृषा) बलिष्ठ जन (अचिक्रदत्) बुलावे वा हे (मघवन्) बहुत धनयुक्त (स्तामुः) स्तुति करने वाला जन (अक्रपिष्ट) समर्थ होता है वा (ते) तुम्हारे लिए जो (रायः) धन की (कामः) कामना

करने वाला (अरितारम्) स्तुति करने वाले आपको (आ, अयन्) सब ओर से प्राप्त हो वह (त्वम्) आप (नः) हमारे (वस्वः) धनों को (आशकः) सब ओर से सह सको ॥९॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जो शक्ति को बढ़ा कर धर्म कर्म से ऐश्वर्य आदि की प्राप्ति की अभिलाषा बढ़ाओ तो तुमको पुष्कल ऐश्वर्य प्राप्त हो ॥९॥

फिर मनुष्य कैसे प्रयत्न करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स न॑ इन्द्र त्व॒यता॑या इ॒षे धा॒स्त्मना॑ च॒ ये म॒घवा॑नो जु॒नन्ति॑ ।
व॒स्वी षु ते॑ जरि॒त्रे अ॑स्तु श॒क्तिर्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥१०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त राजा जो आप (त्मना) आत्मा से (त्वयतायै) जिससे अपने में यत्न होता है उस (इषे) अन्न आदि सामग्री के लिये (नः) हम लोगों को (धाः) धारण कीजिये (ये, च) और जो (मघवानः) प्रशंसित धन वाले इस अन्नादि सामग्री के लिए आपको (जुनन्ति) प्राप्त होते हैं (सः) सो आप उद्योगी हूजिए जिससे (जरित्रे) सत्य की प्रशंसा करने वाले (ते) तेरे लिए (वस्वी) धनसम्बन्धिनी (शक्तिः) शक्ति (अस्तु) हो। हे हमारे सम्बन्धिजनो (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः हम लोगों को (सदा) सदा (सु, पात) अच्छे प्रकार रक्षा करो ॥१०॥

भावार्थः—वे ही लक्ष्मी करने वाले जन हैं जो आलस्य का त्याग कराय पुरुषार्थ के साथ युक्त करते हैं वा जो ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं उनको ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाला सामर्थ्य होता है वा जो परस्पर की रक्षा करते हैं वे सदा सुखी होते हैं ॥१०॥

इस सूक्त में राजा, सूर्य, बलिष्ठ, सेनापति, सेवक, अध्यापक, अध्येता, मित्र, दाता और रचने वालों के कृत्य और गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ दशर्चस्यैकविंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ६ । ८ । ९ विराट् त्रिष्टुप् । २ । १० निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ । ७ भुरिक्पङ्क्तिः । ४ । ५ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब दस ऋचा वाले इक्कीसवें सूक्त का आरम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।
बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा नः स्तोममन्धसो मदेषु ॥१॥

पदार्थः हे (हर्यश्व) मनोहर घोड़ों वाले जो (अन्धः) अन्न (असावि) उत्पन्न होता उसको तथा (जनुषा) जन्म से अर्थात् उत्पन्न होते समय से (ईम्) ही (गोऋजीकम्) भूमि के कोमलता से प्राप्त कराने और (देवम्) देने वाले को (इन्द्रः) विद्या और ऐश्वर्ययुक्त जन (उवोच) कहे वा जिसके निमित्त (त्वा) आपको (नि, बोधामसि) निरन्तर बोधित करें (अस्मिन्) इस व्यवहार में आप (अन्धसः) अन्न आदि पदार्थ के (मदेषु) आनन्दों में (यज्ञैः) विद्वानों के संग आदि से (नः) हम लोगों को (बोध) बोध देओ और (स्तोमम्) प्रशंसा की प्राप्ति कराओ ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य पृथिवी आदि से धान्य आदि को प्राप्त होकर विद्या को प्राप्त होते हैं और जो विद्वानों के संग से समस्त विद्या के रहस्यों को ग्रहण करते हैं वे कभी दुःखी नहीं होते हैं ॥१॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः सोममादो विदथे दुध्रवाचः ।
न्यु भ्रियन्ते यशसो गृभादा दूरउपब्दो वृषणो नृषाचः ॥२॥

पदार्थः—जो (सोममादः) सोम से हर्षित होते (दुध्रवाचः) वा जिनकी दुःख से धारण करने योग्य वाणी (वृषणः) वे बलिष्ठ (नृषाचः) नायक मनुष्यों से सम्बन्ध करने वाले जन (यज्ञम्) विद्वानों के संग आदि को (प्रयन्ति) प्राप्त होते हैं (विदथे) संग्राम में (बर्हिः) अन्तरिक्ष में (विपयन्ति) विशेषता से जाते हैं (उ) और जो (यशसः) कीर्ति से वा (गृभात्) घर से (आ, भ्रियन्ते) अच्छे प्रकार उत्तमता को धारण करते हैं तथा (दूरउपब्दः) जिनकी दूर वाणी पहुंचती वे सज्जन (नि) निरन्तर उत्तमता को धारण करते हैं और वे विजय को प्राप्त होते हैं ॥२॥

भावार्थः--जैसे यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले आनन्द को प्राप्त होते हैं वैसे युद्ध में निपुण पुरुष विजय को प्राप्त होते हैं जैसे दूरदेशों में कीर्ति रखने वाला विद्वान् जन होता है वैसे यश से संचय किये कर्मों को कर परोपकारी जन हों ॥२॥

फिर वह राजा किसके तुल्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
त्वद्वावक्रे रथ्यो३ न धेना रेजन्ते विश्वा कृत्रिमाणि भीषा ॥३॥

पदार्थः—हे (शूर) शूरवीर (इन्द्र) सूर्य के समान विद्वान् राजा जैसे सूर्य्य (स्रवितवै) वर्षा को (अहिना) मेघ के साथ (पूर्वीः) पहिले स्थिर हुए (परिष्ठिताः) वा सब ओर से स्थिर होने वाले (अपः) जलों को उत्पन्न करता है वैसे (त्वम्) आप प्रजाजनों को सन्मार्ग में (कः) स्थिर करो जैसे सूर्य आदि और (रथ्यः) रथ के लिए हितकारी घोड़ा यह सब पदार्थ (वावक्रे) टेढ़े चलते हैं और (विश्वा) समस्त (विकृत्रिमाणि) विशेषता से कृत्रिम किए कामों को (रेजन्ते) कंपित करते हैं वैसे (त्वद्भीषा) तुम से उत्पन्न हुए भय से प्रजाजन (धेनाः, न) बोली हुई वाणियों के समान प्रवृत्त हों ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं—जो राजा सूर्य्य के समान प्रजाजनों की पालना करता है दुष्टों को भय देता है वही सुख से व्याप्त होता है ॥३॥

फिर वह सेनापति क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भीमो विवेषायुधेभिरेषामपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान् ।
इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोद्वि वज्रहस्तो महिना जघान ॥४॥

पदार्थः—जो (भीमः) भय करने वा (वज्रहस्तः) शस्त्र और अस्त्र हाथों में रखने वाला (जर्हृषाणः) निरन्तर आनन्दित (विद्वान्) विद्वान् (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् राजा (आयुधेभिः) युद्ध सिद्धि कराने वाले शस्त्रों से (महिना) बड़प्पन के साथ (एषाम्) इन शत्रुओं के (विश्वा) समस्त (नर्याणि) मनुष्यों के हित करने वाले (अपांसि) कर्मों को (विवेष) व्याप्त हो (पुरः) शत्रुओं की नगरियों को (वि, दूधोत्) कंपावे शत्रुओं को (वि, जघान) मारे, वही सेनापति होने योग्य होता है ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो समग्र युद्ध कार्यों को जान अपनी सेना को युद्ध में निपुण कर शत्रुओं को कंपा और शत्रु सेनाओं को कंपाते हैं वे विजय से शोभित होते हैं ॥४॥

अब कौन तिरस्कार करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥५॥

पदार्थः—हे (शविष्ठ) अत्यन्त बलयुक्त (इन्द्र) दुष्ट शत्रुजनों के विदीर्ण करने वाले जन जैसे (यातवः) संग्राम को जाने वाले (नः) हम लोगों को (न) न (जूजुवुः) प्राप्त होते हैं और जो (शिश्नदेवाः) शिश्न अर्थात् उपस्थ इन्द्रिय से विहार करने वाले ब्रह्मचर्यरहित कामी जन हैं वे (ऋतम्) सत्यधर्म को (मा, गुः) मत पहुंचें (अपि) और (नः) हम लोगों को (न) न प्राप्त हों वे ही (विषुणस्य) शरीर में व्याप्त (जन्तोः) जीव को (वेद्याभिः) जानने योग्य नीतियों से (वन्दनाः) स्तुति करने योग्य कर्मों को न पहुंचें और (यः) जो (अर्यः) स्वामी जन शरीर में व्याप्त जीव को (शर्द्धत्) उत्साहित करे (सः) वह हम को प्राप्त हो ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो कामी लंपट जन हों वे तुम लोगों को कदापि वन्दना करने योग्य नहीं वे हम लोगों को कभी न प्राप्त हों इसको तुम लोग जानो और जो धर्मात्मा जन हैं वे वन्दना करने तथा सेवा करने योग्य हैं, कामातुरों को धर्मज्ञान और सत्य विद्या कभी नहीं होती है ॥५॥

अब कैसे जन से शत्रुजन नहीं जीत सकते इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन्न ते विव्यङ्महिमानं रजांसि ।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद्युधा ते ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त जन आप (क्रत्वा) बुद्धि के साथ (ज्मन्) पृथिवी पर शत्रुओं के (अभि, भूः) सन्मुख हूजिए (अध) इसके अनन्तर (ते) आपके (महिमानम्) बड़प्पन को और (रजांसि) ऐश्वर्य्यों को (शत्रुः) शत्रुजन मुझे (न) न (विव्यक्) व्याप्त हो [=हों] (स्वेन) अपने (शवसा) बल से (हि) ही सूर्य जैसे (वृत्रम्) मेघ को वैसे शत्रु को आप (जघन्थ) मारो इस प्रकार से (युधा) संग्राम से शत्रुजन (ते) आपके (अन्तम्) अन्त अर्थात् नाश वा सिद्धान्त को (न) न (विविदत्) प्राप्त हो ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य शरीर और आत्मा के बल को प्रतिदिन बढ़ाते हैं उनके शत्रुजन दूर से भागते हैं किन्तु वह आप शत्रुओं को जीत सकें ॥६॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

देवाश्चित्ते असुर्याय पूर्वेऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि ।
इन्द्रो मघानि दयते विषह्येन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वान् जो (पूर्वे) पहिले विद्या ग्रहण किये हुए (देवाः) विद्वान् जन (ते) आप के (असुर्याय) मेघ में उत्पन्न हुए के लिये और (क्षत्राय) राज्य वा

धन के लिये (सहांसि) बलों का (अनु, ममिरे) निरन्तर अनुमान करते जो (चित्) भी (इन्द्रः) सूर्य के समान राजा (मघानि) प्रशंसा करने योग्य धनों को (दयते) ग्रहण करता वा जो (वाजस्य) प्राप्त हुए व्यवहार के (सातौ) संविभाग में (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्य को (विसह्य) विशेष सह करके परमैश्वर्य को (जोहुवन्त) निरन्तर ग्रहण करते हैं उनका आप सत्कार करो ॥७॥

भावार्थः—वे ही विद्वान् जन श्रेष्ठ होते हैं जो सबों में दया का विधान और सत्य शास्त्रों का उपदेश कर बलों को बढ़ाते हैं वे ही पिता के समान सत्कार करने योग्य होते हैं ॥७॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावेशानमिन्द्र सौभगस्य भूरेः ।
अवो बभूथ शतमूते अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता ॥८॥

पदार्थः—हे (शतमूते) सैकड़ों प्रकार की रक्षा करने वा (इन्द्र) परम ऐश्वर्य्य के देने वाले जो (हि) ही (कीरिः) स्तुति करने वाले (चित्) के समान (अवसे) रक्षा के लिए (ईशानम्) समर्थ (त्वाम्) आपको (जुहाव) बुलावे उसके (भूरेः) बहुत (सौभगस्य) उत्तम भाग्य के होने की (अवः) रक्षा करने वाले आप (बभूथ) हूजिये। जो (अस्मे) हम लोगों को (त्वावतः) आपके सदृश (अभिक्षत्तुः) सब ओर से नाशकर्त्ता हिंसक के (वरूता) स्वीकार करने वाला हो उसके भी रक्षक हूजिये ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे राजन् शूरवीर ! जो पीड़ित प्रजाजन तुमको आह्वान दें उनके वचन को आप शीघ्र सुनें और सब की रक्षा करने वाले होकर दुष्टों की हिंसा करने वाले हूजिये ॥८॥

फिर किसकी मित्रता करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र ।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके॒ऽभीतिमर्यो वनुषां शवांसि ॥९॥

पदार्थः—हे (तरुत्र) दुःख से तारने वाले (इन्द्र) राजा (नमोवृधासः) अन्न के बढ़ाने वा अन्न से बढ़े हुए हम लोग (महिना) बड़प्पन से (विश्वह) सब दिनों (ते) आपके (सखायः) मित्र (स्याम) हों जो (ते) आपके (समीके) समीप में (अवसा) रक्षा आदि से (अभीतिम्) अभय और (वनुषाम्) मंगता जनों के (शवांसि) बलों को (वन्वन्तु, स्म) ही मांगें (अर्यः) वैश्यजन आप इनके इस पदार्थ को धारण करो ॥९॥

भावार्थः—जो धार्मिक राजा से नित्य मित्रता करने की इच्छा करते हैं वे बड़प्पन से सत्कार पाते हैं, जो प्रजा को अभय देते हैं वे प्रतिदिन वलिष्ठ होते हैं ॥९॥

फिर राजा-प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स नं इन्द्र त्वयंताया इषे धास्त्मनां च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु तें जरित्रे अंस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदां नः ॥१०॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुःख के विदीर्ण करने वाले (सः) सो आप (त्वयतायै) आपने जो बड़े यत्न से सिद्ध की उस (इषे) इच्छा सिद्धि वा अन्न की प्राप्ति के लिये (नः) हम लोगों को (धाः) धारण कीजिये (ये, च) और जो (मघवानः) नित्य धनाढ्य जन (जुनन्ति) प्रेरणा देते हैं उनको भी उक्त इच्छासिद्धि वा अन्न की प्राप्ति के लिये धारण कीजिये जिससे (ते) आपकी (जरित्रे) स्तुति करने वाले के लिये (वस्वी) धन करने वाली (शक्तिः) सामर्थ्य (अस्तु) हो । हे मन्त्री जनो ! (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों को (सदा) सब कभी [=सदा] (सु, पात) अच्छे प्रकार रक्षा करो ॥१०॥

भावार्थः—हे राजा ! आप प्रयत्न से सबको पुरुषार्थी कर निरन्तर धनाढ्य कीजिये और अच्छे कामों में प्रेरणा दीजिये जिससे आपकी और आपके भृत्यों की अलौकिक शक्ति हो और ये आपकी सर्वदा रक्षा करें ॥१०॥

इस सूक्त में राजा, प्रजा, विद्वान्, इन्द्र, मित्र, सत्य, गुण और याच्ञा आदि के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में इक्कीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य द्वाविंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ भुरिगुष्णिक्छन्दः । ऋषभः स्वरः । २ । ७ निचृदनुष्टुप् । ३ भुरिगनुष्टुप् । ५ अनुष्टुप् । ६ । ८ विराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः । ४ आर्षी पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ९ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब नव ऋचा वाले बाईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य क्या करके कैसा हो इस विषय का उपदेश करते हैं ॥

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥१॥

पदार्थः—हे (हर्यश्व) मनोहर घोड़े वाले (इन्द्र) रोग नष्टकर्त्ता वैद्यजन आप (अर्वा) घोड़े के (न) समान (सोमम्) बड़ी ओषधियों के रस को (पिब) पीओ (यम्) जिसको (अद्रिः) मेघ (सुषाव) उत्पन्न करता है और जो (सोतुः) सार निकालने वा (सुयतः) सार निकालने की और सिद्धि करने वाले (ते) आपकी (बाहुभ्याम्) बाहुओं से कार्यसिद्धि करता है वह (त्वा) आपको (मन्दतु) आनन्दित करे ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे वैद्यो ! तुम, जैसे वाजी घोड़े तृण, अन्न और जलादिकों का अच्छे प्रकार सेवन कर पुष्ट होते हैं वैसे ही बड़ी-बड़ी ओषधियों के रसों को पीकर बलवान् होओ ॥१॥

फिर वह राजा किसके तुल्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥२॥

पदार्थः—हे (प्रभूवसो) समर्थ और वसाने वाले (हर्यश्व) हरणशील घोड़ों से युक्त (इन्द्र) परमैश्वर्यवान् राजा (यः) जो (ते) आप का (युज्यः) योग करने योग्य (चारुः) सुन्दर (मदः) आनन्द (अस्ति) है वा (येन) जिससे सूर्य (वृत्राणि) मेघ के अङ्गों को वैसे शत्रुओं की सेना के अङ्गों का (हंसि) विनाश करते हो (सः) वह (त्वाम्) तुम्हें (ममत्तु) आनन्दित करे ॥२॥

भावार्थः—जिस जिस उपाय से दुष्ट बलहीन हों उस उस उपाय का राजा अनुष्ठान करे अर्थात् आरम्भ करे ॥२॥

फिर मनुष्यों में कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३॥

पदार्थः—हे (मघवन्) प्रशंसित धन वाले विद्वान् आप (याम्) जिस (ते) आप के विषय की (प्रशस्तिम्) प्रशंसित वाणी को (वसिष्ठः) अतीव वसने वाला (आ, अर्चति) अच्छे प्रकार सत्कृत करता है (इमाम्) इस (मे) मेरी (वाचम्)

वाणी को आप (सु, बोध) अच्छे प्रकार जानो उससे (सधमादे) एक से स्थान में (इमा) इन (ब्रह्म) धन वा अन्नों का (जुषस्व) सेवन करो ॥३॥

भावार्थः—वही विद्वान् उत्तम है जो जिस प्रकार की उत्तम शास्त्र विषय में बुद्धि अपने लिये चाहे उसी को औरों के लिये चाहे और जो जो उत्तम अपने लिये पदार्थ हो उसे पराये के लिये भी जाने ॥३॥

फिर पढ़ने पढ़ाने वाले परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥४॥

पदार्थः—हे परम विद्वान् आप (विपिपानस्य) विविध प्रकार के पीने जिस से बनें उस (अद्रेः) मेघ के समान (अर्चतः) सत्कार करते हुए (विप्रस्य) उत्तम बुद्धि वाले जन के (हवम्) शब्दसमूह को (श्रुधि) सुनो (मनीषाम्) उत्तम बुद्धि को (बोध) जानो और (इमा) इन (अन्तमा) समीपस्थ (दुवांसि) सेवनों को (सचा) सम्बन्ध करो ॥४॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे जिज्ञासु विद्यार्थी जनो! तुम अपना पढ़ा हुआ परीक्षा लेने वाले विद्वान् को सुनाओ, वहां वे जो उपदेश करें उनका निरन्तर सेवन करो ॥४॥

फिर परीक्षक जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥५॥

पदार्थः—हे विद्यार्थी! नहीं है विद्या में अभ्यास जिसको ऐसे (ते) तेरे (तुरस्य) शीघ्रता करने वाले की (गिरः) वाणियों को (विद्वान्) विद्वान् मैं (न, मृष्ये) नहीं विचारता (अपि) अपितु (असुर्यस्य) मूर्खों में प्रसिद्ध हुए जन की (सुष्टु-तिम्) उत्तम प्रशंसा को (न) नहीं विचारता (ते) तेरे (नाम) नाम और (स्वयशः) अपनी कीर्त्ति की (सदा) सदा (विवक्मि) विवेक से परीक्षा करता हूं ॥५॥

भावार्थः—विद्वान् जन परीक्षा में जिनको आलसी, प्रमादी और निर्बुद्धि देखे उनकी न परीक्षा करे और न पढ़ावे। और जो उद्यमी अर्थात् परिश्रमी उत्तम बुद्धि विद्याभ्यास में तत्पर बोधयुक्त हों उनकी उत्तम परीक्षा कर उन्हें अच्छा उत्साह दे ॥५॥

फिर मनुष्यों को क्या इच्छा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः ॥६॥

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुत विद्यारूपी ऐश्वर्य्ययुक्त जो (मानुषेषु) मनुष्यों में (भूरि) बहुत (मनीषी) बुद्धिवाला जन (ते) आपके (सवना) यज्ञसिद्धि कराने वाले कर्मों वा प्रेरणाओं को (भूरि) बहुत (हवते) ग्रहण करता तथा जो (त्वाम्) आप की (इत्) ही स्तुति प्रशंसा करता (हि) उसी को (अस्मत्) हम लोगों से (आरे) दूर (ज्योक्) निरन्तर (मा, कः) मत करो किन्तु सदा हमारे समीप रक्खो ॥६॥

भावार्थः—जो निश्चय से मनुष्यों के बीच उत्तम विद्वान् आप्त परीक्षा करने वाला हो उसको तथा अन्य अध्यापकों की निरन्तर प्रार्थना करो आप लोगों को हमारे निकट जो धार्मिक, विद्वान् हो वही निरन्तर रखने योग्य है जो मिथ्या प्यारी वाणी बोलने वाला न हो ॥६॥

फिर सेनापतियों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥७॥

पदार्थः—हे (शूर) निर्भयता से शत्रुजनों की हिंसा करने वाले राजा वा सेनापति, जो (विश्वधा) विश्व को धारण करने वाले (त्वम्) आप (नृभिः) नायक मनुष्यों से (हव्यः) स्तुति वा ग्रहण करने योग्य (असि) हैं इससे (तुभ्यं) तुम्हारे लिये (इत्) ही (इमा) यह (सवना) ओषधियों के बनाने वा प्रेरणाओं को (कृणोमि) करता हूं और (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (विश्वा) समस्त (ब्रह्माणि) धन वा अन्नों और (वर्धना) उन्नति करने वाले कर्मों को करता हूं ॥७॥

भावार्थः—सेनाधिष्ठाता जन सेनास्थ योद्धा भृत्यजनों की अच्छे प्रकार परीक्षा कर अधिकार और कार्य्यों में नियुक्ति करें यथावत् उनकी पालना करके उत्तम शिक्षा से बढ़ावें ॥७॥

फिर वह राजा कैसे पुरुषों को रक्खे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥८॥

पदार्थः—हे (दस्म) दुःख के विनाशने वाले (उग्र) तेजस्वी (इन्द्र) परमैश्वर्य-युक्त राजा (मन्यमानस्य) माननीय के मानने वाले (ते) आपके (महिमानम्)

बड़प्पन को (नु) शीघ्र सज्जन (उदश्नुवन्ति) उन्नति पहुँचाते हैं उनके विद्यमान होते (ते) आपके (वीर्यम्) पराक्रम को शत्रु जन नष्ट (न) न कर सकते हैं (चित्) और (न) न वहां (नु) शीघ्र (राधः) धन ले सकते हैं ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे राजन् ! आप अच्छी परीक्षा कर सुपरीक्षित, धार्मिक, शूर, विद्वान् जनों को अपने निकट रक्खें तो कोई भी शत्रुजन आपको पीड़ा न दे सके, सदा वीर्य और ऐश्वर्य से बढ़ो ॥८॥

राजादिकों को किनके साथ मैत्री विधान करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः ।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजन् (ये) जो (पूर्वे) विद्या पढ़े हुए (ऋषयः) वेदार्थवेत्ता जन (च) और धार्मिक अन्य जन (ये) जो (नूत्नाः) नवीन पढ़ने वाले जन (च) और बुद्धिमान् अन्य जन (विप्राः) उत्तम बुद्धि वाले जन (ते) तुम्हारे और (अस्मे) हम लोगों के लिये (ब्रह्माणि) धन वा अन्नों को (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं उनके साथ हमारे और आपके (शिवानि) मंगल देने वाले (सख्या) मित्र के कर्म (सन्तु) हों जैसे (यूयम्) तुम हमारे मित्र हुए (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सदा (पात) रक्षा करो वैसे हम लोग भी तुम को सुखों से सदा पालें ॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे राजा ! जो वेदार्थवेत्ता और अर्थ पदार्थों को जानने वाले योगी जन विद्याध्ययन में निरत बुद्धिमान् हमारे कल्याण की इच्छा करने वाले हों उनके साथ ऐसी मित्रता कर धनधान्यों को बढ़ा इनसे इनकी सदा रक्षा कर और रक्षा किये हुए वह जन आप की सदा रक्षा करेंगे ॥९॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा, शूर, सेनापति, पढ़ाने, पढ़ने, परीक्षा करने और उपदेश देने वालों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में बाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य त्रयोविंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। १। ६ भुरिक् पङ्क्तिः। ४ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। २। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब छः ऋचावाले तेईसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में प्रबन्धकर्ता जन उपस्थित संग्राम में क्या क्या करें इस विषय को कहते हैं॥

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि॥१॥

पदार्थः—हे (वसिष्ठ) अतीव वसने वाले विद्वान् राजा जैसे विद्वान् जन (श्रवस्या) अन्न वा श्रवणों के बीच उत्पन्न हुए (ब्रह्माणि) धनधान्यों को (उदैरत) प्रेरणा देते हैं वैसे (इन्द्रम्) शूरवीर जन का (उ) तर्क-वितर्क से (समर्य्ये) समर में (महय) सत्कार करो (यः) जो (उपश्रोता) ऊपर से देखने वाला अच्छे सुनता है वह (शवसा) बल से (ईवतः) समीप जाते हुए (मे) मेरे (विश्वानि) सर्व (वचांसि) वचनों को (आ, ततान) अच्छे प्रकार विस्तारता है उस उपदेशक का भी समर में सत्कार करो॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे राजा जब संग्राम उपस्थित हो तब बहुत धन अन्न शस्त्र अस्त्र सेनाओं के अंग और इनकी रक्षा करने तथा अच्छे प्रबन्ध करने वालों को आप प्ररणा देओ, आप्त और उपदेष्टा जनों को रक्खो, योद्धा जन उत्साहित और सुरक्षित हुए शीघ्र विजय करें॥१॥

फिर वह राजा और मन्त्री जन परस्पर कैसे वर्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान्॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य के देने वाले (यत्) जो (शुरुधः) शीघ्र रूंधने वाले (विवाचि) नाना प्रकार की विद्याओं में जो प्रवृत्त वाणी उसमें (इरज्यन्त) प्राप्त होते हैं वा जिनके साथ (देवजामिः) विद्वानों के संग रहने वाली (घोषः) अच्छी वक्तृता से युक्त वाणी प्रवृत्त हो वा जो (जनेषु) मनुष्यों में (स्वम्) अपनी (आयुः) उमर को (चिकिते) जानता है वा (तानि) उन (अंहांसि) अधर्मयुक्त कामों को दूर (अति, पर्षि) आप अति पार पहुंचाते वा (अस्मान्) हम लोगों की अच्छे प्रकार रक्षा

करता है उसकी मैं (अवामि) रक्षा करता हूं ये समस्त हम लोग पुरुषार्थ से पराजित (इत्, नहि) कभी न हों ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन धर्मयुक्त व्यवहार में वर्त्त वसे तुम भी वर्तो, ब्रह्मचर्य्य आदि से अपनी आयु को बढ़ाओ ॥२॥

फिर क्या करके वीर संग्राम में जावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥३॥

पदार्थः—हे सेनेश जैसे (इन्द्रः) सूर्य (महित्वा) अपने महान् परिमाण से (रोदसी) आकाश और पृथिवी को प्रकाशित करता है वैसे जिस (ब्रह्माणि) धन धान्य पदार्थों को (जुजुषाणम्) सेवते हुए (रथम्) प्रशंसनीय रथ को वीरजन (उपास्थुः) उपस्थित होते हैं जिससे शूरवीर जन शत्रुओं को (विबाधिष्ट) विविध प्रकार से विलोवें-पीड़ा दें उसको (अप्रति) अप्रत्यक्ष अर्थात् पीछे भी (जघन्वान्) मारने वाला (स्यः) वह मैं (गवेषणम्) भूमि पर पहुँचाने वाले रथ को (हरिभ्याम्) हरणशील घोड़ों से (युजे) जोड़ता हूं जिससे (वृत्राणि) धनों को प्राप्त होऊं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे शूरवीरो ! जब आप लोग युद्ध के लिये जावें तब सब सामग्री को पूरी करके जावें जिससे शत्रुओं को शीघ्र बाधा-पीड़ा हो और विजय को भी प्राप्त हों ॥३॥

फिर सेनपति का ईश वीर, कैसे युद्ध करने वालों को रखे
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आपश्चित्पिप्युः स्तर्यो३ न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सर्व सेनापति जो वीरजन (आपः) जलों के (चित्) समान सेनाजनों को चलाते हुए (स्तर्यः) ढपी हुई (गावः) किरणों के (न) समान (पिप्युः) बढ़ावें और (ते) आप की (जरितारः) स्तुति करने वाले जन (ऋतम्) सत्य को (नक्षन्) व्याप्त होते हैं उनके साथ (वायुः) पवन के (न) समान (त्वम्) आप (याहि) जाइये (हि) जिससे (धीभिः) उत्तम बुद्धियों से (नियुतः) निश्चित किये हुए (वाजान्) वेगवान् (नः) हम लोगों की (अच्छ) अच्छे प्रकार (विदयसे) विशेषता से दया करते हो इससे हम लोग तुम्हारी आज्ञा का न उल्लंघन करें ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे सेनाध्यक्ष पति यदि आप

सुपरीक्षित शूरवीर जनों की अच्छे प्रकार रक्षा कर अच्छी शिक्षा देकर और कृपा से उन्नति कर शत्रुओं के साथ युद्ध करावें तो ये सूर्य की किरणों के समान तेजस्वी होकर पवन के समान शीघ्र जा शत्रुओं को शीघ्र विनाशें ॥४॥

फिर वे सब सेनापति और सब सेना जन परस्पर कैसे वर्त्तें
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं

ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्त्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥५॥

पदार्थः—हे (शूर) निर्भय (इन्द्र) सर्व सेना स्वामी (हि) जिस कारण आप (एकः) अकेले (देवत्रा) विद्वानों में जिस (जरित्रे) सत्य की स्तुति करने वाले के लिये और जिन भृत्य जनों के लिये (दयसे) दया करते हो (ते) वे (मदाः) आनन्दयुक्त होते हुए भट योद्धाजन (शुष्मिणम्) बलयुक्त (तुविराधसम्) बहुत धन धान्य वाले (त्वा) आप को (मादयन्तु) हर्षित करें आप (अस्मिन्) इस वर्त्तमान (सवने) युद्ध के लिये प्रेरणा में उन (मर्त्तान्) मनुष्यों को (मादयस्व) आनन्दित करो ॥५॥

भावार्थः—हे सर्व सेनाधिकारियों के पति ! आप सर्वदैव सबपर पक्षपात को छोड़ कृपा करो और सब को समान भाव से आनन्दित करो जिससे वे अच्छी रक्षा और सत्कार पाये हुए दुष्टों का निवारण और श्रेष्ठों की रक्षा करके निरन्तर राज्य बढ़ावें ॥५॥

फिर सर्व सेनापति को सेनाजन परस्पर कैसे वर्त्तें
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवत्पातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थः—जो (वसिष्ठासः) अतीव बसाने वाले जन (अर्कैः) उत्तम विचारों से (वृषणम्) सुखों की वर्षा करने और (वज्रबाहुम्) शस्त्र अस्त्रों को हाथों में रखने वाले (इन्द्रम्) सर्व सेनाधिपति का (अभि, अर्चन्ति) सत्कार करते हैं (सः, एव) वही (स्तुतः) स्तुति को प्राप्त हुआ (नः) हम लोगों की (पातु) रक्षा करे। सब (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की तथा (गोमत्) प्रशंसित गौएं जिसमें विद्यमान वा (वीरवत्) वीरजन जिसमें विद्यमान वा (इत्) उस सेना-समूह की भी [सदा] (पात) रक्षा करो ॥६॥

भावार्थः—जिनका जो अधिष्ठाता हो उसकी आज्ञा में सब को यथावत् वर्त्तना चाहिये । अधिष्ठाता भी पक्षपात को छोड़ अच्छे प्रकार विचार कर आज्ञा दे ऐसे परस्पर की रक्षा कर राज्य, धन और यशों को बढ़ा सदा बढ़ते हुए होओ ॥६॥

इस सूक्त में इन्द्र, सेना, योद्धा और सर्व सेनापतियों के कार्य्यों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में तेईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य चतुर्विंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ५ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले चौबीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि ।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥१॥

पदार्थः—(पुरुहूत) बहुतों से स्तुति पाये हुए (इन्द्र) मनुष्यों के स्वामी राजा (ते) आपके (सदने) उत्तम स्थान में जो (योनिः) घर तुम से (अकारि) किया जाता है (तम्) उसको (नृभिः) नायक मनुष्यों के साथ (प्र, याहि) उत्तमता से जाओ (यथा) जैसे (नः) हमारी (अविता) रक्षा करने वाला (असः) होओ और हमारी (वृधे) वृद्धि के लिए (च) भी (वसूनि) द्रव्य वा उत्तम पदार्थों को (आददः) ग्रहण करो (सोमैः, च) और ऐश्वर्य वा उत्तमोत्तम ओषधियों के रसों से (ममदः) हर्ष को प्राप्त होओ वैसे सब के सुख के लिये होओ ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—मनुष्यों को चाहिये कि निवासस्थान उत्तम जल स्थल और पवन जहां हो उस देश में घर बना कर वहां वसें, सब के सुखों के बढ़ाने के लिये धनादि पदार्थों से अच्छी रक्षा कर सबों को आनन्दित करें ॥१॥

फिर वे स्त्री पुरुष क्या करके विवाह करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि ।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिरियमिन्द्रं जोहुवती मनीषा ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्य के देने वाले जो (विसृष्टधेना) नाना प्रकार की विद्यायुक्त वाणी और (सुवृक्तिः) सुन्दर चाल ढाल जिसकी ऐसी (इयम्) यह (मनीषा) प्रिया स्त्री (इन्द्रम्) परमैश्वर्य देने वाले पुरुष को (जोहुवती) निरन्तर बुलाती है उसको (भरते) धारण करती है जिसने (ते) तेरा (मनः) मन (गृभीतम्) ग्रहण किया तथा जो (द्विबर्हाः) दो से अर्थात् विद्या और पुरुषार्थ से बढ़ता वह (सुतः) उत्पन्न किया हुआ (सोमः) ओषधियों का रस है और जहां (परिषिक्ता) सब ओर से सींचे हुए (मधूनि) दाख वा सहत आदि पदार्थ हैं उन्हें सेवो ॥२॥

भावार्थः—जो स्त्री सुविचार से अपने प्रिय पति को प्राप्त हो के गर्भ को धारण करती है वह पति के चित्त को खींचने और वश करने वाली होकर वीर सुत को उत्पन्न कर सर्वदा आनन्दित होती है ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या वर्त्त कर क्या पीना चाहिये
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि ।
वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्चमाङ्गूषमच्छा तवसं मदाय ॥३॥

पदार्थः—हे (ऋजीषिन्) सरल स्वभाव वाले आप (सोमपेयाय) उत्तम ओषधियों के रस के पीने के लिये (दिवः) प्रकाश और (पृथिव्याः) भूमि से (नः) हमारे (इदम्) इस वर्त्तमान (बर्हिः) उत्तम स्थान वा अवकाश को (आ, याहि) आओ (मदाय) आनन्द के लिए (मद्र्यञ्चम्) मेरा सत्कार करते (आङ्गूषम्) और प्राप्त होते हुए (तवसम्) बलवान् (त्वाम्) आपको उत्तम ओषधियों के रस पीने के लिये (हरयः) हरणशील (अच्छ, आ, वहन्तु) अच्छे पहुंचावें ॥३॥

भावार्थः—वे ही नीरोग, शिष्ट, धार्मिक, चिरायु और परोपकारी हों जो मद्यरूप और अच्छे प्रकार बुद्धि के नष्ट करने वाले पदार्थ को छोड़ बल, बुद्धि आदि को बढ़ाने वाले सोम आदि बड़ी ओषधियों के रस के पीने को अपने वा आप्त के स्थान को जावें ॥३॥

फिर कौन आप्त विद्वान् होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि ।
वरीवृजत्स्थविरेभिः सुशिप्रास्मे दधद्वृषणं शुष्ममिन्द्र ॥४॥

पदार्थः—हे (सुशिप्र) उत्तम शोभायुक्त ठोढी वाले (हर्यश्व) हरणशील मनुष्य वा घोड़े बड़े बड़े जिसके हुए वह (इन्द्र) परम ऐश्वर्य देने वाले (विश्वाभिः)

समस्त (ऊतिभिः) रक्षा आदि क्रियाओं से (सजोषाः) समान प्रीति सेवने वाले (ब्रह्म) धन वा अन्न को (जुषाणः) सेवने वा (स्थविरेभिः) विद्या और अवस्था में वृद्धों के साथ (अस्मे) हम लोगों में (वृषणम्) सुख वर्षाने वाले (शुष्मं) बल को (वधत्) धारण करते हुए आप दुःखों को (वरीवृजत्) निरन्तर छोड़ो और (नः) हम लोगों को (आ, याहि) आओ, प्राप्त होओ ॥४॥

भावार्थः—वे ही मनुष्य महाशय होते हैं जो पाप और परोपघात अर्थात् दूसरों को पीड़ा देने के कामों को छोड़ के अपने आत्मा के तुल्य सब मनुष्यों में वर्त्तमान सब के सुख के लिये अपना शरीर, वाणी और ठोढी को वर्ताते हैं ॥४॥

फिर विद्वान् किसके तुल्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एष स्तोमो॑ म॒ह उ॒ग्राय॒ वाहे॑ धु॒रीऽ॒वात्यो॒ न वा॒जय॑न्नधायि ।
इन्द्र॑ त्वा॒ऽयम॒र्क ई॑ट्टे॒ वसू॑नां दि॒वी॑व॒ द्यामधि॑ नः॒ श्रोम॑तं धाः ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परम ऐश्वर्य के देने वाले जिन आपने (वाहे) सब को सुख की प्राप्ति कराने वाले (महे) महान् (उग्राय) तेजस्वी के लिये (धुरीव) धुरी में जैसे रथ आदि के अवयव लगे हुए जाते हैं वैसे (अत्यः) शीघ्र चलने वाले घोड़े के (न) समान (वाजयन्) वेग कराते हुए (एषः) यह (स्तोमः) श्लाघनीय स्तुति करने योग्य व्यवहार (अधायि) धारण किया जो (अयम्) यह (अर्कः) सत्कार करने योग्य (वसूनाम्) पृथिवी आदि के बीच (दिवीव) वा सूर्य ज्योति के बीच (त्वा) आपको (ईट्टे) ऐश्वर्य देता है वह आप (नः) हम लोगों को (द्याम्) प्रकाश और (श्रोमतम्) सुनने योग्य को (अधि, धाः) अधिकता से धारण करो ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् तेजस्वियों के लिए प्रशंसा धारण करता वह धुरी के समान सुख का आधार और घोड़े के समान वेगवान् हो बहुत लक्ष्मी पाकर सूर्य के समान इस संसार में प्रकाशित होता है ॥५॥

फिर मनुष्यों को परस्पर कैसे वर्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ए॒वा न॑ इन्द्र॒ वार्य॑स्य पूर्धि॒ प्र ते॑ म॒हीं सु॑म॒तिं वे॑विदाम ।
इषं॑ पिन्व म॒घव॑द्भ्यः सु॒वीरां॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) शत्रुओं के विदीर्ण करने वाले आप (वार्यस्य) ग्रहण करने योग्य (ते) आप की जिस (महीम्) बड़ी (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को हम लोग (वेविदाम) यथावत् पावें (एव) उसी को और (नः) हमको (प्र, पूर्धि) अच्छे प्रकार

पूर्ण करो जिसको (मघवद्भ्यः) बहुत धनयुक्त पदार्थों से (सुवीराम्) उत्तम वीर हैं जिससे उप (इषम्) अन्न को हम लोग यथावत् प्राप्त हों। और उसको आप (पिन्व) सेवो उस सुमति और अन्न तथा (स्वस्तिभिः) सुखों से (यूयम्) तुम लोग (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥६॥

भावार्थः—हे विद्वान् ! आप हम लोगों के लिये धर्मयुक्त उत्तम बुद्धि को देओ जिससे हम लोग अच्छे गुण कर्म स्वभावों को प्राप्त होकर सब मनुष्यों की अच्छे प्रकार रक्षा करें ॥६॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा, स्त्री पुरुष और विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह सप्तम मण्डल में चौबीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्य पञ्चविंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। १ निचृत्पङ्क्तिः। २ विराट्पङ्क्तिः। ४ पङ्क्तिः। ६ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः। ३ विराट्त्रिष्टुप्। ५ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः ॥

अब छः ऋचावाले पच्चीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में कैसी सेना उत्तम होती है इस विषय को कहते हैं ॥

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत्समरन्त सेनाः ।
पताति दिद्युन्नर्यस्य बाह्वोर्मा ते मनो विश्वद्र्य१ग्वि चारीत् ॥१॥

पदार्थः—हे (उग्र) शत्रुओं के मारने में कठिन स्वभाव वाले (इन्द्र) सेनापति (यत्) जिस (नर्यस्य) मनुष्यों में साधु (महः) महान् (ते) आप के (समन्यवः) क्रोध के साथ वर्त्तमान (सेनाः) सेना (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (आ, समरन्त) सब ओर से अच्छी जाती हैं उन (ते) आप की (बाह्वोः) भुजाओं में (दिद्युत्) निरन्तर प्रकाशमान युद्धक्रिया (मा) मत (पताति) गिरे, मत नष्ट हो और तुम्हारा (मनः) चित्त (विश्वद्र्यक्) सब ओर से प्राप्त होता हुआ (वि, चारीत्) विचरता है ॥१॥

भावार्थः—हे सेनाधिपति ! जब संग्राम समय में आओ तब जो क्रोध प्रज्वलित क्रोधाग्नि से जलती हुई सेनाएँ शत्रुओं के ऊपर गिरें, उस समय वे विजय को प्राप्त हों जब तक तुम्हारा बाहुबल न फैले, मन भी अन्याय में न प्रवृत्त हो तब तक तुम्हारी उन्नति होती है यह जानो ॥१॥

फिर राजा को कौन दण्ड देने योग्य और निवारने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्राँ॑अभि ये नो मर्तासो अमन्ति ।
आरे तं शंसं॑ कृणुहि निनित्सोरा नो॑ भर सम्भरणं वसू॑नाम् ॥२॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दुष्ट शत्रुओं के निवारने वाले राजा (ये) जो (मर्त्तासः) मनुष्य (नः) हम लोगों को (दुर्गे) शत्रुओं को दुःख से पहुंचने योग्य परकोटा में (अमन्ति) रोगों को पहुंचाते हैं उन (अमित्रान्) सब के साथ द्रोहयुक्त रहने वालों को (नि, अभि, श्नथिहि) निरन्तर सब ओर से मारो हम लोगों से (आरे) दूर उनको फेंको (निनित्सोः) और निन्दा की इच्छा करने वाले से हम लोगों को दूर कर (नः) हम लोगों के (तम्) उस (शंसम्) प्रशंसनीय विजय को (कृणुहि) कीजिये तथा (वसूनाम्) द्रव्यादि पदार्थों के (संभरणम्) अच्छे प्रकार धारण पोषण को (आ, भर) सब ओर से स्थापित कीजिये ॥२॥

भावार्थः—हे राजा ! जो धूर्त्त मनुष्य ब्रह्मचर्य आदि के निवारण से मनुष्यों को रोगी करते हैं उनको काराघर में बांधो और जो अपनी प्रशंसा के लिये सब की निन्दा करते हैं उनको समझा कर उत्तम प्रजाजनों से अलग रक्खो, ऐसे करने से आपकी बड़ी प्रशंसा होगी ॥२॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शतं ते॑ शिप्रिन्नूतयः॑ सुदासे॑ सहस्रं॑ शंसा॑ उत रातिरस्तु ।
जहि वधर्वनुषो मर्त्य॑स्यास्मे द्युम्नमधि रत्नं॑ च धेहि ॥३॥

पदार्थः—हे (शिप्रिन्) अच्छे मुख वाले राजा (ते) आपके (वनुषः) याचना करते हुए [(मर्त्तस्य)] पीड़ित मनुष्य की (शतम्) सैकड़ों (ऊतयः) रक्षा आदि क्रिया और (सहस्रम्) असंख्य (शंसा) प्रशंसा हों (उत) और (सुदासे) जो उत्तमता से देता है उसके लिए (रातिः) दान (अस्तु) हो आप (वनुषः) अधर्म से मांगने वाले पाखण्डी (मर्त्यस्य) मनुष्य की (वधः) ताड़ना को (जहि) हनो, नष्ट करो तथा (अस्मे) हम लोगों में (द्युम्नम्) धर्मयुक्त यश और (रत्नं च) रमणीय धन भी (अधि, धेहि) अधिकता से धारण करो ॥३॥

भावार्थः—हे राजा ! आप सैकड़ों वा सहस्रों प्रकार से प्रजा की पालना और सुपात्रों को देना, दुष्टों का बंधन, प्रजाजनों में कीर्ति बढ़ाना और धन को निरन्तर विधान करो जिससे सब सुखी हों ॥३॥

फिर वे राजा और प्रजाजन परस्पर में कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्र ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः॥४॥

पदार्थः—हे (तविषीवः) प्रशंसित सेना वा (हरिवः) प्रशंसित हरणशील मनुष्यों वाले (शूर) निर्भय (इन्द्र) सेनापति (हि) जिस कारण मैं (विश्वा, इत, अहानि) सभी दिनों (त्वावतः) तुम्हारे समान के (क्रत्वे) बुद्धि वा कर्म के लिये प्रवृत्त हूं (त्वावतः) और आपके सदृश (अवितुः) रक्षा करने वाले के (रातौ) दान के निमित्त उद्यत (अस्मि) हूं उस मेरे लिये (उग्रः) तेजस्वी आप (ओकः) घर (कृणुष्व) सिद्ध करो, बनाओ और अधार्मिक किसी जन को (न) न (मर्धीः) चाहो॥४॥

भावार्थः—हे धार्मिक राजा! जिससे आप सबकी रक्षा के लिये सदा प्रवृत्त होते हो इससे तुम्हारी रक्षा में हम लोग सर्वदा प्रवृत्त हैं॥४॥

फिर उस राजा को क्या अवश्य करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः।
सत्रा कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम्॥५॥

पदार्थः—हे (शूर) निर्भय जिन (इन्द्रे) परमैश्वर्य्ययुक्त आप में (हर्यश्वाय) प्रशंसित जिसके मनुष्य वा घोड़े उसके लिये (एते) ये (कुत्साः) वज्र अस्त्र और शस्त्र आदि समूह हों उनको और (देवजूतम्) देवों से पाये हुए (शूषम्) बल तथा (सहः) क्षमा (इयानाः) प्राप्त होते हुए (तरुत्राः) दुःख से सबको अच्छे प्रकार तारने वाले (वयम्) हम लोग (वाजम्) विज्ञान को (सनुयाम) याचें आप (सत्रा) सत्य से (वृत्रा) दुःखों को (सुहना) नष्ट करने के लिये सुगम (कृधि) करो॥५॥

भावार्थः—हे राजा! यदि राज्य पालने वा बढ़ाने को आप चाहें तो शस्त्र अस्त्र और सेना जनों को निरन्तर ग्रहण करो फिर सत्य आचार को मांगते हुए निरन्तर बढ़ो और हम लोगों को बढ़ाओ॥५॥

फिर उपदेशक और उपदेश करने योग्यों के गुणों को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥६॥

पदार्थः - हे (इन्द्र) परमैश्वर्य्य के देने वाले आप (नः) हम लोगों को विद्या और उत्तम शिक्षा से (प्र, पूर्धि) अच्छे प्रकार पूरा करो जिससे हम लोग (वार्यस्य) स्वीकार करने योग्य (ते) आपकी (सुमतिम्) उत्तम मति और (महीम्) अत्यन्त वाणी को (वेविदाम) प्राप्त हों तथा (मघवद्भ्यः) बहुत धन से युक्त सज्जनों से (सुवीराम्) उत्तम विज्ञानवान् वीर जिसमें होते उस (इषम्) विद्या को प्राप्त होवें यहां आप हम लोगों की (पिन्व) रक्षा करो और (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा, एव) सर्वदैव (पात) रक्षा करो ॥६॥

भावार्थः—वे ही पढ़ाने वाले धन्यवाद के योग्य होते हैं जो विद्यार्थियों को शीघ्र विद्वान् और धार्मिक करते हैं और सर्वदैव रक्षा में वर्त्तमान होते हुए सब की उन्नति करते हैं ॥६॥

इस सूक्त में सेनापति, राजा और शस्त्र अस्त्रों को ग्रहण करना इन अर्थों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इस से पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में पच्चीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य षड्विंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । २ । ३ । ४ त्रिष्टुप् । ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले छब्बीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में जीव का उपकार कौन नहीं कर सकता इस विषय को कहते हैं ॥

न सोम॒ इन्द्र॒मसु॑तो ममाद॒ नाब्र॑ह्माणो म॒घवा॑नं सु॒तासः॑ ।
तस्मा॑ उ॒क्थं ज॑नये॒ यज्जुजो॑षन्नृ॒वन्नवी॑यः शृ॒णव॒द्यथा॑ नः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यथा) जैसे (असुतः) न उत्पन्न हुआ (सोमः) महौषधियों का रस जिस (इन्द्रम्) इन्द्रियों के स्वामी जीव को (न) नहीं (ममाद) हर्षित करता वा जैसे (अब्रह्माणः) चार वेदों का वेत्ता जो नहीं वे (सुतासः) उत्पन्न हुए (मघवानम्) परमपूजित धनवान् को (न) नहीं आनन्दित करते हैं वह इन्द्रिय-स्वामी जीव (यत्) जिस (नृवत्) नृवत् अर्थात् जिसमें बहुत नायक मनुष्य विद्यमान और (नवीयः) अत्यन्त नवीन (उक्थम्) उपदेश को (जुजोषत्) सेवता है (नः) हम लोगों को (शृणवत्) सुनता है (तस्मै) उसके लिये सब प्रकार के विधानों को मैं (जनये) उत्पन्न करता हूं ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे बुद्धिमान् मनुष्यो ! जैसे उत्पन्न हुआ पदार्थ जीव को आनन्द देता है जैसे यथावत् वेदविद्या और आप्तजन धार्मिक धनाढ्य को विद्वान् करते हैं वैसे उत्पन्न हुई विद्या आत्मा को सुख देती है और शुभ गुण धनाढ्य को बढ़ाते हैं और सत्संग से ही मनुष्यत्व को जीव प्राप्त होता है ॥१॥

फिर किसके तुल्य कौन क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उक्थउंक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनींथे मघवानं सुतासः ।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः संमानदक्षा अवसे हवन्ते ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यत्) जो (ईम्) सब ओर से (सबाधः) पीड़ा के साथ वर्त्तमान (पितरम्) पिता को (समानदक्षाः) समान बल, विद्या और चतुरता जिनके विद्यमान वे (पुत्राः) पुत्र जन (न) जैसे (अवसे) रक्षा आदि के लिये (सुतासः) विद्या और ऐश्वर्य में प्रकट हुए (मघवानम्) धर्म कर्म बहुत धन जिसके उसको (हवन्ते) स्पर्द्धा करते वा ग्रहण करते हैं और जैसे (सोमः) बड़ी बड़ी ओषधियों का रस वा ऐश्वर्य (उक्थे उक्थे) धर्मयुक्त उपदेश करने योग्य व्यवहार तथा (नीथे नीथे, पहुंचाने पहुंचाने योग्य सत्य व्यवहार में (इन्द्रम्) जीवात्मा को (ममाद) हर्षित करता है उनके साथ वैसा ही आचरण करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं—जो विद्यार्थी जन जैसे अच्छे पुत्र क्लेशयुक्त माता पिता को प्रीति से सेवते हैं वैसे गुरु की सेवा करते हैं वा जैसे विद्या. विनय और पुरुषार्थों से उत्पन्न हुआ ऐश्वर्य, उत्पन्न करने वाले को आनन्दित करता है वैसे तुम लोग वर्तो ॥२॥

फिर मनुष्य किसके तुल्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

चकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु ।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः ॥३॥

पदार्थः – हे विद्वान् ! जैसे (वेधसः) मेधावी जन (सुतेषु) उत्पन्न हुए विज्ञान और बलों में उपदेश करने योग्यों को (यानि) जिन उपदेश-वचनों को तथा (अन्या) और वचनों को (ब्रुवन्ति) कहते हैं (ता) उनको आप (नूनम्) निश्चित (कृणवत्) करें वा जैसे (समानः) पक्षपात रहित (पतिः) स्वामी राजा (एकः) अकेला (इन्द्रः) परमैश्वर्य्यवान् (जनीरिव) उत्पन्न हुई प्रजा के समान (सु, सर्वाः) सम्यक् समस्त प्रजा को (पुरः) पहिले (नि, मामृजे) निरन्तर पवित्र करता है वैसे इसको आप (चकार) करो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! तुम विद्वानों के उपदेश के अनुकूल ही आचरण करो जैसे धार्मिक, जितेन्द्रिय, विद्वान् राजा पक्षपात छोड़के अपनी प्रजा न्याय से रखता है वैसे प्रजाजन इस राजा की निरन्तर रक्षा करें, ऐसा करने से निरन्तर सब को निश्चल सुखलाभ होता है ॥३॥

फिर कौन इस जगत् में राजा होने योग्य होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र एको विभक्ता तरणिर्मघानाम् ।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वीरस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि ॥४॥

पदार्थः—(यस्य) जिसकी (पूर्वीः) पुरातन (मिथस्तुरः) परस्पर शीघ्रता करती हुई (ऊतयः) रक्षायें (अस्मे) हम लोगों में (प्रियाणि) मनोहर (भद्राणि) कल्याण करने वाले काम (सश्चत) सम्बन्ध करें जो (एकः) एक (मघानाम्) धनों के (विभक्ता) सत्य असत्य का विभाग करने वा (तरणिः) तारने वाला (इन्द्रः) परमैश्वर्य्य युक्त जीव धर्म की सेवा करता है (तम्, एव) उसी को आप्त शिष्ट धर्मशील सज्जन धर्मात्मा (आहुः) कहते हैं (उत) निश्चय उसी का उपदेश मैं (शृण्वे) सुनता हूं ॥४॥

भावार्थः हे मनुष्यो ! जिसकी प्रशंसा आप्त विद्वान् जन करें वा जिसके धर्मयुक्त कर्मों को समस्त प्रजा प्रीति से चाहे, जो सत्य झूठ को यथावत् अलग कर न्याय करे वही हमारा राजा हो ॥४॥

फिर विद्वान् जन राजा आदि मनुष्यों को धर्म-मार्ग में नित्य अच्छे प्रकार रक्खे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नृन्कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति ।
सहस्रिण उप नो माहि वाजान्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वान् (वसिष्ठः) अत्यन्त विद्या में वास जिन्होंने किया ऐसे आप (कृष्टीनाम्) मनुष्यादि प्रजाजनों के बीच (वृषभम्) अत्युत्तम (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् जीव और (नृन्) नायक मनुष्यों की (ऊतये) रक्षा आदि के लिये (एव) ही (माहि) सत्कार कीजिये (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में (सहस्रिणः) सहस्रों पदार्थ जिनके विद्यमान उन (वाजान्) विज्ञान वा अन्नादियुक्त (नः) हम लोगों को जो आप (उप, गृणाति) सत्य उपदेश देते हैं सो निरन्तर मान कीजिये । हे विद्वानो ! (यूयम्)

तुम (स्वस्तिभिः) कल्याणों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥५॥

भावार्थः – विद्वान् जनो ! तुम ऐसा प्रयत्न करो जिससे राजा आदि जन धार्मिक होकर असंख्य धन वा अतल आनन्द को प्राप्त हों, जैसे आप उनकी रक्षा करते हैं वैसे ये आपकी निरन्तर रक्षा करें ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र शब्द से जीव, राजा के कर्म और गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ।

यह सप्तम मण्डल में छब्बीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य सप्तविंशतितमस्य सूक्तस्य वशिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ५ विराट् त्रिष्टुप् । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ । ४ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले सत्ताईसवें सूक्त का प्रारम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में सब को कैसा विद्वान् राजा इच्छा करने योग्य है इस विषय को कहते हैं ॥

इन्द्रं नरो॑ ने॒मधि॑ता हवन्ते॒ यत्पार्या॑ यु॒नज॑ते॒ धिय॒स्ताः ।
शूरो॒ नृषा॑ता॒ शव॑सश्चका॒न आ गोम॑ति व्र॒जे भ॑जा॒ त्वं नः ॥१॥

पदार्थः—हे राजा जो (शूरः) शत्रुओं की हिंसा करने वाले (शवसः) बल से (चकानः) कामना करते हुए (त्वम्) आप (नृषाता) मनुष्य जिसमें बैठते वा (गोमति) गौयें जिसमें विद्यमान ऐसे (व्रजे) जाने के स्थान में (नः) हम लोगों को (आ,भज) अच्छे प्रकार सेविये, हे राजन् ! जिन (इन्द्रम्) परमैश्वर्य देने वाले आपको (यत्) जो (पार्याः) पालना करने योग्य (धियः) उत्तम बुद्धि (युनजते) युक्त होती हैं (ताः) उनको आप अच्छे प्रकार सेवो । जो (नरः) विद्याओं में उत्तम नीति देने वाले (नेमधिता) संग्राम में आप को (हवन्ते) बुलाते हैं उनको आप अच्छे प्रकार सेवो ॥१॥

भावार्थः – जो निश्चय से इस संसार में प्रशंसित बुद्धिवाला, सर्वदा बल वृद्धि की इच्छा करता हुआ, शिष्ट जनों की सन्मति वर्तने वाला, विद्वान्, उद्योगी, धार्मिक और प्रजापालन में तत्पर जन हो उसी की सब कामना करो ॥१॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

य इन्द्र॒ शुष्मो॑ मघवन्ते॒ अस्ति॒ शिक्षा॒ सखि॑भ्यः पुरुहूत॒ नृभ्यः॑ ।
त्वं हि दृ॒ळ्हा म॑घव॒न्विचे॑ता॒ अपा॑ वृधि॒ परि॑वृतं॒ न राधः॑ ॥२॥

पदार्थः—हे (मघवन्) परम पूजित धनवान् (इन्द्र) परमैश्वर्य देने वाले (यः) जो (ते) आपका (शुष्मः) पुष्कल बलयुक्त व्यवहार (अस्ति) है। हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त जो आपकी (सखिभ्यः) मित्रों के लिए वा (नृभ्यः) अपने राज्य में नायक मनुष्यों के लिए (शिक्षा) सिखावट है। हे (मघवन्) बहुधनयुक्त जो आपके (दृळ्हा) दृढ़ शत्रु सैन्यजन हैं उनसे (विचेताः) विविध प्रकार वा विशिष्ट बुद्धि जिनकी वह (त्वम्) आप (हि) ही (परिवृतम्) सब ओर से स्वीकर किये (राधः) धन को (न) जैसे वैसे दृढ़ शत्रुसेनाजनों को (अपा, वृधि) दूर कीजिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—वही राजा सदा बढ़ता है जो अपराधी मित्रों को भी दण्ड देने के विना नहीं छोड़ता, जो ऐसे सदैव उत्तम यत्न करता है जिससे कि अपने मित्र उदासीन वा शत्रु अधिक न हों और जो सदैव विद्या और शिक्षा की वृद्धि के लिये प्रयत्न करता है वही सब दुष्ट और लोककण्टक डाकुओं को निवार के राज्य करने के योग्य होता है ॥२॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य (जगतः) संसार के बीच (अधि, क्षमि) पृथिवी पर प्रकाशित होता है वैसे (इन्द्रः) शत्रुओं का विदीर्ण करने वाला (राजा) विद्या और नम्रता से प्रकाशमान राजा (चर्षणीनाम्) मनुष्यों के बीच प्रकाशित होता (यत्) जो (विषुरूपम्) व्याप्तरूप धन (अस्ति) है (ततः) उससे (दाशुषे) देने वाले के लिए (वसूनि) धनों को (ददाति) देता और (उपस्तुतः) समीप में प्रशंसा को प्राप्त हुए (चित्) के समान (अर्वाक्) नीचे प्राप्त होने वाला सबको (राधः) धन के प्रति (चोदत्) प्रेरणा देवे वही राज्य करने के योग्य होता है ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो राजा आदि जन सूर्य के समान राज्य में दण्ड प्रकाश किये और सुख के देने वाले होते हैं वे ही सब सुख पाते हैं ॥३॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती ।
अनूना यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः ॥४॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (मघवा) बहुत धन युक्त (दानः) देने वाला (इन्द्रः) बिजुली के समान विद्या में व्याप्त (नः) हम लोगों को (सहूती) एक सी प्रशंसा (उत्या) तथा रक्षा आदि क्रिया से (नः) हम लोगों के लिए (वाजम्) धन वा अन्न को (नियमते) निरन्तर देता है (यस्य) जिसकी (चित्) निश्चित (सखिभ्यः) मित्र (नृभ्यः) मनुष्यों के लिए (अनूना) पूरी (अभिवीता) सब ओर से व्याप्त अभय (दक्षिणा) दक्षिणा और (वामम्) प्रशंसा करने योग्य कर्म (पीपाय) बढ़ता है वह सब के लिए (नु) शीघ्र सुख देने वाला होता है ॥४॥

भावार्थः—जो राजा आदि जन यथावत् पुरुषार्थ से सब मनुष्यों को अधर्म से धर्म में प्रवृत्त करा अभय उत्पन्न करते हैं वे प्रशंसनीय होते हैं ॥४॥

फिर राजा प्रजाजन परस्पर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं।

नू ई॑न्द्र रा॒ये वरि॑वस्कृधी न॒ आ ते॒ मनो॑ ववृत्याम म॒घाय॑ ।
गोम॒दश्वा॑व॒द्रथ॑व॒द्व्यन्तो॑ यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः ॥५॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) धन की उन्नति के लिए प्रेरणा देने वाले आप (राये) धन के लिये (नः) हमारी (वरिवः) सेवा (कृधि) करो जो (ते) आपका (मनः) चित्त है उसको (मघाय) धन के लिए हम लोग (नु) शीघ्र (आ, ववृत्याम) सब ओर से वर्त्तें (गोमत्) बहुत गो आदि वा (अश्वावत्) बहुत घोड़ों से युक्त वा (रथवत्) प्रशंसित रथ आदि से युक्त धन को (व्यन्तः) प्राप्त होते हुए (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) उत्तम सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥५॥

भावार्थः—हे राजा ! जैसे हम लोग आपको राज्य की उन्नति के लिये प्रवृत्त करावें वैसे हम लोगों को धनप्राप्ति के लिये प्रवृत्त कराओ। सब आप लोग परमैश्वर्य्य को प्राप्त होकर हमारी रक्षा में निरन्तर प्रयत्न करो ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, सेनापति, राजा, दाता, रक्षा करने वाले और प्रवृत्ति कराने वाले के गुणों का और कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में सत्ताईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्याष्टाविंशतितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः। इन्द्रो देवता। १। २। ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः। धैवतः स्वरः। ३ भुरिक्पङ्क्तिः। ४ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः॥

अब पांच ऋचावाले अट्ठाईसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में वह राजा क्या करे इस विषय को कहते हैं॥

ब्रह्मा ण इन्द्रोप याहि विद्वानर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः।
विश्वे चिद्धि त्वा विहवन्त मर्ता अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व॥१॥

पदार्थः—हे (विश्वमिन्व) सब को फेंकने वा (इन्द्र) परमैश्वर्य्य और विद्या की प्राप्ति कराने वाले (विद्वान्) विद्यावान् आप (नः) हम लोगों को (ब्रह्म) धन वा अन्न (उप, याहि) प्राप्त कराओ जिन (ते) आपके (अर्वाञ्चः) नीचे को जाने वाले (हरयः) मनुष्य (युक्ताः) किये योग (सन्तु) हों (चित्) और जो (हि) ही (विश्वे) सब (मर्त्ताः) मनुष्य (त्वा) आपको (वि, हवन्त) विशेषता से बुलाते हैं उन के साथ (अस्माकम्) हमारे वाक्य को (इत्) ही (शृणुहि) सुनिये॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य सत्य न्यायवृत्ति से राजभक्त हों वे राज्य में सत्कार किये हुए निरन्तर वसें॥१॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

हवं त इन्द्र महिमा व्यानड् ब्रह्म यत्पासि शवसिन्नृषीणाम्।
आ यद्वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन्क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हाः॥२॥

पदार्थ—हे (शवसिन्) बहुत प्रकार के बल और (उग्र) तेजस्वी स्वभाव युक्त (इन्द्र) दुष्टों के विदारने वाले राजा (यत्) जो (ते) आप का (महिमा) प्रशंसा-समूह (हवम्) प्रशंसनीय वाणियों के व्यवहार को और (ब्रह्म) धन को (व्यानट्) व्याप्त होता है तथा आप (ऋषीणाम्) वेदार्थवेत्ताओं के प्रशंसनीय वाणीव्यवहार की (पासि) रक्षा करते हो और (यत्) जिस (वज्रम्) शस्त्र समूह को (हस्ते) हाथ में (आ, दधिषे) अच्छे प्रकार धारण करते हो और (घोरः) मारने वाले (सन्) हो कर (क्रत्वा) प्रज्ञा वा कर्म से (अषाळ्हाः) न सहने योग्य शत्रु सेनाओं को (जनिष्ठाः) प्रकट करो अर्थात् ढिठाई उन की दूर करो सो तुम हम लोगों से सत्कार पाने योग्य हो॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो शस्त्र और अस्त्रों के प्रयोगों का करने धनुर्वेदादिशास्त्रों का जानने और प्रशंसायुक्त सेना वाला हो और जिस की

पुण्यरूपी कीर्त्ति वर्त्तमान है वही शत्रुओं के मारने और प्रजा जनों के पालने में समर्थ होता है ॥२॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तव॒ प्रणी॑तीन्द्र॒ जोहु॑वाना॒न्त्सं यन्नॄन्न रोद॑सी नि॒नेथ॑ ।
म॒हे क्ष॒त्राय॒ शव॑से॒ हि ज॒ज्ञेऽतू॑तुजिं चि॒त्तूतु॑जिरशिश्नत् ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त (हि) जिस कारण आप (महे) महान् (क्षत्राय) राज्य धन और (शवसे) बल के लिये (जज्ञे) उत्पन्न होते (तूतुजिः) बलवान् होते हुए हिंसक लोगों को (चित्) भी आप (अशिश्नत्) मारते और (यत्) जो (जोहुवानान्) निरन्तर बुलाये हुए (नॄन्) जन और (अतूतुजिम्) निरन्तर न हिंसा करने वाले को (रोदसी) आकाश और पृथिवी के (न) समान आप (सं, निनेथ) अच्छे प्रकार पहुंचाते हो उन (तव) आप की (प्रणीती) उत्तम नीति के साथ हम लोग राज्य पालें ॥३॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो राजपुरुष सूर्य और पृथिवी के समान समस्त प्रजाजनों को धारण कर धर्म को पहुंचावें वे नीति जानने वाले समझने चाहियें ॥३॥

फिर मनुष्यों को कैसे वर्त्तना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ए॒भिर्न॑ इन्द्राह॑भिर्दशस्य दु॒र्मि॒त्रासो॒ हि क्षि॒तयः॒ पव॑न्ते ।
प्रति॒ यच्चष्टे॒ अनृ॑तमने॒ना अव॑ द्वि॒ता वरु॑णो मा॒यी नः॑ सात् ॥४॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) दोषों के विदीर्ण करने वाले जो (अनृतम्) झूठ कहते हैं वे (दुर्मित्रासः) दुष्ट मित्र हैं और जो (हि) निश्चित (क्षितयः) मनुष्य सत्य कहते हैं वे (एभिः) इन वर्त्तमान (अहभिः) दिवसों के साथ (पवन्ते) पवित्र होते हैं इनके साथ आप (नः) हम लोगों को (दशस्य) दीजिये और (अनेनाः) निष्पाप आप (यत्) जिसके (प्रति) प्रति (चष्टे) कहते हैं (द्विता) तथा दो का होना (वरुणः) जो स्वीकार करने योग्य वह और (मायी) उत्तम बुद्धिमान् होता हुआ जन (नः) हम लोगों को सत्य का (अवसात्) निश्चय कर देवे ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो यहां झूठ कहते हैं वे अधर्मात्मा पुरुष हैं और जो सत्य कहते हैं वे धर्मात्मा हैं ऐसा निश्चय करो ॥४॥

फिर विद्वान् जन क्या उपदेश करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यः) जो (अर्चतः) सत्कार करते हुए (नः) हम लोगों के (महः) महान् (राधसः) समृद्ध (रायः) धन सम्बन्ध के (अविष्ठः) प्राप्त होने वाला (ब्रह्मकृतिम्) जिसके धन की क्रिया है (एनम्) इस (मघवानम्) परमैश्वर्यवान् (इन्द्रम्) दुष्ट शत्रुओं के विदीर्ण करने वाले को (यत्) जो (ददत्) देवें (इत्) उसी को हम लोग (वोचेम) कहें (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हमारी (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥५॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जैसे हम लोग राजा आदि मनुष्यों के प्रति सत्य का सर्वदा उपदेश करें वैसे तुम भी उपदेश करो, ऐसे परस्पर की रक्षा कर उन्नति विधान करनी चाहिये ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान्, राजगुणों और कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में अट्ठाईसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्यैकोनत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ स्वराट्पङ्क्तिः । ३ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ विराट्त्रिष्टुप् । ४ । ५ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले उनतीसवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में किसको कौन बनाना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः ।
पिबा त्व१स्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः ॥१॥

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुधन और (हरिवः) प्रशस्त मनुष्य युक्त (इन्द्र) दारिद्र्य विनाशने वाले जो (अयम्) यह (सोमः) ओषधियों का रस है जिसको मैं (तु) तो (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (प्रसुन्वे) खींचता हूं उसको तुम (पिब) पीओ (तदोकाः) वह श्रेष्ठ गृह जिसका है ऐसे होते हुए (आयाहि) आओ (अस्य) इस (सुषुतस्य) सुन्दर निर्माण किये और (चारोः) सुन्दर जन के (मघानि) धनों को (इयानः) प्राप्त होते हुए हमारे लिये (ददः) देओ ॥१॥

भावार्थः— जो मनुष्य वैद्यकशास्त्र की रीति से उत्पन्न किये हुए सर्व-रोग हरने और बुद्धि बल के देने वाले, बड़ी-बड़ी ओषधियों के रस को पीते हैं वे सुख और ऐश्वर्य पाते हैं ॥१॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ब्रह्म॑न्वीर॒ ब्रह्म॑कृतिं जुषा॒णो॑ऽर्वाची॒नो हरि॑भिर्याहि॒ तूय॑म् ।

अ॒स्मिन्नू॒ षु सव॑ने मादय॒स्वोप॒ ब्रह्मा॑णि शृणव इ॒मा नः॑ ॥२॥

पदार्थः— हे (ब्रह्मन्) चार वेदों के जानने वाले (वीर) समस्त शुभगुणों में व्याप्त (ब्रह्मकृतिम्) परमेश्वर की कृति जो संसार इसको (जुषाणः) सेवते हुए (अर्वाचीनः) वर्त्तमान समय में प्रसिद्ध हुए आप (हरिभिः) अच्छे गुणों के आकर्षण करने वाले मनुष्यों के साथ (तूयम्) शीघ्र (याहि) जाओ (अस्मिन्) इस (सवने) सवन में अर्थात् जिस कर्म से पदार्थों को सिद्ध करते हैं उसमें हम लोगों को (मादयस्व) आनन्दित कीजिये (नः) हमारे (इमा) इन (ब्रह्माणि) पढ़े हुए वेदवचनों को (सु, उ, उप, शृणवः) उत्तम प्रकार तर्क वितर्क से समीप में सुनिये ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वन्! आप सृष्टि के क्रम को जान कर हमको जतलाओ, इसमें पढ़ाना पढ़ना काम और पढ़े हुए की परीक्षा करो और विद्यादान से शीघ्र प्रमोद देओ ॥२॥

कौन पढ़ाने और पढ़ने वाले प्रशंसा करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

का ते॑ अ॒स्त्यरं॑कृतिः सू॒क्तैः क॒दा नू॒नं ते॑ मघव॒न्दाशे॑म ।

विश्वा॑ म॒तीरा त॑तने त्वा॒याधा॑ म इन्द्र शृणवो ह॒वेमा ॥३॥

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुधनयुक्त (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्य्य सम्पन्न (का) कौन (ते) आपका (अरङ्कृतिः) अलंकार (अस्ति) है (सूक्तैः) और अच्छे प्रकार कहा है अर्थ जिनका उन वेद-वचनों से (ते) आपको (नूनम्) निश्चित (विश्वाः) सब (मतीः) बुद्धियों को हम लोग (कदा) कब (दाशेम) देवें (त्वाया) आपकी बुद्धि से मैं (आ ततने) विस्तार करूं (अध) इसके अनन्तर आप (मे) मेरे (इमा) इन (हवा) सुने वाक्यों को (शृणवः) सुनो ॥ ३॥

भावार्थः—वे अध्यापक श्रेष्ठ होते हैं जो इन अपने विद्यार्थियों को कब विद्वान् करें ऐसी इच्छा करते हैं और सब के लिये सत्य उत्तम ज्ञानों को देते हैं और वे ही विद्यार्थी श्रेष्ठ हैं जो उत्साह से अपने पढ़े हुए की

उत्तम परीक्षा देते हैं तथा वे ही परीक्षा करने वाले श्रेष्ठ हैं जो परीक्षा में किसी का पक्षपात नहीं करते हैं ॥३॥

कौन पढ़ाने वाले अतिश्रेष्ठ हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उतो घा ते पुरुष्या३ इदासन्येषां पूर्वेषामशृणोर्ऋषीणाम् ।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव ॥४॥

पदार्थः—हे (मघवन्) विद्या ऐश्वर्य्य से सम्पन्न (इन्द्र) विद्या ऐश्वर्य देने वाले विद्वान् जो आप (येषाम्) जिन (पूर्वेषाम्) पहिले जिन्होंने विद्या पढ़ी उन (ऋषीणाम्) ऋषिजनों से वेदों को (अशृणोः) सुनो (उतो) और जो (पुरुष्याः) पुरुषों में सत्पुरुष (घ) ही (आसन्) होते हैं (ते) वे (नः) हमारे अध्यापक हों जिससे (त्वम्) आप हमारे (पितेव) पिता के समान (प्रमतिः) उत्तम बुद्धि वाले (असि) हैं इससे (अध) इसके अनन्तर (अहम्) मैं (त्वा) आपकी (इत्) ही (जोहवीमि) निरन्तर प्रशंसा करूं ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो विद्वान् पितृजन पुत्रों के समान विद्यार्थियों की पालना करते हैं वे ही सत्कार करने और प्रशंसा करने योग्य होते हैं ॥४॥

फिर कौन यहां संसार में सब की रक्षा करने वाले होते हैं
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो (यूयम्) विद्यावृद्ध तुम (स्वस्तिभिः) उत्तम शिक्षाओं से (नः) हम लोगों की (सदा) सदा (पात) रक्षा करो । हे परीक्षा करने वाले (यः) जो (अविष्ठः) अतीव रक्षा करने वाला (ब्रह्मकृतिम्) वेदोक्त सत्य क्रिया को (नः) हम लोगों के लिये (ददत्) देवे वा (यत्) जिसको (अर्चतः) सत्कार किये हुए जन का (महः) महान् (राधसः) शरीर और आत्मा के बल का बढ़ाने वाला (रायः) विद्यारूपी धन का उत्तम प्रकार से देने वाले (एनम्) इस (मघवानम्) प्रशस्त विद्या धनयुक्त (इन्द्रम्, इत्) अविद्यान्धकार विदीर्ण करने वाले अध्यापक की हम लोग (वोचेम) प्रशंसा करें उसकी तुम भी प्रशंसा करो ॥५॥

भावार्थः—जो जन नाश न होने वाले सर्वत्र सत्कार के हेतु विद्याधन के देने वाले हैं वे ही सबके यथावत् पालने वाले हैं ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, सोमपान, अध्यापक, अध्येता, परीक्षक और विद्या देने वालों के गुण और कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में उनतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ विराट् त्रिष्टुप् । २ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ३ निचृत्पङ्क्तिः । ४ । ५ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ।

अब पांच ऋचा वाले तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है उसके प्रथम मन्त्र में कौन राजा प्रशंसा करने योग्य होता है इस विषय को कहते हैं ॥

आ नो॑ देव॒ शव॑सा याहि शुष्मि॒न्भवा॑ वृ॒ध इ॑न्द्र रा॒यो अ॒स्य ।
म॒हे नृ॒म्णाय॑ नृपते सुवज्र॒ महि॑ क्ष॒त्राय॒ पौंस्या॑य शूर ॥१॥

पदार्थः - हे (शूर) निर्भय (सुवज्र) उत्तम शस्त्र और अस्त्रों के चलाने में कुशल (नृपते) मनुष्यों की पालना करने वाले (शुष्मिन्) प्रशंसित बलयुक्त (देव) विद्या गुण संपन्न (इन्द्र) परम ऐश्वर्यवान् राजन् आप (शवसा) उत्तम बल से (नः) हम लोगों को (आयाहि) प्राप्त होओ (अस्य) इस (रायः) धन वा राज्य की (वृधः) वृद्धिसंबन्धी (भव) हूजिये और (महे) महान् (नृम्णाय) धन के तथा (महि) महान् (क्षत्राय) राज्य के और (पौंस्याय) पुरुष विषयक बल के लिये प्रयत्न करो ॥१॥

भावार्थः—वही राजा श्रेष्ठ होता है जो राज्य की रक्षा में निरन्तर उत्तम यत्न करे और धनविद्या की वृद्धि से प्रजा को अच्छे प्रकार पुष्टि देकर सुखी करे ॥१॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

हव॑न्त उ त्वा॒ हव्यं॒ विवा॑चि त॒नूषु॒ शूराः॒ सूर्य॑स्य सा॒तौ ।
त्वं विश्वे॑षु॒ सेन्यो॒ जने॑षु॒ त्वं वृ॒त्राणि॑ रन्धया सु॒हन्तु॑ ॥२॥

पदार्थः—हे परमैश्वर्ययुक्त जो (त्वम्) आप (विश्वेषु) सब (जनेषु) मनुष्यों में (सेन्यः) सेना में उत्तम होते हुए (वृत्राणि) शत्रु सैन्य जन आदि को (रन्धय) मारो (त्वम्) आप जैसे वीर होता हुआ जन शत्रुओं को अच्छे प्रकार हने वैसे उनको आप (सुहन्तु) मारो (सूर्यस्य) सवितृमण्डल की किरणों के समान राज्य के बीच और (तनूषु) फैला है बल जिनमें उन शरीरों में प्रकाशमान (शूराः) शत्रुओं के मारने

वाले जन जिन (हव्यम्) बुलाने योग्य (त्वा) आपको (सातौ) संविभाग में अर्थात् बांट चूंट में वा (विवाचि, उ) विरुद्ध वाणी जिसमें होती है उस संग्राम में (हवन्ते) बुलावें उनको आप बुलावें ॥२॥

भावार्थः—वही राजा सर्वप्रिय होता है जो न्याय से प्रजा की अच्छी पालना कर संग्राम जीतता है ॥२॥

फिर वह राजा कैसा होता हुआ क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत्केतुमुपमं समत्सु ।
न्य१ग्निः सीददसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥३॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सूर्य के समान वर्त्तमान (अत्र) इन (समत्सु) संग्रामों में (यत्) जिन (देवान्) विद्वानों को (सुभगाय) सुन्दर ऐश्वर्य्य के लिये (असुरः) जो प्राणों में रमता है उस (होता) होम करने वाले के (न) समान शत्रुओं को युद्ध की आग में (हुवानः) होमते अर्थात् उनको स्पर्द्धा से चाहते हुए (अग्निः) अग्नि के समान आप (नि, सीदत्) निरन्तर स्थिर होते हो और (यत्) जिस (उपमम्) उपमा दिलाने वाली (केतुम्) बुद्धि के विषय को (अहा) साधारण दिन वा (सुदिना) सुख करने वाले दिनों दिन (व्युच्छान्) विविध प्रकार से वसाये हुए विद्वानों को संग्रामों में (दधः) धारण करो सो आप जीत सकते हो ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं—वही राजा जीतता है जो उत्तम शूरवीर विद्वानों को अपनी सेना में सत्कार कर रक्खे जैसे होम करने वाली अग्नि में साकल्य होमता है वैसे शस्त्र और अस्त्रों की अग्नि में शत्रुओं को होमे ॥३॥

फिर किसकी उत्तम जीत और प्रशंसा होती है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वयं ते त इन्द्र ये च देव स्तवन्त शूर ददतो मघानि ।
यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्नवन्त ॥४॥

पदार्थः—हे (शूर) शत्रुओं के मारने और (इन्द्र) परम ऐश्वर्य देने वाले (देव) विद्वान् जन (ये) जो (सूरिभ्यः) विद्वानों के लिये (मघानि) धनों को (ददतः) देते हुए (ते) आपके (उपमम्) जिससे उपमा दी जाती उस कर्म की (स्तवन्त) प्रशंसा करते हैं (च) और जो (स्वाभुवः) अच्छे प्रकार सब ओर से उत्तम होते हैं वे जन (वरूथम्) घर और (जरणाम्) जरावस्था को (अश्नवन्त) प्राप्त होते हैं (ते) वे (वयम्) हम लोग आपकी प्रशंसा करें आप हम लोगों के लिये धनों को (यच्छ) देओ ॥४॥

भावार्थः—जो राजा अच्छी परीक्षा कर विद्वानों के लिये धन आदि दे और सत्कार कर इन विद्या अवस्था वृद्ध धार्मिक जनों को सेना आदि के अधिकारों में नियुक्त करता है उसकी सर्वदा जीत और प्रशंसा होती है ॥४॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (अविष्ठः) अतीव रक्षा करने वाला (अर्चतः) सत्कार करते हुए (नः) हम लोगों को प्राप्त होकर (ब्रह्मकृतिम्) परमेश्वर ने उपदेश की हुई प्रिय वाणी (ददत्) देता है (यत्) जिस (एनम्) इस (मघवानम्) बहुत धन और ऐश्वर्य से युक्त तथा (महः) महान् (राधसः) उत्तम समृद्धि करने वाले (रायः) धन की वृद्धि करने और (इन्द्रम्) भय विदीर्ण करने वाले विषय को (वोचेम) सत्य कहें (इत्) उसी को तुम भी सत्य उपदेश करो । हे राजा आदि जनो (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सर्वसुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥५॥

भावार्थः—यदि सब मनुष्य सत्य के उपदेश करने वाले हों तो राजा कभी ज्ञानहीन न हो, जब राजा धर्मिष्ठ हो तब सब मनुष्य धर्मात्मा हों ऐसे परस्पर की रक्षा से सदैव सुख तुम लोग पाओ ॥५॥

इस सूक्त में इन्द्र, राजा, प्रजा, भृत्य और उपदेशक के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्यैकत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ विराड्गायत्री । २ । ८ गायत्री । ६ । ७ । ९ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ३ । ४ । ५ आर्च्युष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । १० । ११ भुरिगनुष्टुप् । १२ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब बारह ऋचावाले इकतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मित्रों को मित्र के लिये क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने ॥१॥

पदार्थः—हे (सखायः) मित्रो (वः) तुम्हारे (हर्यश्वाय) मनुष्य वा हरणशील घोड़े जिसके विद्यमान हैं उस (सोमपाव्ने) सोम पीने वाले (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् के लिये (मादनम्) आनन्द तुम (प्र, गायत) अच्छे प्रकार गाओ ॥१॥

भावार्थः—जो मित्रजन अपने मित्रजनों को आनन्द उत्पन्न करते हैं वे मित्र होते हैं ॥१॥

फिर विद्वान्जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः। चकृमा सत्यराधसे ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वान् (यथा) जैसे (नरः) मनुष्य हम लोग (सुदानवे) उत्तम दान के लिये वा (सत्यराधसे) सत्य जिसका धन है उसके लिये (द्युक्षम्) मनोहर (उक्थम्) प्रशंसनीय काम (चकृम) करें वैसे आप (इत्) ही (शंसे) प्रशंसा करें (उत) ही ॥२॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमालंकार है—हे विद्वानो ! जिसका धर्म से उत्पन्न हुआ धन है और सुपात्रों के लिये दान वर्त्तमान है उसी को उत्तम जानो ॥२॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं न वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो। त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥३॥

पदार्थः—हे (शतक्रतो) असंख्य प्रज्ञावान् (वसो) वसाने वाले (इन्द्र) परम ऐश्वर्ययुक्त (वाजयुः) प्रशसित अन्न वा धन अपने को चाहने वाले (त्वम्) आप (गव्युः) पृथिवी वा उत्तम वाणी की कामना करने वाले (त्वम्) आप (हिरण्ययुः) सुवर्ण की कामना करने वाले (त्वम्) आप (नः) हमारी रक्षा करने और पढ़ाने वाले हूजिये ॥३॥

भावार्थः—सब मनुष्यों को यही इच्छा करनी चाहिये जो धर्मात्मा आप्त विद्वान् राजा अध्यापक वा परीक्षा करने वाला है सो निरन्तर उन्नति करने हारा हो ॥३॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन्।
विद्धि त्व१स्य नो वसो ॥४॥

पदार्थः—हे (वसो) वसाने (वृषन्) बल रखने और बल के देने वाले (इन्द्र) विद्या और ऐश्वर्ययुक्त राजा वा अध्यापक (त्वायवः) आपकी कामना करने वाले

(वयम्) हम लोग आपको (अभि, प्र, णोनुमः) सब ओर से अच्छे प्रकार निरन्तर प्रणाम करें आप (नः) हमको (तु) तो (अस्य) इस राज्य के रक्षा करने वाले (विद्धि) जानो ॥४॥

भावार्थः—जैसे धार्मिक प्रजाजन धार्मिक राजा की कामना करते और उसको नमते हैं वैसे ही राजा इस धार्मिकी प्रजा की कामना करे और निरन्तर नमें ॥४॥

फिर राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे । त्वे अपि क्रतुर्मम ॥५॥

पदार्थः—हे राजा (अर्यः) स्वामी होते हुए जो (मम, त्वे) मेरी तुम्हारे बीच (क्रतुः) उत्तम बुद्धि है उसको (मा) मत (रन्धीः) नष्ट करो (अपि) किन्तु (नः) हमारे (वक्तवे) कहने योग्य (अराव्णे) न देने वाले के लिये और (निदे) निन्दक के लिये (च) भी निरन्तर दण्ड देओ ॥५॥

भावार्थः—राजा सदैव विद्या, धर्म और सुशीलता बढ़वाकर निन्दक, दुष्ट मनुष्यों को निवार के प्रजा को निरन्तर प्रसन्न करे ॥५॥

फिर वह कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥६॥

पदार्थः हे (वृत्रहन्) दुष्टों के हनने वाले राजा जो (त्वम्) आप (योधः) युद्ध करने वाले (सप्रथः) प्रख्याति प्रशंसा के सहित (वर्म, च) और कवच के समान (असि) हैं जिस (युजा) न्याय से युक्त होने वाले (त्वया) आपके साथ मैं (प्रति, ब्रुवे) प्रत्यक्ष उपदेश करता हूं सो आप (पुरः) आगे रक्षा करने वाले हूजिये ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो राजा सत्कीर्ति, सुशील, निरभिमान, विद्वान् हो तो उसके प्रति सब सत्य बोलें और वह सुनकर प्रसन्न हो ॥६॥

फिर उसकी विद्या और विनय क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

महाँ उतासि यस्य तेऽनु स्वधावरी सहः । मम्नाते इन्द्र रोदसी ॥७॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) राजा जैसे (महान्) बड़ा सूर्य है वैसे (यस्य) जिसके सकाश से (स्वधावरी) बहुत अन्न की देने वाली (रोदसी) आकाश और पृथिवी (अनु, मम्नाते) अनुकूलता से अभ्यास करते हैं उन (ते) आपके वैसे ही सेना और राज्य हों (उत) और जिससे आप महान् (असि) हैं इससे (सहः) बल को ग्रहण कर निर्बलों को पालो ॥७॥

भावार्थः - इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जिस राजा की प्रजा और सेना धार्मिक और सुरक्षित हों उसका सूर्य के समान प्रताप होता है ॥७॥

कौन प्रशंसा करने योग्य हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तं त्वा मरुत्वती परि भुवद्वाणी सयावरी ।

नक्षमाणा सह द्युभिः ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वान् जिन (त्वा) आपको (मरुत्वती) जिसमें प्रशंसायुक्त मनुष्य विद्यमान (सयावरी) जो साथ जाती (नक्षमाणा) और सब विद्याओं में व्याप्त होती हुई (वाणी) वाणी (द्युभिः) विज्ञानादि प्रकाशों के (सह) साथ (परिभुवत्) सब ओर से प्रसिद्ध हो (तम्) उन आपको हम लोग सब ओर से भूषित करें ॥८॥

भावार्थः—जिस विद्वान् राजा वा उपदेशक विद्वान् की सकलविद्यायुक्त वाणी उत्तम और कार्य करने वाले उपदेश के योग्य हो वही सब प्रशंसा को योग्य होता है ॥८॥

फिर किस मनुष्य को सब नमते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऊर्ध्वासस्त्वान्विन्दवो भुवन्दस्ममुप द्यवि । सन्ते नमन्त कृष्टयः ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वान् जो (ऊर्ध्वासः) उत्कृष्ट (इन्दवः) ऐश्वर्ययुक्त आनन्दित (अनु, भुवन्) अनुकूल होते हैं (ते) वे (कृष्टयः) मनुष्य (उपद्यवि) समीपस्थ प्रकाशित वा अप्रकाशित विषय में (दस्मम्) शत्रुओं का उपक्षय विनाश करने वाले (त्वा) आपको (सन्नमन्त) अच्छे प्रकार नमते हैं ॥९॥

भावार्थः—जिस राजा के समीप में भद्र, धार्मिक जन हैं उसकी नम्रता से सब प्रजा नम्र होती है ॥९॥

फिर राजप्रजाजन परस्पर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र वो महे महिवृधे भरध्वं प्रचेतसे प्र सुमतिं कृणुध्वम् ।

विशः पूर्वीः प्र चरा चर्षणिप्राः ॥१०॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जैसे हम लोग (वः) तुम्हारे लिये उत्तम पदार्थों को दें वैसे तुम हम लोगों के (महे) महान् व्यवहार के लिए (महिवृधे) तथा बड़ों के बढ़ने और (प्रचेतसे) उत्तम प्रज्ञा रखने वाले के लिए (सुमतिम्) सुन्दर मति को (प्र, भरध्वम्) उत्तमता से धारण करो, हम लोगों को (पूर्वीः) प्राचीन पिता पितामहादिकों से प्राप्त (विशः) प्रजाजनों को (प्र, कृणुध्वम्) विद्वान् अच्छे प्रकार करो

(चर्षणिप्राः) जो मनुष्यों को व्याप्त होता वह राजा आप न्याय में (प्र, चर) प्रचार करो ॥१०॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन तुम लोगों के लिये शुभगुण और पुष्कल ऐश्वर्य विधान करते हैं वैसे तुम इनके लिये श्रेष्ठ नीति धारण करो ॥१०॥

फिर वे विद्वान् जन क्या उत्पन्न करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उरुव्यचसे महिने सुवृक्तिमिन्द्राय ब्रह्म जनयन्त विप्राः ।
तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः ॥११॥

पदार्थः—हे (धीराः) ध्यानवान् (विप्राः) विद्वानो आप लोग (उरुव्यचसे) बहुत विद्याओं में व्यापक (महिने) सत्कार करने योग्य (इन्द्राय) परमैश्वर्यवान् के लिये (सुवृक्तिम्) उत्तमता से अन्याय को वर्जते हैं जिससे उसको और (ब्रह्म) धन वा अन्न को (जनयन्त) उत्पन्न करते हैं (तस्य) उनके (व्रतानि) सत्य भाषण आदि कर्म कोई (न) नहीं (मिनन्ति) नष्ट करते हैं ॥११॥

भावार्थः—जो राजा के लिये बहुत धन उत्पन्न करते और असत्य आचरण को निवृत्त कर सत्य आचरण प्रसिद्ध करते हैं वे पूज्य होते हैं ॥११॥

फिर कैसे मनुष्य को सत्य वाणी सेवती है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्रं वाणीरनुत्तमन्युमेव सत्रा राजानं दधिरे सहध्यै ।
हर्यश्वाय बर्हया समापीन् ॥१२॥

पदार्थः—हे विद्वान् जो (वाणीः) सकल विद्यायुक्त वाणी (सत्रा) सत्य से (अनुत्तमन्युम्) जिसका प्रेरणा नहीं किया गया क्रोध उस (राजानम्) प्रकाशमान (इन्द्रम्) अविद्या विदीर्ण करने वाले विद्वान् को (सहध्यै) सहने को (दधिरे) धारण करते तथा (आपीन्) जो व्याप्त होते हैं उनको (सम्) अच्छे प्रकार धारण करते हैं (एव) उसी (हर्यश्वाय) प्रशंसित मनुष्य और घोड़ों वाले के लिये सब विद्याओं को (बर्हय) बढ़ाओ ॥१२॥

भावार्थः—जिस न उत्पन्न हुए क्रोध वाले, जितेन्द्रिय राजा को सकल शास्त्रयुक्त वाणी व्याप्त होती है वही सत्य न्याय से प्रजा पालने योग्य होता है ॥१२॥

इस सूक्त में इन्द्र, विद्वान् और राजा के काम का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ सङ्गति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में इकतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तविंशत्यृचस्य द्वात्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य । १–२५, २६[२] २७ वसिष्ठः । २६[१] वसिष्ठः शक्तिर्वा ऋषिः । इन्द्रो देवता । १ । ४ । २४ विराड् बृहती । ६ । ८ । १२ । १६ । १८ । २६ निचृद्बृहती । ११ । २७ बृहती । १७ । २५ । भुरिग्बृहती । २१ । स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । २ । ६ पङ्क्तिः । ५ । १३ । १५ । १९ । २३ निचृत्पङ्क्तिः । ३ साम्नीपङ्क्तिः । ७ विराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । १० । १४ भुरिगनुष्टुप् । २० । २२ स्वराडनुष्टुप्छन्दः । गान्धारः स्वरः ॥

अब सत्ताईस ऋचावाले बत्तीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में कौन दूर और समीप में रक्षा करने योग्य होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

मो षु त्वा वाघतंश्चनारे अस्मन्नि रीरमन् ।
आरात्ताच्चित्सधमादं न आ गहीह वा सन्नुप श्रुधि ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् राजा (वाघतः) मेधावी जन आपके (आरे) दूर (चन) और (अस्मत्) हम से दूर (मो, सु, रीरमन्) मत रमें निरन्तर आपके समीप होते हुए (त्वा) आपको रमावें (आरात्तात्) दूर में (चित्) भी आप (नः) हमारे (सधमादम्) उस स्थान को कि जिसमें एक साथ आनन्द करते हैं (आ, गहि) आओ (इह, वा) यहां प्रसन्न (सन्) होते हुए हमारे वचनों को (नि, उपश्रुधि) समीप में सुनो ॥१॥

भावार्थः—जिन मनुष्यों के समीप बुद्धिमान्, धार्मिक, विद्वान्जन और दूर में दुष्ट जन हैं वे सदैव सुख पाते हैं ॥१॥

फिर किसके समीप कौन वसें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमे हि ते ब्रह्मकृतः सुते सचा मधौ न मक्ष आसते ।
इन्द्रे कामं जरितारो वसूयवो रथे न पादमा दधुः ॥२॥

पदार्थः—हे राजा (ते) आपके जो (इमे) यह (ब्रह्मकृतः) धन वा अन्न को सिद्ध करने (वसूयवः) धनों की कामना करने (जरितारः) और सत्य की स्तुति करने वाले जन (सुते) उत्पन्न किये हुए (मधौ) मधुरादिगुणयुक्त स्थान में (मक्षः) मक्खियों

के (न) समान (सचा) सम्बन्ध से (आसते) उपस्थित होते हैं (इन्द्रे) परमैश्वर्यवान् आप में (रथे) रमणीय यान में (पादम्) पैर जैसे धरें (न) वैसे (कामम्) कामना को (आ, वधुः) सब ओर से धारण करते हैं वे (हि) ही सुखी होते हैं ॥२॥

भावार्थः - इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो विद्वान् राजा धर्मात्मा न्यायकारी हो तो इसके समीप में बहुत धार्मिक विद्वान् हों ॥२॥

फिर किसको कौन किसके तुल्य उपासना करने योग्य हैं
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

रा॒यस्का॑मो॒ वज्र॑हस्तं सु॒दक्षि॑णं पु॒त्रो न पि॒तरं॑ हुवे ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (रायस्कामः) धनों की कामना करने वाला मैं (पुत्रः) पुत्र (पितरम्) पिता को जैसे (न) वैसे (वज्रहस्तम्) शस्त्र और अस्त्रों के पार जाने और (सुदक्षिणम्) शुभ दक्षिणा रखने वाले राजा को (हुवे) बुलाता हूं वैसे तुम भी बुलाओ ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो मनुष्य जैसे पुत्र पिता की उपासना करते हैं वैसे राजा की सेवा करते हैं वे समस्त ऐश्वर्य पाते हैं ॥३॥

फिर राजा आदि क्या आचरण करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इ॒म इन्द्रा॑य सुन्विरे॒ सोमा॑सो॒ दध्या॑शिरः ।
ताँ आ मदा॑य वज्रहस्त पी॒तये॑ हरि॑भ्यां या॒ह्योक॒ आ ॥४॥

पदार्थः—हे (वज्रहस्त) शस्त्र और अस्त्रों को हाथ में रखने वाले जो (इमे) यह (दध्याशिरः) धारण करने और व्याप्त होने वाले (सोमासः) प्रेरक जन (मदाय) आनन्द और (इन्द्राय) परमैश्वर्य के लिये तथा (पीतये) पीने को (सुन्विरे) अच्छे रसों को उत्पन्न करते हैं (तान्) उनको (हरिभ्याम्) अच्छी सीख पाये हुए घोड़ों से युक्त रथ से (आ, याहि) आओ (ओकः) शुभ स्थान को (आ) प्राप्त होओ ॥४॥

भावार्थः—जो पुरुषार्थ से विद्याओं को प्राप्त होकर उद्यम करते हैं वे राज्यश्री को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

श्रव॒च्छ्रुत्कर्ण॑ ईयते॒ वसू॑नां॒ नू चि॑न्नो मर्धिषद्गिरः॑ ।
स॒द्यश्चि॒द्यः स॒हस्रा॑णि श॒ता दद॒न्नकि॒र्दित्स॑न्तमा मि॑नत् ॥५॥

पदार्थः—(यः) जो (श्रुत्कर्णः) श्रुति में कान रखने वाला (सद्यः) शीघ्र (श्रवत्) सुने (नः) हमारे (वसूनाम्) धनों के सम्बन्ध में (गिरः) अच्छी शिक्षा की भरी हुई वाणियों को (चित्) भी (नु) शीघ्र (अधिवत्) चाहे (सहस्राणि) हजारों (शता) सैकड़ों पदार्थों को (ददत्) देता और (ईयते) पहुंचाता है (दित्सन्तम्) देना चाहते हुए को (नकिः) नहीं (आ, मिनत्) विनाशे (चित्) वही सर्वदा सुखी होता है ॥५॥

भावार्थः—जो दीर्घ ब्रह्मचर्य्य से सब विद्याओं को सुनते, अच्छी शिक्षायुक्त वाणियों को चाहते और औरों को अतुल विज्ञान देते हैं वे दुःख नहीं पाते हैं ॥५॥

फिर मनुष्य किनके साथ क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः ।

यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन्त्सुनोत्या च धावति ॥६॥

पदार्थः—हे (वृत्रहन्) शत्रुओं को मारने वाले (यः) जो (ते) आपका (अप्रतिष्कुतः) इधर उधर से निष्कंप (वीरः) निर्भय पुरुष (इन्द्रेण) परमैश्वर्य और (नृभिः) नायक मनुष्यों के साथ (शूशुवे) समीप आता है (गभीरा) गम्भीर (सवनानि) प्रेरणाओं को (सुनोति) उत्पन्न करता है (आ, धावति, च) शीघ्र दौड़ता है (सः) वही शत्रुओं को जीत सकता है ॥६॥

भावार्थः—जो उत्तम पुरुषों के साथ सब ओर से मित्रता और दुष्टों के साथ वैमनस्य रखते हैं वे अनगिनत ऐश्वर्य पाते हैं ॥६॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भवा वरूथं मघवन्मघोनां यत्समजासि शर्धतः ।

वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयम् ॥७॥

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुधनयुक्त राजा आप (यत्) जो (मघोनाम्) धनवानों का (वरूथम्) प्रशंसित घर है उसे (समजासि) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ (त्वाहतस्य) तुम्हारे द्वारा नष्ट किये हुए (शर्धतः) बलवान् के घर को प्राप्त (भव) होओ बलवान् के (गयम्) प्रजाजनों को (भर) धारण पोषण करो और (दूणाशः) दुर्लभ है नाश जिसका ऐसे होते हुए (वि) विशेषता से प्रसिद्ध हूजिये जिससे (वेदनम्) पदार्थों की प्राप्ति को हम लोग (आ, भजेमहि) अच्छे प्रकार सेवें ॥७॥

भावार्थः—हे राजा ! दुष्टों के मारने वाले आपकी प्रजा में जो नीति उसी के अनुकूल कर्म हम लोग करें जिससे हमारे अनुकूल आप होओ ॥७॥

फिर राजा को वैद्यों से क्या कराना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे।

पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः॥८॥

पदार्थः—हे वैद्यशास्त्रवेत्ता विद्वानो तुम (सोमपाव्ने) बड़ी-बड़ी ओषधियों के रस को पीने वाले के लिये (सोमम्) ऐश्वर्य्य को (सुनोता) उत्पन्न करो (वज्रिणे) शस्त्र और अस्त्रों को धारण करने और (इन्द्राय) दुष्ट शत्रुओं को विदीर्ण करने वाले के लिए ऐश्वर्य्य को उत्पन्न करो सब की (अवसे) रक्षा के लिये (पक्तीः) पाकों को (पचत) पकाओ (कृणुध्वम्, इत्) करो ही जैसे (पृणन्) पालना करता हुआ विद्वान् (मयः) सुख को (पृणते) पालता है वैसे (इत्) ही प्रजाजनों के लिये सुख पालो॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो वैद्य हों वे उत्तम ओषधि, प्रशंसायुक्त रोगनाशक रस और उत्तम अन्न पाकों की सब मनुष्यों के प्रति शिक्षा दें जिससे पूर्ण सुख हो॥८॥

फिर मनुष्य किसके तुल्य वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे।

तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे॥९॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे (देवासः) विद्वान् जन (कवत्नवे) कुत्सित कर्म में व्याप्ति के लिए (न) नहीं प्रवृत्त होते हैं वैसे (सोमिनः) ओषधि आदि युक्त वा ऐश्वर्यवान् के (आतुजे) बल करने वाले (महे) महान् (राये) धन के लिये (मा) मत (स्रेधत) विनाशो (दक्षत) बल पाओ (कृणुध्वम्) सुकर्म करो जो (तरणिः) पुरुषार्थी जन (इत्) ही (जयति) जीतता (क्षेति) जो निरन्तर वसता वा (पुष्यति) जो पुष्ट होता वे सब बल पावें॥९॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो अन्याय से किसी की हिंसा नहीं करते और धर्मात्माओं की वृद्धि करते हैं वे विद्वान् जन सर्वदा जीतते, धर्म में निवास करते और पुष्ट होते हैं॥९॥

फिर किसका किससे क्या हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत्।

इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत्स गोमति व्रजे॥१०॥

पदार्थः—(यस्य) जिसका (इन्द्रः) दुष्टों को विदीर्ण करने वाला (अविता)

रक्षक (गमत्) जाता है वा (यस्य) जिसके (मरुतः) प्राण के समान मनुष्य रक्षा करने वाले हैं जो (गोमति) जिसमें बहुत सी गौयें विद्यमान और (व्रजे) जिसमें जाते हैं उस स्थान में जाता है, जिसका दुष्टों का विदीर्ण करने वाला रक्षक नहीं वह (सुदासः) श्रेष्ठ सेवक वा दानों वाला जन (रथम्) रथ को (नकिः) नहीं (पर्यास) सब ओर से अलग करता और (सः) वह (न) नहीं (रीरमत्) दूसरों को रमाता है ॥१०॥

भावार्थः—यदि राजा प्रजा का रक्षक न हो तो किसी को सुख न हो ॥१०॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गम॒द्वाजं॑ वा॒जय॑न्निन्द्र॒ मर्त्यो॒ यस्य॒ त्वम॑वि॒ता भुवः॑ ।
अ॒स्माकं॑ बोध्यवि॒ता रथा॑नाम॒स्माकं॑ शूर नृ॒णाम् ॥११॥

पदार्थः—हे (शूर) निर्भय (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त राजा (यस्य) जिसके आप (अविता) रक्षक (भुवः) हों वह (मर्त्यः) मनुष्य (वाजयन्) पाने की इच्छा करता हुआ (वाजम्) विज्ञान वा अन्नादि को (गमत्) प्राप्त होता है जिन (अस्माकम्) हम लोगों के (रथानाम्) रथ आदि के तथा जिन (अस्माकम्) हम लोगों के (नृणाम्) मनुष्यों के भी (अविता) रक्षा करने वाले (त्वम्) आप (बोधि) समझें वे हम लोग विज्ञान वा अन्न आदि को प्राप्त हों ॥११॥

भावार्थः—जब राजा प्रजाओं की और प्रजाजन राजाओं की रक्षा करें तब सब की यथावत् रक्षा का संभव हो ॥११॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उ॒दिन्न्व॑स्य रिच्य॒तेंऽशो॒ धनं॒ न जि॒ग्युषः॑ ।
य इन्द्रो॒ हरि॑वा॒न्न द॑भन्ति॒ तं रिपो॒ दक्षं॑ दधाति सो॒मिनि॑ ॥१२॥

पदार्थः—(यः) जो (हरिवान्) बहुत प्रशंसित मनुष्य युक्त (इन्द्रः) समर्थ राजा (सोमिनि) ऐश्वर्यवान् में (दक्षम्) बल (दधाति) धारण करता है (तम्) उसको (रिपः) शत्रुजन (न) नहीं (दभन्ति) नष्ट करते हैं जिस (अस्य) इस (जिग्युषः) जयशील के (इत्) उसी के प्रति (अंशः) भाग (उद्रिच्यते) अधिक होता है उसको वह भाग (धनम्) धन के (न) समान (नु) शीघ्र धारण करता है ॥१२॥

भावार्थः—जो राजा धनियों में जो ऐश्वर्य है उसे दरिद्रों में भी बढ़ाता है उसको कोई नष्ट नहीं कर सकता है जिसका अधिक पुरुषार्थ होता है उसी को धन और प्रतिष्ठा प्राप्त होती है ॥१२॥

फिर प्रजा कैसे राजा के अनुकूल होती हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मन्त्रमखर्वं सुधितं सुपेशसं दधात यज्ञियेष्वा ।
पूर्वीश्चन प्रसितयस्तरन्ति तं य इन्द्रे कर्मणा भुवत् ॥१३॥

पदार्थः—जो (यज्ञियेषु) राजपालनादि कामों से संग रखते हुए व्यवहारों में (अखर्वम्) पूर्ण (सुधितम्) सुन्दरता से स्थापित (सुपेशसम्) सुरूप (मन्त्रम्) विचार को (दधात) धारण करें । (यः) जो (कर्मणा) उत्तम क्रिया से (इन्द्रे) राजा के निमित्त (भुवत्) प्रसिद्ध हो (तम्) उसको (पूर्वीः) प्राचीन (प्रसितयः) प्रकृष्ट प्रेमबंधन (चन) भी (आ, तरन्ति) प्राप्त होते हैं ॥१३॥

भावार्थः—जिन राजाओं का गूढ़ विचार सर्वहित करना और श्रेष्ठ यत्न होता है वे अच्छी क्रिया से सब प्रजाजनों को प्रमास्पद से प्रसन्न कर सकते हैं ॥१३॥

फिर मनुष्य किससे रक्षा पाया हुआ कैसा होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

कस्तमिन्द्र त्वावसुमा मर्त्यो दधर्षति ।
श्रद्धा इत्ते मघवन्पार्ये दिवि वाजी वाजं सिषासति ॥१४॥

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुत ऐश्वर्य वाले (इन्द्र) धार्मिक राजा (कः) कौन (मर्त्यः) मनुष्य (तम्) उस (त्वावसुम्) तुम से पाये हुए धन वाले का (दधर्षति) तिरस्कार करता है (ते) आपके (पार्ये) पालना करने योग्य वा पूर्ण (दिवि) प्रकाश में कौन (वाजी) विज्ञानवान् (वाजम्) विज्ञान को तथा (श्रद्धा) सत्य में प्रीति श्रद्धा (इत्) ही को (आ, सिषासति) अलग करना चाहता है ॥१४॥

भावार्थः—जिसकी रक्षा धार्मिक राजा करता है उसका तिरस्कार कौन कर सकता है ॥१४॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मघोनः स्म वृत्रहत्येषु चोदय ये ददति प्रिया वसु ।
तव प्रणीती हर्यश्व सूरिभिर्विश्वा तरेम दुरिता ॥१५॥

पदार्थः—हे (हर्यश्व) हरणशील महान् घोड़ों वाले मनुष्य (सूरिभिः) विद्वानों के साथ (ये) जो (तव) आपकी (प्रणीती) उत्तम नीति से (प्रिया) प्रिय मनोहर (वसु) धनों को (ददति) देते हैं उनको और जो आपकी उत्तम नीति और

विद्वानों के साथ हम लोग (विश्वा) सब (दुरिता) दुःखों को (तरेम) तरें उन्हें भी आप (वृत्रहत्येषु) शत्रुओं की हिंसा जिनमें होती है उनमें (मघोनः) धनाढ्य करने (स्म) ही को (चोदय) प्रेरणा देओ ॥१५॥

भावार्थः—हे राजा ! आप यदि पक्षपात को छोड़ के सबकी रक्षा करें और उदार धनाढ्यों को संग्राम में प्रेरणा दें तो सब हम लोग सब दुःखों को तरें ॥१५॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तवेदिन्द्रावमं वसु त्वं पुष्यसि मध्यमम् ।

सत्रा विश्वस्य परमस्य राजसि नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते ॥१६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) परमैश्वर्यवान् जो (तव) आपका (अवमम्) निकृष्ट वा रक्षा करने वाला और (मध्यमम्) मध्यम (वसु) धन है जिससे (त्वम्) आप (पुष्यसि) पुष्ट होते जिस (विश्वस्य) समग्र (परमस्य) उत्तम धन के बीच (सत्रा) सत्य आप (राजसि) प्रकाशित होते हैं उसमें और (गोषु) पृथिवियों में (त्वा) आपको कोई भी शत्रु जन (नकिः) न (इव) ही (वृण्वते) स्वीकार करते है ॥१६॥

भावार्थः—हे राजा ! आप सर्वत्र निकृष्ट, मध्यम और उत्तम धनों का न्याय से ही संचय करो, जिसका धर्म्म से उत्पन्न होने से सत्य धन वर्त्तमान है उसको कोई दुःख नहीं प्राप्त होता है ॥१६॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं विश्वस्य धनदा असि श्रुतो य ईं भवन्त्याजयः ।

तवायं विश्वः पुरुहूत पार्थिवोऽवस्युर्नाम भिक्षते ॥१७॥

पदार्थः—हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त स्वीकार किये हुए राजन् जो (श्रुतः) प्रसिद्ध कीर्तियुक्त (पार्थिवः) पृथिवी पर विदित (त्वम्) आप (विश्वस्य) समग्र राज्य के (धनदाः) धन देने वाले (असि) हैं जिन (तव) आपका (अयम्) यह (विश्वः) सर्व (अवस्युः) अपनी रक्षा चाहने वाला जन (नाम) प्रसिद्ध तुम से रक्षा को (भिक्षते) मांगता है (ये) जो (ईम्) सब ओर से (आजयः) संग्राम (भवन्ति) होते हैं उनमें सब तुम्हारे सहाय को चाहते हैं उनकी आप निरन्तर रक्षा करें ॥१७॥

भावार्थः—जो राजा संग्राम में विजय करने वालों को बहुत धन देता है उसका पराजय कभी नहीं होता है जो प्रजाजन रक्षा चाहे उसकी रक्षा जो निरन्तर करता है वही पुण्यकीर्ति होता है ॥१७॥

फिर राजपुरुषों को क्या चाहना योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

यदिन्द्र यावतस्त्वमेतावदहमीशीय।

स्तोतारमिद्दिधिषेय रदावसो न पापत्वाय रासीय॥१८॥

पदार्थः—हे (रदावसो) करोड़नों में वसने वाले (इन्द्र) परम ऐश्वर्य्य के देने वाले (यत्) जो (त्वम्) आप (यावतः) जितने के ईश्वर हो (एतावत्) इतने का मैं (ईशीय) ईश्वर होऊं समर्थ होऊं (स्तोतारम्) प्रशंसा करने वाले को (इत्) ही (दिधिषेय) धारण करूं और (पापत्वाय) पाप होने के लिये पदार्थ (न) न (अहम्) मैं (रासीय) देऊं॥१८॥

भावार्थः—हे राजा! यदि आप हम लोगों की निरन्तर रक्षा करें तो हम आपके राज्य की रक्षा कर पापाचरण त्याग औरों को भी अधर्माचरण से अलग रख कर निरन्तर आनन्द करें॥१८॥

फिर प्रजाजनों को क्या चाहने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

शिक्षेयमिन्महयते दिवेदिवे राय आ कुहचिद्विदे।

नहि त्वदन्यन्मघवन्न आप्यं वस्यो अस्ति पिता चन॥१९॥

पदार्थः—हे (मघवन्) पूजित धनयुक्त परमैश्वर्य्यवान् जो मैं (दिवेदिवे) प्रकाश प्रकाश के लिये (आ, कुहचिद्विदे) जो कहीं भी प्राप्त होता उस (महयते) महान् (राये) धन के लिये (शिक्षेयम्) अच्छी शिक्षा करूं (त्वत्) तुम से (अन्यत्) और रक्षक को न जानूं जो आप (पिता) पिता रक्षा करने वाले (चन) भी हैं इस कारण सो आप (इत्) ही (नः) हमारे (वस्यः) अत्यन्त वश (आप्यम्) प्राप्त होने के योग्य हैं और (नहि) नहीं (अस्ति) है॥१९॥

भावार्थः—वे ही भृत्य उत्तम हैं जो राजा वा स्वामी को छोड़ के दूसरे को [=से] नहीं जांचते [=मांगते], न विना दिये लेते, प्रतिदिन पुरुषार्थ से प्रजा की रक्षा और धनवृद्धि करना चाहते हैं॥१९॥

फिर राजा और प्रजाजन परस्पर कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

तरणिरित्सिषासति वाजं पुरंध्या युजा।

आ व इन्द्रं पुरुहूतं नमे गिरा नेमिं तष्टेव सुद्रुवम्॥२०॥

पदार्थः—जो (तरणिः) तारने वाला (इत्) ही राजा (युजा) योगयुक्त

(पुरन्ध्या) बहुत अर्थों को धारण करने वाली बुद्धि से (वाजम्) धन वा विज्ञान को (सिषासति) अच्छे प्रकार बांटने की इच्छा करता है उस (वः) तुम्हारे (पुरुहूतम्) बहुतों से स्तुति को पाये हुए (इन्द्रम्) परमैश्वर्य्यवान् को (सुद्रवम्) अच्छे प्रकार दौड़ने वाले (नेमिम्) पहिये को (तष्टेव) बढ़ई जैसे वैसे (गिरा) वाणी से (आ नमे) अच्छे प्रकार नमता हूं ॥२०॥

भावार्थः—जो राजा पूर्ण विद्या और विनय तथा धर्मयुक्त व्यवहार से सत्य और असत्य को अलग कर न्याय करता है उसको हम सब लोग नमते हैं जैसे बढ़ई रथादि को बनाता है वैसे हम लोग सब कामों को रचें ॥२०॥

फिर मनुष्य धन की प्राप्ति के लिये क्या क्या कर्म करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न दुंष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु न स्रेधन्तं रयिर्नशत् ।
सुशक्तिरिन्मघवन्तुभ्यं मावते देष्णं यत्पार्ये दिवि ॥२१॥

पदार्थः—हे (मघवन्) परमपूजित धनयुक्त जैसे (मर्त्यः) मनुष्य (दुष्टुतीः) दुष्ट प्रशंसा से (वसु) धन को (न) न (विन्दते) प्राप्त होता है (स्रेधन्तम्) और हिंसा करने वाले मनुष्य को (रयिः) लक्ष्मी और (सुशक्तिः) सुन्दर शक्ति (इत्) ही (न) नहीं (नशत्) प्राप्त होती है इस प्रकार (मावते) मेरे समान (तुभ्यम्) तुम्हारे लिये (पार्ये) पालना वा पूर्णता करने के योग्य (दिवि) काम में (यत्) जो (देष्णम्) देने योग्य को न प्राप्त होता वह और को भी नहीं प्राप्त होता है ॥२१॥

भावार्थः—जो अधर्माचरण से युक्त दुष्ट, हिंसक मनुष्य हैं उनको धन, राज्य, श्री और उत्तम सामर्थ्य नहीं प्राप्त होता है इससे सबको न्याय के आचरण से ही धन खोजना चाहिये ॥२१॥

फिर इस जगत् का स्वामी कौन है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि त्वा शूर नोनुमोऽदुग्धा इव धेनवः ।
ईशानमस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्र तस्थुषः ॥२२॥

पदार्थः—हे (शूर) पापाचरणों के हिंसक (इन्द्र) परमैश्वर्ययुक्त परमात्मा (अस्य) इस (जगतः) जंगम के (ईशानम्) चेष्टा कराने और (तस्थुषः) स्थावर संसार के (ईशानम्) निर्माण करने वाले (त्वा) आपको (स्वर्दृशम्) सुखपूर्वक देखने को (धेनवः) गौयें (अदुग्धा इव) दूधरहित हों जैसे वैसे हम लोग (अभि, नोनुमः) सब ओर से निरन्तर नमते प्रणाम करते हैं ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! यदि निरन्तर सुखेच्छा हो तो परमात्मा ही की आप लोग उपासना करें ॥२२॥

परमेश्वर के तुल्य वा अधिक कोई नहीं है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते ।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥२३॥

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुधनयुक्त (इन्द्र) परम ऐश्वर्य देने वाले जगदीश्वर जिससे कोई पदार्थ (न) न (त्वावान्) आपके सदृश (अन्यः) और (दिव्यः) शुद्धस्वरूप पदार्थ है (न) न (पार्थिवः) पृथिवी पर जाना हुआ है (न) न (जातः) उत्पन्न हुआ है (न) न (जनिष्यते) उत्पन्न होगा इससे (त्वा) आपकी (अश्वायन्तः) महान् विद्वानों की कामना करने वाले (वाजिनः) विज्ञान और अन्न वाले और (गव्यन्तः) अपने को उत्तम वाणी वा उत्तम भूमि की इच्छा करने वाले हम लोग (हवामहे) प्रशंसा करते हैं ॥२३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस कारण परमेश्वर से तुल्य अधिक अन्य पदार्थ कोई नहीं न उत्पन्न हुआ न कभी भी उत्पन्न होगा इस से हो उसकी उपासना और प्रशंसा हम लोग नित्य करें ॥२३॥

फिर वह परमेश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन्त्सनादसि भरेभरे च हव्यः ॥२४॥

पदार्थः—हे (मघवन्) सकलैश्वर्य और धनयुक्त (इन्द्र) साधारणतया ऐश्वर्ययुक्त (हि) जिससे आप (भरेभरे) पालना करने योग्य व्यवहार में (सनात्) सनातन (हव्यः) स्तुति करने योग्य (पुरूवसुः) बहुतों के बसाने वाले (असि) हैं इससे (सतः) विद्यमान (तत्) उस चेतन ब्रह्म (कनीयसः) अतीव कनिष्ठ के (ज्यायः) अत्यन्त ज्येष्ठ प्रशंसनीय ब्रह्म को पालनीय व्यवहार में (च) भी (आ, अभि, भर) सब ओर से धारण करो ॥२४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो परमात्मा अणु से अणु, सूक्ष्म से सूक्ष्म, बड़े से बड़ा सनातन सर्वाधार सर्वव्यापक सब को उपासना करने योग्य है उसी का आश्रय सब करें ॥२४॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥२५॥

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुधनयुक्त राजा (सुवेदाः) धर्म से उत्पन्न किये हुए ऐश्वर्ययुक्त आप (नः) हमारे (अमित्रान्) शत्रुओं को (परा, णुदस्व) प्रेरो हमारे लिये (वसु) धन को (कृधि) सिद्ध करो (महाधने) बड़े वा बहुत धन जिसमें प्राप्त होते हैं उस संग्राम में (अस्माकम्) हमारे (सखीनाम्) सर्व मित्रों के (अविता) रक्षा करने वाले (बोधि) जानिये और (वृधः) बढ़ने वाले (भव) हूजिये ॥२५॥

भावार्थः—हे राजा ! आप धार्मिक शूर जनों का सत्कार कर उनको शिक्षा देकर युद्धविद्या में कुशल कर डाकू आदि दुष्टों को निवृत्त कर सर्वोपकारी मनुष्यों के रक्षा करने वाले हूजिये ॥२५॥

परमेश्वर मनुष्यों को किसके तुल्य प्रार्थना करने योग्य है ।
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥२६॥

पदार्थः—हे (पुरुहूत) बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त (इन्द्र) परमैश्वर्य के देने वाले जगदीश्वर भगवन् (यथा) जैसे (पुत्रेभ्यः) पुत्रों के लिये (पिता) पिता वैसे (नः) हम लोगों के लिये (क्रतुम्) धर्मयुक्त बुद्धि को (आ, भर) अच्छे प्रकार धारण कीजिये (अस्मिन्) इस (यामनि) वर्त्तमान समय में (नः) हम लोगों को (शिक्ष) सिखलाओ जिससे (जीवाः) जीव हम लोग (ज्योतिः) विज्ञान को और आपको (अशीमहि) प्राप्त होवें ॥२६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे जगदीश्वर ! जैसे पिता हम लोगों को पुष्ट करता है वैसे आप पालना कीजिये जैसे आप्त विद्वान् जन विद्यार्थियों के लिये शिक्षा देकर सत्य बुद्धि का ग्रहण कराता है वैसे ही हमको सत्य विज्ञान ग्रहण कराओ जिससे हम लोग सृष्टिविद्या और आपको पाकर सर्वदैव आनन्दित हों ॥२६॥

मनुष्य समुद्रादिकों को किससे तरें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो३ माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२७॥

पदार्थः—हे (शूर) निर्भय (नः) हम लोगों को (अज्ञाताः) छिपे हुए (वृजनाः) जिनमें जाते हैं वा जिनसे जाते हैं वे (दुराध्यः) और दुःख से चिंतने योग्य (नः) हम लोगों को (मा, अव, क्रमुः) मत उल्लंघन करें (अशिवासः) दुःख देने वाले हम लोगों को (मा) मत उल्लंघन करें जिससे (त्वया) तुम्हारे साथ (वयम्) हम लोग (प्रवतः) नीचे देशों को तथा (शश्वतीः) अनादिभूत (अपः) जलों को (अति, तरामसि) अतीव उतरें ॥२७॥

भावार्थः—राजा और राजजन, सेना और सभाध्यक्ष ऐसी नावें रचें जिनसे समुद्रों को सुख से सब तरें उन समुद्रों में नौकाओं के चलाने वालों को मार्गविज्ञान यथार्थ हो ॥२७॥

इस सूक्त में इन्द्र, मेधावी, धन, विद्या की कामना करने वाले, रक्षक, राजा, ईश्वर, जीव, धनसंचय, फिर ईश्वर और नौकाओं के जाने वालों के गुण और कर्म का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में बत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्दशर्चस्य त्रयस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—१४ संस्तवो वसिष्ठस्य सपुत्रस्येन्द्रेण वा संवादः । १—९ वसिष्ठपुत्राः । १०—१४ वसिष्ठ ऋषिः त एव देवताः । १ । २ । ६ । १२ । १३ त्रिष्टुप् । ३ । ४ । ५ । ७ । ९ । १४ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ । ११ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १० भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब चौदह ऋचा वाले तेतीसवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में पढ़ाने और पढ़ने वाले क्या करें इस विषय का वर्णन करते हैं ॥

श्वित्यञ्चो॑ मा दक्षिण॒तस्क॑पर्दा धियंजि॒न्वासो॑ अ॒भि हि प्र॑म॒न्दुः ।
उ॒त्तिष्ठ॑न्वोचे॒ परि॑ ब॒र्हिषो॒ नॄन्न मे॑ दू॒राद॑वित॒वे वसि॑ष्ठाः ॥१॥

पदार्थः—जो (श्वित्यञ्चः) वृद्धि को प्राप्त होते (दक्षिणतस्कपर्दाः) दाहिनी ओर को जटाजूट रखने वाले (धियम्) बुद्धि को (जिन्वासः) प्राप्त हुए (वसिष्ठाः) अतीव विद्याओं में वसने वाले (हि) ही (मा) मुझे (प्र, मन्दुः) आनन्दित करते हैं (मे) मेरे (अवितवे) पालने को (दूरात्) दूर से आवें उन (बर्हिषः) विद्या धर्म बढ़ाने वाले (नॄन्) नायक मनुष्यों को (उत्तिष्ठन्) उठता हुआ अर्थात् उद्यम के लिए प्रवृत्त हुआ (परि, वोचे) सब ओर से कहता हूं ॥१॥

भावार्थः इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जो विद्याओं में प्रवीण, मनुष्यों की सत्य आचार में बुद्धि बढ़ाने वाले, पढ़ाने पढ़ने और उपदेश करने वाले हों उनको विद्या और धर्म के प्रचार के लिए निरन्तर शिक्षा, उत्साह और सत्कारयुक्त करें ॥१॥

फिर वह राजा कैसे विद्वानों को स्वीकार करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।
पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्सुतादिन्द्रो अवृणीता वसिष्ठान् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (सुतेन) उत्पन्न हुए पदार्थ वा पुत्र से (वैशन्तम्) प्रवेश होते हुए जन के संबन्धी (पान्तम्) पालना करते हुए (उग्रम्) तेजस्वी (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् को (दूरात्) दूर से (अनयन्) पहुंचाते और दारिद्र्य को (तिरः) तिरस्कार करते हैं उनसे (पाशद्युम्नस्य) जिसने धन यश पाया है उस (वायतस्य) विज्ञानवान् के (सुतात्) धर्म से उत्पन्न किये (सोमात्) ऐश्वर्य से (इन्द्रः) परमैश्वर्य राजा (वसिष्ठान्) अतीव विद्याओं में किया निवास जिन्होंने उन को (अति, आ, अवृणीत) अत्यन्त स्वीकार करें ॥२॥

भावार्थः—हे राजा आदि जनो ! जो दूर से अपने देश को ऐश्वर्य पहुंचाते और दारिद्र्य का विनाश कर लक्ष्मी को उत्पन्न करते हैं उन उत्तम जनों की निरन्तर रक्षा कीजिये ॥२॥

फिर मनुष्य क्या-क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान ।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥३॥

पदार्थः—(वसिष्ठाः) अत्यन्त ब्रह्मचर्य के बीच जिन्होंने वास किया वह हे विद्वानो (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् यह जन (एभिः) उत्तम विद्वानों के साथ (कम्, एव, इत्) किसी (सिन्धुम्) नदी को भी (नु) शीघ्र (ततार) तरे (एभिः) इन उत्तम विद्वानों के साथ (कम्, एव, इत्) किसी को भी (नु) शीघ्र (जघान) मारे (दाशराज्ञे) जो सुख देता है उस राजाके लिए (कम्, एव, इत्) किसी (भेदम्) विदीर्ण करने योग्य को भी (ब्रह्मणा) धन से (नु) शीघ्र (प्रावत्) अच्छे प्रकार रक्खे और (सुदासम्) अच्छे देने वाले वा सेवक को तथा (वः) तुम लोगों को भी (नु) शीघ्र रक्खे ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य नौकादिकों से समुद्रादिकों को अच्छे प्रकार

शीघ्र तरें, वीरों से शत्रुओं को शीघ्र विनाशें, राजा और राज्य की भी रक्षा करें वे मान करने योग्य हों ॥३॥

फिर मनुष्य क्या करके क्या नहीं करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

जुष्टी॑ नरो॒ ब्रह्म॑णा वः पितृ॒णामक्ष॑मव्य॒यं न किला॑ रिषाथ।
यच्छक्व॑रीषु बृह॒ता र॒वेणेन्द्रे॒ शुष्म॒मद॑धाता वसिष्ठाः ॥४॥

पदार्थः—हे (वसिष्ठाः) धन में अत्यन्त वास करते हुए (नरः) नायक मनुष्यो तुम (यत्) जिस (बृहता) महान् (रवेण) शब्द से (शक्वरीषु) शक्तियुक्त सेनाओं में और (इन्द्रे) परमैश्वर्य में (शुष्मम्) बल को (अदधात) धारण करते हो (जुष्टी) प्रीति वा सेवा से तथा (ब्रह्मणा) धन से (वः) आप के (पितृणाम्) जनक अर्थात् पिता आदि का जो (अव्ययम्) नाशरहित (अक्षम्) व्याप्त बल उसे (किल) निश्चय कर तुम (न, रिषाथ) नहीं नष्ट करते हो उससे सब की रक्षा करो ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य अपनी शक्ति को बढ़ा के दुष्टों को मार धन की वृद्धि से सब के अर्थ जो नष्ट नहीं उस सुख को प्रीति से बढ़ाते वे बड़ी कीर्ति को पाते हैं ॥४॥

फिर कौन मनुष्य सूर्य के तुल्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उद्या॑मि॒वेत्तृ॒ष्णजो॑ नाथि॒तासोऽदी॑धयुर्दाशरा॒ज्ञे वृ॒तासः॑।
वसि॑ष्ठस्य स्तुव॒त इन्द्रो॑ अश्रोदु॒रुं तृत्सु॑भ्यो अकृणोदु लो॒कम् ॥५॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (द्यामिव) सूर्य के समान (नाथितासः) मांगते हुए और (तृष्णजः) तृष्णा को प्राप्त (वृतासः) स्वीकार किये हुए (इत्) ही (दाशराज्ञे) देने वालों के राजा के लिये (उदधीधयुः) ऊपर को प्रकाशित करें जो (इन्द्रः) परमैश्वर्यवान् राजा (वसिष्ठस्य) अतीव विद्वान् की (स्तुवत) स्तुति करने वाले के लिये [=वाले की] (उरुम्) बहुत सुख करने वाले वाक्य को (अश्रोत्) सुने (तृत्सुभ्यः) और शत्रुओं के मारने वालों के लिये (उ) ही (लोकम्) लोक को (अकृणोत्) प्रसिद्ध करता है उनका सब सत्कार करें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो मनुष्य सूर्य के समान विद्या और नम्रता से प्रकाशित और तृषित जल के समान ऐश्वर्य के ढूंढने वाले सकल विद्यायुक्त विद्वानों के लिये आनन्द को धारण करते और शूरवीरों के लिये धन भी देते हैं वे बहुत सुख पाते हैं ॥५॥

फिर कौन पढ़ाने और कौन न पढ़ाने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दण्डाइवेद्गोअजनास आसन्परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वानो जो (गोअजनासः) सुशिक्षित वाणी में [अ] प्रसिद्ध हुए (परिच्छिन्नाः) छिन्न भिन्न विज्ञान वाले (भरताः) देह धारण और पुष्टि करने से युक्त (अर्भकासः) थोड़ी थोड़ी आयु के बालक (दण्डाइव) लट्ठ से सूखे हृदय में अभिमान करने वाले (इत्) ही (आसन्) हैं उन (तृत्सूनाम्) अनादर किये हुओं के बीच (विशः) प्रजा मनुष्यों को (अप्रथन्त) प्रख्यात करते हैं (आत्, इत्) और ही इनके जो (पुरएता) आगे जाने वाला (वसिष्ठः) अतीव धनाढ्य (अभवत्) हो (च) वही इन को अच्छी प्रकार शिक्षा दे ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो मनुष्य दण्ड के समान जड़बुद्धि हों वे अच्छी परीक्षा कर न पढ़ाने योग्य और जो बुद्धिमान् हों वे पढ़ाने योग्य होते हैं जो विद्या व्यवहार में प्रधान हो वही विद्याविभाग की उत्तम प्रबन्ध से शिक्षा पहुंचावे ॥६॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वाँ इत्ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (त्रयः) तीन (भुवनेषु) लोकों में (रेतः) वीर्य (कृण्वन्ति) करते हैं जैसे (त्रयः) तीन (घर्मासः) पाप (उषसम्) प्रभातवेला और (ज्योतिः) विद्याप्रकाश आदि का (सचन्ते) सम्बन्ध करते हैं वैसे (तिस्रः) तीन अर्थात् विद्या राजा और धर्मसभास्थ (वसिष्ठाः) अतीव धन में स्थिर (आर्याः) उत्तम गुण कर्म स्वभाव वाले पुरुष (अग्राः) अग्रगण्य (प्रजाः) प्रजाजन (तान्) उन (सर्वान्) सब को (इत्, अनु, विदुः) ही अनुकूल जानते हैं और विद्या प्रकाश आदि को सम्बन्ध करते हैं ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जैसे कार्य्य और कारण को कार्य में स्थिर बिजुलियां सूर्य आदि ज्योति को प्रकाशित करती हैं प्रभातवेला और दिन को उत्पन्न करती हैं वैसे तीन सभा धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष साधन देने वाले प्रकाशों को करती हैं ॥७॥

फिर विद्वान् कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गंभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वशिष्ठा अन्वेतवे वः ॥८॥

पदार्थः- हे (वसिष्ठाः) अतीव विद्या में वास करने वालो जो (अन्वेतवे) विशेष जानने को, प्राप्त होने को वा गमन को प्राप्त अत्यन्त धर्मशील विद्वान् हैं (एषाम्) इन बिजुली आदि पदार्थों के और (वः) तुम्हारे विशेष जानने को प्राप्त होने को वा गमन को (सूर्यस्येव) सूर्य के समान (वक्षथः) रोष वा (ज्योतिः) प्रकाश (समुद्रस्येव) समुद्र के समान (महिमा) महिमा (गभीरः) गम्भीर (वातस्येव) पवन के समान (प्रजवः) उत्तम वेग और (स्तोमः) प्रशंसा है वह (अन्येन) और के समान (न) नहीं है ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो! जिन धार्मिक विद्वानों का सूर्य के समान विद्या और धर्म का प्रकाश, दुष्टाचार पर क्रोध, समुद्र के समान गम्भीरता, पवन के समान अच्छे कर्मों में वेग हो वे ही मिलने योग्य हैं यह जानना चाहिये ॥८॥

कौन सत्य का निश्चय करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति ।
यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ॥९॥

पदार्थः—(अप्सरसः) जो अन्तरिक्ष में जाते हैं वे और (यमेन) नियन्ता जगदीश्वर से (ततम्) व्याप्त (परिधिम्) सर्व लोकों के परकोटे को (वयन्तः) व्याप्त होते हुए (वसिष्ठाः) अतीव विद्यावान् जन (प्रकेतैः) उत्तम बुद्धियों से (हृदयस्य) आत्मा के बीच (निण्यम्) निर्णीत अन्तर्गत (सहस्रवल्शम्) हजारों असंख्य अंकुरों के समान शास्त्रबोध जिसमें उस विद्या व्यवहार को (उप, सेदुः) उपस्थित होते अर्थात् स्थिर होते हैं (ते, इत्) वे ही पूर्ण विद्याओं का (अभि, सं, चरन्ति) सब ओर से संचार करते हैं ॥९॥

भावार्थः—वे ही विद्वान् जन संसार के उपकारी होते हैं जो दीर्घ ब्रह्मचर्य्य से और आप्त विद्वानों की उत्तेजना से शिक्षा पाय समस्त विद्या पढ़ परमात्मा से व्याप्त सर्व सृष्टिक्रम को प्रवेश करते हैं ॥९॥

फिर विद्वान् जन कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विद्युतो ज्योतिः परि संजिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।
तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥१०॥

पदार्थः—हे (वसिष्ठ) प्रशंसायुक्त विद्वान् जो (अगस्त्यः) निर्दोष जन (ते) आपकी (विशः) प्रजाओं को (आ, जभार) सब ओर से धारण करता (उत) और (एकम्) एक (जन्म) जन्म को सब ओर से धारण करता और (त्वा) आप को सब ओर से धारण करता तथा (यत्) जिस (विद्युतः) बिजुली को (संजिहानम्) अधिकार त्याग करते हुए (ज्योतिः) प्रकाश को (मित्रावरुणा) अध्यापक और उपदेशक (पर्यपश्यताम्) देखते हैं (त्वा) आपको इस विद्या की प्राप्ति कराते हैं उस समस्त विषय को आप ग्रहण करें ॥१०॥

भावार्थः—जिस मनुष्य का विद्या में जन्म प्रादुर्भाव होता है उसकी बुद्धि बिजुली की ज्योति के समान सकल विद्याओं को धारण करती है ॥१०॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधि जातः ।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाऽददन्त ॥११॥

पदार्थः—हे (ब्रह्मन्) समस्त वेदों को जानने वाले (वसिष्ठ) पूर्ण विद्वान् जो (मैत्रावरुणः) प्राण और उदान के वेत्ता आप (उर्वश्याः) विशेष विद्या से (उत) और (मनसः) मन से (अधि, जातः) अधिकतर उत्पन्न (असि) हुए हो उन (त्वा) आपको (विश्वे, देवाः) समस्त विद्वान् जन (ब्रह्मणा) बहुत धन से और (दैव्येन) विद्वानों ने किये हुए व्यवहार से (पुष्करे) अन्तरिक्ष में (स्कन्नम्) प्राप्त (द्रप्सम्) मनोहर पदार्थ को (अददन्त) देवें ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य शुद्धान्तःकरण से प्राण और उदान के तुल्य और निरन्तर मनोहर विद्या को ग्रहण करते हैं वे विद्वानों के समान आनन्दित होते हैं ॥११॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः ।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (उभयस्य) जन्म और विद्या-जन्म दोनों का (प्रविद्वान्) उत्तम विद्वान् (प्रकेतः) उत्तम बुद्धियुक्त (सहस्रदानः) हजारों पदार्थ देने वाला (उत, वा) अथवा (सदानः) दानयुक्त (यमेन) वायु वा बिजुली के साथ वर्त्तमान (ततम्) विस्तृत (परिधिम्) परिधि को (वयिष्यन्) खर्च करता हुआ

(वसिष्ठः) अतीव धनवान् (अप्सरसः) अन्तरिक्ष में चलने वाले वायु से (परि जज्ञे) सर्वतः प्रसिद्ध होता है (सः) वह सब को सेवा करने योग्य है ॥१२॥

भावार्थः—जिस मनुष्य का माता पिता से प्रथम जन्म, दूसरा आचार्य से विद्या द्वारा होता है वही आकाश के पदार्थों का जानने वाला उत्पन्न हुआ पूर्ण विद्वान् अतुल सुख का देने वाला है ॥१२॥

फिर कैसे विद्वान् होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सत्रे ह जातावि॑षिता नमो॑भिः कु॒म्भे रेतः॑ सिषिचतुः समा॒नम् ।
ततो॑ ह मान॒ उदि॑याय॒ मध्या॒त्ततो॑ जा॒तमृषि॑माहु॒र्वसि॑ष्ठम् ॥१३॥

पदार्थः—यदि (जातौ) प्रसिद्ध हुए (इषिता) अध्यापक और उपदेशक (नमोभिः) अन्नादिकों से (सत्रे) दीर्घ (ह) ही पढ़ाने पढ़ने रूप यज्ञ में (कुम्भे) कलश में (रेतः) जल के (समानम्) समान विज्ञान को (सिषिचतुः) सींचें छोड़ें (ततः, ह) उसी से ही जो (मानः) मानने वाला (उदियाय) उदय को प्राप्त होता है (ततः) उस (मध्यात्) मध्य से (जातम्) उत्पन्न हुए (वसिष्ठम्) उत्तम (ऋषिम्) वेदार्थवेत्ता विद्वान् को (आहुः) कहते हैं ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जैसे स्त्री और पुरुषों से सन्तान उत्पन्न होता है वैसे अध्यापक और उपदेशकों के पढ़ाने और उपदेश करने से विद्वान् होते हैं ॥१३॥

फिर पढ़ाने और पढ़ने वाले जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उ॒क्थ॒भृतं॑ साम॒भृतं॑ बिभर्ति॒ ग्रावा॑णं॒ बिभ्र॒त्प्र व॑दा॒त्यग्रे॑ ।
उपै॑नमाध्वं सुमन॒स्यमा॑ना॒ आ वो॑ गच्छाति प्रतृ॒दो॒ वसि॑ष्ठः ॥१४॥

पदार्थः—हे (सुमनस्यमानाः) सुन्दर विचार वाले मनुष्यो जो (प्रतृदः) अतीव अविद्यादि दोष के नष्ट करने वाले (ग्रावाणम्) मेघ को सूर्य जैसे वैसे विद्या को (बिभ्रत्) धारता हुआ (वसिष्ठः) अत्यन्त विद्या आदि धन से युक्त (अग्रे) पूर्व (उक्थभृतम्) ऋग्वेद को और (सामभृतम्) सामवेद को धारण करने वाले को (बिभर्ति) धारण करता वह औरों को (प्र, वदाति) कहे जो (वः) तुम लोगों को (आ, गच्छाति) प्राप्त हो (एनम्) उस की तुम (उप, आध्वम्) उपासना करो ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो विद्यार्थी सकल वेदवेत्ता कुशिक्षा और अविद्या को नष्ट करने वाले आप्त विद्वान्

की पूर्व अच्छे प्रकार सेवा कर विद्या पाय फिर पढ़ाता है उसकी सब ज्ञान चाहने वाले जन विद्या पाने के लिये उपासना करते हैं ॥१४॥

इस सूक्त में पढ़ाने पढ़ने और उपदेश सुनाने और सुनने वालों के गुण और कार्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में तेतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चविंशत्यृचस्य चतुस्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । १—१५ । १८—२५ विश्वेदेवाः । १६ अहिः । १७ अहिर्बुध्न्यो देवता । १ । २ । ५ । १२ । १३ । १४ । १६ । १९ । २० । भुरिगार्चीगायत्री ३ । ४ । १७ आर्ची गायत्री । ६ । ७ । ८ । ९ । १० । ११ । १५ । १८ । २१ निचृत्त्रिपाद्गायत्री । २२ । २४ । निचृदार्षी त्रिष्टुप्छन्दः । षड्जः स्वरः । २३ आर्षी त्रिष्टुप् । २५ विराडार्षी त्रिष्टुप् च छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब कन्याजन किनसे विद्या को पावें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत्सुतष्टो रथो न वाजी ॥१॥

पदार्थः—(शुक्रा) शुद्ध अन्तःकरणयुक्त शीघ्रकारिणी (देवी) विदुषी कन्या (अस्मत्) हमारे से (सुतष्टः) उत्तम काष्ठ अर्थात् कारीगर के बनाए हुए (वाजी) वेगवान् (रथः) रथ के (न) समान (मनीषाः) उत्तम बुद्धियों को (प्रैतु) प्राप्त होवे ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—सब कन्या विदुषियों से ब्रह्मचर्य्य नियम से सब विद्या पढ़ें ॥१॥

फिर वे कन्या किस किस विद्या को जानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अधः क्षरन्तीः ॥२॥

पदार्थः—जो कन्या (अधः, क्षरन्तीः) नीचे को गिरते वर्षते हुए जलों के समान विद्या (शृण्वन्ति) सुनती हैं वे (पृथिव्याः) पृथिवी और (दिवः) सूर्य के (जनित्रम्) कारण को (विदुः) जानें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जैसे मेघमण्डल से जल वेग से पृथिवी को पाकर प्रजा आनन्दित होती है वैसे जो कन्या पढ़ाने वाली से भूगर्भादि विद्या को पाकर पति आदि को निरन्तर सुख देती हैं वे अत्यन्त श्रेष्ठ होती हैं ॥२॥

फिर वे कैसी हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः ॥३॥

पदार्थः—जो कन्या (पृथ्वीः) भूमि और (आपः) जल (चित्) ही के समान (अस्मै) इस विद्या व्यवहार के लिए (पिन्वन्त) सिंचन करती और (वृत्रेषु) धनों के निमित्त (उग्राः) तेजस्वी (शूराः) शूरवीरों के समान (मंसन्त) मान करती हैं वे विदुषी होती हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो कन्या जल के समान कोमलत्वादि गुणयुक्त हैं, पृथिवी के समान सहनशील और शूरों के समान उत्साहिनी विद्याओं को ग्रहण करती हैं वे सौभाग्यवती होती हैं ॥३॥

फिर वे कन्या विद्या के लिए क्या यत्न करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ॥४॥

पदार्थः—हे कन्याओ तुम (अस्मै) इस विद्याग्रहण करने के लिए (धूर्षु) रथों के आधार धुरियों में (अश्वान्) घोड़े और (हिरण्यबाहुः) जिसकी भुजाओं में दान के लिए हिरण्य विद्यमान उस (वज्री) शस्त्र अस्त्रों से युक्त (इन्द्रः) सूर्यतुल्य राजा के (न) समान ब्रह्मचर्य को (आ, दधात) अच्छे प्रकार धारण करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है- जैसे सारथी घोड़ों को रथ में जोड़कर नियम से चलाता है वैसे कन्या आत्मा अन्तःकरण और इन्द्रियों को विद्या की प्राप्ति के व्यवहार में निरन्तर जोड़कर नियम से चलावें ॥४॥

फिर कन्याजन कैसे विद्या को बढ़ावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।

अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्त्मना हिनोत ॥५॥

पदार्थः—हे कन्याओ तुम विद्याप्राप्ति के लिए (अहेव) दिनों के समान (यज्ञम्) पढ़ने पढ़ाने रूप यज्ञ के (अभिप्रस्थात) सब ओर से जाओ (त्मना) अपने से (पत्मन्) मार्ग में (यातेव) जाते हुए के समान (हिनोत) बढ़ाओ ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र से उपमालङ्कार है—हे कन्याओ ! जैसे दिन अनुकूल क्रम से जाते और आते हैं और जैसे बटोही जन नित्य चलते हैं वैसे ही अनुकूल क्रम से विद्याप्राप्ति मार्ग से विद्याप्राप्तिरूप यज्ञ को बढ़ाओ ॥५॥

फिर कन्या विद्याप्राप्ति व्यवहार को बढ़ावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम् ॥६॥

पदार्थः—हे कन्याओ जैसे (जनाय) राजा के लिए (समत्सु) संग्रामों में (वीरम्) पूरा करने वाले जन को प्रेरणा देते हैं वैसे (त्मना) अपने से (केतुम्) बुद्धि को (दधात) धारण करो और (यज्ञम्) संग करने योग्य विद्याबोध को (हिनोत) बढ़ाओ ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे शूरवीर धीमान् बुद्धिमान् राजा पुरुष उत्तम यत्न से संग्रामों को विशेषता से जीतते हैं वैसे कन्याओं को इन्द्रियां जीत और विद्याओं को पाकर विजय की विशेष भावना करनी चाहिये ॥६॥

फिर वे कन्या विद्या कैसे पावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उदस्य शुष्माद्भानुर्नार्त्त बिभर्त्ति भारं पृथिवी न भूम ॥७॥

पदार्थः—हे कन्याजनो जैसे हम (भारम्) भार को (पृथिवी) भूमि (न) जैसे और (भानुः) किरणयुक्त सूर्य जैसे (न) वैसे (अस्य) इस विद्या व्यवहार के (शुष्मात्) बल से विदुषी (भूम) हों वा जैसे यह भानु पृथिवी आदि के भार को (उद्बिभर्त्ति) उत्कृष्टता से धारण करता है समस्त उस व्यवहार को (आर्त्त) प्राप्त होता है वैसे तुम होओ ॥७॥

भावार्थः—जैसे विद्वान् जन इस विद्याबोध के बल से सब सुख को धारण करते हैं वैसे ही कन्या विद्याबल से सब आनन्द को पाती हैं ॥७॥

फिर अध्यापक, अध्येताओं को क्या उपदेश करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि ॥८॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् जैसे मैं (देवान्) विद्वानों को (ह्वयामि) बुलाता हूं (ऋतेन) सत्य व्यवहार से (साधन्) सिद्ध करता हुआ (धियम्) उत्तम बुद्धि वा शुभ कर्म को (दधामि) धारण करता हूं और (अयातुः) जो नहीं जाता उस स्थिर से विद्या ग्रहण करता हूं वैसे आप कन्या पढ़ाने का निश्चय करो ॥८॥

भावार्थः—जो विद्वानों को बुला के और उनका सत्कार कर सत्य आचार से विद्या को धारण करते हैं वे विद्वान् होते हैं ॥८॥

सब मनुष्यों को क्या इच्छा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वम् ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वानो मित्र (देवत्रा) विद्वानों में वर्त्तमान (देवीम्) दिव्य

(धियम्) बुद्धि को तुम (अभिदधिध्वम्) सब ओर से धारण करो उस (वः) आपकी बुद्धि को हम लोग भी धारण करें विद्वानों में जिस (वाचम्) वाणी को तुम (प्र, कृणुध्वम्) प्रसिद्ध करो उस (वः) आपकी वाणी को हम लोग भी (प्र) प्रसिद्ध करें ॥९॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि विद्वानों का अनुकरण कर बुद्धि विद्या और वाणी को धारण करें ॥९॥

फिर वह विद्वान् कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः ॥१०॥

पदार्थः—हे विद्वान् जैसे (वरुणः) सूर्य के समान (उग्रः) तेजस्वी जन (सहस्रचक्षाः) जिसके वा जिससे हजार दर्शन होते हैं वह सूर्य (आसाम्) इस (नदीनाम्) नदियों के (पाथः) जल को खींचता और पूरा करता है वैसे हुए आप मनुष्यों के चित्तों को खींच के जिस कारण विद्या को (आचष्टे) कहते हैं इससे सत्कार करने योग्य हैं ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो विद्वान् सूर्य के तुल्य अविद्या को निवार के विद्या के प्रकाश को उत्पन्न करता है वही यहां माननीय होता है ॥१०॥

फिर वह राजा किसके तुल्य क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु ॥११॥

पदार्थः— जो (राजा) प्रकाशमान (नदीनाम्) नदियों के (पेशः) रूप के समान (राष्ट्रानाम्) राज्यों की रक्षा का विधान करता है (अस्मै) इसके लिये (अनुत्तम्) शत्रुओं से अपीड़ित (विश्वायु) जिससे समस्त आयु होती है वह (क्षत्रम्) धन वा राज्य होता है ॥११॥

भावार्थः— इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो राजा न्यायकारी विद्वान् होता है उसके प्रति समुद्र को नदी जैसे वैसे प्रजा अनुकूल होकर ऐश्वर्य्य को उत्पन्न कराती हैं और इस राजा की पूरी आयु भी होती है ॥११॥

फिर राजजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अविष्टो अस्मान्विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः ॥१२॥

पदार्थः—हे राजजनो तुम (विश्वासु) समस्त (विक्षु) प्रजाओं में (अस्मान्) उनके अनुकूल राज्याधिकारी हम जनों को (अविष्टो) दोषों में न प्रवेश किये हुए

निरन्तर रक्षा करो हमारी (शंसम्) प्रशंसा (कृणोत) करो हम लोगों की (निनित्सोः) निन्दा करना चाहते हुए के (अद्युम्) प्रकाशरहित व्यवहार को प्रकाश करो ॥१२॥

भावार्थः—राजजन प्रजाओं में वर्त्तमान निन्दक जनों का निवारण कर प्रशंसा करने वालों की रक्षा कर और प्रजाजनों में पिता के समान वर्त्त कर अविद्यान्धकार को निवारण करें ॥१२॥

फिर वे राजजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

व्येतु दिद्युद्द्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम् ॥१३॥

पदार्थः—हे राजजन विद्वानो तुम (द्विषाम्) द्वेष करने वालों को (अशेवा) असुख अर्थात् दुःख को करो (तनूनाम्) शरीरों के (दिद्युत्) निरन्तर प्रकाशमान (विष्वक्) और व्याप्त (रपः) अपराध को (युयोत) अलग करो जिससे भद्र उत्तम सब मनुष्यों को सुख (वि, एतु) व्याप्त हो ॥१३॥

भावार्थः—हे राजजनो ! तुम, जो धार्मिक सज्जनों को पीड़ा देवें उनको दंड से पवित्र करो जिससे सब ओर से सब को सुख प्राप्त हो ॥१३॥

फिर वह राजा क्या करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोमः ॥१४॥

पदार्थः—जिस राजा ने (अस्मै) इस राज्य के लिये (प्रेष्ठः) अतीव प्रिय (स्तोमः) प्रशंसा व्यवहार (अधायि) धारण किया गया जो (हव्याद्) होम करने योग्य अन्न भोजन करने वाले (अग्निः) अग्नि के समान वर्त्तमान (नमोभिः) अन्नादि पदार्थों से (नः) हम लोगों की (अवीत्) रक्षा करे वही हम लोगों को सत्कार करने योग्य है ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जैसे सूर्य स्वप्रकाश से सब की रक्षा करता है वैसे राजा न्याय के प्रकाश से सब प्रजा की रक्षा करे ॥१४॥

फिर वे राजजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु ॥१५॥

पदार्थः—हे राजा जैसे (देवेभिः) विद्वानों से वा पृथिवी आदि दिव्य पदार्थों के (सजूः) साथ वर्त्तमान सूर्यमण्डल (अपां नपातम्) जलों के उस व्यवहार को जो नहीं नष्ट होता मेघ के समान करता है वैसे आप (नः) हमारे वा हमारे लिये (शिवः) मंगलकारी (अस्तु) हों हे विद्वानो ऐसे राजा को हमारा (सखायम्) मित्र (कृध्वम्) कीजिये ॥१५॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो! जैसे सूर्य आदि पदार्थ जगत् में मित्र के समान वर्त्त कर सुखकारी होते हैं वैसे ही राजजन सब के मित्र होकर मंगलकारी होते हैं ॥१५॥

फिर वे राजजन किसके तुल्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन् ॥१६॥

पदार्थः—हे राजा जैसे सूर्य (बुध्ने) अन्तरिक्ष में वर्त्तमान (नदीनाम्) नदियों के संबन्धी (रजःसु) लोकों में (सीदन्) स्थिर होता हुआ (अब्जाम्) जलों में उत्पन्न हुए (अहिम्) मेघ को उत्पन्न करता है वैसे (उक्थैः) उसके गुणों के प्रशंसक वचनों से राज्य में जो ऐश्वर्य उनमें स्थिर होते हुए आप नदियों के प्रवाह के समान जिससे विद्या को (गृणीषे) कहते हो इससे सत्कार करने योग्य हो ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालकार है—हे राजपुरुषो! जैसे सूर्य वर्षा से नदियों को पूर्ण करता है वैसे धन धान्यों से तुम प्रजाओं को पूर्ण करो ॥१६॥

फिर वे राजजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य स्त्रिधदृतायोः ॥१७॥

पदार्थः—हे विद्वानो जैसे (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में उत्पन्न हुआ (अहिः) मेघ (नः) हम लोगों को (रिषे) हिंसा के लिये (मा) मत (धात्) धारण करे वा जैसे (अस्य) इस (ऋतायोः) सत्य न्याय धर्म की कामना करने वाले राजा का (यज्ञः) प्रजापालन करने योग्य व्यवहार (मा, स्त्रिधत्) मत नष्ट हो वैसा अनुष्ठान करो ॥१७॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे राजा आदि मनुष्यो! जैसे अवर्षण न हो, न्यायव्यवहार न नष्ट हो, वैसा तुम विधान करो ॥१७॥

फिर वे राजजन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

उत न एषु नृषु श्रवो धुः प्र राये यन्तु शर्धन्तो अर्यः ॥१८॥

पदार्थः—हे राजा जो (नः) हमारे (एषु) इन व्यवहारों में (राये) धन के लिये (श्रवः) अन्न वा श्रवण को (धुः) धारण करें वे हम लोगों को प्राप्त होवें (उत) और जो हम लोगों को (शर्धन्तः) बली करते हुए (नृषु) नायक मनुष्यों में (अर्यः) शत्रु जन हमारे राज्य आदि ऐश्वर्य को चाहें वे दूर (प्र, यन्तु) पहुँचें ॥१८॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि सज्जनों के निकट और दुष्टों के दूर रह कर लक्ष्मी की उन्नति करें ॥१८॥

कौन शत्रुओं के निवारण में समर्थ होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तपन्ति शत्रुं स्व१र्णभूमा महासेनासो अमेभिरेषाम् ॥१९॥

पदार्थः—(महासेनासः) जिनकी बड़ी सेना है वे जन (एषाम्) इन वीरों के (अमेभिः) बलादिकों से (शत्रुम्) शत्रु को (तपन्ति) तपाते हैं उनके साथ राजा आदि हम लोग (स्वः) सुख (न) जैसे हो वैसे (भूम) प्रसिद्ध हों ॥१९॥

भावार्थः—हे राजा यदि आपसे योद्धा शूरवीर जनों की सेना सत्कार कर रक्खी जाय तो आप के शत्रुजन बिला जायं और सुख निरन्तर बढ़े ॥१९॥

फिर राजा और अन्य भृत्य परस्पर कैसे वर्त्तें
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ यन्नः पत्नीर्गमन्त्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान् ॥२०॥

पदार्थः—हे राजा जैसे (यत्) जो (पत्नीः) भार्या (नः) हम लोगों को (अच्छा) अच्छे प्रकार (आ, गमन्ति) प्राप्त होतीं और रक्षा करती हैं और जैसे हम लोग उनकी रक्षा करें वैसे (त्वष्टा) दुःख-विच्छेद करने वाला (सुपाणिः) सुन्दर हाथों से युक्त राजा आप (वीरान्) शूरता आदि गुणों से युक्त मन्त्री और भृत्यों को (दधातु) धारण करो ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जैसे पतिव्रता स्त्री स्त्रीव्रत पति जन परस्पर की प्रीति से रक्षा करते हैं वैसे राजा धार्मिकों की, अमात्य और भृत्यजन धार्मिक राजा की निरन्तर रक्षा करें ॥२०॥

फिर वे राजा और मन्त्री आदि परस्पर कैसे वर्त्तें
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत स्यादस्मे अरमतिर्वसूयुः ॥२१॥

पदार्थः—हे विद्वानो! जैसे हम लोग राजा की प्रीति से सेवा करें वैसे (अरमतिः) पूर्ण मति है जिस की (वसूयुः) धनों की कामना करता हुआ (त्वष्टा) दुःखविच्छेद करने वाला राजा (नः) हम लोगों को (प्रति, जुषेत) प्रीति से सेवे जैसे यह राजा हमारी (स्तोमम्) प्रशंसा को सेवे वैसे हम लोग इसकी कीर्ति को सेवें

जैसे यह (अस्मे) हम लोगों में प्रसन्न (स्यात्) हो वैसे हम लोग भी इस में प्रसन्न हों ॥२१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जहां राजा अमात्य भृत्य और प्रजाजन एक दूसरे की उन्नति को करना चाहते हैं वहां समस्त ऐश्वर्य सुख और वृद्धि होती है ॥२१॥

फिर वे राजादि प्रजाजनों में कैसे वर्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ता नो॑ रास॒न्रा॒ति॒षाचो॒ वसू॒न्या रोद॑सी वरुणा॒नी शृ॑णोतु ।

वरू॑त्रीभिः सुश॒र॒णो नो॑ अस्तु॒ त्वष्टा॑ सु॒दत्रो॒ वि द॑धातु॒ राय॑ः ॥२२॥

पदार्थः—हे विद्वानो आप (वरूत्रीभिः) वरुणसम्बन्धी विद्याओं से (वरुणानी) जलादि पदार्थयुक्त (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी के समान (रातिषाचः) दान सम्बन्ध करते हुए (नः) हम लोगों के लिये (ता) उन (वसूनि) धनों को (आरासन्) अच्छे प्रकार देवें हे राजन् (सुदत्रः) अच्छे दानयुक्त (त्वष्टा) दुःखविच्छेदक (सुशरणः) सुन्दर आश्रय जिनका वह आप (नः) हमारे रक्षक (अस्तु) हों हमारे लिये (रायः) धनों को (वि, दधातु) विधान कीजिये । हमारी वार्ता (शृणोतु) सुनिये ॥२२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो राजपुरुष सूर्य और भूमि के तुल्य प्रजाजनों को धनी करते उनके न्याय करने की बातें सुनते और यथावत् पुरुषार्थ से लक्ष्मीवान् करते हैं वे ही पूर्ण सुख वाले होते हैं ॥२२॥

फिर विद्वान् जन अन्यों को क्या क्या ज्ञान देवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तन्नो॒ रायः॒ पर्व॑ता॒स्तन्न॒ आप॒स्तद्रा॑ति॒षाच॒ ओष॑धीरु॒त द्यौः ।

वन॒स्पति॑भिः पृथि॒वी स॒जोषा॑ उ॒भे रोद॑सी॒ परि॑ पासतो नः ॥२३॥

पदार्थः—हे विद्वानो जैसे (पर्वताः) मेघ वा शैल (नः) हमारे लिये (तत्) उन (रायः) धनों को (रातिषाचः) जो दान का सम्बन्ध करते हैं वा (आपः) जलों को वा (तत्) उन (ओषधीः) यवादि ओषधियों को वा (तत्) उन अन्य पदार्थों को (उत) निश्चय करके (सजोषाः) समान सेवनेवाला जन वा (द्यौः) सूर्य (वनस्पतिभिः) वटादिकों के साथ (पृथिवी) पृथिवी वा (उभे) दोनों (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी भी (नः) हम लोगों की (परि, पासतः) रक्षा करें वैसे हम लोगों की आप लोग रक्षा करें ॥२३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है – पढ़ने और सुनने वाले जन पढ़ाने और उपदेश कराने वालों के प्रति ऐसी प्रार्थना करें हम लोगों को आप ऐसा बोध करावें कि जिससे हम लोग सब सृष्टि के सकाश से सुख की उन्नति कर सकें ॥२३॥

फिर विद्वान् जन किसके तुल्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु द्युक्षो वरुण इन्द्रसखा ।
अनु विश्वे मरुतो ये सहासो रायः स्याम धरुणं धियध्यै ॥२४॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो जैसे (उर्वीः) बहुपदार्थयुक्त (रोदसी) आकाश और पृथिवी (तत्) उन पदार्थों को (अनु, जिहाताम्) अनुकूल प्राप्त हों वा (इन्द्रसखा) परमैश्वर्य राजा सखा मित्र जिस का (द्युक्षः) प्रकाशों को वसाता (वरुणः) और श्रेष्ठजन (अनु) पीछे जावे वा (ये) जो (विश्वे) सर्व (सहासः) सहनशील और बलवान् (मरुतः) मनुष्य अनुकूलता से प्राप्त हों। वैसे हम लोग (रायः) धन के (धरुणम्) धारण करने वाले को (धियध्यै) धारण करने को समर्थ (स्याम) हों ॥२४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे सृष्टिस्थ भूमि आदि पदार्थ सब को धारण कर सुख देते हैं वैसे ही आप हों ॥२४॥

फिर सेव्य सेवक और अध्यापक अध्येता जन परस्पर कैसे वर्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जो (वनिनः) किरणवान् (इन्द्रः) बिजुली के समान राजा (वरुणः) श्रेष्ठ (मित्रः) मित्रजन (अग्निः) पावक (आपः) जल और (ओषधीः) यवादि ओषधी (नः) हमारे लिये (तत्) उस सुख को (जुषन्त) सेवते हैं जिससे (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदैव (पात) रक्षा करो उन तुम (मरुताम्) लोगों के (उपस्थे) समीप (शर्मन्) सुख में हम लोग स्थिर (स्याम) हों ॥२५॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसी इच्छा करनी चाहिये कि विद्वानों के संग से जैसे बिजुली आदि पदार्थ अपने कामों को सेवें वैसे हम लोग अनुष्ठान करें ॥२५॥

इस सूक्त में अध्येता, अध्यापक, स्त्री, पुरुष, राजा, प्रजा, सेना, भृत्य और विश्वे देवों के गुण और कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में चौंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चदशर्चस्य पञ्चत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ । २ । ३ । ४ । ५ । ११ । १२ त्रिष्टुप् । ६ । ८ । १० । १५ निचृत् त्रिष्टुप् । ७ । ९ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । १३ । १४ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पन्द्रह ऋचा वाले पैंतीसवे सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को सृष्टिपदार्थों से क्या क्या ग्रहण करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

शं न॑ इन्द्राग्नी भ॑वता॒मवो॑भिः॒ शं न॒ इन्द्रा॒वरु॑णा रा॒तह॑व्या ।
शमिन्द्रा॒सोमा॑ सुवि॒ताय॒ शं योः शं न॒ इन्द्रा॑पू॒षणा॒ वाज॑सातौ ॥१॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर (वाजसातौ) संग्राम में (सुविताय) ऐश्वर्य होने के लिए (नः) हम लोगों को (अवोभिः) रक्षा आदि के साथ (इन्द्राग्नी) बिजुली और साधारण अग्नि (शम्) सुख करने वाले (शम्) मंगल करने वाले (रातहव्या) दी है ग्रहण करने को वस्तु जिन्होंने ऐसे (इन्द्रावरुणा) बिजुली और जल (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख करने वाले (इन्द्रासोमा) बिजुली और ओषधिगण (शम्) सुखकारक (योः) सुख के निमित्त और (इन्द्रापूषणा) बिजुली और वायु (नः) हमारे लिये (शम्) आनन्द देने वाले (भवताम्) हों वैसा हम लोग प्रयत्न करें ॥१॥

भावार्थः—हे जगदीश्वर ! आप की कृपा से, विद्वानों के संग से और अपने पुरुषार्थ से आप की रची हुई सृष्टि में वर्त्तमान बिजुली आदि पदार्थों से हम लोग उपकार करना कराना चाहते हैं सो यह हम लोगों का प्रयत्न सफल हो ॥१॥

मनुष्यों को जैसे ऐश्वर्य आदि सुख करने वाले हों वैसे विधान करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शं नो॒ भगः॒ शमु॑ नः॒ शंसो॑ अस्तु॒ शं नः॒ पुर॑न्धिः॒ शमु॑ सन्तु॒ रायः॑ ।
शं नः॑ स॒त्यस्य॑ सु॒यम॑स्य॒ शंसः॒ शं नो॑ अर्य॒मा पु॑रुजा॒तो अ॑स्तु ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (नः) हम लोगों के लिये (भगः) ऐश्वर्य (शम्)

सुख करने वाला (नः) हम लोगों के लिये (शंसः) शिक्षा वा प्रशंसा (शम्) सुख करने वाली (उ) और (पुरन्धिः) बहुत पदार्थ जिसमें रक्खे जाते हैं वह आकाश (शम्) सुख करने वाला (अस्तु) हो (नः) हम लोगों के लिये (रायः) धन (शम्) सुख करने वाले (उ) ही (सन्तु) हों (नः) हम लोगों के लिये (सत्यस्य) यथार्थ धर्म वा परमेश्वर की (सुयमस्य) सुन्दर नियम से प्राप्त करने योग्य व्यवहार की (शंसः) प्रशंसा (शम्) सुख देने वाली और (पुरुजातः) बहुत मनुष्यों में प्रसिद्ध (अर्यमा) न्यायकारी (नः) हमारे लिये (शम्) आनन्द देने वाला (अस्तु) होवे वैसा हम लोग प्रयत्न करें ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जैसे ऐश्वर्य, पुण्यकीर्त्ति, धन, धर्म, योग और न्यायाधीश सुख करने वाले हों वैसा अनुष्ठान करो ॥२॥

फिर मनुष्यों को सृष्टि से कैसा उपकार लेना चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शं नो॑ धा॒ता शमु॑ ध॒र्ता नो॑ अस्तु॒ शं न॑ उरू॒ची भ॑वतु स्व॒धाभिः॑ ।
शं रोद॑सी बृह॒ती शं नो॒ अद्रिः॒ शं नो॑ दे॒वानां॑ सु॒हवा॑नि सन्तु ॥३॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा विद्वान् ! आपकी कृपा और संग से (नः) हम लोगों के लिये (धाता) धारण करने वाला (शम्) सुखरूप (उ) और (धर्ता) पुष्टि करने वाला (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो (स्वधाभिः) अन्नादिकों के साथ (उरूची) जो बहुत पदार्थों को प्राप्त होती वह पृथिवी (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुख देने वाली (भवतु) हो (बृहती) महान् (रोदसी) प्रकाश और अन्तरिक्ष (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप होवें (अद्रिः) मेघ (नः) हमारे लिये (शम्) सुखकारक हो (नः) हम लोगों के लिये (देवानाम्) विद्वानों के (सुहवानि) सुन्दर आवाहन प्रशंसा से बुलावे (शम्) सुखरूप (सन्तु) हों ॥३॥

भावार्थः - जो मनुष्य पुष्टि करने वालों से उपकार लेना जानते हैं वे सब सुखों को पाते हैं ॥३॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मंत्र में कहते हैं ॥

शं नो॑ अ॒ग्निर्ज्योति॑रनीको अस्तु॒ शं नो॑ मि॒त्रावरु॑णाव॒श्विना॒ शम् ।
शं नः॑ सु॒कृतां॑ सुकृ॒तानि॑ सन्तु॒ शं न॑ इषि॒रो अ॒भि वा॑तु॒ वातः॑ ॥४॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा विद्वान् आप की कृपा से (ज्योतिरनीकः) ज्योति ही सेना के समान जिसकी (अग्निः) वह अग्नि (नः) हम लोगों के लिये (शम्)

सुखरूप (अस्तु) हो (अश्विना) व्यापक पदार्थ (शम्) सुखरूप और (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप होवें (नः) हम (सुकृताम्) सुन्दर धर्म करने वालों के (सुकृतानि) धर्माचरण (शम्) सुखरूप सन्तु हों और (इषिरः) शीघ्र जाने वाला (वातः) वायु (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप (अभि, वातु) सब ओर से वहे ॥४॥

भावार्थ—जो अग्नि और वायु आदि पदार्थों से कार्यों को सिद्ध करते हैं वे समग्र ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥४॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शं नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी पू॒र्वहू॑तौ॒ शम॒न्तरि॑क्षं दृ॒शये॑ नो अस्तु ।
शं न॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ भवन्तु॒ शन्नो॒ रज॑स॒स्पति॑रस्तु जि॒ष्णुः ॥५॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर और शिक्षा देने वाले आप की कृपा और उपदेश से (पूर्वहूतौ) जिसमें पिछलों की प्रशंसा विद्यमान वा जिससे पिछलों की प्रशंसा होती है उस में (द्यावापृथिवी) विजुली और भूमि (नः) हम लोगों के लिए (शम्) सुख (दृशये) देखने को (अन्तरिक्षम्) भूमि और सूर्य्य के बीच का आकाश (नः) हम लोगों के लिए (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो और (ओषधीः) ओषधि तथा (वनिनः) वन जिनमें विद्यमान वे वृक्ष (नः) हमारे लिए (शम्) सुखरूप (भवन्तु) होवें (रजसः) लोकों में उत्पन्न हुओं का (पतिः) स्वामी (जिष्णुः) जयशील (नः) हमारे लिए (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो ॥५॥

भावार्थः—जो सब सृष्टिस्थ पदार्थों को सुख के संयुक्त करने को योग्य होते हैं वे ही उत्तम विद्वान् होते हैं ॥५॥

फिर विद्वानों को क्या जान के और संयुक्त कर क्या पाने योग्य है
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शं न॒ इन्द्रो॒ वसु॑भिर्दे॒वो अ॑स्तु॒ शमा॑दि॒त्येभि॒र्वरु॑णः सु॒शंसः॑ ।
शं नो॑ रु॒द्रो रु॒द्रेभि॒र्जला॑षः॒ शं न॒स्त्वष्टा॒ ग्नाभि॑रि॒ह शृ॑णोतु ॥६॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा विद्वान् आपके सहाय से और परीक्षा से (इह) यहां (वसुभिः) पृथिव्यादिकों के साथ (देवः) दिव्य गुणकर्मस्वभावयुक्त (इन्द्रः) विजुली वा सूर्य (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप और (आदित्येभिः) संवत्सर के महीनों के साथ (सुशंसः) प्रशंसित प्रशंसा करने योग्य (वरुणः) जल समुदाय (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो (रुद्रेभिः) जीव प्राणों के साथ

(जलाषः) दुःख निवारण करने वाला (रुद्रः) परमात्मा वा जीव (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप हो (ग्नाभिः) वाणियों के साथ (त्वष्टा) सर्वं वस्तुविच्छेद करने वाला अग्नि के समान परीक्षक विद्वान् (नः) हम लोगों के लिए (शम्) सुख (शृणोतु) सुने ।।६।।

भावार्थः—जो थिवी, आदित्य और वायु की विद्या से ईश्वर, जीव और प्राणों को जान यहाँ इनकी विद्या को पढ़ा परीक्षा कर सब को विद्वान् और उद्योगी करते हैं वे इस संसार में किस किस ऐश्वर्य को नहीं प्राप्त होते हैं ।।६।।

फिर विद्वानों का किन उपायों से जगत् का उपकार करना योग्य है
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ।।७।।

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा विद्वान् आपकी कृपा और पढ़ाने से (सोमः) चन्द्रमा (नः) हम लोगों के लिए (शम्) सुखरूप (भवतु) हो (ब्रह्म) धन वा अन्न (नः) हमारे लिए (शम्) सुखरूप हो (ग्रावाणः) मेघ (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप (सन्तु) हों (यज्ञाः) अग्निहोत्र को आदि ले शिल्प यज्ञ पर्य्यन्त (नः) हम लोगों के लिए (सम्, उ) सुखरूप ही हों (स्वरूणाम्) यज्ञशाला के स्तम्भ शब्दों के (मितयः) प्रमाण हमारे लिये (शम्) सुखरूप (भवन्तु) हों (प्रस्वः) जो उत्पन्न होती है वह ओषधि (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप हों और (वेदिः) कुण्ड आदि हमारे लिये (शम्, उ) सुख रूप ही (अस्तु) हो ।।७।।

भावार्थः—जो मनुष्य विद्या, ओषधी, धन और यज्ञादि से जगत् का सुख के साथ उपकार करते हैं वे अतुल सुख पाते हैं ।।७।।

फिर विद्वान् जनों को क्या इच्छा करनी चाहिये इस विषय को अगले
मंत्र में कहते हैं ।।

शं नः सूर्यं उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ।।८।।

पदार्थः—हे परमेश्वर वा विद्वान् आपकी शिक्षा से (उरुचक्षाः) जिससे बहुत दर्शन होते हैं वह (सूर्यः) सूर्य (नः) हम लोगों के लिए (शम्) सुख रूप (उदेतु) उदय हो (चतस्रः) चार (प्रदिशः) पूर्वादि वा ऐशानी आदि दिशा वा

विदिशा (नः) हम लोगों के लिए (शम्) सुखरूप (भवन्तु) हों (ध्रुवयः) अपने अपने स्थान में स्थिर (पर्वताः) पर्वत (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप (भवन्तु) होवें (सिन्धवः) नदी वा समुद्र (नः) हम लोगों के लिए (शम्) सुखरूप और (आपः) जल वा प्राण (शम्) सुखरूप (उ) ही (सन्तु) हों ॥८॥

भावार्थः—जो जगदीश्वर ने बनाये हुए सूर्यादिकों से उपकार ले सकते हैं वे इस जगत् में श्री राज्य और कीर्ति वाले होते हैं ॥८॥

फिर शिक्षकजनों को शिष्यजन अच्छी शिक्षा दे कैसे सिद्ध करने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक विद्वानो! तुम जैसे (अदितिः) विदुषी माता (व्रतेभिः) अच्छे कामों के साथ (नः) हम लोगों को (शम्) सुखरूप (भवतु) हो और (स्वर्काः) सुन्दर मन्त्र विचार हैं जिनके वे (मरुतः) प्राणों के समान प्रियजन अच्छे कामों के साथ (शम्) सुखरूप (भवन्तु) होवें (विष्णुः) व्यापक जगदीश्वर (नः) हम लोगों के [=को] (शम्) सुखरूप हो (पूषा) पुष्टि करनेवाला ब्रह्मचर्यादि व्यवहार (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप (उ) ही (अस्तु) हो (भवित्रम्) होनहार काम (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप होवे और (वायुः) पवन (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप (उ) ही (अस्तु) हो वैसी शिक्षा देओ ॥९॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—माता आदि विदुषियों को कन्या और विद्वान् पिता आदि को पुत्र अच्छे प्रकार शिक्षा देने योग्य हैं जिससे यह भूमि से ले के ईश्वरपर्यन्त पदार्थों की विद्याओं को पाके धार्मिक होकर सब मनुष्यों को निरन्तर आनन्दित करें ॥९॥

फिर विद्वानों को कैसी शिक्षा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥१०॥

पदार्थः—हे विद्वानो! तुम वैसे हम लोगों को शिक्षा देओ जैसे (त्रायमाणः) रक्षा करता हुआ (सविता) सकल जगत् की उत्पत्ति करने वाला ईश्वर (देवः) जो कि सब सुखों का देने वाला आप ही प्रकाशमान वह (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप (भवतु) हो (विभातीः) विशेषता से दीप्तिवाली (उषसः) प्रभात वेला

(नः) हम लोगों के लिए (शम्) सुखरूप (भवन्तु) हों (पर्जन्यः) मेघ (प्रजाभ्यः नः) हम प्रजाजनों के लिये (शम्) सुखरूप (भवतु) हो और (क्षेत्रस्य, पतिः) जिसके बीच में निवास करते हैं उस जगत् का स्वामी ईश्वर वा राजा (शम्भुः) सुख की भावना कराने वाला (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो ॥१०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—विद्वानों को वेदादि विद्याओं से परमेश्वर आदि पदार्थों के गुणकर्मस्वभाव विद्यार्थियों के प्रति यथावत् प्रकाश करने चाहियें जिससे सबों से उपकार ले सकें ॥१०॥

फिर मनुष्य किनको प्राप्त हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शं नो॑ दे॒वा वि॒श्वदे॑वा भवन्तु॒ शं सर॑स्वती स॒ह धी॒भिर॑स्तु । श॒म॑भि॒षाच॒: शमु॑ राति॒षाच॒: शं नो॑ दि॒व्याः पार्थि॑वा॒: शं नो॒ अप्या॑: ॥११॥

पदार्थः—हमारे शुभ गुणों के आचार से (देवाः) विद्यादि शुभ गुणों के देने वाले (विश्व, देवाः) सब विद्वान् जन (नः) हम लोगों के लिए (शम्) सुखरूप (भवन्तु) होवें (सरस्वती) विद्या सुशिक्षायुक्त वाणी (धीभिः) उत्तम बुद्धियों के (सह) साथ (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो (अभिषाचः) जो अभ्यन्तर आत्मा में सम्बन्ध करते हैं वे (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप हों और (रातिषाचः) विद्यादि दान का सम्बन्ध करने वाले हम लोगों के लिए (शम्) सुखरूप (उ) ही होवें तथा (दिव्याः) शुभ गुण कर्म स्वभावयुक्त (पार्थिवाः) पृथिवी में विदित राजजन वा बहुमूल्य पदार्थ (शम्) सुखरूप और (अप्याः) जलों में उत्पन्न हुए नौकाओं से जाने वाले वा मोती आदि पदार्थ हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप हों ॥११॥

भावार्थः—मनुष्यों को ऐसा आचरण करना चाहिये जिससे सब को सब विद्वान् जन सुन्दर बुद्धि और वाणी विद्या देने वाले योगी जन राजा और शिल्पी जन तथा दिव्य पदार्थ प्राप्त हों ॥११॥

फिर मनुष्य किसकी इच्छा करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शं नः॑ स॒त्यस्य॒ पत॑यो भवन्तु॒ शं नो॒ अर्व॑न्त॒: शमु॑ सन्तु॒ गाव॑: । शं न॑ ऋ॒भव॑: सु॒कृत॑: सु॒हस्ता॒: शं नो॑ भवन्तु पि॒तरो॒ हवे॑षु ॥१२॥

पदार्थः—हे जगदीश्वर वा विद्वान् जैसे (हवेषु) हवन आदि अच्छे कामों में (सत्यस्य) सत्य भाषण आदि व्यवहार के (पतयः) पति (नः) हम लोगों के लिये

(शम्) सुखरूप (भवन्तु) होवें (अर्वन्तः) उत्तम घोड़े (नः) हमारे लिये (शम्) सुखरूप होवें (गावः) दूध देती हुई गौयें (नः) हम लोगों को (शम्) सुखरूप (उ) ही (सन्तु) हों (सुकृतः) धर्मात्मा (सुहस्ताः) सुन्दर अच्छे कामों में हाथ डालने वाले (ऋभवः) बुद्धिमान् जन (नः) हम लोगों के लिए (शम्) सुखरूप हों (पितरः) पितृजन (नः) हम लोगों के लिए (शम्) सुखरूप (भवन्तु) होवें वैसा विधान करो ॥१२॥

भावार्थः— मनुष्यों को ऐसे शील की धारणा करनी चाहिये जिससे आप्त सज्जन प्रसन्न हों जिनकी प्रीति से सब पशु और विद्वान् पितृजन प्रसन्न और सुख करने वाले होवें ॥१२॥

फिर विद्वान् जनों को क्या शिक्षा करनी चाहिये
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ॥१३॥

पदार्थः— हे विद्वानो ! तुम वैसी शिक्षा देओ जैसे (नः) हम लोगों को (अजः) जो कभी नहीं उत्पन्न होता वह जगदीश्वर (एकपात्) जिसके एक पैर में सब जगत् विद्यमान है (देवः) सब सुख देने वाला विद्वान् (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में प्रसिद्ध होने वाला (अहिः) मेघ (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप हो (समुद्रः) जिसमें अच्छे प्रकार जल उछलते हैं वह सागर (नः) हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप हो (अपाम्) जलों का (पेरुः) पार करने वाला और (नपात्) पैर जिसके नहीं हैं वह नौका (नः) हम लोगों के लिए (शम्) सुखरूप (अस्तु) हो (देवगोपाः) और सब की रक्षा करने वाला (पृश्निः) अन्तरिक्ष अवकाश हम लोगों के लिये (शम्) सुखरूप (भवतु) हो ॥१३॥

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको ! तुम हम लोगों को जन्म-मरणादि दोषरहित ईश्वर, मेघ, समुद्र और नौका की विद्या का ग्रहण कराइये जिससे हम लोग सब के रक्षक हों ॥१३॥

फिर मनुष्य क्या अवश्य करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ॥१४॥

पदार्थः—हे विद्वानो जो आप लोग (आदित्याः) अड़तालीस वर्ष प्रमाण से ब्रह्मचर्य सेवन से विद्या पढ़े हुए हों वा (रुद्राः) चवालीस वर्ष प्रमाण ब्रह्मचर्य से

विद्या पढ़े हुए हों वा (वसवः) चालीस वर्ष प्रमाण जिसका है ऐसे ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़े हुए हों वा (दिव्या) शुद्ध मनोहर गुण आदि में प्रसिद्ध वा (पार्थिवासः) पृथिवी में विदित वा (गोजाताः) सुशिक्षित वाणी से उत्पन्न हुए (उत) और (ये) जो (यज्ञियाः) यज्ञ संपादन करने वाले हैं वे (नः) हम लोगों के लिए (इदम्) इस प्रत्यक्ष (नवीयः) अत्यन्त नवीन (क्रियमाणम्) वर्त्तमान में सिद्ध होते हुए (ब्रह्म) बहुत धन वा अन्न को (जुषन्त) सेवें और हम लोगों का पढ़ा हुआ (शृण्वन्तु) सुनें ॥१४॥

भावार्थः—मनुष्यों को चाहिये कि धार्मिक विद्वानों को बुलाय सत्कार कर अन्नादिकों से अच्छे प्रकार तृप्त कर और अपना पढ़ा अच्छे प्रकार सुना शेष इनसे सुनें जिससे भ्रमरहित सब हों ॥१४॥

मनुष्यों को किनसे विद्याध्ययन और उपदेश सुनने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१५॥

पदार्थः—(ये) जो (देवानाम्) विद्वानों के बीच विद्वान् (यज्ञियानाम्) यज्ञ करने के योग्यों में (यज्ञियाः) यज्ञ करने योग्य (मनोः) विचारशील के (यजत्राः) संग करने (अमृताः) अपने स्वरूप से नित्य वा जीवन्मुक्त रहने (ऋतज्ञाः) और सत्य के जानने वाले हैं (ते)वे (अद्य) आज (नः) हम लोगों के लिए (उरुगायम्) बहुतों ने गाये हुए विद्याबोध को (रासन्ताम्) देवें, हे विद्वानो (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) विद्यादि दानों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥१५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो अत्यन्त विद्वान् अत्यन्त शिल्पी सत्य आचरण करने वाले जीवन्मुक्त ब्रह्मवेत्ता जन हम लोगों को विद्या और सुन्दर शिक्षा से निरन्तर उन्नति देते हैं उनको हम संरक्षण देकर सदा सेवें ॥१५॥

इस सूक्त में सर्व सुखों की प्राप्ति के लिए सृष्टिविद्या और विद्वानों के संग का उपदेश किया इससे इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में पैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ नवर्चस्य षट्त्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । विश्वेदेवा देवताः । २ त्रिष्टुप् । ३ । ४ । ६ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ । ९ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ५ पङ्क्तिः । १ । ७ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब नव ऋचावाले छत्तीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः ।
वि सानुना पृथिवी सस्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः ॥१ ।

पदार्थः—(अग्निः) अग्नि के समान विद्वान् जन जैसे (सूर्यः) सूर्य (रश्मिभिः) किरणों से (पृथु) विस्तृत (प्रतीकम्) प्रतीत करने वाले पदार्थ (गाः) किरणों को (वि, ससृजे) विविध प्रकार रचता वा छोड़ता वा (अधि, आ, ईधे) अधिकता से प्रकाशित होता है और जैसे (ऊर्वी) बहुपदार्थयुक्त (पृथिवी) पृथिवी (सानुना) शिखर के साथ (वि, सस्रे) विशेषता से चलती है वैसे आप (ऋतस्य) सत्य के (सदनात्) स्थान से (ब्रह्म) धन को (प्रैतु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों ॥१॥

भावार्थः जो जगदीश्वर आप ही प्रकाशमान और सूर्यादिकों का प्रकाश करने वा बनाने वाला जगत् के प्रकाश के लिए अग्नि और सूर्यलोक को रचता है उसकी उपासना कर सत्य आचरण से मनुष्य ऐश्वर्य को प्राप्त होवें ॥१॥

फिर मनुष्य किसका सेवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्तिमिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ।
इनो वामन्यः पदवीरदब्धो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ॥२॥

पदार्थः—हे (असुरा) प्राणों में रमते हुए (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान अध्यापक और उपदेशको जो (अन्यः) और जन (पदवीः) पद को प्राप्त होता और (अदब्धः) अहिंसित (मित्रः) सखा (इनः) ईश्वर (ब्रुवाणः) उपदेश करता हुआ (वाम्) तुम दोनों को (जनं च) और जन को भी (नवीयः) अत्यन्त नवीन व्यवहार की प्राप्ति कराने का (यतति) यत्न कराता तथा (वाम्) तुम दोनों की (इमाम्) इस प्रत्यक्ष (सुवृक्तिम्) जिससे सुन्दरता से दुःखों की निवृत्ति करते हैं उस सत्य वाणी को (इषम्) इच्छा वा अन्न के (न) समान देता है जिसको कि मैं परोपकार के लिए (कृण्वे) सिद्ध करता हूं उसको मैं तुम नित्य सेवें ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप जो सब के लिये अलग सर्वव्यापी सबका

मित्र जगदीश्वर सबके हित के लिये सदैव प्रवृत्त है उसकी उपासना कर मोक्ष पद को प्राप्त होवें ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिए इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्या अपीपयन्त धेनवो न सूदाः ।
महो दिवः सदने जायमानोऽचिक्रदद्वृषभः सस्मिन्नूधन् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जो (महः) महान् (दिवः) प्रकाश के (सदने) घर में (जायमानः) उत्पन्न होता हुआ (वृषभः) बलिष्ठ (सस्मिन्) अन्तरिक्ष में और (ऊधन्) उषाकाल में (अचिक्रदत्) आह्वान करता जिसमें (ध्रजतः) जाते हुए (वातस्य) पवन के सम्बन्धी (सूदाः) पाप करने वालों के (न) समान (धेनवः) गौयें (इत्याः) जो कि पाने योग्य हैं उनको (रन्ते) रमता और सबको (आ, अपीपयन्त) सब ओर से बढ़ाता है उस सूर्य को युक्ति के साथ उत्तम प्रयोग में लाओ ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जैसे प्रकाशमान पदार्थों में उत्पन्न हुआ रवि अन्तरिक्ष में प्रकाशित होता है वा जिस अन्तरिक्ष में सब प्राणी रमते हैं उसी में सब सुख को प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर वह राजा किसका सत्कार करके उसकी रक्षा करे
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गिरा य एता युनजद्धरी त इन्द्र प्रिया सुरथा शूर धायू ।
प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम् ॥४॥

पदार्थः—हे (शूर) शत्रुओं की हिंसा करने वाले (इन्द्र) राजा (यः) जो (ते) आपके (एता) यह दोनों (सुरथा) सुन्दर रथ वाले (धायू) धारणकर्त्ता (प्रिया) मनोहर (हरी) घोड़ों को (गिरा) वाणी से (युनजत्) युक्त करता है वा (यः) जो (रिरिक्षतः) हिंसा करने की इच्छा किये हुए दुष्ट शत्रु से (मन्युम्) क्रोध को (प्रमिणाति) नष्ट करता है उस (सुक्रतुम्) प्रशंसित बुद्धियुक्त (अर्यमणम्) न्यायकारी सज्जन को मैं (आ, ववृत्याम्) अच्छे प्रकार वर्त्तू ॥४॥

भावार्थः—हे राजा जो रथ आदि के चलाने में कुशल, राजप्रिय, विद्वान् हों तिनको आप न्यायकारी करो ॥४॥

कौन संग करने योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यजन्ते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन् ।
वि पृक्षो बाबधे नृभिः स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठम् ॥५॥

पदार्थः—जो (स्वे) अपने (नमस्विनः) बहुत अन्नयुक्त जन (ऋतस्य) सत्य के (धामन्) धाम में वर्त्तमान (अस्य) इसकी (सख्यम्) मित्रता को (वयः) जीवन को तथा (पृक्षः) अच्छे प्रकार संग करने योग्य अन्न को (यजन्ते) संग करते हैं जो निश्चय से (नृभिः) नायक मनुष्यों के साथ (स्तवानः) स्तुति किया हुआ (रुद्राय) रुलाने वाले के लिये (इदम्) इस (प्रेष्ठम्) अत्यन्त प्रिय और (नमः) अन्न आदि पदार्थ को (वि, बाबधे) विशेषता से बांधता है उस (च) और उन को हम लोग संग करावें ॥५॥

भावार्थः - जो अच्छे पुरुष सग करने वाले, सब के मित्र और सब का दीर्घ जीवन अन्नादि ऐश्वर्य्य को करना चाहते हैं वे ही लोक में अत्यन्त प्यारे होते हैं ॥५॥

फिर कैसी स्त्रियां श्रेष्ठ होती हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ यत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता ।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः ॥६॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जिन की (सिन्धुमाता) नदियों का परिमाण करने वाली सी (यत्) जो (सप्तथी) सातवीं (सरस्वती) उत्तम वाणी वर्त्तमान (याः) जो (स्वेन) अपने (पयसा) जल के (साकम्) साथ (पीप्यानाः) बढ़ती हुई नदियों के समान (सुदुघाः) सुन्दर रीति से इच्छाओं को पूरा करने वाली (सुधाराः) सुन्दर धाराओं से युक्त (यशसः) कीर्त्ति की (वावशानाः) कामना करती हुईं विदुषी स्त्री (अभ्यासुष्वयन्त) सब ओर से जाती हैं वे निरन्तर मान करने योग्य होती हैं ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जैसे छः अर्थात् पांच ज्ञानेन्द्रिय और मन के बीच कर्मेन्द्रिय वाणी सुन्दर शोभा-युक्त है और जैसे जल से पूर्ण नदी शोभा पाती हैं वैसे विद्या और सत्य की कामना करती हुईं पूर्ण कामना वाली स्त्री श्रेष्ठ और मान करने योग्य होती हैं ॥६॥

कौन विद्वान् जन श्रेष्ठ होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत त्ये नो मरुतो मन्दसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवन्तु ।
मा नः परि ख्यदक्षरा चरन्त्यवीवृधन्युज्यं ते रयिं नः ॥७॥

पदार्थः—(त्ये) वे (वाजिनः) प्रशंसित विज्ञान वाले (मन्दसानाः) कामना करते हुए (मरुतः) विद्वान् जन (नः) हमारी (धियम्) बुद्धि को (उत) और (तोकम्)

सन्तान को (च) भी (अवन्तु) बढ़ावें जैसे (चरन्ती) प्राप्त होती हुई (अक्षरा) अविनाशिनी वाणी (नः) हम लोगों को (मा) मत (परिख्यत्) सब ओर से वर्जे वैसे (नः) हम लोगों के सम्बन्ध में (ते) आप के (युज्यम्) योग्य (रयिम्) धन को (अवीवृधन्) बढ़ावें ॥७॥

भावार्थः—वे ही विद्वान् जन अति उत्तम हैं जो सब के पुत्र और कन्याओं को ब्रह्मचर्य्य से रक्षा कर और बढ़ा कर उत्तम ज्ञाता करते हैं ॥७॥

फिर विद्वान् जन और विद्यार्थी परस्पर कैसे वर्त्तें
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र वो॑ म॒हीम॒रम॑तिं कृणुध्वं॒ प्र पू॒षणं॑ विद॒थ्यं१॒॑ न वी॒रम् ।
भगं॑ धि॒योऽवि॒तारं॑ नो अ॒स्याः सा॒तौ वाजं॑ राति॒षाचं॒ पुरं॑धिम् ॥८॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जैसे तुम (नः) हमारी (पूषणम्) पुष्टि करने वाले (विदथ्यम्) संग्रामों में उत्तम (वीरम्) शूरता आदि गुणों से युक्त जन के (न) समान (वः) तुम्हारी (अरमतिम्) पूर्णमति (महीम्) बड़ी वाणी (भगम्) ऐश्वर्य्य (धियः) बुद्धियों और (अवितारम्) बढ़ाने वाले (अस्याः) इस बुद्धिमात्र के तथा (सातौ) अच्छे भाग में (पुरन्धिम्) बहुत सुख धारण करने वाले (रातिषाचम्) दानसम्बन्धि (वाजम्) विज्ञान को (प्र, कृणुध्वम्) अच्छे प्रकार सिद्ध करो वैसे इन को हम लोग भी (प्र) सिद्ध करें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जैसे विद्वान् जन अध्यापक और उपदेशक सब की बुद्धि आयु विद्या की वृद्धि और शूरवीरों के समान सर्वदा रक्षा करते हैं वैसे उन की सेवा और सत्कार सब को सदा करने योग्य हैं ॥८॥

कौन विद्वान् सेवा करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अच्छा॒यं वो॑ मरुतः॒ श्लोक॑ ए॒त्वच्छा॒ विष्णुं॑ निषिक्त॒पाम॒वो॑भिः ।
उ॒त प्र॒जायै॑ गृण॒ते वयो॑ धु॒र्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥९॥

पदार्थः—हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! जैसे (अयम्) यह (वः) तुम्हारी (श्लोकः) शिक्षायुक्त वाणी (अवोभिः) रक्षाओं के साथ (निषिक्तपाम्) जो धर्म के बीच अभिषेक पाये हुए [हैं उन के रक्षक] (विष्णुम्) व्यापक परमेश्वर को (अच्छ, एतु) अच्छे प्रकार प्राप्त हो (उत) और जो (प्रजायै गृणते) स्तुति करने वाली प्रजा के लिये (वयः) जीवन को (अच्छा) अच्छे प्रकार (धुः) धारण करते हैं जैसे (यूयम्)

तुम (स्वस्तिभिः) सुखों के साथ (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदैव (पात) रक्षा करो ॥८॥

भावार्थः—जानने की इच्छा वालों को वेदवेत्ता ब्रह्म के जानने वाले अध्यापक और उपदेशकों को प्राप्त होकर परमेश्वर आदि की विद्याओं का संग्रह कर सर्वदैव सब प्रकार से सब की रक्षा और उन्नति बढ़ानी चाहिये ॥८॥

इस सूक्त में विश्वे देवों के कर्म और गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की संगति इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में छत्तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य सप्तत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । विश्वेदेवा देवताः । १ त्रिष्टुप् । २ । ३ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ । ८ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ निचृत्पङ्क्तिः । ६ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सैंतीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् जन क्या प्राप्त करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः ।
अभि त्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैर्मदे सुशिप्रा महभिः पृणध्वम् ॥१॥

पदार्थः—हे (सुशिप्राः) सुन्दर ठोढ़ी और नासिका वाले (वाजाः) विज्ञानवान् (ऋभुक्षणः) मेधावी बुद्धिमान् जो (वः) तुम्हारा (अमृक्तः) न नष्ट हुआ (वाहिष्ठः) अत्यन्त पहुंचाने वाला (रथः) रमण करने योग्य यान (मदे) आनन्द के लिए (त्रिपृष्ठैः) तीन जानने योग्य रूप जिन के विद्यमान उन (महभिः) सत्कार और (सोमैः) ऐश्वर्य्य वा ओषधि आदि पदार्थों से (सवनेषु) उत्तम कामों में (स्तवध्यै) स्तुति करने को हम को सब ओर से पहुंचाता है वही तुम को (अभ्यावहतु) सब ओर पहुंचावे उस को तुम (पृणध्वम्) पूरो, सिद्ध करो ॥१॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! तुम हम लोगों को रथ से चाहे हुए स्थान को पहुंचाने के समान पढ़ाने से विद्या को पहुंचाओ ॥१॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यूयं ह रत्नं मघवत्सु धत्थ स्वर्दृश ऋभुक्षणो अमृक्तम् ।
सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वम् ॥२॥

पदार्थः—हे (स्वधावन्तः) बहुत अन्नादि पदार्थयुक्त (स्वर्दृशः) सुख देखते हुए (ऋभुक्षणः) मेधावी विद्वान् जनो (यूयम्, ह) तुम्हीं (मतिभिः) बुद्धियों से (मघवत्सु) बहुत धनयुक्त व्यवहारों में (रत्नम्) रमणीय धन को (सं, धत्थ) अच्छे प्रकार धारण करो (यज्ञेषु) संग करने योग्य व्यवहार में (अमृक्तम्) विनाश को नहीं प्राप्त ऐसे बड़ी ओषधियों के रस को (पिबध्वम्) पीओ और (नः) हमारे (राधांसि) धनों को (वि, दयध्वम्) विशेष दया से चाहो ॥२॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन हैं वे प्रजाओं में ब्रह्मचर्य्य विद्या उत्तम क्रिया बड़ी बड़ी ओषधियों और धनों को बढ़वाकर सुखी हों ॥२॥

फिर धनाढ्य किस को दान देवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उवोचिथ हि मघवन्देष्णं महो अर्भस्य वसुनो विभागे ।
उभा ते पूर्णा वसुना गभस्ती न सूनृता नि यंमते वसव्या ॥३॥

पदार्थः—हे (मघवन्) बहुधनयुक्त (हि) जिस से आप (महः) बहुत वा (अर्भस्य) थोड़े (वसुनः) धन के (विभागे) विभाग में (देष्णम्) देने योग्य को (उवोचिथ) कहो जिन (ते) आप के (उभा) दोनों (गभस्ती) हाथ (वसुना) धन से (पूर्णा) पूर्ण वर्त्तमान हैं उन आपकी (वसव्या) धनों में उत्तम (सूनृता) सत्य और प्रिय वाणी किसी से भी (न) नहीं (नियमते) नियम को प्राप्त होती अर्थात् रुकती ॥३॥

भावार्थः—जो धनाढ्य जन बहुत वा थोड़े धन वा सुपात्र और कुपात्र वा धर्म और अधर्म के विभाग में सुपात्र और धर्म की वृद्धि के लिये धन दान करते हैं उन की कीर्ति चिरकाल तक ठहरने वाली होती है ॥३॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वमिन्द्र स्वयंशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा ।
वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः ॥४॥

पदार्थः—हे (हरिवः) प्रशंसित मनुष्यो (इन्द्र) और योगैश्वर्यों से युक्त जन जो (ऋभुक्षाः) मेधावी (स्वयशाः) अपनी कीर्ति से युक्त (ऋक्वा) सत्कार करने वाले (वाजः) ज्ञानवान् के (न) समान (साधुः) सत्कर्म सेवने हारे (त्वम्) आप (अस्तम्) घर को (एषि) प्राप्त होते हैं उन (ते) आप के (ब्रह्म) धन वा अन्न को (नु) शीघ्र (कृण्वन्तः) सिद्ध करते हुए (वसिष्ठाः) अतीव अच्छे गुण कर्मों के बीच निवास करने वाले (वयम्) हम लोग (दाश्वांसः) दानशील (स्याम) हों ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो अच्छे मार्गों में स्थिर, साधु जनों के समान धर्मों का आचरण करते हैं वे ऐश्वर्य के साथ हो अर्थात् ऐश्वर्यवान् होकर दानशील होते हैं ॥४॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सनिंतासि प्रवतो दाशुषे चिद्याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः ।
ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ॥५॥

पदार्थः—हे (हर्यश्व) सद्गुण और हरणशील घोड़ों वाले (इन्द्र) परम सुखप्रद विद्वान् जिस से आप (याभिः) जिन (युज्याभिः) युक्त करने योग्य विद्याओं (चित्) और (धीभिः) बुद्धियों से (ऊतीः) तथा रक्षा आदि क्रिया से (दाशुषे) देने वाले के लिये (सनिता) विभाग करने वाले (असि) हैं (प्रवतः) नम्रत्व आदि गुणों के देने वालों के (रायः) धनों को (विवेषः) प्राप्त होते हैं हम लोग (ते) आप के जिन पदार्थों को (ववन्म) मांगते हैं उन को (नु) आश्चर्य है आप (नः) हम लोगों के लिये (कदा) कब (आदशस्येः) देओगे ॥५॥

भावार्थः—मनुष्यों को विद्वानों से सदा उत्तम विद्या लेनी चाहिये और विद्वान् भी यथावत् अच्छे प्रकार देवें ॥५॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः ।
अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ॥६॥

पदार्थः—हे (इन्द्र) सुख देने वाले (त्वम्) आप (तात्या) व्याप्त परमेश्वर में उत्तमता से स्थिर होने वाली (धिया) बुद्धि से (नः) हम (वेधसः) बुद्धिमान् जनों को (वासयसीव) बसाते हुए से (नः) हमारे (वचसः) वचन को (कदा) कब (बुबोधः) जानोगे (वाजी) (विज्ञानवान्) आप (अर्वा) घोड़े के समान (नः) हम लोगों को (सुवीरम्) जिससे अच्छे अच्छे वीर जन होते हैं उस (रयिम्) धन को कब (नि, उहीत) प्राप्त करियेगा और हमारे (अस्तम्) घर को प्राप्त होकर (पृक्षः) संपर्क करने योग्य अन्न कब सेवोगे ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—सब मनुष्य विद्वानों के प्रति ऐसी प्रार्थना करें आप लोग हमें कब विद्वान् करके धन धान्य स्थान आदि पदार्थ और ऐश्वर्य्य को प्राप्त करावेंगे ॥६॥

फिर मनुष्य कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इन्द्रं शरदः सुपृक्षः ।
उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृणवन्त मर्ताः ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (यम्) जिस पदार्थ को (निर्ऋतिः) भूमि (चित्) वैसे (देवी) विदुषी स्त्री उसको (अभ्येति) सब ओर से प्राप्त होती वा (सुपृक्षः) जो सुन्दर अन्न वाला (त्रिबन्धुः) तीन जनों का बन्धु जिस (जरदष्टिम्) वृद्धावस्था को (ईशे) ऐश्वर्ययुक्त करता है जिस (इन्द्रम्) सूर्य को (शरदः) शरद् आदि ऋतु (नक्षन्ते) व्याप्त होती हैं जिस (अस्ववेशम्) अपने रूप को न धारण किये हुए का (मर्ताः) मनुष्य (उप, कृणवन्त) उपकार करते हैं उन सब का हम भी उपकार करें ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम जैसे शरीर वाणी और मन से उत्पन्न हुए तीन प्रकार के सुख को प्राप्त विद्वान् जन हृदय से चाही हुई भार्या को प्राप्त होता है स्त्री भी प्रिय पति को प्राप्त होकर आनन्दित होती वा जैसे ऋतु अपने अपने समय को प्राप्त होकर सब को आनन्दित करती वा जैसे स्वभाव से ही कौमार आदि अवस्था आती हैं वैसे ही परस्पर में प्रीति कर प्रयत्न करो ॥७॥

मनुष्य परमेश्वर की आज्ञा पालने से और पुरुषार्थ से लक्ष्मी की उन्नति करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यन्तु पर्वतस्य रातौ ।
सदा नो दिव्यः पायुः सिषक्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८॥

पदार्थः—हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पन्न करने वाले जगदीश्वर आप की (स्तवध्यै) स्तुति करने को (नः) हम लोगों को (राधांसि) धन (आ, यन्तु) मिलें (पर्वतस्य) मेघ के (रातौ) देने में (रायः) धन आवें (दिव्यः) शुद्ध गुण कर्म और स्वभाव में प्रसिद्ध हुए (पायुः) रक्षा करने वाले आप (नः) हम लोगों को सदा (आसिषक्तु) सुखों से संयुक्त करें, हे विद्वानो ! इस विज्ञान से सहित (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदैव (पात) रक्षा करो ॥८॥

भावार्थः—जो सत्य भाव से परमेश्वर की उपासना कर न्याययुक्त व्यवहार से धन पाने को चाहते हैं और जो सदा आप्त अति सज्जन विद्वान् का संग सेवते हैं वे दारिद्र्य कभी नहीं सेवते हैं ॥८॥

इस सूक्त में विश्वेदेवों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में सैंतीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्याष्टत्रिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । १–६[१] सविता देवता । ६[२] सविता भगो वा । ७ । ८ वाजिनः । १ । ३ । ८ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ४ । ६ स्वराट् पङ्क्तिः । भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब अड़तीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को किसकी उपासना करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं

उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्वि यो रत्ना पुरूवसुर्दधाति ॥१॥

पदार्थः—(यः) जो (भगः) सेवन करने योग्य सकलैश्वर्ययुक्त (पुरूवसुः) बहुत धनों वाला (सविता) सकलैश्वर्य देने हारा (देवः) दाता ईश्वर (मानुषेभिः) मनुष्यों से (नूनम्) निश्चय से (हव्यः) स्तुति करने योग्य है जो हम लोगों के कामों को (विदधाति) सिद्ध करता है (स्यः) वह जगदीश्वर (उ) ही (याम्) जिस (हिरण्ययीम्) हिरण्यादि रत्नों वाली (अमतिम्) सुन्दर रूपवती लक्ष्मी को तथा (रत्ना) रमण करने योग्य धनों को (अशिश्रेत्) आश्रय करता है उसका हम लोग (उद्ययाम) उत्तम नियम पालें ॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य परमेश्वर की उपासना करते हैं वे श्रेष्ठ लक्ष्मी को प्राप्त होते हैं ॥१॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्य१स्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।
व्यु१र्वीं पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्तभोजनं सुवानः ॥२॥

पदार्थः—(हिरण्यपाणे) हित से रमणरूप व्यवहार जिसका (सवितः) वह अन्तर्यामी हे जगदीश्वर आप (अस्य) इस जीव की स्तुति (श्रुधि) सुनिये (ऊ) और इसके हृदय में (उत्तिष्ठ) उठिये अर्थात् उत्कर्ष से प्राप्त हूजिये और (ऋतस्य) सत्य कारण की (प्रभृतौ) अत्यन्त धारणा में (अमतिम्) अच्छे अपने रूप वाली (उर्वीम्) बहुत पदार्थयुक्त (पृथ्वीम्) पृथिवी को (वि, सृजानः) उत्पन्न करते हुए (नृभ्यः)

मनुष्यों के लिये (मर्त्तभोजनम्) मनुष्यों को जो भोजन है उसे (आ, सुवानः) प्रेरणा देते हुए कृपा कीजिये ॥२॥

भावार्थः—जो सत्य भाव से धर्म का अनुष्ठान कर योग का अभ्यास करते हैं उनके आत्मा में परमात्मा प्रकाशित होता है जिस ईश्वर ने समस्त जगत् उत्पन्न कर मनुष्यादिकों का अन्नादि से हित सिद्ध किया उसको छोड़ किसी और की उपासना मनुष्य कभी न करें ॥२॥

फिर कौन सब को प्रशंसा करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद्विश्वे वसवो गृणन्ति ।
स नः स्तोमान्नमस्य१श्चनो धाद्विश्वेभिः पातु पायुभिर्नि सूरीन् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यम्, चित्) जिस परमेश्वर की (विश्वे) सब (वसवः) ये विद्वान् जन जिन में विद्या वसती है (गृणन्ति) स्तुति करते हैं वह (सविता) सब को उत्पन्न करने वाला (देवः) सूर्यादिकों का भी प्रकाशक ईश्वर हम लोगों से (आस्तुतः) अच्छे प्रकार स्तुति को प्राप्त (अस्तु) हो और वह (अपि) भी (नमस्यः) नमस्कार करने योग्य हो (नः) हमारी (स्तोमान्) प्रशंसाओं को और (चनः) अन्नादि ऐश्वर्य को भी (धात्) धारण करे तथा (सः) वह (विश्वेभिः) सब के साथ (पायुभिः) रक्षाओं से (सूरीन्) विद्वानों की (नि, पातु) निरन्तर रक्षा करे ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिस ईश्वर की सब धर्मात्मा सज्जन प्रशंसा करते हैं जो हम लोगों की निरन्तर रक्षा करता हम लोगों के लिये समस्त विश्व का विधान करता है उसी की हम लोग सदा प्रशंसा करें ॥३॥

फिर मनुष्यों को किसकी प्रशंसा करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुषाणा ।
अभि सम्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोषाः ॥४॥

पदार्थः— हे मनुष्यो (सवितुः) प्रेरणा देने वाला अन्तर्यामी (देवस्य) सर्व सुखदाता जगदीश्वर के (सवम्) उत्पन्न किये जगत् की (जुषाणा) सेवा करती हुई (देवी) विदुषी (अदितिः) माता जिस को (अभि, गृणाति) सन्मुख [= सम्मुख] कहती है वा (वरुणः) श्रेष्ठ विद्वान् जन (सजोषाः) समान प्रीति सेवने वाला (अर्यमा) न्यायाधीश और (मित्रासः) सब के सुहृद् (सम्राजः) अच्छे प्रकार प्रकाशमान चक्रवर्ती राजजन (यम्) जिसकी (अभि, गृणन्ति) सब ओर से स्तुति करते हैं उसी की सब निरन्तर स्तुति करें ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! तुम उसी प्रशंसा करने योग्य परमेश्वर की स्तुति करो जिस की स्तुति करके विदुषी स्त्री राजा और विद्वान् जन चाहा हुआ फल पाते हैं ॥४॥

फिर मनुष्य परस्पर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि ये मिथो वनुषः सपन्ते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः ।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु ॥५॥

पदार्थः—(ये) जो (दिवः) मनोहर (रातिषाचः) दान देने वाले के (एकधेनुभिः) एक वाणी ही है सहायक जिनकी उनके साथ (मिथः) परस्पर (वनुषः) मांगते हुए (नः) हम लोगों को (रातिम्) देने को (अभि, सपन्ते) अच्छे प्रकार सब ओर से नियम करते हैं (उत) और (वरूत्री) स्वीकार करने योग्य माता (बुध्न्यः) अन्तरिक्ष में प्रसिद्ध हुए (अहिः) मेघ के समान हम लोगों को (पृथिव्याः) भूमि और अन्तरिक्ष के बीच (नि, पातु) निरन्तर रक्षा करे वह समस्त जनमात्र हमारा पढ़ा हुआ (शृणोतु) सुने ॥५॥

भावार्थः—जो हम लोगों को विद्याहीन देख निन्दा करते और विद्वान् देख प्रशंसा करते और एकता के लिये प्रेरणा देते हैं वे ही हमारे कल्याण करने वाले होते हैं ॥५॥

फिर राजा आदि मनुष्यों को क्या करके क्या प्राप्त करने योग्य है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम् ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (उग्रः) तेजस्वी (जास्पतिः) प्रजा पालने वाला (सवितुः) सर्वान्तर्यामी (देवस्य) सब प्रकाश करने वाले के (भगम्) ऐश्वर्य्य को (इयानः) प्राप्त होता हुआ जिस (रत्नम्) रमणीय धन को स्वार्थ (मंसीष्ट) मानता है (तत्) उस को (नः) हम लोगों के लिये (अनु) अनुकूल माने जिस (भगम्) ऐश्वर्य्य को (अवसे) रक्षा आदि के लिए (अनुग्रः) तेजरहित जन (जोहवीति) निरन्तर ग्रहण करता है वह (रत्नम्) रमणीय धन (अधः) हीन दशा को (याति) प्राप्त होता है ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो राजा परमेश्वर की सृष्टि में सब की रक्षा के लिये प्रवृत्त होता है वही सब ऐश्वर्य को पाकर सब को आनन्दित करता है ॥६॥

फिर कौन इस संसार में कल्याण करने वाले होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शं नो॑ भवन्तु वा॒जिनो॒ हवे॑षु दे॒वता॑ता मि॒तद्र॑वः स्व॒र्काः ।
ज॒म्भय॒न्तोऽहिं॒ वृकं॒ रक्षां॑सि॒ सने॑म्य॒स्मद्यु॑यव॒न्नमी॑वाः ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वानो (वाजिनः) वेगवान् घोड़ा वा ज्ञानवान् योद्धा पुरुष (मितद्रवः) जो प्रमाण भर जाते हैं (स्वर्काः) जिन का शुभ अन्नादि है (हवेषु) वे संग्रामों में (देवताता) वा विद्वानों के अनुष्ठान करने योग्य यज्ञ में (अहिम्) सर्प के समान वर्तमान (वृकम्) चोर को और (रक्षांसि) दुष्ट प्राणियों को (जम्भयन्तः) जम्भाई दिलाते हुए (नः) हम लोगों को (शम्) सुख के लिये (भवन्तु) होवें जिस से (अस्मत्) हम लोगों से (सनेमि) पुराने व्यवहार में (अमीवाः) रोग (युयवन्) अलग हों ॥७॥

भावार्थः—जो दुष्ट आचार वाले प्राणी, रोग और शत्रुओं को निवार के सब के सुख करने वाले होते हैं वे ही जगत्पूज्य होते हैं ॥७॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वाजे॑वाजेऽवत वाजिनो नो॒ धने॑षु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अ॒स्य मध्वः॑ पिबत मा॒दय॑ध्वं तृ॒प्ता या॑त प॒थिभि॑र्देव॒यानैः॑ ॥८॥

पदार्थः—हे (अमृताः) मृत्युरहित (ऋतज्ञाः) सत्य व्यवहार वा ब्रह्म के जानने वाले (वाजिनः) बहु विज्ञान अन्न बल और वेगयुक्त (विप्राः) मेधावी सज्जनो तुम (धनेषु) धनों में (वाजेवाजे) और संग्राम संग्राम में (नः) हम लोगों की (अवत) रक्षा करो (अस्य) इस (मध्वः) मधुरादि गुणयुक्त रस को (पिबत) पीओ, हम लोगों को (मादयध्वम्) आनन्दित करो और (तृप्ताः) तृप्त होते हुए (देवयानैः) विद्वानों के मार्ग जिन से जाना होता उन (पथिभिः) मार्गों से (यात) जाओ ॥८॥

भावार्थः—विद्वानों के प्रति ईश्वर की यह आज्ञा है कि तुम धार्मिक विद्वान् होकर सब की रक्षा निरन्तर करो और आनन्दित तथा बड़ी ओषधियों के रस से नीरोग हुए सब को आनन्दित और तृप्त कर धर्मात्माओं के मार्गों से आप चलते हुए औरों को निरन्तर उन्हीं मार्गों से चलावें ॥८॥

इस सूक्त में सविता, ऐश्वर्य, विद्वान् और विदुषियों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में अड़तीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्यैकोनचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । विश्वेदेवा देवताः । १ । २ । ५ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् । ४ । ६ । विराट् त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले उनतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उस के प्रथम मन्त्र में विद्वान् स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति ।

भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति ॥१॥

पदार्थः—जो (जूर्णिः) जीर्ण (प्रतीची) वा कार्य के प्रति सत्कार करने वाली विदुषी पत्नी (ऊर्ध्वः) ऊपर जाने वाले (अग्निः) अग्नि के समान (देवतातिम्) विद्वानों के अनुष्ठान किये हुए यज्ञ को और (सुमतिम्) श्रेष्ठमति को (अश्रेत्) आश्रय करे वा (रथ्येव) जैसे रथों में उत्तम घोड़े वैसे (ऋतम्) सत्य (पन्थाम्) मार्ग को (एति) प्राप्त होती वा जैसे (अद्री) निन्दारहित पत्नी और यजमान (वस्वः) धन को (भेजाते) भजते हैं वा जैसे (इषितः) इच्छा को प्राप्त (होता) देने वाला (नः) हम लोगों को (यजाति) संग करे उन सब का और उस का वैसे ही सब सत्कार करें ॥१॥

भावार्थः—इस मंत्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं—जहां स्त्री पुरुष ऐसे हैं कि जिन्होंने बुद्धि उत्पन्न की है पुरुषार्थी हैं, अच्छे काम में आचरण करते हैं वहां सब लक्ष्मी विराजमान है ॥१॥

फिर वे स्त्री-पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते ।

विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥२॥

पदार्थः—जो स्त्री पुरुष (बीरिटे) अन्तरिक्ष में सूर्य और चन्द्रमा के समान (इयाते) जाते हैं (विश्पतीव) वा प्रजा पालने वाले राजा के समान (अक्तोः) रात्रि की (उषसः) और दिन की (पूर्वहूतौ) अगले विद्वानों ने की स्तुति के निमित्त जाते हैं वा (पूषा) पुष्टि करने वाले (वायुः) प्राण के समान (नियुत्वान्) नियमकर्त्ता ईश्वर (विशाम्) प्रजा जनों के (स्वस्तये) सुख के लिये हो (एषाम्) इन में से जो कोई (सुप्रयाः) सब को अच्छे प्रकार तृप्त करता है वा (बर्हिः) उत्तम सब का बढ़ाने वाला कर्म (आ, प्र, वावृजे) सब ओर से अच्छे प्रकार प्राप्त होता है उन सब का सब सत्कार करें ॥२॥

भावार्थः— इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं— सदैव जो स्त्री-पुरुष न्यायकारी राजा के समान प्रजा पालना, ईश्वर के समान न्यायाचरण, पवन के समान प्रिय पदार्थ पहुंचाना और संन्यासी के तुल्य पक्षपात और मोहादिदोष त्याग करने वाले होते हैं वे सर्वार्थ सिद्ध हों ॥२॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः ।
अर्वाक्पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ॥३॥

पदार्थः—हे (उरुज्रयः) बहुत जाने और (शुभ्राः) शुद्ध आचरण करने वाले (वसवः) विद्या में वास किये हुए (देवाः) विद्वान् जनो तुम (उरौ) बहुव्यापक (अन्तरिक्षे) आकाश में (अत्र) इस संसार में (ज्मयाः) भूमि के बीच (रन्त) रमो (अर्वाक्) पीछे (पथः) मार्गों को (मर्जयन्त) शुद्ध करो (अस्य) इस (दूतस्य) दूत को (नः) हम लोगों को (जग्मुषः) जाने, प्राप्त होने वा जानने वाले (कृणुध्वम्) करो और हमारी विद्याओं को (श्रोत) सुनो ॥३॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! तुम धर्म-मार्गों को शुद्ध प्रचरित कर दूत के समान सब जगह घूम, धर्म का विस्तार कर सब मनुष्यों को विद्या सुखयुक्त करो ॥३॥

फिर विद्वान् कैसे हों और क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः ।
ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरंधिम् ॥४॥

पदार्थः—(ते) वे (हि) ही (यज्ञियासः) यज्ञ सिद्ध करने (ऊमाः) और रक्षा करने वाले (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् (यज्ञेषु) विद्या देने व लेने के व्यवहारों में (अभि, सन्ति) सन्मुख [=सम्मुख] वर्त्तमान हैं (तान्) उन (अध्वरे) अहिंसनीय व्यवहार में (सधस्थम्) एक से स्थान को (उशतः) चाहने वाले विद्वानों को मैं (यक्षि) मिलूं जो (नासत्या) असत्य व्यवहार रहित अध्यापक और उपदेशक (पुरंधिम्) बहुत सुखों के धारण करने वाले (भगम्) ऐश्वर्य को (श्रुष्टी) शीघ्र देवें, उनको जैसे मैं मिलूं वैसे ही हे (अग्ने) विद्वान् आप भी इन को मिलो ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो सत्यविद्या और धर्म के प्रकाश करने वाले वेदवेत्ता अध्यापक, उपदेशक, विद्वान् सब मनुष्य आदि की उन्नति करते हैं वे ही सर्वदा सर्वथा सब को सत्कार करने योग्य होते हैं ॥४॥

फिर विद्वान् जन क्या जान कर क्या दूसरों को जतलावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्याः मित्रं वह वरुणमिन्द्रमग्निम् ।
आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्ताम् ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वन् आप (दिवः) बिजुली और सूर्यादि प्रकाशवान् पदार्थों की विद्या का प्रकाश करने वाली वा (पृथिव्याः) भूमि आदि पदार्थों का प्रकाश करने वाली (गिरः) सुन्दर शिक्षित वाणियों को (आ, वह) प्राप्त कीजिये (मित्रम्) मित्र (वरुणम्) अतिश्रेष्ठ (इन्द्रम्) परमैश्वर्यवान् राजा (अग्निम्) अग्नि (अर्यमणम्) न्यायाधीश (अदितिम्) अन्तरिक्ष (विष्णुम्) व्यापक वायु को (आ) प्राप्त कीजिये और जो (एषाम्) इनकी विद्यायुक्त (सरस्वती) वाणी उसको जानकर हमारे अर्थ (आ) प्राप्त कीजिये हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो उक्त विद्या को देकर हम लोगों को आप (मादयन्ताम्) आनन्दित कीजिये ॥५॥

भावार्थः - जो मनुष्य बिजुली आदि की विद्या को प्राप्त होकर औरों को प्राप्त कराते हैं वे सबका आनन्द करने वाले होते हैं ॥५॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ररे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत्कामं मर्त्यानामसिन्वन् ।
धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः ॥६॥

पदार्थः—जो (मतिभिः) प्राज्ञ मनुष्यों के साथ वा (युज्येभिः) योग करने योग्य (देवैः) विद्वानों के साथ (यज्ञियानाम्) यज्ञ सम्पादन करने वाले (मर्त्यानाम्) मनुष्यों के (हव्यम्) ग्रहण करने योग्य (कामम्) काम को (असिन्वन्) निबन्ध करते हैं जिस (अविदस्यम्) अक्षीण विनाशरहित (सदासाम्) सदैव अच्छे प्रकार सेवने योग्य (रयिम्) धन को (धाता) धारण करते हैं वा जो इनके साथ उसको (नक्षत्) व्याप्त होता है उसको मैं (ररे) देऊं हम सब लोग इनके साथ उसको (नु) शीघ्र (सक्षीमहि) व्याप्त होवें ॥६॥

भावार्थः—जो विद्वान् अन्य मनुष्यों का काम पूरा करते हैं वे पूर्णकाम होते हैं ॥६॥

फिर विद्वान् जन औरों के लिए क्या देवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—जैसे (वरुणः) श्रेष्ठ (मित्रः) मित्र (अग्निः) अग्नि के समान विद्यादि शुभ गुणों से प्रकाशित और (ऋतावानः) सत्य को याचने वा (चन्द्राः) हर्ष करने वाले जन (वसिष्ठैः) अतीव वसाने वाले के साथ (अभिष्टुते) सब ओर से प्रशंसित (रोदसी) प्रकाश और पृथिवी (उपमम्) जिससे उपमा दी जावे उस (अर्कम्) सत्कार करने योग्य अन्न वा विचार को (नः) हम लोगों के लिए (नु) शीघ्र (यच्छन्तु) देवें वैसे हे विद्वानो (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हमारी (सदा) सदैव (पात) रक्षा कीजिये ।।७।।

भावार्थः—जो विद्वान् जन धर्मात्मा, विद्वानों के साथ जिसकी उपमा नहीं उस विज्ञान को देते हैं वे हम लोगों की रक्षा कर सकते हैं ।।७।।

इस सूक्त में विश्वेदेवों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ।।

यह सप्तम मण्डल में उनतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ सप्तर्चस्य चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । विश्वेदेवा देवताः । १ पङ्क्तिः । ३ भुरिक्पङ्क्तिः । ६ विराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ४ विराट्त्रिष्टुप् । ५ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

अब सात ऋचा वाले चालीसवें सूक्त का प्रारम्भ किया जाता है, उसके प्रथम मन्त्र में फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ।।

ओ श्रुष्टिर्विदथ्या३ समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणाम् ।
यद्द्य देवः संविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे ।।१।।

पदार्थः—(ओ) ओ विद्वान् जैसे (श्रुष्टिः) शीघ्र करने वाला (विदथ्या) संग्रामादि व्यवहारों में हुई (तुराणाम्) शीघ्रकारियों के (प्रति, स्तोमम्) समूह समूह के प्रति (समेतु) अच्छे प्रकार प्राप्त होवे वैसे इस समूह को हम लोग (दधीमहि) धारण करें (यत्) जो (अद्य) अब (देवः) विद्वान् (सविता) अच्छे कामों में प्रेरणा देने वाला (विभागे) विशेष कर सेवने योग्य व्यवहार में (अस्य) इस विद्वान् के (रत्निनः) उन व्यवहारों को जिनमें बहुत रत्न विद्यमान और स्तुति समूह को (सुवाति) उत्पन्न करता है वैसे हम लोग उत्पन्न करने वाले (स्याम) हों ।।१।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे विदुषी माता सन्तानों की रक्षा कर और अच्छी शिक्षा देकर बढ़ाती है वैसे विद्वान् जन हमको बढ़ावें ।।१।।

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु ।
दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च ॥२॥

पदार्थः—जो (रोदसी) आकाश और पृथिवी के समान (मित्रः) मित्र (अर्यमा) न्यायकारी (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् राजा (वरुणः) जलसमूह (वायुः) और पवन (च) भी (द्युभक्तम्) जो प्रकाश को सेवता है (तत्) उसको (नः) हम लोगों के लिए (ददातु) देओ और (देवी) विदुषी (अदितिः) स्वरूप से अखण्डित (भगः) और ऐश्वर्यवान् (च) भी (यत्) जिस (रेक्णः) अधिक धन को (नियुवैते) निरन्तर जोड़ें उसका विद्वान् जन हमें (च) भी (दिदेष्टु) उपदेश करें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है-मनुष्य सर्वदा पुरुषार्थ से सबको ऐश्वर्ययुक्त करावें ॥२॥

कौन सुरक्षित विद्वान् होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ ।
उतेमग्निः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति ॥३॥

पदार्थः—हे (मरुतः) विद्वान् मनुष्यो ! (पृषदश्वाः) सींचे हुए जल और अग्नि से जल्दी चलने वाले बड़े (यम्) जिस (मर्त्यम्) मनुष्य को (अवाथ) रक्खें (स, इत्) वही (उग्रः) तेजस्वी (सः) वह (शुष्मी) बहुत बलवान् (अस्तु) हो जिसको विद्वान् (जुनन्ति) प्रेरणा देते हैं (तस्य) उसके (रायः) धनों को (पर्येता) वर्जन करने वाला (न) नहीं होता है (उत, ईम्) और सब ओर से (अग्निः) अग्नि के समान (सरस्वती) शुद्ध वाणी उसकी उत्तम (अस्ति) है ॥३॥

भावार्थः—जिन मनुष्यों की विद्वान् जन रक्षा करते हैं वे विद्वान् हो धन और ऐश्वर्य को पाकर औरों की भी रक्षा कर सकते हैं ॥३॥

कौन राजा होने योग्य होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः ।
सुहवा देव्यदितिरनर्वा ते नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान् ॥४॥

पदार्थः—जो (अयम्) यह (नेता) न्यायकर्त्ता (वरुणः) श्रेष्ठ (मित्रः) मित्र (अर्यमा) और न्यायाधीश (सुहवा) सुन्दर देने लेने वाले (राजानः) राजजन (हि) ही (ऋतस्य) सत्य के (अपः) कर्म को (धुः) धारण करें (ते) वे (अनर्वा) नहीं है

घोड़े की चाल जिसकी उस (देवी) देदीप्यमान (अदितिः) अखण्डित नीति के समान (नः) हम लोगों को (अरिष्टान्, अंहः) अपराध से न विनाश किये हुए (अति, पर्षन्) उल्लंघे अर्थात् छोड़ें॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—वे ही राजा होते हैं जो न्याय श्रेष्ठ गुण और सबों में मित्रता की भावना कराते हैं वे ही अपराध के आचरण से लोगों को दूर रखने योग्य होते हैं और राजा होने योग्य होते हैं॥४॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः।
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत्॥५॥

पदार्थः—जैसे (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (अस्य) इस (मीळ्हुषः) जल के समान सुख सींचने वाला (विष्णोः) बिजुली के समान व्यापक ईश्वर (एषस्य) जो कि सर्वत्र प्राप्त होने (देवस्य) और निरन्तर प्रकाशमान सकल सुख देने वाला उसके (हविर्भिः) होमने योग्य पदार्थों के समान ग्रहण किये शान्त चित्तादिकों से (प्रभृथे) उत्तमता से धारण किये हुए जगत् में (इरावत्) अन्नादि ऐश्वर्य्य युक्त (वर्तिः) मार्ग को और (महित्वम्) महत्त्व को (यासिष्टम्) प्राप्त होते हैं उस ईश्वर की (रुद्रियम्) प्राणसम्बन्धी महिमा को (वयाः) प्राप्त करने (रुद्रः) दुष्टों को रुलाने वाला मैं (हि) ही (विदे) प्राप्त होता हूं॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो! जिस ईश्वर की महिमा को पाकर सूर्य आदि लोक प्रकाश करते हैं उसी की उपासना सर्वस्व से करनी चाहिये॥५॥

फिर विद्वान् जन क्या करते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

मात्र पूषन्नाघृण इरस्यो वरूत्री यद्रातिषाचश्च रासन्।
मयोभुवो नो अर्वन्तो नि पान्तु वृष्टिं परिज्मा वातो ददातु॥६॥

पदार्थः—हे (आघृणे) सब ओर से प्रकाशित (पूषन्) पुष्टि करने वाले जैसे (परिज्मा) सब ओर से जो जाता है वह (वातः) वायु (वृष्टिम्) वर्षा को (ददातु) देवे वैसे (मयोभुवः) श्रेष्ठता हुवाने वाले (अर्वन्तः) प्राप्त होते हुए (रातिषाचः) दानकर्ता जन (नः) हम लोगों की (नि, पान्तु) निरन्तर रक्षा करें और (यत्) जो (वरूत्री) स्वीकार करने योग्य विद्या है (च) उस को भी (रासन्) देते हैं वैसे

(इरस्यः) प्राप्त होने योग्य आप करें (मा, अत्र) और मत इस जगत् में विद्वेषी होओ ॥६॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन श्रेष्ठ जनों के तुल्य वर्त कर सब के लिये सुख वा विद्या देते हैं वे सब के सब ओर से रक्षक हैं ॥६॥

फिर पढ़ाने और उपदेश करने वाली स्त्रियां क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—जो पढ़ाने और उपदेश करने वाली (रोदसी) आकाश और पृथिवी के समान (अभिष्टुते) सामने पढ़ातीं वा उपदेश करतीं वे (वसिष्ठैः) अतीव धनाढ्यों के साथ जैसे (मित्रः) मित्र के समान प्यारे आचरण करने वाला (वरुणः) जल के समान शान्ति देने वाला और (अग्निः) अग्नि के समान प्रकाशित यश जन तथा (चन्द्राः) आनन्द देने वाले (नः) हमारे लिये (उपमम्) उपमा जिस को दी जाती उस को अतीव सिद्ध कराने वाले (अर्कम्) सत्कार करने योग्य धन धान्य को (नु) शीघ्र (यच्छन्तु) देवें वैसे हम लोगों को (ऋतावानः) सत्य की प्रकाश करने वाली कन्याजन निरन्तर विद्या देवें, हे विदुषी स्त्रियो ! (यूयम्, तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदैव (पात) रक्षा करो ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो भूमि के तुल्य क्षमाशील, लक्ष्मी के तुल्य शोभती हुई, जल के तुल्य शान्त, सहेली के तुल्य उपकार करने वाली विदुषी पढ़ाने वाली हों वे सब कन्याओं को पढ़ा के और सब स्त्रियों को उपदेश से आनन्दित करें ॥७॥

इस सूक्त में विश्वे देवों के गुण और कृत्य का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह सप्तम मण्डल में चालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्यैकचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १—७ वसिष्ठर्षिः । १ लिङ्गोक्तदेवताः । २—६ भगः । ७ उषाः । १ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २ । ३ । ५ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ६ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले इकतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में प्रातः-
काल उठ के जब तक सोवें तब तक मनुष्यों को क्या क्या करना चाहिये
इस विषय को कहते हैं॥

प्रातर॒ग्निं प्रातरिन्द्रं॑ हवामहे प्रातर्मि॒त्रावरु॑णा प्रातर॒श्विना॑।
प्रातर्भगं॑ पूषणं॒ ब्रह्म॑णस्पतिं॒ प्रातः सोम॑मुत रुद्रं हु॑वेम ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जैसे हम लोग (प्रातः) प्रभात काल में (अग्निम्) अग्नि को (प्रातः) प्रभात समय में (इन्द्रम्) बिजुली वा सूर्य को (प्रातः) प्रातः-समय (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान मित्र और राजा को तथा (प्रातः) प्रभात काल में (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा वैद्य वा पढ़ाने वालों की (हवामहे) विचार से प्रशंसा करें (प्रातः) प्रभात समय (भगम्) ऐश्वर्य्य को (पूषणम्) पुष्टि करने वाले वायु को (ब्रह्मणस्पतिम्) वेद ब्रह्माण्ड वा सकलैश्वर्य के स्वामी जगदीश्वर को (सोमम्) समस्त ओषधियों को (उत) और (प्रातः) प्रभात समय (रुद्रम्) फल देने से पापियों को रुलाने वाले ईश्वर वा पाप फल भोगने से रोने वाले जीव की (हुवेम) प्रशंसा करें वैसे तुम भी प्रशंसा करो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को रात्रि के पिछले पहर में उठ कर आवश्यक कार्य्य कर ध्यान से शरीरस्थ वा ब्रह्माण्डस्थ वा बिजुली प्राण उदान मित्र सूर्य चन्द्रमा ऐश्वर्य पुष्टि परमेश्वर ओषधिगण और जीव, विचार से जानने योग्य हैं फिर अग्निहोत्रादि कामों से सब जगत् का उपकार कर कृतकृत्य होना चाहिये ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

प्रा॒त॒र्जितं॒ भग॑मु॒ग्रं हु॑वेम व॒यं पु॒त्रमदि॑ते॒र्यो वि॑ध॒र्ता।
आ॒ध्रश्चि॒द्यं मन्य॑मानस्तु॒रश्चि॒द्राजा॑ चि॒द्यं भगं॑ भ॒क्षीत्याह॑ ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (अदितेः) अन्तरिक्षस्थ भूमि वा प्रकाश का (विधर्ता) वा विविध लोकों का धारण करने वाला (आध्रः, चित्) जो सब ओर से धारण सा किया जाता (मन्यमानः) जानता हुआ (तुरः) शीघ्रकारी (राजा) प्रकाशमान (चित्) निश्चय से परमात्मा (यम्) जिस (भगम्) ऐश्वर्य्य की प्राप्ति होने को (आह) उपदेश देता है जिसकी प्रेरणा पाये हुए (वयम्) हम लोग (पुत्रम्) पुत्र के समान (प्रातर्जितम्) प्रातःकाल ही उत्तमता से प्राप्त होने को योग्य (उग्रम्) तेजोमय तेज भरे हुए (भगम्) ऐश्वर्य्य को (हुवेम) कहें (इति) इस प्रकार (यम्, चित्) जिस को निश्चय से मैं (भक्षि) सेवूं उस की उपासना करें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमा और वाचकलुप्तोपमालंकार हैं—मनुष्यों को चाहिये कि प्रातः समय उठ कर सब के आधार परमेश्वर का ध्यान कर सब करने योग्य कामों को नाना प्रकार से चितवन कर धर्म और पुरुषार्थ से पाये हुए ऐश्वर्य को भोगें वा भुगावें यह ईश्वर उपदेश देता है ॥२॥

फिर मनुष्यों को ईश्वर की प्रार्थना क्यों करनी चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग प्र नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३॥

पदार्थः—हे (भग) सकलैश्वर्य्ययुक्त (प्रणेतः) उत्तमता से प्राप्ति कराने वाले (भग, सत्यराधः) अत्यन्त सेवा करने योग्य सत्य प्रकृतिरूप धनयुक्त (भग) सकल ऐश्वर्य देने वाले ईश्वर आप कृपा कर (नः) हम लोगों के लिये (इमाम्) इस प्रशंसायुक्त (धियम्) उत्तम बुद्धि को (ददत्) देते हुए हम लोगों की (उदवा) उत्तमता से रक्षा कीजिये, हे (भग) सर्वसामग्रीयुक्त (नः) हम लोगों के लिये (गोभिः) गौओं वा पृथिवी आदि से (अश्वैः) वा शीघ्रगामी घोड़ा वा पवन वा बिजुली आदि से (प्र, जनय) उत्तमता से उत्पत्ति दीजिये, हे (भग) सकलैश्वर्य्ययुक्त आप हम लोगों को (नृभिः) नायक श्रेष्ठ मनुष्यों से (प्र) उत्तम उत्पत्ति दीजिये जिस से हम लोग (नृवन्तः) बहुत उत्तम मनुष्ययुक्त (स्याम) हों ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर की आज्ञा, प्रार्थना, ध्यान और उपासना का आचरण पहिले करके पुरुषार्थ करते हैं वे धर्मात्मा होकर अच्छे सहायवान् हुए सकल ऐश्वर्य को प्राप्त होते हैं ॥३॥

फिर मनुष्यों को किससे कैसा होना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४॥

पदार्थः—हे (मघवन्) परमपूजित ऐश्वर्य्ययुक्त जगदीश्वर (इदानीम्) इस समय (उत) और (प्रपित्वे) उत्तमता से ऐश्वर्य्य की प्राप्ति-समय में (उत) और (अह्नाम्) दिनों के (मध्ये) बीच (उत) और (सूर्यस्य) सूर्य लोक के (उदिता) उदय में (उत) और सायंकाल में (भगवन्तः) बहुत उत्तम ऐश्वर्ययुक्त (वयम्) हम लोग

(स्याम) हों (देवानाम्) तथा आप्तविद्वानों की (सुमतौ) श्रेष्ठ मति में स्थिर हों ॥४॥

भावार्थः—जो मनुष्य जगदीश्वर का आश्रय और आज्ञा पालन से विद्वानों के संग से अति पुरुषार्थी होकर धर्म अर्थ काम और मोक्ष की सिद्धि के लिये प्रयत्न करते हैं वे सकलैश्वर्ययुक्त होते हुए भूत भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालों में सुखी होते हैं ॥४॥

फिर मनुष्य क्या करके कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।
तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह ॥५॥

पदार्थः—हे (भग) सकल ऐश्वर्य्य के देने वाले जो आप (भगः) अत्यन्त सेवा करने योग्य (भगवान्) सकलैश्वर्य्यसम्पन्न (अस्तु) होओ (तेनैव) उन्हीं भगवान् के साथ (वयम्) हम (देवाः) विद्वान् लोग (भगवन्तः) सकलैश्वर्य्य युक्त (स्याम) हों, हे सकलैश्वर्य्य देने वाले जो (सर्वः) सर्व मनुष्य (तम्) उन (त्वा) आपको (जोहवीति) निरन्तर प्रशंसा करता है (सः) वह (इह) इस समय में (नः) हमारे (पुरएता) आगे जाने वाला हो और हे (भग) सेवा करने योग्य वस्तु देने वाले आप (एव) ही हमारे अर्थ आगे जाने वाले (भव) हूजिये ॥५॥

भावार्थः—हे जगदीश्वर जो सकलैश्वर्य्यवान् आप सब को सब ऐश्वर्य्य देते हैं उन के सहाय से सब मनुष्य धनाढ्य होवें ॥५॥

फिर मनुष्यों को कैसे होकर क्या पाकर क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

समध्वरायोषसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥६॥

पदार्थः—(रथमिव, अश्वाः) रमणीय यान को महान् वेग वाले घोड़े वा शीघ्र जाने वाले बिजुली आदि पदार्थ जैसे वैसे जो (वाजिनः) विशेष ज्ञानी जन (शुचये,पवित्र (अध्वराय)हिंसारहितधर्मयुक्त व्यवहार (पदाय) और पाने योग्य पदार्थ के लिये (उषसः) प्रभात वेला की (दधिक्रावेव) धारण करने वालों को प्राप्त होते के समान (सन्नमन्त) अच्छे प्रकार नमते हैं वे (अर्वाचीनम्) तत्काल प्रसिद्ध हुए नवीन (वसुविदम्) धनों को प्राप्त होते हुए (भगम्) सर्व ऐश्वर्य्य युक्त जन को और (नः) हम लोगों को (आ, वहन्तु) सब ओर से उन्नति को पहुंचावें ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो मनुष्य प्रातःकाल उठ के वेगयुक्त घोड़ों के समान शीघ्र जाकर आकर आलस्य छोड़ ऐश्वर्य को पाय नम्र होते हैं वे ही पवित्र परमात्मा को पा सकते हैं ॥६॥

फिर विदुषी स्त्री क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—हे पढ़ाने और उपदेश करने वाली पण्डिता स्त्रियो ! तुम (उषसः) प्रभात वेला सी शोभती हुई (अश्वावतीः) जिन के समीप बड़े बड़े पदार्थ विद्यमान (गोमतीः) वा किरणें विद्यमान (वीरवतीः) वा वीर विद्यमान (भद्राः) जो कल्याण करने (प्रपीताः) उत्तमता से बढ़ाने और (विश्वतः) सब ओर से (घृतम्) जल को (दुहानाः) पूरा करती हुईं आप (नः) हमारे (सदम्) स्थान को (उच्छन्तु) सेवो वह (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदैव (पात) रक्षा कीजिये ॥७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जैसे प्रभात वेला सब निद्रा में ठहरे हुए मरे हुए जैसों को चैतन्य करा कर्मों में युक्त कराती हैं वैसे ही होती हुई विदुषी स्त्रियां सब अविद्यानिद्रास्थ स्त्रियों को पढ़ाने और उपदेश करने से अच्छे काम में प्रवृत्त करावें ॥७॥

इस सूक्त में मनुष्यों की दिनचर्य्या का प्रतिपादन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में इकतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षडृचस्य द्विचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य १-६ वसिष्ठ ऋषिः । विश्वे देवा देवताः । १ । ३ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ । ५ विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । ६ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले बयालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में पूरी विद्या वाले जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु ।
प्र धेनव उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ॥१॥

पदार्थः—हे (ब्रह्माणः) चारों वेदों के जानने वाले जनो (अङ्गिरसः) प्राणों के समान विद्वान् जन जैसे (क्रन्दनुः) बुलाने वाला (नभन्यस्य) अन्तरिक्ष पृथिवी वा सुख में उत्पन्न हुए (अध्वरस्य) न नष्ट करने योग्य व्यवहार के (पेशः) सुन्दर रूप को (प्र, वेतु) अच्छे प्रकार प्राप्त हो वा (उदप्रुतः) उदक जल को प्राप्त हुई नदियों के समान (धेनवः) और दूध देने वाली गौओं के समान वाणी अहिंसनीय व्यवहार के रूप की (नवन्त) स्तुति करती हैं और जैसे (अद्री) मेघ और बिजुली अहिंसनीय व्यवहार के रूप को (प्रयुज्याताम्) प्रयुक्त हों आप लोग वैसी विद्याओं में (प्र, नक्षन्त) व्याप्त होओ ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो चारों वेद के जानने वाले, विद्वान् जन, अहिंसादि लक्षण हैं जिसके ऐसे धर्म के स्वरूप का बोध कराते हैं वे स्तुति करने योग्य होते हैं ॥१॥

कौन विद्वान् जन श्रेष्ठ होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सुगस्ते अग्ने सनविचो अध्वा युङ्क्ष्वासुते हरितो रोहितश्च ।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः ॥२॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्याप्रकाशित (सुते) उत्पन्न हुए इस जगत् में (ये) जो (हरितः) दिशाओं के समान (रोहितः, च) और नदियों के समान (सद्मन्) स्थान में (अरुषाः) लालगुणयुक्त (वीरवाहः) वीरों को पहुंचाने वाले हैं उन (देवानाम्) विद्वानों के (जनिमानि) जन्मों को (सत्तः) आसक्त हुआ मैं (हुवे) प्रशंसा करता हूं वैसे जो आप का (सुगः) अच्छे जाते हैं जिसमें वह (सनवित्तः) सनातन वेग से प्राप्त (अध्वा) मार्ग है जिसकी कि मैं प्रशंसा करूं उसको आप (युङ्क्ष्व) युक्त करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—वे ही विद्वान् जन श्रेष्ठ हैं जो सनातन वेदप्रतिपादित धर्म का अनुष्ठान करके अनुष्ठान कराते हैं, उन्हीं विद्वानों का जन्म सफल होता है जो पूर्ण विद्या को पाकर धर्मात्मा होकर प्रीति के साथ सब को अच्छी शिक्षा दिलाते हैं ॥२॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

समु वो यज्ञं महयन्नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके ।
यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः ॥३॥

पदार्थः—हे (पुर्वणीक) बहुत सेनाओं वाले राजा आप (देवान्) विद्वानों को

(सुयजस्व) अच्छे प्रकार प्राप्त होओ (यज्ञियाम्) जो यज्ञ के योग्य होती उस (अरमतिम्) पूरी मति को (आ, ववृत्याः) प्रवृत्त कराओ (मन्द्रः) आनन्द देने वा (होता) दान करने वाले होते हुए (उपाके) समीप में (प्र, रिरिचे) अन्याय से अलग रहिये, हे विद्वानो जो (नमोभिः) अन्नादिकों से (वः) तुम लोगों के (यज्ञम्) विद्याप्रचारमय यज्ञ का (सम्महयन्) सम्मान [=सम्मान] करते हैं (उ) उन्हीं का तुम सत्कार करो ॥३॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन सत्कर्मानुष्ठानयज्ञ का अनुष्ठान करते हैं वे पुष्कल वीर सेना वाले होते हुए सबको आनन्द देने वाले होते हैं ॥३॥

फिर अतिथि और गृहस्थ परस्पर क्या करें इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै ॥४॥

पदार्थः—(यदा) जब (स्योनशीः) सुख से सोने वाला (अतिथिः) सत्य उपदेशक (रेवतः) बहुत धन वाले (वीरस्य) वीर के (दुरोणे) घर में (आचिकेतत्) सब ओर से जानता है तब (सः) वह (अग्निः) अग्नि के समान पवित्र (सुधितः) अच्छा हित करने वाला (सुप्रीतः) सुन्दर प्रसन्न गृहस्थ के (दमे) घर में (इयत्यै) सुखप्राप्ति की इच्छा के लिये (विशे) और प्रजा सन्तान के लिये (वार्यम्) स्वीकार करने योग्य विज्ञान को (आ, दाति) सब ओर से देता है ॥४॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जब विद्वान् धार्मिक उपदेश करने वाला अतिथि जन तुम्हारे घरों को आवे तब अच्छे प्रकार उसका सत्कार करो, हे अतिथि जब जहां जहां आप रमण भ्रमण करें वहां वहां सब के लि० सत्य उपदेश क० रें ॥४॥

फिर वे गृहस्थ अतिथि परस्पर के लिये क्या करें इस विषय को
अगले मन्त्र मे कहते हैं ॥

इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः ।
आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह ॥५॥

पदार्थः—हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्या से प्रकाशित अतिथि आप (मरुत्सु) मनुष्यों के (इन्द्रे) और राजा के निमित्त (नः) हम लोगों के (इमम्) इस (अध्वरम्) उपदेशरूपी यज्ञ को निरन्तर (जुषस्व) सेवो (नः) हमारी (यशसम्) कीर्ति की वृद्धि (कृधि) करो (नक्तोषसा) रात्रि को दिन के साथ (बर्हिः) तय

उत्तम आसन को (आसवताम्) स्वीकार करो स्थिर होओ और (इह) इस जगत् में (उशन्ता) कामना करते हुए (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान स्त्री पुरुषों को प्राप (यज) मिलो ॥५॥

भावार्थः—जब अतिथि आवें तब गृहस्थ अर्घ्य पाद्य आसन मधुपर्क प्रिय वचन और अन्नादिकों से उसका सत्कार कर और पूछ कर सत्य और असत्य का निर्णय करें और अतिथि भी प्रश्नों के समाधान देवें ॥५॥

धन की कामना करने वाले क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवाग्निं सहस्यं१ वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत् ।
इषं रयिं पप्रथद्वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

पदार्थः—जो (रायस्कामः) धन की कामना वाला (वसिष्ठः) अतीव निवास-कर्त्ता जन (विश्वप्स्न्यस्य) समग्र रूपों में और (सहस्यम्) बल में हुए (अग्निम्) अग्नि की (स्तौत्) स्तुति करता है (एव) वही (अस्मे) हमारी (इषम्) अन्नादि सामग्री (रयिम्) लक्ष्मी (वाजम्) विज्ञान वा अन्न को (पप्रथत्) प्रसिद्ध करता है, हे अतिथि जनो (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सदैव (पात) रक्षा करो ॥६॥

भावार्थः—जिसको धन की कामना हो वह मनुष्य अग्न्यादि विद्या को ग्रहण करे, जो अतिथियों की सेवा करते हैं उनको अतिथि लोग अधर्म के आचरण से सदा अलग रखते हैं ॥६॥

इस सूक्त में विश्वेदेवों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में बयालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य त्रिचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । विश्वेदेवा देवताः । १ निचृत्त्रिष्टुप् । ४ त्रिष्टुप् । ३ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ५ भुरिक् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पांच ऋचा वाले तेतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में फिर अतिथि और गृहस्थ एक दूसरे के लिये क्या क्या देवें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन्द्यावा नमोभिः पृथिवी इषध्यै।
येषां ब्रह्माण्यसमानि विप्रा विष्वग्वियन्ति वनिनो न शाखाः॥१॥

पदार्थः—हे (विप्राः) बुद्धिमानो (येषाम्) जिनको (असमानि) औरों के धनों से न समान किन्तु अधिक (ब्रह्माणि) धन वा अन्न (वनिनः) वन संबन्ध रखने और (शाखाः) अन्तरिक्ष में सोनेवाली शाखाओं के (न) समान (विष्वक्) अनुकूल व्याप्ति जैसे हो वैसे (वि, यन्ति) व्याप्त होते हैं वा जो (नमोभिः) अन्नादिकों से (इषध्यै) इच्छा करने वा जानने को (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि की (यज्ञेषु) विद्याप्रचारादि-व्यवहारों में (देवयन्तः) कामना करते हुए (वः) तुम लोगों का (प्रार्चन्) अच्छा सत्कार करते हैं उनका तुम भी सत्कार करो॥१॥

भावार्थः—हे अतिथि विद्वानो! जैसे गृहस्थ जन अन्नादि पदार्थों के साथ आपका सत्कार करें वैसे तुम विज्ञान-दान से गृहस्थों को निरन्तर प्रसन्न करो॥१॥

फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तिरुद्यच्छध्वं समनसो घृताचीः।
स्तृणीत बर्हिरध्वराय साधूर्ध्वा शोचींषि देवयून्यस्थुः॥२॥

पदार्थः—हे (समनसः) समान ज्ञान वा समान मन वाले विद्वानो! जिन आप लोगों को (यज्ञः) विज्ञानमय संग करने योग्य व्यवहार (एतु) प्राप्त हो वे आप लोग (हेत्वः) अच्छे बढ़े हुए वेगवान् (सप्तिः) घोड़ा के (न) समान सब को (प्रोद्यच्छध्वम्) अतीव उद्यमी करो जिसके (ऊर्ध्वा) ऊपर जाने वाले (देवयूनि) दिव्य उत्तम गुणों को करते हुए (शोचींषि) तेज (अस्थुः) स्थिर होते हैं उससे (अध्वराय) अहिंसामय यज्ञ के लिए आप (घृताचीः) रात्रियों और (बर्हिः) अन्तरिक्ष को (साधु) समीचीनता से (स्तृणीत) आच्छादित करो॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे गृहस्थो जिससे वायु, जल और ओषधि पवित्र होती हैं उस यज्ञ का निरन्तर अनुष्ठान करो। यज्ञ-धूम से अन्तरिक्ष को ढांपो, हे अतिथियो तुम सब मनुष्यों को सारथि, घोड़ों को जैसे वैसे धर्म कामों में उद्यमी कर इनका आलस्य दूर करो जिससे इनको समस्त लक्ष्मी प्राप्त हो॥२॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु ।
आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्वग्ने मा नो देवताता मृधस्कः ॥३॥

पदार्थः—हे (अग्ने) विद्वान् जैसे (विश्वाची) विश्व को प्राप्त होने वाली (विदथ्याम्) घरों में नीति को (आ, अनक्तु) सब ओर से चाहे उसके उपदेश से आप (नः) हमारे (देवताता) दिव्य गुणों की प्राप्ति कराने वाले यज्ञ में (मृधः) हिंसकों को (मा, कः) मत करें जो (देवासः) विद्वान् जन (सानौ) ऊपरले देश स्थान में (विभृत्राः) विशेष कर पुष्टि करने वाले (पुत्रासः) पुत्र जैसे (मातरम्) माता को (न) वैसे (बर्हिषः) उत्तम वृद्ध जन (आ, सदन्तु) स्थिर हों उनकी आप कामना करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—वही माता उत्तम है जो ब्रह्मचर्य्य से विदुषी होकर सन्तानों को अच्छी शिक्षा देकर विद्या से इनकी उन्नति करे, वही पिता श्रेष्ठ है जो हिंसादिदोषरहित सन्तान करे, वे ही विद्वान् प्रशसा पाये हैं जो और मनुष्यों को मा के समान पालते हैं ॥३॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ते सींषपन्त जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः ।
ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूनामा गन्तन समनसो यति ष्ठ ॥४॥

पदार्थः—जो (यजत्राः) संग करने वाले (जोषम्) पूरी (आ, सींषपन्त) शपथ करें (ते) वे (समनसः) एकसे विज्ञान वाले जन (ऋतस्य) सत्य की (सुदुघाः) कामनाओं की पूरी करने वाली (दुहानाः) पूर्ण शिक्षा विद्यायुक्त (धाराः) वाणियों को (आ, गन्तन) प्राप्त हों और (यति) जिनमें यत्न करते हैं उस व्यवहार में (आ, स्थ) स्थिर हों हे धार्मिक सज्जनो (वः) तुम लोगों को (वसूनाम्) धनों का (महः) महान् (ज्येष्ठम्) प्रशंसित भाग (अद्य) आज प्राप्त हो ॥४॥

भावार्थः—जो सत्य कहने, सत्य करने और सत्य मानने वाले होते हैं वे पूर्णकाम होकर सब मनुष्यों को विद्वान् कर सकते हैं ॥४॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः ।
राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

पदार्थः—हे (सहसावन्) बहुबलयुक्त (अग्ने) विद्वान् आप (विक्षु) प्रजाजनों

में (नः) हम लोगों को धन (वशस्य) देओ जिससे (त्वया) तुम्हारे साथ (युजा) युक्त (वयम्) हम लोग (राया) धन से (सधमादः) तुल्य स्थान वाले (आस्काः) सब ओर से बुलाये और (अरिष्टाः) अविनष्ट हों (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो (एव) उन्हीं की हम लोग भी रक्षा करें ॥५॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! तुम हम को विद्या देओ जिससे हम लोग प्रजाजनों में उत्तम धन आदि पाकर तुम्हारी सदैव रक्षा करें ॥५॥

इस सुक्त में विश्वे देवों के गुण और कामों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सुक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में तेतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चर्चस्य चतुश्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठऋषिः । लिङ्गोक्ता देवताः । १ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । २ । ३ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतःस्वरः । ४ । ५ पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब चवालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को सृष्टिविद्या से सुख बढ़ाना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसमग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे ।
इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिमादित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! जैसे (ऊतये) धनादि के लिए मैं (वः) तुम लोगों को और (प्रथमम्) पहिले (दधिक्राम्) जो धारण करने वालों को क्रम से प्राप्त होता उसे (अश्विना) सूर्य और चन्द्रमा (उषसम्) प्रभातवेला (समिद्धम्) प्रदीप्त (अग्निम्) अग्नि (भगम्) ऐश्वर्य्य (इन्द्रम्) बिजुली (विष्णुम्) व्यापक वायु (पूषणम्) पुष्टि करने वाले ओषधिगण (ब्रह्मणस्पतिम्) ब्रह्माण्ड के स्वामी (आदित्यान्) सब महीने (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि (अपः) जल और (स्वः) सुख को (हुवे) ग्रहण करता हूं वैसे ही मेरे लिये इस विद्या को आप भी ग्रहण करें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन प्रथम से भूमि आदि की विद्या का संग्रह करके कार्यसिद्धि करते हैं वैसे तुम भी करो ॥१॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

द॒धि॒क्रां वः॑ प्र॒थ॒मम॒श्विनो॒षस॑म॒ग्निं समि॑द्धं॒ भग॑मू॒तये॑ हुवे ।

दधिक्राम्‌ नमंसा बोधयंन्त उदीरांणा यज्ञमुंप प्रयन्तः ।
इळां देवीं बर्हिषि सादयंन्तोऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे (नमसा) अन्नादि से वा सत्कार से (दधिक्राम्) पृथिवी आदि के धारण करने वालों को (बोधयन्तः) बोध दिलाते हुए (उदीराणाः) उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त (यज्ञम्) यज्ञ का (उपप्रयन्तः) प्रयत्न करते (उ) और (देवीम्) दिव्य गुण कर्म स्वभाव वाली (इळाम्) प्रशंसनीय वाणी को (बर्हिषि) वृद्धि करने वाले व्यवहार में (सादयन्तः) स्थिर कराते हुए हम लोग (सुहवा) शुभ बुलाने जिन के उन (अश्विना) पढ़ाने और उपदेश करने वाले (विप्रा) बुद्धिमान् पण्डितों की (हुवेम) प्रशंसा करें वैसे उनकी तुम भी प्रशंसा करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—वे ही विद्वान् जन जगत् के हितैषी होते हैं जो सब जगह विद्या फैलाते हैं ॥२॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दधिक्रावांणं बुबुधानो अग्निमुपं ब्रव उषसं सूर्यं गाम्‌ ।
ब्रध्नं मांश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद्दुरिता यावयन्तु ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वानो (दधिक्रावाणम्) धारण करने वाले यानों को चलाने वाले (अग्निम्) आग (उषसम्) प्रभातवेला (ब्रध्नम्) महान् (सूर्यम्) सूर्यलोक (गाम्) भूमि को (मंश्चतोः) मानते हुए विद्वानों को मांगने वाले (वरुणस्य) श्रेष्ठ जन के (बभ्रुम्) धारण वा पोषण करने वाले को तथा जिनको आपके प्रति (उप, ब्रुवे) उपदेश करता हूं (ते) वे आप लोग (अस्मत्) हम से (विश्वा) सब (दुरिता) दुष्ट आचरणों को (यावयन्तु) दूर करें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे आप्त विद्वान् सब के लिए विद्या और अभयदान देकर पाप के आचरण से उन्हें अलग करते हैं वैसे सब विद्वान् करें ॥३॥

फिर विद्वान् जन कथा जान कर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाग्रे रथांनां भवति प्रजानन्‌ ।
संविदान उषसा सूर्येणादित्येभिर्वसुंभिरङ्गिरोभिः ॥४॥

पदार्थः—जो (दधिक्रावा) धारण करने वालों को पहुंचाने और (प्रथमः) प्रथम सिद्ध करने वाला (वाजी) वेगवान् (अर्वा) प्रेरणा को प्राप्त अग्नि (उषसा)

प्रातःकाल की वेला (सूर्येण) सूर्य लोक (आदित्येभिः) संवत्सर के महीनों (वसुभिः) पृथिवी आदि लोकों और (अङ्गिरोभिः) पवनों के सहित होता हुआ (रथानाम्) रमणीय यानों के (अग्रे) आगे वहन करने वाला (भवति) होता है उसको (प्रजानन्) उत्तमता से जानता और (संविदानः) अच्छे प्रकार उसका विज्ञान करता हुआ विद्वान् जन अच्छा प्रयोग करे ।।४।।

भावार्थः—जो अग्निविद्या को जानते हैं वे रथों के शीघ्र चलाने वाले होते हैं ।।४।।

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

आ नो॑ दधि॒क्राः प॒थ्या॑मनक्त्वृ॒तस्य॒ पन्था॒मन्वे॑त॒वा उं॑ ।
शृ॒णोतु॑ नो॒ दैव्यं॒ शर्धो॑ अ॒ग्निः शृ॒ण्वन्तु॒ विश्वे॑ महि॒षा अमू॑राः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वान् आप (दधिक्राः) घोड़े के समान धारण करने वालों को चलाने वाले (पथ्याम्) मार्ग में सिद्धि करने वाली गति के समान (नः) हम लोगों के (ऋतस्य) सत्य वा जल (पन्थानम्) मार्ग के (अन्वेतवै) पीछे जाने को (आ, अनक्तु) कामना करें (उ) और (अग्निः) बिजुली के समान शीघ्र जावें और (नः) हमारे (दैव्यम्) विद्वानों ने उत्पन्न किये (शर्धः) शरीर और आत्मा के बल को (शृणोतु) सुने (महिषाः) महान् (विश्वे) सब (अमूराः) अमूढ अर्थात् विज्ञानवान् जन हमारे विद्वानों के सिद्ध किये हुए वचन को (शृण्वन्तु) सुनें ।।५।।

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे परीक्षक न्यायाधीश वा राजा सब के वचनों को सुन के सत्य और असत्य का निश्चय करता और अग्नि आदि का प्रयोग कर शीघ्र मार्ग को जाता है वैसे ही तुम लोग विद्वानों से सुन कर धर्मयुक्त मार्ग से अपना व्यवहार कर मूढ़ता छोड़ो और छुड़ाओ ।।५।।

इस सूक्त में अग्निरूपी घोड़ों के गुण और कामों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ।।

यह सप्तम मण्डल में चवालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ।।

अथ चतुर्ऋचस्य पञ्चचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । सविता देवता । २ त्रिष्टुप् । ३ । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । १ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

अब पैंतालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में फिर विद्वान् जन किसके तुल्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ।।

आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (सुरत्नः) जिसके वा जिससे सुन्दर रमणीय धन होता (सविता) जो सकलैश्वर्य्य देने वाला (देवः) दाता दिव्य गुणवान् (अन्तरिक्षप्राः) अन्तरिक्ष को व्याप्त होता (अश्वैः) किरणों के समान महान् अग्नि जल आदिकों से भूगोलों को (वहमानः) पहुंचता वा पहुँचाता (पुरूणि) बहुत (नर्या) मनुष्यों के लिये हितों को (दधानः) धारण करता और (निवेशयत्) प्रवेश करता हुआ (प्रसुवम्) जिसमें नाना रूप उत्पन्न होते हैं उस ऐश्वर्य को प्राप्त होता है वैसे इससे प्राप्त कराता हुआ (च) और ऐश्वर्य्य को (हस्ते) हाथ में धारण करता हुआ विद्वान् (आ, यातु) आवे, उसके साथ हम लोग (च) भी वैसे ही (भूम) होवें ॥१॥

भावार्थः—इस मंत्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—जो मनुष्य सूर्य के तुल्य शुभ गुण और कर्मों से प्रकाशित, मनुष्यादि प्राणियों का हित करते हैं वे बहुत ऐश्वर्य पाते हैं ॥१॥

फिर राजादि जन कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ताँ अनष्टाम् ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (सूरः) सूर्य के (चित्) समान (अस्मै) इस विद्वान् के लिए (अप, स्याम्) अपने को कर्म की इच्छा (अनुदात्) अनुकूल दे जिस (अस्य) इसकी (सः) वह (महिमा) अत्यन्त प्रशंसा हम लोगों से (नूनम्) निश्चय (पनिष्ट) स्तुति की जाती है जिस (अस्य) इस (दिवः) प्रकाश के (अन्तान्) समीपस्थ पदार्थ वा (हिरण्यया) हिरण्य आदि आभूषणयुक्त (बृहन्ता) महान् (शिथिरा) शिथिल दृढ़ (बाहू) भुजा (उदनष्टाम्) उत्तमता से प्रसिद्ध होती वही हम लोगों की प्रशंसा करने योग्य है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जिसका सूर्य के समान महिमा प्रताप सर्व बलयुक्त बाहू वर्तमान हैं वही इस राज्य के बीच पूजित होता है ॥२॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स घा नो देवः सविता सहावा साविषद्वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ॥३॥

पदार्थः—जो (वसुपतिः) धनों की पालना करने वाला (उरूचीम्) बहुत वस्तुओं को प्राप्त होता और (अमतिम्) सुन्दररूप को (विश्रयमाणः) विशेष सेवन करता हुआ (नः) हम लोगों को (मर्तभोजनम्) मनुष्यों का हितकारक भोजन वा पालन (रासते) देता है (स, घ, अध) वही पीछे (सविता) ऐश्वर्य्यवान् सूर्य के समान प्रकाशमान (सहावा) साथ सेवने वाला (देवः) मनोहर विद्वान् (नः) हमको (वसूनि) धन (आ, साविषत्) प्राप्त करे ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य सूर्य के समान सब के धनों को बढ़ा कर सुपात्रों के लिये देते हैं वे धनपति होते हैं ॥३॥

फिर धार्मिक विद्वान् जन किनसे स्तुति किये जावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमा गिरः॑ सवि॒तारं॑ सुजि॒ह्वं पू॒र्णग॑भस्तिमीळते सुपा॒णिम् ।
चि॒त्रं वयो॑ बृ॒हद॒स्मे द॑धातु यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥४॥

पदार्थः—जो (अस्मे) हम लोगों में (बृहत्) बहुत (चित्रम्) अद्भुत (वयः) आयु को (दधातु) धारण करे उस (सुपाणिम्) सुन्दर हाथों वाले (पूर्णगभस्तिम्) पूर्ण रश्मि जिसकी उस सूर्यमण्डल के समान वर्त्तमान (सवितारम्) ऐश्वर्य्ययुक्त (सुजिह्वम्) सुन्दर जीभ रखते हुए धार्मिक मनुष्य की (इमाः) यह (गिरः) विद्या शिक्षा और धर्मयुक्त वाणी (ईळते) प्रशंसा करती हैं हे विद्वानो (यूयम्) तुम विद्यायुक्त वाणी के समान (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदैव (पात) रक्षा करो ॥४॥

भावार्थः—अच्छी विद्या से धार्मिक पुरुष होते हैं, धर्मात्मा पुरुष ही को विद्या और सर्व सुख प्राप्त होते हैं ॥४॥

इस सूक्त में सविता के तुल्य विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में पैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य षट्चत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । रुद्रो देवता । २ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १ विराड् जगती । ३ निचृज्जगती छन्दः । निषादः स्वरः । ४ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छियालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में योद्धाजन कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने ।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वानो जिस (स्थिरधन्वने) स्थिरधनुष् वाले ((क्षिप्रेषवे) शीघ्र जाने वाले शस्त्र अस्त्रों वाले (स्वधाव्ने) तथा अपनी ही वस्तु और अपनी धार्मिक क्रिया को धारण करने वाले (अषाळ्हाय) शत्रुओं से न सहे जाते हुए (सहमानाय) शत्रुओं के सहने को समर्थ (तिग्मायुधाय) तीव्र आयुध शस्त्रयुक्त (वेधसे) मेधावी (रुद्राय) शत्रुओं को रुलाने वाले शूरवीर (देवाय) न्याय की कामना करते हुए विद्वान् के लिये (इमाः) इन (गिरः) वाणियों को (भरत) धारण करो वह (नः) हम लोगों की इन वाणियों को (शृणोतु) सुने ॥१॥

भावार्थः—जो दुष्टों के शिक्षा देने वाले, शस्त्र और अस्त्रवेत्ता, सहनशील, युद्धकुशल विद्वान् हैं उनको सर्वदैव धनुर्वेद पढ़ाने से और उसके अर्थ से भरी हुई वक्तृता से विद्वान् जन अत्यन्त उत्साह दें और जो सेनापति है वह प्रजास्थ पुरुषों की वाणी सुने ॥१॥

फिर वे राजा आदि जन कैसे हुए क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चरानमीवो रुद्र जासु नो भव ॥२॥

पदार्थः—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने वाले जो आप (नः) हमारी (अवन्तीः) रक्षा करती हुई सेना वा प्रजाओं की (अवन्) पालना करते हुए (दुरः) द्वारों के (उप, चर) समीप जाओ और (अनमीवः) नीरोग होते हुए (हि) जिस कारण (क्षयेण) निवास से (क्षम्यस्य) क्षमा करने योग्य (दिव्यस्य) शुद्ध गुण कर्म स्वभाव में प्रसिद्ध हुए (जन्मनः) जन्म के (साम्राज्येन) सुन्दर प्रकाशमान के प्रकाशित राज्य से हम लोगों को (चेतति) अच्छे प्रकार चेताते हैं (सः) वह आप (नः) हम लोगों की (जासु) प्रजाओं में रक्षा करने वाले (भव) हूजिये ॥२॥

भावार्थः—जो विद्वान् रक्षा करने वाली सेना, वा प्रजाओं की रक्षा करता हुआ प्रत्येक गृहस्थ के व्यवहार को विशेष जानता, दुःखों को नाश करता और सुखों को उत्पन्न करता हुआ अच्छे प्रकार राज्य कर सकता है वही प्रजाजनों की पालना करने वाला है यह सब निश्चय करें ॥२॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः ।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ॥३॥

पदार्थः—हे (स्वपिवात) पवन के समान वर्त्तमान (ते) आपकी (या) जो (दिवः) मनोहर कार्य के सम्बन्ध में (परि) सब ओर से (अवसृष्टा) शत्रुओं में प्रेरणा देने वाली (दिद्युत्) न्यायदीप्ति (क्ष्मया) भूमि के साथ (चरति) जाती है (सा) वह (नः) हम लोगों को अधर्माचरण से (परिवृणक्तु) सब ओर से अलग रक्खे जिस (ते) आपके (सहस्रम्) असंख्य हजारों (भेषजा) ओषधियां हैं वह आप (तोकेषु) शीघ्र उत्पन्न हुए और (तनयेषु) कुमार अवस्था को प्राप्त हुए बालकों में वर्त्तमान (नः) हम लोगों को वा हमारे सन्तानों को (मा, रीरिषः) मत नष्ट करो ॥३॥

भावार्थः—जिस राजा का न्यायप्रकाश सर्वत्र प्रदीपता है वही सबको अधर्माचरण से रोक सकता है, जिसके राज्य में हजारों दूत गुप्तचर और वैद्यजन विचरते हैं उसकी थोड़ी भी राज्य की हानि नहीं होती है ॥३॥

फिर वह राजा कैसा हो इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४॥

पदार्थः—हे (रुद्र) दुष्टों को रुलाने वाले आप (नः) हम लोगों को (मा) मत (वधीः) मारो (मा) मत (परा, दाः) दूर हो और (हीळितस्य) अनादर किये हुए (ते) आपके (प्रसितौ) बन्धन में हम लोग (मा, भूम) मत हों आप (जीवशंसे) जीवों से प्रशंसा करने योग्य (बर्हिषि) अन्तरिक्ष में (नः) हम लोगों को (आभज) अच्छे प्रकार सेवो, हे विद्वानो (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः, हम लोगों की (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ॥४॥

भावार्थः—वही राजा वीर वा उत्तम हो जो धार्मिक जनों को अदण्ड्य कर दुष्टों को दण्ड दे ॥४॥

इस सूक्त में रुद्र राजा और पुरुषों के गुण और कामों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में छियालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य सप्तचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । आपो देवताः । १ । ३ त्रिष्टुप् । २ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ४ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सैंतालीसवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में फिर मनुष्य प्रथम अवस्था में विद्या ग्रहण करें इस विषय को कहते हैं ॥

आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिमकृण्वतेळः ।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (देवयन्तः) कामना करते हुए जन (वः) तुम्हारी (इळः) वाणी को (प्रथमम्) और प्रथम भाग जो कि (इन्द्रपानम्) जीव को प्राप्त होने योग्य उसको (आपः) तथा बहुत जलों के समान वा (ऊर्मिम्) तरंग के समान (यम्) जिसको (अकृण्वत) सिद्ध करें (तम्) उस (शुचिम्) पवित्र (अरिप्रम्) निष्पाप निर्दोष (घृतप्रुषम्) उदक वा घी से सिंचे (मधुमन्तम्) बहुत मधुरादिगुणयुक्त पदार्थ को (वः) तुम्हारे लिए (वयम्) हम लोग (अद्य) आज (वनेम) विशेषता से भजें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जो विद्वान् जन पहिली अवस्था में विद्या ग्रहण करते और युक्त आहार विहार से शरीर को नीरोग करते हैं उन्हीं की सब सेवा करें ॥१॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा ।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यस्मिन्) जिसमें (आशुहेमा) शीघ्र बढ़ने वा जाने वाला (इन्द्रः) बिजुली के समान राजा (वसुभिः) धनों के साथ (वः) तुमको (मादयाते) हर्षित करे (तम्) उसको (आपः) जल (ऊर्मिम्) तरङ्गों को जैसे वैसे (मधुमत्तमम्) अतीव मधुरादिगुणयुक्त पदार्थ को (अपांनपात्) जो जलों के बीच नहीं गिरता है वह बिजुली के समान राजा जैसे (अवतु) रक्खे वैसे हम लोग (तम्) उसको रक्खें और (वः) तुम लोगों की (देवयन्तः) कामना करते हुए हम लोग (अद्य) आज (अश्याम) प्राप्त होवें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे वायु जल की तरङ्गों को उछालता है वैसे जो राजा धनादिकों से प्रजाजनों की रक्षा करे उसी को हम लोग राजा होने की सम्मति देवें ॥२॥

फिर स्त्री पुरुष कैसे होकर विवाह करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो जो (शतपवित्राः) सौ उपायों से शुद्ध (मदन्तीः) आनन्द करती हुई (देवीः) विदुषी पण्डिता ब्रह्मचारिणी कन्या (देवानाम्) विद्वानों के (स्वधया) अन्नादि पदार्थ से (पाथः) अन्नादि ऐश्वर्य को (अपि, यन्ति) प्राप्त होती हैं (ताः) वे (इन्द्रस्य) समग्र ऐश्वर्यवान् परमात्मा के (व्रतानि) व्रतों को (न) नहीं (मिनन्ति) नष्ट करती हैं जैसे (सिन्धुभ्यः) नदियों के समान (घृतवत्) बहुत घी से युक्त (हव्यम्) देने योग्य वस्तु बनाकर वे होमती हैं वैसे इनको तुम (जुहोत) ग्रहण करो ॥३॥

भावार्थः—जो युवती कन्या, नदियां समुद्रों को जैसे वैसे हृदय के प्यारे पतियों को पाकर छोड़ती नहीं हैं वैसे ही तुम सब मनुष्य एक दूसरे के संयोग से सर्वदा आनन्द करो ॥३॥

फिर स्त्री पुरुष क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद्गातुमूर्मिम् ।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४॥

पदार्थः—हे पुरुषो (सूर्यः) सूर्यमण्डल (रश्मिभिः) अपनी किरणों से (याः) जिन जलों को (आ, ततान) विस्तारता है (इन्द्रः) बिजुली (याभ्यः) जिन जलों से (गातुम्) भूमि को और (ऊर्मिम्) तरङ्ग को (अरदत्) छिन्न भिन्न करती है उनको अनुहारि स्त्री पुरुष वर्त्तें जैसे (ते) वे (सिन्धवः) नदियां समुद्र को पूरा करती हैं वैसे जो स्त्रियां सुखों से हम लोगों को (धातन) धारण करें (नः) हमारी (वरिवः) सेवा करें उनकी हम भी सेवा करें, हे पतिव्रता स्त्रियो (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम पति लोगों को (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे विद्वानो ! जैसे सूर्य अपने तेजों से भूमि के जलों को खींच कर विस्तार करता है वैसे अच्छे कामों से प्रजा को तुम विस्तारो ॥४॥

इस सूक्त में विद्वान् स्त्री पुरुष के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में सैंतालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्याष्टचत्वारिंशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । १–३ ऋभवः । ४ ऋभवो विश्वे देवाः । १ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ निचृत्त्रिष्टुप् । ३ त्रिष्टुप् । ४ विराट्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब चार ऋचा वाले अड़तालीसवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य ।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु ॥१॥

पदार्थः—हे (ऋभुक्षणः) महात्मा (मघवानः) बहुत उत्तम धनयुक्त (विभ्वः) सकल विद्याओं में व्याप्त (अर्वाचः) जो पीछे जाने वाले (वाजाः) विज्ञानवान् (नरः) मनुष्यो ! तुम (क्रतवः) अतीव बुद्धियों के (न) समान (सुतस्य) उत्पन्न हुए के सेवने से (अस्मे) हम लोगों को (मादयध्वम्) आनन्दित करो (आ, याताम्) आते हुए (वः) तुम लोगों के और हमारे (नर्यम्) मनुष्यों में उत्तम (रथम्) रमणीय यान को और नर (वर्तयन्तु) वर्त्तें ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् जन तुम्हें और हमें विद्या और बुद्धि के दान से वा शिल्पविद्या से आनन्दित करते हैं वे सर्वदा प्रशंसा करने योग्य हैं ॥१॥

मनुष्य कैसे विद्वान् होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि ।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाताविन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (वाजः) विज्ञानवान् वा ऐश्वर्य्ययुक्त जन (ऋभुभिः) बुद्धिमान् उत्तम विद्वानों के साथ (वाजसातौ) संग्राम में (ऋभुः) बुद्धिमान् (वः) तुम्हें और (अस्मान्) हमें (अवतु) पाले रक्खे वा (युजा) योग किये हुए (इन्द्रेण) बिजुली आदि शस्त्र से (वृत्रम्) धन को प्राप्त हो वैसे (विभ्वः) सकल शुभ गुण कर्म और स्वभावों में व्याप्त हम लोग (विभुभिः) अच्छे गुणादिकों में व्याप्त जन और (शवसा) बल के साथ (शवांसि) बलों को (अभि, तरुषेम) प्राप्त हों जिससे हम लोग सुखी (स्याम) हों ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—वे ही विद्वान् जन विद्याओं में व्याप्त शुभ गुण कर्म स्वभाव युक्त हैं जो संग्राम में भी सब की रक्षा करके धन और बल दे सकते हैं ॥२॥

फिर कौन राजा विजयशील राज्य का बढ़ाने वाला होता है इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ते चिद्धि पूर्वीरभि सन्ति शासा विश्वाँ अर्य उपरताति वन्वन्।

इन्द्रो विभ्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः शत्रोर्मिथत्या कृणवन्वि नृम्णम् ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (वाजः) बल विज्ञान और अन्नयुक्त (अर्यः) स्वामी (ऋभुक्षाः) उत्तम बुद्धिमानों को निरन्तर वसावे वह (इन्द्रः) परमैश्वर्ययुक्त महान् राजा (शत्रोः) शत्रु की (मिथत्या) हिंसा से (नृम्णम्) जो मनुष्यों में रमणीय ऐसे धन की इच्छा करता हुआ जिन (विश्वान्) समस्त (विभ्वान्) विद्या में व्याप्त अमात्य जनों को अपना करता है (ते) वे विद्वान् जन (उपरताति) मेघास्त्रादिकों से संग्राम में विजय (कृणवन्) करते हैं वे (चित्) ही (हि) निश्चय कर (शासा) शासन से (पूर्वीः) सनातन प्रजाजन (अभि, सन्ति) सब ओर से विद्यमान हैं तथा वह स्वामी (वि) विजयी होता है ॥३॥

भावार्थः—वही राजा महान् विजयी होता है जो धार्मिक उत्तम विद्वानों का संग्रह करता है ॥३॥

फिर राजादिकों से विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः।

समस्मे इषं वसवो ददीरन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४॥

पदार्थः—हे (सजोषाः) समान प्रीति के सेवने वाले (वसवः) विद्या में निवासकर्त्ता (विश्वे) समस्त (देवासः) विद्वान् जनो तुम (नः) हमारा (वरिवः) सेवन (कर्त्तन) करो (नः) हमारी (अवसे) रक्षा आदि के लिये (नु) शीघ्र (भूत) संनद्ध होओ (अस्मे) हमारे लिये (इषम्) अन्न वा विज्ञान को (संददीरन्) अच्छे प्रकार देओ (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हमारी (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥४॥

भावार्थः—हे विद्वान् राजजनो! तुम हम लोगों की और प्रजाजनों की निरन्तर रक्षा करो, सर्वदा विज्ञान और अन्न आदि ऐश्वर्य को देओ, ऐसा करो तो तुम लोगों की हम निरन्तर रक्षा करें ॥४॥

इस मन्त्र में विद्वानों के गुण और कर्मों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह पञ्चम मण्डल में अड़तालीसवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्यैकोनपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । आपो देवताः । १ निचृत्त्रिष्टुप् । २ । ३ त्रिष्टुप् । ४ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब चार ऋचा वाले उनचासवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में फिर वे जल कैसे हैं इस विषय को कहते हैं ॥

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वानो (याः) जो ऐसी हैं कि (समुद्रज्येष्ठाः) जिन में समुद्र ज्येष्ठ है वे (पुनानाः) पवित्र करती हुईं (अनिविशमानाः) कहीं निवास न करने वाली (आपः) जल तरङ्गें (सलिलस्य) अन्तरिक्ष के (मध्यात्) बीच से (यन्ति) जाती हैं वह (माम्) मेरी (इह) इस संसार में (अवन्तु) रक्षा करें और (ताः) उन (देवीः) प्रमोद कराने वाली जल तरंगों को (वृषभः) वर्षा करने वा (वज्री) वज्र के तुल्य छिन्न-भिन्न करने वाला बहुत किरणों से युक्त (इन्द्रः) सूर्य वा बिजुली (रराद) वर्षाता है वैसे तुम होओ ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है – हे मनुष्यो ! जो जल अन्तरिक्ष से बरस के सब की पालना करते हैं उन का तुम पान आदि कामों में अच्छे प्रकार योग करो ॥१॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयंजाः ।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (याः) जो (दिव्याः) शुद्ध (आपः) जल (स्रवन्ति) चूते हैं (उत, वा) अथवा (खनित्रिमाः) खोदने से उत्पन्न होते हैं वा (याः) जो (स्वयंजाः) आप उत्पन्न हुए हैं (उत, वा) अथवा (समुद्रार्थाः) समुद्र के लिये हैं वा (याः) जो (शुचयः) पवित्र (पावकाः) पवित्र करने वाले हैं (ताः) वह (देवीः) देदीप्यमान (आपः) जल (इह) इस संसार में (माम्) मेरी (अवन्तु) रक्षा करें ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वानो! जैसे जल और प्राण हमारी अच्छे प्रकार रक्षा कर बढ़ावें वैसे तुम लोग हम को बोध कराओ ॥२॥

फिर वह जगदीश्वर कैसा है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम्।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यासाम्) जिन जलों के (मध्ये) बीच (वरुणः) सब से उत्तम (राजा) प्रकाशमान ईश्वर (जनानाम्) मनुष्यों के (सत्यानृते) सत्य और झूठ आचरणों को (अव, पश्यन्) यथार्थ जानता हुआ (याति) प्राप्त होता है वा (याः) जो (मधुश्चुतः) मधुरादि गुणों से उत्पन्न हुए (शुचयः) पवित्र (पावकाः) और पवित्र करने वाले हैं (ताः) वह (देवीः) देदीप्यमान (आपः) जल (इह) इस संसार में (माम्) मेरी (अवन्तु) रक्षा करें ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो जगदीश्वर प्राणादिकों में अभिव्याप्त सब जीवों के धर्म अधर्म को देखता और फल से युक्त करता हुआ सब की रक्षा करता है वही सब को निरन्तर ध्यान करने योग्य है ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥४॥

पदार्थः—हे विद्वानो (यासु) जिन अन्तरिक्ष जल वा प्राणों में (वरुणः) श्रेष्ठ गुण कर्म स्वभावयुक्त (राजा) न्याय और विनय नम्रता से प्रकाशमान (यासु) वा जिन में (सोमः) ओषधिगण और (यासु) जिन में (विश्वे) समस्त (देवाः) विद्वान् जन अथवा पृथिवी आदि लोक (ऊर्जम्) बल पराक्रम को (मदन्ति) प्राप्त होते हैं वा (यासु) जिन में (वैश्वानरः) सब में वा मनुष्यों में प्रकाशमान परमात्मा वा (अग्निः) बिजुलीरूप अग्नि (प्रविष्टः) प्रविष्ट है (ताः) वह (देवीः) मनोहर (आपः) जल (इह) इस संसार में (माम्) मेरी (अवन्तु) रक्षा करें ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जिस आकाश में, प्राणों में वा जल में सब जगत् जीवन धारण करता है वा जिन प्राणों में स्थित योगी जन परमात्मा को प्राप्त होता है वा जहाँ बिजुली प्रविष्ट है उन जलों को तुम जान कर रक्षायुक्त होओ ॥४॥

इस सूक्त में जलादिकों के गुण और कृत्यों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में उनचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ चतुर्ऋचस्य पञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य १–४ वसिष्ठः । १ मित्रावरुणौ । २ अग्निः । ३ विश्वेदेवाः । ४ नद्यः । १ । ३ स्वराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ निचृज्जगती । ४ भुरिगतिजगतीच्छन्दः । निषादः स्वरः ॥

अब चार ऋचा वाले पचासवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्यों को इस संसार में क्या आचरण करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद्विश्वयन्मा न आ गन् ।
अजकावं दुर्दशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥१॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणा) प्राण और उदान के समान अध्यापक और उपदेशक तुम (इह) इस संसार में जो मैं (कुलाययत्) कुल की उन्नति चाहता हुआ (विश्वयत्) सब काम करने वाला (दुर्दशीकम्) दुःख से देखने योग्य (अजकावम्) जीवों को पीड़ा देता उसको (तिरोदधे) निवारण करता हूं वह (त्सरुः) कुटिल गति रोग (पद्येन) प्राप्त होने योग्य (रपसा) पाप से (माम्) मुझे (मा) मत (विदत्) प्राप्त हो कोई पीड़ा (नः) हम लोगों को (मा) मत (आगन्) प्राप्त हो इससे (माम्) मेरी (आ, रक्षतम्) सब ओर से रक्षा करो ॥१॥

भावार्थः—मनुष्यों को पापाचरण वा कुपथ्य कभी न करना चाहिये जिससे कभी रोगप्राप्ति न हो जो इस संसार में अध्यापक और उपदेशक हैं वे पढ़ाने और उपदेश करने से सब को अरोगी कर सीधे और उद्योगी करें ॥१॥

फिर मनुष्यों को रोगनिवारणार्थ क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यद्विजामन्परुषि वन्दनं भुवदष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत् ।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो इस (परुषि) कठोर व्यवहार में (वन्दनम्) वन्दना को (विजामन्) विशेषता से जानता हुआ (भुवत्) प्रसिद्ध होता है (यत्) जिस

व्यवहार में (त्सरुः) कठिन रोग (अष्ठीवन्तौ) कफादि न थूकने वाली (कुल्फौ) जङ्घाओं को (च) भी (परिवेहत्) सब ओर से बढ़ावे, पीड़ा दे (तत्) उसको (अग्निः) अग्नि (शोचन्) पवित्र करता हुआ (इतः) इस स्थान से (अपबाधताम्) दूर करे (पद्येन) प्राप्त होने योग्य (रपसा) अपराध से (माम्) मुझको रोग प्राप्त होता है वह मुझ को (मा) मत (विदत्) प्राप्त हो ॥२॥

भावार्थः—जो मनुष्य ब्रह्मचर्य्य को छोड़ के बालकपन में विवाह वा कुपथ्य करते हैं उनके शरीर में शोथ आदि रोग होते हैं उनका निवारण वैद्यक-रीति से करना चाहिये ॥२॥

मनुष्यों को रोगनिवृत्त करके ही पदार्थ सेवन करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यच्छ॒ल्मलौ॒ भव॑ति॒ यन्न॒दीषु॒ यदोष॑धीभ्यः॒ परि॒ जाय॑ते वि॒षम् ।
विश्वे॑ दे॒वा निरि॒तस्तत्सु॑वन्तु॒ मा मां पद्ये॑न॒ रप॑सा वि॒दत्त्सरुः॑ ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यत्) जो (विषम्) प्राण हरने वाला पदार्थ विष (शल्मलौ) सेमर आदि वृक्ष में और (यत्) जो (नदीषु) नदियों के प्रवाहों में (भवति) होता है (यत्) जो विष (ओषधीभ्यः) यव आदि ओषधियों से (परिजायते) उत्पन्न होता है (तत्) उसको (इतः) इस शरीर से (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् जन (निस्सुवन्तु) निरन्तर दूर करें जिस कारण (पद्येन) प्राप्त होने योग्य (रपसा) पापाचरण से उत्पन्न हुआ (त्सरुः) कुटिल रोग (माम्) मुझको (मा, विदत्) मत प्राप्त हो ॥३॥

भावार्थः—हे वैद्य आदि मनुष्यो ! सब पदार्थों से वा पदार्थों में जितना विष उत्पन्न होता है उतना सब निवार के अन्न पानी आदि सेवन करना चाहिये जिससे तुम को कोई भी रोग न प्राप्त हो ॥३॥

फिर मनुष्यों को किसका निवारण कर क्या सेवन करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

याः प्र॒वतो॑ नि॒वत॑ उ॒द्वत॑ उद॒न्वती॑रनुद॒काश्च॒ याः ।
ता अ॒स्मभ्यं॒ पय॑सा॒ पिन्व॑मानाः शि॒वा दे॒वीर॑शिप॒दा भ॑वन्तु
सर्वा॑ न॒द्यो॑ अशिमि॒दा भ॑वन्तु ॥४॥

पदार्थः—(याः) जो (प्रवतः) जाने योग्य (निवतः) नीचे (उद्वतः) वा ऊपरले देशों को जाती हैं (याश्च) और जो (उदन्वतीः) जल से भरी वा (अनुदकाः)

जलरहित हैं (ताः) वे (सर्वाः) सब (नद्यः) नदियां (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (पयसा) जल से (पिन्वमानाः) सींचती हुईं वा तृप्त करती हुईं (अशिपदाः) भोजनादि व्यवहारों के लिये प्राप्त होती हुईं (देवीः) आनन्द देने और (शिवाः) सुख करने वाली (भवन्तु) हों और (अशिमिदाः) भोजन आदि स्नेह करने वाली (भवन्तु) हों ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जितना जल नदी आदि में जाता है और जितना मेघमण्डल में प्राप्त होता है उतना सब होम से शुद्ध कर सेवो जिससे सर्वदा मंगल बढ़ कर दुःख का अच्छे प्रकार नाश हो ॥४॥

इस सूक्त में जल और ओषधी विष के निवारण से शुद्ध सेवन कहा, इससे इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह सप्तम मण्डल में पचासवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यृचस्यैकपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । आदित्या देवताः । १ । २ त्रिष्टुप् । ३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तीन ऋचा वाले इक्यावनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में किनके संग से क्या होता है इस विषय को कहते हैं ॥

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शंतमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ॥१॥

पदार्थः—जो (तुरासः) शीघ्रकारी (श्रोषमाणाः) सुनते हुए (अनागास्त्वे) अनपराधनपन में (अदितित्वे) अखण्डित काम में (इमम्) इस (यज्ञम्) यज्ञ को (दधतु) धारण करें उन (आदित्यानाम्) पूर्ण विद्यायुक्त विद्वानों की (अवसा) रक्षा आदि से (शंतमेन) अतीव सुख करने वाले (नूतनेन) नवीन (शर्मणा) विग्रह के साथ हम लोग (सक्षीमहि) बंधें ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हम लोग विद्वानों के संग से अत्यन्त सुख पावें वैसे ही तुम भी इसको पाओ ॥१॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः ।
अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य ॥२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (रजिष्ठाः) अतीव प्रीति करते हुए (अदितिः) अखण्डित नीति (मित्रः) मित्र (अर्यमा) व्यवस्था देने वाला (वरुणः) श्रेष्ठ

(अस्माकम्) हमारे (भुवनस्य) जल आदि लोकसमूह की (गोपाः) रक्षा करने वाले हैं (नः) और हमारी (अवसे) रक्षा आदि के लिये (मादयन्ताम्) आनन्द देते हैं (अद्य) आज (सोमम्) बड़ी बड़ी ओषधियों के रस को (पिबन्तु) पीवें वैसे वे (आदित्यासः) पूर्ण विद्वान् वा संवत्सर के महीने हमारे जलादि वा लोकसमूह की रक्षा करने वाले (सन्तु) हों ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे विद्वानो ! तुम आदित्य के समान विद्या-प्रकाश से वैद्य के समान ओषधियों के सेवने से नीरोग होकर हमारा भी आरोग्य करो ॥२॥

फिर किसकी रक्षा से सब सुख होता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्व ऋभवश्च विश्वे ।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थः—हे (विश्वे) सब (आदित्याः) संवत्सर के महीनों के समान विद्यावृद्ध (विश्वे, मरुतः, च) और समस्त मनुष्य (विश्वे, देवाः, च) और समस्त विद्वान् (विश्वे, ऋभवः, च) और बुद्धिमान् जन (इन्द्रः) बिजुली (अग्निः) साधारण अग्नि (अश्विना) सूर्य चन्द्रमा (तुष्टुवानाः) प्रशंसा करते हुए विद्वान् जन तथा (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सर्वदा (पात) रक्षा करो ॥३॥

भावार्थः—जिस देश में सब विद्वान् जन बुद्धिमान् चतुर धार्मिक और रक्षा करने और विद्या देने वाले उपदेशक हैं वहां सब से रक्षायुक्त होकर सब सुखी होते हैं ॥३॥

इस सूक्त में सूर्य के समान विद्वानों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में इक्यावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यृचस्य द्विपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । आदित्या देवताः । १ । ३ स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ निचृत्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब बावनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में फिर मनुष्य कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे हम लोग (देवत्रा) देवों में वर्त्तमान (आदित्यासः) महीने के समान (अदितयः) अखण्डित (स्याम) हों जैसे (मर्त्यत्रा) मनुष्यों में उपदेशक (वसवः) निवास करते हुए (सनेम) विभाग करें (पूः) नगरी के समान (मित्रावरुणा) प्राण और उदान दोनों (सनन्तः) सेवन करते हुए (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि के समान (भवन्तः) आप (भवेम) हों वैसे आप भी हों ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है- हे मनुष्यो ! तुम आप्त विद्वान् के समान वर्त कर धार्मिक विद्वानों में निरन्तर वस कर सत्य और असत्य का विभाग कर सूर्य और भूमि के समान परोपकार कर विश्व के सुख के लिए प्राण और उदान के सदृश सब की उन्नति के लिये होओ ॥१॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ॥२॥

पदार्थः—हे (वसवः) निवास करने वालो (यत्) जो (अन्यजातम्) और से उत्पन्न (एनः) पाप कर्म है (तत्) वह (कर्म) कर्म तुम (मा, चयध्वे) मत इकट्ठा करो जैसे (गोपाः) रक्षा करने वाले (शर्म) सुख वा घर को (मामहन्त) सत्कार से वर्त्तें वैसे (नः) हमारे (तोकाय) शीघ्र उत्पन्न हुए बालक के लिये और (तनयाय) सुन्दर कुमार के लिये उसको (मित्रः) प्राण के समान मित्र (वरुणः) जल के समान पालने वाला देवें जिससे हम लोग (वः) तुम लोगों को और पाप को (मा, भुजेम) मत भोगें ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! आप सदैव ब्रह्मचर्य्य और विद्यादान से अपने लड़कों की रक्षा और सत्कार कर बढ़ाव और आप पाप न करके और से किये हुए को भी न सेवें ॥२॥

फिर मनुष्य किसके तुल्य होकर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।
पिता च तन्नो महान्यजत्रो विश्वे देवाः समनसो जुषन्त ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (तुरण्यवः) शीघ्र करने वाले (अङ्गिरसः) प्राणों के समान (समनसः) समान अन्तःकरण युक्त (इयानाः) पढ़ते हुए (सवितुः) सकल जगत् उत्पन्न करने वाले (देवस्य) प्रकाशमान परमेश्वर की सृष्टि में जिस (रत्नम्) रमणीय धन को (नक्षन्त) व्याप्त हों (तत्) वह (पिता) उत्पन्न करने वाले के समान वर्त्तमान (महान्) सब से सत्कार (यजत्रः) संग और ध्यान करने योग्य ईश्वर (विश्वे, देवाः, च) और सब विद्वान् जन (नः) हम लोगों के लिये (जुषन्त) सेवें ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे मनुष्यो ! जैसे विद्वान् जन इस ईश्वरकृत सृष्टि में विद्या पुरुषार्थ और विद्वानों की सेवा आदि से सब सुखों को पाते हैं वैसे आप प्राप्त हों सब मिल कर पिता के समान पालना करने वाले परमात्मा की निरन्तर उपासना करें ॥३॥

इस सूक्त में विश्वेदेवों के गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में बावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यृचस्य त्रिपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । द्यावापृथिव्यौ देवते । १ त्रिष्टुप् । २ । ३ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

अब तीन ऋचा वाले त्रेपनवें सूक्त का प्रारम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में अब विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र द्यावा॑ य॒ज्ञैः पृ॑थि॒वी नमो॑भिः स॒बाध॒ ईळे बृ॑ह॒ती यज॑त्रे ।
ते चि॒द्धि पूर्वे॑ क॒वयो॑ गृ॒णन्तः॑ पु॒रो म॒ही द॑धि॒रे दे॒वपु॑त्रे ॥१॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जैसे (सबाधः) पीड़ा के सहित वर्त्तमान मैं (नमोभिः) अन्नादिकों से और (यज्ञैः) संगति करने वालों से जो (मही) बड़े (बृहती) बड़े (यजत्रे) संग करने योग्य (पुरः) नगरों को धारण करने वाली (देवपुत्रे) देवपुत्र अर्थात् विद्वान् जन जिनकी पुत्र के समान पालना करने वाले हैं उन (द्यावापृथिवी) सूर्य और भूमि की (पूर्वे) अगले (कवयः) विद्वान् जन (गृणन्तः) स्तुति करते हुए (दधिरे) धारण करते हैं (ते, चित्) (हि) उन्हीं की (प्रेळे) अच्छे प्रकार गुणों से प्रशंसा करता हूं ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जैसे

सबको धारण करने वाले भूमि और सूर्य को विद्वान् जन जान कर उपकार करते हैं वैसे तुम भी करो ॥१॥

फिर वे भूमि और बिजुली कैसी हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य ।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ॥२॥

पदार्थः—हे शिल्पि विद्वानो तुम (नव्यसीभिः) अतीव नवीन (गीर्भिः) सुशिक्षित वाणियों से (ऋतस्य) सत्य वा जल के सम्बन्ध में (सदने) स्थानरूप जिन में स्थिर होते हैं वे (पूर्वजे) आगे से उत्पन्न हुए (पितरा) माता पिता के समान वर्त्तमान (द्यावापृथिवी) भूमि और बिजुली (दैव्येन) विद्वानों से बनाये हुए विद्वान् (जनेन) प्रसिद्ध जन से (वाम्) तुम दोनों के (महि) बड़े (वरूथम्) श्रेष्ठ घर को (आ, यातम्) प्राप्त हों वैसे इनको (नः) हमको (कृणुध्वम्) सिद्ध करो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—हे स्त्री पुरुषो ! तुम पदार्थविद्या से पृथिवी आदि का विज्ञान करके सुन्दर घर बना वहाँ मनुष्यों के सुखों की उन्नति करो ॥२॥

फिर मनुष्यों को भूमि आदि के गुण जानने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति पुरूणि द्यावापृथिवी सुदासे ।
अस्मे धत्तं यदसदस्कृधोयु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशको ! जो (सुदासे) सुन्दर दानशीलों वाले (द्यावापृथिवी) भूमि और बिजुली वर्त्तमान हैं अथवा जिनमें (वाम्) तुम दोनों के (हि) ही (पुरूणि) बहुत (रत्नधेयानि) रत्न जिनमें धरे जाते (सन्ति) हैं वे धन धरने के पदार्थ हैं (ते) वे भूमि और बिजुली (अस्मे) हम लोगों में (धत्तम्) धारण करें (यत्) जो (उतो) कुछ (अस्कृधोयु) कृश (असत्) हो अर्थात् मोटा न हो उसके साथ (यूयम्) तुम लोग (स्वस्तिभिः) सुखों से (नः) हम लोगों की (सदा) सदा (पात) रक्षा करो ॥३॥

भावार्थः—जो मनुष्य बिजुली और भूमि के गुणों को जान कर वहां स्थित जो रत्न उनको पाकर सब के लिए सुख का विधान करते हैं वे सब ओर से सदा सुरक्षित होते हैं ॥३॥

इस सूक्त में द्यावापृथिवी के गुणों और कृत्यों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में त्रेपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ त्र्यृचस्य चतुष्पंचाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः। वास्तोष्पतिर्देवता। १। ३ निचृत्त्रिष्टुप्। २ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः॥

अब तीन ऋचा वाले चौवनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में मनुष्य घर बना कर उस में क्या करते हैं इस विषय को कहते हैं॥

वास्तो॑ष्पते॒ प्रति॑ जानीह्य॒स्मान्त्स्वा॑वे॒शो अ॑नमी॒वो भ॑वा नः।
यत्त्वेम॑हे॒ प्रति॒ तन्नो॑ जुषस्व॒ शं नो॑ भव द्वि॒पदे॒ शं चतु॑ष्पदे॥१॥

पदार्थः—हे (वास्तोः) निवास कराने वाले घर के (पते) स्वामी गृहस्थ जन आप (अस्मान्) हम लोगों के (प्रति, जानीहि) प्रतिज्ञा से जानो आप (नः) हमारे घर में (स्वावेशः) सुख में है सब ओर से प्रवेश जिसको ऐसे और (अनमीवः) नीरोग (भव) हूजिये (यत्) जहां हम लोग (त्वा) आपको (ईमहे) प्राप्त हों (तत्) उसको (नः) हमारे (प्रति, जुषस्व) प्रति सेवो आप (नः) हम लोगों के (द्विपदे) मनुष्य आदि जीव (शम्) सुख करने वाले और (चतुष्पदे) गौ आदि पशु के लिए (शम्) सुख करने वाले (भव) हूजिये॥१॥

भावार्थः—जो मनुष्य सब ओर द्वार और बहुत अवकाश वाले घर को बना कर उस में वसते और रोगरहित होकर अपने तथा औरों के लिये सुख देते हैं वे सबको मङ्गल देने वाले होते हैं॥१॥

फिर गृहस्थ क्या करके किनको किसके समान रक्खे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

वास्तो॑ष्पते प्र॒तर॑णो न एधि गय॒स्फानो॒ गोभि॒रश्वे॑भिरिन्दो।
अ॒जरा॑सस्ते स॒ख्ये स्या॑म पि॒तेव॑ पु॒त्रान्प्रति॑ नो जुषस्व॥२॥

पदार्थः—हे (इन्दो) आनन्द के देने वाले (वास्तोष्पते) घर के रक्षक आप (गोभिः) गौ आदि से (अश्वेभिः) घोड़े आदि से (गयस्फानः) घर की वृद्धि करने (प्रतरणः) उत्तमता से दुःख से तारने और (नः) हमारे सुख करने वाले (एधि) हूजिये जिन (ते) आपके (सख्ये) मित्रपन में हम लोग (अजरासः) शरीर जीर्ण

करने वाली वृद्धावस्था से रहित (स्याम) हों सो आप (नः) हम लोगों को (पुत्रान्) पुत्रों को जैसे (पितेव) पिता वैसे (प्रति, जुषस्व) प्रतीति से सेवो ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—मनुष्य उत्तम घर बना कर गौ आदि पशुओं से शोभित कर शुद्ध कर प्रजा के बढ़ाने वाले होकर अक्षय मित्रपन सब में अच्छे प्रकार प्रसिद्ध कराय जैसे पिता पुत्रों की रक्षा करता है वैसे ही सब की रक्षा करें ॥२॥

फिर वे घर में रहने वाले क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३॥

पदार्थः—हे (वास्तोष्पते) घर की रक्षा करने वाले जिन (ते) आप के (शग्मया) सुख रूप (संसदा) जिस में अच्छे प्रकार स्थिर हों उस (रण्वया) रमणीय (गातुमत्या) प्रशंसित वाणी वा भूमि से युक्त सभा के साथ (सक्षीमहि) सम्बन्ध करें वह आप (योगे) न ग्रहण किये हुए पदार्थ के ग्रहण लक्षण विषय में (उत) और (क्षेमे) रक्षा में (नः) हम लोगों की (वरम्) उत्तमता जैसे हो वैसे (पाहि) रक्षा करो (यूयम्) तुम (स्वस्तिभिः) सुखादिकों से (नः) हम लोगों की (सदा) सदैव (पात) रक्षा करो ॥३॥

भावार्थः—जो गृहस्थ सज्जनों का सत्कार कर उनकी रक्षा करते हैं वे उन के योग क्षेम की उन्नति कर निरन्तर उनकी पालना करते हैं ॥३॥

इस सूक्त में वास्तोष्पति के गुण और कृत्यों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिए ॥

यह सप्तम मण्डल में चौवनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथाष्टर्चस्य पंचपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । [१] वास्तोष्पतिर्देवता । २—८ इन्द्रः । १ निचृद्गायत्रीछन्दः । षड्जः स्वरः । २ । ३ । ४ बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । ५ । ७ अनुष्टुप् । ६ । ८ निचृदनुष्टुप्छन्दः धैवतः स्वरः ॥

अब आठ ऋचा वाले पचपनवें सूक्त का आरम्भ है, इसके प्रथम मन्त्र में घर का स्वामी क्या करे इस विषय को कहते हैं ॥

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् ।
सखा सुशेव एधि नः ॥१॥

पदार्थः—हे (वास्तोष्पते) घर के स्वामी जिस घर में (विश्वा) सब (रूपाणि) रूप (आविशन्) प्रवेश करते हैं वहां (नः) हम लोगों के लिये (अमीवहा) रोग हरने वाले (सखा) मित्र (सुशेवः) सुन्दर सुख वाले होते हुए (एधि) प्रसिद्ध हूजिये ॥१॥

भावार्थः—हे गृहस्थो ! तुम सर्व प्रकार उत्तम घरों को बना कर सुखी होओ ॥१॥

फिर गृहस्थ कहां वास करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे ।

वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥२॥

पदार्थः—हे (अर्जुन) अच्छे रूपयुक्त (सारमेय) सारवस्तुओं की उत्पत्ति करने वाले (पिशङ्ग) पीले पीले (यत्) जो आप (वीव) पक्षी के समान (दतः) दांतों को (यच्छसे) नियम से रखते हो वह जो (स्रक्वेषु) प्राप्त उत्तम घरों में (बप्सतः) भक्षण करते हुए (ऋष्टयः) पहुंचाने वाले (उप, भ्राजन्ते) समीप प्रकाशित होते हैं उन में आप (नि, षु, स्वप) निरन्तर अच्छे प्रकार सोओ ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो ! जहां आरोग्य-पन से तुम्हारे दन्त आदि अवयव अच्छे प्रकार शोभते हैं वहां ही निवास और शयन आदि व्यवहार को करो ॥२॥

फिर गृहस्थों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर ।

स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥३॥

पदार्थः—हे (राय) धनियों में सज्जन (सारमेय) सार वस्तुओं से मान करने योग्य आप (इन्द्रस्य) परम ऐश्वर्य्य के (स्तेनम्) चोर (वा) वा (तस्करम्) डाकू आदि चोर को (पुनः, सर) फिर फिर दण्ड देने के लिए प्राप्त होओ जो आप (स्तोतॄन्) स्तुति करने वालों को (रायसि) कहलाते हो (अस्मान्) हम लोगों को (किम्) क्या (दुच्छुनायसे) दुष्टों में जैसे वैसे आचरण से प्राप्त होंगे सो आप उत्तम स्थान में (नि, सु, स्वप) निरन्तर अच्छे प्रकार सोओ ॥३॥

भावार्थः—गृहस्थों को चाहिये कि चोरों की रुकावट और श्रेष्ठों का सत्कार कर के कभी कुत्ते के समान न आचरण करें और सदैव शुद्ध वायु जल और अवकाश में सोवें ॥३॥

फिर उसी विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

त्वं सूकरस्य दर्दृहि तवं दर्दर्तु सूकरः ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥४॥

पदार्थः—हे गृहस्थ जिस (सूकरस्य) सुन्दरता से कार्य करने वाले (इन्द्रस्य) परमैश्वर्य्यवान् (तव) तुम्हारे (सूकरः) कार्य को अच्छे प्रकार करने वाला (दर्दर्तु) निरन्तर बढ़े (त्वम्) आप (रायसि) लक्ष्मी के समान आचरण करते हो और जो सब को (दर्दृहि) निरन्तर उन्नति दें अर्थात् सब की वृद्धि करें (स्तोतॄन्) स्तुति करने वाले विद्वान् (अस्मान्) हम लोगों को (किम्) क्या (दुच्छुनायसे) दुष्ट कुत्तों में जैसे वैसे आचरण से प्राप्त होते हो उस घर में सुख से (नि, सु, स्वप) निरन्तर सोओ ॥४॥

भावार्थः—हे गृहस्थ ! आप ऐश्वर्य का संचय कर धर्म व्यवहार में अच्छे प्रकार विस्तार कर और विद्वानों का सत्कार कर श्रीमानों के समान आचरण करो, हम लोगों के प्रति किसलिये कुत्ते के समान आचरण करते हैं, नीरोग होते हुए प्रति समय सुख से सोओ ॥४॥

फिर गृहस्थ घर में क्या क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥५॥

पदार्थः—जो मनुष्य जैसे मेरे घर में मेरी (माता) माता (अभितः) सब ओर से (सस्तु) सोवे (पिता) पिता (सस्तु) सोवे (श्वा) कुत्ता (सस्तु) सोवे (विश्पतिः) प्रजापति (सस्तु) सोवे (सर्वे) सब (ज्ञातयः) सम्बन्धी सब ओर से (ससन्तु) सोवें (अयम्) यह (जनः) उत्तम विद्वान् सोवे वैसे तुम्हारे घर में भी सोवें ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—मनुष्यों को ऐसे घर रचने चाहियें जिनमें सब के सर्व व्यवहारों के करने को अलग अलग शाला और घर होवें ॥५॥

फिर मनुष्यों को कैसे घर बनाने चाहियें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।
तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यथा) जैसे (इदम्) यह (हर्म्यम्) मनोहर घर है (तथा)

वैसे (यः) जो (जनः) मनुष्य (नः) हमारे घर में (आस्ते) बैठता है (यः, च) और जो (चरति) जाता है (यः, च) और जो हम लोगों को (पश्यति) देखता है (तेषाम्) उन सबों की (अक्षाणि) इन्द्रियों को हम लोग (सं, हन्मः) संहित न देखने वाले करें वैसे तुम भी आचरण करो ॥६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—मनुष्यों को ऐसे घर बनाने चाहियें जिन में सब ऋतुओं में निर्वाह हो सब सुख बढ़े और बाहर वाले जन गृहस्थों को सहसा न देखें और न घर वाले बाहर वालों को देखें ॥६॥

फिर कैसे घर में सोना आदि करना चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सहस्रंशृङ्गो वृषभो यः संमुद्रादुदाचंरत् ।
तेनां सहस्येंना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥७॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (सहस्रशृङ्गः) हजारों किरण वाला (वृषभः) वृष्टि कारण सूर्य (समुद्रात्) अन्तरिक्ष से जैसे (उदाचरत्) ऊपर जाता है वैसे (तेन) उसके साथ (सहस्येन) बल में उत्तम घर से (वयम्) हम लोग (जनान्) मनुष्यों को (निष्वापयामसि) निरन्तर सुलावें ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जहां सूर्य की किरणों का स्पर्श सब ओर से हो और जो बल का अधिक बढ़ाने वाला घर हो उस के शुद्ध होने में सब को सुलावें और हम लोग भी सोवें ॥७॥

फिर स्त्री जनों के घर उत्तम बनावें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रोष्ठेशया वंह्येशया नारीर्यास्तंल्पशीवंरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यंगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥८॥

पदार्थः—हे गृहस्थ मनुष्यो जैसे हम लोग (याः) जो (प्रोष्ठेशयाः) अतीव सब प्रकार उत्तम सुखों की प्राप्ति कराने वाले घर में सोती हैं (वह्येशयाः) वा जो प्राप्ति कराने वाले घर में सोतीं वा जो (तल्पशीवरीः) पलंग पर सोने वाली उत्तम (नारीः) स्त्री (स्त्रियः) विवाहित तथा (पुण्यगन्धाः) जिन का शुद्धगन्ध हो (ताः) उन (सर्वाः) सबों को हम लोग उत्तम घर में (स्वापयामसि) सुलावें वैसे तुम भी उत्तम घर में सुलाओ ॥८॥

भावार्थः—हे गृहस्थो ! जिस घर में स्त्री वसें वह घर अतीव उत्तम रखना चाहिये जिससे निज सन्तान उत्तम हों ॥८॥

इस सूक्त में गृहस्थों के काम का और गुणों का वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में पचपनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ पञ्चविंशत्यृचस्य षट्पंचाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । मरुतो देवताः । १ आर्ची गायत्री । २ । ६ । ७ । ९ भुरिगार्चीगायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः । ३ । ४ । ५ प्राजापत्या बृहतीछन्दः । मध्यमः स्वरः । ८ । १० आच्युंष्णिक् । ११ निचृदाच्युंष्णिक् छन्दः । ऋषभः स्वरः । १२ । १३ । १५ । १८ । १९ । २१ निचृत्त्रिष्टुप् । १७ । २० । त्रिष्टुप् । २२ । २३ । २५ विराट्त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । २४ पङ्क्तिः । १४ । १६ स्वराट्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब पच्चीस ऋचा वाले छप्पनवें सूक्त का आरम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अब कौन मनुष्य श्रेष्ठ होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥१॥

पदार्थः—हे विद्वान् (अध) अनन्तर इस के (के) कौन (ईम्) सब ओर से (रुद्रस्य) रोगों के निकालने वाले के (स्वश्वाः) सुन्दर घोड़े वा महान् जन जिस में विद्यमान हैं (व्यक्ताः) विशेषता से प्रसिद्ध (सनीळाः) समान घर वाले (मर्याः, नरः) मरणधर्मा नायक मनुष्य हैं इस को कहो ॥१॥

भावार्थः—इस संसार में कौन उत्तम प्रसिद्ध प्रशंसा करने योग्य मनुष्य हैं इस का अगले मन्त्र में समाधान जानना चाहिये ॥१॥

फिर विद्वान् जन ही प्रकट कीर्ति वाले होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम् ॥२॥

पदार्थः—हे (अङ्ग) मित्र जिज्ञासु जो (हि) जिस कारण (एषाम्) इन के (जनूंषि) जन्मों को (नकिः) नहीं (वेद) जानते हैं (ते) वे उसी कारण (मिथः) परस्पर (जनित्रम्) जन्म सिद्ध कराने वाले कर्म को (विद्रे) पाते हैं ॥२॥

भावार्थः—जिन विद्वानों के जन्मों को विद्याप्राप्ति कराने वाले न जानते हैं वे प्रसिद्ध नहीं होते हैं और जो विद्याजन्म पाते हैं वे ही कृतकृत्य और प्रसिद्ध होते हैं यह उत्तर है ॥२॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अभि स्वपूर्भिर्मिथो वपन्त वार्तस्वनसः श्येना अस्पृध्रन् ॥३॥

पदार्थः—जो गृहस्थ पुरुष (वातस्वनसः) पवन के शब्द के समान जिनका शब्द है वे (श्येनाः) बाज के समान पराक्रमी (स्वपूभिः) सोते हुए अर्थात् अप्रसिद्ध अपने पवित्र आचरणों के साथ (मिथः) परस्पर (वपन्त) बोते (अभ्यस्पृध्रन्) और सम्मुखस्पर्द्धा करते हैं वे श्रेष्ठ ऐश्वर्य वाले होते हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है । जो गृहस्थ परस्पर सत्याचरणानुष्ठान से गम्भीर आशय वाले पराक्रमी होकर सब की उन्नति करना चाहते हैं वे पूजित होते हैं ॥३॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार ॥४॥

पदार्थः—जो (धीरः) बुद्धिमान् विद्वान् (यत्) जैसे (ऊधः) दुग्धधारायुक्त और (पृश्निः) अन्तरिक्ष के (मही) तथा पृथिवी (जभार) धारण करती है वैसे क्षोभ रहित निष्कम्प गम्भीर (एतानि) इन (निण्या) निश्चित पदार्थों को जो (चिकेत) जाने वह घर के भार को धर सके ॥४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे पृथिवी और सूर्य्य सब गृहों को धारण करते हैं वैसे जो विद्वान् जन निर्णीत सिद्धान्तों को जानते हैं वे सर्वत्र सत्कार करने योग्य होते हैं ॥४॥

कौन प्रजा उत्तम है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात्सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ॥५॥

पदार्थः—जो (सुवीरा) सुन्दर वीरों वाली (विट्) प्रजा (मरुद्भिः) मनुष्यों के साथ (सनात्) सनातन व्यवहार में (नृम्णम्) धन को (पुष्यन्ती) पुष्ट करावती और पीड़ा को (सहन्ती) सहने वाली वर्तमान है (सा) वह हमारे लिए (अस्तु) होवे ॥५॥

भावार्थः—वही स्त्री श्रेष्ठ है जो ब्रह्मचर्य्य से समग्र विद्याओं को पढ़ के शूरवीर पुत्रों को उत्पन्न करती है और वही सहनशील तथा कोश वाली होती है ॥५॥

फिर वे स्त्री कैसी हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥६॥

पदार्थः—हे गृहस्थो जो (शुभा) शोभन (शोभिष्ठाः) अतीव शोभायुक्त (श्रिया) धन से (संमिश्लाः) अच्छे प्रकार मित्रता के साथ मिली हुई (येष्ठाः) अतीव प्राप्त होने और (ओजोभिः) पराक्रम आदि से (उग्राः) कठिन गुण कर्म स्वभाव वाली होती हुई (यामम्) प्राप्त होने वाले व्यवहार को पहुंचती हैं वे गृहस्थों को मान करने योग्य हैं ॥६॥

भावार्थः—हे गृहस्थो ! जो शालाघर धन और अन्नादि पदार्थों से युक्त शोभायमान प्राप्त होने योग्य सुख को देते हैं उनको पतिव्रता स्त्रियों के समान सुन्दर शोभायुक्त निरन्तर करो ॥६॥

फिर स्त्री कैसे वर्त्तें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उ॒ग्रं व॒ ओजः॑ स्थि॒रा शवां॒स्यधा॑ म॒रुद्भि॒र्गण॒स्तुवि॑ष्मान् ॥७॥

पदार्थः—हे स्त्रियो (वः) तुम्हारा (मरुद्भिः) उत्तम मनुष्यों के साथ (उग्रम्) तेजस्वी (ओजः) पराक्रम और (स्थिरा) स्थिर दृढ़ (शवांसि) बल (अध) इस के अनन्तर (गणः) समूह (तुविष्मान्) बलवान् हो ॥७॥

भावार्थः—जो स्त्रियां अपने पतियों के बल को न क्षीण करातीं उनका पुत्र पौत्रादि समूह बलवान् होता है ॥७॥

फिर गृहस्थ कौन काम करे इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शु॒भ्रो वः॒ शुष्मः॒ क्रुध्मी॒ मनां॑सि॒ धुनि॒र्मुनि॑रिव॒ शर्ध॑स्य धृ॒ष्णोः ॥८॥

पदार्थः—हे गृहस्थो (वः) तुम्हारा धार्मिक जनों में (शुभ्रः) प्रशंसनीय (शुष्मः) बलयुक्त देह हो, दुष्टों में (क्रुध्मी) क्रोधशील (मनांसि) मन हों (मुनिरिव) मननशील विद्वान् के समान (शर्धस्य) बलयुक्त बली (धृष्णोः) दृढ़ के (धुनिः) चेष्टा करने के समान वाणी हो ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जो गृहस्थ जन श्रेष्ठों के साथ मिलाप और दुष्टों के साथ अलग होना रखते हैं वे बहुत बल पाते हैं ॥८॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सने॑म्य॒स्मद्यु॒योत॑ दि॒द्युं मा वो॑ दुर्म॒तिरि॒ह प्रण॑ङ्नः ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वानो (अस्मत्) हम से (सनेमि) पुराने (दिद्युम्) प्रज्वलित शस्त्र और अस्त्र समूह को (युयोत) अलग करो जिससे (इह) इस गृहाश्रम व्यवहार में (वः) तुम लोगों को और (नः) हम लोगों को (दुर्मतिः) दुष्टबुद्धि (मा) मत (प्रणक्) नष्ट करावे ॥९॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! तुम सदा दुष्टाचारी मनुष्यों से अलग रह कर और शत्रु-बल को निवार के बढ़ते हुए होओ ॥९॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानाः ॥१०॥

पदार्थः—हे (वावशानाः) कामना करते हुए (मरुतः) प्राण के समान प्यारे विद्वानो (तुराणाम्) शीघ्र करने वालों (वः) आप लोगों के (प्रिया) मनोहर (नाम) नामों को मैं (हुवे) प्रशंसता हूं अर्थात् मैं उनकी प्रशंसा करता हूं (यत्) जो (आ, तृपत्) अच्छे प्रकार तृप्त होता है उस का और मेरा सत्कार करो ॥१०॥

भावार्थः—जो सब के प्रियाचरण करने और सुख की कामना करने वाले मनुष्य वर्त्तमान हैं वे ही प्रिय सुखों को पाते हैं ॥१०॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (स्वायुधासः) अच्छे हथियारों वाले (इष्मिणः) इच्छा और अन्नादि पदार्थों से युक्त (सुनिष्काः) जिन के सुन्दर सुवर्ण के गहने विद्यमान (उत) और (स्वयम्) आप (तन्वः) शरीरों की (शुम्भमानाः) शोभा करते हुए वर्त्तमान हैं वे ही विजय और प्रशंसा को पाते हैं ॥११॥

भावार्थः—जो धनुर्वेद को पढ़ के आरोग्ययुक्त शरीर और युद्ध-विद्या में कुशल हैं वे ही धनधान्य युक्त होते हैं ॥११॥

कौन इस संसार में पवित्र होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः ॥१२॥

पदार्थः—हे (पावकाः) अग्नि के समान प्रताप सहित वर्त्तमान (शुचयः) पवित्र (शुचिजन्मानः) पवित्र जन्म वाले (ऋतसापः) जो सत्य से प्रतिज्ञा करते हैं वह (मरुतः) मरणधर्मा मनुष्यो (शुचीनाम्) पवित्र आचरण करने वाले (वः) तुम लोगों के जो (शुची) पवित्र (हव्या) देने लेने योग्य वस्तु वर्त्तमान हैं उन (शुचिभ्यः) पवित्र वस्तुओं से वा पवित्र विद्वानों से (शुचिम्) पवित्र को और (ऋतेन) यथार्थ भाव से (सत्यम्) अव्यभिचारी नित्य (अध्वरम्) न नष्ट करने योग्य व्यवहार को (आयन्) जो प्राप्त होते हैं उन्हें (हिनोमि) बढ़ाता हूं उस मुझे सब बढ़ावें ॥१२॥

भावार्थः—जिनके पिछले काम पुण्यरूप हैं वे ही पवित्र जन्म वाले हैं

अथवा जिनके वर्त्तमान में धर्मयुक्त आचरण हैं वे पवित्रजन्मा होते हैं ॥१२॥

फिर योद्धा कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अंसे॑ष्वा म॑रुतः खा॒दयो॑ वो॒ वक्षः॑सु रु॒क्मा उ॑पशिश्रिया॒णाः ।
वि वि॒द्युतो न वृष्टिभी॑ रुचा॒ना अनु॑ स्व॒धामायु॑धै॒र्यच्छ॑मानाः ॥१३॥

पदार्थः—हे (मरुतः) पवनों के समान बलिष्ठ मनुष्यो ! जो (उपशिश्रियाणाः) समीप सेवने वाले (वक्षःसु) हृदयों में (रुक्माः) देदीप्यमान (खादयः) भक्षण करते हैं (वृष्टिभिः) वर्षाओं से जैसे (विद्युतः) बिजुली (न) वैसे (अनु, स्वधाम्) अनुकूल अन्न को (वि, रुचानाः) प्रदीप्त करते हुए (आयुधैः) शस्त्र और अस्त्र युद्ध के साधनों से शत्रुओं को (यच्छमानाः) पराजय देने वाले उन (वः) आप की (अंसेषु) भुजाओं की मूलों में बल (आ) सब ओर से वर्त्तमान है वे आप लोग विजय प्राप्त होने वाले होते हैं ॥१३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे शूरवीर पुरुषो ! जैसे बिजुली वर्षाओं के साथ ही प्रकाशित होती है वैसे ही आप लोग शस्त्र और अस्त्रों से प्रकाशित होओ और अपने शरीर बल को बढ़ाके और उत्तम सेना का आश्रय लेकर शत्रुओं को पराजय देओ ॥१३॥

फिर मनुष्यों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

प्र बु॒ध्न्या॑ व ईरते॒ महां॑सि॒ प्र नामा॑नि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।
स॒ह॒स्रियं॒ दम्यं॑ भा॒गमे॒तं गृ॑हमे॒धीयं॑ मरुतो जुषध्वम् ॥१४॥

पदार्थः—हे (मरुतः) पवनों के समान (प्रयज्यवः) उत्तम संग करने वालो तुम जो (वः) तुम लोगों के (महांसि) बड़े-बड़े (नामानि) नामों को (बुध्न्याः) अन्तरिक्ष में उत्पन्न हुए मेघ (प्रेरते) प्राप्त होते हैं उससे शत्रुओं के (प्रतिरध्वम्) बल को उल्लङ्घन करो (एतम्) इस (सहस्रियम्) हजारों में हुए और (दम्यम्) शान्त करने योग्य (गृहमेधीयम्) घर के शुद्ध व्यवहार में हुए (भागम्) सेवन करने योग्य विषय को (जुषध्वम्) सेवो ॥१४॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—हे गृहस्थो ! जैसे मेघ पृथिवी को सेवते हैं वैसे ही आप लोग प्रजा जनों को सेवो और शत्रुओं की निवृत्ति कर अतुल सुख पाओ ॥१४॥

फिर वे मनुष्य कैसे प्रसिद्ध हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यदिं स्तुतस्यं मरुतो अधीथेत्था विप्रस्य वाजिनो हवींमन्।
मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात नू चिद्यमन्य आदभदरांवा ॥१५॥

पदार्थः—हे (मरुतः) पवनों के समान वर्त्तमान मनुष्यो (यदि) यदि (स्तुतस्य) प्रशंसित (वाजिनः) वेगयुक्त (विप्रस्य) मेधावी जन के (हवीमन्) जिस में देने योग्य वस्तु विद्यमान उस व्यवहार में (इत्था) इस प्रकार से (मक्षू) शीघ्र (अधीथ) स्मरण करो (सुवीर्यस्य) और जिन के सम्बन्ध में शुभ वीर्य होता उस (रायः) धन को (दात) देओ (चित्) और (यम्) जिसको (अन्यः) अन्य (अरावा) न देने वाला जन (नु) शीघ्र (आदभत्) नष्ट करे तो क्या क्या विचार न हो ॥१५॥

भावार्थः—जो विद्वान् के समीप से पढ़ते हैं वे समर्थ अर्थात् विद्यासम्पन्न हो धनपति होते हैं ॥१५॥

फिर वे राजजन कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

अत्यांसो न ये मरुतः स्वञ्चों यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः ॥१६॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (ये) जो (मर्याः) मरणधर्मा मनुष्य (अत्यासः) मार्ग को व्याप्त होते हुओं के (न) समान (स्वञ्चः) सुन्दरता से जाने (पयोधाः) वा जलों को धारण करने वाले (मरुतः) पवनों के समान निरन्तर चाल वाले बलिष्ठ (यक्षदृशः) जो पूजन करने योग्यों को देखते हैं उनके (न) समान (हर्म्येष्ठाः) अटारियों पर स्थिर होने वाले (शिशवः) बालकों के (न) समान (शुभ्राः) शुद्ध सुन्दर (वत्सासः) शीघ्र उत्पन्न हुए बछड़ों के (न) समान (प्रक्रीडिनः) अच्छे प्रकार खेल वाले होते हुए (शुभयन्तः) उत्तम के समान आचरण करते हैं (ते) वे कृतकार्य होते हैं ॥१६॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालंकार है—जो शूरवीर घोड़े के समान वेग वाले, अच्छी दृष्टि वाले के समान देखने वाले, बालकों के समान सीधे स्वभाव वाले, बछड़ों के समान खेल करने वाले, पवनों के समान पदार्थों के धारण करने वाले राजा आदि वीर जन हैं वे ही विजय और प्रतिष्ठा को निरन्तर पाते हैं ॥१६॥

फिर कौन राजजन श्रेष्ठ हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

दशस्यन्तों नो मरुतों मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेकें।
आरे गोहा नृहा वधो वों अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् ॥१७॥

पदार्थः—हे वीरो (मरुतः) प्राणों के समान (वक्षस्यन्तः) बल करते और (सुमेके) एक से रूप वाले (रोदसी) आकाश और पृथिवी को (वरिवस्यन्तः) सेवते हुए जन (नः) हम लोगों को (मृडन्तु) सुख देवें और (वः) तुम्हारे (आरे) दूर देश में (गोहा) गो हत्यारा (नृहा) और मनुष्य हत्यारा (वधः) यह दोनों जिससे मारते हैं वह (अस्तु) दूर हो जाय (वसवः) निवास दिलाने वाले तुम लोग (सुम्नेभिः) सुखों के साथ (अस्मे) हम लोगों को (नमध्वम्) नमो ॥१७॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार है—वे ही राजजन उत्तम हैं जो श्रेष्ठों को सुख देकर दुष्टों को मारते हैं और आप्त जनों को नम के दुष्टों में उग्र होते हैं ॥१७॥

फिर वे राजजन कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः ॥१८॥

पदार्थः—हे (मरुतः) पवनों के तुल्य मनुष्यो (यः) जो (गृणानः) स्तुति करता (सत्तः) बैठा हुआ (अद्वयावी) छल कपट आदि से रहित (होता) देने वाला (ईवतः) जाते हुए (वृषणः) वर्षा करने वाले के सम्बन्ध में (वः) तुम लोगों को (आ, जोहवीति) निरन्तर बुलाता (सत्राचीम्) जो सत्य को देती है उस (रातिम्) दान को देता और (गोपाः) रक्षा करने वाला (अस्ति) है तथा (उक्थैः) कहने योग्य वचनों से (वः) तुम लोगों को (हवते) बुलाता है वह उत्तम है इस को जानो ॥१८॥

भावार्थः—जो राजा आदि जन अभय देने और सब की रक्षा करने वाला, छल कपट आदि दोष रहित, सत्यविद्या दाता और सत्य ग्राहक है वही यहां प्रशंसित वर्त्तमान है उसी को मनुष्य उत्तम जानें ॥१८॥

फिर वे कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आ नमन्ति ।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥१९॥

पदार्थः—हे राजा जो (इमे) ये (मरुतः) पवनों के समान (तुरम्) शीघ्र (रमयन्ति) रमण कराते (इमे) यह (सहसः) बल से (सहः) बल को (आ, नमन्ति) सब ओर से नमते (इमे) यह (वनुष्यतः) क्रोध करने वाले की (शंसम्) प्रशंसा करने वाले को (नि, पान्ति) निरन्तर रखते और (अररुषे) पूरा रोष करने वाले के लिए (द्वेषः) वैर (गुरु) बहुत (दधन्ति) धारण करते हैं उन का आप निरन्तर सत्कार करो ॥१९॥

भावार्थः—हे राजा ! जो सेना को अच्छी शिक्षा देकर शीघ्र विशेष रचना कर बली शत्रुओं को भी जीत उत्तमों की रक्षा कर दुष्टों में द्वेष फैलाते हैं वे तुम को सत्कार करने चाहियें ॥१९॥

फिर वे राजजन कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इ॒मे र॒ध्रं चि॑न्म॒रुतो॑ जुनन्ति॒ भृमिं॑ चि॒द्यथा॒ वस॑वो जु॒षन्त॑ ।
अप॑ बाधध्वं वृषण॒स्तमां॑सि ध॒त्त विश्वं॒ तन॑यं तो॒कम॒स्मे ॥२०॥

पदार्थः—हे (वृषणः) बलिष्ठो (वसवः) निवास कराने वालो तुम (यथा) जैसे (इमे) यह (मरुतः) पवनों के समान वर्त्तमान (रध्रम्) समृद्धिमान् (चित्) ही को (जुनन्ति) प्रेरणा करते हैं और (भृमिम्) घूमने वाले को (चित्) ही (जुषन्त) सेवते हैं वैसे और जैसे सूर्य अन्धकारों को वैसे (तमांसि) रात्रि के समान वर्त्तमान दुष्ट शत्रुओं को (अप, बाधध्वम्) अत्यन्त बाधा देओ और (अस्मे) हम लोगों में (विश्वम्) समस्त (तनयम्) विस्तारयुक्त शुभ गुण कर्म स्वभाववाले (तोकम्) संतान को (धत्त) धारण करो ॥२०॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालङ्कार है—जैसे प्राणायामादिकों से अच्छे सिद्ध किये हुए पवन समृद्धि और कुपथ्य से सेवन किये दरिद्रता को उत्पन्न करते हैं वैसे ही सेवन किये हुए विद्वान् राज्य की ऋद्धि और अपमान किये हुए राज्य का भङ्ग उत्पन्न करते हैं, अच्छी शिक्षा दिये और सत्कार कर रक्षा किये हुए शूरवीर जैसे शत्रुओं को नष्ट करते हैं वैसे वर्त्तकर प्रजाजनों में उत्तम संतान राजजन उत्पन्न करावें ॥२०॥

फिर मनुष्य कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मा वो॑ दा॒त्रान्म॑रुतो॒ निर॑राम॒ मा प॒श्चाद्द॑ध्म रथ्यो वि॒भा॒गे ।
आ नः॑ स्पा॒र्हे भ॑जतना वस॒व्ये॒३॒॑ यदी॑ं सुजा॒तं वृ॑षणो वो॒ अस्ति॑ ॥२१॥

पदार्थः—हे (मरुतः) पवनों के समान मनुष्यो जैसे हम लोग (वः) तुम को (दात्रात्) दान से (मा) मत (निरराम) अलग करें हे (रथ्यः) बहुत रथों वाले हम लोग (पश्चात्) पीछे से (मा, दध्म) मत जावें हे (वृषणः) वर्षा कराने वालो (वः) तुम्हारा (यत्) जो (सुजातम्) सुन्दर प्रसिद्ध सुख (अस्ति) है उस (वसव्ये) द्रव्यों में हुए (स्पार्हे) इच्छा करने योग्य (विभागे) विभाग जिसमें कि बांटते हैं उस में तुम (नः) हम लोगों को (ईम्) सब ओर से (आ, भजतन) अच्छे प्रकार सेवो ॥२१॥

भावार्थः— मनुष्य सदैव विद्वानों के लिए देने योग्य सत्यासत्य व्यवहार से अलग न होवें जो कुछ भी उत्तम सुख हो उसको सब के लिये निवेदन करें ॥२१॥

फिर वे वीर कैसे हों इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

संयद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ॥२२॥

पदार्थः—हे (मरुतः) पवनों के समान (यत्) जो (रुद्रियासः) रुद्र के समान आचरण करने वाले (जनासः) प्रसिद्ध (शूराः) निर्भय मनुष्यो (मन्युभिः) क्रोधादिकों से शत्रुओं को (संयत्) संग्राम में (हनन्त) मारिये (अध) इसके अनन्तर (यह्वीषु) बहुत बड़ी (ओषधीषु) ओषधियों में और (विक्षु) प्रजाओं में (पृतनासु) शूरवीरों की सेनाओं में (स्म) निश्चित (नः) हमारे (त्रातारः) रक्षा करने वाले (भूत) हूजिये जो (वः) तुम्हारा (अर्यः) स्वामी है उसकी भी रक्षा करने वाले हूजिये ॥२२॥

भावार्थः—जो वीर जन शत्रुओं को मारने वाले प्रजाओं के रक्षक और बड़ी बड़ी ओषधियों में चतुर हैं उनको स्वामी राजा प्रीति से रक्खे ॥२२॥

फिर वे मनुष्य क्या क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित् ।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित्सनिता वाजमर्वा ॥२३॥

पदार्थः—हे (मरुतः) पवन के सदृश वर्त्तमान मनुष्यो (वः) आप लोगों के (या) जो (उक्थानि) प्रशंसा करने योग्य कर्म्म और (पित्र्याणि) पितरों के सेवन आदि (शस्यन्ते) स्तुति किये जाते हैं (पुरा) पहिले उनको (मरुद्भिः) उत्तम मनुष्यों के साथ (पृतनासु) सेनाओं में (उग्रः) तेजस्वी (साळ्हा) सहने वाला पुरुष और (मरुद्भिः) मनुष्यों के साथ (सनिता) विभाग करने वाला (अर्वा) वेगयुक्त घोड़ा जैसे वैसे (वाजम्) विज्ञान वा वेग को प्राप्त हुआ (चित्) भी जीतता है उनको आप लोग (भूरि) बहुत (चक्र) करते हैं ॥२३॥

भावार्थः—जो मनुष्य प्रशंसनीय कर्मों को करते हैं उनका सदा ही विजय होता है ॥२३॥

फिर वे मनुष्य कैसे होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता ।
अपो येन सुक्षितये तरेमाध स्वमोको अभि वः स्याम ॥२४॥

पदार्थः – हे (मरुतः) प्राणों के सदृश बल करने वाले जनो (यः) जो (वीरः) वीर अर्थात् प्राप्त हुई बल बुद्धि और शूरता आदि जिसको (असुरः) प्राणों में रमता हुआ बिजुली अग्नि के सदृश (जनानाम्) मनुष्यों का (विधर्ता) विशेष करके धारण करने वाला है वह (अस्मे) हमारा (शुष्मी) बहुत बल से युक्त (अस्तु) हो (येन) जिससे (सुक्षितये) सुन्दर पृथिवी की प्राप्ति के लिये हम लोग (अपः) जलों को (तरेम) तैरें (अध) इसके अनन्तर (स्वम्) अपने (ओकः) गृहके पार होवें और (वः) आप लोगों के रक्षक (स्याम) होवें ॥२४॥

भावार्थः—जो मनुष्य, मनुष्यों को बलयुक्त करते और नौका आदिकों से समुद्र के पार होकर दूसरे देश में जाकर धन बटोरते हैं वे आप लोगों और हम लोगों के रक्षक हों ॥२४॥

फिर मनुष्य किसके सदृश क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५॥

पदार्थः—हे विद्वानो जैसे (इन्द्रः) बिजुली (वरुणः) जलाधिपति (मित्रः) मित्र (अग्निः) अग्नि (आपः) जल (ओषधीः) सोमलता आदि ओषधियों को (वनिनः) बहुत किरणें जिन में पड़तीं ऐसे वन में वर्त्तमान वृक्ष आदि (नः) हम लोगों के (तत्) पूर्वोक्त सम्पूर्ण कर्म वा वस्तु की (जुषन्त) सेवा करें और जिस (शर्म्मन्) सुखकारक गृह में (मरुताम्) पवनों वा विद्वानों के (उपस्थे) समीप में हम लोग सुखी (स्याम) होवें उसमें (यूयम्) आप लोग (स्वस्तिभिः) कल्याणों से (नः) हम लोगों की (सदा) सदा (पात) रक्षा कीजिये ॥२५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे बिजुली आदि पदार्थ सब की उन्नति और नाश करते हैं वैसे ही दोषों का नाश कर और गुणों की वृद्धि करके सब की रक्षा को सब सदा करें ॥२५॥

इस सूक्त में वायु, विद्वान्, राजा, शूरवीर, अध्यापक, उपदेशक और रक्षक के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में छप्पनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्य सप्तपंचाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । मरुतो देवताः २ । ४ त्रिष्टुप् । १ विराट् त्रिष्टुप् । ३ । ५ । ६ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः ॥

फिर मनुष्य किससे सदृश क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति ।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः ॥१॥

पदार्थः—हे (यजत्राः) मिलने वाले (ये) जो (उग्राः) तेजस्वी बिजुली के सहित पवन (यत्) जो (उर्वी) बहुत पदार्थों से युक्त (रोदसी) अन्तरिक्ष पृथिवी और (उत्सम्) कूप को जैसे वैसे सम्पूर्ण संसार को (पिन्वन्ति) सींचते हैं और (चित्) भी (रेजयन्ति) कम्पाते हैं (अयासुः) प्राप्त होवे उसको (ये) जो (वः) आप लोगों को (मध्वः) मानते हुए (नाम) प्रसिद्ध (यज्ञेषु) विद्वानों के सत्कार आदिकों में (शवसा) बल से (मारुतम्) मनुष्यों के कर्म की (प्र, मदन्ति) कामना करते हैं उनको आप लोग जानिये ॥१॥

भावार्थः इस मन्त्र में वाचकलु०—जो पवन, भूगोलों को घुमाते और धारण करते हैं और वृष्टियों से सींचते हैं उनको जानकर विद्वान् जन कार्यों को करके आनन्द करें ॥१॥

फिर वे विद्वान् कैसे होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।
अस्माकमद्य विदथेषु बर्हिरा वीतये सदत पिप्रियाणाः ॥२॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो (निचेतारः हि) जिस कारण समूह करने वाले (मरुतः) पवन सबको प्रेरित करते हैं उस कारण (प्रणेतारः) अच्छे न्याय को करते हुए जन (यजमानस्य) सब के सुख के लिए यज्ञ करने वाले के (मन्म) विज्ञान को और (अस्माकम्) हम लोगों के (विदथेषु) यज्ञों में (गृणन्तम्) स्तुति करते हुए को (पिप्रियाणाः) प्रसन्न करते हुए (अद्य) आज (वीतये) विज्ञान वा प्राप्ति के लिए (बर्हिः) अन्तरिक्ष में स्थित उत्तम आसन पर (आ, सदत) बैठिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! आप लोग सम्पूर्ण पदार्थों के रचने वाले पवनों के समूह को जानकर सबके प्रिय को सिद्ध करो ॥२॥

फिर वे विद्वान् जन कैसे होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नैतावंदन्ये मरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमञ्ज्यंञ्जते शुभे कम् ॥३॥

पदार्थः– हे विद्वान् जनो (यथा) जैसे (इमे) ये (मरुतः) वायु के सदृश मनुष्य (रुक्मैः) प्रकाशमान (आयुधैः) आयुधों और (तनूभिः) शरीरों के साथ (भ्राजन्ते) प्रकाशित होते हैं और (विश्वपिशः) संसार के अवयवभूत (पिशानाः) उत्तम प्रकार चूर्ण करते हुए (शुभे) सुन्दरता के लिए (समानम्) तुल्य (अञ्जि) गमन को और (कम्) सुख को (अञ्जते) व्यतीत करते हैं तथा (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (आ) सब ओर से प्रकाशित करते हैं (न) न (एतावत्) इतना ही (अन्ये) अन्य करने को समर्थ होते हैं ॥३॥

भावार्थः—इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—हे मनुष्यो! जैसे विद्वान् शूरवीर जन शरीर और आत्मा के बल से युक्त और श्रेष्ठ आयुधों से युक्त हुए सङ्ग्रामों में प्रकाशित होते हैं वैसे भीरु मनुष्य नहीं प्रकाशित होते हैं, जैसे प्राण सब जगत् को आनन्दित करते हैं वैसे विद्वान् सबको सुखी करते हैं ॥३॥

फिर मनुष्यों को कैसा वर्त्ताव करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

ऋधक्सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद्व आगः पुरुषता करांम।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥४॥

पदार्थः—हे (यजत्राः) मेल करने वाले (मरुतः) मनुष्यो (यत्) जिससे (वः) आप लोगों के (आगः) अपराध को और जिस (पुरुषता) पुरुषपने से (कराम) करें (तस्याम्) उसमें (अपि) भी (वः) आप लोगों के अपराध को (मा) नहीं करें और जिससे हम लोग पुरुषार्थी (भूम) होवें (सा) वह (वः) आप लोगों के (ऋधक्) सत्य में (चनिष्ठा) अतिशय अन्न आदि ऐश्वर्य्य से युक्त (सुमतिः) अच्छी बुद्धि (अस्मे) हम लोगों में (अस्तु) हो और वह (दिद्युत्) प्रकाशमान नीति (वः) आप लोगों की (अस्तु) हो ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! अन्याय से [=रूप] अपराध का परित्याग कर और सत्य बुद्धि को ग्रहण करके पुरुषार्थ से सुखी होओ ॥४॥

फिर विद्वान् जन कैसे होकर क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

कृते चिदत्र मरुतो रणन्तानवद्यासः शुचयः पावकाः।
प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तिरत पुष्यसे नः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो जैसे (अनवद्यासः) नहीं निन्दा करने योग्य और धर्म्माचरण से युक्त (शुचयः) पवित्र और (पावकाः) पवित्र करने वाले (मरुतः) मनुष्य (चित्) भी (ऋते) उत्तम कर्म्म में (अत्र) इस संसार में (रणन्त) रमें वैसे (यजत्राः) मिलने वाले हुए आप लोग (सुमतिभिः) उत्तम बुद्धि वाले मनुष्यों और (वाजेभिः) अन्न आदिकों के साथ (नः) हम लोगों की (प्र, अवत) रक्षा कीजिये और (नः) हम लोगों को (पुष्यसे) पुष्टि के लिये (प्र, तिरत) निष्पन्न कीजिये ॥५॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो यथार्थवक्ता, धार्मिक, पवित्र, विद्वान् होके सब सबकी रक्षा करते हैं वे सबको पुष्ट और सुखी कर सकते हैं ॥५॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि ।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि ॥६॥

पदार्थः—हे (मरुतः) पवनों के सदृश मनुष्यो (नरः) अग्रणी आप लोगों (विश्वेभिः) सम्पूर्ण (नामभिः) संज्ञाओं से (नः) हम लोगों के लिए हम लोगों के (हवींषि) देने योग्य पदार्थों को (ददात) दीजिए (उत) और (स्तुतासः) प्रशंसा को प्राप्त हुए जन देने योग्य द्रव्यों को (व्यन्तु) प्राप्त होवें, हम लोगों और (अमृतस्य) अविनाशी की (प्रजायै) प्रजा के सुख के लिए (रायः) शोभाओं वा लक्ष्मियों को और (सूनृता) धर्म्म से इकट्ठे किये गए (मघानि) धनों को (जिगृत) उगलिये ॥६॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो प्रशंसा करने वाले मनुष्य सम्पूर्ण शब्द और अर्थों के सम्बन्धों से सम्पूर्ण विद्याओं को प्राप्त कर और शोभित होकर प्रजाजनों के लिए सत्य वचन को देते हैं वे सम्पूर्ण सुख को प्राप्त होते हैं ॥६॥

फिर कौन प्रशंसा करने और आदर करने योग्य होते हैं
इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती अच्छा सूरीन्त्सर्वताता जिगात ।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वान् मनुष्यो (ये) जो (विश्वे) सम्पूर्ण (स्तुतासः) प्रशंसा को प्राप्त हुए (शतिनः) असंख्य बलवाले (मरुतः) पवनों के समान विद्या से व्याप्त मनुष्य (त्मना) आत्मा से (ऊती) रक्षण आदि क्रिया से (नः) हम लोगों को

(वर्धयन्ति) बढ़ाते हैं उन (सूरीन्) धार्मिक विद्वानों को (सर्वताता) सबके सुख करने वाले यज्ञ में (यूयम्) आप लोग (अच्छ) अच्छे प्रकार आ (जिगात) प्रशंसा कीजिये और (स्वस्तिभिः) कल्याणों से (नः) हम लोगों की (सदा) सब काल में (पात) रक्षा कीजिये ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो विद्वान् धर्मयुक्त कर्म्म करने वाले असंख्य विद्या से युक्त, दयालु, न्यायकारी, यथार्थवक्ता जन हम सबों की निरन्तर वृद्धि करें, वृद्धि करके सदा रक्षा करते हैं उनको ही हम लोग प्रशंसित करके सेवा करें ॥७॥

इस सूक्त में पवन के सदृश विद्वान् के गुणों और कृत्य का वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की संगति इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में सत्तावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ षड्चस्याष्टापञ्चाशत्तमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । मरुतो देवताः । ३ । ४ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ त्रिष्टुप् । १ विराट् त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । २ । ६ भुरिक् पंक्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब छः ऋचा वाले अट्ठावनवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र साकमुक्षे अर्चता गणाय यो दैव्यस्य धाम्नस्तुविष्मान् ।
उत क्षोदन्ति रोदसी महित्वा नक्षन्ते नाकं निर्ऋतेरवंशात् ॥१॥

पदार्थः—(यः) जो (तुविष्मान्) बहुत बल से युक्त (दैव्यस्य) देवताओं से किये गए (धाम्नः) नाम स्थान और जन्म का जानने वाला है उस (साकमुक्षे) साथ ही सुख से सम्बन्ध करने वाले (गणाय) गणनीय विद्वान् के लिए आप लोग (प्र, अर्चत) सत्कार करिये और (अपि) भी जो पवन (महित्वा) महत्त्व से (रोदसी) अन्तरिक्ष और पृथिवी को (नक्षन्ते) व्याप्त होते हैं अवयवों के सहितों को (उत) भी (क्षोदन्ति) पीसते हैं (निर्ऋतेः) भूमि से (अवंशात्) सन्तान भिन्न से (नाकम्) दुःख से रहित स्थान को व्याप्त होते हैं उनको जानने वाले विद्वानों को आप लोग भी सत्कार करिये ॥१॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो वायु आदि की विद्या को जानते हैं उनका नित्य सत्कार करके इनसे वायु की विद्या को प्राप्त होकर आप लोग श्रेष्ठ हूजिये ॥१॥

फिर कौन नहीं विश्वास करने योग्य हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं॥

जनूश्चिद्वो मरुतस्त्वेष्येण भीमासस्तुविमन्यवोऽयासः।
प्र ये महोभिरोजसोत सन्ति विश्वो वो यामन्भयते स्वर्दृक् ॥२॥

पदार्थः—हे (मरुतः) पवनों के समान मनुष्यो (ये) जो (महोभिः) बड़े पराक्रमों वा गुणों के और (ओजसा) बल (त्वेष्येण) प्रकाश में हुए के साथ वर्त्तमान (भीमासः) डरते हैं जिन से वे (तुविमन्यवः) बहुत क्रोधयुक्त (अयासः) जानने वा जाने वाले जन (वः) आप लोगों को (जनूः) स्वभाव (प्रसन्ति) प्रकाश करते हुए हैं और (उत) भी जो (विश्वः) सम्पूर्ण (स्वर्दृक्) सुख को देखने वाला मनुष्य (यामन्) जाते हैं जिससे वा जिसमें उसमें (वः) आप लोगों को (भयते) भय देता है उनको और उसको (चित्) भी आप लोग जानकर युक्ति से सेवा करिये ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे विद्वान् मनुष्यो! जो भयङ्कर मनुष्य आदि प्राणी हैं उनका विश्वास नहीं करके उनको बड़ बल और पराक्रम से वश में करिये ॥२॥

फिर कौन जगत् से आदर पाने योग्य होते हैं इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं॥

बृहद्वयो मघवद्भ्यो दधात जुजोषन्निन्मरुतः सुष्टुतिं नः।
गतो नाध्वा वि तिराति जन्तुं प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेत ॥३॥

पदार्थः—हे मनुष्यो जो (मरुतः) मनुष्य (मघवद्भ्यः) अन्न से युक्त (नः) हम लोगों के लिए (बृहत्) बहुत (वयः) जीवन का (जुजोषन्) सेवन करते (इत्) ही हैं (नः) हम लोगों की (सुष्टुतिम्) उत्तम प्रशंसा को (दधात) धारण करते हैं और जो (गतः) प्राप्त हुआ (अध्वा) मार्ग है उसमें (जन्तुम्) प्राणी को (न) नहीं (वि, तिराति) मारता है और जो (स्पार्हाभिः) स्पृहा करने योग्य (ऊतिभिः) रक्षा आदि क्रियाओं से हम लोगों को (प्र, तिरेत) बढ़ावें उनका हम लोग नित्य सेवन करें ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो! जो विद्वान् जन सबकी अवस्था को बढ़ाते हैं, प्रशंसित कर्मों को कराते हैं, वे ही सबों से सत्कार करने योग्य होते हैं ॥३॥

किससे रक्षित मनुष्य कैसे होते हैं इस विषय को कहते हैं॥

युष्मोतो विप्रो मरुतः शतस्वी युष्मोतो अर्वा सहुरिः सहस्री।
युष्मोतः सम्राळुत हन्ति वृत्रं प्र तद्वो अस्तु धूतयो देष्णम् ॥४॥

पदार्थः—हे (धूतयः) कम्पाने वाले (मरुतः) प्राणों के सदृश प्रिय करने वाले विद्वान् जनो (युष्मोतः) आप लोगों से रक्षा किया (विप्रः) बुद्धिमान् जन (शतस्वी) असंख्य धन वाला (युष्मोतः) आप लोगों से पालन किया गया (अर्वा) घोड़े के समान (सहुरिः) सहनशील (सहस्री) असंख्यात उत्तम मनुष्य वा पदार्थ जिसके वह (उत) और (युष्मोतः) आप लोगों से उत्तम प्रकार रक्षा किया गया (सम्राट्) उत्तम प्रकाशित सूर्य्य के समान वर्त्तमान चक्रवर्त्ती राजा (वृत्रम्) मेघ को जैसे सूर्य्य वैसे शत्रुओं का (हन्ति) नाश करता है (तत्) वह (देष्णम्) देने योग्य दान (वः) आप लोगों के लिए (प्र, अस्तु) हो अर्थात् आप का दिया हुआ समस्त है सो आपका विख्यात हो ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे प्राण, शरीर आदि सबकी रक्षा करके सुख को प्राप्त कराते हैं वैसे ही विद्वान् जन शरीर, आत्मा, बल और अवस्था की रक्षा करके सबको आनन्द देते हैं उनकी रक्षा के विना कोई भी चक्रवर्ती राजा होने को योग्य नहीं होता तिससे ये सब काल में सत्कार करने योग्य होते हैं ॥४॥

फिर कौन मनुष्य सत्कार करने योग्य और तिरस्कार करने योग्य होते हैं इस विषय को कहते हैं ॥

ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नंसन्ते मरुतः पुनर्नः ।
यत्सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरव तदेन ईमहे तुराणाम् ॥५॥

पदार्थः—जो मनुष्य (यत्) जिस (सस्वर्ता) तपाने वाले शब्द से (नः) हम लोगों को (जिहीळिरे) क्रुद्ध करावें उन (तुराणाम्) शीघ्र कार्य्य करने वालों का (यत्) जो (एनः) पाप अपराध (तत्) उसको (अव) विरोध में (ईमहे) दूर करें उनको (रुद्रस्य) प्राण के सदृश विद्वान् (मीळ्हुषः) सींचने वाले विद्वान् के सम्बन्ध में (नंसन्ते) नम्र होते हैं (पुनः) फिर (तान्) उनको (रुद्रस्य) प्राण के सदृश विद्वान् के (कुवित्) बड़ा करते हुए को मैं (आविः) प्रकटता में (आ) सब प्रकार से (विवासे) वसाता हूं ॥५॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो पापी जन धार्मिक जनों के अनादर करने वाले होवें उनको दूर वसाना चाहिये और जो नम्रता आदि से युक्त धार्म्मिक होवें उनको समीप वसावें जिससे सबका श्रेष्ठ यश प्रकट होवे ॥५॥

फिर विद्वान् जन क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

प्र सा वांचि सुष्टुतिर्मघोनामिदं सूक्तं मरुतों जुषन्त ।
आराच्चिद्द्वेषो वृषणो युयोत यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।६॥

पदार्थः—हे (वृषणः) बलयुक्त जनो (मघोनाम्) बहुत श्रेष्ठ धन वालों की (वाचि) वाणी में (सा) वह (सुष्टुतिः) सुन्दर प्रशंसा है (इदम्) इस (सूक्तम्) उत्तम वचन को (मरुतः) विद्वान् मनुष्य (प्र, जुषन्त) सेवन करें (सा) वह हम लोगों को सेवन करे (यूयम्) आप लोग (द्वेषः) द्वेष करने वालों को (आरात्) समीप से वा दूर से (चित्) भी (युयोत) पृथक् करिये और (स्वस्तिभिः) कल्याणों से (नः) हम लोगों की (सदा) सब काल में (पात) रक्षा कीजिये ॥६॥

भावार्थः—जो मनुष्य सदा ही सत्य के कहने वाले हों वे ही स्तुति करने वाले होवें, उनके साथ बल को बढ़ाय के सब शत्रुओं को दूर करके श्रेष्ठों की सदा रक्षा करो ॥६॥

इस सूक्त में वायु और विद्वान् के गुण वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में अट्ठावनवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ द्वादशर्चस्यैकोनषष्टितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । १—११ मरुतः । १२ रुद्रो देवता । १ निचृद्बृहती । ३ बृहती । ६ स्वराड्बृहती छन्दः । मध्यमः स्वरः । २ पङ्क्तिः । ४ निचृत्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । ५ । १२ अनुष्टुप् छन्दः । गान्धारः स्वरः । ७ निचृत्त्रिष्टुप् । ८ त्रिष्टुप्छन्दः । धैवतः स्वरः । ९ । १० गायत्री । ११ निचृद्गायत्री छन्दः । षड्जः स्वरः ॥

अब बारह ऋचा वाले उनसठवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को कहते हैं ॥

यं त्रायध्व इदमिदं देवासो यं च नयथ ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन्मरुतः शर्म यच्छत ॥१॥

पदार्थः—हे (मरुतः) प्राणों के सदृश अग्रणी (देवासः) विद्वान् आप लोग (इदमिदम्) इस इस वचन को सुनाय के वा कर्म कर के (यम्) जिसको (नयथ) प्राप्त कराइये (यम्, च) और जिस मनुष्य की (त्रायध्वे) रक्षा करें (तस्मै) उसके लिये (शर्म) सुख वा गृह (यच्छत) दीजिये और हे (अग्ने) अग्नि के समान तेजस्वी

(वरुण) श्रेष्ठ (मित्र) मित्र (अर्य्यमन्) न्यायकारी आप इन्हीं की सदा सेवा करिये ॥१॥

भावार्थः—हे विद्वान् जनो ! आप लोग सत्य उपदेश, उत्तम शिक्षा और विद्या दान से सब मनुष्यों की उत्तम प्रकार रक्षा करके वृद्धि करिये जिससे सब सुखी होवें ॥१॥

फिर विद्वान् मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

युष्माकं देवा अवसाहंनि प्रिय ईंजानस्तरति द्विषः ।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशंति ॥२॥

पदार्थः—हे (देवाः) विद्वान् जनो (यः) जो (ईजानः) यजमान (अवसा) रक्षण आदि से (द्विषः) द्वेष करने वालों का (तरति) उल्लङ्घन करता है और (प्रिये) प्रीति करने वाले (अहनि) दिन में (युष्माकम्) आप लोगों के प्रिय को सिद्ध करता है और जो (महीः) भूमियों वा उत्तम प्रकार शिक्षित वाणियों वा (इषः) अन्नादिकों को (वः) आप लोगों के अर्थ (वराय) श्रेष्ठत्व के लिये (प्र, दाशति) देता है (सः) वह (क्षयम्) निवास को (प्र, वि, तिरते) बढ़ाता है ॥२॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो दुष्टता के दूर करने वाले, सब की रक्षा करने वाले, विद्या आदि ऐश्वर्य्य के देने वाले, और सुख से सर्वदा वसाने वाले विद्वान् हों उन्हीं की सेवा और मेल करके विद्याओं को प्राप्त हूजिये ॥२॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

नहि वंश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबत कामिनः ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वानो (कामिनः) कामना करने वाले (विश्वे) सम्पूर्ण (मरुतः) मनुष्य आप लोग (सचा) सम्बन्ध से (अद्य) इस समय (अस्माकम्) हम लोगों के (सुते) उत्पन्न हुए बड़ी ओषधियों के रस में (पिबत) रस को पीवें जिससे (वः) आप लोगों के (चरमम्) अन्त वाले को (चन) भी (वसिष्ठः) अतिशय वसाने वाला (नहि) नहीं (परि, मंसते) त्यागने योग्य वा विरुद्ध परिणाम को प्राप्त होता है ॥३॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जो आप लोग इच्छा की सिद्धि करने की इच्छा करें तो योग्य आहार और विहार जिसमें उस ब्रह्मचर्य्य को करिये ॥३॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

नहि वं ऊतिः पृतंनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः ।
अभि व आवर्त्सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषवः ॥४॥

पदार्थः—हे (पिपीषवः) पान करने की इच्छा करने वाले (नरः) अग्रणी जनो जिन (वः) आप लोगों की (ऊतिः) रक्षा आदि क्रिया (पृतनासु) मनुष्यों की सेनाओं में (नहि) नहीं (मर्धति) हिंसा करती है और (यस्मै) जिस के लिये आप लोग (अराध्वम्) आराधना करते हैं वह (वः) आप लोगों के (अभि, आ, अवर्त्) समीप सब प्रकार से वर्त्तमान होता है और जिनकी (नवीयसी) अतिशय नवीन (सुमतिः) उत्तम बुद्धि है वे आप लोग विद्या को (तूयम्) शीघ्र (यात) प्राप्त हूजिये ॥४॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! आप लोग इस प्रकार से प्रयत्न करिये जिससे आप लोगों की न्याय से रक्षा सेना की बढ़ती और उत्तम बुद्धि कभी न न्यून हो ॥४॥

फिर स्वामी जन नौकरों के प्रति कैसा आचरण करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये ।
इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं मोष्व१ंन्यत्र गन्तन ॥५॥

पदार्थः—(ओ) हे (घृष्विराधसः) इकट्ठे लिये हुए धनों वाले (मरुतः) मनुष्यो जिन (इमा) इन (हव्या) देने और ग्रहण करने योग्य (अन्धांसि) अन्नपान आदिकों को (वः) आप लोगों के अर्थ (पीतये) पान करने के लिये मैं (ररे) देता हूं उनसे (हि) ही आप लोग (कम्) सुख को (सु, यातन) अच्छे प्रकार प्राप्त हूजिये (अन्यत्र) अन्य स्थान में (मो) नहीं (सु) अच्छे प्रकार (गन्तन) जाइये ॥५॥

भावार्थः—हे धार्मिक विद्वानो ! मैं आप लोगों का पूर्ण सत्कार करता हूं आप लोग अन्यत्र की इच्छा को न करिये यहां ही करने योग्य कर्मों को यथावत् करके पूर्ण अभीष्ट सुख को यहां ही प्राप्त हूजिये ॥५॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु ।
अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मादयाध्वै ॥६॥

पदार्थः—हे (वसु) द्रव्य का (अस्रेधन्तः) नहीं नाश करते हुए (मरुतः) मनुष्यो आप लोग (नः) हम लोगों के (स्पार्हाणि) कामना करने योग्य पदार्थों को (च) निश्चित (दातवे) देने के लिये हम लोगों के (बर्हिः) उत्तम बड़े गृह में (आ, सदत) बैठिये (नः, च) और हम लोगों की (अवित) रक्षा कीजिये (इह) इस लोक में (स्वाहा) सत्य क्रिया से (सोम्ये) सोमलता के सदृश आनन्द करने वाले (मधो) मधुर रस में (मादयाध्वै) आनन्द कीजिये ॥६॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग सब मनुष्यों के लिये विद्या देने को प्रवृत्त हूजिये, विद्या ही से इनकी रक्षा कीजिये और ऐश्वर्य्य सब के लिये बढ़ाइये ॥६॥

फिर मनुष्य किसके सदृश किसको जानें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सस्वश्चिद्धि तन्वः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।

विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्तः ॥७॥

पदार्थः—हे विद्वान् जनो जैसे (शुम्भमानाः) शोभते हुए (हि) ही (हंसासः) हंसों के समान गमन करने वाले (नीलपृष्ठाः) शुद्ध कारण जिनके वे (सस्वः) छिपे हुए (चित्) निश्चित (तन्वः) विस्तारयुक्त प्राण देह आदि में (आ) सब ओर से (अपप्तन्) गिरते हैं वैसे (सवने) ऐश्वर्य्य में (मदन्तः) आनन्द करते हुए (रण्वाः) सुन्दर (नरः) अग्रणी जनों के (न) समान (मा) मुझ को (अभितः) सब ओर से आप लोग (नि, सेद) बैठाइये और (विश्वम्) सम्पूर्ण (शर्धः) बल को प्राप्त कराइये ॥७॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जैसे हंस पक्षी शीघ्र चलते हैं वैसे देह से प्राण निकलते हैं और जैसे उत्तम मनुष्य सब के प्रिय होते हैं वैसे ही विद्वान् जन सब के प्रिय होते हैं ॥७॥

फिर धार्मिक विद्वान् क्या करें इस विषय को कहते हैं ॥

यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।

द्रुहः पाशान्प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥८॥

पदार्थः—हे (वसवः) वास कराने वाले (मरुतः) मनुष्यो (यः) जो (दुर्हृणायुः) दुष्ट विचार वाला (नः) हम लोगों के (चित्तानि) अन्तःकरणों को (अभि) सम्मुख (जिघांसति) मारने की इच्छा करता है (सः) वह (द्रुहः) द्रोह करने वाले (पाशान्) बन्धनों को प्राप्त कराता है (तम्) उसको हम लोगों के (प्रति) प्रति

(मुचीष्ट) छोड़िये (तपिष्ठेन) और अत्यन्त तप्त (हन्मना) हनन से उसको (तिरः, हन्तन) तिरछा मारिये ॥८॥

भावार्थः—हे धार्मिक विद्वानो ! आप लोग दुष्ट मनुष्यों को श्रेष्ठों से दूर करके मोह आदि बन्धनों को निवृत्त कर के उनके दोषों का नाश करके उन को शुद्ध करिये ॥८॥

फिर मनुष्य क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सान्तपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥९॥

पदार्थः—हे विद्वानो ! (सान्तपनाः) उत्तम प्रकार तपन में हुए (मरुतः) मनुष्यो आप (तत्) उस (इदम्) इस (हविः) देने योग्य अन्न आदि पदार्थ की (जुजुष्टन) सेवा करिये, हे (रिशादसः) हिंसा करने वालों के हिंसक (युष्माक) आप लोगों की (ऊती) जो रक्षण आदि क्रिया उससे आप सेवन करें अर्थात् परोपकार करें ॥९॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग सबका रक्षण करके ग्रहण करने योग्य को ग्रहण कराइये ॥९॥

फिर गृहस्थ कैसे होवें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः ॥१०॥

पदार्थः—हे (गृहमेधासः) गृह में बुद्धि जिन की ऐसे (मरुतः) उत्तम मनुष्यो आप लोग यहां (आ, गत) आइये और (सुदानवः) अच्छे दान वाले (भूतन) हूजिये और (युष्माक) आप लोगों की (ऊती) रक्षण आदि क्रिया के सहित आप लोग (मा) नहीं (अप) विरुद्ध हूजिये ॥१०॥

भावार्थः हे गृहस्थ जनो ! आप लोग विद्या आदि श्रेष्ठ गुणों के देने वाले होकर धर्म्म और पुरुषार्थ के विरुद्ध मत होओ ॥१०॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे ॥११॥

पदार्थः—(सूर्य्यत्वचः) सूर्य्य के समान प्रकाशमान त्वचा जिन की ऐसे (स्वतवसः) अपने बल वाले (कवयः) हे विद्वान् (मरुतः) मनुष्यो (इहेह) इसी संसार में (वः) आप लोगों के (यज्ञम्) सङ्गतिस्वरूप यज्ञ को मैं (आ, वृणे) स्वीकार करता हूं ॥११॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! आप लोग विद्या आदि के प्रचार नामक कर्म की सदा उन्नति करिये ॥११॥

फिर मनुष्यों को किसकी उपासना करनी चाहिये इस विषय को
अगले मन्त्र में कहते हैं॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥१२॥

पदार्थः—हे मनुष्यो! जिस (सुगन्धिम्) अच्छे प्रकार पुण्यरूप यशयुक्त (पुष्टिवर्धनम्) पुष्टि बढ़ाने वाले (त्र्यम्बकम्) तीनों कालों में रक्षण करने वा तीन अर्थात् जीव कारण और कार्य्यों की रक्षा करने वाले परमेश्वर को हम लोग (यजामहे) उत्तम प्रकार प्राप्त होवें उसकी आप लोग भी उपासना करिये और जैसे मैं (बन्धनात्) बन्धन से (उर्वारुकमिव) ककड़ी के फल के सदृश (मृत्योः) मरण से (मुक्षीय) छूटूं वैसे आप लोग भी छूटिये जैसे मैं मुक्ति से न छूटूं वैसे आप भी (अमृतात्) मुक्ति की प्राप्ति से विरक्त (मा, आ) मत हूजिये॥१२॥

भावार्थ—इस मन्त्र में उपमालंकार है—हे मनुष्यो! हम सब लोगों का उपास्य जगदीश्वर ही है जिसकी उपासना से पुष्टि, वृद्धि, उत्तम यश और मोक्ष प्राप्त होता है, मृत्यु सम्बन्धी भय नष्ट होता है उस का त्याग करके अन्य की उपासना हम लोग कभी न करें॥१२॥

इस सूक्त में वायु के दृष्टान्त से विद्वान् और ईश्वर के गुण और कृत्य के वर्णन करने से इस सूक्त के अर्थ की इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ संगति जाननी चाहिये॥

यह सप्तम मण्डल में उनसठवां सूक्त समाप्त हुआ॥



* ओ३म् *

अथ पञ्चमाष्टके पञ्चमाऽध्यायारम्भः ।।

—:०:०:०—

विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव । यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सु॑व ।।

अथ द्वादशर्चस्य षष्टितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठ ऋषिः । १ सूर्यः । २—१२ मित्रावरुणौ देवते । १ पङ्क्तिः । ९ विराट् पङ्क्तिः । १० स्वराट् पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः । २ । ३ । ४ । ६ । ७ । १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ५ । ८ । ११ त्रिष्टुप्-छन्दः । धैवतः स्वरः ।।

अब मनुष्यों को किसकी प्रार्थना करनी चाहिये इस विषय को कहते हैं ।।

यद॒द्य सूर्य॒ ब्रवो॑ऽनागा उ॒द्यन्मि॒त्राय॒ वरु॑णाय स॒त्यम् ।
व॒यं दे॑व॒त्रादि॑ते स्याम॒ तव॑ प्रि॒यासो॑ अर्यमन्गृ॒णन्तः॑ ।।१।।

पदार्थः—हे (सूर्य्य) सूर्य्य के समान वर्त्तमान (अदिते) अविनाशी और (अर्य्यमन्) न्यायकारी जगदीश्वर (यत्) जो (अनागाः) अपराध से रहित आप हम लोगों को (उद्यन्) उद्यत कराते हुए सूर्य्य जैसे वैसे (मित्राय) मित्र और (वरुणाय) श्रेष्ठ जन के लिये (सत्यम्) यथार्थ बात को (ब्रवः) कहिये वैसे हम लोगों के लिये कहिये जिससे आप की (देवत्रा) विद्वानों में (गृणन्तः) स्तुति करते हुए हम लोग (तव) आपके (अद्य) इस समय (प्रियासः) प्रिय (स्याम) होवें ।।१।।

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! आप लोग सूर्य्य के सदृश प्रकाशक परमात्मा ही की प्रार्थना करो, हे परब्रह्मन् आप हम लोगों के आत्माओं में अन्तर्य्यामी के स्वरूप से सत्य सत्य उपदेश करिये जिससे आपकी आज्ञा में वर्त्ताव कर के हम लोग आप के प्रिय होवें ।।१।।

फिर वह कैसा जगदीश्वर किसके सदृश क्या करता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ।।

एष स्य मि॒त्रावरुणा नृ॒चक्षा॑ उ॒भे उदे॑ति॒ सूर्यो॑ अ॒भि ज्मन् ।
विश्व॑स्य स्था॒तुर्जग॑तश्च गो॒पा ऋ॒जु मर्ते॑षु वृजि॒ना च॒ पश्य॑न् ।।२।।

पदार्थः—हे मनुष्यो (एषः) (स्यः) सो यह (नृचक्षाः) मनुष्यों के कर्मों को देखने वाला परमात्मा (उभे) दोनों प्रकार के स्थूल और सूक्ष्म संसार में जैसे (ज्मन्) भूमि में (सूर्य्यः) सूर्य्य लोक (अभि, उद्, एति) सब ओर से उदय करता है वैसे (विश्वस्य) सम्पूर्ण (स्थातुः) नहीं चलने वाले और (जगतः) चलने वाले संसार का भी (गोपाः) रक्षक वह (मर्तेषु) मनुष्यों में (ऋजु) सरलतापूर्वक (वृजिना) सेनाओं को (च) और (पश्यन्) विशेष कर के जानता हुआ (मित्रावरुणा) सब के प्राण और उदान वायु को प्रकाशित करता है ॥२॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे उदय को प्राप्त हुआ सूर्य्य समीप में वर्त्तमान स्थूल जगत् को प्रकाशित करता है वैसे अन्तर्य्यामी ईश्वर स्थूल और सूक्ष्म जगत् और जीवों को सब प्रकार से प्रकाशित करता है और सब की उत्तम प्रकार रक्षा कर के सब के कर्मों को देखता हुआ यथायोग्य फल देता है ॥२॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

अयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद्या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः ।
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ॥३॥

पदार्थः—हे विद्वानो जैसे (सप्त) सात (हरितः) दिशा और (याः) जो (घृताचीः) रात्रियां (सधस्थात्) तुल्य स्थान से (सूर्य्यम्) सूर्य्य को और (ईम्) जल को (वहन्ति) धारण करती हैं वैसे (यः) जो (अयुक्त) युक्त होता है (धामानि) जन्म स्थान और नाम को (मित्रावरुणा) प्राण और उदान वायु को (युवाकुः) उत्तम प्रकार संयुक्त करने वाला हुआ (यूथेव) समूहों के सदृश (जनिमानि) जन्मों को (सम्, चष्टे) प्रकाशित करता है उसको आप लोग जनाइये ॥३॥

भावार्थः - इस मन्त्र में उपमालङ्कार है—जैसे पवन सूर्य्य लोकों को सब ओर से धारण करते हैं वैसे विद्वान् जन सूर्य्य, प्राण और पृथिवी आदि की विद्या को जानें ॥३॥

फिर विद्वानों को क्या करना चाहिये इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

उद्वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ॥४॥

पदार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो (वाम्) आप दोनों के जो (पृक्षासः) सींचने वाले (मधुमन्तः) मधुर आदि गुण विद्यमान जिन में वे (उत्, अस्थुः) उठें और जो (सूर्य्यः) सूर्य्य लोक (शुक्रम्) शुद्ध (अर्णः) जल को (आ,

अरुहत्) सब ओर से चढ़ाता और (यस्मै) जिसके लिये (आदित्याः) वर्ष के महीने (अध्वनः) मार्ग के मध्य में (रदन्ति) आक्रमण करते हैं (सजोषाः) तुल्य प्रीति से सेवा करने योग्य (मित्रः) प्राण (वरुणः) जल आदि (अर्य्यमा) बिजुली और मार्ग के मध्य में आक्रमण करते हैं उन सब को आप लोग यथावत् जानो ॥४॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! अध्यापक और उपदेशक से विद्या को प्राप्त हुए आप लोग पृथिवी आदि की विद्या को जान कर धनवान् हूजिये ॥४॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमे चेतारो अनृतस्य भूरेर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ॥५॥

पदार्थः—हे विद्वानो जैसे (इमे) ये (मित्रः) सर्व मित्र (अर्यमा) न्यायकारी और (वरुणः) जल के सदृश पालक (भूरेः) बहुत प्रकार के (अनृतस्य) मिथ्या वस्तु के (चेतारः) उत्तम प्रकार ज्ञानयुक्त वा जनाने वाले (सन्ति) हैं और (इमे) जो (हि) निश्चित (शग्मासः) बहुत सुख से युक्त (अदितेः) अखण्डित न नष्ट होने वाली के (पुत्राः) पुत्र (अदब्धाः) नहीं हिंसा करने वाले (दुरोणे) गृह में बहुत प्रकार के (ऋतस्य) सत्य वस्तु के विज्ञान को (ववृधुः) बढ़ाते हैं इससे वे सत्कार करने योग्य हैं ॥५॥

भावार्थः—जो पूर्ण विद्यायुक्त होते हैं वे ही सत्य और असत्यके जानने वाले होते हैं ॥५॥

फिर विद्वान् कैसे श्रेष्ठ होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमे मित्रो वरुणो दूळभासोऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः ।
अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ॥६॥

पदार्थः—जो (इमे) ये (दूळभासः) दुःख से प्राप्त होने योग्य विद्वान् (मित्रः) मित्र और (वरुणः) श्रेष्ठ पुरुष (दक्षैः) सेनाओं वा चतुर जनों से (अपि) भी (अचेतसम्) अज्ञानी को (चित्) भी (चितयन्ति) जनाते हैं और (सुचेतसम्) शुद्ध अन्तःकरण और (क्रतुम्) बुद्धि का (वतन्तः) सेवन करते हुए जन (सुपथा) सुन्दर धर्म्मयुक्त मार्ग से (अंहः) अपराध को (चित्) भी (तिरः) निवारण में (नयन्ति) पहुंचाते हैं वे ही संसार में कल्याणकारक होते हैं ॥६॥

भावार्थः—जो अज्ञानियों को शीघ्र विद्वान् करके सत्य धर्म्म के मार्ग से चलाकर पाप से पृथक् करते हैं वे ही इस संसार में दुर्लभ हैं ॥६॥

फिर कौन विद्वान् श्रेष्ठ होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति ।
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ॥७॥

पदार्थः- हे मनुष्यो जो (इमे) ये (चिकित्वांसः) विज्ञान देते हुए (अनिमिषा) निरन्तरता से (पृथिव्याः) भूमि आदि पदार्थ मात्र की ओर (दिवः) सूर्य्य आदि की विद्या को (अचेतसम्) जड़ बुद्धि को (नयन्ति) प्राप्त कराते हैं और (चित्) जैसे (प्रव्राजे) जिसमें चलते हैं उस देश में (नद्यः) नदियां जाती हैं जो इन नदियों का (गाधम्) अथाह जल (अस्ति) है इससे (पारम्) परभाग को पहुंचाते हैं वैसे (अस्य) इस (विष्पितस्य) व्याप्त कर्म के पार को (नः) हम लोगों को (पर्षन्) पहुंचाते हैं वे ही विद्वान् करने को योग्य होते हैं ॥७॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन बिजुली और भूमि आदि सम्पूर्ण सृष्टि की विद्या को जानते हैं वे सब मनुष्यों को दुःख से पार ले जाने को समर्थ होते हैं ॥७॥

फिर कौन विद्वान् उत्तम होते हैं इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यद् गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे ।
तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ॥८॥

पदार्थः—जैसे (अदितिः) विद्यायुक्त माता (मित्रः) मित्र (वरुणः) श्रेष्ठ (गोपावत्) पृथिवी के पालन करने वाले राजा के सदृश (भद्रम्) सेवन करने योग्य सुखकारक (शर्म्म) गृह को देते हैं वैसे (सुदासे) सुन्दर दाता जन जिस व्यवहार में (तस्मिन्) उसमें (तनयम्) विशाल उत्तम (तोकम्) सन्तान को (दधानाः) धारण करते हुए (यत्) जो जन सबके लिए सुख (यच्छन्ति) देते हैं वे आप लोग (तुरासः) शीघ्र करने वाले हुए (देवहेळनम्) विद्वानों का जिसमें अनादर हो ऐसे (कर्म्म) कर्म्म को (मा) मत करें ॥८॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—जो माता के, मित्र के और न्यायाधीश के सदृश सब को सत्य विद्या देकर सुख देते हैं और धार्मिक विद्वानों के अनादर को कभी भी नहीं करते हैं और सब सन्तानों की ब्रह्मचर्य्य और विद्या में रक्षा करते हैं वे ही सम्पूर्ण जगत् के हित चाहने वाले होते हैं ॥८॥

फिर मनुष्य क्या करें और क्या न करें इस विषय को कहते हैं ॥

अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद्वरुणध्रुतः सः ।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तूरुं सुदासे वृषणा उ लोकम् ॥९॥

पदार्थः—जो (होत्राभिः) हवन की क्रियाओं वा वाणियों से (वेदिम्) हवन के निमित्त कुण्ड का (यजेत) समागम करे और जो कोई (चित्) भी (काः) किन्हीं (रिपः) पापस्वरूप क्रियाओं का (अव) नहीं समागम करे (सः) वह (वरुणध्रुतः) श्रेष्ठ से स्थिर किया गया (अर्य्यमा) न्यायाधीश (द्वेषोभिः) द्वेष से युक्त जनों के साथ (परि) सब ओर से (वृणक्तु) पृथक् होवे तथा (उरुम्) बहुत सुखकारक और विस्तीर्ण (लोकम्) लोक को (उ) और (वृषणौ) दो बलिष्ठों को (सुदासे) उत्तम प्रकार दान जिसमें दिया जाय ऐसे कर्म्म में प्राप्त होवे ॥९॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन वेद से युक्त वाणियों से सम्पूर्ण व्यवहारों को सिद्ध करके और दुष्ट क्रियाओं और दुष्टों का त्याग करते हैं वे ही उत्तम सुख को प्राप्त होते हैं ॥९॥

फिर वे विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन सहसा सहन्ते ।
युष्मद्भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः ॥१०॥

पदार्थः—जो (हि) निश्चित (सस्वः) मध्य में चलते हुए हैं (चित्) और (एषाम्) इनकी (त्वेषी) प्रकाशमान (समृतिः) उत्तम प्रकार सत्य क्रिया है (अपीच्येन) जिससे चलता है उस में हुए (सहसा) बल से (सहन्ते) सहते हैं उनके लिए और (युष्मत्) आप लोगों के समीप से (भिया) भय से (रेजमानाः) कांपते और चलते हुए (वृषणः) बलिष्ठ कांपने हुए जाने वाले होते हैं वे आप लोग (दक्षस्य) बल के (महिना) महत्व से (चित्) भी (नः) हम लोगों को (मृळत) सुखयुक्त करें ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिसकी सत्य बुद्धि, विद्या, नीति, सेना और प्रजा वर्त्तमान है वही शत्रुओं को सहता हुआ सब को सुखयुक्त करता है वह महिमा से आनन्दित होता है ॥१०॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (परमस्य) श्रेष्ठ (वाजस्य) विज्ञान और (रायः) धन के (सातौ) उत्तम प्रकार बांटने में (ब्रह्मणे) धन के वा परमेश्वर के लिये (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को (आयजाते) सब प्रकार से प्राप्त होवे और जो (मघवानः) अत्यन्त धन से युक्त (अर्य्यः) यथावत् जानने वाले (मन्युम्) क्रोध को (सीक्षन्त) सम्बन्धित करते हैं और (क्षयाय) निवास के लिये (उरु) बड़े (सुधातु)

सुन्दर धातु सुवर्ण आदि जिसमें उस गृह को (चक्रिरे) सिद्ध करते हैं वे ही लक्ष्मीवान् होते हैं ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर के विज्ञान के, उत्तम धन के लाभ के और श्रेष्ठ गृह के लिये क्रोध आदि दोषों का परित्याग कर के प्रयत्न करते हैं वे सम्पूर्ण सुखों से युक्त होते हैं ॥११॥

फिर विद्वानों से क्या किया जाता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१२॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशक जनो (देवा) दाता दोनों (युवभ्याम्) आप दोनों से (यज्ञेषु) विद्वानों के सत्काररूपी यज्ञ कर्मों में (इयम्) यह (पुरोहितिः) पहले हित की क्रिया (अकारि) की जाती है वे दोनों आप (नः) हम लोगों के लिये (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुर्गा) दुःख से जाने योग्य कामों का (तिरः) तिरस्कार कर के आप दोनों (पिपृतम्) पूर्ण करिये और हे विद्वान् जनो (यूयम्) आप लोग (स्वस्तिभिः) कल्याणों से (नः) हम सब मनुष्यों की (सदा) सब काल में (पात) रक्षा कीजिये ॥१२॥

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! जैसे आप दोनों सब के हित को करें वैसे हम लोगों के दुष्ट व्यसनों को दूर कर के सब काल में हम लोगों की वृद्धि करें ॥१२॥

इस सूक्त में सूर्य्य आदि के दृष्टान्तों से विद्वानों के गुण और कृत्य के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में साठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्यैकषष्टितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । मित्रावरुणौ देवते । २ । ४ त्रिष्टुप् । ३ । ५ । ६ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले इकसठवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अब अध्यापक और उपदेशक कैसे होवें इस विषय को कहते हैं ॥

उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् ।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत ॥१॥

पदार्थः—जो (होत्राभिः) हवन की क्रियाओं वा वाणियों से (वेविम्) हवन के निमित्त कुण्ड का (यजेत) समागम करे और जो कोई (चित्) भी (काः) किन्हीं (रिपः) पापस्वरूप क्रियाओं का (अव) नहीं समागम करे (सः) वह (वरुणध्रुतः) श्रेष्ठ से स्थिर किया गया (अर्य्यमा) न्यायाधीश (द्वेषोभिः) द्वेष से युक्त जनों के साथ (परि) सब ओर से (वृणक्तु) पृथक् होवे तथा (उरुम्) बहुत सुखकारक और विस्तीर्ण (लोकम्) लोक को (उ) और (वृषणौ) दो बलिष्ठों को (सुदासे) उत्तम प्रकार दान जिसमें दिया जाय ऐसे कर्म्म में प्राप्त होवे ॥९॥

भावार्थः—जो विद्वान् जन वेद से युक्त वाणियों से सम्पूर्ण व्यवहारों को सिद्ध करके और दुष्ट क्रियाओं और दुष्टों का त्याग करते हैं वे ही उत्तम सुख को प्राप्त होते हैं ॥९॥

फिर वे विद्वान् जन क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन सहसा सहन्ते ।
युष्मद्भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः ॥१०॥

पदार्थः—जो (हि) निश्चित (सस्वः) मध्य में चलते हुए हैं (चित्) और (एषाम्) इनकी (त्वेषी) प्रकाशमान (समृतिः) उत्तम प्रकार सत्य क्रिया है (अपीच्येन) जिससे चलता है उस में हुए (सहसा) बल से (सहन्ते) सहते हैं उनके लिए और (युष्मत्) आप लोगों के समीप से (भिया) भय से (रेजमानाः) काँपते और चलते हुए (वृषणः) बलिष्ठ काँपते हुए जाने वाले होते हैं वे आप लोग (दक्षस्य) बल के (महिना) महत्व से (चित्) भी (नः) हम लोगों को (मृळत) सुखयुक्त करें ॥१०॥

भावार्थः—हे मनुष्यो ! जिसकी सत्य बुद्धि, विद्या, नीति, सेना और प्रजा वर्त्तमान है वही शत्रुओं को सहता हुआ सब को सुखयुक्त करता है वह महिमा से आनन्दित होता है ॥१०॥

फिर विद्वान् क्या करें इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ॥११॥

पदार्थः—हे मनुष्यो (यः) जो (परमस्य) श्रेष्ठ (वाजस्य) विज्ञान और (रायः) धन के (सातौ) उत्तम प्रकार बाँटने में (ब्रह्मणे) धन के वा परमेश्वर के लिये (सुमतिम्) उत्तम बुद्धि को (आयजाते) सब प्रकार से प्राप्त होवे और जो (मघवानः) अत्यन्त धन से युक्त (अर्य्यः) यथावत् जानने वाले (मन्युम्) क्रोध को (सीक्षन्त) सम्बन्धित करते हैं और (क्षयाय) निवास के लिये (उरु) बड़े (सुधातु)

सुन्दर धातु सुवर्ण आदि जिसमें उस गृह को (चक्रिरे) सिद्ध करते हैं वे ही लक्ष्मीवान् होते हैं ॥११॥

भावार्थः—जो मनुष्य ईश्वर के विज्ञान के, उत्तम धन के लाभ के और श्रेष्ठ गृह के लिये क्रोध आदि दोषों का परित्याग कर के प्रयत्न करते हैं वे सम्पूर्ण सुखों से युक्त होते हैं ॥११॥

फिर विद्वानों से क्या किया जाता है इस विषय को अगले मन्त्र में कहते हैं ॥

इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१२॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशक जनो (देवा) दाता दोनों (युवभ्याम्) आप दोनों से (यज्ञेषु) विद्वानों के सत्काररूपी यज्ञ कर्मों में (इयम्) यह (पुरोहितिः) पहले हित की क्रिया (अकारि) की जाती है वे दोनों आप (नः) हम लोगों के लिये (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुर्गा) दुःख से जाने योग्य कामों का (तिरः) तिरस्कार कर के आप दोनों (पिपृतम्) पूर्ण करिये और हे विद्वान् जनो (यूयम्) आप लोग (स्वस्तिभिः) कल्याणों से (नः) हम सब मनुष्यों की (सदा) सब काल में (पात) रक्षा कीजिये ॥१२॥

भावार्थः—हे अध्यापक और उपदेशक जनो ! जैसे आप दोनों सब के हित को करें वैसे हम लोगों के दुष्ट व्यसनों को दूर कर के सब काल में हम लोगों की वृद्धि करें ॥१२॥

इस सूक्त में सूर्य्य आदि के दृष्टान्तों से विद्वानों के गुण और कृत्य के वर्णन होने से इस सूक्त के अर्थ की सङ्गति इससे पूर्व सूक्त के अर्थ के साथ जाननी चाहिये ॥

यह सप्तम मण्डल में साठवां सूक्त समाप्त हुआ ॥

अथ सप्तर्चस्यैकषष्टितमस्य सूक्तस्य वसिष्ठर्षिः । मित्रावरुणौ देवते । २ । ४ त्रिष्टुप् । ३ । ५ । ६ । ७ निचृत्त्रिष्टुप् छन्दः । धैवतः स्वरः । १ भुरिक्पङ्क्तिश्छन्दः । पञ्चमः स्वरः ॥

अब सात ऋचा वाले इकसठवें सूक्त का प्रारम्भ है, उसके प्रथम मन्त्र में अब अध्यापक और उपदेशक कैसे होवें इस विषय को कहते हैं ॥

उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् ।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत ॥१॥

पदार्थः—हे (वरुणा) श्रेष्ठो (देवयोः) विद्वान् जो (वाम्) आप उन दोनों के जिस (सुप्रतीकम्) उत्तम प्रकार रूप आदि के ज्ञान कराने वाले (चक्षुः) चक्षु इन्द्रिय को कि जिससे देखता है (ततन्वान्) विस्तृत करता हुआ (सूर्य्यः) सूर्य्यमण्डल जैसे (उद्, एति) उदय को प्राप्त होता है और (यः) जो मनुष्य (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) भुवनों को (अभि, चष्टे) जानता है (सः) वह (मर्त्येषु) मनुष्यों में (मन्युम्) क्रोध को (आ) सब प्रकार से (चिकेत) जाने वैसे आप दोनों करिये ॥१॥

भावार्थः—इस मन्त्र में वाचकलु०—हे मनुष्यो ! जैसे सूर्य्य सम्पूर्ण लोकों को प्रकाशित करता है वैसे अध्यापक और उपदेशक जन सब के आत्माओं को प्रकाशित करते हैं ॥१॥

फिर वे दोनों कैसे हों इस विषय को कहते हैं ॥

प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति ।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत्क्रत्वा न शरदः पृणैथे ॥२॥

पदार्थः—हे (मित्रावरुणौ) प्राण और उदान वायु के सदृश वर्त्तमान अध्यापक और उपदेशक जनो (सः) वह (ऋतावा) सत्य का सेवन करने और (दीर्घश्रुत्) बहुत शास्त्रों को वा बहुत काल पर्य्यन्त शास्त्रों को सुनने वाला (विप्रः) बुद्धिमान् जन (वाम्) आप दोनों के (मन्मानि) विज्ञानों को (इयर्त्ति) प्राप्त होता है (यस्य) जिसके (ब्रह्माणि) धनों को (सुक्रतू) सुन्दर बुद्धि से युक्त होते हुए आप (प्र, अवाथः) रक्षा करें और (यत्) जिसकी (क्रत्वा) बुद्धि से (न) जैसे पदार्थों को वैसे (शरदः) शरद आदि ऋतुओं को (आ, पृणैथे) अच्छे प्रकार पूरो उन आप दोनों का हम लोग निरन्तर सत्कार करें ॥२॥

भावार्थः—हे विद्वानो ! जो बहुत काल पर्य्यन्त ब्रह्मचर्य्य से शास्त्रों को पढ़ता है वही बुद्धिमान् होकर सब मनुष्यों की रक्षा करने को समर्थ होता है ॥२॥

इति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्याणां श्रीपरमविदुषां विरजानन्दसरस्वतीस्वामिनां शिष्येण श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिना निर्मिते संस्कृतार्यभाषाभ्यां समन्विते सुप्रमाणयुक्ते ऋग्वेदभाष्ये सप्तमे मण्डले चतुर्थानुवाक एकषष्टितमे सूक्ते पञ्चमाष्टके पञ्चमाध्याये तृतीयवर्गे द्वितीयमन्त्रस्य भाष्यं समाप्तम् ॥

उक्तस्वामिकृतं भाष्यं चैतावदेवेति ॥

सं० १९५६ वि० आषाढ कृष्णा ५ को छपके समाप्त हुआ ॥

* ओ३म् *

वेदभाष्य के लिए दानदाता महानुभाव

जिन्होंने ५०००) रुपया प्रदान किया

१. श्री मन्त्रीजी आर्यसमाज काकड़वाड़ी, गिरगांव, वी० पी० रोड बम्बई ५०००)
२. श्री जयदेवजी आर्य, ३१० सत्य बिल्डिग, शीर्य सर्किल, बम्बई-२२ ५०००)
३. श्री ओ० पी० गोयल—मैसर्स एयर ट्रांसपोर्ट कार्पोरेशन, ३/५ आसफअली रोड, नई दिल्ली-१ ५०००)
४. मैसर्स रैनबक्सी लेबोरेट्रीज प्रा० लिमिटेड, ओखला, नई दिल्ली ५०००)
५. श्री मरदारीलालजी अग्रवाल, C/O वेल्डन इलैक्ट्रिकल्स बम्बई ५०००)
६. श्री सेठ योगेन्द्र भाई मफतलालजी बम्बई ५०००)
७. श्री आदित्य प्रतापसिंह शूरजी, कच्छ कैसल, वी० पी० रोड, बम्बई ५०००)
८. श्री मैसर्स मोहन मिकिन ब्र्रीज, मोहननगर-गाजियाबाद ५०००)
९. श्री सदाजीवितलालजी, पंजाबी चन्दू हलवाई, बम्बई ५०००)
१०. श्री पी० डी० सिंहजी, राजगृह, २९ रास्ता, बान्द्रा, बम्बई ५०००)
११. श्री मा० शिवचरणदास जी, ११३ दरयागंज, दिल्ली-६ ५०००)

जिन्होंने ३२००) रु० प्रदान किया

१. श्री सेठ धरमसी मूलराज खटाऊ, दि खटाऊ मकनजी स्पिनिंग एण्ड वीविंग कं० लि०, लक्ष्मी बिल्डिग, वेलार्ड स्ट्रीट, बम्बई-१ ३२००)

जिन्होंने २०००) रु० प्रदान किया

१. श्री आर० के० मेहरा चेरिटेबल ट्रस्ट द्वारा श्री मोहनलाल भयाना, सी० ५४ महारानी बाग, नई दिल्ली-१४ २०००)

जिन्होंने १००१) रु० प्रदान किया

१. श्री जगदीश चड्ढा जी द्वारा पावर इंजीनीयरिंग कम्पनी,
   ४९५ । ४९७ कालबादेवी रोड, बम्बई-२

२. मैसर्स मोहिन्द्रनाथ एण्ड कम्पनी, डब्ल्यू ९०, ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ल।

३. श्री के० एस० दिग्विजय सिंह जी, दरबारगढ़ खरेड़ी,जामनगर १

४. श्री जोशी बुढ़ा काका महिम हलवा वाला बम्बई १०

५. श्री मैसर्स ब्रजवासी दुग्धालय प्रा० लि० कालबादेवी रोड बम्बई १००

जिन्होंने १०००) रु० प्रदान किया

१. श्री डा० दुःखनराम जी, ब्रजकिशोर पथ, पटना (बिहार) १०००)

२. श्री बा० सोमनाथ जी मरवाहा एडवोकेट, ८ मलकागंज, दिल्ली-७ १०००)

३. श्री दीवान रामशरणदास जी मण्डी केसरगंज, लुधियाना १०००)

४. श्री सेठ भगवतीप्रसाद जी गुप्त, सागर विहार होटल, बम्बई १०००)

५. श्री बाबूलालजी गुप्त, बुद्धिभवन, सूबे की गोठ, लश्कर (ग्वालियर) १०००)

६. श्री पं० मनोहर जी विद्यालंकार, ईश्वरभवन, खारीबावली, दिल्ली-६ १०००)

७. श्री ला० ज्योति प्रसादजी प्रधान आर्यसमाज दीवानहाल, दिल्ली-६ १०००)

८. श्री गजानन्द जी आर्य, ९६ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट, कलकत्ता-७ १०००)

९. श्री राय साहब चौधरी प्रतापसिंह जी, माडल टाऊन, करनाल १०००)

१०. श्री ला० दीवानचन्द जी ३३ बी पूसा रोड, नई दिल्ली-५ १०००)

११. श्री सत्याचरण शर्मा, रिटायर्ड फोरेस्टरेंजर पाटी गली के
   आगे, मुहल्ला छपेटी, इटावा (उ० प्र०) १०००)

१२. श्री स्वामी देवानन्द जी महाराज ग्राम कुनकुरा पो० इंचौली (मेरठ) १०००)

१३. श्रीमती प्रेमदेवी दर्गन, द्वारा श्री आसकरन दास सरदाना,
   ८, सरक्यूलर एवेन्यू, ईस्ट नांगल टाऊन शिप (पंजाब) १०००)

१४. श्री गोविन्द भाई के० नन्दवाना, २५६ वी० पी० मार्ग बम्बई-४ १०००)

१५. श्री ओम्प्रकाश जी मेहरा, प्रेम कुटीर, थर्ड फ्लोर, मैरिन ड्राईव, बम्बई १०००)

१६. श्री रतनचन्द जी सूद, श्री रतनचन्द चैरीटेबल ट्रस्ट,
   १९ गार्लफिल्क रोड, नई दिल्ली-३ १०००)

१७. श्री गुलजारीलाल जी आर्य, ८०।८२ नागदेवी स्ट्रीट, बम्बई-३ १०००)

१८. श्री गण्डाराम जी मेहता, भारत टिम्बर, रे० रोड, बम्बई-१० १०००)

१९. श्री जीवनदास जी चरला, मलकागंज, दिल्ली-७ १०००)

१०००)

२०. श्री श्रवणकुमार जी विद्यालंकार, देसरी (बिहार) १०००)
२१. श्री हरिश्चन्द्र जी खन्ना, म० न० ३४७, गली परजा, अमृतसर १०००)
२२. श्री डा० जगन्नाथ जी, भगवती देवी, कूचा घासीराम, दिल्ली-६ १०००)
२३. श्रीमती माता जानकी देवी जी तथा पुत्र श्री किशनदास जी,
२६५ कूचा घासीराम, फतेहपुरी, दिल्ली-६ १०००)
२४. मै० अमर डाई स्टपस कम्पनी, अतुल प्रोडक्ट्स, क्लाथमार्केट दिल्ली-६ १०००)
२५. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज, आर्यसमाज रोड, जामनगर (गुजरात) १०००)
२६. श्री रामजीप्रसाद जी गुप्त, पूर्णमासी भवन, मुगलसराय (वाराणसी) १०००)
२७. श्री आचार्य जी गुरुकुल सूपा (जि० नवसारी) गुजरात १०००)
२८. मैसर्स हरिनगर शुगर मिल्स बम्बई, द्वारा श्री राजा नारायण लाल,
मालावार हिल, बम्बई १०००)
२९. श्री डा० नारायण दास जी, फिजीशियन एण्ड आई स्पेशलिस्ट,
फैंसी बाजार, गोहाटी (आसाम) १०००)
३०. श्री लेखराज जी गुप्त, ४७ ए जैसावाला फोर्ट, बम्बई १०००)
३१. श्री राजेश गुप्ता जी, १०३२८ मोतियाखान, नई दिल्ली-५५ १०००)
३२. श्री जगदीशचन्द्र भयाना जी, आर ४१ ग्रेटर कैलाश, नई दिल्ली-४८ १०००)
३३. मैसर्स कंवर किशन सिंह भयाना एण्ड कं०, सी० ५४ महारानी बाग,
नई दिल्ली-१४ १०००)
३४. पन्नालाल जी मित्तल, सुभाष नगर, देहरादून (उ० प्र०) १०००)
३५. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज दीवानहाल, दिल्ली-६ १०००)
३६. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज बाजार श्रद्धानन्द, अमृतसर (पंजाब) १०००)
३७. श्री मन्त्री जी, आर्य केन्द्रीय सभा, १५ हनुमानरोड, नई दिल्ली-१ १०००)
३८. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज, १९ विधानसरणि, कलकत्ता-६ १०००)
३९. श्री मन्त्रीजी आर्यसमाज, ९४ रवीन्द्रसरणि, बड़ा बाजार, कलकत्ता १०००)
४०. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज, बोकारो स्टील सिटी (धनबाद) बिहार १०००)
४१. श्री गुरुदास राम भण्डारी, ८३ ब्रज्यूक्रीसेण्ट एस० यू० कैलगरी,
१४ अलबर्टा, कनाडा १०००)
४२. श्री एल० के० नन्दवाना जी, प्यूपिल्स बैंक बिल्डिग, थर्ड फ्लोर,
भद्र, अहमदाबाद-६ १०००)
४३. श्री ओंकारनाथ जी, १५४ रे० रोड, बम्बई-१० १०००)
४४. श्री छगनलाल जी विजयवर्गीय, बेगम बाजार, हैदराबाद १०००)
४५. श्री बनवारीलाल राधेमोहन जी, श्रद्धानन्द बाजार, दिल्ली-६ १०००)

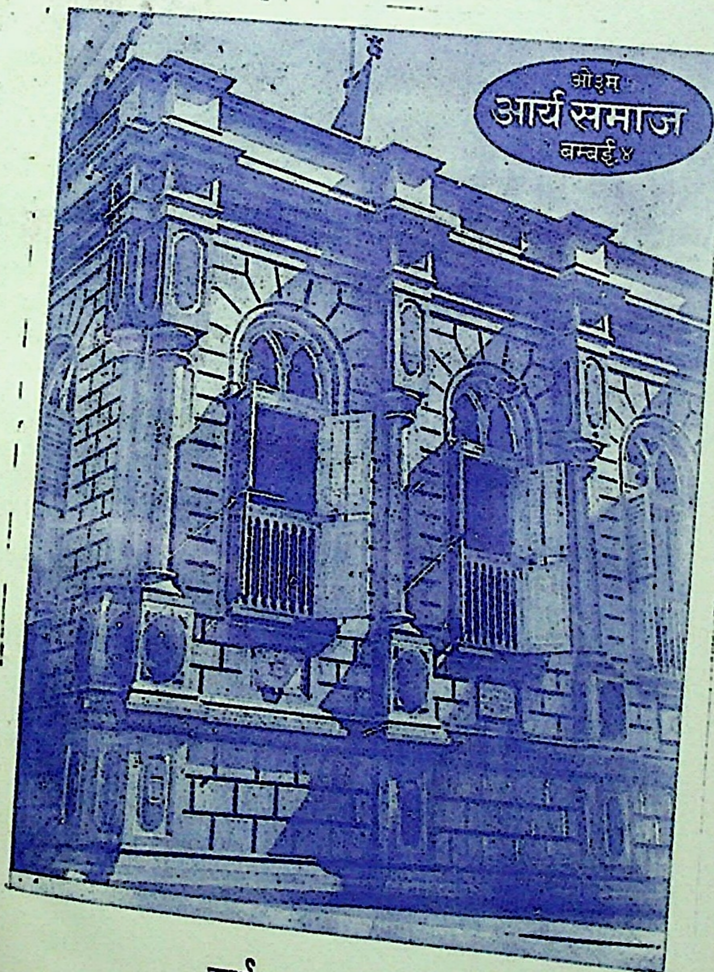
४६. श्री मन्त्री जी आर्यसमाज करोलबाग, नई दिल्ली-५ १०००)
४७. श्री वीरेन्द्र जी एम० ए० जालन्धर १०००)
४८. श्री नारायणदास जी जुनेजा, बान्द्रा, बम्बई १०००)
४९. श्री ला० रामगोपाल जी शालवाले मोती बाजार चांदनी चौक दिल्ली १०००)
५०. श्री आनन्दीलाल पोद्दार चैरीटेबल ट्रस्ट, ३६ चौरंगी रोड कलकत्ता १०००)
५१. श्री राधा कृष्ण जी जालान, जालान हाऊस, झरिया १०००)
५२. श्री बालगोविन्द जी एडवोकेट, रांची
(द्वारा श्री डा० डी० राम जी सभाप्रधान) १०००)
५३. श्री रघुवीरप्रसाद गुप्त २२३/डी० विधानसरणि कलकत्ता-६ १०००)
५४. श्री लक्ष्मीनारायण राधाकिशन कटरा प्यारेलाल चांदनी चौक दिल्ली १०००)

सभी दान दाताओं का हार्दिक धन्यवाद

ओम्प्रकाश त्यागी

मन्त्री—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा

महर्षि दयानन्द भवन, नई दिल्ली-१



आर्य समाज काकड़वाड़ी
विट्ठलभाई पटेल रोड, बम्बई-४ ने वेदभाष्य प्रकाशनार्थं
पाँच हजार रुपये प्रदान किए—धन्यवाद !

वेद सब
सत्य विद्याओं
का पुस्तक है।
— महर्षि दयानन्द

